
स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी-द्वारा
संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाके अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड, तमिल आदि प्राचीन भाषाओंमें
उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक
जैन-साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उसका मूल और यथासम्भव
अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन मण्डारोंकी
सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, विशिष्ट विद्वानोंके अध्येयन-
ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी
इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो रहे हैं।

ग्रन्थमाला सम्पादक

डॉ० हीरालाल जैन, एम० ए०, डी० लिट्०
डॉ० आ० ने० उपाध्ये, एम० ए०, डी० लिट्०

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर गार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

विक्रय केन्द्र : ३६२०१२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

स्थापना : फाल्गुन कृष्ण ९, वीर नि० २४७० • विक्रम सं० २००० • १८ फरवरी सन् १९४४

सर्वाधिकार सुरक्षित

भारतीय ज्ञानपीठ



स्व० मूर्तिदेवी, मातेद्वरी साहू बान्तिप्रसाद जैन

[Thesis approved for the Ph. D. Degree of the University of Jabalpur.]

JAMBŪSĀMICARIU

of

VĪRAKAVI

[Critically Edited with Hindi Introduction, Translation, Appendices etc.]

Edited by

Dr. Vimal Prakash Jain, M. A., Ph. D.

Reader in the Deptt. of Sanskrit, Pali &

Prakrit, University of Jabalpur

JABALPUR



BHĀRĀTĪYA JÑĀNAPĪTHA PUBLICATION

First Edition— VĪRA SAMVAT 2494, V. S. 2025, 1968 A. D.

Price Rs. 15/-

BHĀRĀTĪYA JÑĀNAPĪTHA MŪRTIDEVĪ

JAINA GRANTHAMĀLĀ

FOUNDED BY

SĀHU SHĀNTIPRASĀD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER

SHRĪ MŪRTIDEVĪ

IN THIS GRANTHAMĀLĀ CRITICALLY EDITED JAIN ĀGAMIC, PHILOSOPHICAL,
PURĀNIC, LITERARY, HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS
AVAILABLE IN PRĀKRIT, SANSKRIT, APABHRAṂSA, HINDI,
KANNAD, TAMIL ETC., ARE BEING PUBLISHED
IN THERE RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR
TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES
AND
CATALOGUES OF JAIN BHANDARAS, INSCRIPTIONS,
STUDIES OF COMPETENT SCHOLARS & POPULAR
JAIN LITERTURE ARE ALSO BEING PUBLISHED.

General Editors

Dr Hiralal Jain, M A., D Litt

Dr A N Upadhye, M. A., D. Litt.

Bharatiya Jnanpitha

Head office . 9 Alipore Park Place, Calcutta-27.

Publication office : Durgakund Road, Varanasi-5.

Sales office : 3620/21 Netaji Subhash Marg, Delhi-6.

Founded on Phalguna Krishna 9, Vira Sam. 2470, Vikrama Sam. 2000.18th Febr. 1944

All Rights Reserved

प्रधान सम्पादकीय

जम्बूस्वामी जैन या श्रमण संघके एक विशेष पूज्य व्यक्ति है। वे महावीरके साक्षात् शिष्य सुवर्म द्वारा संघमें दीक्षित किये गये थे, अन्तिम केवली थे और उनका ४६३ ई० पू० में निर्वाण हुआ। आगम ज्ञानकी परम्परामें जम्बूस्वामीका योगदान स्मरणीय है। अर्धमागधी आगमके अनुसार सुवर्मस्वामीने जम्बूको अंग ग्रन्थोका उपदेश दिया और जम्बूस्वामीचे अपने शिष्योंको। यद्यपि वे ऐतिहासिक व्यक्ति थे, फिर भी उनके जीवनके विषयमें समकालीन या आगम स्रोतोंसे हमें बहुत कम जानकारी प्राप्त होती है। तथापि उनके सम्बन्धकी बहुत कुछ बातें हमें अन्य स्तरोके परवर्ती जैन साहित्यसे उपलब्ध होती हैं। उनके जीवनकी मौलिक घटनाएँ अश्वघोष रचित 'सौंदरानन्द' काव्यमें चित्रित नन्दके चरित्रके समानान्तर प्रतीत होती हैं। कालान्तरमें जम्बूस्वामीकी यह परम्परागत जीवनी विविध स्रोतोंसे प्राप्त अनेक उपास्यानोंसे जुड़ गयी और समृद्ध हुई। जैन लेखकोंमें जम्बूस्वामीका जीवन इतना लोकप्रिय और प्रेरक सिद्ध हुआ कि विभिन्न भाषाओंमें लगभग ९५ रचनाएँ इस विषयकी लेकर रची गयी हैं।

प्रस्तुत संस्करणमें महाकवि वीर-द्वारा रचित 'जंबूसामिचरित' नामक अपभ्रंश ग्रन्थ प्रस्तुत किया जा रहा है। इसके रचयिता विनोय ज्ञानी हैं। उन्होंने कालिदास, पुष्पदंत आदि पूर्व कवियोंके साहित्यिक गुण परम्परासे प्राप्त किये हैं तथा उनके काव्यने नयनन्दी, रङ्गू, राजमल्ल आदि परवर्ती कवियोंकी प्रभावित किया है। उनकी रचनाओंमें प्रस्तुत काव्यसे समानता रखनेवाले अनेक खंड सरलतासे खोजे जा सकते हैं। वीर कविने अपने जीवन सम्बन्धी अनेक बातें कही हैं। उनका जीवन-काल विक्रम संवत् १०१०-१०८५ तक पाया जाता है। उन्होंने १०७६ वि० सं० अर्थात् १०१९ ई० में जंबूसामिचरितको पूर्ण किया।

डॉ० विमलप्रकाश जैनने प्रस्तुत संस्करणमें अपभ्रंश काव्य जंबूसामिचरितका सम्पादन पांच हस्त-लिखित प्रतियोंके आधारसे किया है जिनमें सबसे प्राचीन प्रति वि० सं० १५१६ की है। उन्होंने उन सभी प्राचीन प्रतियोंके पाठान्तर संक्षिप्त रूपसे अंकित किये हैं। अपभ्रंश पाठके नीचे हिन्दी अनुवाद है जो मूला-नुगामी होते हुए भी ऐसी धारावाही शैलीसे प्रस्तुत किया गया है कि वह स्वतन्त्ररूपसे भी पढ़ा जा सकता है। उक्त प्राचीन प्रतियोंमेंसे तीनमें संस्कृत टिप्पणी पायी जाती है जिसे सावधानीपूर्वक सम्पादित कर अन्तमें जोड़ दिया गया है। शब्दकोशमें वर्णानुक्रमसे अपभ्रंश शब्दोंकी सूची, उनके संस्कृत रूपों तथा सन्दर्भों सहित संकलित की गयी है। अन्तमें ग्रन्थमें आये भौगोलिक नामोंकी एक सूची है जिनका आवश्यक स्पष्टीकरण और उचित सन्दर्भ दिया गया है।

डॉ० वि० प्र० जैनकी प्रस्तावना ग्रन्थका एक सर्वांग सुन्दर अध्ययन प्रस्तुत करती है। सम्भवतः यह अपने ढंगका प्रथम सर्वांगपूर्ण प्रयास है, जिसमें जम्बूस्वामीके जीवनका सभी दृष्टियोंसे अध्ययन किया गया है। उन्होंने उसके महाकाव्यात्मक लक्षणों, विषय-वस्तुसे सम्बद्ध विभिन्न चरित्रों, विषयके आन्वयन्त-वर्ती उपास्यानों, काव्यरसों तथा अलंकारों एवं कवि-द्वारा प्रयुक्त छन्दोंका अध्ययन किया है। प्रस्तावनाके एक भागमें काव्यकी शैलीका ग्रन्थके सन्दर्भों सहित मूल्यांकन किया गया है। वीर कवि-द्वारा प्रयुक्त अपभ्रंश-भाषाका उसकी ध्वनियों, संज्ञारूपों और क्रियारूपों आदिका विस्तारसे विवरण दिया गया है। वीर कवि कृत इस जंबूसामिचरितके आधारसे जम्बूस्वामीके जीवनके आलोचनात्मक अध्ययन-द्वारा लेखकने जलपुर विश्वविद्यालयसे पी-एच० डी०की उपाधि अर्जित की है जो उचित ही है।

General Editorial

Jambūsvāmin is an important dignitary of the Jaina or Śramaṇa Saṃgha. He was initiated into the order by Sudharman, the immediate pupil of Mahāvīra. He passed away as the last Kevalin in c. B. C. 463. In the inheritance of scriptural knowledge Jambūsvāmin has played a memorable role. As presented in the Ardhamaṅgadhī canon, the Aṅga texts are addressed by Sudharman to Jambū who, then, imparted the same to his pupils. Though he was a historical person, we know very little about his biography from contemporary or even canonical sources. A good deal of information about him, however, is available in different strata of later Jaina literature. The basic details of his biography appear to have been parallel with those of Nanda's life as depicted in the Saundarananda, a poem by Aśvaghōṣa. With the passage of time, this traditional biography of Jambūsvāmin got interlinked with and enriched by a large number of sub-stories in different sources. With the Jaina authors the life of Jambūsvāmin has proved to be so popular and inspiring that some 95 works in different languages have been written on this theme. In the present edition is presented the Apabhraṃśa work, Jambūsvāmicariu composed by Vīra. The author is a man of learning. He has inherited the influence of earlier poets like Kālidāsa, Puṣpadanta etc ; and his poem has left as well its influence on later authors like Nayanandī, Raidhū, Rājamalla and others. A number of parallel passages in their works are easily traceable. The author Vīra gives plenty of autobiographical details. He is assigned to a period Vikrama Samvat 1010-1085. He completed the Jambūsvāmicariu in V. S. 1076, i. e., A. D. 1019.

Dr. V. P. Jam has carefully edited in this volume the Apabhraṃśa text of Jambūsvāmicariu based on five mss. (the earliest of the V. S. 1516) and noting their various readings in a concise manner. The text is accompanied below by a Hindi translation which is close to its contents and is so fluently presented that it can be read by itself. The Sanskrit gloss on this text available in three Mss. is carefully edited and presented at the end. The Śabdakoṣa gives an alphabetical register of Apabhraṃśa words with their Sanskrit equivalents and references to the text. At the end there is a list of Geographical names found in this work with necessary explanation and suitable references.

Dr. V. P. Jam's introduction is a thorough piece of study. Perhaps here is an exhaustive attempt, first of its kind, to study the biography of Jambūsvāmin in all its aspects. The editor has critically evaluated the Jambūsvāmicariu as a Kāvya. He has studied its characteristics as a Mahākāvya, the different characters involved in its plot, the sub-stories intervening the theme, poetical sentiments and embellishments permeating the presentation and the metrical forms employed by the author. A special section is devoted to the stylistic estimate of the poem with necessary references to the context. The Apabhraṃśa dialect used by Vīra is described in

details with regard to its phonology, declensions and verbal forms etc. This critical study of the Life of Jambūsvāmin on the basis of Jambūsvāmarū of Vira has justly earned the Ph. D. degree of the University of Jabalpur for its author.

The General Editors of the Mārtidevī Granthamālā are thankful to Dr. V. P. Jain for giving us his valuable edition of the Jambūsvāmarū, in Apabhramṣā, composed by Vira for being included in this Series. Not only he brings to light an unpublished Apabhramṣā work but has also presented here a helpful Hindi translation and a critical and exhaustive study of all the details about the author and his works in his learned Introduction. Publication of such Apabhramṣā works is indeed a forward step in the process of studies of Apabhramṣā language and literature the understanding of which is quite essential to work out the growth of New Indo-Aryan.

We record our sense of gratitude to Smt. Ramulvi Jain and to Shri Sahu Shantiprasādu Jain through whom numerous such rare works of Indian literature are being brought to light in the Mārtidevī Granthamālā in a sumptuous form. Our thanks are due to Shri L. C. Jain, the Secretary, who is very enthusiastic in pushing the publication of such works. Dr. Gokulchandra Jain deserves our thanks. He helped us in various ways by his presence in Banaras where this work was printed.

A. N. Upadhye
H. L. Jain

प्राक्कथन

वीर कवि द्वारा रचित 'जंबूसामिचरिउ' विक्रमको ११वो शतीका एक महत्त्वपूर्ण अपभ्रंश चरित महाकाव्य है। इसका परिचय सर्वप्रथम पं० परमानन्दजीने अनेकान्तमें प्रकाशित किया था। लगभग सात वर्ष पूर्व पूज्य डा० हीरालाल जैनने इस ग्रंथके संपादनकी ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया था। उसी समय कारंजा जैन शास्त्रभंडारकी एक हस्तलिखित प्रति (क) तथा आमेर जैन शास्त्र भंडारकी हस्तलिखित प्रतिको फोटो प्रति (ख) ये दो प्रतियाँ भी मुझे उनमे उपलब्ध हुईं। इन दो प्रतियोके आधारपर संपादन कार्य प्रारंभ करनेके बाद 'जंबूसामिचरिउ'की तीन ओर प्रतियाँ (ग घ ङ) उपलब्ध हुईं। इनमें सबसे अधिक प्राचीन प्रति (ख) वि० सं० १५१६ की है। इन सब प्रतियोका पूर्ण विवरण आगे 'संपादनपरिचय'में दिया गया है।

हस्तलिखित प्रतियोकी खोजके प्रयासोंमें 'जंबूसामिचरिउ'की एक संस्कृत पंजिका (पं) भी उपलब्ध हुई, जो संक्षिप्त होनेपर भी महत्त्वपूर्ण है। अतः उस पंजिकाको अन्य प्रतियों (ख एवं ग) में उपलब्ध टिप्पणोंके साथ संपादन करके प्रस्तुत ग्रंथके अंतमें दे दिया गया है। काव्यके मूलपाठ चयन एवं हिंदी अनुवाद, दोनोंमें इन संस्कृत टिप्पणोंसे पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई है।

मूल अपभ्रंश प्रतियोकी खोजके ही सिलसिलेमें जंबूस्वामीकथासे संबंधित शताधिक ऐसी रचनाओंकी जानकारी प्राप्त हुई जो विविध भारतीय भाषाओंमें भिन्न-भिन्न प्रदेशों व कालोंमें रची गयीं। उनका संक्षिप्त विवरण आगे दिया गया है।

प्रस्तुत संस्करणमें वीर कवि कृत अपभ्रंश 'जंबूसामिचरिउ'की मूलानुगामी हिंदी अनुवादके साथ सुसंपादित रूपमें सर्वप्रथम प्रस्तुत किया गया है। समालोचनात्मक संपादनकी परंपराके अनुसार इस महाकाव्यके प्रत्येक पहलुका विशेष अध्ययन करके उसके निष्कर्ष प्रस्तावनामें दिये गये हैं। ग्रंथका विशद शब्द-कोष भी प्रबंधके अंतमें दिया गया है।

जंबूस्वामीके जीवनचरितके संबंधमें आगमिक साहित्यसे लेकर संपूर्ण प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत जैन साहित्यमें जो कुछ भी सामग्री उपलब्ध है, उसका सूक्ष्मतासे अध्ययन कर प्रस्तावनामें जंबूस्वामीके जीवनचरितपर यथासम्भव पूर्ण विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। 'जंबूसामिचरिउ' महाकाव्यके परिप्रेक्ष्यमें इस संपूर्ण सामग्रीके अध्ययनसे यह प्रमाणित होता है कि जंबूस्वामी जैन श्रमण-परंपरामें एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक पुरुष थे, जिन्होंने ई० पू० ५२७ में भगवान् महावीरके तीर्थमें उनके साक्षात् शिष्य आचार्य सुषर्मासे जिन-दीक्षा स्वीकार की थी। अपनी अलौकिक प्रतिभा एवं कठोर तपसाघनाके कारण वे जैन श्रमण सभके न केवल प्रधानाचार्य ही बने, वल्कि उन्होंने श्रमण-साधनाकी परंपरा और पुरातन आगमिक साहित्यिक संपत्तिको सुरक्षित रखने, उसका प्रचार-प्रसार करने तथा चिरस्थायी बनानेमें भी अपना अभूतपूर्व एवं अद्वितीय योगदान दिया। प्रतीके साध्यमसे जंबूस्वामीने सुषर्माचार्यसे सारे आगमिको सुनकर धारण किया, और जंबूस्वामीसे यह सारा ज्ञान उनकी शिष्य-संततिको प्राप्त हुआ और उनके द्वारा आगेकी संततियोकी। इन प्रकार गुरु-शिष्य परंपराके द्वारा आगम साहित्यकी स्थायी सुरक्षा तथा प्रचार-प्रसार, ये दोनों ही कार्य सिद्ध हुए।

आगमिक साहित्यमें जंबूस्वामीके जीवनचरितके विषयमें उपलब्ध सामग्री अत्यल्प है। बादके जंबूस्वामीकथा एवं चरित साहित्यसे उनके जीवनपर कुछ विशेष प्रकाश पड़ता है। परंतु अबसे ढाई हजार वर्ष पूर्व होनेवाले इस गहनरूपके वास्तविक जीवनचरितकी सामग्री, इस कथाके परंपरागत होनेपर भी,

कथा-अंतर्कथाओंके ताने-दानेमें दुःख आश्चर्यकारक रूपसे ऐसी खो गयी या छूट गयी है कि इनके जीवनचरितके सूत्र ऐतिहासिक संदर्भोंके साथ पूर्ण-रूपसे जोड़ पाना आज संभव नहीं है। तथापि अद्यावधि प्राप्त समस्त ऐतिहासिक साहित्यिक सामग्रीके आधारसे उनके जीवनकी प्रमुख घटनाओं जन्म, दीक्षा, केवल-ज्ञानोपलब्धि, जैन श्रमगमयका कुशलित्व (आचार्यत्व) एवं मोक्षप्राप्तिको ऐतिहासिक तिथियोंके साथ जोड़ा गया है।

ऐतिहासिक जीवनचरितको दृष्टसे जंबूस्वामिका चरित जितने महत्त्वका है, साहित्यिक कथानायकको दृष्टिसे भी किमी भी प्रकार उससे कम महत्त्वका नहीं है। कामदेव सदृश सौंदर्य, कुबेर सरीखा वैभवविलास, बृहस्पतिके समान अलौकिक प्रतिभा एवं ऐंद्रियिक भोगविलासकी वासनाके दुर्निवार-मुदम्य जनक तथा प्रेरक अविद्याता उद्दाम यौवनकालमें कामदेवकी रतिके समान अनुपम सुंदरी एकाधिक कन्याओंसे विवाह, इन सारे स्वर्गोपम सुखसाधनोंको खात मारकर, महावीर और बुद्धके समान मुनि जीवन अंगीकार करके जीवनके चरमलक्ष्य—परिपूर्णबोध अर्थात् केवलज्ञान और मोक्षको प्राप्त करना, इन सारे तत्त्वोंने पाँचवी-छठी शती ई०से लगाकर अद्यावधि गत-पंद्रह सौ वर्षोंमें प्रत्येक शतीमें और देशके लगभग प्रत्येक राज्यमें जैन साहित्यकारोंको बलात् अपनी ओर आकृष्ट किया है। यही कारण है कि प्राचीन प्राकृत साहित्यसे लेकर संस्कृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, गुजराती और हिंदी वादि विभिन्न भारतीय भाषाओंमें जंबूस्वामी चरितकी एक सुदीर्घ परंपरा प्राप्त होती है, जो बसुदेव-हंडी(प्राकृत)के रचयिता संघदास गणि (पाँचवी-छठी शती ई०)से लगाकर बीसवीं शतीतक अविच्छिन्न रूपसे चली आयी है।

आधार—इस ग्रंथको तैयार करनेमें हस्तलिखित प्रतियोंको उपलब्ध करानेसे लेकर प्रस्तुत रूप देने तकमें जिन पूज्य गुरुजनों, विद्वानों, श्रीमानों तथा मित्रोंका सहयोग प्राप्त हुआ है उनके सूची बहुत बड़ी है, और उन सबके प्रति नामोल्लेखपूर्वक कृतज्ञता ज्ञापित करना यहाँ संभव नहीं है, तथापि कुछ अवश्य उल्लेखनीय व्यक्ति और सथाएँ हैं—पूज्य डॉ० हीरालाल जैन, जिन्होंने प्रस्तुत काव्यकी प्रतियाँ प्रदान करते हुए मुझे इसके संग्रह करनेकी प्रेरणा दी और त्रिनसे मैने आलोचनात्मक अध्ययन तथा संपादनकी पद्धति सीखी और निरंतर मार्गदर्शन प्राप्त किया, जैन शोधसंस्थान, अहावीर भवन जयपुरके डॉ० कस्तूरचन्द्र कासलीवाल तथा जैन महाविद्यालय जयपुरके प्राचार्य पं० जैनसुखदासजी न्यायतीर्थ, जिनकी कृपासे मुझे जयपुरके भंडारोंकी तीन प्रतियाँ, पंजिका, फोटो प्रतियों मूल प्रति एवं ब्रह्म-जिनदासकृत संस्कृत जंबूस्वामीचरित्रकी प्रतियाँ उपलब्ध हुईं; लालभाई दलपतभाई शोधसंस्थान, अहमदाबादके निदेशक पं० दलसुख भाई मालवणिया, जिनके सहयोगसे मुझे उव संस्थानसे भिन्न-भिन्न जंबूस्वामीचरितोंकी सत्रह हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुईं; प्राच्य शोध संस्थान बड़ौदाके संचालक डॉ० भोगीलाल साडेवरा, एवं भंडारकर प्राच्य शोध संस्थान, पूनाके मैनुस्क्रिप्ट्स विभागके अध्यक्ष डॉ० ए० डी० पुनालकर, जिनसे मुझे जंबूस्वामी-अध्ययन नामक रचनाकी भिन्न-भिन्न कई प्रतियाँ तथा मानसिंह कृत संस्कृत जंबूस्वामीचरित्र उपलब्ध हुए, प्राकृत, जैनशास्त्र एवं अहिंसा शोध संस्थान वैशाली (विहार)के निदेशक डॉ० नथमल टाटिया, पार्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान वाराणसीके निदेशक डॉ० मोहनलाल मेहता तथा स्यादाद-महाविद्यालय वाराणसीके प्राचार्य पू० पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, जिनके कृपापूर्ण सहयोगके कारण मुझे इन संस्थाओंसे सहायक ग्रंथ उपलब्ध हुए तथा डॉ० नैमिचंद्र शास्त्री आरा, जिन्होंने समय-समयपर मेरा मार्गदर्शन किया और मेरी समस्याओंको सुलझाया, इन सबका हृदयसे आभारी हूँ।

भारतीय ज्ञानपीठके मंत्री श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन तथा मूर्तिदेवी ग्रन्थमालाके प्रधान संपादक डॉ० आ० ने० उपाध्येका मैं हृदयसे कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इसे भारतीय ज्ञानपीठसे प्रकाशित करनेकी स्वीकृति प्रदान की। भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसीके व्यवस्थापक डॉ० गोकुलचन्द्र जैन, उनके अन्य सहयोगी तथा श्री पोल्हावनजीका भी आभारी हूँ जिन्होंने इस ग्रंथके यथाशोध, सुंदर और शुद्ध मुद्रणमें आद्योपात् अत्यंत आत्मीयतासे बहुत अधिक सक्रिय सहयोग प्रदान किया। इस प्रसंगमें तारा-प्रकाशन,

वाराणसीके प्रबंध-संचालक श्री रमाशंकरजी पंड्याका स्मरण और उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापन करना मेरा प्रिय कर्त्तव्य है जिन्होंने मुझे डा० ही० ला० जैन-द्वारा संपादित 'सुदमणचरित'की पूर्ण प्रूफ कॉपी प्रदान की, जिससे मैं जंबूसामिचरित तथा 'सुदंसणचरित' का तुलनात्मक अध्ययन सरलतासे कर सका। इन सबके अतिरिक्त मैं सहायक एवं संदर्भ ग्रंथोंके सभी विद्वान् लेखक-संपादकोंके प्रति भी अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। अन्तमें, मेरी धर्म-पत्नी श्रीमती कमलेश, जिन्होंने इस कार्यको पूर्ण करानेमें मेरे साथ अथक परिश्रम किया और अनगिन ब्रष्ट प्रमत्नतासे सहन किये, उनके प्रति कुछ न कहकर ही सब कुछ कहा जा सकेगा। मेरे अत्यन्त क्षुभेच्छु एवं परम-स्नेही आत्मीय मित्र और वाघव जो वर्षोंसे मुझे कार्य पूर्ण करनेकी निरंतर प्रेरणा व उत्साह प्रदान करते रहे, उनकी सद्भावनाओंका ऋण शब्दोंमें व्यक्त कर मैं उद्गृह्य होना नहीं चाहता।

प्रकाश पर्व १ नवंबर १९६७

- विमलप्रकाश जैन

विषय-सूची

प्रस्तावना

१. संपादन परिचय	१-१०	अंतर्कथाओंका महाकाव्यकी दृष्टिसे औचित्य मूल्यांकन	७७
प्रति परिचय	१	कथातरवो एव कथानकरूढियोंका विश्लेषण	७८
संपादनमे सहायक अन्य सामग्री	६	६. जंबूसामिचरिउका काव्यात्मक मूल्यांकन	८०-१०७
प्रति-प्रशस्तियोंकी प्रामाणिकता	८	(क) चरितकाव्यकी दृष्टिसे समीक्षा	८१
पाठ-संपादनकी पद्धति	८	(ख) महाकाव्यात्मकता	८२
२. ग्रंथकार परिचय	१०-१९	(ग) वस्तु-व्यापार-वर्णन	८२
जन्मभूमि, माता-पिता	१९	(घ) शैली-विश्लेषण	८७
लाडवग वधाकी ऐतिहासिकता	११	(ङ) रस-भाव योजना	९२
काव्य-रचना प्रेरक	१२	(च) अलंकार योजना	९७
समय निर्धारण	१३	(छ) विंद-योजना	९९
उल्लिखित पूर्ववर्ती कवि और काव्य	१४	(ज) छंद-योजना	१०१
समकालीन कवि और आचार्य	१५	७ जंबूसामिचरिउकी गुण और रीति-युक्तता एवं सुभाषित और लोकोक्तियाँ	१०७-११७
समकालीन राजा	१६	गुण : माधुर्य, ओज, प्रसाद	१०८
कविकी शिक्षा तथा व्यक्तित्व एवं कृतित्व	१८	रचना शैली (रीतियाँ) . वैदर्भी, पाचाली, गौडी, लाटी	१०९
३. कथासार, कथावस्तुका महाकाव्यात्मक गठन एवं मौलिकता	२०-२६	सुभाषित एवं लोकोक्तियाँ	११२
४. जंबूस्वामी . एक ऐतिहासिक कथापुरुष, कथाकी दीर्घ परंपरा और मूलस्रोत	२६-४७	कहावर्तोंकी कहानियाँ	११७
आगमिक ऐतिहासिक सामग्रीके आधारपर जंबूस्वामीका जीवनकाल और चरित	२६	८ जंबूसामिचरिउका भाषा एवं व्याकरण-आत्मक विश्लेषण	११७-१२७
जंबूस्वामीचरित कथाकी पूर्व परंपरा : वसुदेव-हिंडी, उत्तर पुराण, सम० कहा, घर्मोप० विवरण एवं जंबूचरियं	२९	९. वीर तथा अन्य कवि	१२७-१३७
जंबूस्वामिचरितकी कथा-परंपराओंका तुलनात्मक अध्ययन	३७	(क) 'जंबूसामिचरिउ' पर पूर्वकालीन संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश कवि तथा साहित्यकारोंका प्रभाव : अवधघोष, कालिदास, प्रवरसेन, बाण, भवभूति, स्वयंभू, सोमदेव, पुष्पदंत, गुणपाल	१२७-१३३
वीर रचित जंबूसामिचरिउकी विशेषता	३९	(ख) 'जंबूसामिचरिउ' का पश्चात् कालीन संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश कवियोंपर प्रभाव : नयनंदि, ब्रह्म जिनदास, राजमल्ल और रङ्घु	१३३-१३७
जंबूचरितकी कथाका मूलस्रोत : सौन्दर-नन्द काव्य	४०	१०. समसामयिक अवस्था	१३८-१४७
जंबूस्वामी विषयक रचना-सूची	४३	भौगोलिक स्थिति	१३८
५. जंबूस्वामी-चरितकी अंतर्कथाएँ	४८-८०	ग्राम और ग्राम्य जीवन	१४०
अंतर्कथाओंका मूलकथानकसे संबंध एवं संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश जंबूस्वामीचरितमें उपलब्ध कथाओंका तुलनात्मक विश्लेषण	४८	नगर और नागरिक जीवन	१४०
जंबूस्वामी चरितोंकी कथासारिणी	७४		

आर्थिक अवस्था	१४१	अन्य सामाजिक प्रथाएँ, दैनिक जीवन, एवं	
सामाजिक स्थिति	१४२	मनोरंजनके साधन	१४४
अन्य जातियाँ एवं आजीविकाके साधन	१४२	शिक्षा और साहित्य	१४५
विवाह संस्था	१४३	धार्मिक स्थिति	१४६
वैवाहिक पद्धति	१४३	सन्दर्भ ग्रन्थ एवं संकेत सूची	१४८
वैवाहिक भोज	१४३		

मूलपाठ

संघि	विषय	कडवक	संघि	विषय	कडवक
१.	मंगलाचरण		२.	भवदेवका विवाह और ठीक उसी अवसर-	
	महावीर वंदना	१		पर मुनि भवदत्तका घर आगमन	९
	कविका आत्म-निवेदन	२		भवदत्त-भवदेवकी वार्ता	१०
	कविका विनय-प्रदर्शन	३		भवदत्तका भवदेवको धर्मोपदेश	११
	कविका वंश परिचय	४		भवदेवका मुनि भवदत्तके साथ अत्यंत	
	काव्य रचना प्रेरकका वंश परिचय	५		अनिच्छापूर्वक मुनि संघमें जाना, भवदेवकी	
	कवि और काव्य-गुण तथा मगधवर्णन	६		अनचाही दीक्षा, निरंतर पत्नीका ध्यान	
	मगधवर्णन	७-८		और भोगेच्छासे गाँव छोड़कर आना १२-१५	
	राजगृह वर्णन	९-१०		भवदेवका अंतर्द्व द्व और पत्नी (नागवसु)	
	मगधराज श्रेणिक	११		से भेंट	१६
	रानियोका सौंदर्य	१२		भवदेव-नागवसुकी वार्ता	१७
	विपुलगिरिपर भ० महावीरके आगमनकी			नागवसु द्वारा भवदेवको बोधक उपदेश	१८
	सूचना	१३		भवदेवको सूचना बोध और पश्चात्ताप	१९
	भ० महावीरके दर्शनार्थ गमनकी तैयारी	१४		भवदत्त-भवदेवकी कठोर तपस्या और मर-	
	भ० महावीरके दर्शनार्थ गमन	१५		कर स्वर्गगमन	२०
	भ० महावीरका समोशरण	१६	३.	पूर्व विदेहमें पुष्कलावती क्षेत्रका वर्णन	१
	समोशरणमें विराजमान भ० महावीरकी			पुंडरिंकिणी नगरीका वर्णन	२
	शोभा	१७		पुंडरिंकिणी नगरीमें सागरचंद्रका जन्म और	
	भ० महावीरकी स्तुति	१८		वीताशोक नगरीका वर्णन	३
२.	महावीरका धर्मोपदेश	१-२		वीताशोक नगरीमें शिवकुमारका जन्म	४
	समोशरणमें विद्युन्माली देवका आगमन	३		पुंडरिंकिणीमें सागरचंद्रका मुनि होना	५
	विद्युन्माली देवके पूर्वजन्मोंका कथन प्रारंभ	४		वीताशोक नगरीमें मुनि सागरचंद्र (पूर्व	
	भवदत्त-भवदेवकी कथा, माता-पिताका			जन्ममें भवदत्त) के दर्शनसे शिवकुमारको	
	स्वर्गवास	५		अपने पूर्वजन्म (भवदेव) का स्मरण	६
	वर्द्धमान गाँवमें सुधर्म मुनिका आगमन			शिवकुमारको वैराग्य और दीक्षा लेनेकी	
	और धर्मोपदेश	६-७		इच्छा	७-८
	सुधर्मके धर्मोपदेशसे भवदत्तको वैराग्य और			माता-पिताके आग्रहसे शिवकुमारकी घरमें	
	दीक्षा	८		रहते हुए ही तपस्या और संन्यासमरण;	९

संधि	विषय	कडवक	संधि	विषय	कडवक
३.	सागरचंद्र, शिवकुमारका स्वर्गगमन, विद्यु- न्माली (शिवकुमार) देवकी चार देवियाँ और उनका पूर्व-भव	१०	४.	तुडाकर भागना और नागरिकोको त्रास देना	२०
	चार देवियोका पूर्व-भव—शूरसेन श्रेष्ठिकी चार पत्नियाँ	११		हाथीका उपद्रव	२१
	वसंतागमन और नागयज्ञके मंदिरकी यात्रा	१२		जंबूस्वामी द्वारा हस्ति-विजय	२२
	श्रेष्ठि-पत्नियोकी धर्म-साधना और भरकर		५	श्रेणिककी राजसभा	१
	स्वर्गमें विद्युन्मालीकी देवियाँ बनना	१३		राजसभामें विद्याधर गगनगतिका आगमन और विलासवती वृत्तात	२
	विद्युच्चर परिचय	१४		विलासवतीको बलपूर्वक प्राप्त करनेके लिए विद्याधर रत्नशेखर-द्वारा केरलपुरीकी घेरेबंदी	३
४.	जंबूस्वामीके माता-पिता और अणादिय यज्ञ	१		जंबूस्वामी और गगनगतिकी वार्ता, जंबू- स्वामीका गगनगतिके साथ प्रयाण	४-५
	भ० महावीर द्वारा अणादिय यज्ञका पूर्व- भवकथन और जंबूस्वामीके अंतिम केवली होनेकी भविष्यवाणी	२-३		श्रेणिक सैन्यकी युद्धार्थ प्रयाणकी तैयारी	६
	भगवान्के द्वारा संक्षेपमें जैनपुराण कथनका उल्लेख और श्रेणिक द्वारा भगवान्की स्तुति	४		सैन्य प्रयाण	७
	राजाका नागरिको सहित नगरको लौटना और सातवें दिन अहरदासकी पत्नीको पाँच स्वप्न आना, और स्वप्नोका फल	५-६		विंध्यपर्वत और विंध्यारटवी वर्णन	८
	जंबूस्वामीका गर्भावतरण, माँकी गर्भावस्था और शिशुका जन्म	७		विंध्यदेश वर्णन	९
	जंबूस्वामीका जन्मोत्सव और नामकरण	८		रेवानदी तथा कुरल पर्वत वर्णन	१०
	बालक जंबूस्वामीका बढना और गुरुके पास शिक्षा ग्रहण	९		श्रेणिक सैन्यका पडाव और जंबूस्वामीका केरल पहुँचना	११
	बालकके यशका विस्तार	१०		दूतके रूपमें जंबूस्वामीका रत्नशेखर विद्या- धरकी छावनीमें प्रवेश कर उसके सामने पहुँचना	१२
	जंबूस्वामीके दर्शनसे नारियोकी उत्तेजना	११		जंबूस्वामीका रत्नशेखरको बुरा-भला कहना और रत्नशेखरका रोप	१३
	सागरदत्तादि श्रेष्ठियोकी पथथी आदि चार कन्याएँ	१२		जंबूस्वामी-द्वारा किये गये अपमानसे उत्ते- जित विद्याधर योद्धाओ और जंबूस्वामी- के मध्य युद्ध	१४
	कन्याओंका सौंदर्य और उनका जंबूस्वामी- से वाग्दान	१३-१४	६.	वीर पुरुष (और वीर कवि) का सहज परिकर; विद्याधर सैन्यमें विलोभ, केरल राजा भृगाकको अपने अज्ञात सहायक जंबूस्वामी-द्वारा विद्याधर सैन्यसे मया- नक युद्धकी सूचना प्राप्ति और केरल सैन्यका सन्नद्ध होना	१-२
	श्रेष्ठि घरोंमें विवाहकी तैयारी और वसंता- गमन	१५		सैनिक-पत्नियोके वीरतापूर्ण सदेश	३
	नागरिकोका उद्यान क्रीडा हेतु गमन, उप- वनकी गोसा	१६		केरल सैन्यका प्रयाण	४
	नागरिक नियुनोंकी उद्यान-क्रीडा	१७		सैन्य प्रयाणसे उड़ी धूलि और परस्पर युद्ध	५
	प्रेमियोकी वक्रोक्तियाँ	१८		आकाशमें उड़ी धूलि, युद्ध और युद्ध भूमिका दृश्य	६-९
	नियुनोंकी जल-क्रीडा	१९			
	मंठको मारकर राजाके पट्ट हाथीका बंधन				

संघि	विषय	कडवक	संघि	विषय	कडवक
६.	रत्नशेखर और गगनगति का युद्ध रत्नशेखर-भृगांक साक्षात्कार और परस्पर युद्ध	१० ११-१३	८.	जंबूस्वामीका सुघमसि उसे दीक्षा देनेका अनुरोध	६
	रत्नशेखर-द्वारा माया-युद्धके बलसे भृगांक-को बाँधना; जंबू-द्वारा विद्याघर सैन्य संहार	१४		जंबूस्वामी और माता-पिताकी वार्ता, और उसका दीक्षा लेनेका निश्चय जान माता-पिताकी अवस्था	७
७.	कवि और काव्य; युद्ध-भूमिका दृश्य विद्याघर और केरल सैन्यमें क्रमशः जय-पराजयका दृश्य, गगनगति-द्वारा जंबूस्वामी-की स्तुति और भृगाकके बाँधे जानेका वृत्तांत कहकर सम्मान रक्षाका निवेदन	१ २-३		जंबूस्वामी-द्वारा सत्पुत्र लक्षण कहकर माता-पिताको समझाना	८
	सच्चा वीर पुरुष; युद्धका वृत्त सुनकर जंबू-स्वामीका रोप	४		समाचारवाहकों-द्वारा जंबूके दीक्षा लेनेका निश्चय जानकर सागरदत्तादि श्रेष्ठियों व कन्याओंके अन्य स्वजनोकी दुःखद अवस्था, कन्याओंका जंबूस्वामीसे उनके साथ केवल एक दिनके लिए विवाह करनेका आग्रह	९-१०
	केरल सैन्यमें पुनर्युद्धका उत्साह और दोनो सेनाओंका पुन. भिडना	५		स्त्रीमुलम कामचेष्टाओं-द्वारा पद्मश्रीका जंबूस्वामीको वशमें करनेका विश्वास	११
	महान् शस्त्र-युद्ध; श्रेष्ठ और अधम वृषभ	६		जंबूस्वामी-द्वारा विवाह करनेकी स्वीकृति और विवाह	१२
	जंबूस्वामी और रत्नशेखरका पुनर्साक्षात्कार और परस्पर शस्त्र-युद्धका आह्वान	७		मध्याह्नकालमें वैवाहिक भोज	१३
	सेनाओंका युद्ध-भूमिसे हटना तथा जंबू-स्वामी और रत्नशेखरमें शस्त्र-युद्ध	८-९		वर-वधुओंका वरग्रहको जाना, संघ्या, सूर्यास्त एवं रात्रि आगमन	१४
	जंबूस्वामी-द्वारा रत्नशेखरका बाँधे जाना; भृगाकको छुड़ाना, गगनगति-द्वारा समस्त वृत्त कथन और विजयोत्साहपूर्वक सबका नगर प्रवेश	१०-११	९.	काव्य परीक्षा ; जंबूस्वामीका अंतर्मुखी चिंतन	१ २
	नगरकी क्षोभा, जंबूस्वामीका स्वागत, राजकुलमें प्रवेश और रत्नशेखरको क्षमादान	१२		पंकजश्री-द्वारा जंबूस्वामीपर व्यंग्य	३-४
	भृगांक कन्या विलासवती सहित सबका राजगृहकी ओर प्रस्थान, कुशल पर्वतपर श्रेणिकसे भेंट, श्रेणिकका विलासवतीसे परिणय और राजगृह पहुँचनेपर मंदनवन उद्यानमें सुघमं मुनिके दर्शन	१३		मूर्खहालीका दृष्टांत	५
८	कवि और काव्य	१		धामिष लोभी कौनैका दृष्टांत	६
	जंबूस्वामी और सुघमं वार्ता; सुघमं-द्वारा दोनोके पूर्व-भवोंका कथन	२		खेचरका दृष्टांत	७
	मगध देशमें संवाहन नगर वर्णन और सुघमंका आत्म परिचय	३-४		कामातुर यूथपति वानरका दृष्टांत	८
	सुघमसि उनका और स्वयंका परिचय आदि जान जंबूस्वामीको वैराग्य	५		संलिणी नामक कबाडीका दृष्टांत	९
				भ्रमुरका दृष्टांत, सर्प दृष्टांतके प्रसंगमें वर्षा वर्णन	१०
				सर्प करकैटा दृष्टांत	११
				शृगालका दृष्टांत	१२
				विद्युच्चरका वेश्यावाटसे चोरी हेतु निर्गमन, वेश्यावाटका वर्णन	१३
				वेश्याओंका जीवन और मिथुनोके सुरत-व्यापार	१४

संघि	विषय	कडवक	संघि	विषय	कडवक
२.	विद्युच्चरका जंबूस्वामीके धरमे चोरी हेतु प्रवेश, तथा जंबूस्वामी और बधुओंके कथोपकथन सुनकर एवं माँकी निकल अवस्था देख चित्त-परिवर्तन और माँसे वार्ता	१४-१५	१०.	जंबूस्वामीकी दीक्षा और वस्त्रामूपण परित्याग,	२०
	विद्युच्चरका चोररूपमें आत्मपरिचय तथा जंबूस मिलकर लगका चित्त-परिवर्तन करनेके प्रयासमें असफल होनेपर स्त्रयं भी उसके साथ दीक्षा लेनेका निश्चय	१६		विद्युच्चर, अरहदास, जिनमती माता और बधुओंकी प्रव्रज्या; सुवर्माको केवल-ज्ञान और जंबूकी द्वादशविध तपस्या	२१
	भक्तिद्वारा विद्युच्चरको जंबूस्वामीका मामा कहकर उससे मिलाना	१७		जंबूस्वामीकी तपस्या, सुधर्माको मोक्ष, जंबूस्वामीको कैवल्य, देवों-द्वारा कैवल्योत्सव, और जंबूस्वामीको मोक्ष प्राप्ति, माता, पिता एवं बधुओंका संन्यासमरण करके स्वर्गगमन	२२-२४
	विद्युच्चरका वेप वर्णन, जंबूस्वामी एवं विद्युच्चरका साक्षात्कार और कुशलवार्ता	१८		विद्युच्चर मुनिका संव्रसहित तात्रलिति नगरीमें आगमन और मुनि संघपर दैवी उपसर्गकी सूचना	२५
०	विद्युच्चरका देश-यात्रा वर्णन	१९		मुनि संघपर घोर उपसर्ग, विद्युच्चर मुनिकी उपसर्ग सहनेकी दृढ़ता	२६
१०.	कवि और काव्य, विद्युच्चर-द्वारा जंबूस्वामीकी प्रशंसा और सांसारिक भोगोंको भोगनेकी प्रेरणा	१	११.	विद्युच्चर मुनि-द्वारा वारह अनुप्रेषामोका चिंतन : अष्टभानुप्रेषा	१
	विद्युच्चरका नास्तिक भोगवाद	२-३		अष्टरानुप्रेषा	२
	जंबूस्वामीका कार्य-कारणयुक्त आस्तिकवाद	४-५		संसारानुप्रेषा	३
	जंबूस्वामी-द्वारा निजके पूर्वजबोका संक्षिप्त कथन	६		एकत्वानुप्रेषा	४
	सष्ट दृष्टांत	७		अन्यत्वानुप्रेषा	५
	असती दृष्टांत	८-१०		अष्टुचित्तानुप्रेषा	६
	वणिक और चित्तमणि दृष्टांत	११		आत्मवानुप्रेषा	७
	मोल और श्रृगाल दृष्टांत	१२		संवरानुप्रेषा	८
	एक कवाड़ीका दृष्टांत	१३		निर्जरानुप्रेषा	९
	बोह नटका दृष्टांत	१४		लोकानुप्रेषा	१०-१२
	विभ्रमा नामक रात्री और चंगका दृष्टांत	१५-१७	०	बोषिदुर्लभानुप्रेषा	१३
	विद्युच्चरको बोध प्राप्ति और अपना वंश परिचय देना, तथा मूर्खोदय	१८		धर्मस्वाख्यातत्वानुप्रेषा	१४
	जंबूस्वामीका दीक्षार्थ अभिनिष्क्रमणोत्सव और सत्कार	१९		विद्युच्चरका समाधिमरण करके सर्वार्थ-सिद्धि स्वर्गगमन	१५
				प्रधास्तिः काव्य रचनाकाल और कविका वंश परिचय आदि	

संस्कृत टिप्पण और शब्द-कोष

संस्कृत-टिप्पण	पृ० २३५-२८७	वाद्य-यन्त्र	पृ० ३९१
अकारादिक्रम शब्द-कोष	पृ० २८८-३९०	वृक्ष-वनस्पति	पृ० ३९२
खाद्य-पदार्थ	पृ० ३९०	व्यक्तिगत-नाम	पृ० ३९३
ध्वन्यात्मक-ध्वज	पृ० ३९१	भौगोलिक-नाम	पृ० ३९६-४०२

प्रस्तावना

१. संपादन परिचय

प्रति परिचय

वीर कवि विरचित जंबूयामिचरिउ नामक यह अपभ्रंज महाकाव्य प्रथम बार संपादित होकर प्रकाशमें आ रहा है। इनका संपादन निम्नलिखित पाँच प्राचीन प्रतियोंके पाठोंका पूरा मिलान करके किया गया है।

एक प्रति कारंजा भंडारसे पू० डॉ० हीरालालजीके सौजन्यसे उपलब्ध हुई है। प्रतिमें कुल १०४ पत्र हैं, जिनमेंसे प्रथम पत्र केवल एक ओर लिखा गया है। आकार ११" × ४ १/२"; पत्तियाँ प्रतिपृष्ठ अधिकशत. ९, और किन्हीं किन्हीं में १०; अक्षर प्रति-पक्ति लगभग ३६; हाशिया दोनों पाठोंमें १", ऊपर-नीचे ३/४"। लिखावट सर्वत्र समान नहीं है। वही अक्षर बड़े-बड़े लिखे हैं, तो कहीं छोटे-छोटे। लेख सर्वत्र सुंदर है।

प्रतिका प्रारंभ '॥ स्वस्ति ॥ ओं नमो वीतरागाय' से होता है; और ग्यारहवीं श्लोक अंतमें 'इय जंबूयामिचरिण् विगारवीरं महाकाव्ये महाकहं देवयत्त' यही तक आकर अशूरी पुष्पिका पर ही प्रति समाप्त हो जाती है। इसके आगे कोई भी प्रशस्ति नहीं है। अतः इस प्रतिके लेखन-कालका अनुमान लगाना कठिन है।

इन प्रतिकी निम्नलिखित विशेषताएँ हैं —

- (१) यह प्रति अनुस्वार प्रधान है, तथा इसमें निरर्थक अनुस्वारका अत्यधिक प्रयोग हुआ है।
- (२) 'न'के स्थानपर सर्वत्र ण'का प्रयोग हुआ है, केवल दो स्थानोंको छोड़कर (१) कामिनी, (२) अन्य > अन्तु।
- (३) अनेक स्थलों पर 'इ'के स्थान पर 'य' श्रुति, और 'य' श्रुति के स्थान पर 'इ'का प्रयोग मिलता है। इ > य जैसे—अवइण्ण > अवयण्ण (अवतीर्ण); छइल्ल छयल्ल—(हिं छैला, विदग्ध-पुरुष); कइवय > कयवय (कतिपय), बइतरिणि-वयतरिणि (वैतरणी), पइवय > पयवय (पतिश्रव) आदि, एवं य > इ जैसे वेयल्ल > वेइल्ल (विचकिल्ल), आयउ > आइउ (आगत) आदि।
- (४) कहीं कहीं 'य' श्रुतिके स्थानपर 'व' श्रुतिका भी प्रयोग मिलता है, जैसे जुवल > जुवल (जुगल);
- (५) क्वचित् 'व'कारके स्थान पर 'म'कारका प्रयोग—ताव > ताम (तावत्), एवहि > एमहि (इदानीम्)
- (६) तृतीया तथा सप्तमी विभक्तियोंमें सर्वत्र 'इ'का प्रयोग—(तु०) करणि, अम्मार्त्ति, पिर्परि; तथा (म०) हियवइ, घरि घरि, आउत्ति आदि।

ख प्रति—यह पोथी जयपुरके आमेर शास्त्र भंडारमें उपलब्ध है। प्रतिमें कुल ७६ पत्र हैं, जिनमें ६२वाँ पत्र नहीं है। प्रथम पत्र इस प्रतिमें भी केवल एक ओर लिखा गया है। आकार ११" × ५ ३/४"; पत्तियाँ प्रति-पृष्ठ (पत्र १ से ७४ तक) १४; और बीच बीचमें कुछ पत्रोंपर (२०, ३१, ३३) १५;

तथा पत्र ७५ व ७६ पर मोटे-मोटे अक्षरोमे पृष्ठत. ९, ८, ९ व ११ पंक्तियाँ; अक्षर प्रति पंक्ति लगभग ३५; हाशिया पाठवर्गे १ $\frac{३}{४}$ " व १ $\frac{३}{४}$ " तथा ऊपर-नीचे १", १"। लेख असमान, कहीं अक्षर छोटे छोटे, कहीं बड़े-बड़े परन्तु सामान्य रूपसे सर्वत्र स्पष्ट, शुद्ध एवं सुन्दर।

रख प्रतिकी एक फोटो-कॉपी भी संपादकको पू० डॉ० हीरालालजीके सौजन्यसे उपलब्ध हुई है, और संपादन कार्यका आरंभ उसी प्रतिके पाठोके मिलानसे किया गया था। पीछे जयपुर जानेपर उपर्युक्त मूल रख प्रति उपलब्ध हो सकी। फोटो, कॉपीका आकार है ६ $\frac{३}{४}$ " × ३"; हाशिया पाठवर्गे ६" व ६" तथा ऊपर नीचे ३", ३"।

इस प्रतिका आरंभ 'श्री नम सिद्धेभ्यः' से होता है। अतमे वीर कविकी स्वकृत प्रशस्तिके उपरान्त 'इति जंबूसामिचरितं समाप्तं' लिखा गया है, और इसके पश्चात् निम्नलिखित प्रति प्रशस्ति उपलब्ध होती है—

मन्ये वयं पुण्यपुरीव भाति सा भूर्भुवोति प्रकटीवभूव।

प्रोत्तुगतन्मडनचैत्यगेहाः सोपानवद्दृश्यति नाकलोकै ॥१॥

पुरस्सराराम-जलत्रकृपा-हर्म्याणि तत्रास्ति रतीव रम्या।

दूर्यति लोकार्चनपुण्यमाजा ददाति दानस्य विशालशाला ॥२॥

श्री विक्रमावर्कनं गते शताब्दे षडैक-पंचैक (१५१६) सुमार्गशीर्षे।

त्रयोदशीयातिथिसंबंधुद्धा श्री जंबूस्वामीति च पुस्तकोज्य ॥

इससे ज्ञात होता है कि यह प्रति संवत् १५१६ मे मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशीके दिन भूर्भुवूपुर (राजस्थान) नामक अति समृद्ध नगरीमे लिखी गयी, जो अपनी थोभामें स्वर्गलोकके समान थी। प्रति लेखक अथवा लिखानेवालेके संबन्धमें इससे कोई ज्ञान नहीं होता।

उपलब्ध पाँचों प्रतियोमे यह प्रति सबसे अधिक प्राचीन है। पाठोकी दृष्टिसे भी यह प्रति सबसे शुद्ध है। अतः मुख्य रूपसे इस प्रतिके पाठोको ही मूल ग्रन्थका आधार माना गया है। इस प्रतिकी विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं :—

(१) आदि 'न' का नियमित रूपसे सुरक्षित रहना।

(२) मध्यवर्ती असंयुक्त 'न' के स्थानपर 'ण' का सर्वत्र प्रयोग, कुछ अपवादो, जैसे भाणानल, निनह, दावानल, मुहियएन आदिको छोडकर।

(३) मध्यवर्ती संयुक्त 'ल' का सुरक्षित रहना, जैसे आसल, उप्पल, सल्ल, सल्लद आदि।

(४) मध्यवर्ती संयुक्त 'न्य' तथा 'नं' के स्थान-पर अनियमित रूपसे 'न्न' अथवा 'ण्ण' का प्रयोग, जैसे मन्नड-मण्णह, सेन्न-सेण्ण, निन्नासिय आदि।

(५) अनेक स्थलो-पर 'इ' के स्थानमें 'य' श्रुतिक्रा तथा कहीं कहीं 'य' श्रुति के स्थानमे 'ड' का प्रयोग इ>य जैसे जइवि>जयवि, वइसवण>वयसवण, अवइण्ण>अवयण्ण, पइसइ>पयसइ, सेणावइ>सेणावय आदि, य>इ वयल्ल>वेडल्ल (वेगवान)।

(६) वचिवत् 'व' के स्थानपर 'म' का प्रयोग, जैसे सकिवाएण>सकिमाण, और कहीं 'म' के स्थानपर 'व' का, जैसे मामिणी>माविणि।

(७) तृतीया एव सप्तमीके प्रत्ययो, कर्दतके पूर्वकालिक क्रिया रूपो तथा अन्यत्र भी 'ए' व 'े' मात्राका बाहुल्य जैसे (तु०) अव्भासँ, पियरँ, करणे [न], मुरोदँ, (सप्तमी) रयणे, घरे घरे, आउसे; (क० पूर्व० क्रिया) परिहरेदि, करेवि, मुखेवि आदि, अन्यत्र तत्त्वं, जेत्य, जे, एत्तहे, तेत्तहे, सेट्ठ (विट्ठम्), रोट्ट-अनिट्ट (आत्तु) आदि, और कहीं कहीं 'इ' मात्रा भी जैसे घरि घरि, आयाणिवि आदि,

तथा कृ० पूर्व० क्रिया प्रत्ययोमे जायवि, पढवि, करवि, परिहरवि ऐसे रूप भी बहुधा उपलब्ध होते हैं।

(८) यह प्रति सटिप्पण है, जिसके चारो हाशियो-पर छोटे-छोटे अक्षरोमे आद्योपात टिप्पण लिखे गये हैं। टिप्पणोंके संबंधमे विशेष जानकारी मूल ग्रन्थके अंतमे संस्कृत टिप्पणोंकी भूमिकामे दी गयी है।

ग प्रति—यह भी जयपुरके वास् भडारमे सुरक्षित है। इसमे कुल ११४ पत्र हैं। आकार १२" × ४ ३/४"; हाशिया दोनो पाद्योंमें १ ३/४"; १ ३/४"; ऊपर-नीचे १", १"; पक्तिसंख्या पत्र २ से ३१ तक प्रति पृष्ठ ८, ८, बीचमे पत्र २६ में ९, ९। पत्र ३२ से पत्र ११४ तक पंक्ति संख्या कही ८, कही ९। इस प्रकार कुल ६३ पत्रोमे ८, ८ पंक्तियाँ हैं, पत्र १०६ तथा ११० पर १०, १०; तथा प्रथम-पत्रपर एक ओर कुल ८, अक्षर प्रतिपक्ति ८, ८ पंक्तियोवाले पत्रोमे लगभग ३२, व ९, ९ पंक्तियोवाले पत्रोमे लगभग ४०; लिखावट असमान, अक्षर कहीं छोटे, कहीं बड़े, परंतु हस्त-लेख आद्योपात सुंदर, स्पष्ट व शुद्ध। स्थान-स्थानपर बीच-बीचमे अक्षरोंकी स्याही समयके प्रभावसे उड़ गयी है।

यह प्रति भी सटिप्पण है। चारो हाशियोपर स्पष्ट अक्षरोमे सुंदरतासे टिप्पण लिखे गये हैं; जो अधिकांशतया ख प्रतिके टिप्पणोंके समान हैं, परन्तु अनेक स्थानो पर उनसे भिन्न और विशद हैं।

पाठकी दृष्टिसे यह प्रति पूर्णतया ख प्रतिसे मेल खाती है, और इसीको आदर्श मानकर लिखायी गयी प्रतीत होती है। अतः इस प्रतिकी समस्त पाठगत विशेषताएँ वे ही हैं, जो उपर्युक्त ख प्रतिकी। इन दोनों प्रतियोमे यदा-कदा विरले ही परस्पर कोई पाठ-भेद उपलब्ध होता है, और अधिक करके वह पाठ ख की अपेक्षा शुद्ध सिद्ध हुआ है। परन्तु ये दोनो प्रतियाँ निश्चयतः एक ही परंपराकी हैं।

ग प्रतिका आरंभ ख प्रतिके समान ही 'ओं नमः सिद्धेभ्य' से होता है, और अंत कवि प्रशस्तिके उपरांत 'इयं जंबूसामिचरितं समाप्तं' से। इसके उपरांत निम्नलिखित प्रति प्रशस्ति उपलब्ध होती है :—

संवत् १६०१ वर्षे आपाढ़ सुदि १३ भीमवासरे तोडागढवास्तव्ये राजाधिराज्य-राव श्री राम-चंद्र-विजयराज्ये श्री आदिनाथचैत्यालये श्री मूलसंघे नद्याम्नाये वलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्री कुंडकुंदा-चार्याव्ये भ० श्री पद्मनंदिदेवास्तत्पट्टे भ० श्री शुभचंद्रदेवास्तत्पट्टे भ० श्री जिनचंद्रदेवास्तत्पट्टे भ० श्री प्रभाचंद्रदेवास्तत्पट्टे भ० श्री धर्मचंद्रदेवास्तत्पट्टे भ० श्री खंडेलवालान्वये साहगोत्रे जिनपूजापुरंदरदानगुण-श्रेयो नृपति ॥ सा० महासा तज्जार्या सुहागदे तत्पुत्र सा० मेघचंद द्वितीय कौश्ल ॥ सा० मेघचंद भार्या माणिकदे द्वितीय नीलादे तत्पुत्र सा० हेमा द्वितीय सा० हीरा तृतीय सा० छाजू ॥ सा० हेमाभार्या हमीरदे तत्पुत्र चिरजी भीषा ॥ सा० हीराभार्या हीरादे ॥ सा० कौश्लभार्या कौतिगदे तत्पुत्र सा० पदारथ द्वितीय पीषा ॥ सा० पदारथभार्या पाटमदे तत्पुत्र सा० घनपाल ॥ सा० पीषाभार्या पिषविरि तत्पुत्र डूगरसी ॥ एतेषां मध्ये सा० हेमाभार्या हमीरदे एतत् जंबूस्वामिचरितं लिपाप्य रोहिणीव्रत-उद्यापनाथं ज्ञानपात्राय मंडलाचार्य श्री धर्मचंद्राय दत्तं ॥

ज्ञानवा ज्ञानदानेन निर्भयोऽभयदानतः । अन्नदानात् सुपी नित्यं निर्वाधिर्भेवजा भवेत् ॥

॥ श्रीरस्तु ॥ जैनधर्मं चिरं जीयात् ॥ कल्याण जयतु ॥

इस वृहत् प्रशस्तिसे निम्न बातोंकी जानकारी होती है :—

(१) यह प्रति संवत् १६०१ मे आपाढ़ शुक्ल त्रयोदशी मंगलवारके दिन महाराज श्री रामचंद्र-विजयके राज्यमे तोडागढनगरमे श्री आदिनाथ चैत्यालयमें मंडलाचार्य श्री धर्मचंद्रको प्रदान

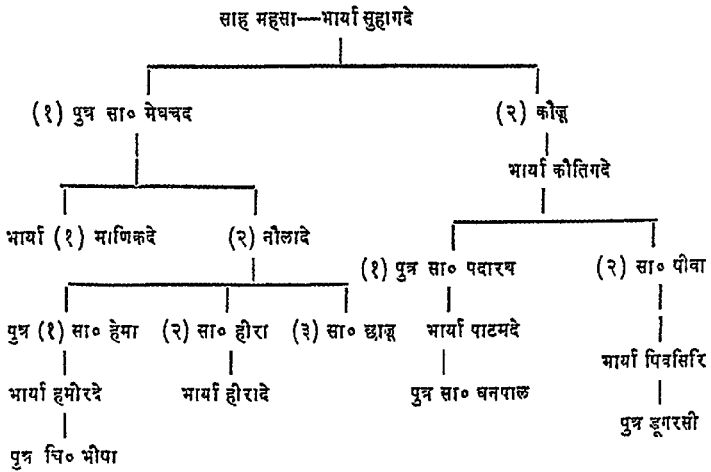
१. टिप्पणोंके विस्तृत परिचयके लिए देखें : ज० सा० च० 'संस्कृत टिप्पण' ।

करने हेतु लिखवायी गयी, जिनकी गुरु-परंपरा निम्न प्रकार थी :—

मूलसद्य, नंदाभ्याय, वलात्कारगण, सरस्वतीगच्छ श्री कुन्दकुदाचार्यान्वयमे —

म० पद्मनदि
|
म० शुभचन्द्र
|
,, जिनचन्द्र
|
,, प्रभाचन्द्र
|
मडलाचार्य मुनि श्री धर्मचन्द्र

इन म० धर्मचन्द्रके आभ्यायमे खडेलवाकान्वयमे इनके श्रावक शिष्योंकी परम्परा चली, जिनमे साह हेमाकी भार्या हमीरदेने रोहिणीव्रतके उद्यापनार्थ इस जम्बूस्वामिचरित्रको लिखवाकर आचार्य धर्मचन्द्रको प्रदान किया। इस श्राविकाका वशवृक्ष निम्नप्रकार है :—



ग प्रतिसे उपलभ्य उपयुक्त समस्त तथ्योंको ध्यानमे लेनेसे स्पष्ट है कि कुछ बातोंमे यह ख प्रतिसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण प्रति है।

घ प्रति—यह भी जयपुरके पाम्ब भडारमे उपलब्ध है। पत्र सख्या दो भागोंमे दी गयी है। पहले पत्र मख्या १ मे ५१ तक है, और पुन १ से ४७ तक, इस प्रकार कुल पत्र सख्या ९८ हीनी है। एते दोबने पत्र ५१ तक लाकर नये मिरमे १ से प्रारम्भ करनेका कोई कारण प्रतीत नहीं होता। आगर ११" × ५३", पत्तियां प्रति पृष्ठ ११; अक्षर प्रति पक्ति लगभग ३४, प्रथम व अंतिम पत्र दोनोपर केवल एक ओर गू १०, १० पत्तियां लिखी गयी है। श्रानिया दोनो पाश्र्वोंमे १३", १३", ऊपर-नीचे १", १"। मिर मुन्दर स्पष्ट व शुद्ध है।

प्रतिका प्रारंभ "स्वस्ति श्री गणेशाय-नमः ॥ ओं नमो वीतरागाय ॥" इन दो मंगल नमस्कारोंसे होता है। इससे प्रतीत होता है कि प्रति-लेखक कोई गणेश भक्त अर्थात् पंडित था। अंतमें प्रति अपूर्ण है। ११वीं सधिमै १५वें कडवकके घटाकी दूसरी पवितिका 'सोमेश्वरंपर' घस इतने प्रारंभिक अंशके उपरांत ही प्रति समाप्त हो जाती है। इसके आगे किसी प्रकारकी कोई प्रशस्ति नहीं है। अतः प्रतिके लेखनकाल आदिका अनुमान लगाना कठिन है।

प्रतिगत विशेषताएँ :—

(६) इस प्रतिकी ध्वन्यात्मक विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं :—

(१) आदिमें सर्वत्र तथा मध्यमें 'न' न्य, एव 'नं' इन संयुक्त रूपोंमें विद्यमान 'न' ध्वनिकी पूर्ण सुरक्षा; कहीं-कहीं मध्यमें भी असंयुक्त 'न' का सुरक्षित रहना; अन्यत्र जैसे 'ज' और 'खं' के स्थान पर प्रचुरतासे तथा कहीं-कहीं ण, स्न, ल्ल, एवं थ्य के स्थान-पर भी घ, न, न् के प्रयोगका बाहुल्य। आदि 'न' सुरक्षित रहनेके संबंधमें यह ख एव ग प्रतियोंसे पूर्णतः मेल रखती है। अन्य स्थितियोंमें न् के प्रयोगमें-से कुछ उदाहरण निम्नप्रकार हैं :—

मध्य असंयुक्त न > न नमिनिमि, भाषानल आदि, न > न जीवासाछिन्नु, आसन्नभ्रव, भिन्न, पन्नय, संछिन्न, सन्धि आदि, न्य > न्य अन्न, अन्नुन्न, घन्न रायकक्षा, सिन्न आदि; नं > न पुणु-स्रत (पुननंबः), निन्नासिय, दुन्निरिवल आदि; ण्य > ल्ल तुम्हिको; स्न > न नेह; स्न > न्द न्हाण; ल्ल > ल मन्मन्न, थ्य > ल लावन्नवन्न, तारन्न, महापुन्न, मन्नड, आदि, न > न संपन्ननाण, न > न सच्चालुय, विन्नत, विन्नाण आदि, खं > न अवइन्न, फल्लहवध, वधिरुण, उन्नामय, संपुन्न, कन्नुपुड, निव्वन्मि, महन्वव आदि आदि।

(२) तृतीया एव सप्तमी विभक्तियोंमें, एवं अन्य शब्द रूपोंमें 'इ' एव 'ि' मात्राके प्रयोगमें यह क प्रतिसे मेल रखती है।

(३) अन्य पाठोंमें इस प्रतिका मेल अधिकांशमें क एवं ङ प्रतियोंसे तथा अल्पांशमें ख एव ग प्रतियोंसे है, और अनेक पाठ चारों प्रतियोंसे भिन्न तथा अधिक शुद्ध है। अतः यह प्रति क ङ और ख ग इन प्रति परंपराओंकी अपेक्षा किसी अन्य स्वतंत्र प्रतिसे संबध रखती है। संभव है इस परम्पराकी कोई अन्य प्रति किसी शास्त्र-भंडारमें कभी अधिक शोध-खोज होनेपर उपलब्ध हो सके। 'जंबूसामि-चरित पंजिका'से भी उपर्युक्त दोनों प्रति-परम्पराओं (क ङ, ख ग) से भिन्न प्रति होनेके संकेत मिलते हैं।

'ङ' प्रति भी जयपुर शास्त्र-भंडारमें उपलब्ध है। कुल पत्र मख्या १०६; आकार १०" × ४ ३/४", पक्तियाँ प्रति पृष्ठ १०; अक्षर प्रति पक्ति लगभग ३४; अंतिम पृष्ठपर कुल आठ पंक्तियाँ हैं, और अन्य प्रतियोंके समान इसमें भी प्रथम पत्रपर केवल एक ही ओर कुल १० पक्तियाँ हैं। हाशिया दोनों पास्वोंमें लगभग ३/४", ३/४", तथा ऊपर नीचे ३/४", ३/४"। लिखावट बहुत सुन्दर और चमकीली है, पाठ भी अनेक स्थलों-पर क प्रतिकी अपेक्षा शुद्ध है। इसके लेखनकी दीर्घ कालावधिके प्रभावसे प्रतिके पत्र बहुत जीर्ण और टूटनेवाले हो गये हैं।

प्रतिका आरंभ '॥ स्वस्ति ॥ ओ नमो वीतरागाय ॥' इस प्रकार होता है। प्रति पूर्ण है। कवि प्रशस्ति इसमें नहीं है, परन्तु निम्न प्रति प्रशस्ति उपलब्ध है :—

संबद् १५४१ वर्ष आसोजवदि ७ सप्तमै शनिवारे श्री मूलसधे वलास्कारगाणे सरस्वतीगच्छे कुंद-कुंदाचार्याण ['यान्वये] भट्टारक श्री पद्मनदिदेवा तस्पृष्टे भट्टारक श्रीशुभचंद्रदेवा तस्पृष्टे भट्टारक श्री जिनचंद्र देवा तदिशण्य श्री रत्नकीर्ति देवा पंडेलवालानवे ['न्वये] पाटणीगोत्रे संघही घनराज सर्गस्ति [स्वर्गस्थ.] तस्य भार्या कोडी। तयो पुत्रा संघही देवराज। मूलराज। तस्य पुत्र [पुत्राः] सोनपाल। रणमल। महिपाल। मल्ल। ज्ञानावरणीकर्मक्षयनिमित्तं मु० [मुनि] श्री विशालकीर्ति ओगु सक्तो [?] पाटणी पुस्तक घटापितं ॥ शुभ भवतु ॥

इस प्रगस्ति-पर-से इतनी बातें जानी जा सकती हैं :—

- (१) प्रतिका लेखन संवत् १५४१ मे वाग्भिन कृष्ण सप्तमी शनिवारके दिन पूर्ण हुआ ।
 (२) यह प्रति मुनि श्री विशालकीर्तिके प्रदान करनेके निमित्तसे लिखायी गयी, जिनकी गुरु-परंपरा निम्नप्रकार थी .—

मूळसंघ-ब्रह्माकारगण-सरस्वतीगच्छ-कुदकुंदाचार्यान्वयमे भ० श्री पद्मनदी (सं० १३८५-१४५०)
 |
 भ० श्री शुभचंद्र (सं० १४१०-१५०७)
 |
 ,, ,, जिनचंद्र (सं० १५०७-१५७१)
 |
 श्री रत्नकीर्ति
 | (?)
 मुनि श्री विशालकीर्ति

खंडेलवालान्द्वयमे, पाटनी गोत्रमे श्री रत्नकीर्तिके एक (श्रावक) शिष्य संघही (संघाधिप-सध-पति) घनराज थे, वे स्वर्गस्य हो गये । उनकी कोडी नामकी भार्या थी । उसके दो पुत्र थे, सघही देवराज और मूलराज । संभवतः मूलराजके चार पुत्र हुए सोनपाल, रणमल, महिपाल और मलू । इसके बादका अंग स्पष्ट नहीं है । इसी पाटनी परिवारके किसी व्यक्तिने जो मुनि श्री विशालकीर्तिका भक्त था, उनके लिए यह पुस्तक लिखवायी ।

प्रतिगत विशेषज्ञोंकी दृष्टिसे यह प्रति पूर्ण रूपसे क प्रतिसे समानता रखती है तथा निश्चित रूपसे ये दोनों प्रतियाँ एक ही प्रति-परंपराकी हैं । ऊ प्रतििका लेखनकाल उपर्युक्त प्रगस्तिके अनुसार बिलकुल निश्चित है, परंतु क प्रतिमे कोई प्रगस्ति न होनेसे उसके लेखनकालका अनुमान लगाना कठिन है, यह पहले ही कहा जा चुका है । तथापि प्रतियोंके पत्रोंकी अपेक्षाकृत जीर्णता तथा ऊ प्रतिमे क प्रतिकी अपेक्षा अनेक पाठ शुद्ध होने एव क प्रतिके अश्रूरेपन आदि तथ्योपर विचार करनेसे ऐसी दृढ प्रतीति होती है कि ऊ प्रति क प्रतिसे बहुत अधिक प्राचीन है । और इम दृष्टिसे देखनेपर वास्तवमे इन प्रतियोंके संकेत बिलकुल विपरीत अर्थात् ऊ के स्थानपर क, और क के स्थानपर ऊ ऐसा होना चाहिए था । परन्तु क्योंकि संपादकको क प्रति सर्वप्रथम उपलब्ध हुई और ऊ प्रति सबसे पीछे । अतः इनकी उपलभ्यता^१ की दृष्टिसे ही इनके ये संकेत मान लिये गये हैं ।

उपर्युक्त पाँचों प्रतियोंमे ख प्रति सबसे प्राचीन है, संवत् १५१६ की । इसके बाद कालक्रममे ऊ प्रतिका नाम आता है जो ख के ठीक २५ वर्षोंपरात संवत् १५४१ मे लिखी गयी थी । इसके उपरात ग प्रतिका समय आता है, जो ऊ प्रतिसे ६० वर्षोंपरात संवत् १६०१ मे लिखकर पूर्ण हुई । क एव घ प्रतियाँ अंतिम अपूर्ण हैं, जेप इनके संबंधमे ऊपर लिखा गया है ।

यहाँ संपादन-सामग्रीके परिचयमे 'जंबूस्वामीचरित्रपत्रिका' (घं) का परिचय देना इस दृष्टिसे आवश्यक है कि संस्कृत टिप्पणोंके साथ मूल पाठके जो उद्धरण इसमे दिये गये हैं, वे पाठ-संगोचनमे बहुत महत्वक मिद्ध हुए हैं, और कहीं-कहीं तो केवल पत्रिकाका पाठ ही शुद्ध रहनेसे उसे मूलमे स्वीकार कर अन्य सब प्रतियोंके पाठोंको पाठभेदोमे दे दिया गया है ।

१. मूलसंघ ब्रह्माकारगण उत्तरशारदाके विस्तृत इतिहासके लिए देखें : डॉ० जोहरापुरकर कृत 'अष्टादश-संप्रदाय' पृ० २९ से पृ० २१० ।

पं की प्रतिमें कुल पत्र संख्या ३१ है; आकार १०^३/_४" × ४^३/_४"; पंक्तियां प्रतिपृष्ठ १२; अक्षर प्रति-पंक्ति लगभग ४०; हाथिया दोनो पाक्षोंमें १", १" से कम, ऊपर-नीचे ३", ३" । पत्र २३ अ, (पृ० ४५) पर कुल ९^३/_४ पंक्तियां हैं। प्रथम पत्रपर दाहिनी ओरके हाथियेपर 'जंबूस्वामीचरित्रस्य पंजिका' लिखा हुआ है। यह प्रति जयपुरके छोटे तेरापंथी मंदिरके आसन-भंडारमें उपलब्ध है।

पंजिका (पं) का प्रारंभ "ओ नमो श्री वीतरागाय । मन्मतीनां सुखावबोवाथं जंबूस्वामी-चरित्रे करोमि टिप्पणक" इस प्रकार होता है और अंतमें निम्न अपूर्ण प्रति प्रगति भी उपलब्ध होती है :-

श्री शुभं भवतु । संवत् १५६५ वर्षे फाल्गुण सुदि १० गुरुवासरे पुष्यनक्षत्रे श्रीमूलसंवे नंचाम्नाए सरस्वतीगच्छे श्री कुंदकुंदाचार्यान्वये भट्टारक श्री पद्मनिदेवा तत्पट्टे भ० श्री० शुभचंद्रदेवा तत्पट्टे भ० श्री जिनचंद्रदेवा तत्शिष्य मडलाचार्य मुनि श्री रत्नकीर्तिदेवा तत्शिष्य मडला० मुनि श्री हेमचंद्र तवा-म्नाए पडेलवालामुप [न्वये] टोग्या गोत्र संघभारपुरंघरं सं० ।

इस अपूर्ण प्रशस्तिसे यह जानकारी होती है कि यह पंजिका (पं) संवत् १५६५ में फाल्गुण शुक्ल दशमी गुरुवारके दिन लिखी गयी, और जिन्होंने (?) इस पंजिकाकी रचना की; अथवा अपने गुरुसे बंधोंको सुनकर लिखा, या स्वयं लिखवाया, उनकी गुरुपरम्परा निम्नप्रकार थी :-

श्रीमूलसंघ-नंचाम्नाय-सरस्वतीगच्छ-कुंदकुंदाचार्यान्वयमें —

भ० श्री पद्मनदी [सं० १३८५—१४५०]

,, ,, शुभचंद्र [सं० १४५०—१५०७]

,, ,, जिनचंद्र [सं० १५०७—१५७१]

मडला० मुनि श्री रत्नकीर्ति [इन्होंने सं १५७२ में दिल्ली जयपुर शाखासे अलग नागौर शाखा स्थापित की ।]

मडला० मुनि श्री हेमचंद्र

इनके आम्नायमें खंडेलवालान्वयमें टोग्या गोत्रके संघपति*** (अपूर्ण) [ने इस प्रतिको मुनि हेमचन्द्रजीके निमित्त लिखवाया] ।

सम्पादनमें सहायक सामग्रीके रूपमें दो और रचनाओंका उल्लेख करना यहाँ आवश्यक है ।

(१) ब्रह्म-जिनवामकृत 'जंबूस्वामीचरित' और (२) पं० राजमल्लकृत 'जंबूस्वामीचरित' । ब्रह्म जिनदास भ० सकलकीर्तिके शिष्य थे और इन्होंने संवत् १५२० में जंबूस्वामिचरित्रकी रचना पूर्ण की थी। यह चरित प्रस्तुत अपभ्रंश काव्यके समान ११ परिच्छेदोंमें पूर्ण हुआ है, और अधिकांशतया सभी बातोंमें न केवल भावार्थके रूपसे बल्कि शब्दात्मक रूपसे भी इससे इतनी अधिक समानता रखता है कि इसे यथार्थमें प्रस्तुत अपभ्रंश-काव्यका संस्कृत रूपांतर कहना अनुचित न होगा। अतः स्वाभाविक रूपसे इन संस्कृत रूपांतरसे मूल अपभ्रंशके पाठ संशोधन और हिंदी अनुवादमें बहुत अधिक सहायता मिली है।

पं० राजमल्लकी रचना सं० १६३२ में आगरेमें पूर्ण हुई। इसमें ३३ पर्व हैं, और इसका भी विषयानुसार पर्व-विभाजन प्रस्तुत अपभ्रंश काव्यसे अत्यधिक मिलता-जुलता है। प्रारंभमें कुछ पर्व केवल आगरे आदिका वर्णन होनेसे वास्तवमें मूल रचनासे विशेष संबंध नहीं रखते। इसका अध्ययन करनेसे स्पष्ट होता है कि यह भी अपभ्रंश जंबूस्वामिचरित्रका अधिकांशमें संस्कृत रूपांतर ही है। अतः इससे भी पाठसंशोधन व अनुवाद कार्यमें पर्याप्त सहायता उपलब्ध हुई है। -

प्रति प्रशस्तियोंकी प्रामाणिकता

ख ग ङ प्रतियों तथा पं की प्रशस्तियोंमें मूलसंघ, बलात्कारणके जिन भट्टारको एवं मुनियो, तथा खंडेलवालान्वयमे पाटनी, टोम्या (या टोल्या ?) और साहू गोत्रोमे उनके श्रद्धालु श्रावको तथा प्रतिलेखन स्थानोके नाम आये हैं, उनकी ऐतिहासिक सचाईकी परीक्षाके लिए यहाँ कुछ चर्चा कर लेना उचित होगा ।

दिगंबर जैन-संघके इतिहासमे बलात्कारगणका अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है, और जैन साहित्यकी सुरक्षा एवं संवर्द्धनमे इस गणके भट्टारको, आचार्यों, मुनियो तथा श्रद्धालु श्रावकोका अभूतपूर्व एव अनुपम योगदान रहा है । केवल साहित्य ही नहीं, जैनधर्म, संप्रदाय और जैनतीर्थों व मंदिरोंकी सुरक्षा, प्रचार-प्रसार और निर्माणमे सदैव ही इस संघका बहुत बड़ा हाथ रहा है ।

यूँ तो इस गणका उद्भव आचार्य कुंदकुंदसे ही माना जाता है, और तदनुसार इसके साथ कुंदकुंदाचार्यन्वय, नद्याम्नाय, सरस्वतीगच्छ आदि पद भी जुड़े रहते हैं, परन्तु इस गणका प्रथम उल्लेख आचार्य श्रीचन्द्रने किया है, जो धारा नगरीके निवासी थे, और जिन्होंने सं० १०७०, १०८०, एवं १०८७ मे क्रमशः पुराणसार, उत्तरपुराण वे पद्मचरितकी रचना की थी । यहीसे इस गणकी ऐतिहासिक परंपरा चालू होती है, और विक्रम की १५वीं शती तक जाती है । दक्षिणमे इस गणकी कारजा एवं लातूर शाखाएँ वि० की १६वीं शतीसे प्रारम्भ होकर वर्तमान तक चल रही हैं ।

बलात्कारगणकी उत्तर-शाखा मंडपदुर्ग (माडलगढ-राजस्थान) मे भट्टारक वसंतकीर्तिके द्वारा सं० १२६४ मे प्रारंभ हुई, तथा विशालकीर्ति शुभकीर्ति-चर्मचन्द्र-रत्नकीर्ति एवं प्रभाचन्द्र भट्टारकोसे होती हुई म० पद्मनंदो (सं० १३८५-१४५०) तक आकर उनके बाद दिल्ली-जयपुर; ईडर एव सूरत इन तीन प्रमुख शाखाओंमे विभक्त हो गयी । दिल्ली-जयपुर शाखामे-से दो और उपशाखाएँ निकली, नागौर शाखा एवं अटेर शाखा । अटेरशाखामे से सोनागिर प्रशाखा; ईडरशाखामे-से भानपुर उपशाखा; और सूरत शाखामे-से जेरहट उपशाखा । इन सबका दीर्घकालीन इतिहास है, और इनमें-से बहुत-से भट्टारकपीठ आज भी विद्यमान हैं । इस प्रकार हम देखते हैं कि बलात्कारगणकी शाखा, उप-शाखा और प्र-शाखाएँ संपूर्ण उत्तरभारतमे व्याप्त थीं । दिल्ली-जयपुरके निकटवर्ती उत्तरप्रदेश एव पंजाबमे हियाँ तत्काल सारा प्रदेश इसी शाखाके प्रभावमे था । गुजरात, राजस्थान एव मालवामे भट्टारक-नप्रदायका अत्यधिक प्रभाव था; और दिल्ली जयपुर, पंजाबमे आजका कुश्नेत्र तथा उत्तरप्रदेशमे मेरठ व आगराके सभाग, इन समस्त प्रदेशोंमे बलात्कारगणके भट्टारको, मुनियो तथा भक्तश्रावकों-द्वारा निरंतर धर्म व नाहित्यकी सुरक्षा और संवर्द्धनका कार्य संपन्न किया जाता रहा ।

यहाँ उपर्युक्त विवृत टिप्पणी देनेका तात्पर्य यह है कि जम्बूसामिचरिउकी ख ग एव ङ प्रतियों तथा पं की प्रशस्तियोंमे बलात्कारगणसे संबद्ध जिन-जिन आचार्यों, खंडेलवालान्वय, पाटणी, साहू तथा टोम्या [टोल्या ?] गोत्रो एव भूमण्डलपुर और तोडागढ नगरो तथा रावराजा रामचन्द्र (बोलकी) के नामोल्लेख हुए हैं, वे सभी पूर्णतः ऐतिहासिक हैं, तथा भट्टारक संप्रदायसे संबद्ध लेखों, प्रशस्तियों व पट्टावलिओंमे इन सबके नाम उपलब्ध होते हैं । अतः प्रतियोंकी प्रशस्तियोंमे दी गयी सूचनाएँ ऐतिहासिक नस्य हैं ।

पाठ-सम्पादनकी पद्धति

§ १ सामान्य विद्वानके रूपमे ख एव ग प्रतियोंकी परंपरागत सर्वप्राचीनता, तथा पाठोंकी प्रामाणिकताका ध्यानमे रखकर इन प्रतियोंके पाठोंको ही मूलमे स्वीकार किया गया है । परन्तु अर्थ औचित्य तथा धारागत एव दृष्टान्तिकी दृष्टिमे जहाँ कहीं भी आवश्यक प्रतीत हुआ है वहाँ क घ एव ङ प्रतियों-

के, या केवल क ङ प्रतियोगे, तथा बहुत धार केवल किसी एक ही प्रति, विशेष रूपसे घ मे उपलब्ध पाठको ही ले लिया गया है। वचवित् केवल पं मे उपलब्ध पाठको भी इसी आधारपर स्वीकार किया गया है, और इसी प्रकार कुछ ऐसे भी स्थल हैं, जहाँ मत्र प्रतियोगे पाठको आधारपर उनसे भिन्न शुद्ध पाठ बनाया गया है। ऐसे समस्त स्थानोंमे यह पाठ परिवर्तन कही भी एक अक्षर, एक मात्रा अथवा एक अनुस्वारसे अधिक नहीं किया गया।

§ २ 'न' और 'ण' के प्रयोगके सम्बन्धमे निम्न प्रणाली अपनायी गयी है :—

(1) आदि 'न' की सर्वत्र सुरक्षा।

(ii) मध्यवर्ती संयुक्त 'न' की सुरक्षा; जैसे सन्नद्ध, भिन्न, आसन्न आदि।

(iii) आदिमे 'न' के पश्चात् 'नं' आनेपर 'न' का प्रयोग, जैसे निन्तासिय।

(iv) भ्रूणानल, अनल तथा नेह (नेह) शब्दोमे 'न' की सुरक्षा।

(v) अन्य सब स्थितियोंमे मध्यवर्ती असंयुक्त तथा संयुक्त न् के स्थानपर सर्वत्र ण् का प्रयोग किया गया है। इस सर्वधमे घ प्रतिका साक्ष्य भिन्न है, और जैसा कि घ प्रतिके परिचयमे प्रतिगत विशेषताओंके अन्तर्गत § १ मे कहा गया है कि यह प्रति 'न'कार बहुला है और इसमे नं, न्य, ज्ञ, ञ, ण्य, र्यो, ण्य, स्न और ह्ल के स्थानपर प्रचुरतामे न, न्न, न् का प्रयोग हुआ है, इन प्रयोगोको स्वीकार नहीं किया गया। इसके दो कारण हैं—एक तो यह कि स्वयं इस प्रतिमे भी ये प्रयोग सर्वत्र नियमित रूपमे नहीं किये गये हैं, कही हैं, कही नहीं, और दूसरा यह कि जो एक परपराकी प्राचीनतम व प्रामाणिकतम उपलब्ध प्रतियाँ ह्य और ग हैं, उनमे ये प्रयोग नहीं पाये जाते। अब यह साक्ष्य इस अकेली घ प्रतिका रह जाता है, जिसकी प्राचीनताका कोई निश्चय नहीं है।

'न' के इन प्रयोगोके सम्बन्धमे यहाँ दो साक्ष्य प्रस्तुत हैं। प्रथम साक्ष्य श्रीचंद्र कृत अपभ्रंश 'कहकोमु' (कथाकोप, वि० सं० ११२२) का है, जिसमे उपयुक्त घ प्रतिके ठीक समान, परंतु अधिक नियमित रूपसे शब्दोंके आदि एवं मध्यमे असंयुक्त तथा संयुक्त सभी स्थितियोंसे न एव न्न का प्रयोग अत्यंत प्रचुरतासे किया गया है। दूसरा साक्ष्य जिनदत्तसूरि (वि० सं० ११३२-१२११) विरचित अपभ्रंश काव्यत्रयी^२ (चर्चरी, उपदेशरसायनरास, कालस्वरूपकुलक) का है, जो गुर्जरदेशीय थे और जिन्होंने वीर कविके प्रस्तुत अपभ्रंश चरितकाव्यकी रचनाके अधिकसे अधिक एक सौ वर्षोंके अंदर ही अपनी काव्यत्रयीकी रचना की थी। इस अप० काव्यत्रयीमे उपर्युक्त पाँचो स्थितियोंमें न, न्न एव न् का प्रयोग किया गया है, जिनके कुछ उदाहरण ये हैं :—नमिवि (च० १) गुणवन्नण (च० २) पुत्रिहि (पुत्रै च० ७), मनिउ (मानिउ च० १४), न्हवण (उप० ४८), निविन्नी (उप० ६७), सुन्द (काल० १२) तथा नेह (काल० १३)। परंतु प्रस्तुत रचनामे इस सपादकने कुछ विशिष्ट स्थितियोंमे ही न, न्न का प्रयोग स्वीकार किया है, इनका कारण ऊपर ही लिखा जा चुका है।

§ ३ सभी प्रतियोंमे लगभग सर्वत्र 'व' के स्थानपर 'व' का प्रयोग मिलता है, इस संबंधमे मैंने मूल संस्कृत शब्दके अनुवार यथास्थान व् व् दोनोंका प्रयोग किया है।

§ ४, दो स्वरोंके बीचमे 'य' श्रुति एवं 'व' श्रुतिके प्रयोगमे प्रतियोंमे एकरूपता नहीं है, कही इनका प्रयोग हुआ है, और कही केवल उद्धृत स्वर ही शेष रहा है। इस संबंधमे जहाँ दो या अधिक प्रतियोंमे श्रुतिका प्रयोग हुआ है, उसे स्वीकार किया गया है। 'व' श्रुतिका प्रयोग उन दो स्वरोंके

१. संपादक : डॉ० हीरालाल जैन; प्रका० प्राकृत टैक्स्ट सोसायटी अहमदाबाद - ग्रन्थ शीघ्र प्रकाश्यमान है।

२. संपादक : डालचंद मगवानदास गांधी, प्रका०-गायक० औरि० सिरीज़ ग्रन्थ क्र० XXXVII बम्बै १९२७ ई०

बीच किया गया है, जिनमें पूर्व स्वर 'उ' हो, अन्यत्र साधारणतः प्रतियोंके अनुसार 'थ' श्रुति ही रखी गयी है। जहाँ प्रतियोंमें किसी श्रुतिका प्रयोग नहीं मिलता, वहाँ नियमतः उद्बुत्त स्वर ही रखा गया है।

§ ५. तृतीया एवं सप्तमीके कारक प्रत्ययो तथा कृदन्तके पूर्वकालिक क्रियाके क्त्वा तथा ल्यप् प्रत्ययोके स्थानपर और अन्यत्र भी ख ग प्रतियोंके साक्ष्यके अनुसार छन्दकी आवश्यकताको ध्यानमें रखते हुए सबसे अधिक 'ए' व 'प्र' तथा इनकी मात्राएँ (२, ३) और जहाँ ये नहीं हैं वहाँ 'इ' अथवा 'इ' की मात्रा (f); -अथवा इन दोनोंसे रहित जैसे करवि, पढ़वि, परिहरवि आदि रूपोंको (ख ग प्रतियोंके अनुसार) स्वीकार किया गया है।

§ ६. क एवं ङ प्रतियोंके अनुस्वारबहुल शब्दोंको इन प्रतियोंपर प्रादेशिक बोलीके प्रभावको दिखलानेकी दृष्टिसे इस प्रथम संस्करणमें पाठभेदोंमें रख लिया गया है। भविष्यमें किसी दूसरे संस्करणमें इन्हें रखनेकी आवश्यकता नहीं रहेगी।

§ ७. प्रतियोंमें लिखावट संबंधी निम्नप्रकारकी भूलें हैं, परन्तु शुद्ध-पाठ लेना सर्वत्र समब हुआ है :—(i) ° उं न > ° पुण्ण - उट्टिउं न > उट्टिपुण्ण (ख ग)

> ° ऊण्ण ,, ,, > उट्टिऊण्ण (क ङ)

(ii) ए > प } — पारए तरट्टि > पारपत्तरट्टि (क ङ)
त > त्त }

(iii) व > व तवचरण > तववरण (क ङ)

चिराउसई > चिराउ° (,,)

° संकेयचत्तो > ° वत्तो (क ङ)

व > च वेयइ > चेयइ (क ख ग ङ)

ववगयसत्त > चवगय° (क ङ)

(iv) च्च > च्च } षणुच्चत्थणीण > षणुव्वच्छणीण (क ङ)
त्थ > च्छ }

(v) च्छ > त्थ सच्छा > सत्था (ख ग)

(vi) त्थ > च्छ विरिथण्ण > विच्छिण्ण (क ङ)

(vii) म > त भुवडाल > तुयडाल (घ)

(viii) म > व } उवसावमि > उवसामवि (क ङ)
व > म }

म > स समुद्धरहि > सुयुद्धरहि (क ङ)

(ix) र क > मल पर-केवलइं > पवखेवलइं > (क)

(x) ल > स तण्हालुयल > तण्हासुवज (क ङ)

इसपर-से स्पष्ट है कि लिखावटकी ये अधिकांश भूलें क एवं ङ प्रतियोंमें हुई हैं। इससे इन प्रतियोंके पाठोंकी प्रामाणिकता कम जाती है।

साधारणतः उपयुक्त सिद्धान्तोंके अनुसार इस रचनाका संपादन किया गया है।

२. ग्रन्थकार परिचय

जन्मभूमि, परिवार, पिता, काव्यरचना प्रेरक, समय, पूर्ववर्ती और समकालीन कवि तथा आचार्य, समकालीन राजा, व्यक्तित्व और कृतित्व :

महाकवि वीरने जम्बूसामिचरित (१. ४—५) में अपना परिचय स्वयं दिया है। उनका जन्म मालव देशके गुलखेड नामक ग्राममें हुआ था। उनके पिता लाडवर्गगोत्रके महाकवि देवदत्त थे,

जिन्होंने पद्मडिया छंदमे (१) 'वरांगवरित', (२) चच्चरिया 'शैलीमे शातिनाथका यथोगान (शांति-नाथरास)'; (३) सुन्दर काव्य 'शैलीमे सुदयवीरकथा'; एवं (४) अंबादेवीरास' की रचना की थी, जिसका नृत्याभिनय वीर कविके कालमे किया जाता था। कविने अपने पिताको कवि स्वयंभू तथा पुष्पदंतके पश्चात् तीसरा स्थान प्रदान किया है और कहा है कि 'स्वयंभूके होनेपर एक, पुष्पदंतके होनेपर दो तथा देवदत्तके होनेपर तीन कवि विख्यात हुए (५.१)।' कविके इस कथनमे अतिशयोक्ति अवश्य संभावित है, तथापि इससे इतना तो निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि अवश्य ही कविके पिता देवदत्त अपने समयके प्रख्यात व उच्चकोटिके कवियोगे रहे होंगे।

कविकी माँका नाम श्रीसंतुवा था, और (१) सीहल (२) लक्षणाक तथा (३) जसई नामोसे प्रख्यात तीन अनुज थे। कविनी चार पत्नियाँ थी। प्रथम जिनमती, दूसरी पचावती, तीसरी लीलावती एवं अंतिम (चतुर्थ) भार्याका नाम जयादेवी था। उनकी प्रथम पत्नीसे उन्हें नेमिचंद्र नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। यद्यपि वीर संस्कृत काव्य-रचनामे निपुण थे, किन्तु पिताके मित्रकी प्रेरणा, उत्साह संबर्द्धन एवं आग्रह, तथा संस्कृत काव्य-रचनाको छोड़कर सर्वजनप्रिय प्राकृत (अपभ्रंश) प्रवचन शैलीमे जंबूसामिचरितकी रचना करनेके अपने पिताके आदेशके कारण कवि अपभ्रंश-प्राकृतमे महाकाव्यकी रीतिसे 'जंबूसामिचरित' की रचनामे प्रवृत्त हुआ।^२

लाडवग वंशकी ऐतिहासिकता

कविका जन्म लाडवग अर्थात् लाट-वर्गट वंशमे हुआ था। इस लाट-वर्गटवंशका इतिहास बहुत पुराना है। वास्तवमे इस वंशका प्रारम्भ पुत्राट सघसे हुआ है। इस संघके आचार्य पहले पुत्राट अर्थात् कर्नाटक प्रदेशमे विहार करते थे, इसलिए इसका नाम पुत्राट था। बादमे इसका प्रमुख कार्यक्षेत्र लाड-वागड (सं० लाट-वर्गट) अर्थात् गुजरात और सागवाडेके आसपासका प्रदेश हुआ। इसलिए इसका नाम लाड-वागड गच्छ पडा।^३

पुत्राट सघके प्राचीनतम ज्ञात आचार्य जिनसेन हैं, जिन्होंने शक सं० ७०५ (वि० सं० ८४०) मे वरुमानपुरके पार्वनाथ तथा दोस्तटिकाके शातिनाथ मंदिरमें रहकर हरिवंशपुराणकी रचना की।^४

आचार्य जयसेन लाड-वागडसघके नामसे ज्ञात प्रथम व्यक्ति हैं, जिन्होंने वि० सं० १०५५ मे सकली कूरहाटक (करहाड, आधुनिक कराड, दम्बई प्रदेश) ग्राममे रहकर धर्म-रत्नाकर नामक ग्रन्थ लिखा।^५ प्राय इसी समय इस गणके दूसरे आचार्य महासेनने प्रद्युम्नचरित लिखा,^६ तथा सं० ११४५ मे इसी गणके आचार्य विजयकीतिके उपदेशसे एक मंदिर बनवाया गया।^७

१. हुआंग्यत. महाकवि देवदत्तकी इन चारोंमे-से किसी एक भी रचनाका अभीतक कोई पता नहीं चलता। संभव है कि काकातरमे जिन-शास्त्र भंडारोंके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी सूचियाँ अभीतक पूर्ण रूपसे प्रकाशित नहीं हो पायी हैं, उनमें-से किसीमे कोई रचना उपलब्ध हो सके।

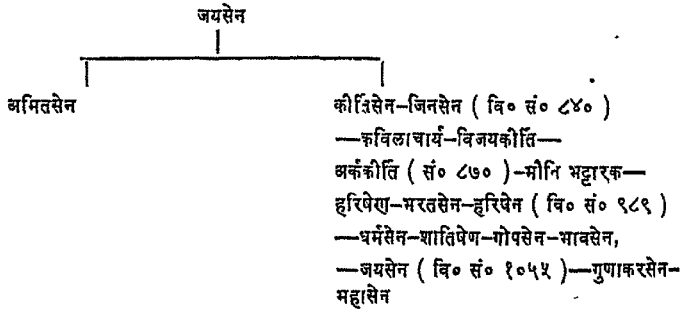
२. जं० सा० च० १.५.५. तथा १.१८. घत्ताके उपरांत संस्कृत पद्य २-३।

३. पुत्राट और लाडवागड संबंधोंकी एकताके लिए देखिए: अ० संग्र० ले० १४१, व ७४७ तथा पृष्ठ २५७।

४. अ० संग्र० ले० ६२२

५-७. वही, पृ० २५७, तथा पं० नाथूराम प्रेमी कृत 'जैन साहित्य और इतिहास' द्वि० सं० पृ० २७८

आ० जयसेनसे लेकर महासेन तक इस सघकी गुरु-शिष्य परम्परा निम्नप्रकार है^१ :



शातिपेणके शिष्य आ० विजयकीर्ति (सं० ११४५) जो की गुरु परम्परा इस प्रकार थी—
 देवसेन—कुलभूपण—दुर्लभसेन—शातिपेण—विजयकीर्ति । ऐसे भी देवसेन गुरु तक यह परम्परा वि०
 सं० १०५० के पूर्व तक जा पहुँचती है ।

प्रस्तुत काव्यके रचयिता कवि वीरके पिता देवदत्त मालवामे इसी सघके अनुयायी वशमे उत्पन्न
 हुए थे । वीर कृत 'जम्बूसामिचरित' का रचनाकाल वि० सं० १०७६ निश्चित है । अतः उनके पिताका
 समय सरलतामे वि० सं० १००० के लगभग माना जा सकता है । आ० विजयकीर्ति (सं० ११४५)
 के आगे भी वि० सं० १५०० तक लाड-वागड सघकी परम्परा अखण्ड रूपसे चलती रही ।

वीर कविके काव्य-रचनाका प्रेरक

वीर कविते लिखा है ? (१-५२) कि मधुसूदनके पुत्र और उसके पिताके मित्र तक्षक नामक
 श्रेष्ठ जो कि मालवदेशमे सिन्धुवर्षी नामक नगरीके रहनेवाले थे, ने वीरको संस्कृत काव्य रचनामे
 निपुण जानकर प्राचीन कवियोंके द्वारा अनेक प्र-योगे उद्धृत (उल्लिखित या लिखित) 'जम्बूसामिचरित'
 को सर्वजनप्रिय प्राकृत (अपभ्रंश) प्रवन्ध शैलीमे सक्षेपमे लिखनेकी प्रेरणा दी । कविके सकोच करने-
 पर तक्षकके अनुज भरतने अग्रजकी बातका समर्थन किया और कविको क.व्य रचनेका उत्साह दिलाया ।
 तक्षकके पिताका नाम मधुसूदन था, और वह धक्कडवग्ग अर्थात् धकंटवशाका आभूषण था ।

धकंट या धक्कडवाल वश यह वैश्यकी ही एक जाति है । अपभ्रंश भविसयत्त कहा
 (भविष्यदत्तकथा) के रचयिता महाकवि धनपाल (१०वीं शती ई०) इसी धक्कड वणिक् वशमे
 उत्पन्न हुए थे ।^२ उन्होंने 'भविसयत्तकहा' (सन्धि २२) मे कहा है —

धक्कडवणिर्वसि माएसरहो समुग्गविण ।

धणसिन्दिदेविसुएण विरइउ सरसडसभविण ॥

अपत्रय भापाकी धम्मपरिकखा (धर्म परीक्षा) के कर्त्ता हरिपेण भी इसी धक्कडवशाके हैं जिनका

१. भ० सम्प्र० पृ० २६६

२. देवेंद्र, भागे प्रस्तावना : समय निर्धारण ।

३. देवेंद्र, डॉ० इच्छा और गुण द्वारा नंशादिन 'भविसयत्तकहा' प्रका०—गायक० औरि० पृ०
 ५० X X—उद्देश्य मज १०२३; तथा प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास पृ० ४०९ ।

समय वि० सं० १०४४ है। आगे भी देलवाडा तथा आबूके गिलालेखोंमें इस जातिका उल्लेख है। हरिपेणने 'सिरजपुरणिगयधनकडकुल' लिखा है, अर्थात् सिरिजपुरसे निकला हुआ धनकडकुल। 'सिरिजपुर' सभ्यतः टोंक राज्यके सिरौजका ही पुराना नाम है। मेवाडकी पूर्वसीमापर टोंक राज्य है, और सिरौज पहले मेवाडमें ही शामिल था। हरिपेणने अपनेको मेवाड़ देवाका कहा भी है। यह धनकडजाति अब भी विद्यमान है। ये लोग दिगम्बर जैनधर्मका पालन करते हैं, तथा अपने मूल निवास राजस्थानसे महाराष्ट्रके अकोला और यवतमाल जिलो तक फैल गये हैं। मुनि जिनविजयजी-के अनुसार मूलतः धनकडकुल उपकेस (श्रौसवाल) जातिकी एक शाखा है।^२

समय—निर्धारण

'जंजूसामिचरिड' की प्रशस्तिके साक्ष्यके अनुसार वि० सं० १०७६ में माघ शुक्ल दशमीके दिन इस काव्यकी रचना पूर्ण हुई, तथा इस रचनाको पूर्ण करनेमें कविको एक वर्षका समय लगा।

प्रस्तुत काव्यके अंतःसाक्ष्य तथा अन्य बाह्य साक्ष्योंसे भी प्रशस्तिके उल्लिखित समय ठीक सिद्ध होता है। जैसा ऊपर कहा गया है कि कविने अपने पूर्वोच्चार्योंमें महाकवि स्वयंभू (लगभग ८वीं शती विक्रम) पुष्पदंत (वि० की नौवीं शती का उत्तरार्द्ध एवं दसवींका पूर्वार्द्ध) तथा स्वयं अपने पिता देवदत्तका उल्लेख किया है। पुष्पदंतके उल्लेखसे ऐसा प्रतीत होता है कि जब यह महाकवि अपने जीवनका उत्तरार्द्ध काल-यापन कर रहा था, और जिस समय राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीयकी मृत्यु (वि० सं० १०२४) के पाँच ही वर्ष उपरान्त धारानरेश परमारवशीय राजा सीयक या श्रीहर्षने कृष्ण तृतीयके उत्तराधिकारी व अनुज खोद्दिगदेवको आक्रमण करके मार डाला था, एवं मान्यखेटपुरीको बुरी तरह छूटा तथा ध्वस्त कर दिया था (वि० सं० १०२९), तथा इनके महापुराणकी रचना पूर्ण हो चुकी थी; तबतक इन निष्परिग्रही, निरासक्त, निःस्वार्थ एवं अभिमान-भेरु महाकविकी ख्याति वीर कविके मल्लिच-प्रान्तमें भी पूर्णरूपसे व्याप्त हो चुकी होगी; उसी समय वीर कविने अपने वाक्यकालमें ही वाग्देवीदेवीके इस वरद पुत्रकी ख्याति मुनी होगी तथा हीश संभालनेपर अवश्य उनकी रचनाओंका अध्ययन किया होगा।

'जंजूसामिचरिड' पर पुष्पदंतकी रचनाओंका गंभीर एवं व्यापक प्रभाव भी इस तथ्यकी पुष्टि करता है। अतः वीर कविके समयकी पूर्वसीमा वि० सं० १०२५ के लगभग निश्चित हो जाती है। प्रश्न उत्तरसीमा निर्धारित करनेका है।

वीर कविका समय वि० सं० ११०० से पूर्व होनेका एक अति प्रबल एवं अकाट्य साधक प्रमाण यह है कि वि० सं० ११०० में होनेवाले मुनि नयनदिके 'सुदंसाचरिड' पर 'जंजूसामिचरिड' का अत्यन्त गम्भीर और प्रचुर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।^३

एक और बात जो इस संबंधमें कही जा सकती है वह यह है कि प्रस्तुत काव्यकी ५ वी-६वीं एवं ७वीं सधियोंमें हंसद्वीपके राजा रत्नशेखरके द्वारा केरलके घेर लिये जाने, व मगवराज श्रेणिककी सहायतासे राजा रत्नशेखरको परास्त किये जानेके बहानेसे वीर कविने जिस ऐतिहासिक युद्ध घटनाकी ओर संकेत किया है, जिसमें कविने स्वयं भी एक पक्षकी ओरसे भाग ले लिया हो, ऐसा प्रतीत होता है, वह घटना परिचित रूपमें भुजके द्वारा केरल, चोल तथा दक्षिणके अन्य प्रदेशों-पर वि० सं० १०२० से १०५० के बीच चढ़ाई करके उन्हें विजित करनेकी मालूम पड़ती है।

१-२. धनकडकुलकी उत्पत्ति और वर्तमान स्थितिपर जिनविजयजीके मसके किए देखिए : प्रेमी, जै० सा० और इति०, पृ० ४०५ तथा उस पर पाद टिप्पण।

३. देखें : आगे प्रस्तावना—पूर्ववर्ती साहित्यकारोंका प्रभाव।

परवर्ती एवं चाष्ट साक्ष्य

वीर कविके परवर्ती साक्ष्योंमें प्रथम साक्ष्य ब्रह्म जिनदासकृत सस्कृत जम्बूस्वामिचरित है, जिसे उन्होंने वि० नं० १५२० में पूर्ण किया। यह रचना वीरकृत अपभ्रंश वाक्यका अधिकशततया संस्कृत रूपान्तर मान है। कवि रचने (१५वीं शती ई०) भी अपनी दो रचनाओंमें वीर कविका नामोल्लेख किया है। इसके पश्चात् वि० नं० १५१६, १५४१ एवं १६०१ की जम्बूसामिचरिउकी हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं, जिनका पूर्ण उपयोग इस काव्यके संपादनमें किया गया है। वि० सं० १६३२ में वायसामे प० गजमल्ल-द्वारा रचित जम्बूस्वामिचरिउ भी प्रस्तुत अपभ्रंश काव्यका संस्कृत रूपान्तर ही है।

कवि-द्वारा उल्लिखित पूर्ववर्ती कवि और काव्य

कवि वीरने अपनी इस रचनामें स्पष्ट रूपसे सर्वप्रथम अपभ्रंश महाकवि स्वयंभूका स्मरण किया है। 'मदनच' अपने रिताश्री महाकवि देवदत्तका।^२ धागे चलकर कविने यह कहते हुए कि स्वयंभूके होनेपर लोभमें एकमात्र (अपभ्रंश) कवि हुआ, पुण्यदत्तके जन्म लेनेपर दो हो गये, तथा देवदत्तके होनेपर तीन^३, इन प्रकार अरुं महाकवि पुण्यदत्तका आदरपूर्वक स्मरण किया है। सधिका दूसरे कव्यकर्ता निम्न पंक्तिके द्वारा विनुवन स्वयंभूका भी अप्रत्यक्ष उल्लेख होना संभावित है—'सो चय गबु जद णउ करइ, नहो करजे पत्रशु तिहुयगु धरइ'। अपभ्रंश कवियोंकी प्राचीन परंपरामें इनके निवाय किसी अन्य कविका उल्लेख प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष किसी भी रूपमें वीर कविने नहीं किया।

अपने पिता कवि देवदत्त-द्वारा रचित जिन चार काव्य कृतियों^४ (१) पद्मडिया छंदमें रचित 'वगनचन्ति' (२) 'मुद्गयवीरकहा' (३) 'शानिनायचरित' अथवा रासके रूपमें शानिनायका महाद्वयनामान तथा (४) 'अशादेवी-राम' का उल्लेख कविने किया है, दुःख है कि उनमेंसे किसी रचनाका अभी तक कोई पत्रा नहीं चल चला।

प्रस्तुत साहित्यके निर्माता कवि और काव्योमें वीर कविने 'मेनुवन्ध' महाकाव्यका^५ अप्रत्यक्ष उल्लेख किया है।

संस्कृत साहित्य और साहित्यशास्त्रोंमें सर्वप्रथम उल्लेख 'प्रदीप' नामक शब्दशास्त्रका^६ तथा वायसामे छंदशास्त्र,^७ मन् निवट्ट (नामदोग)^८ और तर्क (शास्त्र) का उपलब्ध होता है। मेनुवन्धके नायक की रामायणमें मेनुवन्धकी घटनाका नैर्देश है। रामायणके उल्लेख प्रस्तुत 'जम्बूसामिचरिउ' में एक-द्वि-दश नाम प्राप्त होते हैं।^९ महाभारतकी चर्चा भी स्पष्ट रूपमें काव्यमें हुई है।^{१०} भरतमुनि और उनके

नाट्यशास्त्रका स्मरण कविने जिस रूपमें किया है उसमें स्पष्ट प्रतीत होता है कि भरतमुनिके नाट्य-शास्त्रका वीर कविने मनोयोगपूर्वक अध्ययन किया, और उनके नाट्यशास्त्रके गारतीय नियमोंके आदर्श पर अपनी काव्यकृतिमें रमो, भावो, अलंकारों आदि काव्य तत्त्वोंका समावेश किया। यह तथ्य 'जंबूनामिचरित' के तुलनात्मक अध्ययन^१ से और भी अधिक परिपुष्ट होता है। इनके अतिरिक्त वीर कविने संस्कृतके अन्य किसी कवि या काव्यका कोई उल्लेख नहीं किया, तथापि प्रस्तुत काव्यकृतिका सूक्ष्मतासे अध्ययन करनेपर ज्ञात होता है कि वीर कवि संस्कृतके महाकवि कालिदास, हर्षचरितकार, वाण, शिशुपालवधके प्रयोक्ता कवि माधव एवं उत्तररामचरितके रचयिता भवभूतिसे अवश्य प्रभावित था।^३ संस्कृत कवियोंमें कवि वीर कालिदाससे सबसे अधिक प्रभावित है, और प्रस्तुत काव्यके अनेक वर्णनोंमें यह प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है, यहाँ तक कि कुछ स्थलोपर^४ तो वीर कविने कालिदासके श्लोकोंको शब्दशः अपभ्रंश रूपान्तर करके अपनी रचनामें समाविष्ट कर लिया है।

समकालीन कवि श्रीर आचार्य

जैन साहित्यके इतिहासमें विक्रमकी ११वीं शती सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। जैन साहित्यके विविध-अंगो अथवा अनुयोगो—सिद्धांत व दर्शन, आचार, ज्योतिष, गणित, भूगोल एवं पुराण कथा व चरित इन सब विषयोंपर अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रंथोंकी रचनाकी दृष्टिसे यह ११वीं शती प्रारंभसे लयाकर अंत तक अत्यधिक क्रियाशीलता और उत्साहकी रही है।^५ संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश सभी भाषाओंमें इस शतीमें बहुत उच्चकोटिके महाकाव्य, चरितकाव्य, चरितकाव्य एवं कथा-कृतियोंकी रचना की गयी है। संस्कृतमें वीरनंदिकृत चंद्रप्रमचरित (महाकाव्य); अजितसेनके शिष्यका चामुंडपुराण, महासेनका प्रद्युम्नचरित (सं० १०३१-१०६६ के बीच), जंबूनागका मणिपतिचरित्र, जिनेश्वरसूरि कृत निर्वाणलीलावतीकथा एवं वीरचरित्र, सोमदेव कृत यशस्तिलकचंपू (वि० सं० १०१६) घनपाल कृत नवसाहसकचरित ये प्रमुख रचनाएँ हैं। प्राकृतमें घनेश्वर सूरिकृत सुरसुंदरी-चरित्र इसी शतीकी एक विशिष्ट रचना है। अपभ्रंशमें इस शतीकी प्रमुख रचनाएँ हैं :—महाकवि पुष्पदंतकृत 'तिसहस्रमहापुरिसगुणालंकार' या महापुराण, णायकुमारचरित एवं जसहृदचरित; हरिवेणकृत 'धम्म-परिवर्षा' (वि० सं० १०४४), महेश्वरसूरि कृत संयममंजरी कहः; सागरदत्तकृत पार्व्वपुराण एवं जंबू-चरित (वि० सं० १०७६) तथा नयनदिकृत सुदंसणचरित (वि० सं० ११००)।

उपर्युक्त संस्कृत-प्राकृत एवं अपभ्रंश कवियोंमें जिनका कवि वीरके साथ विशेष संबंध रहा होगा, वे हैं—संस्कृतमें (१) यशस्तिलकचंपू आदिके रचयिता सोमदेवसूरि; (२) सुभाषितरत्नसन्दोह (वि० सं० १०५०), धर्मपरीक्षा (वि० सं० १०७०), पंचसंग्रह एवं उपासकाचार आदि ग्रन्थोंके प्रयोक्ता आचार्य अमितगनि; (३) कविके ही पितृकुल लाड-वागड वंशसे संबद्ध तथा प्रद्युम्नचरित्र (वि० सं० १०३३ से १०६६ के बीच) के कर्ता महासेन, (४) नव-साहसक चरित (लगभग वि० सं० १०५०) के लेखक पद्म-या परिमल तथा (५) पांडयलच्छीनाममाला और तिलकमंजरीके कर्ता घनपाल। एक सोमदेवको छोड़कर ये सभी परमार राजा मुंजकी राजसभाके रत्न थे, और अधिकतर इन सवने धारा नगरीमें रहकर अपनी कृतियाँ पूर्ण की थीं। सोमदेवने कृष्णतृतीयके राज्यकालमें शक सं० ८८१ (वि० सं० १०१६) में कृष्ण-तृतीयके चालुक्यवंशी सामंत अरिवेसरीके ज्येष्ठ पुत्र वागराजकी राजधानी गंगधरामें रहकर

१. वही ३ १.३-४.

२. देखें : प्रस्तावना—पूर्ववर्ती साहित्यकारोंका प्रभाव।

३. वही।

४. देखिए मूल १.३.९-१२; मिलाइए रघुवंश १-२-४।

५. विशाद जानकारीके लिए देखें : 'सतहचंद्र बेलाणी : 'जैन ग्रन्थ और ग्रन्थकार' पृ० १०-१४।

अपने ग्रंथोकी रचना की थी। संभव है धारवाडके निकट गगवाटी नामक स्थानका ही प्राचीन नाम गंगघारा रहा हो।^१

अपभ्रंशमे महाकवि पुष्पदंत तथा घम्मपरिवला (वि० सं० १०४४) के रचयिता हरिषेण इन दोनोसे कविका विशेष साक्षात् संपर्क होनेकी सम्भावना है। इनमेसे पुष्पदंतने तो मान्यखेटपुरी (मलखेड, वरार) मे राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीयके मन्त्री भरतके आश्रयमे रहकर अपनी काव्य प्रतिभा दिल्लीवासी और हरिषेण मुन्नके आश्रयमे धारानगरीमे रहकर अद्भुत कथाकोपके समान विचित्र कथाओसे भरी हुई अपनी घम्मपरिवलाकी रचना की। अपभ्रंशभाषामे ही पाण्डुराण तथा 'जम्बूचरिउ' के कर्ता सागरदत्त विशेष ध्यान देने योग्य हैं। जैन ग्रंथावलमे उनके 'जम्बूचरिउ' का रचनाकाल भी ठीक वही कहा गया है जो वीर कृत प्रस्तुत 'जम्बूसामिचरिउ' का है, अर्थात् वि० सं० १०७६। सधियोंकी संख्या भी इसी काव्यके अनुसार स्यारह बननायी गयी है। अतः इन दो रचनाओका तुलनात्मक अध्ययन सबसे महत्त्वकी वस्तु होता; क्योंकि एक ही भाषा, एक ही नाम, एक ही नायक, एक ही विधा, एक-सा ही परिमाण तथा ठीक एक-सा ही समय, फिर भी दो सर्वथा भिन्न रचनाओका होना प्राचीनकालकी एक महत्त्वपूर्ण घटना है। परंतु खेद है कि सागरदत्त कृत 'जम्बूचरिउ'की एकमात्र जिन प्रतिका उल्लेख जैन ग्रंथावलमे किया गया है, वह प्रयास करनेपर भी संपादकको उपलब्ध नहीं हो सकी। रचना स्थानका भी कोई अनुमान लगाया नहीं जा सकता। अतः इन दोनोके परस्पर संबंध, सादृश्य या वैपम्य किसी भी सर्ववमे कुछ कहा नहीं जा सकता।

समकालीन राजा

वीर कवि यद्यपि अपने समकालीन राजाओं तथा राजनैतिक स्थितिके संबंध स्पष्ट उल्लेख नहीं किये किंतु प्रकारांतरसे जो जानकारी दी है, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। जम्बूसामिचरिउकी प्रशस्ति (पक्ति ९-१०) में कविने कहा है कि बहुतसे राजकार्य, धर्म, अर्थ एवं काम गोष्ठियोंमें विभाजित समयवाले वीर कविको इस चरित-काव्यकी रचना करनेमें एक वर्षका समय लगा। पाँचवीसे लेकर सातवीं संघि तक युद्धका जो वर्णन है, वह अपने आपमें विशेष महत्त्व रखता है। निश्चित समय (वि० सं० १०७६) तथा उसका निवास स्थान गुलखेड इस सामग्रीके विषयमे विचार करनेके लिए एक निश्चित आधार देते हैं। गुलखेड नामक ग्राम या नगर मालवामें सिधुवर्षी नगरी (?) के निकट ही कहीं रहा होगा। सिधुवर्षी नगरीकी भौगोलिक स्थितिका इनका ठीक-ठीक अनुमान लगाया जा सकता है कि पूर्वी मालवामें जमुनासे निकलनेवाली एक छोटी नदीका नाम काली-सिधु या सिधु नदी है। यह नदी प्राचीन वशार्ण क्षेत्र, जिसकी प्राचीन राजधानी विदिशा थी, से बहती हुई पद्मावती नामक स्थानपर आकर चर्मण्वती (चंबल नदीसे भोपालके निकट निकलनेवाली पारा नदीमें मिल जाती है। वृहत्सि आगे दोनो नदियाँ मिलकर वेतवामें गिर जाती हैं। इसी सिधु नदीके तीरपर भोपालसे पूर्व और विदिशासे उत्तरमे कहीं सिधुवर्षी नामक नगरी रही होगी। इससे अबिक ठीक स्थिति कह सकना कठिन है।

इन दो सूचनाओका आश्रय लेकर अर्थात् मालव देश एवं वि० सं० १०७६ (के आस पास) का समय, देखनेपर जान होता है कि मालवामे वि० सं० १०२४ में मंजके पिता सीयक, श्रीहर्ष या सिद्धमट राज्य कर रहे थे। वि० सं० १०२४ के पहले वे राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीयके द्वारा हराये गये थे। परंतु वि० सं० १०२९ के प्रारंभमे कृष्ण तृतीयकी मृत्यु हो जानेपर उनके अनुज खोट्टियदेव गद्दीपर बैठे। खोट्टियदेवके गद्दीपर बैठते ही सीयकने पूरी तैयारीके साथ मान्यखेटपर आक्रमण किया और खोट्टियदेवको हराकर मान्यखेट नगरीको बुरी तरह दूटा व उन्नस्त किया। सीयककी राजधानी धारानगरी थी। इससे वे धारानरंज या धारानाथ कहलाते थे। सीयकके उपरान्त उनके पुत्र प्रसिद्ध मुंज राजा गद्दीपर बैठे। इन्होंने अपने पितासे प्राप्त राज्य सीमाओंको न केवल रखा को बरन् उनका विस्तार भी

१. पं० कैलाशचंद्र शास्त्री, सोमदेवकृत उपालकाव्ययन, प्रस्तावना पृ० १४।

किया। कर्णाटक, लाट, केरल, चोलके राजाओंको उन्होंने जीता था, और अन्य भी कई प्रदेशों पर चढाई की तथा अपने राज्यकी सीमा वृद्धि की थी। उन्होंने सोलंकी राजा तैलप द्वितीयको छह बार हराया था, पर सातवीं बार गोदावरीके पासके युद्धमें वे कैद कर लिये गये और वि० सं० १०५०-१०५४ के बीच मार डाले गये। मुंजराजका दूसरा नाम वाक्पतिराज भी था।^३

मुंजराजकी मृत्युके बाद सिधुल, सिधुराज, कुमारनारायण या नव-साहसक नामोंसे विख्यात उनके छोटे भाई गद्दीपर बैठे। इन्होंने हूणोंको तथा दक्षिण कोसल, वागड, लाट और मुरल तथा अन्य कई प्रदेशोंके राजाओंको युद्धमें हराया। ये गुजरात नरेश सोलंकी चामुण्डराजके साथकी लड़ाईमें मारे गये। वि० सं० १०५० और १०६६ के बीच किसी समय इनके मारे जानेका अनुमान किया गया है।^४

सिधुराजकी मृत्युके उपरांत भोजराज गद्दीपर बैठे और वि० सं० १११२ तक लगभग ४५ वर्ष राज्य किया।^५ राज्याधिकार होते ही भोजने दिग्विजयका उपक्रम किया और अनेक युद्ध किये। उनमेंसे बहुतसे युद्धोंमें ये विजयी हुए, परंतु दक्षिणमें इनको विजय अस्वायी रही और जयतिहके पुत्र सोमेश्वर प्रथमने कर्णाटकी गद्दीपर बैठनेके बाद दक्षिणके संघर्षमें भोजदेवकी मयानक दुर्दशा की। गुजरातमें भी भोजराजको विजयश्री हाथ नहीं लगी। भोजराज अतिशय साहित्यिक अभिरुचि संपन्न राजा थे और इनकी सभा अनेक विख्यात कवियों-साहित्यकारोंसे अलंकृत रहती थी।

इस पृष्ठभूमिपर और कविको सूचनाओं और वर्णनोंको जांचनेमें विशेष सुविधा होगी।

ज० सा० च० की प्रगल्भ (पंक्ति ९-१०) में कविने लिखा है कि बहुतसे राजकार्यमें लगे रहकर इस काव्यकी रचना करनेमें उन्हें एक वर्षका समय लगा। इससे यह प्रमाणित है कि कविका किसी राजाकी राज्य सभासे घनिष्ठ सवध था।

काव्यकी पांचवीं सधिमें कविने लिखा है कि केरलमें मृगांक नामका राजा था, उसकी विलासवती नामक कन्या दैवज्ञ मुनिके कथनानुसार मगधके श्रेणिकराजको व्याही जानी थी। परंतु हसदीपके राजा रत्नशेखरने उसके रूप-गुणोंकी प्रशंसा सुनकर उसके पिता मृगांकसे विलासवतीको अपने लिए मांगा, और न देनेपर केरलपुरीको चारों ओरसे घेर लिया। यह समाचार मृगांकके साले गगनगति विद्याधरसे सुनकर श्रेणिक राजाने सैन्य सहित केरलकी ओर प्रस्थान किया। परंतु काव्यके नायक अकेले जंबूस्वामीने ही गगनगति विद्याधरके साथ जाकर मृगांककी सेनाकी सहायता करके रत्नशेखर विद्याधरको हरा दिया।^६ आदि। छठी सातवीं सधियोंमें दोनों सैन्यो एवं प्रमुख व्यक्तियों गगनगति—रत्नचूल, मृगांक-रत्नचूलके बीच युद्धमें केरल पक्षकी पराजय तथा अतमें जंबूकुमार-द्वारा रत्नचूलके पराजयका वर्णन है, और फिर आठवीं सधिकी प्रारंभिक पंक्तियोंमें कहा है कि आर्यप्रोक्त कथासे अधिक जो मैंने युद्धादिका वर्णन किया उसके लिए गुञ्जन मुझे क्षमा करें। कविके इस कथनसे यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि उसने अपने काव्यको महाकाव्य बनानेकी दृष्टिसे अपनी ओरसे यह सारा युद्धका प्रसंग जोड़ दिया। यह युद्ध वर्णन सर्वथा काल्पनिक भी हो सकता था, परंतु कविने फिर कहा है कि हाथमें घनुष, तथा वो भुजाओंमें विक्रम धीर कविका सहज परिकर है...^७ आदि (६.१.३-६)। इससे ज्ञात होता है कि कविने स्वयं भी किसी युद्धमें

१-२. प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास, द्वि० सं० पृ० २८२।

३. पृ० २८१, बल्लालकृत भोजप्रबंधके संपादक पं० जगदीशलालशास्त्रीने ग्रंथकी भूमिका पृ० ४ पर इन्हें 'वाक्पतिराज द्वितीय'के नामसे प्रसिद्ध कहा है।

४. जगदीशलालशास्त्री; बल्लालकृत भोजप्रबंध भूमिका पृ० ४।

५. प्रेमी, जै० सा० इति० पृ० २८२ द्वि० सं०।

६. श्री वागुलीके मतानुसार भोजराज लगभग वि० सं० १०५६-५७ में गद्दीपर बैठे और ५५ वर्ष राज्य किया; देखिए : ज० ला० शास्त्री मो० प्र० भूमिका पृ० ४।

भाग लिया था। देखना यह है कि वह युद्ध कौन-सा, किस राजाके द्वारा, कहाँ किया हो सकता है, जिसमें वीर कविने भाग लिया हो और जो उसके वर्णनके अनुकूल भी पड़ता हो।

इस भूमिकापर जब हम विचार करते हैं तो उपर्युक्त परमारवंशीय राजाओंमें सर्वप्रथम सीयक या सिंहभट्टके जीवनके ऊपर बनायास हमारी दृष्टि पहुँच जाती है, जिन्होंने दक्षिणमें कर्णाटक, लाट, केरल और चोलदेशके राजाओंको जीता था, और जिनका राज्यकाल सं० १०२४ से लगाकर सं० १०५४ तक तीस वर्षोंकी दीर्घ अवधि पर्यंत बना रहा। इसके बाद परमार वंशके राजाओंको दक्षिणमें ऐसी विजय प्राप्त नहीं हुई। अतः उपर्युक्त सारी चर्चाको ध्यानमें रखकर, तथा सब साक्ष्योंको एक साथ मिलाकर देखने-पर ऐसा अनुमान होता है कि सीयककी दक्षिण-विजय यात्राओंमें कवि अपने जीवनकालमें उनके साथ रहा, और प्रौढत्व अथवा वृद्धत्व आनेपर राजकाजमें लगे रहते ही उसने जं० सा० च० की रचना अपने पिताके मित्र मधुसूदन श्रेष्ठिके पुत्र तक्कडकी प्रेरणा और उसके अनुज भरतके अति उत्साह संबर्द्धन करनेसे की और सीयककी दक्षिण-विजय यात्रा, जिसमें केरल भी सम्मिलित था, को ही अपने काव्यके अनुस्यू परिवर्तित करके कविने उसे यह काव्योचित रूप दे डाला। यह अनुमान करनेमें कोई असंगति या असंभाव्यता प्रतीत नहीं होती।

सीयककी मृत्युके उपरांत भी कवि कमसे कम २५-३० वर्ष जीवित रहा, और इस बीच मुंज व सिधुल राजा हुए तथा उनके बाद भोजदेव गद्दी पर बैठे। भोजदेवके शासनकालमें भी वीर कवि कमसे कम १५-२० वर्ष जीवित रहा, और उसकी राज्यसमाप्ता सदस्य रहा होना चाहिए। इस विषयमें अभी अन्य साक्ष्योंकी अपेक्षा बनी रहती है।

उपर्युक्त समस्त विवेचनके आधारसे राष्ट्रकूटवंशीय कृष्णराज-तृतीय तथा परमारवंशीय सीयक, मुंज, सिधुल और भोजदेव वीर कविके समकालीन व उसके संरक्षक राजा कहे जा सकते हैं। और इन तथ्योंपर-से कविका जीवनकाल भी बहुत कुछ निश्चित हो जाता है जो लगभग वि० सं० १०१० से लगाकर वि० सं० १०८५ तक ठहरता है।

कविकी शिक्षा तथा व्यक्तित्व एवं कृतित्व

इस विषयमें कविने अपनी रचनाओंमें पर्याप्त सामग्री प्रदान की है। आदिमें तीर्थंकर महावीर, पार्व्व एवं आदिनाथ-ऋषभकी स्तुति तथा महाकाव्योंकी रीतिके अनुसार सज्जन प्रवृत्ति, दुर्जन निंदा व काव्यदोषोंकी क्षमा करनेके लिए मध्यस्थ ज्ञानी जनोकी अभ्यर्थना तथा महाकवि स्वयंभूका नाम स्मरण व गुण संकीर्तन करके, कवि अपनी विनयशीलता प्रदर्शित करते हुए कहती है—सुकाव्य रचनामें मनसे प्रवृत्त होकर भी मैंने उसके लिए विद्यासाधन रूपी कौन-सी सामग्री एकत्र की? क्या मैंने प्रदीप नामक शब्दशास्त्रका अध्ययन किया; या छंदशास्त्र सहित निबंधुको जाना; या कि तर्कशास्त्रको समझा या कि महाकवि रचित, विशिष्ट काव्य सेतु^१—का अध्ययन किया? व्याकरणकी गुण, वृद्धि आदि क्रियाओं, समास-विधान, अपशब्द व शृद्ध शब्दोका भेद, अथवा छंदशास्त्र इनमें-से किसीको भी तो मैंने नहीं समझा; हाँ रामायणमें समुद्रपार सेतु बंधा गया था, यह मैंने अवश्य सुना है—आदि-आदि। कविके इन वाक्योंसे स्पष्टतया यह प्रकट होता है कि वह शब्दशास्त्र, छंदशास्त्र, निबंधु (नामकोश), तर्कशास्त्र तथा प्राकृत काव्य सेतुबंध इन सबका विशेष रूपसे गहन अध्ययन करनेके उपरांत काव्य रचनामें उद्यत हुआ। प्राचीन प्रणालीके अनुसार जैन साहित्यके चारो अनुयोगो (विद्याओं) प्रथमानुयोग (पुराण, कथा, चरित, साहित्य), द्विथानुयोग (सैद्धांतिक साहित्य), त्रथानुयोग (आचारपरक धार्मिक साहित्य) एवं करणानुयोग (जैन-भूगोल,

१. जं० सा० च० १.३.१-१०।

२. ऐतिह्य ऊपर पृ० १४, पाद टिप्पण ६।

३. महाकवि प्रवरसेन (२५वीं शती ई०) विरचित 'सेतुबंध' महाकाव्य।

गणित ज्योतिष आदि) का कविने आचार्य-परंपरासे गंभीर एवं तात्त्विक ज्ञान प्राप्त किया था, यह तथ्य संपूर्ण रचनामें पद-पदपर झलकता है। मूल ग्रंथमें अनेक पौराणिक घटनाओंके उल्लेखोंसे ज्ञात होता है कि कविको केवल जैन पौराणिक परंपराका ही नहीं, बल्कि वाल्मीकि-रामायण व महाभारत इन दोनों पौराणिक महाकाव्यों तथा शिवपुराण आदि पुराणोंसे भी गहरा परिचय था। इनके अतिरिक्त प्राचीन कवियोंके प्रसिद्ध काव्यग्रंथो व शास्त्रीय लक्षणग्रंथो, विशेषरूपसे भरतके नाट्यशास्त्रके अनुसार अलंकार व अन्य काव्य-लक्षणोंका कविको तलस्पर्शी ज्ञान था, इसके भी अनेक प्रमाण प्रस्तुत काव्य-कृतियों^१ हमें उपलब्ध होते हैं। संस्कृत साहित्यके कुछ प्रमुख-कवियों, लेखकोंकी रचनाओंसे कवि सुपरिचित एवं प्रभावित था, जिनमें-से महाकवि कालिदास, तथा वाण विशेषरूपसे उल्लेखनीय है।^३

शास्त्रीय ज्ञानके अतिरिक्त कवि लौकिक शिक्षामें भी निष्णात था। केवल काव्य-रचना ही उसका एक-मात्र जीवन व्यापार अथवा साधन नहीं था, बल्कि यह अन्य भी बहुविध राजकार्य, धर्म, अर्थ, व काम चर्चाओं में लगा रहता था, और इन सब कार्योंमें व्यस्त रहते हुए इस 'जंबूसामिचरिउ' नामक चरितकाव्यकी रचना करनेमें उसे एक वर्षका समय लगा।^४ अर्थात् कविको समाजके विभिन्न वर्गों एवं जीवन-यापनके विविध साधनोंका साक्षात् अनुभव था। वीर कवि एक अर्द्धा-भक्तिवान् जैन सद्गृहस्थ था; और उसने मेघवनपत्तनमें भगवान् महावीरकी प्रतिमाकी स्थापना करायी थी।^५ अन्यत्र कविने स्वयं कहा है कि दरिद्रोंको दान, दूसरोंके दुःखमें दुःखी, सरस-काव्य [की रचना] को ही सर्वस्व माननेवाले पुरुषोंको धारण करनेसे ही घरित्री कृतार्थ होती है, तथा हाथमें धनुष, साधुचरित्र महापुरुषोंके चरणोंमें खिरस. प्रणाम, मुखमें सच्ची वाणी, हृदयमें स्वच्छ-प्रवृत्ति, कानोंसे सुने हुए श्रुतका ग्रहण, तथा दो भुज-लताओंमें विक्रम यह वीर (पुरुष, कवि) का सहज परिकर हुआ करता है।^६ अर्थात् वीर कवि पूर्ण रूपसे एक अनुकंपावान सलक्षण जैन गृहस्थ होनेके साथ ही साथ एक सच्चा वीर पुरुष भी था।

कवि केवल अपभ्रंश रचनामें ही सिद्धहस्त नहीं था। संस्कृत एवं प्राकृतमें भी उसे निर्विघ्न निपुण्य एवं गति प्राप्त थी। संस्कृतके कुछ श्लोक प्रथम संधिके अंतमें तथा एक आर्या पंचम संधिके ११वें कडवकमें उपलब्ध हैं, और प्राकृतकी अनेक गाथाएँ प्रत्येक संधिके प्रारंभमें विद्यमान हैं। प्रशस्त भी प्राकृत गाथाओंमें लिखी गयी है। पहली और सातवी संधियोंके बीचमें भी (१.११; ७.६) प्राकृत गाथाएँ हैं। इन गाथाओंकी भाषा गूढ अर्थ प्रधान व क्लिष्ट है, और ये शुद्ध साहित्यिक शैलीमें निबद्ध हैं, तथा अत्यंत गंभीर और विशद भावोंसे स्रोतित हैं। संपूर्ण रचना संस्कृतके उत्तम शब्दोंसे भरी है, और शैली भी संस्कृत काव्योंके अनुरूप समास, अलंकार तथा श्लेष प्रधान है। ये बातें यह सिद्ध करनेके लिए पर्याप्त हैं कि संस्कृत रचनामें निपुण होनेका कविका दावा असत्य नहीं है, और प्राकृत रचनामें उसकी सिद्धहस्तता प्रकट करनेके लिए तो कविकी प्रस्तुत रचनामें उपलब्ध गाथाएँ ही पर्याप्त प्रमाण हैं। इस प्रकार कविकी एक मात्र कृति 'जंबूसामिचरिउ' से प्रमाणित है कि कवि संस्कृत-प्राकृत एवं अपभ्रंश तीनों भाषाओंमें निष्णात था, तथा किसी भी भाषामें काव्य रचना करनेमें समर्थ था।

१. जं० सा० च० १.१०.७-८; ३.१२.१-२; ४. १८.१२-१३; ५-८.३१-३६, एव ५.९.१४.।

२. वही, ३.१३.४; ७.१.३-६; ८.१.३-१०, ९.१.१-४; एवं १०.१.१-४।

३. विशेषके लिए देखें—प्रस्तावना—पूर्ववर्ती साहित्यकारोंका प्रभाव।

४. जं० सा० च० प्रशस्त गाथा ५।

५. जं० सा० च० प्रशस्त गाथा ४।

६. जं० सा० च० ६.१.१-६।

३. कथासार, कथावस्तुका महाकाव्यात्मक गठन और मौलिकता

तीन तीर्थंकर महावीर, पार्ष्व एवं ऋषभकी स्तुति बंदना करके (१.१) अपने विद्याभ्यास, (१.३) माता-पिता (१.४) एवं प्रेरणादायकोका परिचय देकर कवि जंबूस्वामीचरितकी कथा प्रारंभ करता है (१.५-६)। भगवदश (१.६-८) के राजगृह नगर (१.९-१०) में श्रेणिक नामका राजा (१.११) था, उसकी कई सहस्र सुंदर रानियां (१.१२) थी। एकवार भ० महावीर अपने समवशरण सहित विपुलाचल पर पधारि (१.१३)। राजा अपने समस्त परिवार, परिजन, पुरजन, व सेना सहित भगवान्‌के दर्शनोंको गया (१.१४-१६) तथा स्तुति-बंदना करके (१.१७-१८) उचित स्थानपर बैठ गया। (सधि—१)।

श्रेणिकके अनुरोध करने पर भगवान्‌ने जीवादि तत्वोंका उपदेश दिया (२.१-२)। उसी समय एक महातेजस्वी देव अपनी चार देवियों सहित अपने आकाशगामी विमानसे उत्तरा व भगवान्‌को बंदना करके समवशरणमें देवताओंके कोठेमें बैठ गया। श्रेणिकके प्रश्न करने पर भगवान्‌ने कहा यह विद्युमाली नामका देव है, जो सातवें दिन स्वर्गसे च्युत होकर इसी नगरमें मनुष्य रूपमें जन्म लेगा व तप करके उसी भवसे मोक्ष जायेगा (२.३)। श्रेणिक-द्वारा पुन. पूछे जाने पर भगवान्‌ने उस देवके पूर्व भवोंकी कथा इस प्रकार वहनी प्रारंभ की—

इसी भगव देशमें वर्द्धमान नामका ब्राह्मणोका अप्राहार प्राप्त है (२.४)। वहाँ सोमशर्म नामका वेदज्ञ ब्राह्मण रहता था, जिसकी सोमशर्मा नामक पत्नी थी। उनके दो शास्त्रज्ञ पुत्र हुए, बड़ा भवदत्त तथा छोटा भवदेव। कुछ काल पश्चात् व्याधिग्रस्त होकर उनका पिता विष्णुका स्मरण करता हुआ जीवित ही चित्तमें प्रविष्ट होकर मृत्युधर्मको प्राप्त हुआ। पतिव्रता सोमशर्मनि भी चित्तमें जलकर तत्क्षण पतिका अनुगमन किया। माता-पिता दोनोंके विधोगको स्वजनोके धर्म बधाने पर (२.५) किसी-किसी तरह सहन करते हुए बड़ा भाई भवदत्त न्याय-नीतिपूर्वक गृहस्थधर्मका पालन करने लगा। उस समय बड़ा भाई भवदत्त अठारह वर्षका था, और छोटा भवदेव बारह वर्षका। कुछ दिन बाद सुधर्म मुनिका उपदेश (२.६) सुनकर भवदत्तको वैराग्य हो गया और छोटे भाई भवदेवको गृहस्थीका भार सौंपकर वह सवमें दीक्षित हो गया (२.७)। बारह वर्ष पश्चात् मुनिसंघ विहार करते-करते पुन उसी गाँवमें आया। छोटे भाई भवदेवको भी दीक्षित करनेकी इच्छासे गुरुनी अनुज्ञा लेकर भवदत्त मुनि भवदेवके घर आये (२.८)। उस समय भवदेवका विवाह हो रहा था। बड़े भाईका आगमन सुनकर वह नववधूको अर्द्धमण्डित ही छोड़कर तुरत यात्रा धाया (२.९), और मुनिके पूछने पर उसने बताया कि मैंने इसी गाँवके दुर्मर्षण नामक ब्राह्मण व उगमनो नामदेवी नामक पत्नीको नागवधू नामक कन्यासे विवाह किया है (२.११)। भवदेवके आप्रहते वही आहार लेकर भवदत्त मुनि जहाँ संघ ठहरा था, वहाँ लौट चले। नगरके अथ नर-नारी कुछ दूर तक मुनिके आगमन पर लौट गये, पर मुनिने भवदेवको वापिस लौट जानेकी नहीं कहा। अत नारिके प्रति श्रद्धा व स्तुतिके कारण भवदेव घर जानेको अत्यंत उत्सुक होने पर भी लौट नहीं सका और मुनिके साथ लौटने पर टपटा था, वहाँ पहुँच गया (२.१२)। तबमें जाकर अन्य मुनिजनको प्रेरणासे तथा नारिके भी ऐसी ही अनर्पण इच्छा जानकर उनके सम्मानकी रक्षाके लिए वे-मनमें भवदेवने आचार्यने दीक्षा ले ली (२.१३)। तदनंतर नव घाँसे विचार कर गया। भवदेव दिन-रात नाग-सूते घ्यानमें लीन रहता हुआ, व सोचकर पुन. उनके साथ कामभोग भोगनेसे अत्यन्त प्रतीक्षामें समय व्यतीत करने लगा (२.१४)। बारह वर्ष पश्चात् मुनि संघ पुन. उसी वर्द्धमान गाँवके निरत आकर ठहरा। भवदेव इनमें बहुत उत्कण्ठित हुआ, और बधाई करने मनेमें श्रेय व श्रेय मुनिद्वारा उद्धम पत्रा हुआ जाने घरकी ओर गया (२.१५-१६)। गाँवके बाहर ही एक श्विन-शंभुनामने उनकी नागवधूसे भेंट हो गयी। कालके पालनेमें अति उत्कण्ठ, अति उत्कण्ठ नाम देव मनेमें भयरे उने पत्न्यास नहीं गया (२.१६)। जाने कुछ व पत्नीके मनेमें पुनः पर नागवधू उने पत्न्यास मनेमें श्विन नववधू है, और धर्मचरु होना पत्न्यास है। उर व नागवधू उने पत्न्यास मनेमें श्विन और धर्मता वर. पुनः धर्मचरु दिग्गताकर व नागवधूनामने पत्नीवधू

देकर भवदेवको प्रतिबुद्ध किया (२.१७-१८) । इस प्रकार बोध प्राप्त करके भवदेवने आचार्यके समझ जाकर सब कुछ वतलाकर प्रायश्चित्त किया, पुन बोधा ली (२.१९) और अति कठोर तप करने लगा । तप करके दोनो भाई मरकर तीसरे स्वर्गमें देव हुए (२.२०) । (संवि-२) ।

मंदराचलसे पूर्व दिशामे पूर्व-विदेहमें पुंडरिकाणी नामकी नगरी (३.१-२) है । वडे भाई भवदत्तका जीव स्वर्गमें अपनी आसु पूरी करके, वहाँके राजा वज्रदंत व उसकी रानी यगोमतीका सागरचंद्र नामक पुत्र हुआ (३.३) । उसी देगमें वीताशोक नामक नगरीमें, छोटे भाई भवदेवका जीव, वहाँके राजा महापद्म और उसकी वनमाला नामक पट्टरानीका शिवकुमार नामक पुत्र हुआ (३.३) । युवा होनेपर उसका युवराज पद्म-पर अभिषेक एवं अनेक राजकन्याओंके नाय परिगय करा दिया गया । उधर पुंडरिकाणी रगती में सुवंचुतिलक नामके एक महामुनि पवार (३.४) । उनसे धर्म श्रवण एवं दोनों भाइयोंके पूर्वजन्मका ज्ञान प्राप्त करके कुमार सागरचंद्र वही दीक्षित हो गया (३.५) । मुनिमंथके साथ विहार करते हुए मुनि सागरचंद्र छोटे भाई भवदेवके जीव युवराज शिवकुमारको प्रतिबोध देनेको इच्छासे वीताशोक नगरीमें पवार । उन्हें देखकर अपने पूर्वजन्मका स्मरण होनेमें शिवकुमारको भी वैराग्य हो गया और उनसे बोधा लेनेकी अनुमति माँगी (३-७) । परंतु बोधाके लिए माता-पिताकी अनुज्ञान न मिलनेसे घरमें ही मंत्रीपुत्र द्रुवधर्मके हाथों केवल कांडीका शूद्र आहार लेते हुए अनेक वर्षों तक कठोर तप करके आसुष्यके अंतमें संयास-पूर्वक मरण किया (३-९) । उसी तपके प्रभावसे पहले भवदेव, फिर स्वर्गमें देव और फिर शिवकुमारका वह जीव विद्युन्माली नामका यह अति तेजस्वी देव हुआ है । उधर बडा भाई भवदत्त, फिर देव, और फिर सागरचंद्र मुनिका जीव भी आसुष्य पूरा करके स्वर्गमें देव हुआ । अब विद्युन्माली देव ननुष्य जन्म लेकर विद्युत्प्रभ नामक चोरके साथ बोधा लेगा (३-१०) ।

विद्युन्माली देवकी चार देवियोंका पूर्वभ्रम पूछनेपर भगवान्ने कहा—भारतदेशमें चंपानगरीमें सूर्यसेन नामका एक सेठ जयमद्रा, सुमद्रा, चारिणी और यगोमती नामकी चार अतिसुंदर पत्नियोंके साथ रहता था (३-१०) । कुछ काल बाद कर्मविपाकसे सूर्यसेनको कुछ आदि अनेक भयानक व्याधियाँ हो गयीं और वह अपनी पत्नियोंसे बडी ईर्ष्या रखने लगा, तथा द्वेष व शंकासे उन्हें नानाप्रकारकी यातनाएँ देने लगा (३-११) ।

एक बार वसंतऋतु (३.१२) में नागयज्ञकी यात्रा (पूजा)-के अवसर-पर वे चारों भी नागदेवताके दर्शन कर निकटस्थ वासुपूज्य भगवान्के मंदिरमें गयीं । वहाँ सुमतिनामक मुनिसे उन्होंने ऋचोंके व्रत ले लिये । सूर्यसेनकी मृत्युके उपरांत सब संपत्ति मंदिर निर्माणमें लगाकर चारो बहूएँ मुद्रता आधिकारके पास आधिकार्य हो गयीं । वे ही चारो तप करके मरणोपरान्त स्वर्गमें विद्युन्माली देवकी चार प्रियाएँ हुई है (३.१३) ।

पुन. विद्युच्चोरके संबन्धमें पूछने पर भगवान्ने कहा—मगधदेशमें हस्तिनापुर नामक नगरमें विजय नामके राजा व उसकी धीसेना नामक प्रिय रानीसे विद्युत्प्रभ नामका पुत्र हुआ जो चोरीके व्यसनके बसीभूत होकर पिताका राज्य छोड़कर राजगृह नामक नगरमें आकर कामलता नामक वैश्याके घरमें रहता है, व चोरीका धन ला-लाकर उसका घर भरता है (३-१४) । (संवि ३) ।

तब विद्युन्माली देवके जन्मकुलके संबन्धमें पूछनेपर भगवान्ने कहा कि यह देव इसी राजगृह नगरी-के निवासी व यही समबधरणमें उपस्थित श्रेष्ठी अरहदास व उसकी प्रिय नारी जिनमतीके पुत्ररूपमें जन्म लेगा । भगवान्के ये वचन सुनकर एक यक्ष अपने गौश्रीकी प्रणसा करता हुआ प्रसन्नताके कारण उठकर नाचने लगा (४ १) । इसका कारण पूछने पर भगवान्ने कहा कि इसी नगरीमें वनदत्त नामका सेठ रहता था । उसकी गौश्रवती नामकी भार्या थी । उसके दो पुत्र हुए, बड़ा अरहदास जो बहुत सज्जन व धर्मात्मा हुआ, और छोटा जिनदास जो जवानीके वेगमें कुसर्गतिके प्रभावसे जुआ आदि व्यसनोमें डूरी तरह पड़ गया । एक दिन वह जुएमें छत्तीस सहस्र स्वर्णमुद्राएँ हार गया । घरसे मुद्राएँ लाकर देनेका वचन देने पर भी छलक नामके एक जुआड़ीने जिनदाससे व्यर्थ झगड़ा करके उसके पैटमें कटारी मार दी (४-२) । यह नूचना

मिलने पर बड़ा-भाई अरहदास उसे घर ले गया, और सब उचित उपचार किया। पर वह बच नहीं सका, और भाईके सद्युपदेशसे शुभ भावसे मरकर उसने यक्ष योनिमें इस रूपमें जन्म लिया है। अतः अपने पूर्व-जन्मके पितृकुलमें भाईके घरमें अंतिम केवलीके जन्म होनेको बात सुनकर अपने गोत्रकी प्रशंसा करता हुआ आनंदके कारण नाच रहा है। (४.३)।

इसके पश्चात् भगवान्ने नानाप्रकारसे धर्मोपदेश किया व आगे होनेवाले संपूर्ण जंबूस्वामी चरित्र-को विस्तारसे बतलाया। धर्म धरुण करके व नानाप्रकारसे श्रावकव्रतोंको लेकर राजा सहित सब पूरुषन नगरको लौट आये। सात दिन पश्चात् अरहदासकी जिनमती भायनि सोते समय रात्रिके अंतिम अहरमें पांच मांगलीक स्वप्न देखे (४.५) :—

(१) अत्यंत सुगंधित जंबूफलोका समूह, (२) सनस्त दिशाओंको प्रकाशित करनेवाला धूम्ररहित अग्नि, (३) फूला हुआ व फलभारसे नम्र सुगंधित शालिजैन; (४) चक्रवाक् हंस आदि पक्षियोंके समूह कलरवते युक्त सरोवर एवं (५) नाना मगरमच्छ—कच्छभादिते भरा हुआ विद्याल सागर। इसी समय विद्युन्माली देव जिनमतीके गर्भमें अवतीर्ण हुआ (४.७)। नौ मास पूर्ण होने पर वसंतको शुक्ल पंचमीको सोमवारके दिन जब चंद्रमा रोहिणी नक्षत्रमे विद्यमान था, प्रत्युप कालमें पुत्र जन्म हुआ। बहुत आनंदसे पुत्र जन्मेत्सव मनाया गया। स्वप्नमें जंबूफलोका प्रथमदर्शन होनेसे पुत्रका नाम जंबूस्वामी रखा गया (४.८)। उचित समयपर बालककी शिक्षा-दीक्षा हुई और उसके रूप (४.९) व गुणोंकी द्वाति चारों ओर फैलने लगी (४.१०)। जहाँ भी वह जाता नगरकी नारियाँ उसे देखकर अपनी सब सुष-सूष जो बैठों और कामवाणसे पीड़ित हो जाती (४.११)।

अरहदासके चार घनाढ्य-बालमित्रोंने वचनमे खेल-खेलमें की हुई प्रतिकानुसार अपनी अपनी चार कन्याओंको (जो पूर्वमन्त्रमे विद्युन्माली देवकी चार देवियाँ थीं), जिन्हें सब प्रकारकी स्त्रीजनोचित विद्याओं व कलाकौशलकी शिक्षा दी गयी थी (४.१२), जो जन्मते ही अद्वितीय सुंदरियाँ थीं, और दिन-दिन पूर्ण यौवन (४.१३-१४) को प्राप्त हो रही थीं, अरहदासके जंबूस्वामीके लिए वधू रूपमें स्वीकार करनेका अनुरोध किया। जिनमतीकी अनुमति लेकर अरहदासने इस प्रस्तावको सहर्ष स्वीकार किया (४.१५)। पाँचों श्रेष्ठियोंके घरोंमें विवाहकी पूरी तैयारियाँ होने लगीं (४.१५)। इतनेमें वसंत आ पहुँचा (४.१६)। नगरके स्त्री-गुरुप युगलोंके साथ राजा नगरसे निकला और उपवनमें पहुँचा (४.१६)। वहाँ यथेच्छ उद्यान क्रीड़ा को गयी (४.१७)। जंबूस्वामीने भी उन्नुक भावसे कामिनियोंके साथ हास-परिहास किया (४.१८)। पश्चात् सवने देर तक जलक्रीड़ा की (४.१९)। जलक्रीड़ा समाप्त करके जब सब लोग नगरमें जानेकी तैयारी कर रहे थे (४.२०) कि राबाका विपदसंग्रामधूर नामक पट्टहायी बंधन तुड़ाकर भाग निकला, और उसने नगर व उपवनमें सर्वत्र मृत्यु एवं विनाशका भयावह दृश्य उपस्थित कर दिया (४.२०-२१)। उसे कोई बचाने नहीं कर सका। जंबूस्वामीने सरलतासे उसपर विजय प्राप्त कर ली (४.२२)। इसपर राजाने बहुत प्रकारसे जंबूस्वामीकी प्रशंसा की। (संवि-४)।

विभिन्न प्रकारसे जंबूस्वामीका सम्मानादि करके राजाने उसके साथ नगरमें प्रवेश किया और अपनी राजसभा लगायी (५ १)। एक दिन जब राजा जंबूस्वामीके साथ सभामें बैठा था, तो गगनगति नामका विद्याधर अपने विमानसे राजसभामें आकर उतरा, और प्रणाम करके निवेदन करने लगा—देव, मैं सहस्र-श्रृंग नामक पर्वतपर रहनेवाला गगनगति नामका विद्याधर हूँ। मलयचलमें केरल नामकी नगरीके राजा भृगांकसे मालवीलता नामक मेरी बहन व्याही गयी है। उनकी दिलासबही नामकी अपूर्व सुंदरी कन्या है। मुझ्के कथनानुसार उसका परिणय आन्ते किया जाना है (५.२) उधर हंसद्वीपके रत्नचूल नामक प्रचंड बली विद्याधर राजाने मलपूर्वक उत्त कन्याको प्राप्त करने हेतु अपनी सेनाके साथ केरल नगरीको चारों ओरसे घेर लिया है, तथा वहाँ बड़ा दिनाग कर रहा है। जब अन्य कोई उपाय न देख, क्षात्रवर्धनी रक्षा हेतु अपने सीमित सैन्य साधनके साथ भृगांक राजा ऋषके दिन नगरसे बाहर निकलकर रत्नचूलरथे

युद्ध करेगा, और सर्वनाशको प्राप्त होगा (५.३) । मैं अपना धर्म निभाने वहीं जा रहा हूँ । रास्तेमें आपकी समा देखकर प्रासंगिक समाचार आपसे निवेदन कर दिया है । उसके इतना कहने पर जंबूस्वामी राजाकी अनुज्ञा लेकर, उसके साथ विमानमें बैठकर अकेले ही केरल नगरीकी ओर चल दिये । इधर राजाने भी अपने सेनापतियोंको केरल नगरीकी ओर प्रयाण करनेके लिए तैयार होनेका आदेश दिया (५.५) । प्रयाणकी तैयारियाँ की गयी व राजाने सेनाके साथ प्रस्थान किया (५.६) । रास्तेमें विव्याटनी पड़ी (५.८) । उसे पार कर राजाने विष्णुप्रदेगमें प्रवेश किया (५.९) । आगे रेवा नदी पड़ी और उसके तट पर कुरल पर्वतके निकट राजाने सेना सहित पडाव डाल लिया (५.१०) । उधर गगनगति विद्याधरके साथ जंबूस्वामी केरल नगरीमें पहुँचे और नगरके बाहर ही विमानसे उतरकर मृगांक राजाके दूत बनकर रत्नशेखरकी छावनीमें प्रविष्ट हो गये (५.११) । रत्नशेखरकी सामां पहुँचकर, दूतके निमित्त वी हुई कन्याको बलपूर्वक लेनेके कदाग्रहपर उसे बहुत बुरा-मला कहा (५.१२-१३) । इससे रत्नशेखर बहुत क्रुद्ध हो गया और उसने अपने भटोको जंबूस्वामीको पकड़कर मार डालने की आज्ञा दी । समास्थयमें ही भयानक युद्ध प्रारंभ हो गया । गगनगतिये जंबूस्वामीको एक दिव्य डाल व तलवार भेंट की, व स्वयं भी युद्ध करने लगा । स्वामीने अकेले ही नाना प्रकारके पत्तरे बदलते हुए सहस्रों शत्रु भटोंको मार गिराया व उसकी सेना को तितर-बितर कर दिया (५.१४) । (सवि—५) ।

अपने चरोसे यह सब समाचार पाकर मृगांक राजाने तुरंत अपनी सेनाको युद्धमें चलनेकी तैयारी करनेके आदेश दिये । वीर वधुओने अपने प्रियतमोको नाना संदेश दिये (६.३) । सेनाने नगरसे प्रयाण किया (६.४) । दोनों सेनाओमें भीषण युद्ध हुआ (६.५-६) । संग्रामका भीषण दृश्य (६.७) । भटोंकी अवस्था (६.८) । युद्ध (६.९) । गगनगति और रत्नशेखर विद्याधरमें आकाशमें युद्ध हुआ, उसमें गगनगति घायल हो गया (६.१०-११) । रत्नशेखर आकाशसे नीचे उतरा, और मृगांक राजासे युद्ध करके, उसे परास्त करके बाँधकर ले गया (६.१२-१४) । इससे केरल राजाकी सेना पराभूत भावसे निश्चेष्ट व अधोमुख होकर बैठ रही । (सवि—६) ।

छावनीके भीतरसे युद्ध करते हुए बाहर निकलने पर जंबूस्वामीको गगनगतिये युद्धके सब समाचार ज्ञात हुए, व स्वामीकी प्रेरणासे केरल सेना पुनः युद्धके लिए तत्पर हो गयी । दोनों सेनाएँ पुनः आमने-सामने डट गयी (७.१-५) फिर वीरोका परस्पर महान् युद्ध हुआ, व अनेक कायर जन भाग खड़े हुए (७.६) । इधर रत्नशेखरसे सामना होने पर जंबूस्वामीने उसे अपने साथ दंड युद्धके लिए ललकारा, जिससे व्यर्थ नरसंहार न हो । दोनों सेनाओंको अलग-अलग दूर हटा दिया गया (७.७) । जंबूस्वामी एवं रत्नशेखरमें महाभयानक युद्ध हुआ (७.८-१०) । जंबूस्वामीने युद्धमें रत्नशेखरको परास्त करके बाँध लिया, और मृगांक राजाको बंधनसे छुड़ा लिया, तथा मृगांक राजाके अनुरोधसे केरल नगरीको गये । वहाँ जाकर रत्नशेखर विद्याधरकी भी बंधन मुक्त कर दिया, व केवल क्षात्रधर्मकी रक्षा हेतु युद्ध करनेके लिए क्षमा माँगी । तत्पश्चात् कुछ दिन केरल नगरीमें रहकर पत्नी व कन्या सहित मृगांक राजा, गगनगति विद्याधर एवं रत्नशेखर विद्याधरादिके अनेक विमानोके साथ कुमारने मगधकी ओर प्रयाण किया । इन सबके साथ पर्वतके निकट ही ससैन्य श्रेणिक राजासे भेंट हो गयी । राजाने जंबूस्वामी व अन्य सबका समुचित स्वागत किया । गगनगति विद्याधरने सबका परिचय दिया, विलासवती कन्याका राजासे परिणय करा दिया गया । मृगांक व रत्नशेखरमें मैत्री करा दी गयी । सब लोग अपने-अपने स्थानोंको विदा कर दिये गये । श्रेणिक राजाने भी राजगृहकी ओर प्रयाण कर दिया । राजगृह पहुँच कर नगरके बाहर ही उपवनमें सुषर्ष स्वामी ५०० मुनियोंके साथ विराजमान दिखाई दिये । राजा व अन्य सबने मुनिको बंदना की, और जंबूकुमारने भी प्रणाम किया (७.११-१३) । (सवि—७) ।

आठवीं संधिके प्रारंभमें कवि विनयपूर्वक निवेदन करता है कि आर्षप्रोक्त कथासे अधिक वसंतक्रीडा, हस्तिका उपद्रव, नरेंद्रका प्रस्थान एवं युद्धका वृत्त, यह जो मैंने कहा, उसके लिए गुणीजन मुझे क्षमा करें । इसके पश्चात् कई गाथाओंमें काव्यके लक्षणोपर प्रकाश डालकर कवि कथासूत्रको आगे बढ़ाता है । सुषर्ष

स्वामीको देखकर अपने मनमें अनायास उनके प्रति बड़ा स्नेह उमड़ आनेसे जंबूस्वामीने सुघर्म गणधरसे इसका कारण पूछा। तब सुघर्मस्वामीने भवदत्त-भवदेवके जन्मसे लगाकर दोनोंके पाँच भवोका वर्णन किया। तू पहले भवदेव था, मैं भवदत्त। तत्पश्चात् दोनों स्वर्गमें एक साथ देव हुए। अनंतर तू शिवकुमार हुआ, मैं सागरचंद्र। इनके पश्चात् फिर दोनों देव हुए। तू विद्युन्माली देवके रूपसे च्युत होकर यहाँ जंबूस्वामी हुआ है, और मैं स्वर्गसे च्युत होकर इसी मगध देशमें संवाहन नामक नगरमें सुप्रतिष्ठ राजा व रुक्मिणी रानीका सुघर्म नामका पुत्र हुआ। एक दिन सुप्रतिष्ठ राजा सपरिवार महावीर जिनेंद्रके समवशरणमें गया, और भगवान्का उपदेश सुनकर वही दीक्षित हो गया। सुघर्मकुमारने भी उसी समय पिताके मार्ग-पर अनुगमन किया। पिता भगवान्के चतुर्थ गणधर हुए और मैं सुघर्म उनका पाँचवाँ गणधर बना। वही मैं ऋषिसदृशके साथ विहार करते हुए यहाँ आया हूँ। तथा वे जो तुम्हारी चार देवियाँ थीं, उन्होंने भी पूर्वजन्मके स्नेहसे बंधे हुए सागरदत्तादि चार श्रेष्ठियोंकी चार बतिसुंदर कन्याओंके रूपमें जन्म लिया है। आजसे दसवें दिन उनसे तुम्हारा परिणय होगा (८१-५)। यह सब इतिवृत्त सुनकर जंबूस्वामीको ससारसे वैराग्य हो गया, और उसने आचार्यसे दीक्षा देनेका अनुरोध किया, व आचार्यके आदेशसे घर जाकर माता-पितासे दीक्षा लेनेकी अनुमति माँगी। माता-पिताके अनेक प्रकारसे पुत्रको समझाने व सांसारिक सुख भोगनेके लिए प्रेरित करनेपर जब वह किसी भी प्रकार नहीं मानता तो उन्होंने कन्याओंके पिताओंको यह समाचार भिजवाकर अनुरोध कराया कि कन्याओंके लिए अन्य वर देख लिया जाये। कन्याएँ इसके लिए प्रस्तुत नहीं हुईं, व अपने अपूर्व सौंदर्य और काम-चेष्टाओं द्वारा (८१-११) जंबूस्वामीको अपने वशमें कर लेनेके विद्यासे स्वामीको यह समाचार भिजवाया कि स्वामी केवल एक दिनके लिए विवाह कर लें, अगले दिन प्रातः दीक्षा ले लें, तब उन्हें कोई नहीं रोकेगा। स्वामीने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। वणिक् गोत्राचारकी श्रेष्ठ रीतिसे विवाह हुआ (८१-१२-१३) विवाहके उपरांत जंबूस्वामी चारों वधुओंके साथ अपने घर आये। इतनेमें सायंकाल हो गया, व धीधी देरमें चारो और घना अंधेरा छा गया (८१-१४)। कुछ देर बाद चंद्रोदय हुआ और स्वामी वधुओ सहित अपने वासगृहमें प्रविष्ट हुए (८१-१५)। सब समागत मित्र-स्वजन अपने अपने घरोंको विदा कर दिये गये, वासगृहके द्वार निश्छिद्ररूपसे बंद कर दिये जानेके उपरांत वधुएँ जंबूस्वामीको वशमें करनेके लिए नानाप्रकारकी कामचेष्टाएँ करने लगी (८१-१६)। (सधि.८)

नीवी सविके आदिमें दो गायामोमें पुनः काव्यके कुछ लक्षण कहकर कवि कथाको आगे ले चलता है। वधुओंको उन सब कामचेष्टाओंका जंबूस्वामीपर रंचमात्र भी कोई प्रभाव न पडते देखकर वधुओंको बड़ी निराशा हुई, और उन्होंने क्रम क्रमसे जंबूस्वामीपर व्यग्य करते हुए उसे इंद्रिय सुखोंमें प्रेरित करनेके लिए प्रवृत्त लोक कथाएँ सुनायी आरंभ की। जंबूकुमारने भी प्रत्येक वधुकी कथाके उत्तर स्वरूप, उसके आशयको उद्धृत करनेवाली उत्तरी ही कथाएँ कही। (इन सब कथाओंके लिए देखिए . प्रस्ता. १ 'जंबूस्वामी चरित'के अंतर्कथाएँ एवं मूलका हिंदी अनुवाद ९.४ से ९.११)।

इस प्रकार परस्परमें कथा बार्ता करते-करते आधीरात बीत गयी। इधर चोरीके हेतु बैरवावाट (९.१२)मेंसे निकलकर मिथुनोकी कामक्रीडा—(९.१३)को देखता हुआ विद्युच्चर नामक चौर जंबूकुमार (स्वामी)के घर पहुँचा व भित्तिसे लगकर छिपकर छडा हो गया परंतु वर-वधुओंके सारे कथा-गलापको मुनकर उसका चित्त बदल गया। जंबूकुमारकी व्याकुलतासे जागती, बार बार जाती जाती मानी उसे देख लिया व पूछा तू कौन है व क्या चाहता है ? विद्युच्चरने अपना परिचय दिया, और माँकी व्याकुलताका कारण पूछा। माँसे सब सुनकर उसने कहा—माँ किसी तरह मुझे भीतर प्रवेश कराओ, तो मैं भी द्वारको समझानेका प्रयत्न करके देखाता हूँ। यदि समझ जाये तो ठीक, अन्यथा मैं भी ब्रिहान होते ही प्रतीके नाथ तदन्तरपका अनुसरण करूँगा। माँने अपना छोटा भाई कहकर पुत्रकी अनुमति लेकर उसे भीतर प्रवेश कराया। जंबूस्वामीने उग्र मामाका उचित स्वागत अभिनंदन किया, और पूछा कि मामा इतने बर्षों तक दान्ते कर्त-नर्त भ्रमण किया (९.१८)। विद्युच्चरने दक्षिण दिशामें समुद्रने लगाकर, क्रमशः दक्षिण, दक्षिण, उत्तर व अंतमें पूर्व दिशामें अपने भ्रमण किये हुए सब देवोंके नाम लिये (९.१९)। (सधि-९)।

इसके उपरांत जंबूस्वामीकी स्तुति करके विद्युच्चरने उसे भोगोंकी ओर प्रेरित करलैके लिए भौतिक दर्शनोंके तर्क दिये। स्वामीने युक्तिपूर्वक विद्युच्चरके समस्त तर्कोंका खंडन कर उसे निरस्त कर दिया (१०.१-५), और अपने पूर्व जन्मोंका वृत्तांत भी कहा (१०.६)। यह सुनकर विद्युच्चर बोला, यदि किसी तरह तुम्हें पूर्वजन्ममें देवसुख प्राप्त हो गया तो बार-बार हृदयेच्छिज सुख कहाँसे प्राप्त होगे। इस संबंधमें विद्युच्चरने उस लैटिका आख्यान सुनाया जिसने एक बार कहीं मयुका स्वाद लेकर, मयुकी जागमें अन्य कुछ खाना ही छोड़ दिया (१०.७)। इसपर जंबूस्वामीने वाणिक्युक्तको कथा सुनायी (१०.८)। क्रमशः दोनोंने उत्तर-प्रत्युत्तर स्वरूप चार-चार कथाएँ कही। (कथाओंके लिए देखिए भागे, प्रस्तावना—जंबूसामिचरिउकी अतर्कथाएँ व हिंदी अनुवाद १०.७ से १०.१७) इस समस्त चर्चके होते-होते विद्युच्चरको भी प्रतिबोध हो गया, और भक्तिपूर्वक जंबूस्वामीकी स्तुति करके स्वयं भी उनके साथ दीक्षा लेनेकी इच्छा प्रकट की (१०.१८) जंबूस्वामीकी चारों वधुओं व माता-पिताको भी ज्ञान हो गया। ये सारे समाचार मिलनेपर श्रेणिक राजाने बड़े उछाहूँसे जंबूस्वामीका अभिनिष्क्रमण महोत्सव मनाया। जंबूस्वामी व राजा सहित सब कोई सुधर्मगणधरके पास पहुँचे (१०.१९)। जंबूस्वामीने धान्यादिसे दीक्षा ग्रहण की व एक एक कर ममस्त वस्त्रामूपशोको उतार फेंका, तथा सिरसे केज टोच कर लिया। विद्युच्चरने भी दीक्षा ले ली। जंबूस्वामीके पिता अरहदास भी निर्ग्रय माधु हो गये। उनकी माता व चारों वधुएँ भी धार्मिकाएँ हो गयीं, व कठोर तप करने लगीं। जंबूस्वामी गुहके साथ रहकर बारह प्रकारका महान् तप करने लगे (१०.२०-२२)।

अठारह वर्ष बीतनेपर माघ शुक्ल सप्तमीके दिन प्रातःकाल विपुलगिरिके शिखरसे सुधर्मस्वामी निर्वाणको प्राप्त हुए (१०.२३)। उसी दिन जंबूस्वामीको भी कैवल्य प्राप्त हुआ। देवताओंने बड़ा उत्सव मनाया। इसके पश्चात् जंबू अठारह वर्षों तक धर्मोपदेश करते हुए, अंतमें विपुलगिरिके शिखरपर निर्वाणको प्राप्त हुए। पिता-माता व चारों वधुएँ तप करके समाधि एवं सल्लेखनापूर्वक मरकर दिग्निम्न स्वर्गमें देव हुए (१०.२४)।

जंबूस्वामीके निर्वाणगमनके उपरांत विद्युच्चर मुनिसभके साथ विहार करते-करते तात्रलिप्ति पवारै व नगरके बाहर ही ठहर गये। वहाँ भूत-विद्याचोने समस्त सधर महान् उपसर्ग किया। एक विद्युच्चर महामुनिको छोड़कर अन्य कोई मुनि उस उपसर्गको सहन नहीं कर सके और योग-ध्यान छोड़कर भाग निकले। उस महान् उपसर्गमें विद्युच्चर मुनि विलकुल अडिग व निर्भय रहे (१०.२५-२६) (संवि-१०)।

जैसे-जैसे वह घोर उपसर्ग बढ़ता गया, वैसे-वैसे मुनि अनिरय, अगरण, अशुचित्त आदि बारह भावनाओंका चिंतन करते हुए कर्मोंको काटने लगे। दशविध बर्माका ध्य न व अनुप्रेक्षाशोकी भावना करते हुए, परीपहोके बशीभूत न होकर, समाधिपूर्वक मस्कर विद्युच्चर महामुनि सर्वार्थसिद्धिको प्राप्त हुए। वहाँ आयुष्य पूरा कर वे एक ही बार मनुष्य जन्म लेकर मोक्ष प्राप्त करेंगे ? (संवि-११)।

कथावस्तुका महाकाव्यात्मक गठन एवं भौतिकता

महाकवि वीरने जंबूस्वामीके पौराणिक आख्यानको महाकाव्यकी कथावस्तुके रूपमें ग्रथित किया है। यही कारण है कि मूल आख्यान और अंतर्कथाशोका गठन बहुत सुदृढ़ रूपमें हुआ है। इस काव्यमें प्रयुक्त अंतर्कथाएँ मूलकथाधाराके छोटे-छोटे जलस्रोतोंके समान हैं, जो आगे चलकर मूलकथासे मिलकर उसकी धाराको पृथुलतर, गंभीरतर और विशालतर बना देते हैं। लघु कथाएँ स्वतंत्र होते हुए भी मूलकथासे संबद्ध हैं। सभी कथाशोले नायकके फलागमपर प्रभाव पड़ता है। कथावस्तुका आरंभ एक दिव्य विभूतिके दर्शनसे होता है। श्रेणिककी दृष्टि आकाश मार्गसे आये हुए विद्युन्माली देवपर पड़ती है और वे उसके सौंदर्य, ऐश्वर्य, एवं प्रभावसे आकृष्ट हो उसका इतिवृत्त जाननेकी जिज्ञासा व्यक्त करते हैं। इस प्रकार यद्यपि कथावस्तुका आरंभ शुद्ध-पौराणिक रूपमें हुआ है, वक्ता और श्रोताके रूपमें कथा गतिमान हुई है, तो भी कविने इतिवृत्तके साथ वर्णन-व्यापारोंका समावेश कर कथाको महाकाव्योचित गरिमा प्रदान

की है। कविने पौराणिक माय्यताओंकी पुराणके रूपमें ही प्रस्तुत किया है, पर कथा सामुबंध होनेसे उसमें महाकाव्यत्व आ गया है।

महाकवि वीरके पूर्व जंबूस्वामीचरितकी कथावस्तु संघदासगणिने वसुदेवहिंडीमें कथाकी उत्पत्ति नामक प्रथम प्रकरणमें, गुणभद्रने उत्तरपुराणके छिहत्तरवें पर्वमें तथा कवि गुणपालने गद्य-पद्य मिश्रित शैलीमें रचित प्राकृत जंबूचरियमें ग्रथित की है। पुष्पदतने अपभ्रंश महापुराणके उत्तरखंडमें सीधों संघमें 'जंबूसामि-दिवखवणण'में पूर्ण रूपसे गुणभद्रका ही अनुकरण किया है। इन आचार्योंने नायकको प्रत्यक्ष रूपमें उपस्थित कर तदनंतर उसकी भव-परंपरा प्रस्तुत की है। पर वीर कविने विद्युन्माली देवके चमत्कारसे आकृष्ट हो श्रेणिक-द्वारा उसके पूर्वभवोंको जाननेकी जिज्ञासा व्यक्त करायी है। अतः कविने प्रारंभमें ही यह दिखलानेका सफल प्रयास किया है कि सर्वसाधारण विषयासक्त मनुष्य भी साधनाके बलसे भगवत्पदको प्राप्त कर सकता है। आत्मा परमात्मा है, पर उसकी यह शक्ति व्यक्तकटित है। इसे प्रकाशमें लानेके लिए पुष्पार्थ अपेक्षित है। इस तथ्यको मनमें निहित रखकर ही कविने नायकका उत्तरोत्तर विकास दिखलाया है। अत आध्यात्मिक साधनाकी व्यंजना उत्तरोत्तर वर्द्धमान है। कथावस्तु आरंभसे ही पाठक और श्रोताके मनमें जिज्ञासाके साथ यह द्वंद उत्पन्न कर देती है कि भवदेवकी भूमिकामें जंबूस्वामी किष्ट प्रकार आत्मोद्धारके लिए प्रयास करता है।

कविने 'विषयोसे ठुकराया हुआ व्यक्ति आत्मसाधनाकी ओर अग्रसर होता है,' इस तथ्यकी यथार्थ पुष्टि की है। हिंदीके महाकवि तुलसीदासका जीवन भी इसी तथ्यका एक और उत्कृष्ट उदाहरण है। कथागठनमें भी कविने अपनी मौलिकताका परिचय दिया है। संघदासगणि, गुणभद्र एवं गुणपाल कथाकारके रूपमें हमारे सामने आते हैं, जबकि वीर कवि एक महाकाव्य रचयिताके रूपमें। कथाकार केवल कथातत्त्वोंके निर्वाहका ध्यान रखता है। जबकि वीर कविने वस्तुव्यापार-वर्णनों तथा यथास्थान छोटी-बड़ी अनेक अंशोंतः कथाओंका समावेश करके 'जंबूसामिचरिउ'में कथाका विकास महाकाव्योचित आयागके मध्य किया है। कविकी मौलिकता इस बातमें भी है कि उसने अपने नायकका प्रतिद्वंद्वी नायक भी कल्पित किया, यतः महाकाव्यमें प्रतिनायकका रहना आवश्यक है। विद्याधर रत्नशेखरका आस्थान वसुदेवहिंडी, उत्तरपुराण तथा प्राकृत जंबूचरियं इन तीनों ही पूर्ववर्ती ग्रंथोंमें नहीं है। कविने कन्या-प्राप्ति, विरक्त नायकके जीवनमें न दिखलाकर नायकके स्वामी श्रेणिकके जीवनमें दिखलायी है, और कन्याके अधिकारी श्रेणिकको युद्धमें न भेजकर नायक जंबूस्वामीको युद्धमें भेजा है। अत नायकके शौर्य, पराक्रम, साहस एव युद्धकला प्रवीणता दिखलानेका कविको पूर्ण अवसर प्राप्त हुआ, और उसने इस अवसरको निर्माण कर उससे पूर्ण लाभ भी उठाया। नायकके चरित्रके इन गुणोंका उद्घाटन किये बिना कविकी इस रचनामें महाकाव्यत्व नहीं आ सकता था। रत्नशेखर-विषयक आस्थानकी सृष्टि करके कवि अपनी कृतिमें महाकाव्यके संपूर्ण तत्त्वोंका यथोचित समावेश कर, अपने काव्यको महाकाव्योचित गरिमा प्रदान करते हुए अपनी मौलिक सूक्ष्म-वृत्तका परिचय देनेमें पूर्ण रूपसे सफल हुआ।

४. जंबूस्वामी : एक ऐतिहासिक कथापुरुष, कथाकी दीर्घ परंपरा और मूलस्रोत

जैन साहित्यकी ऐतिहासिक परंपरा भ० महावीरसे प्रारंभ होती है, जिनका निर्वाणकाल भारतीय इतिहास, साहित्य एवं सस्कृतिके स्वदेशी एव विदेशी लगभग सभी विद्वान् अब एक मतसे ५२७ ई० पू० अथवा ४७० वि० पूर्व मानते हैं।^१

१. नागवस्तु द्वारा भवदेवको बोध प्रदान करनेका वृत्त उत्तरा० २२ में राजल और रथनेमिके आख्यानसे सुलनीय है।

२. डॉ० ही० ला० जैन सा० सं० में जैन धर्मका योगदान पृ० २५-२६; पं० कैलाशचन्द्रशास्त्री : जैन सा० और इति० की पृवपीठिका पृ० २८७-३३७ आदि ग्रन्थ।

भ० महावीरके पश्चात् उनके प्रमुख गणवर इंद्रभूति गौतमका नाम आता है। वि० पू० ४७० में कार्तिक कृष्ण अमावस्याको प्रातःकाल महावीरका निर्वाण हुआ, उसी दिन सध्याकालमें गौतमको केवलज्ञान प्राप्त हुआ। बारह वर्ष तक केवली रूपसे धर्मोपदेश देते रहकर जिस दिन गौतम निर्वाणको प्राप्त हुए, उसी दिन महावीरके दूसरे प्रधान शिष्य सुधर्माको केवल्यकी प्राप्ति हुई और ये बारह वर्षों तक संघके प्रधान रूपसे धर्मोपदेश देते हुए विचरण कर निर्वाणको प्राप्त हुए। उसी दिन सुधर्माके प्रमुख शिष्य जंबू केवली पदको प्राप्त हुए, तथा जैन श्रमणसंघके प्रधानाचार्य अथवा कुलपति बने और अड़तीस वर्षों तक जैनधर्म व श्रुतका प्रचार-प्रसार करते रहकर वि० पू० ४०८ (ई० पू० ४६५)में निर्वाणगामी हुए। ये ही जंबू प्रन्तुत चरितके नायक जंबूस्वामी हैं। जैन परंपरामें इन्हें अंतिम केवली माना जाता है, तथा ये एवं इनकी शिष्य-संततिके द्वारा ही भ० महावीरके उपदेशोकी अर्द्धमागधी जैनागमके रूपमें सुरक्षा हो सकी यह ऐतिहासिक सत्य है। इस कारण जैन परंपरामें जंबूस्वामीका स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। गौतमको केवलज्ञान होनेसे लगाकर जंबूस्वामीको मोक्ष होने तक बीर निर्वाणके १२ + १२ + ३८ = ६२ (या स्वे० परंपरानुसार १२ + ८ + ४४ = ६४ वर्ष) पूर्ण होते हैं। जंबूस्वामीके पश्चात् दिगंबर परंपरानुसार विष्णु या नंदी १४ वर्ष, नंदिमित्र १६ वर्ष, अपरजित २२ वर्ष, गोवर्द्धन १९ वर्ष बीर भद्रबाहु २९ वर्ष, इस प्रकार वागामी १४ + १६ + २२ + १९ + २९ = १०० सी वर्षोंको अवधिमें ये पाँच श्रुतकेवली हुए, और कुल मिलाकर बीर निर्वाणके १६२ वर्ष पूरे हुए।

स्वैतंबर गुरु पट्टावलिगोके अनुसार बीर निर्वाणके बारह वर्ष पश्चात् इंद्रभूति (गौतम गोत्र) का निर्वाण हुआ और इनके आठ वर्ष, तथा बीर नि० के बीस वर्ष पश्चात् मुधर्मा (अग्नि वेम्बायन गोत्र) और सुधर्माके निर्वाण जानेके उपरांत चवालीस वर्षों तक केवलज्ञानी रूपसे धर्मोपदेश देते हुए विचरण करते रहकर जंबूस्वामी (काश्यप गोत्र) मोक्षको गये। इस प्रकार बी० नि० के चौसठ वर्षों तक तीन केवलज्ञानियोंकी यह परंपरा अविच्छिन्न रूपसे चली। जंबूस्वामीके बाद इनके समकालीन गुरुंबु प्रभव, जिन्हें दिग० आम्नायके साहित्यमें विद्युच्चर नामसे जाना जाता है, और जो हमारे चरित काव्यके एक अन्य प्रमुख पात्र हैं, वे ११ वर्ष तक संघके प्रधान रहे, इनके उपरांत गन्यमंत्र २३ वर्ष, यशोभद्र ५० वर्ष, संमूतिविजय ८ वर्ष और भद्रबाहु १४ वर्ष = ६४ + ११ + २३ + ५० + ८ + १४ अर्थात् बी० नि० १७० वर्ष।

उपर्युक्त दोनों गुरु-परंपराओंके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि जंबूस्वामीके निर्वाणकाल—अर्थात् बी० नि०के ६२ या ६४ वर्षों तक दोनोंकी गुरु शिष्य वंशावली एक समान है। जंबूके पश्चात्से इनमें स्पष्ट भेद पड़ जाता है। दिग० परंपरामें जंबूके उपरांत विष्णु या नंदिका नाम आता है, तथा गुरु-पट्टावलीमें कहीं भी विद्युच्चर (प्रभव) का नाम नहीं आता; जबकि स्वे० परंपरामें प्रभवके ११ वर्ष तक संघप्रधान रहनेका उल्लेख है। आगेके अन्य नाम भी भिन्न हैं। गुरु-शिष्य वंशानुक्रमके इस मतभेदमें पड़ना प्रस्तुत प्रसंगमें आवश्यक नहीं है। अतः जंबूस्वामी तककी मतभेद रहित वंशावलीको स्वीकार करके जंबूस्वामीके जीवन-चरितके विषयमें ऐतिहासिक दृष्टिसे यहाँ कुछ विचार किया गया है।

प्रस्तुत काव्यकृतियोंमें बीर कविने कहा है कि जंबूस्वामीके दीक्षा लेनेके अठारह वर्षोंपरान्त माघ शुक्ल सप्तमीके दिन प्रातःकाल सुधर्माको मोक्ष हुआ, और उसी दिन जंबूको केवलज्ञान; तथा सुधर्माके निर्वाणके अठारह वर्ष व्यतीत होनेपर जंबूको मोक्ष प्राप्त हुआ। ये दोनों मिलाकर (१८ + १८) छत्तीस वर्ष पूरे हुए। अब स्वे० एवं दिग० दोनों संप्रदायोंकी ऐतिहासिक गुरु-परंपरानुसार यदि बी० नि० के ६२ या ६४ वर्ष पीछे जंबूका निर्वाण माना जाये तो इस रीतिसे बीर कविके उपर्युक्त उल्लेखानुसार बी० नि० से २६ या २८ वर्ष पीछे गौतमका निर्वाण मानना होगा, जो अबतक उपलब्ध अन्य सभी जैन साहित्यिक-ऐतिहासिक प्रमाणोंसे सर्वथा विपरीत है। तिलोयपण्णतिके रचयिता यतिवृषभाचार्य (दूसरी-तीसरी शताई०) औरसेनी पट्टवंडागमके धरला टीकाकार बीरसेन, और गोम्मटसारके रचयिता नैमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती

(९ अ० ई०) एवं उत्तरपुराण (ई० ८९८ से पूर्व) के कर्ता गुणभद्र तथा अपभ्रंश महापुराण (या तिसद्विठ-महापुरिसगुणालकार) के प्रणेता महाकवि पुष्पदंत इन सभीने बी० नि० के १२ वर्ष पश्चात् गौतम, इनके १२ वर्षोपरान्त सुधर्मा, एवं सुधर्माके ४० वर्ष (तिलोयपण्णत्तिके अनुसार ३८ वर्ष) पीछे जंबूस्वामीको मोक्ष प्राप्त होना एक मतसे मान्य किया है ।

अब यदि हम अन्य उपलभ्य ऐतिहासिक सामग्रीको ओर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि म० बुद्धका निर्वाण ५४४ ई० पू० में हुआ । बुद्धके निर्वाणसे ८ वर्ष पहले ५५२ ई० पू० में अजातशत्रु गद्दीपर बैठा और लगभग उसी समय राजा श्रेणिक विविसारकी मृत्यु हुई । जंबूस्वामीके जन्मके संबंधमें स्वयं म० महावीरसे अथवा कहिए गौतम गगधरसे राजा श्रेणिक विविसारने प्रश्न किये, ऐसा उल्लेख सभी जैन साहित्यकारोंने किया है । तदनुसार जंबूका जन्म श्रेणिकके स्वर्गवाससे कुछ काल पूर्व अथवा उसीके आसपास लगभग ५५२-३ ई० पू० में होना चाहिए । और ऐसा होना असंभव भी नहीं है कि जंबूस्वामीकी आयु अस्ती धर्म न होकर उससे अधिक नब्बे वर्ष रही हो । और कविने और उसके अनुसार ब्रह्म जिनदास (१३ अ० वि०) तथा राजमल्ल (१७ अ० वि०) ने यह भी कहा है कि जंबूस्वामीने राजा श्रेणिक विविसारके राज्यकालमें ही दोसा अंगीकार की थी, और राजाने स्वयं उनका दीकोत्सव बड़े धूमधामसे मनाया था । इस कथनपर विचार करनेसे जंबूका जन्म ५५२ ई० पू० में श्रेणिककी मृत्युके कमसे कम १६, १७ वर्ष पूर्व अर्थात् ई० पू० ५६८-६९ में मानना पड़ेगा, और ऐसा माननेसे जंबूका आयुष्य ४६३ ई० पू० से ५६८ ई० पू० तक लगभग १०५ वर्षका, तथा गौतम इंद्रभूति, सुधर्मा एवं जंबू तीनोंके केवलज्ञान कालके संबंधमें इन्के तथा दिग० दोनो संप्रदायो-द्वारा स्वीकृत कालक्रमका खंडन करना होगा, जिसके लिए हमारे पास कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है । अतः और कविका यह कथन ऐतिहासिक दृष्टिसे समीचीन प्रतीत नहीं होता ।

इसी प्रकार औरके अनुसार सुधर्मा और जंबूका केवली रूपमें रहनेका समय कुल १८, १८ वर्ष माननेमें भी ऐतिहासिक साक्ष्य विरुद्ध है, यह ऊपर ही कहा गया है । संबंधमें ही और कविके समझ ऐसी कोई गुरु-पट्टावलिर्वाही रही हो, जिनमें गुरु-वंशावलीके संबंधमें कोई ऐसे उल्लेख रहे हो, पर वर्तमानमें उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्रीसे संग्रहीत तथ्योंसे यह सर्वथा विपरीत है । इसी प्रसंगमें इन्के आम्नायमें प्राप्य गुरु-पट्टा-वलियोंमें गौतम, सुधर्मा एवं जंबूके संबंधमें जो कुछ जानकारी उपलब्ध होती है, उसपर विचार कर लेना उचित है । इनके अनुसार इंद्रभूति गौतमका जन्म ई० पू० ६०७ में हुआ । वे ५० वर्ष गृहस्थ रहे तथा ३० वर्ष साधु और ई० पू० ५२७ में म० महावीरके निर्वाणके दिनसे ई० पू० ५१५ तक १२ वर्ष केवली रहकर निर्वाणको प्राप्त हुए । सुधर्माका जन्म भी ६०७ ई० पू० हुआ । वे भी ५० वर्ष गृहस्थ रहे, ३० वर्ष साधु, १२ वर्ष तक गौतमके केवलज्ञान कालमें सब प्रघान तथा ८ वर्ष (दिग० परंपरानुसार १० वर्ष) केवली, इस प्रकार ती वर्षकी आयुमें लगभग ५०७ ई० पू० इनका निर्वाण हुआ । जंबूस्वामीका जन्म ५४३ ई० पू०; दोसा १६ वर्षकी अवस्थामें म० महावीरके निर्वाणसे कुछ पीछे ५२७ ई० पू०; केवलज्ञान ५०७ ई०

१. म० बुद्धके निर्वाणकालके संबंधमें भी बहुत मतभेद हैं, तथापि अब सामान्य रूपसे सभी विद्वान् यह स्वीकार करते हैं कि म० बुद्धका निर्वाण म० महावीरके निर्वाणसे १६ वर्ष पहले लगभग ५४४ ई० पू० में हुआ; द्रष्टव्यः बौद्धधर्मके ३५०० वर्ष ।
२. पं० कै० च० शास्त्री : जैन सा० इति० पृष्ठीयिका पृ० ३०३-२१२ ।
३. जंबूके जन्मके संबंधमें महाकवि-पुष्पदंतने लिखा है कि जिस रात जंबू गर्भमें आयेंगे, उसी रात म० महावीरका निर्वाण होगा (म० पु० १००-२) । तदनुसार जंबूस्वामीका जन्म और निर्वाणके एक वर्ष पश्चात् ई० पू० ५२६ में मानना होगा । महाकवि पुष्पदंतका यह कथन भी अन्य किसी ऐतिहासिक उल्लेखसे समर्थित न होनेसे माननीय नहीं है ।
४. जैन सत्यप्रकाश वर्ष ४, अंक १-२ पृ० ४९-७४ : मुनि न्यायविजयजीका 'गुरु-परंपरा' नामक लेख ।

पू० तथा निर्वाण ४६३ ई० पू० । जंबूस्वामीके जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान एवं मोक्ष कालके संबंधमें अद्यावधि उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्रीके आधारपर यह मत ही सबसे अधिक समीचीन है ।

उपर्युक्त रीतिसे जंबूस्वामीके जीवनकालके संबंधमें चर्चा करनेके उपरांत अब हमें उनके जीवन चरित विषयक प्राचीनतम उपलब्ध सामग्री, कथाकी पूर्व परंपरा एवं मूलस्रोतोंपर विचार करना है । इस विषयमें हमारा ध्यान सर्वप्रथम अर्द्धभाग्यो जैनागमोपर जाता है । जैन संप्रदायकी इस पुरातन पवित्र साहित्य संपत्तिका अवलोकन करनेसे हमें जंबूस्वामीके संबंधमें इतनी सूचनाएँ प्राप्त होती हैं कि वे महावीर स्वामीके पाँचवें गणधर अग्निवेश्यायन गोश्रीय आर्य सुघर्मा (सुघर्मस्वामी) स्थविरके प्रधान शिष्य थे, और कश्यप गोत्रके थे । संघमें दीक्षा लेनेके उपरांत इन्होंने आर्य सुघर्मसि क्रमशः एक-एक जैनागमको कहनेका अनुरोध किया, व आर्यसुघर्मानि जैसा भ० महावीरके मुखसे सुना था, तदनुसार जंबूको एक-एक आगम कहकर सुनाया ।^१ स्थान-स्थानपर जंबूस्वामीने श्रमण भ० महावीरके धर्म व सिद्धांतके संबंधमें भी अनेक प्रश्न किये और सुघर्मानि उनका उत्तर दिया ।^२ इस प्रकार समस्त जैनश्रुत गुरु-शिष्य परंपरासे भ० महावीरसे आर्य सुघर्माको, सुघर्मसि आर्य जंबूको एवं जंबूसे उनकी शिष्य संततिको प्राप्त हुआ । जंबूस्वामीके जीवनके संबंधमें इससे अधिक सामग्री आगम साहित्यसे प्राप्त नहीं होती ।

आगमिक परंपराके अध्ययनके उपरांत कालक्रमसे यतिवृषभाचार्य (दूसरी तीसरी शती ई०) कृत तिलोय-पण्णत्तिका नाम आता है, जिसमें जैन दृष्टिसे त्रैसठ पौराणिक महापुरुषों [२४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव (नारायण), ९ प्रतिवाचुदेव (प्रतिनारायण)] के जीवनचरित अथवा जैन महापुराणों व चरितग्रंथोंकी सामग्री वीज रूपमें नामावलियोंके रूपमें प्राप्त है, जिनमें माता-पिता, वध, जन्मस्थान, निर्वाणस्थान व महापुरुषोंके जीवनसे संबद्ध प्रमुख व्यक्तियों, स्थानों व घटनाओंके नाम मात्र उल्लिखित हैं । परंतु जंबूस्वामीके संबंधमें इस ग्रंथमें केवल इतनी ही संक्षिप्त सूचना उपलब्ध होती है कि जिस दिन भ० महावीर सिद्ध हुए उसी दिन गौतम गणवरको केवलज्ञान प्राप्त हुआ । पुनः गौतमके सिद्ध होनेपर उनके पश्चात् सुघर्मस्वामी केवली हुए ।^३ सुघर्मस्वामीके मुक्त होनेपर जंबूस्वामी केवली हुए । पश्चात् जंबूस्वामीके भी मोक्षको प्राप्त होनेपर फिर कोई अनुश्रुत केवली नहीं रहे ।^४ गौतमादिक केवलियोंके धर्म-प्रवर्तनकालका प्रमाण पिंड (एकत्र) रूपसे वासठ वर्ष है (१२ + १२ + ३८ = ६२) ।^५

तिलोयपण्णत्तिके पश्चात् जंबूस्वामीके जीवनचरितकी दृष्टिमें सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ संघदास गणि (५ वी-छठी शती ई०) कृत वसुदेव-हिंडी है, जो न केवल प्राचीन ही है, बल्कि पर्याप्त विशद भी है, और जिसे पीछेके समस्त जंबूचरितके रचयिता कवियों, लेखकोंका प्रमुख आधार ग्रंथ बननेका गौरव प्राप्त है ।

१. भागमोंमें जंबूस्वामी विषयक उल्लेखोंके लिए देखें : जाया० १.१.१; सूय० १.१; २.१.१; २.३.४३; २.४.६३ और २.७.८१; ठाण० १.१; समवाय० १.१; भगवती० १.१.४; नाया० १.४; ५.३१-३२; उवासग० १.१ आदि; अंतगड०, अणुत्तर० एवं विवाग० के अध्ययनोंका प्रारंभ व अंत; पण्ह० चाग० में पाँच आस्रवद्धार, पाँच संवरद्धार आदि प्रश्नोंका प्रकरण; नंदी० गाथा २२; निशीथ चू० २, पृ० ३६०; कल्पसूत्र-विचयविजय पृ० २४९; कल्पसूत्र-अर्मविजय पृ० १६२; कल्पसूत्र-स्थविरावलीचरित ५.५-७; निरयावलिया १.१; तिथोगलिय ६९८ ff; व्यवहार भाष्य १०, ६९९; दसवैका० चू० पृ० ६ ।
२. देखिए सूय० ५.१.१-२; ५.२.१; ६.१.१-२; ८.१.१; ९.१.१, ११.१.१-३ ।
३. तिलोयपण्णत्ती ४.१४७६ ।
४. वही ४.१४७७ ।
५. वही ४.१७७८. इससे अगली गायामें एक और महत्वपूर्ण उल्लेख है कि केवलज्ञानियोंमें अंतिम प्रोधर कुंडकगिरिसे सिद्ध हुए (४.१४७९) ।

इसके संबंधमें विद्वानोंका यह मत है कि वसुदेव हिंडो^१ गुणाढ्य कृत पैशाची बृहत्कथाका सबसे प्रामाणिक जैन रूपांतर है।^२ भाषाको अपेक्षा भी यह गुणाढ्यकी पैशाची बृहत्कथाके सबसे अधिक निकट है।^३

वसुदेव-हिंडोके कथाकी उत्पत्ति^४ नामक प्रथम अधिकांशमें मंगलाचरणके उपरांत जंबूस्वामीकी कथा इस प्रकार प्रारंभ होती है—प्रथमतः सुधर्मास्वामीने जंबूस्वामीको प्रथमानुयोग श्रयमें तीर्थकर, चक्रवर्ती तथा दशार वंशके व्याख्यानके प्रसंगमें आये हुए वसुदेवचरितको कहा था। अतः वसुदेवचरित प्रारंभ करनेसे पूर्व जंबूस्वामी तथा उनके शिष्य प्रभवकी उत्पत्तिकी कथा कहनी चाहिए। यह कथा इस प्रकार है :

मगध देशके राजगृह नामक नगरमें श्रेणिक नामका राजा था, व चेलना रानी। इनका कूणिक नामक पुत्र था। इसी राजगृहमें ऋषभदत्त नामक सेठ था, जिसकी धारिणी नामक पत्नी थी। एक बार वह अर्द्ध-जाग्रत अवस्थामें निम्न पाँच स्वप्न देखकर जाग उठी—(१) धूम्ररहित अग्नि (२) पद्मसरोवर (३) फलभारसे नम्र शालिक्षेत्र (४) घबल मेघके समान श्वेत व उद्वत चतुर्दंतयुक्त हाथी, एवं (५) वर्ण-गंध व रसपूर्ण जवूफल। उसी रात्रिकी स्वप्नसे च्युत होकर विद्युन्माली देवका जीव धारिणीके गर्भमें अवतीर्ण हुआ। नवमास पूर्ण होनेपर बालकका जन्म हुआ, एव बालकके बड़े होनेके साथ-साथ उसके रूप व गुणोंकी स्थािति सब ओर फैलती गयी।

उसी कालमें सुधर्मास्वामी राजगृहके गुणशील नामक चैत्यमें संव सहित पधारे। जंबूस्वामी सब लोगोके साथ आर्य सुधर्माके दर्शनको गये। आर्य सुधर्माका उपदेश सुनकर जंबूको वैराग्य हो गया, और दीक्षाके लिए माता-पिताकी अनुज्ञा लेने हेतु घरकी ओर चले। नगरके एक द्वारपर भीड़ देखकर सारथीको रथ घुमाकर दूसरे द्वारसे चलनेको कहा। वहाँ शत्रु सैनिकोके घातके लिए शिला-शतघ्नी आदि शस्त्रोंको डोरसे लटकते हुए देखकर उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि यदि अचानक कोई शस्त्र ऊपर आकर गिरे तो बिना नत लिये ही मेरी मृत्यु होगी। यह विचार मनमें आते ही जंबू रथ लौटाकर पुनः आर्य सुधर्माके पास गये, और आजन्म ब्रह्मचर्यका व्रत लेकर घर आये। आकर माता-पितासे दीक्षा लेनेकी अनुमति माँगी। तब माता-पिताने कहा कि धर्म श्रवण सब कोई करते हैं, पर कोई वैराग्य तो नहीं लेता। इसपर जंबूस्वामीने कहा— धर्म श्रवण करनेपर किसीको तत्त्वार्थोंका निश्चय देरमें होता है, और किसीको सुरंत हो जाता है, तथा वह धर्मके मार्गपर लग जाता है। इस संबंधमें जंबूस्वामीने उन पाँच मिश्रोंकी कथा सुनायी जो एक बार उद्यानमें गये। वहाँ तीर्थकरका दर्शन कर व उनका उपदेश सुनकर परस्पर विचार-विनिमय करके वहीके वही दीक्षित हो गये, तथा अंतमें केवली होकर मोक्ष गये। अतः आप मुझे दीक्षा लेनेकी अनुमति दें। फिर भी माता-पिताने जंबूको विपुल संपत्तिसे दुर्लभ विषयभोग भोगकर पीछे दीक्षा लेनेको कहा। इसपर जंबूस्वामीने उस वानरकी कथा कही जो अपनी विषय लोलुपताके कारण अंतमें शिलाजीतमें चिपककर दुःखद अंतको प्राप्त हुआ। नानाप्रकारसे समझानेपर भी जब जंबूस्वामी नहीं माने तो माताने समुद्रश्री, सिधुमती आदि उन आठ कन्याओंके माता-पिताके पास यह समाचार भिजवाया जिनका बहुत पहलसे ही जंबूके साथ वाग्दान किया जा चुका था। ऐसा जानकर कन्याओंने कहा जंबूस्वामीसे हमारा वाग्दान हो चुका है, अतः जो धर्म

१. प्राकृतमें हिंडघातुका अर्थ है चलना, फिरना, परिभ्रमण करना, अतः वसुदेव-हिंडीका अर्थ हुआ 'वसुदेव (वासुदेव कृष्णके पिता) का परिभ्रमण (वृत्तांत)।' इस ग्रंथमें वसुदेवके गृह त्यागकर चले जानेके उपरांत अनेक वर्षोंके परिभ्रमण व नाना कन्याओंसे परिणयके वृत्तांत एव अनुभव कहाना रंजित साहित्यिक शैलीमें वर्णित हैं।

२. वसुदेव हिंडी प्र० खंड, गुज० अनु० भूमिका पृ० ९-१३; प्रकाशक जैन आश्रमार्जुन समा भावनगर।

३. वही, भूमिका पृ० १६

४. इस अंशको विद्वानोंने शुद्ध जैन-कथाभाग कहा है; वही पृ० १२।

उनका, वही हमारा। कन्याओंका ऐसा निम्नव्य जानकर जंबूस्वामीसे उन कन्याओंके माघ विवाह कर लेनेका अनुरोध किया गया, जिसे स्वामीने स्वीकार किया। उचित त्रियि-मूहूर्तमें विविपूर्वक विवाह मंस्कार मंत्र हुआ और जंबू वधुओंके साथ घर आकर वासगृहमें प्रविष्ट हुआ।

उसी कालमें जयपुरवासी विन्ध्य राजाका कलानिपुण प्रभव नामक पुत्र था, जो पिताके द्वारा छोटे भाई प्रभुको राज्य दे देनेसे रुष्ट होकर राज्य छोड़कर चला आया था, और विन्ध्याचलकी विषम तलहटीमें चोर सरदारोंके साथ चोरी करके जीवन यापन करता हुआ रहता था। जंबूस्वामीका विवाह एवं अर्परिमित दहेजकी बात सुनकर अपने साथी पाँच सी चोरोंके साथ छटवीसे निकलकर, रातके समय नगरमें प्रविष्ट हुआ। सालोद्घाटनी विद्यासे लाले खोलकर जंबूस्वामीके घरमें पहुँचा, तथा अवस्थापिनी विद्यासे बलसे सदके सो जानेपर चोर सोते हुए लोगोंके आभूषण आदि खोलने लगे। यह देखकर चोरकी विद्यासे अभ्रमाधित, अतः जागते हुए जंबूने वे निर्भीक वचन कहे—‘शामंत्रित लोगोंको स्वयं मत करना’। ये वचन सुनकर चोर स्तंभित जैसे हो गये। प्रभवने जंबूको देखकर अपना परिचय देकर कहा मेरी दो विद्याएँ ‘सालोद्घाटनी व अवस्थापिनी’ ले लीजिए, और मुझे अपनी ‘स्तंभिनी तथा मोचनी’ विद्याएँ दे दीजिए। इसपर जंबूने कहा—‘मुझे सांसारिक विद्याओंसे कोई प्रयोजन नहीं है। मैंने तो गणधरके पास संसारमोचनी-विद्या ग्रहण की है। प्रमात् होते ही घर-परिवार सब छोड़कर मैं दीक्षा लूंगा। जंबूके ऐसे वचन सुनकर प्रभव आश्चर्यचकित रह गया, व उसने भी यौवनमें मानुषिक विषयमुख भोगकर पक्व वयमें दीक्षा लेना उचित बतलाया। विषयमुखोंके संबन्धमें जंबूने प्रभवको ‘मर्वाबिदु स्वास्वाद’का दृष्टांत सुनाया (प्रस्तावना-५ ‘जंबूस्वामी चरित-को अंतर्कथाएँ’)।

पुनः प्रभवके यह पूछने पर कि किस दुःखके कारण तुम अकालमें स्वजनोंका त्याग करते हो, जंबूने गर्भावास दुःखके संबन्धमें ललितान्गकुमारका आख्यान सुनाया (वही : ‘जंबूस्वामीचरितकी अन्तर्कथाएँ’)।

इसीप्रकार जंबूने सांसारिक संबन्धोंकी वसारताके विषयमें कुवेरदत्त एवं कुवेरदत्ताका, पितरोंको पिंड-दानादि रूप लोकधर्मकी असंगतिके बारेमें महेश्वरदत्तका, तथा सांसारिक सुख व मोक्षमुखकी तुलनाके संबन्धमें एक कौड़ीके लिए सर्वस्व हार जाने वाले वनियेका, तथा धनके सदुपयोगके दाबत गोपयुष्कका, ये सब कथानक प्रभवको सुनाये। इस कथा-जातके उपरांत प्रभवको भी बोध हो गया। प्रातःकाल होते ही जंबूस्वामीने दीक्षाके लिए अभिनिष्क्रमण किया। जंबूद्वीपके अधिपति अनादत् (अणादिय) देवने स्वामीका अभिनिष्क्रमण महोत्सव मनाया। वैभारगिरि-पर सुवर्मा गणधरके पादमूलमें जंबूस्वामीने दीक्षा ली। आर्य सुवर्मानि प्रभवको जंबूके शिष्यरूपमें विहित किया। जंबूस्वामीकी माँ एवं बधुएँ भी सुखता आर्षिकाकी- शिष्याएँ हो गयीं। थोड़े ही समयमें जंबू श्रुतकेवली हो गये।

कालांतरमें आर्य सुवर्मा संवसहित विहार करते-करते चंपानगरीके पूर्णभद्र चैत्यमें पधारे। कृष्णक राजा उनकी बंदना करने आया, व अति स्वरूपवान जंबूस्वामीको देखकर उनके पूर्वकृत तप, त्याग, दान, शील आदिके संबन्धमें विशेष जानकारी चाही। इसपर आर्य सुवर्माने उत्तर दिया कि पूर्वकालमें तुम्हारे पिता श्रेणिकको भगवान् महावीरने जिस प्रकार यह कथा सुनायी थी, उसे कहता हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो। यह कहकर सुवर्माने केवली होने पर्यंत राजपि प्रसन्नचंद्रका कथानक विस्तारसे कहा (प्रस्तावना—५)। देवता राजपिका कैवल्योत्सव मनाने आये। भगवान्से यह जानकर श्रेणिकने पूछा इनके पीछे कौन केवली होगा। तभी महातेजस्वी विद्युन्माली देव अपनी चार देवियों सहित भगवान्की बंदना करने आया। उसकी ओर संकत कर भगवान्ने कहा—यह देव, जो कि सात दिन बाद देवगति त्याग करके मनुष्य गतिमें अवतीर्ण होगा। उसकी असाधारण, असामान्य तेजस्विताके विषयमें पूछने पर भगवान्ने श्रेणिक से कहा—

इसी जनपदमें सुग्राम नामक गाँवमें आर्यव नामका एक राष्ट्रकूट रहता था। उसकी रेवती नामक पत्नी थी। उनके दो पुत्र भवदत्त व भवदेव हुए। बड़ा भवदत्त युवावस्थामें ही वीक्षित हो गया। कुछ काल

वाद साधुसंघ विहार करते-करते पुनः उसी गाँवमें आया। भवदत्त अनगार छोटे भाई भवदेवको दीक्षित करनेकी इच्छासे गुफकी अनुज्ञा लेकर भवदेवके घर गया। उसी समय भवदेवका विवाह हुआ था, और वह कुलकी रीतिके अनुसार नवपरिणीता नागिलाका मंडनकर्म कर रहा था। भाईका आगमन सुनकर भवदेव नागिलाको अर्द्धमंडित ही छोड़कर बाहर आया। आहारादि करके भवदत्त अनगार घरसे निकले व धी का भरा पात्र भवदेवके हाथमें दे दिया। भवदेवके भाईके पात्रको लेकर शीघ्रसे क्षीघ्र घर लौटनेकी इच्छा करता हुआ बेमनसे भाईके साथ चला, व संघमें जाकर भाईकी सम्मान रखाके लिए वीक्षा ले ली। बहुत काल बाद भवदत्त अनगार समाधिमरण करके स्वर्ग गया।

इधर भवदेव मनमें पत्नीका ध्यान करता हुआ ब्रह्मचर्य पालने लगा। एक वार जब साधुसंघ पुनः उसी गाँवमें आया, तो गुफको कहे बिना ही अपने घरकी ओर चल दिया, और गाँवके बाहर ही एक मंदिरमें विश्राम करने बैठा। तभी उसकी व्रतोपवाससे क्षीण देहवाली पत्नी नागिला एक ब्राह्मणीके साथ उसी मंदिरमें पूजा करने आयी। भवदेव उसे पहचान नहीं सका, तथा उससे अपने माता-पिता और पत्नीके विषयमें पूछा और नागिलासे मिलनेकी इच्छा व्यक्त की। नागिलाने उसे पहचानकर अपना परिचय दिया, व भवदेवको बोध देनेके लिए भोगपिपासाके कारण पाडा बनने वाले ब्राह्मणपुत्रकी कथा सुनायी (प्रस्तावना-५)। इतनेमें ब्राह्मणीका पुत्र कहींसे दूध-माक जीमकर वहाँ आया व माँसे बोला— माँ एक थाली लाओ, उसमें अतिशय स्वादिष्ट दूधपाकका वजन कलंगा। अभी अन्यत्र जीमने जाता है। पुनः भूख लगनेपर अपने वमित दूधपाकको खालेंगा। माँने कहा वेटा वजन करके खाया नहीं जाता। भवदेवने भी उसे धिक्कारा। इसी पर नागिलाने भवदेवको बोध दिया—तुम भी वमित (त्यक्त) नागिला और भोगीका भक्षण करना चाहते हो। इससे भवदेवको प्रतिबोध हो गया।

इसके पश्चात् भवदेवने कठोर तप किया, व सल्लेखनापूर्वक मरकर स्वर्ग गया। उधर भवदत्त देवायु पूरी करके पुष्कलावती देशमें पुंडरीकिणी नगरीमें वज्रदंत चक्रवर्ती व यशोधरा राजाकी सागरदत्त नामक पुत्र हुआ एवं युवावस्थामें ही एक वार मेरुपर्वतके समान महामेघको क्षणभरमें विलीन होते देखकर विरक्त हो गया और मुनिसंघमें दीक्षा ले ली। इधर भवदेवका जीव देवायु पूरी करके उसी देशमें वीतशोका नगरीमें पद्मरथ राजाकी वनमाला देवीसे शिवकुमार नामक पुत्र हुआ। युवा होने पर अनेक राजकन्याओंके साथ उसका परिणय करा दिया गया और वह भोग-विलासपूर्वक रहने लगा।

कालांतरमें सागरदत्त मुनि संघसहित विचरते हुए वीतशोका नगरीमें पधारे। उन्हें देखकर शिव-कुमारको बड़ा स्नेह उमल आया। कारण पूछनेपर मुनिने अपने व शिवकुमार दोनोके अवतकके दो पूर्व-जन्मो [भवदत्त—भवदेव (१), स्वर्गमें देवता (२)] की कथा सुनायी। यह सुनकर शिवकुमारको वैराग्य ही गया। माता-पितासे वीक्षा लेनेकी अनुमति न मिलने पर घरमें ही रहते हुए मंत्रीपुत्र दूधबर्गके हाथों कैवल काजी व अंबिल आहार लेते हुए बारह वर्षों तक उसने कठोर तप किया, और पीछे समाधिपूर्वक देह-त्याग करके स्वर्गमें विद्युन्माली नामक महातेजस्वी देव हुआ। आठसे सात दिनों बाद अपनी देवायु पूरी करके यह राजगृहमें ऋषभदत्त सेठकी धारिणी नामक पत्नीके गर्भमें पुत्र रूपमें अवतरित होगा। यह बात सुनकर जंबूद्वीपका अधिपति अनादृत देव अपने कुलकी प्रशंसा करता हुआ उठकर नाचने लगा। कारण पूछनेपर भगवान्ने श्रेणिकको कहा—

इसी नगरमें मुनिमति नामका श्रेष्ठपुत्र था। ऋषभदत्त व जिनदास उसके दो पुत्र थे। ऋषभदत्त शील सदाचारवान् था, जबकि जिनदास मद्य-वेश्या एवं जूएका व्यसनी। ऋषभदत्तने जिनदाससे कोई संबंध न होनेकी घोषणा कर दी। एक वार एक सेनापतिके साथ जूआ खेलते समय जिनदासने कुछ धोटाला किया। इसपर सेनापतिने उसे शस्त्रसे मारा। यह दुःखद समाचार मिलते ही ऋषभदास सुरते आया और औपधोपचार निमित्त जिनदासको घर ले गया। तब जिनदासको भारी पश्चात्ताप हुआ। भाईसे अपने कुल्योकी क्षमा माँगकर, उससे सदुपदेश लेकर, भावत. समस्त आरंभ परिग्रहको त्याग कर अनशन धारण-करके, सम्मत् आराधना करते हुए, समाधिमरण करके जिनदास स्वर्ग गया। वही यह जंबूद्वीपका अधिपति

अनादृत नामक देव है। मेरे कुलमें अंतिमकेवली होगा, ऐसा जानकर यह देव अपने कुलकी प्रगंसा करना हुआ प्रसन्नताके भावावगमे नाच रहा है। भगवान्के मुखसे यह सारा वृत्तांत सुननेके अनंतर वह देव भगवान्की वंदना करने उनके समवशरणसे उठकर अपने देवलोकको चला गया।

विद्युन्माली देव भी वहाँमें चला गया। पीछे उसकी चारों देवियोंके पूछनेपर प्रसन्नचंद्र केवलीने बताया कि देवलोकमें विद्युन्माली देवसे वियोग प्राप्त कर, राजगृहीमें श्रेष्ठिपुत्रियोंके रूपमें जन्म लेकर तुम लोगोका पुनः संगम होगा, और तुम लोग भी उसके साथ समय धारण करके स्वर्गमें देव बनोगी। केवलीके ऐसे वचन सुनकर देवियाँ भी उनकी वंदना कर चली गयीं।

'वसुदेव-हिंडो'में उपलब्ध जंबूचरितका संक्षेपमें अध्यायन कर आपे वृष्टिपात करनेसे कदाकी एक और परंपरा हमारे सामने आ जाती है। वह है गुणभद्राचार्य कृत उत्तर पुराण, जिसकी रचना ८९७ ई० से पहले ही पूर्ण की जा चुकी थी। उत्तर पुराणमें आदि तीर्थंकर 'ऋषभ जिन'को छोड़कर शेष बासठ शलाका पुरुषो (पौराणिक जैन महापुरुष) का जीवन चरित विस्तारसे वर्णित है। उत्तर पुराणके छिहत्तरवें पर्वमें १ से लगाकर २१३वें श्लोक तक जंबूस्वामीकी कथा संक्षेपमें इस प्रकार वर्णित है :—

एक बार भ० महावीर विहार करते-करते राजगृह नगरमें आये, और संघसहित विपुलाचल पर्वतपर पधारे। राजा श्रेणिक भगवान्के दर्शनको आया व उनकी स्तुति की। फिर गणघर गीतमकी स्तुति करके, मार्गमें देवे हुए घर्मरुचि मुनिके ध्यानमें लीन होनेपर भी मुखपर विकृत भाव होनेका कारण पूछा। गीतम स्वामीने संक्षेपमें घर्मरुचि मुनिका संपूर्ण वृत्तांत सुनाकर उनके मुखपर विकृत भाव आनेका कारण बतलाया और श्रेणिकने कहा—जाओ, उनके कपाय-भाव शांत करो। श्रेणिक गया, और गणघरके कथनानुसार मुनिको बोध देकर उनके भाव शांत कर, उन्हें प्रसन्न कर आया। कुछ ही क्षणोंमें घर्मरुचि मुनिको केवलज्ञान हो गया। इंद्रादि देवोंने आकर उनकी पूजा की और श्रेणिकने भी; तथा भगवान्के पास आकर गणघरसे पूछा कि इनके वाद सबसे पीछे स्तुति करने योग्य कौन होगा ? इतनेमें विद्युन्माली देव अपनी चारों देवियों सहित वहाँ आ पहुँचा और भगवान्की वंदना कर यथास्थान बैठा। उसकी ओर संकेत कर गणघरने कहा—यह अंतिम केवली होगा। आजसे सातवें दिन यह स्वर्गसे च्युत होकर इसी नगरके सेठ अर्हदासकी स्त्री जिनदासके गर्भमें आयेगा। इसके पहले जिनदासी पाँच स्वप्न देखेगी—हाथी, सरोवर, धानका खेत, ऊर्ध्वशिखा निर्धूमानि, व देवकुमारों-द्वारा लाये हुए जामुनके फल। उसका नाम जंबूकुमार होगा, जो बहुत रूपवान्, भाग्यवान्, कातिमान्, सर्व कलाकुशल व योवनके आरंभसे ही विकार रहित रहेगा। मैं पुनः इसी विपुलाचलपर सुघर्म गणघरके साथ आऊँगा। चेलिनीका पुत्र इय नगर (राजगृही) का राजा कूणिक मेरा धर्मोपदेश सुनने आयेगा व जंबूकुमार भी उपदेश सुनकर विरक्त होकर दीक्षा लेना चाहेंगा, पर अपने भाई-बंधुओंके आग्रहके कारण ऐसा नहीं कर सकेगा। फिर नगरके सागरदत्तादि चार सेठोंकी कन्याओंके साथ उसका विधिपूर्वक विवाह होगा। और विवाहके उपरान्त भी वह बधुओंके साथ आवास महलमें निविकार भावसे पृथिवीतलपर बैठेगा। मेरा पुत्र अपनी बधुओका वशवर्ती हुआ या नहीं, यह देखनेकी आकुलतासे उसकी माँ स्नेहवश अपने आपको छिगाकर वही खड़ी होगी। उसी समय पीदनपुर नगरके राजा विद्युद्वाजकी रानी विमल-मतीसे उत्पन्न हुआ विद्युत्प्रभ नामका चौर, जो अदृश्य होने आदि रूप अनेक विद्याओका जानकार होगा, चोरी करने अर्हदासके घर आवेगा। जंबूकुमारकी माँकी जागी देखकर अपना परिचय देकर उससे इतनी रात तक जागनेका कारण पूछेगा। माँसे सब बातें जानकर उससे प्रभावित अपने कर्मोंकी निंदा व विषकार तथा जंबूकुमारकी महान् विरक्तिके संबंधमें सोचता हुआ वह जंबूकुमारको समझाने हेतु उसके वासगृहमें आवेगा, जहाँ जंबूकुमार सब बधुओंके बीच निविकार भावसे बैठा रहेगा। वहाँ जाकर वह जंबू-

१. वसुदेव-हिंडामें घर्मरुचि मुनिके स्थानपर प्रसन्नचंद्र राजर्षिक कथा पूरे चित्वास्ते दिव्या गथा है। (देक्षिण परिशिष्ट २)।

कुमारको मोठा सुग खानेवाले अँटनी कथा सुनाकर कहेगा कि इसी प्रकार उपस्थित भोगोंने छेड़कर स्वर्ग मुहूर्तकी इच्छा करके तू भी उस लँटके समान मृत्युको प्राप्त होगा। इसके उत्तरमें अँट दाह-उत्तरसे पीड़ित वैष्णवी कथा कहेगा (पृष्ठा०-५)। अंतमें जंबूकुमारके तर्जिबे विद्युच्चरको भी बोध प्राप्त होगा, तथा अँटस्वामीनी भी एवं बधुएँ भी संसारसे विरक्ति भावको प्राप्त होंगी। जंबूस्वामीके वैराग्य भावको जानकर उसके सब स्वजन, सेना सहित कुण्डिल राजा व अनादृत देव आकर उनका दोषा अभिप्रेक्षित करने मनायेंगे। तब जंबूकुमार दिव्य यानपर उड़कर वड़े जनसमुहके साथ विपुलाचलके शिखरपर मेरे ही पास आवेगा, तथा विद्युच्चर और उसके ५०० भृत्योंके साथ मुवर्न गणवरके पास बंधा लेगा। कैवलनातके वारह वर्ष बाद मुझे निवाप होगा, तब मुवर्नको कैवल्य लाभ। इसने वारह वर्ष बाद जब मुवर्नमांजि नोक होगा, तब जंबूको कैवल्य लाभ, और ४० वर्ष तक वे केवली अवस्थामें वनोंमें रहेंगे हुए विहार करते रहेंगे। इस कथाको सुनकर अनदृत गानक देव अपने वंशका नाशान्ध्यागत करता हुआ उठकर भावने लगा। श्रेयिज्ञके पुछनेपर गौतमने अनदृत देव (बनु० हिंछीमें अनदृत देव) का पूर्वजन्म अति संक्षेपमें कहा—अहंदायका भाई शिवदास पद्मनाभोंमें पड़कर दुखवस्थाको प्राप्त होकर पदवापाप करके मरकर देव हुआ।

इस कथाके कहु कुञ्जेपर श्रेयिज्ञने विद्युत्मांको देवका पूर्वजन्म पूछा। आगेकी संपूर्णकथा, शिवकुमार और मागवदत्त तथा भवदेव और भवदत्तके जन्मों तथा चारों देवियोंके आगामी जन्ममें जंबूस्वामीनी पत्नियाँ बननेका वृत्तान्त सब कुछ बधुदेव हिंछीके अनुमार है। अंतर केवल इतना है कि भवदेव-भवदत्तके जन्म स्थानका नाम बूड नामक गाँव, गिता राजद्रुष्ट नामक वैश्य, भवदेवकी बहूका नाम चाणिकाले स्थानपर नागधी, और भवदेवकी बहू देनेका निमित्त नागधी नहीं एक गणिनीकी बतलाया गया है। गणिनीके कदमानुसार नागधीकी वारिद्रय आदिसे पीड़ित कुण्डल्याकी देखकर भवदेवकी संसारकी वसाराता एवं देहकी क्षयभंगुरताका बोध प्राप्त होकर सच्चा वैराग्य उत्पन्न हो जाता है।

संबद्ध गणि हृद बधुदेव-हिंछी तथा गुणमत्र हृत् उत्तर-गुणपत्ने अतिरिक्त (परंतु कालकी दृष्टिसे इन दोनोंके बीच) जंबूस्वामीके अंतिम भवनी कथाके लगभग पूर्णतया समकाल बूचरी कथा हरिमत्र हृत् समराइस्व-कथा (८वीं शती ई०) के नौवें भवमें प्राप्त होती है। कथा संक्षेपमें निम्नप्रकार है - कुमार समरादित्य बड़े ही पतिमाधाली, विद्यापू, शौर्य-वीर्य-कैयँ आदि सर्वगुण एवं रूप-यौवन संपन्न राजकुमार थे। परंतु पूर्वजन्मों के अज्ञात संस्कारोंके कारण बाल्यकालमें ही उन्हें भोगोंसे विरक्ति थी। फिर भी पिताके अति आग्रहके कारण उन्होंने वेद-शास्त्रोंके साथ विवाह किया, परंतु वे उनके रूप-यौवनसे किंचित् भी विचलित नहीं हुए, और बहूशोकी वे प्रसन्न अस्त्रियोंके साथ बैठकर कथा-वाचा करते रहे। इसी प्रसंगमें उन्होंने रति रात्री तथा शुभंकरकुमार के अनुष्ठित अनुरागकी कथा (जंबूसामिचरितमें विप्रना नामक रात्री और ललितां-कुमारकी कथा किंचित् भेद लिये हुए शेष पूर्णतः समराइस्वकथाके अनुरूप) सुनाकर दोनों बधुशोको समसाया, और निम्न शब्दोंमें अनु-रागकी सच्ची परिभाषा भी बतलायी : 'परमहित-भोजकी प्राप्तिमें अनुराग और अपने ज्ञानोपपन्नको उत्साही प्रेरणा देना।' बधुशोके द्वारा विषय-भोग त्याग दिये जानेपर, उनकी इस शुभ भावनापर व्याज करते-करते शुभंकर कुमारको धरने रहते ही अवबिमान हो गया, और नाका कण्ठोंके द्वारा अपने माता-पिताको भी समझाकर कुमार समरादित्यने जिम-बीजा ले ली। देवताजोने आकर उनकी पूजा की। -तर-म्यात् धीरे ही कालमें तप करते हुए मूनि समरादित्यको ब्रह्मचर्य कैवल्य तथा मोक्षकी प्राप्ति हुई। जंबूस्वामीके आख्यापने इसका सादृश्य उत्पन्न स्पष्ट है, अतः ललितेकी आविष्कृतता नहीं।

जर्मनह मूरि-द्वारा विरचित 'धर्मपदेशमाला-विवरण (वि० सं० ११५) में 'दोषवाह्ये नूनुरपठिता-कथा'; महुविदु-कूप-नर-कथा, क्र० ७३; तथा 'ब्रह्म-माहात्म्या' धमत्तार्थवाहकथा, क्र० ८५-८६; ये सब कथाएँ पूर्णरूपमें विद्यमान हैं, और निश्चयतः ये ही कथाएँ गुणगलहृत् जंबूचरियँ (विक्रमनी ११ वीं शतीके

१. 'जंबूस्वामीचरित' की कुछ अंतर्कथालोकें समकाल भव्य कथाएँ भी समराइस्वकथामें उपलब्ध हैं, उनका मित्रेन आगे पद्यास्थान किया गया है।

पूर्व) की कथाओंका आदर्श यनी है। जंबूस्वामीकी कथा इसमें अति संक्षेपमें 'सत्पुरुषप्रभावे जम्बूकथा', (क० ५३), में निम्न गाथाके व्याख्यान रूपमें विद्यमान है :—

सुपुरिसचेटं दटुं वुजंते नूण कूरकम्मा वि ।

मुणि-जंबु-वंसणाओ चिलाय-पववा जहा बुद्धा ॥३॥

जम्बूद्वर्चानात् प्रभव. प्रतिबुद्धः। 'रायगिहे उसभदत्तस्स धारिणोए जह नेमित्तिप-सिद्धपुत्तादेसाओ जंबू नामो जाओ। जहा य संवडिडओ पहिबुद्धो, जणणि-जणय-वयणाओ जह अटुठ कन्वयाओ परिणोयाओ। ताहिं सह जुत्त-पडिबत्तोहिं धम्मजाग(र)णेण जग्गतस्स चोर-सहिओ पमवो बोहिओ। जहा हि दोन्नि वि पव्व-इया, तहा सुप्पनिद्धं' ति काल्ण न भणियं गंव-गोरव-भोरत्तणओ, नवर भुवणओ सवुद्धोए कायव्वो।

'जंबूसामिचरिउ' कथाकी पूर्व परंपराकी दृष्टिसे प्रथमतः वसुदेव हिंदी, द्वितीय गुणमद्र कृत उत्तर-पुराण, तृतीय समराइच्च कहा, एवं चतुर्थ जयसिंह सूरि कृत 'वर्मोपदेशमालाविवरण' पर विचार करनेके उपरांत जिस ग्रंथपर हमारी दृष्टि अनायास आकृष्ट हो जाती है वह है प्राकृत 'जंबूचरियं'। मुनि गुणपालकी यह कृति सुंदर रत्नोसे बीच-बीचमें जटित एक श्रेष्ठ मुक्तामालाके समान गद्य-पद्यमय मिश्रित शैलीमें रचित काव्य एवं साहित्य-रससे भरपूर एक उत्कृष्ट रचना है। इस ग्रंथका लेखनकाल अभीतक निःसंदिग्ध रूपसे निर्धारित नहीं किया जा सका है, परंतु इसके विद्वान् संपादक मुनि श्री जिनविजयजीने इसकी भाषा एवं शैलीपर गंभीरतापूर्वक विचारकर ग्रंथकी प्रस्तावनामें इसका रचनाकाल विक्रमकी ११वीं शती अथवा इससे पूर्व माना है। डॉ० नेमिचंद्रजी गार्गोने भी अपने ग्रंथ 'प्राकृत भाषा और साहित्यका आलोचनात्मक अध्ययन'में इसका रचनाकाल मुनि जिनविजयजीकी अपेक्षा और भी दो शती पूर्व अर्थात् विक्रमकी नौवीं शतीके लगभग माना है। 'जंबूचरियं' तथा 'जंबूसामिचरिउ'के तुलनात्मक अध्ययनसे यह समस्या कुछ और सुलझ जाती है और निश्चित रूपसे यह कहा जा सकता है कि 'जंबूचरियं'की रचना वि० सं० १०७६ में 'जंबूसामिचरिउ'के प्रणयनसे अथवा ही कुछ पूर्व समाप्त हो चुकी होगी, तथा इसकी महान् ख्यातिसे आकृष्ट होकर वीर कविने निश्चयसे गंभीरतापूर्वक इसका अध्ययन किया होगा, और संभवतः इसकी किञ्चित् प्राकृत भाषा निबद्ध शैली एवं लंबे-लंबे वाकिक उपदेशों व नीरस और बोझिल प्रतीकोंके कारण इसे सर्वजनिय न समझकर, सरलतर प्राकृत अर्थात् अशुभंश भाषामें, अर्थ-सुगम शैलीमें, काव्यरससे सर्वसाधारणको विभोर कर देनेवाले अपूर्व ग्रंथरत्नकी रचना करनेकी वलचत्तर प्रेरणा उसके कविहृदयमें उदयमान हुई होगी, जिसकी महाकाव्यात्मक कथावस्तुका आयाम आदर्श रूपमें स्वभावतः उसके समग्र उपस्थित हो गया था। निम्न पंक्तियोंके अध्ययनसे यह कथन स्वतः प्रमाणित हो सकेगा।

वसुदेव हिंदी तथा गुणमद्र कृत उत्तरपुराण के मूलकथा गठनके परिप्रेक्ष्यमें जब हम गुणपालकृत 'जंबूचरियं' के मूलकथा-गठन एवं अंतर्कथा-भुंफन-शिला-पर विचार करके देखते हैं तो एक सर्वथा परिवर्तित, नवीन एवं अपूर्व कथावस्तु हमारे सामने उपस्थित होती है, जिसमें प्रथम दो उद्देश्योंमें ह्रीमद्रम कृत समराइच्च कहेके समान साहित्यिक रीतिसे कथाओंके अर्थकथा, कामकथा, धर्मकथा एवं सकीर्णकथा ये चार भेद वतलाकर, फिर मनुष्योंके कल्याण हेतु धर्मकथा कहना ही काव्य-रचनाका उद्देश्य एवं प्रयोजन वतलाकर विस्तारसे धर्मवर्चा करके तीसरे उद्देश्य (अध्याय) से वास्तविक कथा प्रारंभ की गयी है। संक्षेपमें कथा निम्न प्रकार है :—

जंबूद्वीपके राजगृह नामक नगरमें श्रेणिक नामका राजा था, उसकी चेलना नामक महादेवी थी। एक समय विपुलाञ्जलपरभ० महावीरका समोक्षरण आया। राजा श्रेणिक भी भगवान्के दर्शनोके लिए नगरसे निकला। रास्तेमें प्रसन्नचंद्र मुनिके दर्शन हुए; जिनके मुखपर ध्यानावस्थामें ही नाना प्रकारके उतार-चढाव आ रहे थे। समोक्षरणमें जाकर श्रेणिकने भगवान्से प्रसन्नचंद्र राजाधिके संवधमें जाननेकी जिज्ञासा व्यक्त की। भगवान्ने राजपिका पूर्ण कथानक विस्तारसे सुनाया। इतनेमें राजाधिके केवलज्ञान हो गया और आकाशसे देवगण उनका कैबल्योत्सव मनाते आये। 'राजपिके बाद अंतिम केवली कौन होगा?' यह प्रश्न करनेपर भगवान्ने अपनी चार देवियों सहित प्रसन्नचंद्र केवलीकी बदना निमित्त वहाँ आये हुए अत्यंत तेजस्वी विद्यु-

न्याली देवकी ओर संकेत करके बतलाया कि यही देव अंतिम केवली होगा। विद्युन्माली देवकी अतिगण तेजस्विताका कारण एव उसके पूर्व-भव पूछनेपर भगवान् महावीरने उसके प्रथम भवसे कथा प्रारंभ की। सुग्राम नामक ग्राममें भवदत्त-भवदेव दो भाई थे। सुस्थित नामक मुनिके संयोग एव धर्मोपदेशसे भवदत्तको वैराग्य हो गया और वह साधुसभमें दीक्षित हो गया। कुछ काल बाद अनुजको भी दीक्षित करनेके निश्चयसे मुनि भवदत्त, संघके पुनः जाने ग्राममें आनेपर, अपने घर गया। और नव-वयूके साथ सातफैरे (सप्तपवी) लेते हुए भवदेवको विवाहकार्यके बीचमें-से ही भोजनयुक्त भिक्षा-पात्र हाथमें देकर, इस वहाने उसे नगरके बाहर जहाँ संघ ठहरा था, उस ओर ले जाने लगा। भवदेव घर लौटनेकी इच्छासे पूर्व-क्रीडित स्थानोको दिखलाता हुआ चला। मुनि 'हूँ, हाँ, स्मरण करता हूँ', ऐसा कहते हुए चुपचाप जैसे चलते रहे। भवदेव भी अग्रजके सम्मान, मर्यादा एवं लज्जाके वशीभूत हुआ, उनकी अनुमति बिना घर न लौट सका, और सघमें जाकर चुपचाप दीक्षित हो गया, पर सासारिक सुखोका ही चिंतन करता रहा। कुछ काल बाद मुनि भव-दत्तके स्वर्गस्थ हो जानेपर अवसर पाकर भवदेव पुनः अपने घरकी ओर चला। नगरके बाहर ही जिन चैत्यालयमें नामिला (पत्नी) से भेंट हो गयी। उसने भोग-सुखकी वासनासे पाड़ा बननेवाले तथा अपने ही बचनको खानेकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मणपुत्रोके दृष्टांतों द्वारा भवदेवको बोध दिया। इसके उपरांत भवदेव कठोर तपस्या कर स्वर्गमें देव हुआ। स्वर्गसे आकर बड़ा भाई भवदत्त सागरदत्तके रूपमें जन्मा, और भवदेव राजपुत्र शिवकुमारके रूपमें। सागरदत्तके दर्शन व संयोगसे शिवकुमारको पूर्व-जन्मस्मरण एव वैराग्य हो गया। माता-पिताके आग्रहको न टाल सकनेके कारण शिवकुमार घरमें रहता हुआ ही कठोर तप करने लगा (इस जन्ममें शिवकुमार एवं कनकवतीकी परस्पर प्रणयकथा बहुत ही रोचक है)। सागरदत्त मुनि तप-साधना कर मोक्ष गये और शिवकुमार समाधिस्मरण कर स्वर्गमें विद्युन्माली नामक देव हुआ, जिसकी चार अत्यंत प्रिय देवियाँ हैं। यह सात दिनों बाद राजगृहके सेठ ऋषभदत्तकी धारिणी नामक धर्मपत्नीके गर्भमें आवेगा तथा अत्यंत यशस्वी पुत्र होगा, और १६ वर्षकी अवस्थामें दीक्षा लेकर अतिम केवली होगा। ये चारों देवियाँ स्नेहवशात् इसकी पत्नियाँ बनेंगी। कुल आठ कन्याओं (४ पूर्व देवियाँ + ४ कन्याएँ) से इसका विवाह होगा। इसी प्रसंगमें अणादिय देवका लघु आख्यान कहा गया है।

उचित समयपर जंबूका जन्म हुआ। युवा होनेपर सुवर्माका उपदेश सुनकर उसे वैराग्य हो गया, पर माता-पिताके अत्यधिक आग्रहके कारण पूर्व वाग्दत्त आठ कन्याओंसे विवाह किया और अपने वासगृहमें आकर निर्विकार भावसे बैठा। सब सो गये। प्रभव चोर अपने ५०० साथियोंके साथ चोरी करने आया। जंबूकी जागते हुए देखकर उससे कथासलाप करने लगा। जंबूकुमारने सासारिक सुखोके संवधमें मधुविदु दृष्टात एवं रिस्ते-नाते और पिंडदानके संवधमें एक ही जन्ममें अठारह नाते तथा महेश्वरदत्तके आख्यान सुनाये। बहुएँ भी जाग गयी और पहले एक पत्नी-द्वारा कथा, फिर जंबू-द्वारा उसका उत्तर; फिर दूसरी पत्नीकी कथा और उसका उत्तर, इस प्रकार कथा-प्रतिकथाके रूपमें (१) मूर्ख किसान, (२) कौवा, (३) वानर-युगल, (४) इंद्रालदाहक, (५) नूपरपंडिता, (६) मेघरथ-विद्युन्माली, (७) शंखधमक, (८) यूपपति वानर, (९) बुद्धि-सिद्धि, (१०) जात्यश्व, (११) ग्रामकूट पुत्र, (१२) घोड़ीपालक, (१३) माँ-साहस पत्नी, (१४) तीन मित्र, (१५) चतुर शास्त्रण कन्या, (१६) ललिता रानी, (१७) बनिये और खदानें तथा (१८) ब्रह्मा-टर्वा-भावाटवीका दृष्टात ये सब आख्यान कहे गये। अंतके तीन आख्यान अकेले जंबूस्वामी-द्वारा सुनाये गये। सबको बोध हो गया। राजा कृष्णवने जंबूका दीक्षोत्सव बड़े उल्लास-उत्साहसे मनाया। जंबू, उसके माता-पिता, बहुएँ व उनके माता-पिता एवं ५०० साथियो सहित प्रभव, सबने दीक्षा ली। सुधर्मा कंबव्य प्राप्त कर मोक्ष गये। जंबू संघके प्रधान हुए और यथासमय मोक्ष गये। अन्य सब तप करके स्वर्गको प्राप्त हुए। इस प्रकार मुनि गुणपाल कृत जंबूचरित्र पूर्ण हुआ।

उपसृक्त रीतिसे गुणपाल कृत जंबूचरित्रके मूलकथा-गठन एव अंतर्कथाओंके सयोजनपर थोड़ा-सा ध्यान देनेमें ही यह बात विलकुल स्पष्ट ही जाती है कि वीर कविने अपने महाकाव्यकी योजनामें, इस दृष्टिसे आदरकर अन्य उत्तरीका समायेत् तथा यथामात्र सक्षेप-संघर्ष और परिवर्तन कर, अन्य सब रीतिभोये

‘जंबूचरिय’ को ही प्रमुख रूपसे अपना आदर्श आधार-ग्रंथ माना है, हाँ, सामग्री उन्होंने गुणभद्रके उत्तर पुराणसे भी यथावश्यक यथेष्ट परिमाणमें सग्रहीत की है; और ‘जंबूसामिचरिड’ में समाविष्ट पाँच अंतर्कथाएँ तो ऐसी हैं, जो प्रथम बार केवल ‘जंबूचरिय’ में ही उपलब्ध होती हैं, इसके पूर्व अन्य किसी ग्रंथमें नहीं। संभव है गुणपालको अर्द्धमागधी वागमंत्रयोक्ती टोकाओं या चूर्णियों अथवा मौखिक परंपरासे ये लघुकथाएँ उपलब्ध हुई हों, परंतु इस संपादकको अत्यंत कृपा कोई अन्य पूर्ववर्ती स्रोत ज्ञात नहीं हो सका। सभी प्रमुख जंबूस्वामिचरितोकी आद्योपांत कथासारिणीसे भी यह बात स्पष्टतया सिद्ध होती है। उपर्युक्त नमस्त चर्चापर विचार करते हुए गुणपालकृत ‘जंबूचरिय’ का रचनाकाल वि० सं० १०७६ में ‘जंबूसामिचरिड’ की रचनासे पूर्वतर मानना युक्तिमुक्त एवं औचित्यपूर्ण प्रतीत होता है।

वीर कविके पूर्ववर्ती साहित्यकारोकी उपर्युक्त रचनाओके अतिरिक्त महाकवि पुष्पदंत कृत महापुराण (वि० सं० १०२९) के उत्तरखंडमें ‘जंबूसामिदिवलवण्ण’ नामक सौवी संधिमें संक्षेपमें जंबूस्वामिचरित वर्णित है, जो पूर्णतः गुणभद्र कृत उत्तर पुराणके ७६वें पवके अनुकरणपर रचित है, अतः उसमें कोई नवीनता नहीं है।

कालक्रमसे जंबूस्वामोकी कथा-परंपरामें इन सबके उपरांत वीरकृत ‘जंबूसामिचरिड’ का स्थान है। वीरके पश्चात् दिगम्बर आम्नायकी साहित्य-संपत्तिमें इस कथापर आधारित दो प्रमुख कृतियाँ हमारे समक्ष आती हैं - (१) ब्रह्म जिनदास (वि० सं० १५२०) तथा (२) पं० राजमल्ल (वि० सं० १६६२) कृत ‘जंबूस्वामिचरित्र’। ये दोनों रचनाएँ संस्कृत भाषामें सुंदर काव्यशैलीमें रचित हैं, परंतु कुछ कम-अधिक दोनों ही वीर कविके प्रस्तुत अपभ्रंश चरितकाव्यके लगभग पूर्णतया संस्कृत-रसांतर हैं, अतः इनमें कोई नवीन सामग्री नहीं है। पुरानी जयपुरी हिंदी, व आधुनिक हिंदीमें भी इन्हीं ग्रंथोंके छंटे-बड़े संक्षिप्त रूपांतरोंमें कुछ रचनाएँ उपलब्ध हैं, जिनकी सूची आगे दी गयी है।

अब० आम्नायकी साहित्य-धारामें जंबूस्वामोचरित-कथाकी परंपरा आधुनिक काल तक अविच्छिन्न रूपसे चलती आयी है, और इसमें विविधशैलियों, भाषाओं व छोटे-बड़े आकारकी पचासों कृतियाँ उपलब्ध हैं (देखें आगे सूची)। उनमें-से कुछ प्रमुख त्रय हैं (१) भद्रेश्वर कृत प्राकृत-कथावली (वि० १२ की शती पूर्वाद्ध); (२) नेमिचंद्रसूरिकृत प्राकृत-आख्यानरमणिकोप (वि० सं० १२२९, केवल प्रसन्नचंद्र राजपि तथा नूपुरपडिता, ये दो अंतर्कथाएँ); (३) हेमचंद्र कृत संस्कृत परिशिष्टपूर्व (वि० सं० १२१७-१२२९); एवं (४) उदयप्रभसूरि कृत संस्कृत धर्मभ्युदय-महाकाव्यमें संपूर्ण अष्टम सर्ग (वि० सं० १२७९-१२९०) आदि।

जंबूसामिचरिडकी कथा-परंपराओंका तुलनात्मक अध्ययन

ऊपर बसु० हिंडीके अनुसार जंबूकथाके संक्षेपमें हममें देखा है कि कथावस्तु सीधे जंबूस्वामोके गर्भमें आनेसे लेकर, जन्म, युवावस्था, गुरुपदेश, वैराग्य, माता-पिताके आग्रहसे आठ कथाओंसे विवाह, प्रभवका चोरी हेतु आगमन, जंबूसे कथोपकथन (अघिकाग अंतर्कथाओंका यहाँ समावेश), सबको बोध और दीक्षा तक आकर कृणिक अज्ञातवाचुके द्वारा जंबूके पूर्व-भव जाननेकी जिज्ञासा करनेपर कथा पीछेकी ओर मुड़ती है, और उसमें विद्युन्मालीका आख्यान आता है। तथा वहाँसे फिर वीर पीछे चलकर भवदत्त-भवदेव सागरदत्त-शिवकुमार और पुनः विद्युन्मालीदेव तथा उसकी चार देवियों-पर ले जाकर कथा बड़े विचित्र स्थलपर आकर समाप्त हो जाती है।

गुणभद्रके उत्तरपुराणमें भी कथाको जंबूस्वामोसे ही प्रारंभ कर पीछेकी ओर उलटे क्रमसे : विद्युन्माली, सागरदत्त-शिवकुमार एवं भवदत्त-भवदेव-पर ले जाकर अपनी परलो नागथीकी दारिद्र्यादि जन्तित वास्तव्य दुरवस्था देखकर वास्तविक वैराग्य और तपःसाधना आरंभ करनेपर कथा समाप्त की गयी है। इन दोनों चरितकथाओंके संपूर्ण गठन एवं अंतर्कथाओंमें संक्षेप-विस्तारके अतिरिक्त वास्तविक अंतर नगण्यके समान है।

'जंबूसामिचरित' को कथावस्तुके साथ उपयुक्त कथा-रूपरेखाओपर तुलनात्मक दृष्टिपात करके देखें तो हमारे सामने निम्न तथ्य स्वतः उपस्थित होते हैं :-

(१) वसुदेव-हिंडी तथा उत्तरपुराण दोनोंमें जंबूस्वामीकी कथाका वह प्रारम्भिक स्थूल प्राप्ति दिखाई देता है जब कि वह आगम क्षेत्रसे निकलकर पुराण एवं कथा साहित्यमें अचतीर्ण हुई थी। इस समय तक इस कथाने काव्य रचनाके योग्य कथावस्तुका ही नहीं, वरन् व्यवस्थित चरित कथाका भी रूप धारण नहीं किया था। इन दोनों ग्रंथोंमें जिस स्थलपर एवं जिस रूपमें जंबूस्वामीके अंतिम भवकी कथा कही गयी है, उससे स्पष्ट है कि अन्य पूर्वभवकी कथासे इसका कोई वास्तविक संबंध नहीं है। केवल विद्युत्-मालीके भवका कुछ सवध मालूम पड़ता है, वह भी धनिष्टतासे नहीं। जंबूस्वामीके भवका वृत्तात ज्ञान लेनेके उपरांत पाठकको वास्तवमें उसके पूर्वभव जाननेकी कोई जिज्ञासा नहीं रह जाती। विद्युत्माली देवसे कथाका संबंध जोड़कर किसी तरह कुछ जिज्ञासा और उसके साथ अन्य भवोंके विषयमें भी कुछ उत्सुकता उत्पन्न की जाती है।

(२) राजर्षि प्रमन्नचंद्र अथवा धर्मरक्षिका जो आस्थान इनमें मिलता है, उसका मूलकथासे बिल्कुल कोई सवध नहीं है।

(३) शिवकुमार सागरदत्त, तथा भवदेव-भवदत्तके आस्थानोंको ऊपरसे किसी तरह आरोपित किया गया है, यह बिल्कुल स्पष्ट प्रतीत होता है, क्योंकि नायकका वर्तमान भव पूर्ण ज्ञान लेनेके उपरांत, पिछले भवोंकी अधिकांश जिज्ञासा स्वयमेव शांत अथवा नष्टप्राय हो जाती है। अर्थात् इन ग्रंथोंमें पाँचों भवोंकी कथाओंमें कोई वास्तविक सवध तो प्रतीत नहीं हो जाता, इसके विपरीत ऐसा अनुभव होता है कि जंबूस्वामीके एक भवके संक्षिप्त वृत्तके साथ, अन्य भवोंकी कथाएँ अन्याय स्रोतोसे लेकर सबको किसी प्रकार एक ही कथावस्तुके साँचेमें भर दिया गया है।

(४) कथाक्रम भी दोनोंमें व्यवस्थित नहीं है। वसुदेव-हिंडीमें पहले जंबूस्वामी, फिर विद्युत्माली, उसके पश्चात् भवदत्त-भवदेवका भव, तथा अंतमें सागरदत्त-शिवकुमारकी कथा कहकर उनका विद्युत्माली और फिर जंबूस्वामीसे संबंध स्थापित किया गया है। उत्तरपुराणमें क्रम और भी विचित्र है, पहले विद्युत्-माली देवका आना, फिर जंबूस्वामीका चरित, फिर विद्युत्मालीके पूर्व-भवमें शिवकुमार सागरदत्तका चरित, और इसी भवमें सागरदत्तसे भवदत्त और भवदेवके पूर्व-भवकी कथा कहलायी गयी है। इस प्रकारके क्रमसे कथाएँ एक विशृंखलता या गयी है, जिससे पाठकको जिज्ञासाका ह्रास होता है और वह आत-थकित-सी हो जाती है।

(५) उत्तरपुराणमें भवदेवको उसकी त्यक्त पत्नीसे नहीं, वरन् एक गणिनी (साध्वी) से बोध दिलाकर कथाका एक और उत्कृष्ट मार्मिक स्थल नष्ट कर दिया गया है।

(६) जंबूस्वामीकी धाठ या चार परिणयोंके सबधमें पूर्वभवका कोई वृत्तात नहीं कहा गया।

(७) जंबूस्वामी तथा सुधर्माका पूर्वजन्मका कोई सवध इन ग्रंथोंमें दिखलाया नहीं गया। वरन्, भवदत्त-भवदेवमें अथज-अन्ध संबंध तथा सागरदत्त-शिवकुमारके भवमें पूर्व संबंध जनिता आकास्मिक अनुराग एवं तज्जन्य पूर्व-जातिस्मरण भवका उल्लेख है।

(८) नायक चंद्र प्रथीमें वीर भावको प्रकट करनेकी कोई आवश्यकता इन्हें प्रतीत नहीं हुई, अथवा ऐसा करनेका कोई सुयोग्य अपनो रचनाओंमें ये नहीं जुटा पाये।

उपयुक्त मुद्दोंपर विचार करनेसे ऊपर लिखे अनुसार यह तथ्य और भी स्पष्ट हो जाता है कि इनमें वर्णित मूल-जंबूकथा तथा उसके भव-भ्रमणतरोकी अन्य कथाओं एवं अंतर्कथाओंमें कोई अविच्छेद्य-अखंड-नीय संबंध नहीं है। अतः ये सब मिलकर किसी सुव्यवस्थित-सुगठित चरित-कथाका निर्माण नहीं करती और स्पष्टतया कथाकथन मात्रके उद्देश्यसे ऊपरसे जैसे-तैसे आरोपित की गयी आभासित होती है, जिससे इनमें वर्णित चरित-कथा अनेक लघुकथाओंके सकलनके समान प्रतीत होती है।

वसुदेव-हिंडी तथा उत्तरपुराणकी जंबूचरित-कथाके अध्ययनसे एक अति महत्त्वपूर्ण तथ्य यह भी

प्रकट होता है कि गुड्र साहित्यमें दिग०, श्वे० जैमा क्षुद्र आम्नाय-भेद तबतक न्यायित नहीं हुआ था। विमलसूरिके प्राकृत पञ्चचरित्रं तथा दिग० परंपराके आ० जिनमेन रचित पद्मनुराणके अध्वयनसे भी यह तथ्य पुष्ट होता है।

अब इन्हीं मुद्दीनर गुणपाल कृत जंबूचरित्रका विश्लेषण करनेमें निम्न बातें प्रकट होती हैं।—

(१) गुणपालने कथाक्रमको पूर्णतः परिवर्तित कर, विद्युन्माली देवसे प्रारंभ कर, भवदत्त-भवदेव, देवगति, सागरदत्त-शिवकुमार, सागरदत्तको मोक्ष एवं शिवकुमारका विद्युन्माली देवके रूपमें जन्म लेना और यहाँसे जंबूस्वामीके जन्मसे लेकर मोक्ष जाने तकके वृत्तको अत्यंत सुंदर, सुगठित, सुसंबद्ध तथा महाकाव्य रचनाके सर्वथा योग्य आधाममें सजाया-सँवारा है।

(२) राजपि प्रसन्नचंद्रके कथानकको गुणपाल भी संभवतः पूर्वरंपराके आग्रहके कारण छोड़ नहीं सके।

(३) शिवकुमार-सागरदत्त एवं भवदेव-भवदत्तके आख्यानोंको सुसंबद्ध रीतिमें इस प्रकार लिया गया है कि वे मूलकथाके अनिवार्य-अविच्छेद्य अंग बन गये हैं। शिवकुमार एवं कनकवतीका परस्पर प्रेमाख्यान बहुत सुंदर व रोचक है, तथा अन्य सभी जंबूचरित्तोसे अतिरिक्त है। इस कथाका आचार सम० कथाके द्वि० भवमें सिंहकुमार-कुमुमावलीको प्रणयकथा है।

(४) कथाक्रम विलकुल मुष्टवस्थित है, जिससे पाठकको जिज्ञासा और कुतूहल बाधोपांत निरंतर बने रहते हैं।

(५) वसु० द्विडीके समान भवदेवको उसकी पत्नी नागिलाके द्वारा ही बोध प्राप्ति कराया गया है।

(६) जंबूस्वामीको आठ पत्नियोंके संबन्धमें पूर्वभवका कोई वृत्तांत इसमें भी नहीं है।

(७) जंबूस्वामी-सुधर्माका कोई पूर्व-संबंध यहाँ भी स्थापित नहीं किया गया है।

(८) नायकमें वीरताका गुण प्रकट करनेका इन्हें भी कोई विचार नहीं आया।

वीर रचित 'जंबूसामिचरिड' की विशेषता

अपर्युक्त तीन कृतियोंके विश्लेषणसे यह सुजात हो जाता है कि गुणपाल कृत 'जंबूचरित्र'का इतिवृत्त ही प्रस्तुत 'जंबूसामिचरिड' महाकाव्यकी मूल कथावस्तुका प्रमुख आवार है। उसीमें परिवर्तन, परिवर्द्धन, संशोधन करके वीरने अपनी रचनाको चरितारमक प्रेमाख्यान महाकाव्यका रूप दिया है। विद्युन्माली देवके प्रकट होनेसे, उसके पूर्वभवके संबन्धमें प्रश्न करके पाठकमें जिज्ञासा और कुतूहल उत्पन्न कर गुणपाल और वीर दोनोंही भवदत्त-भवदेव, देव, सागरदत्त-शिवकुमार; विद्युन्माली देव एवं जंबू-सुधर्मा तथा प्रभव या विद्युच्चर-के कथानकोंको और ले चलते हुए पाठककी अमिच्छित और जिज्ञासा निरंतर जाग्रत-बनाये रखनेमें सफल हुए हैं। गुणपालकी रचना लवे-लवे धार्मिक उपदेशों और कथाओंके साथ सर्वत्र गूढ धार्मिक-आध्यात्मिक प्रतीकोंको संबद्ध करनेसे सामान्य पाठकके लिए दुःसह और बोझिल हो गयी है। वीरने अपनी काव्य-चातुरीसे अपनी रचनामें ऐसी स्थिति कही भी उत्पन्न नहीं होने दी।

गुणपालने पूर्व-परंपरानुसार भवदत्त-भवदेवके संबन्धको तीसरे भवमें सागरदत्तको मोक्षोपलब्धि कहकर वही काट दिया। परंतु वीर कवि ऐसा न करके उसे पाँचवें भव तक ले आया; तथा पाँचवें भवमें सुधर्माके द्वारा उससे पूर्वके चारों भवोंको संक्षेपमें कहलाकर कथासूत्रको आधापात प्रगाढ़ एवं अविच्छेद्य-रीतिसे जोड़ दिया। इनी प्रकार जंबूस्वामीको चार पत्नियों वा विद्युन्माली देवको चार देवियोंका एक श्रेष्ठिकी चार पत्नियोंके रूपमें पूर्वभवका वृत्तांत जोड़कर उनके उस जन्मके तपस्वी सुकृत-नामधर्यसे जन्म जंबूस्वामीकी पत्नियाँ बनने योग्य अर्हता उत्पन्न कर, इस जन्ममें उनके संबन्धका सार्थक्य एवं अविच्छेद्य संगति भी असूतपूर्व रीतिसे सिद्ध किये हैं। बाल्यकालसे ही विवेकवान् होनेपर भी नायकको सर्वथा नीरम-वैरागी नहीं दिखलाया जैसा कि अन्य पूर्व रचनाओंमें है। बल्कि युवावस्थामें अपनी सुहृन्मंडलीके साथ कामिनियोंसे कामविकार रहित स्वच्छद जल-क्रीड़ा भी दिखलायी है, और जंबूस्वामीमें महाकाव्योचित नायकके

बुद्धिमत्ता, वीर्य, वीर्य, वीर्य, साहस, तेजस्विता आदि सभी गुणोंको प्रकट करनेकी दृष्टिसे जलश्रीडाके समय हस्त्युद्वय और स्वामी-श्राता सरलतासे उसका पराजय तथा केरल नगरीमें युद्धकी घटनाओंको अपनी कवि-कल्पना-श्राता मूल कथाके साथ गुफित कर दिया है। प्रसन्नचंद्र (या धर्मसुखि) के मूल-कथा-गठनमें सर्वथा अनावश्यक और ऐसे ही अन्य छोटे-बड़े कथानकोंको अपनी रचनामें-ने निराल दिया है और कुछ नवीन सुंदर लघुकथाओंको समाविष्ट कर लिया है। व्यभिचारिणी रानी एवं वणिक्पुत्रवधूके द्विकथारमक बड़े आख्यानमें-से रानी संबंधी अंग विलकुल छोड़ दिया है, तथा वणिकपुत्रवधूके आख्यानको भी बहुत सक्षिप्त कर दिया है।

इस प्रकार वीर कवि अपनी मौलिक सूत्र-वृत्त और काव्य-कला कौरालसे प्राचीन सामग्रीमें-से एक उत्कृष्ट व अभिनव महाकाव्यकी रचनामें पूर्ण सफल हुआ। संघदास, गुणभद्र एवं गुणपाल भी, मूलतः कवि रूपमें नहीं, कथाकार व उपदेशके रूपमें हमारे ममज्ञ जाने हैं, जबकि वीर चरित-काव्यके निर्माता महाकविके रूपमें। अतः उने महाकवि नही जाना सर्वथा उचित है।

जंबूचरितकी कथाका मूलस्रोत

जंबूस्वामीकथाकी पूर्व-परंपराका गंभीरताने अध्ययन करनेपर यह स्पष्ट प्रकट होता है कि वसुदेव-हिंडीके पूर्व दिगं०, स्व० संपूर्ण आगम साहित्यमें 'जंबू काश्यप गोश्रीय ये, वे सुघमकि गिष्य ये, न्युयमति जंबूके प्रश्नोके उत्तर-स्वरूप सारे अर्द्धमागधी आगमोको उन्हें कहकर मुनाया, सुघमकि मोक्ष जानेपर जंबूको केवलज्ञान हुआ और ४०, ४४ वर्ष जैन साधु संघके प्रधान रहकर जंबूको मोक्ष प्राप्त हुआ, तथा जंबू इस कालमें अंतिम केवली हुए—इन सूचनाओंके अतिरिक्त जीवनचरित-विषयक अन्य कोई भी सामग्री उपलब्ध नहीं होती। तब यहाँ यह प्रश्न होता है कि संघदास गणिते जंबूचरित कथाका निर्माण किस प्रकार किया ? क्या युद्ध निर्णय कल्पनासे ? अथवा उनके सामने कोई और अज्ञात आधार-होना संभव है ? जंबूके चार या आठ कथाओंसे विवाह करके भी, भरपूर यौवनमें बिना इंद्रिय सुख भोग लिये, विरक्त होकर दीक्षा लेनेका वृत्त भौतिक-परंपराके माध्यमसे भी संघदासको प्राप्त होना संभव है। फिर भी यह प्रश्न तो रह ही जाता है कि भवदत्त-भवदेव जन्मकी अत्यंत रसात्मक व मार्मिक कथा किस तरह, कहाँसे, संघदासने जंबूके जीवन-चरितसे जोड़ दी ?

इस कथाके मूलस्रोतकी शोधमें अन्य भारतीय साहित्यपर दृष्टिपाठ करनेसे प्राचीन संस्कृत साहित्यमें जो रचना बलात् हमारा ध्यान आकृष्ट करती है, वह है चौद्ध महाकवि अश्वमेधकृत सौंदर्यनंद काव्य। कीच प्रभृति संस्कृत साहित्यके इतिहासकार विद्वानोंके मतानुसार अश्वमेधको भास व कालिदाससे पूर्ववर्ती होना चाहिए। इनका अनुमानित जीवनकाल ई० पूर्व प्रथम शती माना जाता है।

इन काव्यकी 'कथावस्तु' जंबूस्वामीके पाँच भवोमें-से उनके प्रथम और अंतिम इन दो भवोंके वृत्तसे संक्षेपमें मेल रखती है। यहाँ जंबूस्वामीके पाँचवें पूर्वजन्ममें भवदेवने भाईकी मर्यादाकी रक्षाके विचारसे वैराग्य लिया, और १२ वर्षों तक भुविवेशमें रहकर भी पत्नीका ही ध्यान करता रहा। फिर पत्नीसे मिलने आया, तब उसीने बोध देकर पतन होनेसे बचाया। फिर देव हुआ। फिर शिवकुरमारके जन्ममें बड़े भाईके जीव सागरदत्त मुनिने दर्शनसे उसे प्रतिबोध हुआ। घरपर रहकर ही तपस्या की। फिर देव हुआ, और अंतमें जंबूस्वामी। इन जन्ममें चार नव-विवाहित वधुओंको छोड़कर दोसा ली, तप किया, कैवल्य प्राप्त किया और फिर मोक्ष। यह पाँच जन्मोंकी कथा पूर्ण हुई।

दूसरी ओर सौंदर्यनंद काव्यमें सर्ग ४ से १२ तक गौतम बुद्धके अपनी दूसरी माँसे उत्पन्न सगे भाई नंदका चरित्र वर्णित है। बुद्धत्व प्राप्तिके उपरांत जब गौतम कपिलवस्तुके क्षाराम-प्रांगणोंमें जीवोंको चार आर्यसत्यो व अष्टांगिक-मार्गका उपदेश देते हुए विहार कर रहे थे, उसी कपिलवस्तुके राजमहलोंमें उन्हींका सगा भाई नंद, बुद्धके आगमनसे सर्वथा निरपेक्ष रहकर अपनी प्रियतमा सुंदरीके साथ भोग-विलासमें डूबा हुआ था। बुद्धने भिक्षाके लिए नंदके प्रासादमें प्रवेश किया, पर वहाँ किसीका ध्यान अपनी ओर

आकृष्ट न होनेसे भिक्षा लिये बिना ही वापस बनको लौट चले । प्रासादकी छतपर खड़ी एक दासीने बुढ़की लौटते देखकर नंदको इसकी सूचना दी । इससे नंद दुःखित हुआ । वह तुरंत लौट आनेका वचन देकर, क्षण-भरके लिए भी जिसे प्रियतमका वियोग असह्य था, ऐसी अपनी प्रियतमासे मुनिको प्रणाम करने जानेकी अनुमति मांगकर, एक ओर प्रियाके स्नेहके अदम्य आकर्षण तथा दूसरी ओर गुव-भक्तिके दृढ़के झूठेमें झूलता हुआ और प्रियाके अनुपम रूपका ध्यान करता हुआ मुनिके दर्शनीको चला (सर्ग-४) । गौतम मार्गमें ही मिल गये । नदने मुनिके घर चलकर भिक्षा लेनेका अनुरोध किया, परंतु गौतमने उसे स्वीकार नहीं किया, तथा उसके ऊपर (प्रपञ्चा-दान रूपी) अनुग्रहकी वृद्धिसे भिक्षापात्र उन्नीके हाथमें दे दिया । परंतु भिक्षा-पात्र हाथमें होनेपर भी जब नंद घर लौटनेको इच्छासे मार्गसे हटने लगा, तब गौतम अपनी दिव्य शक्तिके-द्वारा उसका मार्गविरोध करके बलात् नंदको संश्रम ले गये । वहाँ उपदेश देकर उसे दीक्षित होनेको कहा । लज्जावश एक बार हाँ कहकर फिर स्पष्टतः मना करनेपर भी किसी-किसी तरह समझा-बुझाकर गौतमने प्रियाकी यादमें रोते हुए उस नंदका भिक्षुओ-द्वारा मुंडन कराकर उसे आनंदके गिण्य रूपमें भिक्षु बना लिया (सर्ग-५) ।

छठे सर्गमें नंदकी नव परिणीता पत्नी सुंदरीका नाना संकल्प-विकल्पोंसे युक्त अत्यंत कारुणिक विलाप है, जिसे पढ़कर कोई भी सहृदय पाठक ब्रवीभूत हुए बिना नहीं रहता ।

सातवें सर्गमें नंदका विलाप है, और प्रियाके स्मरणसे उत्पन्न नंदकी दुःख अवस्थाका अतिगम्य मार्मिक चित्रण है । नंद एक ओर भौतिक सुखके सर्वसाधन-संपन्न अपने महलमें लौटकर अपनी दिव्य रूपवती पत्नी सुंदरीके साथ समस्त इंद्रिय भोगोंका भोगना चाहता है, दूसरी ओर गुरु और उनके प्रति भक्ति व लज्जा उसे घर जानेसे रोकते हैं । इस अंतर्द्वंद्वमें नंदकी स्थिति प्रतिक्षण और भी अधिक दुःखद होती जाती है और इसी अंतर्द्वंद्वकी स्थितिमें कामसे अभिभूत होनेवाले पूर्व मुनिके चरित्रोंका स्मरण कर (७.२५-७.५०) एक दिन ऐसा आ ही जाता है जब वह 'कुलीन व्यक्तिके लिए भिक्षुवेष ग्रहण करके छोड़ना उचित नहीं, यह जो मेरा विचार है, वह भी नष्ट हो जाता है, यह सोचकर कि वे वीर नृपति तनीवतको छोड़कर अपने घरोंको लौट गये', इस विचारधाराके द्वारा अपने विवेककी तिलांजलि देकर घर लौट जानेका निश्चय कर लेता है । उसके अश्रुपूर्ण लोचन और इस प्रकारकी मानसिक स्थितिसे एक निवृत्तवर्ती भिक्षु उसके उस निश्चयको नाप लेता है, और नाना प्रकारसे स्त्री शरीरकी अशुचिता, रोगोंका घर आदि उपदेशोंके द्वारा उसे भिक्षु जीवनमें स्थिर करनेका प्रयास करता है (सर्ग ७) । विश्वास प्राप्त कर लेने-पर नंद अपने अंतर्मनकी बात स्पष्ट रूपसे भिक्षुसे कह देता है कि प्रियतमाके बिना एक क्षण भी उसका मन यहाँ नहीं लगता । भिक्षु उसे फिर समझाता है, कहता है—तू फंदेमें-से निकलकर फिर उचीमें फंसना चाहता है, तू अपने ही वनन (त्यक्त पत्नी और कामभोग) को फिरसे खाना चाहता है आदि, और नाना प्रकारसे स्त्रीकी निंदा करता है (सर्ग ८) । पर नंदके ऊपर इस सब उपदेशका कोई प्रभाव नहीं पड़ता । भिक्षु जब उसे समझाकर हार गया, तब नंदकी मन-स्थिति गौतमसे जाकर कह दी । (सर्ग ९) । नदने गौतमके सामने भी अपना घर लौट जानेका निश्चय दृढ़तासे साफ-साफ कह दिया । तब गौतम पुनः अपनी दिव्य शक्तिका प्रयोग कर नंदको स्वर्ग ले गये । वहाँकी अप्सराओंका रूपविलास एवं उन्मत्त मादक क्रीड़ाएँ देखकर नंदका चित्त उनमें मोहित हो गया और वह अपनी प्रियाको भूलकर स्वर्गकी अप्सराओंकी प्राप्टिके लिए तप करने लगा । नंदको स्वर्ग-नुषोंके ध्यानमें लगे देखकर आनंदने उसे उन सुखोंकी विनश्वरताका ज्ञान कराया (सर्ग १०), और नाना प्रकारसे स्वर्गकी निंदा की (सर्ग ११) । अंतमें नंदका हृदय शुद्ध हो गया और वह सच्चा वीतराग बनकर सन्मार्गपर लौट आया । अब उसने गौतम बुढ़के समक्ष पूर्ण आत्मसमर्पण कर दिया और शुद्ध निर्वाण-मार्गपर चलने लगा (सर्ग १२) । आगेके चार सर्गोंमें चार आर्यसत्य आदि बौद्ध दार्शनिक तत्त्वोंकी व्याख्या की गयी है । तथा सत्रहवें सर्गमें नंदकी अर्हत् पद प्राप्त होनेका वर्णन किया गया है । इस प्रकार यह कथा जंबूद्वामीके कैवली बनने तकके वृत्तांतसे समानता-रखती है।—

नदके इस आख्यायनेसे जंबूद्वामीचरित कथाका संबंध स्थापित करते समय यह प्रश्न उठना

स्वाभाविक है कि क्या वसुदेव-हिंडीके रचयिता सघदासको अश्वघोषकी यह उत्कृष्ट काव्य कृति उपलब्ध हो सकी होगी या नहीं ? इस संबंधमें ऐतिहासिक स्थिति यह है कि १०वीं शती ई० तक मालदा, (बिहार) बलभी (गुजरात) तथा १२वीं शती ई० तक विक्रमदिला (भागलपुर, बिहार) के बौद्ध विश्वविद्यालय अपने चरम उत्कर्षपर रहे, तथा ये संपूर्ण भारत देशके सबसे बड़े अध्ययन केंद्र थे । इन विश्वविद्यालयोंमें संस्कृतका अध्ययन अनिवार्य रूपसे किया जाता था, और इनकी साहित्य संपत्तिका कोई पाराधार नहीं था । इस परिस्थितिमें महाकवि अश्वघोषकी ऐसी सुंदर काव्य कृतिका अत्यंत लोकप्रिय एवं सर्वप्रचलित होना एक विलकुल सामान्य बात है, और जैन विद्वानोंके सदासे उदार व्यापक एवं जिज्ञामु दृष्टिकोणको ध्यानमें रखकर यह बात और भी अधिक बलपूर्वक कही जा सकती है कि संघदास गणि जैसे महान् साहित्यकारने ऐसी सर्वप्रसिद्ध तथा महान् काव्य रचनाका अध्ययन अवश्यमेव किया होगा । स्वयं वसुदेव-हिंडीके अध्ययनसे यह प्रतीत होता है कि जबूके जीवनचरितके साथ भवदत्त-भवदेवकी कथाका कोई धनिष्ठ वास्तविक संबंध नहीं है, तथा उसके साथ यह कथा विलकुल बलगसे वादमें जोड़ी गयी है, यह बात वसु० हिंडीके कथा-विश्लेषणसे स्वतः श्लक्ष्णती है । जंबूस्वामीकी कथाको रसात्मक बनानेके हेतुसे नाम बदलकर बाहरकी किसी कथाको समाविष्ट कर लेना कोई असाधारण घटना नहीं है । नंद तथा भवदत्तके आख्यानोंके कथा-तत्त्वोंका तुलनात्मक विश्लेषण करनेसे भी उपर्युक्त कथनकी पुष्टि होती है ।

नंद और उनकी पत्नी सुदरीका परस्पर अत्यंत प्रगाढ़ अनुराग, एक ही पिताके सगे-भोसरे भाई बुद्ध द्वारा उसे निर्वाण मार्गपर लगानेका प्रयत्न, नंदके घर जाना, किसीका ध्यान बुद्धकी ओर न जानेसे भिन्ना न मिलना, बुद्धका रिक्त भिक्षापत्र हाथमें लिये नगरसे बाहर लौट पडना; एक सेविकाके द्वारा नंदको यह सूचना मिलनेपर, क्षीघ्र लौट जानेका वचन देकर, पत्नीकी अनुमति ले उमोंका रूप चिंतन करते हुए बुद्धके दर्शनको जाना, और बुद्धके द्वारा अनुग्रह बुद्धिसे नंदके हाथमें रिक्त भिक्षा-पत्र दिया जाना, नंदकी घर लौटनेकी प्रबल इच्छा, बुद्ध-द्वारा उसे दिव्य शक्तिसे व्यामोहित कर संघमें ले जाना, नंदकी अनिच्छा और स्पष्ट अस्वीकार करनेपर भी उसका सिर मुंडाकर उसे प्रदग्धित कर लेना, नंदका विलाप और सुदरीका ही निरंतर चिंतन, उसे समझानेके सब प्रयासोंकी विफलता होनेपर बुद्ध-द्वारा उसे स्वर्गदर्शन, और फिर स्वर्ग सुखोंकी भी क्षणिकता दिखलाकर सच्चे निर्वाण मार्गपर लया देना, तथा अतत. नंदका अहंत होकर निर्वाण लाभ, इस कथाके ये मूलतत्त्व है । जंबूचरित-कथामे किंचित् परिवर्तन-परिवर्द्धनके साथ ये सभी तत्त्व सन्निहित है । बुद्ध-द्वारा नंदके घर आनेसे लेकर नंदकी दोक्षासे उसे सच्चा वैराग्य होने तकका वृत्त भवदत्त-भवदेवके वृत्तांतसे पूर्णतया समान है । नंद और बुद्धके सशरीर स्वर्गगमनसे भवदत्त-भवदेवके मृत्युके उपरांत स्वर्गगमनकी तुलना की जा सकती है । शिवकुमार सागरदत्त-भवकी कथा विशेष महत्त्वकी नहीं है । तथा जंबूकी भोक्ष-प्राप्ति नंदके निर्वाणके समान है । अतः जंबूस्वामीकी कथामें आद्योपांत सादरनंदकी कथाको पिरो लेना संघदास जैसे जैन साहित्यकारके लिए अत्यंत स्वाभाविक प्रतीत होता है ।

वीर कविने पांचो भवोंमें प्रथम वारके भ्रातृत्व संबंधको पूर्वजाति-स्मरण-द्वारा स्थायी बनाये रखा और इस प्रकार पहले जन्मके बड़े भाई भवदत्तके द्वारा बार-बार छोटे भाई भवदेवके जीवनको बोध प्रदान किया, व अंतमें वही उसके पाँचवें जन्ममें मोक्षप्राप्तिमें उसका साक्षात् गुरु और मार्गदर्शक बना, एक यह तथ्य; और दूसरे भवदेवके अंतर्द्वंद्वका मामिक काव्यमय-चित्रण, दो वातोंसे ऐसा अनुमान होता है कि संभवतः स्वयं वीर कविने भी अश्वघोषके सादरनंदका गभीरतासे अध्ययन किया, जिससे वह अपने काव्य वर्णनमें इतनी सजीवता और सामिकता ला सका । इस संबंधमें जैन कथाकारोंकी एक विशेषता यह है कि उन्होंने भवदेवकी पत्नीके द्वारा ही प्रथम भवमें उसे सच्चा बोध प्रदान कराकर भारतीय नारीके चरित्रको बहुत ऊँचा और सदाके लिए आदर्श तथा महनीय बना दिया है । नारी चरितका ऐसा परम उत्कर्ष प्रेम, विरह और अंतर्द्वंद्वके मामिक-रसात्मक स्थल एवं मानव-जीवनके सर्वोत्कृष्ट ध्येयकी उपलब्धि, इन सब तत्त्वोंने जैन-मर-

परामें जंबूस्वामीके कथानकनो हतना अधिक लोकप्रिय घना दिया कि वर्तमान काल तक यह कथा काल-समुद्रको उत्ताल तरंगोके प्रचंड सपेटोका अतिक्रमण कम्ती हुई, अखंड-अविच्छिन्न रूपसे निरंतर गतिशील और प्रवहमान रही। तथा ५वी शती ई० से लगाकर २०वी शती ई० तक प्रत्येक घातीके उत्तर भारतके गुजरात, राजस्थान, मालवा, मध्यप्रदेश, एव उत्तर प्रात, इन सभी क्षेत्रोमें विविध भाषा और शैलियोमें छोटे-बड़े-मध्यम सभी आकारोमें अनेक रचनाएँ जंबूस्वामीके जीवनके विविध पक्षोको लेकर प्रणीत की जाती रहीं, जिनकी संख्या लगभग एक सौ तक जा पहुँची है। इन रचनाओका कालक्रमानुसार विवरण निम्न प्रकार है—

जंबूस्वामी विषयक रचना-सूची

- *१. वसुदेव-हिंडीमें 'कथोत्पत्ति' नामक प्रकरण—संघदास गणि, ५वीं ६ठी गती विक्रम, वार्य जैन महाराष्ट्री प्राकृत, सर्वप्राचीन कथानक, आगोकी जंबूस्वामी विषयक समस्त रचनाओका आधार।
२. 'रिट्टरेणमिचरिउ' के अंतर्गत—स्वयंभू देव, ई० सन् ७०० के लगभग, अपभ्रंश।
- *३. धर्मापदेशमालाविवरण—जयमिहसूरि, वि० सं० ९१५, महाराष्ट्री प्राकृत, संक्षेपमें कुछ पंक्तिव्यामत्र, फुटकररूपमें जंबूस्वामि चरित्रकी चार कथाएँ उपलब्ध हैं (देखें : प्रस्ता०—५ 'कथासारिणी')।
- *४. उत्तरपुराण, ७६वीं पर्व—गुणमद्राचार्य, वि० सं० ९५५ के पूर्व, संस्कृत, २१३ श्लोक।
- *५. 'तिसट्टिमहापुरिसगुणालाकाह' (महापुराण) १००वीं संधि—गुणदत्त, वि० सं० १०१५—१०२१, अपभ्रंश।
- *६. जंबूचरियं—मुनि गुणपाल, वि० सं० १०७६ के पूर्व, महाराष्ट्री-प्राकृत, १६ उद्देशक।
७. जंबूसामिचरियं—पं० सागरदत्त, वि० सं० १०७६, अपभ्रंश, ग्रंथाग्र २६००, वृहट्टिप्पणिकाकी सूची, क्र० ३०५—३०७ के अनुसार।
जंबूसामिचरियटिप्पण—गुजराती, ग्रंथाग्र ११००, वृहट्टिप्पणिकाकी सूची, क्र० ३०५—३०७ के अनुसार।
- *८. जंबूसामिचरिउ—कवि वीर, वि० सं० १०७६, अपभ्रंश, ग्यारह संधियाँ, प्रस्तुत रचना।
९. 'कहावली' के अंतर्गत—भद्रेश्वर, ई० सन् ११०० के लगभग, प्राकृत।
१०. (क) 'उपदेशमाला' पर 'विशेषवृत्ति' : या 'दोषती वृत्ति' के अंतर्गत—वृत्तिकार रत्नप्रभ-सूरि, वि० सं० १२३८, संस्कृत।
*(ख) कर्पूर प्रकरणटीकाके अंतर्गत—(१) जिनसागरसूरिकृत, (२) प्रतिष्ठासोमकृत, संस्कृत, अति सक्षिप्त, एक पृष्ठ मात्र।
- *११. परिशिष्टपर्व—हेमचंद्राचार्य, वि० सं० १२१७-१२२९ के बीच, संस्कृत, चार पर्व, गुणपाल कृत 'जंबूचरियं' के अनुसार।
- *१२. धर्माभ्युदय महाकाव्य, अष्टमसर्ग मात्र—उदयप्रभसूरि, वि० सं० १२७९-९० के बीच, संस्कृत एक सर्ग।
- *१३. जंबूस्वामिचरित्र—महेंद्रसूरिके शिष्य धर्ममुनि, वि० सं० १२६६, पुरानी गुजराती, ४१ कड़ियाँ, ५ पत्र, गुज० भाषामें अवतक प्राप्त सर्वप्रथम कृति (प्रा० गु० का० सं० में प्रकाशित)।
१४. जंबूचरित्र—कर्ता अज्ञात, वि० सं० १२९९, अपभ्रंश, (ग्रन्थ सूची, जैन ग्रन्थावली भाग-२)।
१५. जंबूस्वामी फाग—कर्ता अज्ञात, वि० सं० १४३०, पुरानी गुजराती, प्रा० गु० का० सं० में प्रका०।
- *१६. जंबूस्वामीचरित्र-काव्य—जयशेखरसूरि, वि० सं० १४३६, संस्कृत, ७२६ श्लोक प्रमाण, छह-प्रकरण। जय शेखर सूरि अंचल गच्छके भट्टारके थे। यह कथानक उनकी स्त्रीपत्र उपदेश-चित्तामणि-वृत्तिके अंतर्गत आया है। इसमें कथा प्रारंभ आर्यवसु-ब्राह्मण, सोमशर्मा ब्राह्मणी, भवदत्त-भवदेव पुत्र, सीधे यहींसे होता है। भवदेवकी दोक्षाके वृत्तमें भी कुछ भेद है। पहली बार जब भवदत्त, भवदेवको दीक्षित करनेकी इच्छासे घर गये तो वहाँका राग-रंग देखकर स्वयं उनका मन विचलित

हो उठा और वे भी शत्रु वहाँसे संधमें लौट आये। संधमें मुनियों-द्वारा व्यंग्य किये जानेपर पुनः भवदेवके घर गये और उसे किसी तरह संधमें लाकर दीक्षित किया।

१७. जंबूस्वामीनो विवाहलो—गोपल गच्छीय हीरानंदसूरि, वि० सं० १४९५। साचोरमें वैशाख शुक्ल अष्टमीके दिन रचना पूर्ण हुई। पुरानी गुजराती।
१८. जंबूस्वामीचरित—रत्नविह सूरिके शिष्य, वि० सं० १५१६, रचयिताने अपना नाम न देकर केवल अपने गुरुका नामोल्लेख किया है।
- *१९. जंबूस्वामी चरित्र—ब्रह्म जिनदास, वि० सं० १५२०, संस्कृत ११ संधियाँ, पूर्णरूपसे चौर कृत अपभ्रंश 'जंबूसामिचरित्र' का संस्कृत रूपांतर, इसी सपादक-द्वारा संपादनाधीन इसकी अनेक प्रतियाँ आमेर, आरा, जयपुर, बवाई, व्यावरके जैन भंडारोंमें विद्यमान हैं।
२०. जंबूकुंवर रास—ब्रह्म जिनदास, वि० सं० १५२०, पुरानी जयपुरी हिन्दी, ११ संधियाँ,
- *२१. जंबूस्वामि चौपाई—जिनभद्र सूरि, वि० सं० १५२२ आश्विन पूर्णिमाके दिन नंदेसमें लिखित, पुरानी जयपुरी हिन्दी (पद्यात्मक), पत्र ११, अरहन्गवादि प्राचीन जैन मुनियोंके नामोल्लेखोंकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण।
२२. जंबूस्वामिपञ्चमव-वर्णन चौपाई—देपाल भोजक, वि० सं० १५२२, लगभग १७९ गाथा प्रमाण।
- *२३. प्रभव-जंबूस्वामि वेलि—वि० सं० १५४८ आसोज वदी आठम, पुरानी राजस्थानी हिन्दी, पत्र ५, कुल २३ सुंदर गेय पद्य, प्रभव-जंबू वार्तालापसे प्रारंभ।
२४. जंबूस्वामिचरित्र—सकलचंद्र (वि० सं० १५२०) के शिष्य भुवनकीर्ति, वि० १६वीं शती, प्राकृत। ये भुवनकीर्ति संभवतः दिगं परपराके थे।
- *२५. जंबू अंतरंग रास अथवा जंबूकुमार विवाहलो—सहजसुंदर, वि० १६वीं शती, राघनपुर नामसे लिखित, पुरानी गुज० मिश्रित हिन्दी, पत्र ४, ५ ढालें, ६४सुंदर गेय पद्य, अंतमें एक दोहा। यह लघुकृति सुंदर काव्यकी रीतिते प्रतीकात्मक शैलीमें रची गयी है, और लौकिक वजुओंको त्यागकर इसमें जंबूस्वामीका सिद्धि (मोक्ष) रूपी वधूसे परिणय वर्णित है।
२६. जंबूस्वामी गीता—वि० सं० १५९३, गुज०, पत्र-५, (जैनग्रन्थो भाग० २)।
२७. जंबूस्वामी रास (पञ्चमव चरित्र)—विजयगच्छीय मल्लिदास, वि० सं० १६१९, गुज० मिश्रित हिन्दी, ३० ढालें।
२८. जंबूकुमार रास—पीपलगच्छीय विमलप्रभ सूरिके शिष्य राजपाल, वि० सं० १६२२, गुज० मिश्रित हिन्दी, २७ श्लोक प्रमाण, लगभग ९५५ कडियोंमें रचित।
२९. जंबूचरित—उपा० पद्मसुंदर नागौरी, वि० सं० १६२६-३९ के बीच, प्राकृत। इनके गुरु तपा-गच्छीय पद्यमेव थे, और दादागुरु आनंदमेव थे, जो अकबरके एक सभासद् थे। ये कवि चक्रवर्तीके नामसे भी प्रसिद्ध थे।
- *३०. जंबूस्वामिचरित्रम्—पं० राजमल्ल, वि० स १६३२ आगरामें रचित, संस्कृत, १३ पर्व, बोरकृत अपभ्रंश जं० सा० च० के आधारसे, लगभग सतीका संस्कृत रूपांतर (प्रकाशित)।
३१. जंबूस्वामिचरित्र—पाडे जिनदास, वि० सं० १६४२, मूल संस्कृतका भाषा। (हिन्दी) रूपांतर कर्ता पाडे जिनदास, छंदोबद्ध कर्ता लमेचू नाथूराम; शुद्ध हिन्दी गद्यानुवाद सूरतसे प्रकाशित।
३२. जंबूरास—खरतरगच्छीय गुणविनय, वि० सं० १६७०, बाहडमेर ग्राममें रचित, पुरानी राजस्थानी।
- *३३. जंबूस्वामि चरित्र—भावशेखर शाह, वि० सं० १६८४, पाटन नगर नामक ग्राममें रचित, राजस्थानी-गुज० मिश्रित, ग्रन्थग्र २१००, गाथाएँ ११००, पत्र १ से ६ नहीं, ७ से ३६ हैं। इसके रचयिता भावशेखर अंचलगच्छ, श्रीमालिबंध, चंद्रकुल और प्रसिद्ध पालीताणीया शाखाके थे। इनकी गुरु परपरा इस प्रकार थी : भवनतुरंगसूरि—वाचक कमलशेखर—सत्यशेखर—त्रिवेकशेखर—रागिब्रजशेखर—भावशेखर शाह।

३४. जंबू चौपाई—तपागच्छीय कमलविजय, वि० सं० १६९२ सिवाणा ग्राममे रचित, राज० गुज० मिश्रित ।
- *३५. जंबूकुमार चौपाई अथवा जंबूस्वामी रास—उरतरगच्छीय ज्ञाननिधि वाचकके शिष्य—गाढक मुवन-कौत्ति गणि द्वितीय, वि० सं० १७०५, ध्रावण सुदी १, बुहनिपुर नगरमें रचित, राज० गुज० मिश्रित, पत्र ३६; ४ अधिकार; दोहा, ढाल सब मिलाकर १३५३ मुंदरगेय पद्योंमें रचित, परिशिष्ट पूर्ण (हेमचंद्र) के आधारसे ।
३६. जंबूस्वामी रास—उरतरगच्छीय पद्मचंद्र, वि० सं० १७१४, सरिसा पाटनमें रचित, राज० गुज० मिश्रित, लगभग १५११ गाथा प्रमाण, परि० पर्वके आधारसे ।
३७. जंबू चौपाई—उरतरगच्छीय जिनसागर सूरिके शिष्य : कवि उदयरत्न, वि० सं० १७२०, राज० गुज० मिश्रित ।
- *३८. जंबूपृच्छा रास अथवा कर्मविपाक रास—वीरजी मुनि, वि० सं० १७२८, पाटन नगरमें रचित, राज० गुज० मिश्रित, १३ ढालें । इसमें जंबूस्वामीके प्रश्न हैं, जिनका उत्तर मुवर्मा द्वारा दिया गया है । भोमजी माणेरू-द्वारा प्रकाशित ।
३९. जंबूरास—धर्ममंदिर, वि० सं० १७२९, मुलतान नगरमें रचित, राज० गुज० मिश्रित, धर्ममंदिर व सुमतिरंग दोनोंकी ये रचनाएँ एक ही वर्षमें एक ही स्थानमें रहकर लिखी गयी । अतः तुलनात्मक दृष्टिसे ये अवश्य अध्ययनीय हैं । सांगदकको ये रचनाएँ उपलब्ध नहीं हो सकी ।
४०. जंबूस्वामी चौपाई—उरतरगच्छीय सुमतिरंग, वि० सं० १७२९, मुलताननगरमें रचित राज० गुज० मिश्रित ।
४१. जंबूकुमार रास—तपागच्छीय चंद्रविजय, वि० सं० १७३४, ग्राम कोरडादेमें रचित, राज० गुज० मिश्रित, ८५२ गाथा प्रमाण ।
- *४२. जंबूस्वामी रास—तपागच्छीय कविराज धीरविमलके शिष्य नयविमल, वि० सं० १७३८, नार्मशीर्ष शुक्ल १३ सोमवार, ग्राम थिरपुर नगरमें रचित, राज० गुज० मिश्रित, ३५ ढालें (पत्र ३५) प्रकाशित ।
- *४३. श्रीजंबूस्वामी ब्रह्मागीता—उपा० यशोविजयजी, वि० सं० १७३८ (खंभातमें रचित), गुजराती, पत्र २, लघु कृति मदनपराजय (अपभ्रंश) की प्रतीकात्मक शैलीमें रचित, गु० सा० सं० भाग १ में प्रकाशित ।
४४. जंबूस्वामी रास—उपा० यशोविजयजी, वि० सं० १७३९, खंभातमें रचित गुजराती, ५ अधिकार, ३७ ढालें, मदनपराजय (अपभ्रंश)की प्रतीकात्मक शैलीमें रचित, गु० सा० सं० भाग २ में प्रकाशित ।
४५. जंबूस्वामी रास—तपागच्छीय उदयरत्न, वि० सं० १७४९, ग्राम खेडा हरियाणामें रचित, गुजराती, ६६ ढालें, लगभग २५०० गाथाएँ ।
४६. जंबूस्वामी रास—उरतरगच्छीय यशोवर्धन, वि० सं० १७५१ ।
४७. जंबूस्वामी रास—उरतरगच्छीय जिनहर्ष, वि० सं० १७६०, ४ अधिकार, ८० ढालें, लगभग १६५७ गाथाप्रमाण ।
४८. जंबूकुमार रास—कडवागच्छीय लावासाह, वि० सं० १७६४, ग्राम सोहीमें रचित, ३२ ढालें ।
४९. जंबूस्वामी स्तवन—नाग्यविजय, वि० सं० १७६६, १४ श्लोकप्रमाण ।
- *५०. जंबूसामिचरितं—(पूर्व) मुनि जिनविजय, वि० सं० १७८५-१८०९ के बीच, प्राकृत, प्रकाशित ।
५१. जंबूस्वामी चौढालिया—उरतरगच्छीय विनयनदके शिष्य श्री दुर्गादास, वि० सं० १७९३ ।
- *५२. जंबूकुमार रास—नयविजय विबुधके शिष्य, वाचक जसविजय, वि० सं० १७९९, खंभनगरमें रचित, राजस्थानी, पत्र ४४ ।
५३. जंबूचरित—श्री चेतनविजय, वि० सं० १८०५, अजीमगंजमें रचित, राजस्थानी ।

५४. जंबूस्वामी चरित्र—विजयकोत्ति, वि० सं० १८२७, हिंदी पद्य, पत्र २०, जयपुर शास्त्र भंडारमें उपलब्ध ।
५५. जंबू चौपाई—श्री चंद्रभाण, वि० सं० १८३८, ग्राम बोडावडमें रचित, राजस्थानी, ३५ ढालें ।
५६. जंबूकुमार चरित—श्वे० तेरापंथके संस्थापक आचार्य भोषणजो, लगभग वि० सं० १८५०, राज०, ४६ ढालें, गाथाओके ऊपर २१५ दोहे, ७८८ गाथाएँ, परि० पर्वके आधारसे, मि० ग्र० रत्ना० द्वि० खंड, प्रका० श्वे० तेरा० महा० कलकत्ता ।
५७. जंबूस्वामि चरित्र—श्रीचेतनविजय, वि० सं० १८५२-५३, हिंदी, पत्र ३० ।
५८. जंबूकुमार चौढालिया—श्री सौभाग्यसागर, वि० सं० १८७३, पाठनमें रचित, भीमशो-माणिक-द्वारा प्रकाशित ।
५९. जंबूस्वामी श्लोक—श्री लखिविजय, वि० १९वीं शता ।
- *६०. जंबूस्वामी कथा—विजयशकर-विद्याराम वि० सं० १९१४, द्वि० ज्येष्ठमास कृष्णपक्ष सोमवार, श्रोनगरमें रचित, गुज० परक हिंदी, पत्र, २०; छद्मरहित गद्यात्मक पद्यशैली, जंबूस्वामीचरितकी २३ अंतर्कथाओंसे युक्त ।
- *६१. जंबूस्वामी गुणरत्नमाला—भोसवाल भावक जेठमल चोरडिया, वि० सं० १९२०, आषाढ कृष्ण-५, (जयपुर) पुरानी राजस्थानी, पत्र-३०, प्रकाशित ।
- *६२. जंबूस्वामी चौपाई—कर्ता अज्ञात, रचनाकाल अज्ञात, राजस्थानी, पत्र-४ पहले पांच पृष्ठोंमें राजुल कथा; अतमें एक पृष्ठमें अतिसंक्षेपमें जंबूस्वामीके जन्मसे लेकर मोक्षगमन पर्यंतकी कथा ।
- *६३. जंबूस्वामी चरित—रचयिता व रचनाकाल अज्ञात, संस्कृत गद्य, पत्र-३, सरल शैली, छोटे-छोटे वाक्य, संक्षिप्त कथा ।
- *६४. जंबूस्वामी चौपाई—रचयिता व रचनाकाल अज्ञात, पुरानी राजस्थानी, पत्र-२, पृ० ३, अपूर्ण, भवदेवके जन्मसे कथा प्रारंभ, विविध जन्मोकी रूपरेखा प्रस्तुत करके जंबूस्वामी जन्म, व प्रभवके साथ वातावरणमें महेश्वरवत्तके आस्थान पर आकर कथा अपूर्ण समाप्त ।
- *६५. जंबूकुमार रास—श्रीबालुचदगणीके शिष्य लोकागच्छके नायक मुनि भूधर, संवत् भारवनस्पति भाषुवापु. मुनिवर वर्ष (?) आदिवन मास विजयादशमी, पुरानी राजस्थानी, पत्र-१४ ।
- *६६. जंबूचरित अथवा जंबूस्वामी अञ्जयण—(संभवतः) पद्मसुंदरगणि, रचनाकाल अज्ञात अर्द्ध-भागधी अपभ्रंश, ३६ पत्रोंसे लगाकर ६० पत्रों तकमें लिखित अनेक प्रतिभयें उपलब्ध । १९ उद्देशक, यह बहुत महत्त्वपूर्ण रचना है । इसके जंबूअञ्जयण, जंबूपयण्णा, जंबूस्वामि कथानक, जंबूचरित्र एवं जंबूस्वामि अञ्जयण ये अनेक नाम प्रचलित हैं । इसपर अनेक बालावबोधों व टिप्पणियोंकी रचना हुई है । यह कृति भी इसी संपादकके संपादनाधीन है ।
- (क) जंबूचरित्र बालावबोध—वि० सं० १७९०, पुरानी गुजराती ।
- (ख) जंबूचरित्र बालावबोध—श्री सुंदरगणि, वि० सं० १७९५ से पूर्व, पुरानी गुजराती ।
- (ग) जंबूचरित्र बालावबोध—वि० सं० १८०८, पुरानी गुजराती ।
- (घ) जंबूचरित्र बालावबोध—वि० सं० १८१२, पुरानी गुजराती ।
- (ङ) जंबू अध्ययन चरित्र बालावबोध—वि० सं० १८१६ से पूर्व, पुरानी गुजराती ।
- (च) जंबूस्वामीकथानक—वि० सं० १८२९, पुरानी गुजराती ।
६७. जंबूस्वामिकुलक—प्राकृत, प्रकीर्ण ग्रन्थसंग्रह । (जैन ग्रंथा० २)
६८. जंबूचरित्र—अज्ञ त, (जैन ग्रंथा० २)
६९. जंबूचरित्र—(संभवतः) संघभद्र, अपभ्रंश, फैसल २० गाथाएँ, (जैन ग्रंथा० २)

७०. जंबूचरित्र—प्रद्युम्नसूरि; दादागुरु प्रद्युम्न, गुरु वीरभद्र, प्रारंभ : पद्मभवे भवदेवो गहियवजो पद्म-
सुरपवरो । रामसुयसिवकुमारो कथ वारसवास तव-सारो ॥१॥ अंत : वारस तवाणुए भद्व सिय
पखिव गुरि समुद्धरियं । घन्नासी भायाए भणियव्वं संघभद्वकए ॥२०॥
७१. जंबूचरित्र—गुजराती, पत्र ४४, ७२५ श्लोक प्रमाण, (जैन ग्रन्था० २) ।
७२. जंबूस्वामीश्लोको—लक्ष्मिबिजय, पत्र ३, ४५ श्लोक प्रमाण (जैन ग्रन्था० २) ।
७३. जंबूचरी—गुजराती, पत्र १४, (जैन ग्रंथा० २) ।
७४. जंबूस्वामी कथा—नयविमल, गुजराती, पत्र ९, (जैन ग्रंथा० २) ।
७५. जंबूस्वामिचतुष्पदी—गुजराती, २७५ श्लो० प्रमाण, (जैन ग्रंथा० २) ।
७६. जंबूस्वामीस्वाध्याय—गुजराती, पत्र १, ११ श्लो० प्रमाण, (जैन ग्रंथा० २) ।
७७. ,, ,,—गुजराती, पत्र १, १६ श्लो० प्रमाण, (जैन ग्रंथा० २) ।
७८. जंबूकुमार स्वाध्याय—गुजराती, पत्र १, (जैन ग्रंथा० २) ।
७९. जंबूनाटक—(मुद्रित जैन ग्रंथावलि) ।
८०. जंबूस्वामिचरित्र—रत्नशेखर, (मुद्रित जैन-ग्रंथावलि) ।
८१. जंबूचरित्र—गुजराती, (मुद्रित जैन ग्रंथावलि) ।
८२. ,, ,,—मूल संस्कृत (?) गुजराती भाषांतर, वि० सं० १९५०, (मुद्रित जैन ग्रंथावलि) ।
८३. जंबूस्वामिचरित्र—गुजराती, (मुद्रित जैन ग्रंथावलि) ।
८४. ,, ,,—(मुद्रित जैन ग्रंथावलि) ।
८५. जंबूस्वामीचरित्र—१६४४ गाथा प्रमाण, (जैन ग्रंथा० २) ।
८६. ,, ,, पद्यसुंदर, प्राकृत, ७५० गाथा प्रमाण, (जैन ग्रन्था० २) ।
८७. ,, ,, संस्कृत, पत्र १४, (जैन ग्रंथा० २) ।
८८. ,, ,, संस्कृत गद्य, ८९७ गाथा प्रमाण, (जैन ग्रन्था० २) ।
८९. ,, ,, सकलहर्ष, पत्र ११, (जैन ग्रन्था० २) ।
- *९०. ,, ,, मानसिंह, संस्कृत पद्य, ग्रंथांश १३००, (जैन ग्रन्था० २) । (यह ग्रंथ भी इसी संपादकके संपादनाधीन है) ।
९१. ,, ,, पत्र ५०, (जैन ग्रन्था० २) ।
९२. जंबूस्वामीकथा—प्राकृत, (जैन ग्रन्था० २) ।
९३. जंबूस्वामिचरित्र—नमिदत्त, (जि० २०-कोश) ।
९४. ,, ,, विद्याभूषण, (जि० २०-कोश) ।
९५. ,, ,, पं० दीपचंद्रवर्णी, सन् १९३९ (मथुरा), हिंदी, प्रकाशित ।

नोट :—उपर्युक्त सूची डा० २० ला० चौ० ला० शाह द्वारा संपादित उपा० यशो० कृत जंबूस्वामीरासकी प्रस्ता०; जैन ग्रन्थश्रवणी भाग-२; मुद्रित जैनग्रन्थावली; जिनरत्नकोश; तथा भ० ओ० रि० इं० पूना, ओरि० रि० इं० बडौदा एवं ला० द० भारती शो० सं० अहमदाबादकी हस्तलिखित प्रतियों-की सूचियों एवं अंतिम तीन सस्याओंके निदेशको व संग्रहालयाध्यक्षोके सौजन्यसे प्राप्त जंबूस्वामी-चरितविषयक पोथियोंके आधारसे प्रस्तुत की गयी है । संपादकने इस सूचीमें तारा अचिह्नान्कित ग्रन्थो व पोथियोंका स्वयं अध्ययन किया है ।

१. जम्बूस्वामी-चरितकी अंतर्कथाएँ

मूल कथाओंसे संबन्ध, संस्कृत, अपभ्रंश जंबूस्वामी-चरितोंमें उपलब्ध कथाओंका तुलनात्मक विश्लेषण एवं अंतर्कथाओंका महाकाव्यकी दृष्टिसे औचित्य तथा मूल्यांकन एवं कथानक रुढ़ियोंका विश्लेषण :

'जंबूसामिचरित'में लघु अंतर्कथाओंकी शृंखला उस स्थानसे प्रारंभ होती है, जब जंबूस्वामी विवाहके उपरांत चारों वधुओंके साथ मातृगृहके भीतर एकांतमें आकर उन वधुओंके बीच निविकार भावसे बैठ जाते हैं। वधुएँ प्रथमतः अपनी शारीरिक चैष्टाओं, सुंदर अंग-प्रत्यंगोंके प्रदर्शन तथा नाना प्रकारके हाव-भाव विलास, तीखे कटाक्ष एवं मधुरता पूर्वक वात्स्यायनके कामसूत्रके पाठ आदिके द्वारा जंबूस्वामीको अपने रूप-यौवनके पाशमे फँसाना चाहती हैं, पर जंबूस्वामीके विवेकपूर्ण हृदयपर इन सबका, किंचित्नात्र कोई भी प्रभाव नहीं होता और वह हिमाचलके समान अडिग, अडोल बना रहता है। यह अवस्था देखकर वधुएँ निराश होने लगती हैं और अब अपने कथा कौशलसे उसे वशमें करनेका प्रयत्न आरंभ कर देती हैं। इन्हीं कथा-प्रतिकथाओंके रूपमें इन लघु आख्यानोंकी सृष्टि होती है।

यहाँ एक विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि 'वसुदेव-हिंडी' तथा गुणभद्रकृत 'उत्तरपुराण'में भवदेवके जन्ममें उसे बोध देनेके हेतु उसकी वधू नागिलासे अपने ही वनको खानेवाले ब्राह्मण पुत्रकी अथवा जैन गणिनी (साध्वी) के मुखसे एक दासीके द्वारा अर्पण पुत्रको उसीका वन खिलानेका प्रयत्न करनेकी जो कथा कहलायी गयी है, वह वीर कविकी इस रचनामें नहीं है, यद्यपि उसका यहाँ होना अनुचित नहीं होता। दूसरी मुख्य बात यह है कि उपर्युक्त दोनों ग्रंथोंमें कथाके मध्यमें राजर्षि प्रसन्नचंद्र अथवा धर्मरक्षिका जो कथानक है, उसकी जंबूस्वामी चरितकी कथावस्तुसे कोई भी संगति न होनेसे, उसे यहाँ सर्वथा छोड़ दिया गया है।

आणाडिय अथवा अनादृत नामक देवका आख्यान और 'जंबूसामिचरित'में केरलके राजा मुगाककी, राजा श्रेणिकसे परिणेत्य कन्या विलासवतीके निमित्त हुए युद्धका वृत्तांत, ये सब प्रस्तावना—३ में 'मूलग्रंथकी संक्षिप्त कथावस्तुके' अंतर्गत आ गये हैं। अतः यहाँ 'जंबूसामिचरित'में वर्णित समस्त लघु आख्यानोंकी संक्षेपमें लेकर, उनमेंसे जो अन्य प्राकृत-संस्कृत चरितोंमें उपलब्ध है, उन्हींका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। इस प्रसंगमें एक आवश्यक कथ्य यह है कि इस अध्ययनमें वीर कविके पूर्ववर्ती वसुदेवहिण्डी, उत्तरपुराण (गुणभद्र) एवं जंबूचरियं (गुणपाल), तथा पश्चाद्वर्ती चरितकारोंमें संस्कृतमें हेमचंद्र, ब्रह्म जिनदास एवं पं० राजमल्ल, इस प्रकार प्राकृत-संस्कृत जंबूस्वामी विषयक छह प्रतिनिधि ग्रंथोंको आधार बनाया गया है।

[१] पहली कथा जंबूस्वामीकी सखी परिणीता पंकजश्री जन्हीकी ओर संकेत कर अपनी सपत्नियोंको संबोधित करते हुए कहती है, 'सखियो ! हमारा यह सतीर धनहड (धनदत्त) नामक मूर्ख किसानका अनुसरण कर रहा है। धनदत्त नामका एक मूर्ख किसान था। उसकी पहली सुशील—सद्गृहिणी पत्नी एक पुत्रको जन्म देकर स्वर्ग चली गयी। पुत्र बड़ा होकर घरका सब कार्य-भार भली भाँति देखने लगा। बृद्धत्वमें दैवसे प्रेरित होकर उसने एक चंचलचित्त और अति कामुक तरुणीसे विवाह किया तथा उसका वधवर्ती होकर रहने लगा। एक दिन अर्द्ध रात्रिको वह अकस्मात् उससे क्रुद्ध होकर शयनपर मुँह फेर कर पड़ रही। बहुते अनुनय-विनय करनेपर कारण बतलाया—घरमें तुम्हारा युवा पुत्र विद्यमान है, मेरे उदरसे जो पुत्र होगा, वे सब इसके दास बनकर ही जी सकेंगे। अतः इसे मार डालो। मेरे उदरसे जो पुत्र होगा, वृद्धापमें उनसे सुख उठायेंगे। पिता-पुत्र सबध, लोक-लाज, राज-भय और पुत्रकी बलिष्ठताका भी डर, कहीं उलट्टे मुझे ही न मार डाले, आदि बतलानेपर भी वह नहीं मानी और पुत्रको सरलतासे मार डालनेका उपाय भी सुझा दिया, 'प्रातःकाल खेतमें जब पुत्र हल चला रहा होगा, तो तुम भी पीछे-पीछे उद्धत बैल और तीखे फल वाला हल लेकर जाना। उसके पीछे हल चलाते हुए उसे दृष्ट बैलसे सीग भरवा देना, फिर हलके तीव्र फालसे उसको विदीर्ण करके मार डालना ! इसमें न राजभय है, न लोक लाजकी चिंता, न पुत्रके वलवान् होनेका डर।' 'सर्प भी मेरे और लामो न टूटे' ऐसा उपाय बतलाया। पासके घरमें सोते हुए पुत्रने यह सब

पापयोजना मुन लो और भवैरे ही आगे जाऊर हरे भरे खेतमें हल चलाकर उसका विनाश करने लगा । मोठेसे किसान थाया, तथा यह देखते ही अपना मन पडयंत्र भूल गया और बोला, अरे ! क्या पागल हो गया है, जो हरे-भरे खेतको उजाड़ रहा है ? पुत्रने कहा, इने उजाड़कर इयमें नया वान रोपूंगा । पिताने निंदा की, रे मूर्ख ! चला जा ! प्राप्यको छोडकर अप्राप्यको इच्छा करता है । पुत्रने उत्तर दिया आप भी तो रायिमें को हुई सलाहके अनुसार मुझ जैसे पुत्रको मारऊर नयी महिलासे अन्य पुत्रोंको इच्छा करते है । इनपर पिता पुत्रका आलिंगन करके रोने लगा । इसी प्रकार हम लोगोका यह भतरि (जंबूस्वामी) हम लोगोंको त्याग कर भविष्यमें सुरनारियोके साथ किन्हीं अपूर्व सुख भोगोकी उपलब्धिको आशा करता है ।'

यह आख्यान वसुदेव-हिंडो एवं उत्तर पुराण दोनोंमें नहीं है । गुणगाल कृत प्राकृत 'जंबूचरित्र'में यह थोडेसे परिवर्तनके साथ वर्णित है, तथा ब्रह्म जिनदाम (त्रि० सं० १५२०) और पं० राजनल्ल (त्रि० सं० १६३२) कृत् जंबूस्वामी चरित्रोंमें यह तथा इनमें उपलब्ध अन्य आख्यान भी लगभग जैसे-जैसे संस्कृत रूपांतरमें वर्णित हैं । राजमल्लको रचनामें जिन कथानकोंमें कुछ अंतर है, उन्हें यथास्थान निर्दिष्ट कर दिया गया है । गुणपालके अनुसार पत्नीकी मृत्युके उपरांत पिताका कष्ट देखकर पुत्रने ही पितासे दूनरा विवाह कर लेनेका आग्रह किया । परंतु विवाह योग्य जवान पुत्र धरमें रहनेसे कोई अपनी कन्या उसे देनेको तैयार नहीं हुआ । इसपर किमानने विवाहमें बाधक युवा पुत्रको मार डालनेका निश्चय किया और एक तीक्ष्ण धारवाला फरमा छुना कर हल चलाने गया, तथा पुत्रको मान्गिके अघव्यानमें खड़े खेतमें हल चलाकर उसे ही उजाड़ने लगा । पीछेमें पुत्रने आकर कहा, यह क्या खड़े खेतको उजाड़कर नया वान रोपेने ? किसानको लया, पुत्रने मेरा आशय जान लिया और सब बात सच कटकर रोने लगा ।

इन दो कथानकोंका अंतर गुणगाल-द्वारा वर्णित किमान पिताका चरित्र बहुत मोचे गिरा देता है, कि वह स्वयं पुत्रको मारनेका निश्चय करता है, जबकि 'जंबूमासिचरित्र'का किमान दूनरी तरुण पत्नीके धार-धार कति आग्रह करनेपर एवं अपनी कोई युक्ति न-चलनेपर विवश होकर पुत्र घातके लिए प्रस्तुत होता है ।

[२] उपर्युक्त आख्यानको सुनकर जंबूस्वामीने प्रत्युत्तर स्वरूप यह कथा मुनायी—'विष्यपर्वतपर एक बडा हाथी वपाके पूरसे नर्मदा नदीमें बह कर मर गया । उसके मासका लोलुपी एक कौवा भी उसके साथ-साथ बहता हुआ समुद्रमें जा पहुँचा और जब वहाँ पहुँचकर चारों ओर देखा तो आश्चर्यके लिए कोई गाँव, ठाँव, रुख आदि कुछ भी नहीं दिखाई दिया । हाथीको मच्छोने निगल लिया और कौवा निराश्रय होकर आकाशमें उड़ा तथा अंतमें काँव काँव करता हुआ समुद्रमें डूब कर मर गया । इसी प्रकार विषयासक्त हो तुम लोगोका सुख भोगता हुआ मैं ससार महासमुद्रमें फँसकर विनाशको प्राप्त नहीं होऊँगा ।'

वसुदेव-हिंडोमें यह कथा चतुर्थ नीलयथा लभकके अंतर्गत, ललितांगक देवके-द्वारा उसके पूर्व भवकी कथामें उसके मित्र स्वयंबुद्धके मुखसे कहायी गयी है और कुछ परिवर्तित रूपमें है—'श्रीमत् ऋषुमें एक बडा हाथी पहाडी-पर से नदीमें उतरता हुआ एक विषम किनारेपर आकर गिर पडा । भारी शरीर व बशकताके कारण वह वहाँसे उठ नहीं सका, और वहीं मर गया । अनेक पशु-पक्षी आकर गुदा-द्वारसे उसका मास खाने लगे । इस प्रकार द्वार बड़ा हो जानेपर अनेक कोए उसके पेटमें धुसकर भाँस खाते हुए वहीं रहने लगे । आतपके प्रभावसे कदाचित् गुदा द्वार छोटा हो गया, कौवे और प्रसन्न हुए कि अब और भी निविधन रूपसे यहीं रहेंगे । वपाकालमें पूरमें पडकर हाथी नदीमें बह गया । समुद्रमें जानेपर हाथीको मच्छोने निगल लिया, कौवे उसके पेटमें-से निकलकर उड़े और कहीं आश्रय न पा समुद्रमें गिर कर मर गये ।'

उत्तरपुराणमें यह कथा नहीं है, गुणगाल तथा हेमचंद्र कृत् चरित्रोंमें वसुदेव-हिंडोके कथानकके अनुसार संक्षिप्त रूपमें है—'विष्य पर्वतपर एक बडा हाथी किनी प्रकार मर गया । इसके आगे उपर्युक्त कथानुसार और समाप्ति इस प्रकार कि गुदा-द्वार बंद होनेपर (एक) कौवा हाथीके पेटके भीतर ही मर गया । ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्लकी कृतियोंमें बीरके अनुसार ही कथा आयी है ।

[३] अब कनकश्री बोली—'कैलास पर्वतपर एक वदर रहता था। एक दिन वह उसके शिखरसे गिरकर चूर-चूर होकर मरा, और तुरंत मणिस्वर्ण-जटित मुकुटको धारण करनेवाला विद्याधर हो गया। किसी दूसरे विद्याधरने इसे देखा और प्रियासे बोला कि जहाँ वानर मरकर विद्याधर हो जाता है, तब यदि विद्याधर मरे तो अवश्य उत्तम देव हीगा! ऐसा कहकर रोती हुई प्रियाके द्वारा बार-बार रोके जानेपर भी पर्वत शिखरसे कूद पड़ा और मरकर लाल मुँह वाला बंदर बनकर रह गया।'

वसु० हिंडी तथा उ० पु० में यह आख्यान भी नहीं है। गुणपाल तथा हेमचंद्रमें कुछ परिवर्तनके साथ परिवर्द्धित रूपमें है। उसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है—'भागोरथीके तटपर बंदरोका एक जोड़ा रहता था। एक दिन वानर तटवर्ती वृक्षपर चढ़ा और प्रमादसे भागीरथीमें गिर गया तथा सुंदर मनुष्य बनकर निकला। वानगी भी उसी वृक्षसे भागीरथीमें कूद पड़ी और सुंदर स्त्री बन गयी। तब मनुष्यने कहा आर्षो फिर कूद पड़ें, अबकी बार मनुष्यसे देव हो जायेंगे। स्त्रीने मना किया, नहीं माना और फिर कूद पड़ा तथा पुनः बंदर हो गया। स्त्री नहीं कूदी, और दैववशात् निकटवर्ती नगरके राजाको अग्रमहिषी बनी। वदरको एक मदारोने पकड़कर नाचना सिखाया और एक दिन उसे राजमहलमें ले गया। वहाँ नाचनेके बाद हाथ फैलाकर भाँगते समय वदरने रानीको देखा और पहचानकर अपनी दुर्गतिपर रोने लगा। रानीने भी उसे पहचान लिया और संबोधित किया, 'तब समझानेपर नहीं माना अब क्यों रोते हो?'

गुणपाल व हेमचंद्रके अनुसार 'रानीको पहचानकर वदरने अपनी करनीपर पश्चात्ताप किया' यहीपर कथा समाप्त हो जाती है। इस परिवर्द्धनसे कथाके इस आशयमें कोई अंतर नहीं आता कि उपलब्ध सुखको छोड़ कर जो कोई भविष्यमें अधिक सुखकी आशा करता है, वह दोनोंसे बंचित होता है।

ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्ल कृत चरितमें यही कथानक वीरकी अपेक्षा कुछ अतरसे वर्णित है पर्वतसे गिरकर विद्याधर बननेके उपरांत उस पूर्व वानरको एक मुनिके दर्शन हुए। उनसे विद्याधरने अपना पूर्वभव पूछा। मुनिने कैलास पर्वतसे गिरनेका वृत्तत उसे कह मुनाया। उसे सुनकर विद्याधरसे देव बननेकी इच्छासे वह पुनः पर्वतसे कूद पड़ा, और मरकर वापिस लाल मुँहवाला वदर हो गया। कवि वीर-द्वारा वर्णित इस कथानकमें कुछ अस्पष्टता और सविश्वता है, जब कि ब्रह्म जिनदास व राजमल्ल-द्वारा वर्णित कथा विलकुल स्पष्ट है। इसमें किसी अन्य विद्याधर युगलका प्रवेश नहीं है। एक ही वानरके साथ सारी घटनाएँ हुई हैं। कथाके आशयकी दृष्टिसे भी यह कथानक किसी प्राचीनतर कथाका शुद्ध रूप है; क्योंकि वानरसे विद्याधर बनकर उपलब्ध सुखोसे सतोष नहीं हुआ, और विद्याधरसे मरकर देव बननेकी लालसासे उसने ऐसा किया, तथा पुनः बंदरका बंदर होकर रह गया।

हरिभद्रकृत समराइच्च कहाके दूसरे भवमें इस कथाका प्राचीनतर रूप उपलब्ध होता है। वहाँ मुनि धर्मबोध, रुद्रदास एव सोना नामक पति-पत्नीके रूपमें अपने दो पूर्वभवोकी आत्मकथा सुनाते हुए कहते हैं—सोनाके अतिशय धार्मिक आचरणके कारण, कामभोगके सुखसे बंचित होनेसे रुद्रदास बहुत क्रुद्ध हुआ और उसे घट्टेमेंसे फूलकी माला निकालनेके बहाने संपर्से कटवाकर मार डाला। रुद्रसेनने मरकर तोतेका जन्म लिया और सोनाने पर्वतपर हाथीका, जो अनेक हृथिनियोंके साथ क्रीडापूर्वक सुखसे रहता था। तोतेने हाथीको सुखी देखा तो पूर्वजन्मका वैर स्मरण हो आया और उसने किसी प्रकार हाथीको इस सुखसे बंचित करनेका निश्चय किया। दैवयोगसे लीलारति नामक विद्याधर, मृगाक नामक विद्याधरकी बहन चंद्रल्लो, जिसपर वह अनुरक्त था, उसे बुराकर वहाँ लेकर आया और तोतेको देखकर बोला—'मैं इस पर्वतकी गहन कंदरामें अपनी प्रियाके साथ छिप जाता हूँ। मृगाक विद्याधर मेरा पीछा कर रहा है। जब वह यहाँ आये तो तुम कुछ मत बोलना, जब चला जाये तो मुझे संकेत कर देना। मैं तुम्हारे लिए इसका कुछ प्रत्युपकार करूँगा।' तोतेने

१. कथाकीधर्म एक स्नानवती तीर्थका उल्लेख है जिसमें पशुओंकी मनुष्य बनानेकी शक्ति कही गयी है। दो वदर जो जादूसे बना दिये गये थे; इस विषयमें वातचीत करते सुनाई पड़ते हैं।

अवसरका लाभ अपने कुनिश्चयको पूरा करनेके लिए उठाया। वह हाथी अपनी प्रियाओं सहित सुन ले, 'इस प्रकार जोरसे अपनी मैनामे बोला 'इस विकट प्रपातमें गिरनेसे सब इच्छाएँ पूर्ण होती हैं। जो व्यक्ति जो इच्छा करके इसमें गिरता है; उसकी वे इच्छाएँ पूर्ण होती हैं। ऐसा मैंने महर्षि विद्याधर सुना है। तो हम लोग विद्याधर बननेकी इच्छा करके इसमें कूद पड़े।' ऐसा कहकर जब लीलारतिका जगु विद्याधर मृगाक वहाँसि चला गया तो वह अपनी प्रियाके साथ लीलारति विद्याधरको सकेंत देनेके लिए प्रपातमें नीचेकी ओर गिरा। उसी समय विद्याधर अपनी प्रेमिकाके साथ वहाँसे उड़ा। हाथीने यह सब देखा और तोतेका कहना सब मानकर, विद्याधर बननेकी इच्छा करके अपनेको उस प्रपातमें गिराकर चूर-चूर कर लिया। इसी बीच तोता वहाँसे उड़ गया।

[४] इसके उत्तरमें जंबूस्वामी बोले—'विध्यपर्वतमें एक अतिशय कामातुर वृषगति वानर रहता था। जो दूसरे नर-वानरोंको वहाँ ठहरने नहीं देता था। वानरोंसे जो भी संतान उत्पन्न होती, पुत्रोंको छोड़कर, पुत्रको मार डालता था। कदाचित् एक वानरों सगर्भा हुई, और उस प्रदेगको छोड़कर, दूसरे वनमें जाकर संतान उत्पन्न की। बड़े होनेपर पुत्रने पिताके सवंधमें जिज्ञासा की और वानरोंसे सब वृत्तत जानकर बहुत क्रुद्ध हुआ तथा बदला लेने चला। विध्यमें जाकर वानर पितासे युद्ध करके उसे घायल व परास्त कर दिया और पीछा करते हुए उसे निकाल भगाया। युद्ध वानर मयसे श्रंत भागता हुआ तृषासे व्याकुल हो उठा। एक स्थानपर सामने पानी जैना पदार्थ (लेप—'शिलाजीत' ?) बहते देखा, और उसे पीनेको जैसे-ही हाथ बढ़ाये वे उसीमें चिपक गये। इसी तरह पैर भी और मुँह भी, तथा उसीमें चिपक कर मर गया। अतः उस वानरके समान विषय मुखोका प्यासा होकर मैं भी विनाशको प्राप्त नहीं होऊँगा !'

यह आख्यान भी वसुं डिंडी तथा उ० पु० में नहीं मिलता। गुणपाल तथा हेमचंद्रके चरितोंमें कुछ परिवर्तित रूपमें है, परंतु मूल कहानी यही है और इसका सारांश भी उपर्युक्त ही है।

ब्रह्मजिनदास एवं राजमल्ल कृत चरित्रमें यह आख्यान कुछ भिन्न रूपमें इन प्रकार है—विध्यपर्वतमें एक अतिशय कामातुर वानर वानरियोंके साथ रमण करता हुआ रहता था। दूसरे किसी वानरको वहाँ टिकने नहीं देता था। एक बार एक वानरोंसे एक बलवान् बंदर उत्पन्न हुआ और तरुण होकर उसीके साथ काम-क्रीडाके लिए उद्यत हुआ। यह देखकर युद्ध वानर अत्यंत क्रुद्ध हुआ और दोनोंमें युद्ध होने लगा। तरुण वानरने युद्धको अत्यधिक घायल कर दिया और उसे वनसे बाहर भगा दिया। युद्ध वानर वहीं मर गया। तरुण वानरको लौटते समय प्यास लगी, युद्धके घाव और थकान थीं हीं। उसने एक स्थानपर पानी देखा। वहाँ घनी कीचड़ थी, इसका उसे ज्ञान नहीं हुआ। पानी पीने जाकर उस सघन कीचड़में फँस गया। अशक्त होनेके कारण उसमें-चे निकल नहीं सका और वहीं मर गया। वीर कृत इस कथामें कुछ अस्पष्टता है और कौन सा वानर मरा यह ठीक ज्ञात नहीं होता। यहाँ वह विलकुल स्पष्ट है। आशय दोनोंका एक ही है—अतिशय कामवासनाओंके कारण मृत्यु।

[५] इसके उपरान्त चिन्तयश्रीने कहा—हमारा यह दुःख मूर्ख संखिणीके समान है। 'किसी नगरमें संखिणी नामका एक कबाड़ी रहता था। वह वनसे ईंधन ला, उसे बेचकर कष्टसे अपना पेट भरता था। कुछ दिनोंमें बीरे-बीरे भोजनसे बचकर उसके पास एक रुपया रोकड़ जमा हो गयी। बड़े उत्साहसे पत्नीके साथ मिलकर घडेमें रख कर, उसे एकांत स्थानमें गाड़ दिया। कुछ दिन-बाद सूर्यग्रहणके अवसर-पर कुछ यात्री बहुत-से मणि-रत्न लेकर तीर्थस्थानको चले और उन मणि-रत्नोंको सुरक्षित रखनेके लिए जब गढा खोदा तो भाग्यसे संखिणीके रखे हुए उस एक रुपये सहित वह घडा उनके हाथ लग गया। उन्होंने उसीमें अपने मणि-रत्न रखकर घडेको पुन भूमिस्तर कर दिया, तथा तीर्थस्नान कर अपने घरको लौट गये। एक पर्वका दिन आनेपर रुपयेको निकालनेके लिए जब संखिणीने वहाँ खोदा तो उसे मणि-रत्नोंसे भरा देखकर वह उछल पड़ा और पत्नीसे कहा—'हम बहुत भाग्यशाली और पुण्यवत हैं। देखो, एक रुपया रखकर गाड़नेसे ही घडा मणि-रत्नोंसे भर गया। अब इसका लोभ अत्यधिक बढ़ गया और यह सोचकर कि एक-एक सिक्का अलग-अलग घडोमें रखकर गाड़ देनेसे सभी घडे इसी प्रकार रत्नोंसे भर जायेंगे, उसने

बैसा ही किया, तथा कवाड़ीपनसे ही अपनी जीविका चलती रहेगी, ऐमा निर्णय कर उसमें-से एक भी सिक्का नहीं निकाला और घर चला गया, एवं उसी प्रकार लकड़ियाँ बेचकर कष्टपूर्वक जीवन थापन करता रहा। किसी दूसरे पर्वपर यात्री अपना धन खोजने आये तथा खोज-खोजकर सब घड़ोंमें-से अपने सब मणिरत्नोंके साथ कवाड़ीका एक रुपया भी निकालकर ले गये। दुवारा जब कवाड़ी उस गडी हुई संपत्तिको देखने गया तो सब घड़ोको रोता देखकर अपना सिर पीट लिया कि हाय उन मणि-रत्नोंके साथ मेरा एक मात्र रुपया भी चला गया।^१ इसी प्रकार हमलोगोका यह स्वामी स्वामी लक्ष्मीको तो भोगता नहीं और श्रेष्ठ स्वर्ग सुखको चाहता है। इसके हाथ कुछ भी नहीं लगेगा। ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्लकी कृतियोंमें यह आख्यान शंख नामक कवाड़ीके नामसे वर्णित है। अन्य चरितोंमें यह उपलब्ध नहीं होता।

[६] इसके प्रत्युत्तरमें जंबूस्वामी बोले—‘हे सुदरी ! रति सुखके लिए मैं भ्रमरके समान विनाशको प्राप्त नहीं होऊँगा। कमलगंधका लोभी मुख और सूर्यास्तको भी नहीं जान पाता और रात्रिके आनेपर उसी कमलमें बंद होकर मर जाता है। डभी प्रकार विषय-सुखोका त्याग न करके मैं अपना सर्व-नाश नहीं करूँगा।’ भ्रमरका यह सजित दृष्टांत भी अन्य चरितोंमें उपलब्ध नहीं होगा।

[७] यह दृष्टांत सुनकर रूपश्रीने कहा, तुम्हारे जैसे ही आत्मगर्बसे एक सर्प स्वयंकी ही करनेसे नेत्रलोके द्वारा निगल लिया गया। ‘किसी समय वर्षाकालमें सात दिनों तक लगातार घनघोर वृष्टि हुई। जल-यल सब एक हो गये। सूर्य भी दिखाई नहीं दिया। बहुत घर-पानीसे गल गये, बह गये। मनुष्य और पशु सभी नूखसे तड़पने लगे। ऐसे समय एक अति प्राज्ञ करकैंटा पानीमें बहता हुआ किसी तरह किनारे आकर लगा और आहारकी खोजमें निकला तो भयानक काले व जीम लपलपाते हुए सर्पके सामने जा पहुँचा। तत्काल उससे बचनेका उपाय सोचकर सर्पका जय-जयकार करके बोला, ‘हे स्वामिश्रेष्ठ, मुझे मारकर इस क्षुद्र जलुयोनिसे मेरा उद्धार कीजिए।’ इतना कहकर दीन मुख बनाकर अश्रु बहाता हुआ रोने लगा। इस आश्चर्यजनक व्यवहारका कारण पूछनेपर उसने सर्पको बतलाया कि आप हमारे कुलप्रभु हैं। भव-आपसे लाया जाकर मैं सीधे मोक्ष प्राप्त करूँगा, यह तो मेरे द्वारा आपके जय-जयकार किये जानेका कारण है। परंतु मेरे कुटुंबमें संतानें बहुत हैं। एक मेरे न रहनेसे वे अनाथ हो जावेंगे। यह मेरे रोनेका कारण है। इसलिए हे देव ! अच्छा हो कि आप चले और मेरे सारे कुटुंबको खा डालें। ‘बताओ तुम्हारा कुटुंब कहाँ है ?’—सर्पके ऐसा पूछनेपर करकैंटा एक पहलेसे देखे हुए नेत्रलोके बिलको ओर आगे-आगे चला और सर्प पीछे-पीछे। बिलके सामने पहुँचकर करकैंटा बोला, स्वामी जाइए। भीतर प्रवेश करके मेरे कुटुंबका भक्षण कर लीजिए। सर्प बिलमें घुसा और वहाँ नेत्रलोके समूहने उसे फाड़कर खा डाला। अधिककी इच्छा रखनेवाला सर्प दूसको तो देखता है, परंतु घातमें लगे व्यक्तिके प्रहारको नहीं देख पाता। इसी प्रकार अधिक (अनुपलब्ध) सुखोकी इच्छा करनेवाले हमारे इस प्रियतमके उपलब्ध सुख साधन भी शिव और माधव धूर्तों-द्वारा प्रलौभित राजपुरोहितके समान लुट जायेंगे।^२

ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्ल कृत चरित्रमें यह आख्यान अति संक्षेपमें वर्णित है। अपने आहारकी खोजमें निकला हुआ एक करकैंटा एक काले साँपके सामने जा पड़ा और उसे देखते ही अपने पहले देखे एक नकुल-विवरका स्मरण करके दौड़कर सँकड़ो छिद्रोवाले उस विवरमें घुस गया। सर्प भी उसके पीछे-पीछे भागा और नकुलोके महाबिलमें घुसते ही फाड़कर खा लिया गया।

१. यही आख्यान लोक कथा रूपमें इस प्रकार प्रचलित है—एक कवाड़ी बहुत कष्टसे रहकर प्रतिदिन कुछ बचाकर जंगलमें बड़ेमें गाड़कर रखने लगा। एक दिन उस बड़ेको खोदकर उसमें कुछ रखते हुए कवाड़ीको एक धूत्तने देख लिया और उसके जानेपर बड़ेमें-से उसकी सारा जमा-पूजा आरामसे निकालकर ले गया। ब्रह्म जिनदासकी कृतिमें भी इस आख्यानका अतः भाग इसी प्रकार है।

२. शिव और माधव धूर्तों-द्वारा राजपुरोहितको प्रलौभित करके लूटनेका आख्यान सपादकको अभी तक कहीं नहीं मिल सका।

[८] जंबूस्वामीने कहा कि विप यदि स्वाधीन भी हो, तो भी क्या तुरत ही उसका त्याग नहीं कर दिया जाता ? और यह क्या सुनायी—किसी रात्रिमें एक शृगाल एक नगरमें आहागर्भ प्रविष्ट हुआ। उसने मार्गमें पडा एक मृत बैल देखा और उसका मास खाने लगा। इसमें वह इतना आनन्द हो गया कि खाते-खाते उसका मुँह छिल गया और सारी रात कब बीत गयी, इसका भी उसे कोई भान नहीं हुआ। प्रातःकाल होनेपर लोगोंने आवागमनके शोरसे उसे बोध हुआ। तब उसने सोचा कि अपनेकी मृत दिखला देता हूँ, रात्रि आनेपर जंगलमें चला जाऊँगा। इतनेमें वहाँ लोग एकत्र हो गये और उनमेंसे एकने औपचार्य शृगालके कान व पूँछ काट लिये। फिर भी वह धाँत पडा रहा, यह सोचकर कि पूँछ व कानके बिना भी जी लूँगा, यदि पुष्पते आज वच जाऊँ तो। इनमें एक कामुकने उसके दाँतसे प्रियाका मन वशमें करनेके लिए पत्थर लेकर एक दाँत तोड़ डाला। अथ शृगाल जान वचाकर भागा। परन्तु सिंहके समान बलवान् एक कुत्तेने दौड़कर उसका गला पकड़ लिया और शोर करते हुए अनेक कुत्तोंने मिलकर उस शृगालको खा लिया। इसी प्रकार जो व्यक्ति विषय-भोगोंमें अंधा बना रहता है। वह निश्चयसे विनाशको प्राप्त होता है। ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्लकी कृतियोंमें यह कथानक संक्षेपमें वर्णित है, अन्य चरितोंमें सर्वथा नहीं।

[९] इस प्रकार कथा-प्रतिकथा होते होते आधी रात्रि व्यतीत हो जाती है। इसी बीच विपुल धन चुरानेकी इच्छासे विद्युच्चर (वसु० हिंडीके अनुसार प्रमथ अपने ५०० साधियों सहित; उ० पु० के अनुसार विद्युत्प्रम) नामक चोर वहाँ पहुँचता है। पहले दोनोंमें कुछ दार्शनिक वाद-विवाद होता है। विद्युच्चर नाता प्रकारसे जंबूस्वामीको सांसारिक भोग भोगनेकी प्रेरित करता है। जंबूस्वामी अपने पिछले चार जन्मोंका वृत्तांत सुनाते है। यह सुनकर विद्युच्चर कहता है कि यदि पूर्व जन्मोंके गुणगणोंकी परिणतिसे तुम्हें किसी प्रकार स्वर्ग मुख मिल गया, तो बार बार ऐसा होना कैसे समझ है ? इस संबंधमें एक कथा कटता है, उसे सुनी—'किसी धूमकड़ने अपने कार्यसे भ्रष्ट तथा खस (मुजली) व्याधिसे पीड़ित एक ङ्टको अटवीमें छोड़ दिया। स्वच्छंद विचरण करनेसे ङंट स्वस्थ और बलशाली हो गया तथा बहुत दिनोंपर कहीं उसे मनु खानेको मिला। उ० मधुका सदैव स्मरण करते रहकर वह करीलकी गाखात्रोको कभी चरता था और कभी नहीं भी चरता था। यही बात भोगे हुए स्वर्ग सुखोंको स्मरण करनेकी है। भला स्वर्ग और मोक्ष किस मूढको प्राप्त होते है ?

ङंटका यह कथानक उ० पु० में कुछ भिन्न रूपमें है। एक स्वच्छंद विचरण करनेवाला ङंट चरता हुआ कहीं पर्वतके निकट पहुँचा। वहाँकी घास किसी ङंके स्थानसे टपकते हुए रससे मीठी हो रही थी। ङंटेने उसे एक बार खाया, तो बस सदैव वैसी ही मीठी घास खानेके संकल्पसे मधु टपकनेकी प्रतीक्षामें अत्यध वास चरना छोड़कर वही बैठा रहा और अंतमें मूखसे तड़पकर मर गया। वसु० हिंडी और गुणपाल तथा हेमचंद्रके चरितोंमें यह कथा नहीं है।

ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्ल कृत जंबूस्वामीचरित्रमें इस कथाप्रकर्म उ० पु० की अपेक्षा कुछ अंतर है—उनमें स्वच्छंद धूमते हुए एक ङंटेने एक कुएँके तटपर खड़े हुए वृक्षके पत्ते खाते समय ऊपरसे टपकता हुआ एक मधुविंदु चख लिया। और अचिक मधु प्राप्त करनेकी इच्छासे उसने ङंकी गरदन करके शाखासे टपकते मधुको चाटनेकी चेष्टा की, और नहसा शरीरका संतुलन खो बैठनेसे कुएँमें गिरकर मर गया।

[१०] इसे सुनकर जंबूस्वामी यह कथा कहने लगे—'एक वणिकपुत्र धन कमानेकी अति तृष्णासे अकेला ही व्यापारको चला और एक अरण्यमें शीतल जलशाला एक सरोवर देखा। वहाँ उसे चोरोंने छूट लिया, और वह भयसे कांपता हुआ, जलका स्मरण करते हुए सो गया। स्वप्नमें उसने उ० सरोवरकी देखा और स्वप्नमें ही मानो प्रचुर जल पी लिया ऐसे संस्कारवशा जाग उठा तथा अत्यंत प्याससे पीड़ित हो जिह्वासे थोसविंदु चाटने लगा। भला इनसे कहीं उसकी प्यास बुझ सकती है ? इसी प्रकार वह व्यक्ति है जो भोगे हुए स्वर्ग सुखोंका स्मरण करता है। उसकी अभिलाषाएँ कभी नहीं मिट सकती। और फिर मधुष्पका यह काम-भोगी संबंधी सुख तो बहुत की विनोना, विवेक रहित तथा दूसरोंके लिए केवल कौतूहल उत्पन्न करनेवाला है।

बनु० हिंडोमें यह कथानक नहीं है। उ० पु०में इसके स्थानपर यह कथात्मक उपलब्ध होता है—'एक मनुष्य महा बह्मन्त्रसे पीड़ित था। उसने नदी, सरोवर, ताल आदिका प्रचुर पानी बार-बार पिया तो भी उसकी प्यास शांत नहीं हुई। तो क्या कुशाग्रपर रखे हुए शूद्र जलविदुसे उसकी प्यास बुझ जावेगी? कदापि नहीं। इन्ही प्रकार इस जीवने फिर कालतक स्वर्ग नुत्र भोगे हैं, फिर भी यह तृप्त नहीं हुआ, तो क्या हाथीके कानके समान चंचल (धार्मिक) इन वर्तमान मुखोंसे यह तृप्त हो जावेगा?

गुणपाल कृत 'जंबूचरियं'में इसके न्यानमें यह कथा उपलब्ध होती है।—'कलिंग देशमें अंबाडग ग्राममें कोयलेदे आजीविका करनेवाला एक लकड़हारा था। करवेंमें पानी भरकर लकड़ी काटने जंगलमें गया। लकड़ियाँ काटकर उन्हें जला दिया। आगकी गर्मी, सूर्यका ताप और परिश्रमसे उसे अत्यंत तीव्र प्यास लगी। इत्तर करवेंमें रखा हुआ जल बंदर पी गये। प्यासा ही बरको चला। पर थक्कर वहीं गिर पड़ा। इतनेमें थोड़ी मेघ वृष्टि हुई और ठंडा हवा चली, जिससे उसे नीद आ गयी। स्वप्नमें उसने देखा कि उसने सब सरोवरों और कुञ्जोंका जल पी लिया पर प्यास नहीं मिटी। नींद चुलनेपर प्याससे पीड़ित हो, वह एक कुएँपर गया। घासकी रस्ती बनायी और कुएँमें उतरकर उसके कीचडयुक्त जलको जीमसे चाटने लगा। भला इससे क्या उसकी प्यास बुझ जायेगी? इस क्रियाके पश्चात् सांसारिक वस्तुओंकी आध्यात्मिक दृष्टिसे तुलना की गयी है जैसे, पुरुष-जीव, सुषगा-भोगेच्छा आदि। हेमचंद्रने भी अपने परिशिष्ट पत्रमें इस कथाको लिया है।

[११] पुनः विद्युत्वरने कहा सुनिए—'एक वृद्ध बनिया था उसकी तस्य स्त्री थी। वह ग्यनि-चारिणी थी। एक बार वह ब्रह्ममुष्टि नामके एक षेटके साथ बहूत-सा द्रव्य लेकर निकल गयी। रास्तेमें उन्हें एक घूर्त्त मिला। वनपर दृष्टि रखकर उनके साथ उसने कपट प्रेम संबध बढ़ाया। उन दोनोंके अनुदित संबध-को जानकर कामोत्तेजक नष्ट गायन-द्वारा उन स्त्रीको मोह लिया और एक ग्रामासन देवालयमें पहुँचकर ब्रह्ममुष्टिसे पीछा छुड़ानेका यह उपाय किया—उसने स्त्रीसे कहा तुम ग्रामरक्षकसे कह थाओ कि दीर्घयात्रासे यकी हुई मैं अपने पतिके साथ अमुक देवालयमें सोऊँगी। स्त्रीने वैसा ही किया। रात्रिमें (वनमें चोरोंको कोई दुर्वटना होनेसे) कोतवाल अपने सहायकोंके साथ देवालयमें आया। स्त्री अटट ब्रह्ममुष्टिकी दीर्घयात्रा अकेले सोते हुए छोड़कर जागते हुए घूर्त्तकी शैव्यापर आ गयी, और घूर्त्त उस कोतवालसे बोला कि हमने दिनमें ही कह दिया था कि हम पति-पत्नी हैं, तीसरेको हम नहीं जानते, तुम लोग खोज नां। लोगोंने बेचारे ब्रह्ममुष्टिको पकड़ लिया, उसे बहुत मारा और बाँधकर ले गये। घूर्त्त उस कुलटाको साथ लेकर बहति भाग निकला और एक नदीके किनारे पहुँचा। वहाँ पहुँचकर वह बोला कि नदी बडी अथाह और दुस्तर है, लठः पहले तुम अपने नव बस्त्राभूषण उतार कर दे दो। एक बार उन्हें उस पार रल आके, वापस लाकर तुम्हें साथ ले आऊँगा। स्त्रीने उसका विश्वास कर सारे बस्त्राभूषण उतारकर उसे दे दिये। घूर्त्त उन्हें लेकर पार उतर गया और परले पार जब धीघ्रतासे जाने लगा तो स्त्री चिल्लाकर बोली, बरे वृष्ट मुझे ठगकर वार इस नन अवस्थामें छोड़कर कहाँ चला? घूर्त्तने धीघ्रतासे चलते हुए हाथ हिलाकर उत्तर दिया, अरे तूने पहले तो परिषय किये हुए श्रेष्ठ भत्तारको छोडा, फिर जात्रको भी मरवा डाला, तो अब क्या मुझे भी खाना चाहती है? मैं चला, तू यहाँ रह। घूर्त्तके चले जानेपर जब वह असुखी इस दुस्त्वस्थामें वीर पर लडी थी कि भागका टुकडा लिये एक शृगाल वहाँ आया और उस मांसके टुकडेको छोडकर जलसे बाहर स्चलकर ँडे हुए एक मच्छको पकडनेको लगवा। इतनेमें मच्छ जलमें कूद गया और उबर मांसके टुकडेको एक बाध छपटकर ले गया। दोनोंसे वञ्चित हो बडे लज्जित और दुःखी हुए इन शृगालको लक्ष्य करके उन कुलटाने ध्यग किया, रे मुख शृगाल! म्वाधीन (भागका टुकडा) वस्तुको छोडकर तुसे क्या लाभ हुआ? इन ध्यगप्रमाणसे दिग्धकर शृगालने (मनुष्यको बागीमें) उत्तर दिया—'मैं तो अवश्य कुञ्जि या मूर्च हूँ, पर हेगी यह सट्टुडि जो मुझे नोख डे रही है, वह म्बयं नेरे लिख कहाँ दिखाई देनी है? पहले तूने पतितो छोडा, फिर जानको मरवा डाला और जब घनसे भी गयी व घूर्त्तने भी। नम बडी न्हकर बोल्नेमें कुछ तो लज्जा कर।' यह कथानक नुनकर विद्युत्वर बोला—'इन अथवी कथानकको समझो, और देखमुखो-के लिए स्वधीन मुखोओ छोडकर मनका दयन मत करो।

यह कथानक वसु० हिंडीमें नहीं है। उ० पु० में केवल शृगालसे संबद्ध अंश स्वतंत्र रूपसे इतना भर है कि एक शृगाल मासका टुकड़ा मुँहमें लिये कहींसे आया, नदी तट-पर जलसे बाहर मच्छको देख, मासका टुकड़ा छोड़, मच्छको पकड़ने क्षपटा, मच्छ पानोमें खिसक गया। इधर मांसके टुकड़ेको वाज उठाकर ले गया, और शृगाल दोनोसे वंचित हुआ। यहाँ असतो कथानकसे इसका कोई संबंध नहीं दिखलाया गया है, परंतु अन्य चरितोमें मित्र-मित्र रूपोंमें कहीं अति विस्तारसे और कहीं संक्षेपमें वर्णित है। गुणपाल कृत्त जंबूचरिय तथा उसका अनुकरण करनेवाले हेमचंद्रने इसे बहुत विस्तारसे दिया है और इसके साथ एक दुराचारी सुनार पुत्र या वणिक् पुत्र बघूका वृहद् आख्यान भी जुड़ा हुआ है (देखें आगे)।

ग्रह्य जिनदाम एवं राजमल्ल कृत जंबूस्वामिचरित्रमें इस कथानकसे कुछ अंतर है। वह संक्षेपमें इस प्रकार है—'एक वृद्ध वनियेको तरुण स्त्री विटोसे स्वेच्छासे रमण करनेको धन लेकर एक जारके साथ भाग गयी। रास्तेमें किसी दूसरे धूर्त्तने उसे मोह लिया और उसके साथ किसी अन्य नगरमें जाकर ठहरी। वहाँ वह तीसरे जारसे लग गयी। तब धूर्त्तने नगर रसकसे जाकर शिकायत की कि कोई जार मेरी स्त्रीके पास आता है, उसे पकड़ो तो तुम्हें कुछ सुवर्ण लाभ कराऊँगा। रात्रिमें धूर्त्त जागते हुए उस पुंश्चलीके साथ पड़ रहा। कुछ देर बाद वह तीसरा जार आया। स्त्री उठकर चुपचाप उसके अंकमें चली गयी। फिर कौनवाला अपने सहायकोके साथ आया और पूछा, यहाँ कौन जार या चोर है? तीसरा जार झटसे बोला, मैं नहीं जानता आप लोग खोजें! उन्होंने धूर्त्तको ही पकड़ लिया, उसका कुछ कहना नहीं सुना कि उसने ही कोतवालको शामको समाचार दिया था। उसके पकड़े जानेपर तीसरा जार स्त्रीको लेकर भाग निकला।' आगेका कथानक चोरके अनुहार है। इतना अंतर है कि शृगालके ऊपर ध्वंय्य करनेपर दूसरे तीरपर-से वह जार चिल्लाकर बोला यह तो पशु है, इसे हिताहितका विवेक नहीं, पर पापिनी तूने स्वयं क्या किया? अपना चरित्र तो देख...आदि, और उसे नदीके इसी तीरपर नग्न छोड़कर चला बना।

[१२] इसका उत्तर जंबूस्वामीने यह कथानक सुनाकर दिया—'एक वनिया जहाज लेकर कहीं दूसरे तीरपर पहुँचा और एक श्रेष्ठ बहुमूल्य चिंतामणि रत्न खरीदकर जहाजसे वापिस लौट चला। आते समय उस चिंतामणि रत्नको हथेलीपर रखकर, अन्यत्र उसे बेचकर नाना प्रकारके हाथी-घोड़े आदि खरीदकर राजाके समान संपदा सहित घर लौटनेकी सुखद कल्पनाएँ करते-करते अर्द्धनिद्रित-सा हो गया। जिससे वह रत्न हथेलीसे निकलकर समुद्रके मध्यमें जा गिरा। वनिया तुरंत सचेत होकर तैरनेवालोसे चिल्लाया, अरे! अरे! जहाज रोको! चिंतामणि रत्न समुद्रमें गिर गया है, उसे ढूँढकर मुझे लाकर दो। भला वह रत्न क्या उस वनियेको पुनः मिल सकेगा? उसी प्रकार यह मनुष्य जन्म चिंतामणि रत्नके समान है। रति सुखकी निद्रामें पड़कर संसार समुद्रमें खोकर, मैं इसे फिर कैसे पाऊँगा?' वसुदेव हिंडी, गुणपाल कृत जंबूचरिय तथा हेमचंद्रके परिशिष्ट पर्वमें यह आख्यान नहीं है। उ० पु० में इसके स्थानपर यह कथानक है—'कोई मूल पथिक कहीं जा रहा था। रास्तेमें किसी चौराहेपर उसे महा देदीप्यमान रत्नोकी राशि मिली। वह चाहता तो सरलतासे उसे ले सकता था। परंतु तब उसे न लेकर पथिक भागे चला गया। फिर कुछ समय बाद मनमें विचार आनेपर उस रत्नराशिको लेनेकी इच्छासे वापिस लौटकर पुनः उस चौराहेपर आया, तो क्या वह उस रत्नराशिको पा सकेगा? नहीं। इसी प्रकार जो मनुष्य इस संसार रूपी समुद्रमें गुण लगी मणियोंको पाकर भी उन्हें एक बार स्वीकार नहीं करता, वह पीछे उन्हें फिर कभी नहीं पा सकेगा।' यहाँ कथानकका आशय मनुष्य जन्ममें प्राप्य त्रय, संयम, सावनादि गुणोंसे है, जिन्हें मनुष्य जन्मके सिवाय अन्य किसी गतिमें, किसी शरीरमें पाया नहीं जा सकता।

[१३] जंबूस्वामीके यह कथानक कहनेके उपरांत विद्युच्चरने एक शृगाल संबंधी कथानक सुनाया—'विष्य क्षेत्रमें एक वनूषधारी प्रचंड भील रहता था। एक दिन उसने वाणके आधाससे एक हाथीको मार डाला। इधर उसे सर्पने डस लिया। उस सर्पको उसने वही वनूषके प्रहारसे मार डाला और स्वयं भी विषके प्रभावसे गिरकर मर गया। देवयोगसे ये सब, मृत हाथी, भील और सर्प तथा वनूष एक

धूमने हुए शृगालकी दृष्टिमें पड़ गये। उनमें मोचा यह हाथी छ मास, मनुष्य एक मास और सर्प मेरा एक दिनका; भोजन होगा। अच्छा हो इन मयकों अभी रहने हूँ। आज तो अपनी धुआँ दम धनुषकी सूची ताँतकी गाऊँ मिटा लेता हूँ। ऐसा मोचकर उन ताँतकी काटने लगा। उसे कुतन्नेने धनुषमें बँधी हुई गाँठ टूट गयी और उसके एक विरसे उसका तालू और कपाल फूट गया, तथा वह शृगाल वहीं ढेर हो गया। अत्यधिक लोभ करनेवाला शृगाल जिस प्रकार विनष्ट हुआ, उसी प्रकार वर्तमान उग्रवज्र सुनोकी छोटकर भविष्यत् गिव (मोक्ष) स्वर्ग सुखकी आशामें तुम भी यूँ ही विनष्ट होओगे।'

यह आख्यान गुणपाल और हेमचंद्रके चर्चितोंमें नहीं है। उ० पु० में उन्नी प्रकार तथा वसु० टि०में नौवयगा नामक चतुर्थ लभकमें कुछ परिवर्तित रूपमें है—'भोलने एक ही वाणने हाथीको मार गिराया और हाथी दाँत तथा गजमुक्ता निकालनेके लिए एक फरमा लेकर उसपर प्रहार करने लगा। हाथीने गिरते समय एक बटा सर्प उनके नीचे दब गया और उनमें भीउकी टम लिया, नील भी गर गया और सर्प भी।' योप कथा पूर्ववत् है। ब्रह्म जिनदासकी रचनामें यह धीरेने अनुमार ही बणित है।

[१४] इन कथाके प्रत्युत्तरमें जंबूसामीने लकडहारेका कथानक सुनाया—'एक दिन एक लकडहारा कुन्हाडो लेकर वनमें गया। लकडी काट, गद्दा बाँध, उमे मिरपर रसकर चला दिया। मध्याह्न कालमें तीक्ष्ण न्वि किरणोसे तम होकर, भार डालकर एक वृक्षके नीचे पटकर मो रहा। स्वप्नमें उनमें राजलीला-विलास देखा। मानो वह राजा है। सुंदर कामिनीयोके साथ काम-क्रीडा कर रहा है। निहामनपर बैठा है और उसपर चमर डुलाये जा रहे हैं। हाथी, घोड़े, घोड़ा आदि सभी सामग्री है और राजद्वारपर प्रतिहार पहरा दे रहा है, आदि। इतनेमें धुआँसे पीडित उनकी क्रुद्ध पत्नीने आकर उसे जगा दिया। उसके फठोर बचनोको महन न कर, लकडहारेने उसे पीटकर भगा दिया और पुन मो गया, तो अवकी वार स्वप्नमें देखा कि उसके सिरपर भार लदा है, और सारे धारीरसे मलिन दुर्गंधयुक्त पानीना वह रहा है। यह स्वप्न देखकर दुःखसे तटफ कर वह जाग उठा। अब यदि लकडहारेको स्वप्नमें एक वार राज्य मिल भी गया, तो वह भी वार-वार कैसे मिल सकता है? अब यदि मैं एक वार मनुष्य जन्म खो बैठा, तो फिर मरकोके दुःखोसे ग्रन्त होकर पटा रहूँगा।'

ब्रह्म जिनदास एव राजमल्ल कृत चरित्रमें यह आख्यान लकडहारेकी पत्नी-द्वारा जगा दिये जानेपर समाप्त हो जाता है। वसु० हिंडी, उ० पु० और गुणपाल तथा हेमचंद्र कृत चरित्रोंमें यह नहीं है। परंतु संपूर्ण जैन साहित्यमें 'स्वप्नमें लकडहारेको राज्य प्राप्ति' कहावतके रूपमें प्रसिद्ध और प्रचलित है।

[१५] जंबूसामीके उपर्युक्त आख्यानके उत्तर स्वल्प विद्युच्चरने यह कथा सुनायी—'एक वार नदो-का एक बडा दल वर्षाकालमें आजीविका हेतु नगरमें आया। रात्रिमें बोड नामक एक जरा जीर्ण नदको वृक्षोसे संकोर्ण उद्यानके समीप अपने निवास (तंबू) की रखा हेतु छोडकर, नट समूह नृत्य दिखलानेके लिए राजाके पास गया। इधर अपनी साससे भर्त्सना पाकर आभरणोंने लदी हुई एक बहू उसी उद्यानमें एक वृक्षके नीचे आकर ठहरी और मरनेके उद्देश्यसे अपने गलेमें फंदा लगाया। यह देखकर वृद्ध बोडने सीमा, अरे, इसके मरनेसे मुझे यहाँ वैठे-वैठे स्वर्ण लाभ हो गया। परंतु यह मरना नहीं जानती। मैं इसे ठीकसे मरनेकी शिक्षा देता हूँ, और मरनेपर इसके आभूषणादि ले लूँगा। पूछनेपर स्त्री बोली, हे भाई! मुझे शिक्षा दो, और सुख-मृत्युसे यमपुरी भेज दो। तब नटने स्त्रीके हाथसे फंदा ले लिया और एक मुरज लाकर वृक्षके नीचे रखा। उसपर स्वयं चढ़कर उस फंदेको एक पटसे वृक्षकी शाखामें बाधकर, अपने गलेमें डाल लिया। 'हे सुंदरी! मुरजको लुडकाकर सुदृढ़ फंदेसे सुखपूर्वक मरना चाहिए' इस प्रकार उत्साहपूर्वक उस स्त्रीको यह दिखलाते समय वेगके कारण दैव संयोगसे मुरज लुडक गया, फंदेकी सुदृढ़ गाँठ वृद्ध बोडके गलेमें पड गयी और वह तड़फडाता हुआ मर गया। वह स्त्री बोडको इस तरह मरता हुआ देखकर, लज्जा और भयपूर्वक बहूसे भाग गयी। इसी प्रकार जो व्यक्ति असिद्ध (अनुपलब्ध) कार्यकी इच्छा करता है, और उसका परिणाम न जानते हुए इस बोडका अनुसरण करता है, वह स्वयंकी ही दुर्बुद्धिसे सुख त्याग कर मृत्युकी प्राप्त होता है।'

बसु० हिंडो और गुणपाल तथा हेमचंद्रके चरितोंमें उपर्युक्त आख्यान नहीं है। ३० पु० में ईपत् परिवर्तित संक्षिप्त रूपमें है—“एक वधु सासकी भर्तनका पाकर एक उद्यानमें वृद्धके निकट आयी और मरनेके लिए गलेमें फंदा लगाया। इतनेमें स्वर्णकारक नामका एक मृदंगवाद्यक वहाँ था पहुँचा और स्त्रीका अभिप्राय जानकर सुवर्णलाभके लोभमें उसे मरनेकी रीति दिखाने लगा।” वागे कथा पूर्वोक्त प्रकार है।

ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्ल कृत जंबूश्यामोचरित्रमें यह कथानक बिलकुल भिन्न रूपमें है—“एक कुशल नटने अनेक नर्तकियोंके साथ राजभवनमें नृत्यादिका सुंदर प्रदर्शन किया। उससे राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसके दलको प्रचुर सुवर्ण-वस्त्राभूषणादि बहुमूल्य पुरस्कार प्रदान किये। यके हुए ये सब लोग रात्रिमें वही सो गये। नट जागता रह गया। सबको सोते देख नटको लोभ आ गया। सोचा, ‘सब सोये हैं, मैं यह सब प्राप्त धन लेकर यहाँसे चंपत हो जाऊँ।’ यह मोचकर सब धनकी गठरी बाँधकर वह जैसे ही चला, जागती हुई नर्तकियोने उसे वही पकड़ लिया और प्रातःकाल राजाके सामने उपस्थित किया। राजाने उसे चोरीका उचित दंड दिया। इस प्रकार अतिशय लोभके कारण जो उचित पुरस्कारों था वह भी लोया और उलटे दंडका भागी बना। वीर कृत कथानकका आशय भी ऐसा ही है। विद्युच्चरका तात्पर्य यह है कि, ‘हे जंबूश्यामी, शिव सुखकी उपलब्धिके लिए इनने अघोर मत हीओ। कुछ दिन उपलब्ध अनुपम सुंदरी स्त्रियों और अन्य भोगोंको स्वेच्छासे भोगो फिर गोल प्राप्तिके लिए साधना करना। अत्यधिक उतावलापन करनेमें दोनो ही प्रकारके मुखासे बंचित होनेकी संभावना अधिक है। हो सकता है सहसा इन मुखांको त्याग कर पीछे पश्चात्ताप हो। तब न इस लोकके रहोगे न परलोकके।’

[१६] इसके प्रत्युत्तरमें जंबूश्यामीने अपने निश्चयकी दृढ़ता और विवेकशीलता व्यक्त करनेके हेतुसे चंग नामक सुनार पुत्र (अन्यत्र ललिताग, कही सुनार पुत्र, कही श्रेष्ठ पुत्र) का आख्यान सुनाया, जो इस कथा-प्रतिकथाओंकी इस शृंखलामें सबसे अंतिम है। बनारसका लोकपाल नामक राजा गन्धुको जीतनेके लिए देगांतरको गया। युद्धमें पाँच वर्ष लग गये। पीछे उसकी विभ्रमा नामक महादेवी पुरुष संयोगके बिना कामपीडासे व्याकुल हो उठी। एक बार अपने राजप्रभावकी छतसे उसने चंग नामक बलि सुंदर, युवा एवं हृष्ट-पुष्ट सुनार पुत्रको देखकर दासीसे कहा कि किसी प्रकार इस युवकसे मिला और मेरा काम-दाह शांत कर ! दासी गयी और चतुराईसे उस सुनार पुत्रको बुला लायी। जानेपर दोनोंने दृष्टिसे एक दूसरेको पहचाना और कामराग-भरी महादेवीने उसे अपनी शैश्यापर बैठाया। उसी समय विजयी होकर राजा समस्त सैन्य साधन, परिजन, परिवारके साथ लौट आया। रानीने चंगको पीछेके कोठेमें छिपा दिया। परंतु किसी कारण उसी कोठेमें राजाके आगमनका समाचार जानकर भयसे उठावली रानीने चंगको पुरीप कूपमें डाल दिया। उसीमें प्राण टिकने-भरको आहार पहुँचाती रही। चंग छह मास तक कूपमें पड़ा रहा। उसका सारा शरीर दुर्गंध पूर्ण और पाहुरवर्ण हो गया। पुरीप कूपके बहुत सड़ जानेपर कर्मकारोंने जलसे कूपका शोधन किया, भूमिस्थ द्वारसे मलयुक्त गंदे पानीके साथ चंग भी बहकर निकल गया, और गंगाके प्रवाहमें जाकर गिरा। गंगाके तीरपर लोगोंने उसे पहचाना और पूछा कि तेरा शरीर दुर्गंधयुक्त और पांडुर-वर्ण क्यों हो गया ? चतुर चंगने उत्तर दिया कि मुझे रूपासक्त नाग सुंदरियाँ पाताल स्वर्गमें ले गयी और वहाँ एक दिन मुझे धरका स्मरण करते हुए जानकर रोपमें कुल्लन करके छोड़ दिया। धर जाकर जलसेचन और दिव्य सुरमित्त द्रव्य तथा तैलोक प्रयोगसे बहुत दिनोंमें चंग पुनः पूर्ववत् स्वस्थ, सुंदर हो गया। किसी समय राजा पुनः बाहर गया। रानीको पुनः पुरुष विरह उत्पन्न हुआ, उसने चंगको पुनः बुलवाया, पर वह नहीं गया, और दासीसे बोला—“सौंदर्यका जो फल मैंने माँगा उसके कारण शरीरकी दुर्गंध अब तक शांत नहीं हुई। पुण्यसे एक बार संकटसे छूट गया तो क्या कोई बार-बार उम संकटमें पड़ने जाता है ?” इसी प्रकार हे मामा ! तिर्यं और नरक गतियोका अनुभव करके यदि किसी प्रकार मुझे मनुष्यत्व प्राप्त हो गया, तो अब मैं लेश मात्र रति सुखके बशीभूत होकर पुनः नरक गतिमें पड़ने नहीं जाऊँगा।’

यह आख्यान कुछ अंतरसे सभी चरितोंमें उपलब्ध है। बसु० हिंडोमें संक्षेपमें यह कथा इस प्रकार है—‘वसंतपुरके शतायुध नामक राजाकी ललिता नामक रानी एक दिन छज्जेपर खड़ी थी। तब उसने राजः

भागसे जाते हुए श्रेष्ठ पुत्र ललितांगको देखा और उसपर मुग्ध हो गयी तथा अपनी चतुर दाभीके हाथ उसके पास प्रेमपत्र पहुँचाया । पूर्णिमाका दिन आनेपर रानीकी अस्वस्थताका बहाना करके चतुरदाती बँधके रूपमें ललितांगको रानीके भवनमें ले गयी । इस प्रकार दोनों निशंक रति सुख भोगने लगे । अंत पुरके वृद्ध रक्षकोको इसका पता चल गया । उन्होंने राजाको सूचना दी और राजाने ललितांगको पकड़नेके आदेश दे दिये । तब राजीने भयभीत होकर ललितांगको पुरीप कूपमें डाल दिया । भागेकी कथा लगभग पूर्वोक्त प्रकार है ।

गुणपाल कृत जंबूचरियमें इतना अंतर है कि 'कौमुदी महोत्सव आनेपर राजाने रानीसे उद्यान-क्रीडा हेतु चलनेको कहा । रानी शिरोवेदनाका बहाना करके नहीं गयी । राजाने जानिपर एकांत पाकर चतुर घायने ललितांगको अंत पुरमें प्रवेश करा दिया । इधर अकेले होने व रानीकी शिरोवेदनाकी चिंतासे राजाका मन उद्यान-क्रीडामें नहीं लगा और वह शीघ्र लौट आया । भयभीत रानीने ललितांगको पुरीप कूपमें डाल दिया ।' भागे कथा पूर्वोक्त प्रकार है और अंतमें यह कि ललितांगके साप बार-बार ऐसा हुआ, तथापि वह सचेत नहीं हुआ ।

हेमचंद्रके चरितमें इतना अल्प अंतर है कि कौमुदी उत्सवके समय राजा शिकारपर गया, पीछे यक्ष मूर्तिके बहाने घायने ललितांगको अंतःपुरमें प्रवेश करा दिया तथा दोनोंने अपनी कामवासनापूर्ण की । रक्षकोको संदेह हो गया कि यक्ष मूर्तिके रूपमें पर-पुरुषको प्रवेश कराया गया है । राजाको इसकी सूचना दी गयी । शेष वसु० हिंडीके समान ।

उपर्युक्त चारो ग्रंथोंमें इसका धार्मिक प्रतीकार्य यह निकाला गया है कि ललितांग जीव है, रानी विषय भोगोंका प्रतीक है और पुरीप कूप गर्भवासना; तथा अंधद्वारसे निष्क्रमण माताके गर्भद्वारसे निकलनेके समान है, आदि ।

उ० पु० में कथा बहुत संक्षेपमें है—एक राजाकी रानी ललितांग नामक घूर्तपर मुग्ध हो गयी और चतुराईसे दासी-द्वारा उसे अंतःपुरमें बुलवा लिया, तथा यथेच्छ रमण किया । राजाको इसका पता लग गया । भयसे रानीने ललितांगको शौचालयमें छिपा दिया और वही दुर्गवसे दस घुटकर उसकी मृत्यु हो गयी ।

हरिभद्रकृत 'समराह्णकहा'के नौवें भवमें प्रद्युम्न राजाकी रति नामक रानी तथा शुभंकर कुमारकी परस्पर आसक्तिकी कथा भी गुणपालके आख्यानके समान है और वही कथानक गुणपालकी रचनाका आधार है । राजमल्लने लगभग वीर कृत 'जंबूत्सामिचरिड'का ही अनुकरण किया है, केवल इतने अंतरसे कि राजा शिकारको गया था, युद्धके लिए नहीं । यहाँ एक ध्यान देने योग्य बात यह है कि वसु० हिंडी, उ० पु० तथा हेमचंद्र वर्णित कथानकमें रानी और ललितांगका मिलन होता है और वे अपनी वासना पूरित करते हैं । परंतु वीर कवि तथा हरिभद्र और गुणपालके अनुसार चंग या ललितांग अंतःपुरमें पहुँचा ही था, कि राजा आ गया अथवा रक्षकोको खबर लग गयी और बस ! ललितांग गूथ कूपमें फँक दिया गया । उनकी काम-वासना अतृप्त ही रही । ऐसा कहनेमें तीनों ग्रंथकारोंका आशय यह रहा है कि संसारमें जीव चाहे कितने ही भोग भोगे तथापि उसकी भोगवासना सदैव अतृप्त ही रहती है ।

अन्य अंतर्कथाएँ

जं० सा० च० की उपर्युक्त अंतर्कथाओंके अतिरिक्त वसु० हिंडी, जंबूचरिय (प्राकृत) परि० पर्व तथा श० जिन० एवं पं० राज० कृत जंबूत्सामिचरिडमें निम्नलिखित अंतर्कथाएँ और भी उपलब्ध होती हैं । लोककथा-सत्त्वों, एवं मूलकथाको रोचक बनाने, तथा उसे गति प्रदान करने आदिकी दृष्टिसे ये कथाएँ भी महत्त्वपूर्ण हैं । उन्हें गुणपाल कृत जंबूचरियके कथा-क्रमानुसार यहाँ दिया जा रहा है ।

[१] राजपि प्रसन्नचंद्र एवं वल्कलचिरी

अ० महावीर अपने संघसहित राजगृहके निकट पवारे । लोग उनके दर्शनोंको गये । राजा श्रेणिकके दो सिपाहियोंने भगवान्के दर्शनोंको जाते हुए रास्तेमें मृनि प्रसन्नचंद्रको खड़े होकर ध्यान करते देखा । उन्हें

देख उनमेंसे एक बोला—इसकी तपस्याका कोई लाभ नहीं। यह राजा दीवा लेते समय अपनी रानियों और बालक राजकुमारको मंत्रियोंके भरोसे छोड़ आया है। वे राजकुमारका वध कर देना चाहते हैं। इस प्रकार इसकी प्रव्रज्या इसके कुल नाशका कारण होगी। इतना कहकर वे चले गये। इधर यह सब सुनकर मुनिको बड़ा विक्षोभ उत्पन्न हुआ। वे मनसे ही मंत्रियोंसे युद्ध करने लगे और उनके मुख-मंडलपर तीव्र गतिसे विविध-भावोका उतार-चढ़ाव प्रकट होने लगा। पीछेसे भगवान्‌के दर्शनोंको आते राजा श्रेणिकने मुनिको इप अवस्थामें देखा और समवशरणमें पहुँचकर भगवान्‌से उनके संबन्धमें प्रश्न किया। भगवान्‌ने मुनिका पूर्ण वृत्तान्त इस प्रकार सुनाया—

‘पोतनपुरका राजा सोमचंद्र शिरके इवेत बालका निमित्त पाकर अपने पुत्र प्रसन्नचंद्रको राज्य दे दीक्षित हो गया। गर्भवती रानी धारिणीने भी पतिकका अनुगमन किया। समयपर वनमें ही धारिणीने पुत्रको जन्म दिया, और स्वयं सूतिका रोगसे चल बसी। पिता सोमचंद्र साधु अब स्वयं पुत्रका पालन करने लगे और उसका नाम बल्कलचारी रखा। उधर नगरीमें राजा प्रसन्नचंद्रको किसी प्रकार अपने भाईके जन्म लेने आदिके समाचार मिले। उसने बड़ो युक्तिपूर्वक (देखें : परि० पर्व) पिता सोमचंद्रको पता लगे बिना ही बल्कलचारीको अपने पास बुलवाकर उसका विवाहादि करा दिया। इधर सोमचंद्र साधु होनेपर भी पुत्रके मोहवश पुत्र वियोगमें रोते-रोते अवा हो गया। एक बार दोनो भाई पितासे मिलने वनमें आये। पुत्रमिलनके आनंदामुग्धसे सोमचंद्रको पुनः दृष्टि प्राप्त हो गयी। पिताकी जुटोमें अपने चौरसे उनके पात्रोंको साफ़ करते-करते बल्कलचारी ध्यानमें लीन हो गया कि कभी मैं भी इसी अवस्थामें (साधु) था, उसी अवस्थामें चिंतन करते-करते उसे वहीं पूर्व जन्मका स्मरण हो आया। एकाग्रतासे ध्यानमें ऊँचे और ऊँचे चढते हुए बल्कलचारीको वहाँ केवलज्ञान प्राप्त हो गया, तथा वे प्रत्येकबुद्ध हो गये। पिताको भ० महावीरको सौंप वे प्रत्येकबुद्ध अत्यन्त विहार कर गये। प्रसन्नचंद्रको भी इस घटनासे वैराग्य हो गया, और घर आकर बालक राजकुमार तथा रानियोंको मंत्रियोंकी देख-रेखमें छोड़ वह दीक्षित हो गया। भ० महावीरके यह कथा कहते-कहते मुनि प्रसन्नचंद्रको भी इसी बीच आत्मचेतना जाग्रत हुई। उनके विचार बदले। उन्होंने तीव्र पश्चात्ताप किया, और उसी समय ध्यान बलसे ऊपर चढते-चढते उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया।

यह कथा जंबूद्वीपके अतिरिक्त बसुं ह्रिबी, उ० पु० (संक्षिप्त) तथा परि० पर्वमें भी प्राप्त होती है। इसी प्रसंगमें अंतिम केवलो कौन होगा, यह पूछनेपर भगवान्‌ ने विद्युन्माली देवका नाम लिया और जंबूद्वीपको भवदेव नामक प्रथम भवसे कथा प्रारंभ की।

[२] भोग-वासनाग्रस्त ब्राह्मण-पुत्र

भवदेवके दीक्षीपरान्त भोगकी इच्छासे पुनः नागिलासे मिलने आनेपर नागिला (जं० सा० च० नागवसू) ने उसे प्रतिबोध देनेके लिए कथा सुनायी।

नागिला : रे भवदेव, साधुत्वको छोड़कर तू वासना-ग्रस्त ब्राह्मण-पुत्रके समान पशु होकर दुःख पावैगा।

भवदेव : कौन-सा ब्राह्मण-पुत्र ?

नागिला : सुन ! मैं तुझसे कहती हूँ—‘लाटदेशके भद्रकक्ष नगरमें रेवादित्य नामक बलि दरिद्र ब्राह्मण हुआ। उसकी अत्यंत विद्वत व कुरूपाङ्गति तथा स्वभावसे महादुष्ट यथा नाम तथा गुण आपदा नामक पत्नी थी। उसे पाँच लड़कियाँ हुईं और एक सबसे छोटा लड़का। महान् कष्टमय जीवन व्यतीत करते-करते आपदा तो कुछ काल बाद मर गयी, और ब्राह्मण अत्यंत दुःखी व क्लिप्तव्यविमूढ होकर लड़कियोंको ब्राह्मण लड़कोके हाथोंमें सौंप पुत्र सहित घरसे निकल गया। तीर्थान्तमें साधुओंके सत्संगसे वे दोनों साधु बन गये। पुत्र साधु जीवनके कष्टोंको सह नहीं सका, अब संघसे तिकाकाल दिया गया और गृहकार्योंमें प्रवृत्त हो गया। ग्वालोकके साधु चराने, लोगोंका लकड़ी, पानी, भूसा आदि ढँनेका धम करके भी कठिनाईसे वह उदरपूर्ति कर पाता, फिर भी घरमें स्त्री लानेकी तीव्र इच्छा रखता। इस प्रकार महान् कष्टमय जीवन व्यतीत करते हुए अतुल भोगवासनाओसे पीड़ित वह ब्राह्मण पुत्र एक बार सर्प काट लेनेसे मरकर एक

महिपके रूपमें जन्मा और उस जातिमें भी वध-बंधन आदि सहता हुआ असह्य भार ढोने लगा (उसके पिताने, जो संन्यासपूर्वक मरकर देव हुआ था, स्वर्गसे आकर उसे बोन दिया)। इसी प्रकार तू भी भोग-वासनाके बशीभूत हो दुर्गतिको प्राप्त होगा ।'

[३] वमन-भक्षणच्छुक ब्राह्मण-पुत्र

इसी बीच नागिलके साथकी ब्राह्मणीका पुत्र वहाँ आ गया और माँपे बोला—'माँ एक थाली लाओ, मैं बहुत स्वादिष्ट दूध-पाक जीमकर आया हूँ, उसका वमन करूँगा। उसे तू संभालकर रख लेना, जब मुझे पुनः भूख लगेगी तो मैं उसे खाऊँगा। अभी मुझे दूसरे घर जीमने जाना है।' उसका यह कथन सुनकर माँने उसे धिक्कारा—'छि. बेटा ! वमन करके भी कही पुनः खाया जाता है ?' भवदेवसे भी न रहा गया और उसने भी ब्राह्मण-पुत्रका बडा धिक्कार किया। यह सुनकर नागिलाने कहा—'रे भवदेव ! दूसरेको क्या धिक्कारता है, तू अपनी ओर तो देख ! तू भी अपने वमन (त्यक्त) किये हुए (विपय भोगो) को फिरसे खाने (भोगने) की इच्छा कर रहा है ! नागिलके इस कथनसे भवदेवको सच्चा बोध हो गया।

यह कथा जंबूचरियके अतिरिक्त वसु० हिंडी और परि० पर्वमें भी मिलती है।

इस स्थल-पर गुणभद्र कृत उ० पु० में निम्नरीतिसे तीन कथाएँ कही गयी हैं जो अन्यत्र नहीं मिलती।

[४] दासी-पुत्र

दीक्षाके वारह वर्ष पश्चात् गाँवमें आने-पर मुनि भवदेवकी भेंट सुव्रता नामक गणिनी (साध्वियोके संघकी अच्यक्षा) से हुई। भवदेवने गणिनीसे अपनी स्त्री नागश्री (जं० सा० च० नागधसू) के संवधमें पूछा ! गणिनी उसका अभिप्राय समझ गयी, और उसे संयममें स्थिर करनेके आशयसे 'मै नागश्रीके संवधमें अच्छी तरह नहीं जानती', ऐसा उत्तर देकर, अपने साथकी दूसरी आशिकाको निम्नलिखित कथा सुनाने लगी—'एक सर्व समृद्ध नामक वैश्य था। उसका दारुक नामका सरल-हृदय दासी-पुत्र था। एक दिन दासीने सेठका जूठा स्वादिष्ट भोजन जवर्दस्ती अपने पुत्रको खिला दिया। वह खा तो गया, पर भ्रान्तिके कारण उसने वह सब भोजन वमन कर दिया। उसकी माँ ने वह वमन किसकी थालीमें ले लिया, और भूख लगनेपर पुन उसके सामने रख दिया। भूखसे अत्यंत पीडित होनेपर भी दारुकने अपना वमन नहीं खाया। तब मुनि अपने छोटे हुए पदार्थको किस तरह चाहते हैं।

[५] राज-श्वान

इसके उपरान्त सुव्रता दूसरी कथा कहने लगी—'नरपाल नामक राजाने कीतुकवश एक कुत्ता पाल रखा था। राजा उसे अच्छे अच्छे भोजन देता, सुवर्णके आभूषण पहनाता और वनविहारदिके समय उसे सोनेकी पालकीमें साथ बैठाकर ले जाता। एक दिन पालकीमें जाते समय कुत्तेकी दृष्टि अकस्मात् एक बालकको विष्टापर पड़ गयी, और उसे प्राप्त करनेकी इच्छासे वह क्षट उसपर कूद पड़ा। यह देख राजाने उसे डंडेसे पीटकर भगा दिया। इसी प्रकार जो मुनि पहले सबके पूजनीय होते हैं, वे ही छोटी हुई वस्तुको इच्छा कर फिर अनादरके पात्र बन जाते हैं।

[६] दुर्बुद्धि पथिक

इसके बाद सुव्रता यह कथा कहने लगी—'एक पथिक वनमें-से सुगंधित फल-पुष्प तोड़कर लानेकी इच्छासे चला, परंतु सुमार्ग छोड़कर महा संकीर्ण वनमें जा पहुँचा। वहाँ उसने उसे मारनेकी इच्छासे सामने आता-हुआ एक व्याघ्र देखा। उसके भयसे भागते-भागते वह दुर्बुद्धि पथिक एक भयंकर कुएँमें जा पडा। वहाँ उसे बात-पिसादि सब दोष उत्पन्न हो गये, और सब इंद्रियाँ जडीमूत होने लगी। सर्पादि का भय भी वहाँ, था, और कुएँमें-से निकलनेका कोई उपाय भी उसे शान्त नहीं था। पुण्यसे एक सद्बोध वहाँसे आ निकला, और दयाद्वरं होकर उसे ठोक प्रकारसे कुएँसे बाहर निकलवाया। औपचोपचारके द्वारा उसके सब रोग नष्ट कर दिये। उसको सब इंद्रियाँ पूर्ववत् क्रियाशील हो गयीं। तब वैद्यने उसे सर्वरोगीय नगर (मोक्ष) की

ओर रवाना कर दिया। कुछ काल बाद वह पथिक पुनः विषयोंमें आसक्त हो गया, और दिशा ज्ञात होकर पुनः उसी कुएँमें जा गिरा। इस कथामें पथिक मिथ्यादृष्टि जीव है, वैद्य सद्गुरु है, कुयी संसार-कूप है, व्याधियाँ सांसारिक व्याधि-व्याधि दुःख, रोग, शोक हैं। सद्गुरु रूपी वैद्य कीबोके सम्यग्दृष्टि रूपी नेत्रों एवं सम्यक् ज्ञान रूपी कानोंको खोल सम्यग्चारित्र्य प्रदान कर मोक्ष रूपी सर्वमणीय नगरकी ओर जीवोंको रवाना करते हैं। सद्बुद्धि पुण्यवान् जीव एक बार उस मार्गको प्राप्त कर फिर मुक्ति प्राप्त किये बिना उसे नहीं छोड़ते। पर दुर्बुद्धि भवंपुण्य भ्रमागे पुरुष बार-बार सत्संयोग पाकर भी विषयोंमें अंधे और मूढ बने रहकर उस मार्गसे फिर-फिरकर लौट आते हैं। गणिनीकी ये सब बातें सुनकर भवदेवको सच्चा वैराग्य हो गया।

तीसरे भवमें शिवकुमार कनकवतीका प्रेमाख्यान बहुत बड़ा है, और मूल कथासे उसका कोई वास्तविक संबंध नहीं। अतः उसे यहाँ नहीं दिया जाता। यहाँसे हम विद्युन्मालीके रूपमें देवायु पूर्ण करके जंबूस्वामीके जन्म और १६ वर्षकी आयुमें सुवर्मस्वामीके दर्शन-धर्मोपदेशके उपरांत जंबूस्वामीको वैराग्य होनेसे आगेकी कथाओपर आते हैं। जंबूस्वामी आर्य सुधर्माका उपदेश सुनकर घर आये, और उनमें तया उनके माता-पितामें इस प्रकार वार्तालाप होने लगा—

[७] इभ्यपुत्र

जंबू—माँ सुधर्मस्वामीके दर्शन और धर्मोपदेशसे मुझे अपने चार पूर्वजन्मों (भवदेव, देव, शिवकुमार, विद्युन्मालीदेव) का स्मरण हुआ है। इससे मैं संसारसे पूर्णतः विरक्त हो गया हूँ और मुनि दीक्षा-लेना चाहता हूँ। आप मुझे दीक्षा लेनेकी अनुमति दें।

माँ—धर्मोपदेश तो हमने भी अनेक बार सुना है, पर तेरे जैसा निश्चय तो कभी नहीं हुआ!

जंबू—माँ किसीको अनेक बार सुनकर भी धर्मबोध और श्रद्धा नहीं होती, और किसीको एक बार सुनकर ही हो जाती है। इस संबंधमें मैं तुम्हें एक दृष्टांत सुनाता हूँ, उसे ध्यानेसे सुनो—

‘वसंतपुरमें लावण्यवती नामकी एक अति रूपवान् और धनवान् गणिका रहती थी। अनेक समृद्धि-शाली राजपुत्र उसके पास भोग करनेको आते थे। कुछ काल ठहरकर जब वे जाने लगते तो लावण्यवती अपनेको स्मरण रखनेके लिए उन राजपुत्रोंको उनके मना करनेपर भी अपने बहुमूल्य कङ्के-कुंडलादि आभूषण भेंट किया करती थी। एक बार रत्नोंका पारखी एक चतुर वणिक पुत्र उसके पास आया। लावण्यवतीके पाँच अमूल्यरत्नोंसे अटित पाद-पीठको, कोई पहचान न सके इस हेतुसे, अन्य गणिकाओं-द्वारा अनादरपूर्वक यहाँ-वहाँ फेंके जाते देख उस रत्न-पारखी वणिक पुत्रने तुरंत पहचान लिया। कुछ दिन वहाँ रहकर जब उसने घर जानेकी इच्छा प्रकट की तो लावण्यवतीने उससे भी अपनी स्मृतिकी रक्षाके लिए कोई वस्तु ले लेनेका आग्रह किया। उसने उत्तर दिया, ‘यदि कुछ लेना ही है तो तुम्हारे निरंतर चरणस्पर्शसे सांभाल-शाली यह पादपीठ ही मुझे मिले।’ लावण्यवतीने उसे वहकानेका बहुतेरा प्रयास किया, पर वह अपने आग्रह-पर अटल रहा। तब लावण्यवतीने उसके रत्नपरीक्षाके कौशलपर मुग्ध होकर अपना वह महार्घ्य पादपीठ उस वणिक पुत्रको अर्पित कर दिया। हे माँ! यही बात धर्म श्रवणके संबंधमें है। इस दृष्टांतमें गणिका धर्मश्रुतिका प्रतीक है, राजपुत्र श्रोता, कङ्के-कुंडलादि आभूषण धार्मिक अणुव्रत, पादपीठ सम्यग्दर्शन, पञ्चरत्न पाँच महाव्रत, और वणिकपुत्र सम्यग्ज्ञानका प्रतीक है। साधारण श्रोता छोटे-छोटे व्रतोंको लेकर संतुष्ट हो जाते हैं, और सम्यग्ज्ञानी पुरुष सम्यग्दृष्टि ग्रहण कर पञ्च-महाव्रतोंको धारण करके मोक्षको अपना लक्ष्य बनाता है। अतः आप मुझे दीक्षा लेनेकी अनुमति दें।’

यह कथा जंबूचरियके अतिरिक्त केवल वसु० हिंडीमें मिलती है।

[८] पाँच मित्र

माता-पिता—जय पुनः सुधर्म गणधर आये तब तुम चले जाना!

जंबू—इस संबंधमें आपसो एक पुरानी कथा सुनें—कंचनपुर नामके प्रसिद्ध नगरमें पाँच मित्र

रहते थे ! एक बार कुटुम्बनाथ भगवान्का बर्नोन्देध मुनकर उनमेंसे एकने कहा—भगवान्के मुखसे धर्मश्रवण करना अति दुर्लभ होता है । अतः हमलोग उनके चरणोंमें दीक्षा ले लें । दूसरने कहा इन या किसी अन्य भगवान्के पुनः यहाँ आनेपर हम लोग दीक्षा लेंगे । ऐसी संका आनेपर वे पाँचों स्वयं भगवान्के पास गये और उनसे भगवान्के दर्शन तथा बर्न श्रवणकी अति दुर्लभ जानकारी वहाँ दीजा ले ली । यही बात मेरे संबंधमें है ।’

यह कथा भी संवृत्तरिचके अतिरिक्त केवल म्मुं हिंदीमें प्राप्त होती है ।

[९] मधु-विदु दृष्टांत

संज्ञका विवाह हो गया और वह घर आकर बधुओंके बीच विविधकार भास्से बैठ गया । सब झो गये, संज्ञू जागता रहा । इतनेमें प्रभव चोर वहाँ चोरी करने आया । संज्ञूको जागते देख, और उसकी दीक्षा लेनेकी इच्छा जात इनमें इस प्रकार वार्तालाप हुआ (ऋषि वीर, ब्र० जिन० एवं पं० राज०के अनुपचार यह वार्तालाप बधुओं और संज्ञूके बीच हुआ)—

प्रभव : संज्ञू तुम्हारा यह देव दुर्लभ अद्वितीय रूप, योग्य, अथार संपत्ति तथा ये अपूर्व-अनिष्ट मुंबरी बधुएँ । इन सबका अलभ्य मानवीय मुख भोगकर परिपक्व बय आनेपर तब तुम दीक्षा लेना ।

संज्ञू : हे प्रभव ! यह समस्त सांसारिक मुख नुष्ठ मधु-विदुके आस्वादेक समान है ! सो कैसे ? इसका दृष्टांत मुझे सुनो—

‘एक बार एक जनवान् बणिक् वाणिज्यके लिए निकला और राहमें बड़े दुर्गम वनमें फँस गया । वहाँ दन्के समान एक दुर्घात हाथी उसके पीछे लग गया । उन रत्नाके लिए भागता-भागता बणिक् एक बट दूधके प्ररोहोंको पकड़कर उसके नीचे स्थित क्षुरमें लटक गया, जिसके चार कोनोंमें चार त्रिपैले सर्प और बीचमें एक भयानक अडगर मेंहूँ कौले पड़े थे । डवर एक देव और एक काळा ऐंठ दो कूहे बधिराम गतिसे उसी प्ररोहको खाट रहे थे, जिससे वह लटका था । इतनेमें हाथी भी आ गया और क्रुद्ध होकर उखाड़नेके लिए उस बटदूधको झकझोर डाला । दूधके हिलनेसे उसपर लगा मधुनक्षिर्वाला छत्ता उड़ गया और उसनेसे एञ्-एञ् देव टक्कर भाग्से बणिक्के मुखमें जाकर गिरने लगी । बणिक् उसका आस्वाद लेने लगा । वे चापे मधु-नक्षिर्वा भी काकर बणिक्के चिन्ट गयीं और तीक्ष्णतासे काटने लगीं । आवाय-नार्गस जाते एक विद्यावरने बणिक्को इस मारणांतिक भयावह स्थितिमें देखा और अनुकंग पूर्वक बहाँसे उसका उद्धार करनेको उत्तर हुआ । पर उस महान् संकटमें भी वह बणिक् उन क्षुद्र मधु-विदुओंके स्वादको नहीं छोड़ सजा । वहाँसे उसको अवलंब—डाल काट दी । उसका प्राणांत हो गया और वह रूपमें उन न्यायक सन्के मुखमें जाकर गिरा । इस दृष्टांतमें बणिक् संसारी जीव है; धन संसार है, वाणिज्य सांसारिक मृत्पाएँ हैं, हाथी मृत्पूका प्रतीक है ! बटदूध मोक्ष है, जिसपर वह चढ़ नहीं सक्ता । प्ररोह आयु है और देव व काले कूहे दिन और रात हैं जो बधिराम गतिसे मानवीय आयुष्यको खाटते रहते हैं । मधु-नक्षिर्वा बन्ध्याधियाँ हैं, जिनसे मनुष्य पीड़ित रहता है । वह कून मृत्पूकू है और चार सर्प मरक, त्रिपैव, मनुष्य व देव ये चार गतियाँ तथा अडगर क्षुद्र-मूख जीव योगि (निर्गोद) का प्रतीक है । इन परिस्थितियोंमें सांसारिक इन्द्रिय मुख उस क्षुद्र मधु-विदुके आस्वादेक समान है ! विद्यावर ब्रह्मगुरु है । पर मोहांय जीव मद्गुरुका उद्देश्य और अवलंब पात्रर भी इन्द्रिय मुखोको त्याग नहीं सक्ता तथा मृत्पूरांत मयायक दुर्घातिको प्रान होता है ।’

यह कथा सं० सा० च० के अतिरिक्त उर्दू-उर्दू सगी बरितोंमें पायी जाती है !

प्रभव : यदि ऐना हो, तो भी हे संज्ञू ! अपने नादा-निवा, बंधु-बांधव, पतिनयोंके प्रति अपने कर्तव्योको पूर्ण करके तब तुम दीक्षा लेना ।

संज्ञू : प्रभव ! सांसारिक संबंध जिन्ने अत्यंत और अथार होते हैं, इस संबंधमें यह आदयान ध्यानसे सुनो—

[१०] कुवेरदत्त-कुवेरदत्ता (अठारह नाते)

मथुराकी एक वैश्या कुवेरसेना एक बार जुबूबाँ भाई-बहनोकी माँ बनी । उसने उनके नाम कुवेरदत्त और कुवेरदत्ता रखकर उनकी अँगुलियोमें नामांकित मुद्रिकाएँ पहनाकर एक मंजूपामें रख उन दोनोंको जमुनामें प्रवाहित कर दिया । वहाँसे हुई वह मंजूपा शौर्यनगरके किनारे दो बणिकोके हाथ लगी । उनमेंसे एकने पुत्रीको ले लिया, दूसरेने पुत्र । युवा होनेपर समान रूप गुणोको देख उनका परस्पर विवाह कर दिया गया । विवाहोपरांत दूत-क्रीडामें कुवेरदत्ताने कुवेरदत्तको जीत लिया । सखियोने कुवेरदत्तकी अँगूठी निकालकर कुवेरदत्ताकी गोदीमें डाल दी । अँगूठीको देखते ही कुवेरदत्ताको सहसा ऐसा हुआ कि हो न हो हम दोनों भाई-बहन हैं ? माता-पितासे वृत्त पूछनेपर बात सत्य सिद्ध हुई । इससे कुवेरदत्ताको बड़ी विरक्ति हुई और वह जैन साध्वी बन गयी । कुवेरदत्त व्यापारादिमें लग गया । एक बार व्यापारके ही प्रसंगमें वह मथुरा पहुँचा और कुवेरसेनाके रूप गुणोकी ख्याति सुन उससे आकृष्ट हुआ और अंततः उसीके यहाँ रहने लगा । कुवेरसेनासे उसे एक पुत्र हुआ । कुवेरदत्ता साध्वी भी धूमते-धामते मथुरा पहुँची और वहाँ भाईको माँके साथ भोग भोगते जान उसे अतिशय बेश हुआ । दोनोंको (माँ कुवेरसेना, भाई कुवेरदत्त) प्रतिवोध देनेकी इच्छासे वह कुवेरसेनाके ही घर जाकर ठहरी । भाई व माँ (अब पति-पत्नी) दोनोंने उसे नहीं पहचाना । उनके पास खेलते (कहीं पालनेमें झुंजते) बालकको देख वह बोली—तू मेरा भाई, पुत्र, देवर, भतीजा, चाचा और पौत्र है । तेरा पिता मेरा भाई, पिता, बाबा, पति, लड़का और स्वसुर है; और तेरी माँ, मेरी माँ, दादी, मामी, पुत्रवधु, सास और सौत है । कुवेरदत्त-कुवेरसेना साध्वीके इस प्रलापसे बड़े क्षुब्ध हुए और उसका वास्तविक अर्थ पूछा । तब कुवेरदत्ताने जन्मसे लेकर अबतककी सारी कहानी उन्हें सुनायी और उन्हें अपने संबंध बतलाये कि जैसे उसने कहे थे, वे सभी सच हैं । कुवेरदत्ताके इस व्याख्यानसे कुवेरदत्तकी भी तीव्र वैराग्य हो गया और वह भी दीक्षित हो गया तथा कुवेरसेना भी सच्ची श्रद्धालु धर्मनिष्ठ श्राविका बन गयी । तो हे प्रभव ! ये सांसारिक संबंध तो ऐसे ही मिथ्या हैं, इनमें कोई सार नहीं है । जब एक ही जन्ममें इसने नाते (अठारह) संभव हैं, तो फिर जन्म-जन्मकी तो बात ही क्या ? न जाने कौन किसका क्या-क्या बना है ? और क्या-क्या बनता रहेगा ? अतः इन झूठे संबंधोके लिए मैं आत्मकल्याणकी हानि-क्यो कहे ?

यह कथा जंबूचरियके अतिरिक्त वसु० हिंदी और परि० पर्वमें उपलब्ध होती है ।

[११] गोपयुवक दृष्टांत : अर्थ विनियोगकी विरूपता :

प्रभव : हे जंबू ! तुम्हारे सातिशय बचनोसे किसकी बोध नहीं होगा ? तथापि मैं कहता हूँ कि जिस अर्थ (धन) की उपलब्धि बड़े महान् प्रयत्नसे होती है, और वह धन तुम्हारे पास विपुल परिमाणमें है, उसके परिभोगके लिए वर्ष-भर धरमें रहो, फिर प्रव्रज्या ले लेना ।

जंबू : सत्पुरुष उत्तम पात्रोके लिए धनके परित्यागकी प्रशंसा करते हैं, न कि कामभोगमें । उसके विनियोगकी । कामभोगोंमें धनके विनियोगके संबंधमें मैं तुम्हें एक दृष्टांत सुनाता हूँ । उसे ध्यान देकर सुनो—

‘अंग जनपदमें प्रभूत गो-महिष संपत्तिके स्वामी गोप रहते थे । एकद्वार चोरोने उनके घोप (बस्ती) पर आक्रमण किया, और एक सद्यःप्रसूता रूपस्विनी तरुणीको, उसके लडकेको वहाँ छोड़कर, अपहरण करके ले गये । उन्होंने चंपानगरमें उसे वैद्याओके हाटमें ले जाकर बेच दिया । वहाँ वमन-विरेचनानादि परिकर्म, परिचर्या और उपचार किये जानेसे उसका मूल्य लक्ष-मुद्राओके बराबर हो गया । उवर उसका वह लड़का भी बड़ा होकर जवान हो गया और धीकी गाडियाँ भरकर चंपा नगरोकी गया । वहाँ उसने धी बेचा, और तरुण पुरुषोंको गणिकाके घरमें स्वच्छंद क्रीडा करते हुए देखकर सोचा, ‘भूझे इस घनसे क्या काम ? यदि इस प्रकार इच्छित युवतीके साथ विहार न करूँ, और देखते-देखते वही गणिका उसे अच्छी लगी जो उसकी माँ थी । उसने उसे यथेच्छ शुल्क दिया । संन्याके समय स्नानादि करके अपनी माँ-गणिकाके घरकी ओर चला । रास्तेमें एक अनुकंगवाना देवताने बछड़े-सहित गायका रूप बनाकर अपने को उस युवकके समक्ष प्रकट किया ।

‘पैर अयुधि (विद्या) में पड़ गया’ करके वह गोप युवक अपना पैर बछड़ेके शरीरसे पोंछने लगा। तब बछड़ा मनुष्य वाणीमें बोला—‘माँ यह कैसा व्यक्ति है, जो अमेध्यमें भरे हुए अपने पैरको मेरे शरीरसे पोछता है।’ माँ बोली—‘पुत्र ! दुःखी मत हो, यह अभागा अपनी माँके साथ अकार्य करने जा रहा है, इस गोपयुवकके लिए तेरे साथ ऐसा व्यवहार कोई बड़ी बात नहीं’, ऐसा कहकर देवताने अपनेको अदृश्य कर लिया। गोपयुवकने सोचा, ‘सुना है मेरी माँ चोरोके द्वारा अपहरण कर ली गयी थी। क्या वह गणिका तो नहीं हो गयी ?’, ऐसा विचारकर पहले तो बहीसे लौटने लगा। फिर सत्य शोधकी जिज्ञासासे वहाँ गया, और अज्ञानमें माँके गणिका सुलभ व्यापारोकी उपेक्षा कर, आग्रहपूर्वक उससे उसका पूर्व वृत्त बिल्कुल सच-सच पूछा। वास्तविकता जान उसे तीव्र क्लेश हुआ—‘तो प्रभव ! मैं तुमसे पूछता हूँ यदि देवताने अनुकंपा न की होती, तब उस गोपयुवकके अनका भोग और विनियम कैसा होता ?’

यह कथा केवल वसु० हिंडीमें ही प्राप्त होती है।

[१२] महेश्वरदत्तका पिंडदान

प्रभव : जंबू ! तुम्हारा कथन सत्य है, फिर भी पुत्रके नाते, लोकवर्माकी रक्षा हेतु पितरको पिंडदान करके जाना तुम्हारा कर्तव्य है।

जंबू : प्रभव ! पिंडदानकी बात बिल्कुल व्यर्थ है। इस विषयमें मैं एक कथा कहता हूँ, उसे दत्तचित्त होकर सुनी—

ताम्रलितिमें महेश्वरदत्त नामका वणिक् रहता था। उसके माँ-बाप (बहुला व समुद्र) बड़े धूर्त और लोभी थे। मरकर उसकी माँ कुतिया व पिता भैंसके रूपमें उत्पन्न हुए। महेश्वरदत्त वाणिज्य हेतु प्रायः दीर्घकालीन प्रवासमें रहता था। पीछे उसकी अकेली, सुंदर-युवा पत्नी व्यभिचारिणी हो गयी। एक बार महेश्वरदत्त अचानक प्रवाससे लौट आया और उसने पत्नीको अपनी आँखों व्यभिचार करते देख लिया। उस जारको क्रोधवश महेश्वरदत्तने तत्क्षण मौतके घाट उतार दिया। मरकर वह जार अपने ही शुरुसे महेश्वरदत्तकी पत्नीके गर्भमें प्रविष्ट हो गया। वणिक् फिर सुखसे पत्नीके साथ रहने लगा। उचित समयपर उसे पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसे उस मूढ़ने अपना ही समझा। माता-पिताके वार्षिक श्राद्धके दिन उसने भैंसा खरीदा और बच करके, उसका मांस पकाया। पिंडदान किया, स्वयं खाया, गोदीमें बिठा पुत्रको दिया, और एक कुतिया बा गयी उसे भी फेंका। इसी बीच एक साधु वहाँ आये और यह देख, आह दुःखपण ! आह क्लेश ! ऐसा शोकपूर्वक उच्चारण कर लौट चले। महेश्वरदत्त उनके पीछे भागा और उनके चौकोद्गार का कारण पूछा। साधुने सब कुछ बतलाया—यह भैंसा जिसे तुमने काटा, तुम्हारा ही पिता है और यह कुतिया तुम्हारी माँ है, तथा प्रमाणके लिए कुतियोंको घरमें ले जा उससे गड़े घनका स्थान बतलाया। बात सत्य निकली। हे प्रभव, पिंडदानकी बात बड़ी व्यर्थ है। कहीं पितर और कहीं पिंडदान ?

यह कथा जंबूचरियके अतिरिक्त वसु० हिंडी तथा परि० पर्वमें मिलती है।

[१३] कौडीके लिए करोड़ खोनेवाला वनिया :

जंबूके ये वचन सुनकर प्रभवको बोध हो गया और उसने पूछा—स्वामी ! सिद्धिसुख और विषय-सुखोंमें कितना अंतर है ?

जंबू . सिद्धि सुख अनन्त-अव्यावाह और निरुपम है। ऐसे सुखको छोड़, क्षुद्र इन्द्रियसुखोंके लालची जीव उस वणिक्के समान हैं जो एक कौडीके लिए करोड़की संपत्ति खो देता। सुनो कैसे—

‘एक वनिया करोड़ोंके भाड (पदार्थ) गाडियोंमें भरकर सार्थ (कारवा) के साथ एक अटवीमें प्रविष्ट हुआ। उसका एक पात्र फुट-रु ब्ययके लिए पणो (कौडीके मोल बराबर सिक्के) से भरा था। उन्मागमें पड़ जानेसे एरु जगह उसका भार (पात्र) फूट गया और पण बिखर गये। उसने अपनी सब गाडियाँ रकबा दी, और सब आदमियोंको पण दूढ़नेमें लगा दिया। दूढ़नेमें सार्थके दूसरे लोग भी आ गये और बोले, ‘अरे गाडियोंको जाने दो ! क्या एक काकियोंके लिए करोड़ोंसे हाथ धोना चाहते हो ? क्या चोरोसे

नही डरते ?' वह बोला—'भविष्यत्में लाम होना तो संदिग्ध है; जो है उसे कैसे छोड़ दूँ ?' सार्थके रोप लोग चले गये, और उसका सारा माल चोरोंने लूट लिया।

यह कथा मात्र वसुदेव द्विडीमें उपलब्ध है।

इस प्रकार संवाद होते-होते बहुत रात बीत गयी और वसुओंकी नीद खुल गयी, तथा प्रनवके निरन्तर हो जानेसे कथोपकथन अब वदुओं और जंबूस्वामीके बीच होने लगे।

समुद्रात्री : सखियो ! हमारे इस भर्तारको प्राप्त सुखोंको छोड़, अप्राप्त सुखोंकी धुनमें उस मूर्ख किसानके समान पछताना पड़ेगा, जिसकी कथा निम्न प्रकार है, सुनो :

[१४] बक नामक मूर्ख कृषक

'सुसीमन नामक गाँवमें बक नामक एक किसान रहता था। उसने खेतमें काँगू और कोदों नामक धान बोया। धानके पौधे समय पाकर खूब बड़े बड़े हो गये। डमी बीचवह एक बार दूर गाँवमें अपने संवंधियोंके यहाँ गया। वहाँ उसे गुड-मंडग खिलाये गये, जो उसे बहुत अच्छे लगे। गुड-मंडग बनानेकी विधि पूछनेपर उसे बताया गया कि पहले गेहूँ बोना। गेहूँ पक जानेपर उन्हें पिसाकर उस आटेको भट्टीमें लोहेकी कढाईमें भूनना। इसी प्रकार ईख बोना और गन्नोका रस पकाकर गुड बनाना। भुना हुआ आटा और गुड मिलानेसे गुड-मंडग तैयार होगा। यह कहकर संवंधियोने उसे गेहूँ और ईखके बीज भी दिये। उन बीजोंको लेकर वह खुशी-खुशी घर आया, और पृथक्के बहुत मना करनेपर भी हरी-भरी खेतीमें हल चलाकर उसे उजाड़कर उसमें गेहूँ और ईखके बीज बोये और पानी देनेके लिए वही कुआँ खोदा, जिसमें पानी नहीं निकला। इस प्रकार मूर्ख बक गेहूँ और ईख ही नही उगा सका, फिर गुड-मंडग खानेका सुख तो उसे मिलता ही कैसे ? अपने जो काँगू और कोदो धान तैयार थे, उनमे भी हाथ धो बैठ। इसी प्रकार हमारा पति जंबू भी दिव्य सुखोंकी आशामें वर्तमान उपलब्ध सुखोंको छोड़ दोनोसे ही वंचित होकर पछतायेगा।'

यह कथा जंबूचरियं तथा परिशिष्ट पर्वमें प्राप्त होती है।

कथा सूत्रको जोड़नेवाली बीचकी कथाएँ पहले दी जा चुकी हैं। आगेकी कथाएँ सभी चरित्तोंमें जंबूस्वामी तथा वसुओंके संवादके रूपमें आयी हैं। उसी क्रमसे वे यहाँ प्रस्तुत हैं।

दत्तत्री : हे नाथ, हम लोगोको छोड़कर तुम उस वानरके समान पश्चात्ताप करोगे जिसकी कथा इस प्रकार है, सुनिये—

[१५] मूर्ख वानर

'भागीरथीके तटपर एक अति स्नेही वानर-युगल एक वृक्षपर रहता था। एक बार बंदर कुछ प्रमादसे कूदा, तो सीधा भागीरथीमें जा गिरा और पुण्यसयोगसे उसमेंसे मनुष्यका रूप प्राप्त करके निकला। वानरीने यह देखा और झट भागीरथीमें कूद गयी तथा एक सुंदर स्त्रीका रूप पाया व दोनो सुखसे रहने लगे। एक बार पृथक्के मनमें आया कि अब यदि फिर कूदू तो मनुष्यसे देव हो जाऊँगा। स्त्रीने बहुत मना किया, और रोयी, पर वह दुर्बुद्धि नही माना और फिरसे भागीरथीमें कूद पडा व पुनः लाल मुँह वाला बंदर बन गया। स्त्री वनमें अकेली रह गयी। सुंदर नारीके रूपमें वह एक दिन निकटस्थ नगरके राजपुत्रपत्नीक दुष्टिमें पडी। वे उसे राजाके पास ले गये। राजाने उसके अप्रतिम सौंदर्यसे आकृष्ट हो, उसे अपनी पटरानी बना लिया। इधर उस वानरको एक मदारिने अपने जालमें फँसा लिया और उसे मार-मारकर नाचना व खेल दिखाना सिखलाया। एक दिन मदारि वंदरके करतब दिखलाने उसी राजाके राजमहलमें ले गया। बंदरके खेलोसे सब बहुत प्रसन्न हुए। अंतमें बंदर हाथ फँगाकर सबसे पैसा माँगने चला और राजाकी पटरानीके सामने पहुँचा। उसे देखकर वह पहचान गया और त्रिकल होकर रो पडा। सब पटरानी बीकी— उस समय कितना समझाया पर माने नही, अब क्यों रोते-पछताते हो ! इसी प्रकार हे नाथ, तुम भी उपलब्ध मनुष्य सुखोंको छोड़ दिव्य सुखोंके लालचमें दोनोको गुँवाकर पछताओगे।'

१. 'जंबूचरियं'में यहाँ कथा समाप्त।

यह कथा जंबूचरियके अतिरिक्त परिशिष्ट पर्वमें तथा ज० सा० च० (संक्षिप्त), ब्रह्म जिनदास और राज-मल्लके चरितोमें भी प्राप्त होती है। संक्षिप्त रूपमें इसका उत्तर जंबूने इंगाल दाहकके आस्थानसे दिया।

[१६] नूपुर-पंडिता

इंगाल दाहकका आस्थान सुप्त पद्मश्री बोली (परि० पर्व० पद्मसेना)—स्वामिन्, चारीरधारियोका परिणाम (फल) कर्माधीन होता है। अतः तुम युक्तिपूर्वक भोगोको भोगो। इसके दृष्टात अनेक हैं, पर मैं नूपुरपंडिता विलासवतीका आस्थान कहती हूँ उसे सुनो—

‘अंगदेशके वसंतपुर नगरमें जितशत्रु राजा था, सागरदत्त श्रेष्ठि, उसकी श्रीसेना नामक सेठानी, वसुपाल नामक पुत्र और विलासवती नामक पुत्रवधू। एक बार विलासवती नदीमें स्नान करने गयी। वहाँ एक घूर्त्त युवक उसे देख उसपर आसक्त हो गया, और विलासवती उस युवकपर। एक परित्राजिकाकी सहायतासे युवक उसके घरके पीछेके उद्यानमें रात्रिमें उससे अभिसार करनेमें सफल हुआ। इसी समय सागरदत्त लघुशक्रादि निवारणार्थ उठकर वहाँ आया तो उसने पुत्रवधूको घूर्त्तके साथ सोते देखा, और प्रातःकाल पुत्रको प्रमाण सहित बतलानेके लिए वधूके पैरका नूपुर निकालकर अंदर चला गया। विलासवती जगो तो थी ही, तुरंत घूर्त्तको तो बहसि भगा दिया और पतिको बुलाकर उसी स्थानपर उसके साथ आकर सो रही, तथा कुछ ही देर बाद हड़बडाकर उठी और बोली, देखो! देखो! तुम्हारे पिता अभी-अभी मेरे पैरका नूपुर निकालकर ले गये हैं, सबेरे मुखपर कलक लगायेंगे कि मैं किसी पर-पुरुषके साथ सोयी थी। अब तुम जानो! ‘सुप्त निश्चित रहो’ कहकर श्रेष्ठिपुत्र सो गया।

प्रातःकाल होनेपर पिताने पुत्रसे वह बात कही। पर पुत्र नहीं माना और बोला, ‘वृद्धावस्थामें आपको भ्रम हुआ है। मेरी पत्नी बड़ी सती-साध्वी है। मैं ही उसके पास सोया था। आपको वहाँ जानेमें लज्जा आती चाहिए थी, उल्टे आप बहूवर कलंक लगा रहे हैं। सागरदत्त कुछ नहीं कह सका, पर जो कुछ उसने आँखों देखा वह झूठ नहीं था। विलासवतीने अपने श्वशुरके द्वारा लोगोमें होनेवाली बदनामीसे बचने और अपने सतीत्वको सबके समक्ष प्रमाणित करनेका उपाय निकाला। उस नगरमें एक साक्षात् प्रभावशाली पवित्र यक्षका आगतन था। कोई अपराधी उस यक्षके पैरोके बीचसे जीवित नहीं निकल सकता था। नगरमें घोषणा करा, नहा-धोकर सब नागरिकोके जुलूसके साथ वह यक्षके भविरमें पहुँची, इधर उसने उस घूर्त्त युवकको कहलवा दिया कि तुम पागलका रूप बनाकर यक्ष मंदिरमें सबके सामने मेरा आर्त्तिगन कर लेना। घूर्त्तने ठीक समय वहाँ पहुँचकर बैसा ही किया। विलासवतीने उसे दुत्कार दिया और यक्षसे निवेदन किया कि मेरे पति और सबके सामने इस पागलको छोड़कर यदि किसी पर-पुरुषने मेरा स्पर्श किया हो तो तुम मुझे दंड देना। इतना कह, जबतक यक्ष कुछ निर्णय ले, वह झटसे उसके पैरोके बीचसे होकर साफ-साफ निकल गया। लोगोने उसका बडा जय-जयकार किया और श्रेष्ठिको भर्त्सना।

यह सब स्त्री-चरित्र देख चिंता, शोक व ग्लानिके कारण श्रेष्ठिकी नीद उठ गयी। राजा जितशत्रुके पास भी श्रेष्ठिके निरतर जागते रहनेकी बात पहुँची। राजाने उसे बुलवाकर अपने अंत-पुरका रक्षक नियुक्त कर दिया।

श्रेष्ठि रात्रिमें जागता हुआ पहरा देने लगा। इसी बीच उसने एक रानीको बार-बार प्रासादके वातायनसे झकते देखा। उसे कुछ सदेह हुआ और वह सोनेका बहाना करके पड़ रहा। तब उसने देखा कि राजाका पट्ट हाथी महावतखानेसे निकला, उसी वातायनके नीचे पहुँचा। उसने अपनी सूँड ऊपर उठा दी और वह रानी उसकी सूँडके सहारे नीचे उतर महावतखानेमें आयी। वहाँ आनेपर महावत उसपर बहुत रष्ट हुआ और उसे हाथीकी साकलोसे पीटा व देरसे आनेका कारण पूछा। रानीने नये रक्षककी नियुक्तिकी बात कहकर उससे हाथ जोड़कर क्षमा माँगी और फिर उसके साथ भोग करके हाथीके सूँडपर चढ़कर उसी

१. परि० पर्व०, राजगृह नगर, देवदत्त सुनार, देवदत्त पुत्र, दुर्गिला पुत्रवधू।

२. तुलना : जातकट्टकथा अंबभूत जातक क्र० २२।

वातायनके मागसे वापिस प्रासादमें जाकर सो रही । यह घटना देख श्रेष्ठिको हुआ—आह ! जब राजमहल्लों तकमें ऐसा होता है तो हम साधारण लोगोंकी स्त्रियोंकी क्या बात ? इस विचारसे उसे जो निर्वेद-भाव आया, उससे उसकी चिन्ता मिट गयी और वह प्रगाढ निद्रामें लीन हो गया, तथा सात रात-दिनों तक निरंतर सोता रहा । राजाने उसे बीचमें जगाया नहीं, जागनेपर निद्रा जानेका कारण पूछा । श्रेष्ठिने आघो-पात अपनी पुत्रवधूसे लगाकर जो कुछ प्रासादमें देखा वह सब कह सुनाया । कुशलतासे उस रानीकी पट्ट-चाल की गयी और राजाने अपनी उम पटरानीको महावतके साथ उसी पट्टहस्तिपर चढाकर हस्ति सहित ऊँचे पर्वतकी चोटीसे गिराकर मार डालनेकी आज्ञा दे दी । हाथीकी अद्वितीय दक्षताके कारण लोगोंने राजासे उसके प्राण न लेनेका आग्रह किया और उसीके साथ रानी और महावतको भी प्राण-मिक्षाके बदले देश-निकालेका आदेश प्राप्त हुआ ।

महावत रानी (अब उसकी स्त्री) के साथ वहाँमें निकल किसी दिन कहीं दूसरे राज्यमें किसी ग्राम-के बाहर एक रात-भरके लिए एक धूम्य देवालयमें आकर ठहरा । रात्रिमें जब ये दोनों सो रहे थे, नगरसे एक चोर चोरी करके वहाँ आया और अंधेरेमें स्त्रीसे टकरा गया । स्त्री चोरको देखते ही उसपर मुग्ध हो गयी और उससे कहा—यदि तू मेरा भर्तार बनना स्वीकार करे, तो मैं तेरी प्राण-रक्षा करूँगी । चोरने स्वीकार किया । इतनेमें रक्षक राजपुरुष चोरको खोजते हुए वहाँ पहुँचे । स्त्रीने चोरको अपना पति बतला दिया, वह बच गया, और उसके बदले सोता हुआ निरपराध महावत पकड़ लिया गया । उसे फाँसीका दंड मिला, और मरनेके पूर्व एक थावकसे णमोकार मंत्र प्राप्त कर, उसका जाप करते हुए, अपने दुष्कृत्योंका प्रायश्चित्त करके मरकर स्वर्गमें देव हुआ ।

इधर चोर स्त्रीको लेकर वहाँसे भागा और एक विशाल नदीके तीरपर पहुँचा । आगे क्या जं० सा० च०के समान, अंतर केवल यह कि महावतके जीवनसे स्वर्गमें देव होकर अवधिज्ञानके बलसे स्त्रीको दशाको देखा और उसे चोर-द्वारा ठगी जाकर नदीके इस तीरपर झाड़ोंके बीच नंगी रोती खड़ी देखकर, उसपर अनुकंपा करके अपनी देवमायासे मांसका टुकड़ा मुँहमें क्रिये हुए शृगाल, बाज पक्षी और मत्स्यके रूप बनाये, और शृगालके रूपमें मनुष्यवाणीमें उसपर व्यंग्य करके उसे अपना देव-रूप दिखाया, महावतका स्मरण दिलाकर प्रतिबोध दिया और हीन दुश्चरित्रमय जीवनसे छुटकारा दिलाकर उसे वर्मकी सावनामें प्रवृत्त किया ।

इस प्रकार हे जंबू ! विलासवती अपनी चतुराईसे मानवीय भोग भोगनेमें सफल रही, और दूसरी ओर रानी महावतके सुखको छोड़, चोरके सुखकी लालचमें दोनोंको खो बैठी । अतः तुम भी युक्ति-पूर्वक मनुष्य सुखोंको भोगो, व दिव्य सुखोंकी लालसासे इन्हें छोड़ दोनोंसे वंचित मत होओ ।

यह कथा जंबूचरियके अतिरिक्त परिसिष्ट पर्वमें पूर्ण तथा अं० सा० च०, ब्रह्म जिनदास तथा अं० राजमल्लके चरित्तोमें संक्षेपमें पायी जाती है ।

[१७] मेघरथ-विद्युन्माली

जंबू : ओ पद्मश्री ! मैं विषयसुखोंके लोभमें अंबा होकर अपने लक्ष्यसे भ्रष्ट होना नहीं चाहता ।

पद्मश्री : स्वामिन् ! यह सब ठीक है, पर आप एक वर्ष हम लोगोंके साथ भोग करें, उसके उपरांत हम लोग भी आपके साथ गुरुके पादमूलमें दीक्षा ले लेंगी ।

जंबू : हे पद्मश्री ! जो भोगच्छा अनेक जन्मोंमें भोग-भोगकर तृप्त नहीं हुई, भला वह एक वर्षमें कैसे तृप्त हो सकेगी ? इस संवचनमें मैं एक दृष्टांत देता हूँ, उसे तुम ध्यानसे सुनो ! वैताढ्य पर्वतपर देवताओंके गगनवल्लभ नामक नगरमें दो विद्याधर भाई मेघरथ, विद्युन्माली रहते थे । एक बार कुछ विद्यासाधनके लिए, जिसमें उन्हें चाँडाल कन्याओंसे विवाह कर एक वर्ष तक उनके साथ ब्रह्मचर्य-पूर्वक रहकर विद्या सिद्ध

१. तुलना : कथासरित्सागर, दोने कृत अनुवाद, भाग १, पृ० १६१ की कथा ।

२. तुलना—जातकट्टकथा : सुल्लधनुग्गह जातक; तथा चीनी भाषासे अंगरेज़ीमें एस० जूकियन-द्वारा अनुदित भवदान, भाग २, पृ० ११ की कथा ।

करनी थी, वे दोनों चांडाल देशको गये। वहाँ पहुँचकर अपने बुद्धि-कौशलसे उम्होंने दो चांडाल कन्याओंसे विवाह कर लिया, और विद्यासावन करने लगे। मेघरथ चांडाल कन्याके मोह-पाशमें नहीं पडा, और नियमानुसार वर्ष-भरमें विद्या सिद्ध कर ली। पर विद्युन्माली भयानक विलप-क्रूरूप और विकृत आकृतिवाली चांडाल कन्याके वाहु-पाशमें फँस गया, और स्वयं चांडालोके समान रहने लगा, तथा विद्यासावनके बदले उसे प्राप्त हुआ चांडाल-कन्यासे एक पुत्र। वर्ष भर बाद जब मेघरथने उसका यह हाल देखा, तो उसे बहुत समझाया, और एक वर्ष बाद आनेको कहकर अपने नगरको चला गया, तथा वहाँ प्रभुत्व, सत्ता, संपत्ति, अनेक अपूर्व सुंदरी विद्याधर कन्याएँ, यज्ञ, सम्मान आदि प्राप्त कर देवोपम सुखसे रहने लगा। वर्ष-भर बाद पुन विद्युन्मालीको देखने गया, तो पाया अब वह दां पुत्रोका पिता बन चुका था। फिर उसे समझाया! पर विद्युन्मालीको बोध नहीं हुआ। वह चांडालोके विषय-सुखको छोड़ नहीं सका और उसीमें अथा होकर अपना सब कुछ विद्याधरपना खोकर वही अधम चांडाल होकर रह गया। तो हे पद्मश्री! मैं विद्युन्मालोके समान इंद्रिय भोगोंमें पडकर अपने मोक्षरूपी लक्ष्यसे भ्रष्ट नहीं होऊँगा!

यह कथा जंबूचरिचरि के अतिरिक्त केवल परिशिष्ट पवमें उपलब्ध होती है।

[१८] शंखधमक

पद्मसेना (परि० पर्व • कनकसेना) : देखो स्वामिन् ! उपलब्ध सुखोको छोड़ अनुपलब्ध मोक्ष सुखके लिए अतिशय उत्कण्ठित मत होओ ! अन्यथा तुम्हारी दशा शंखधमक किसान जैसी होगी।

जंबू : कैसे पद्मसेना ?

पद्मसेना : सुनिये नाथ ! मैं उसकी कथा सुनाती हूँ—‘शालिग्रामका एक कृपक ऊँचे मचानपर बैठ पशु-पक्षियोंसे खेतकी रक्षाके लिए रात्रिमें खूब घोरसे शंख बजाया करता था। एक रातको चोरोका एक दल चोरोके पशुओंका एक झुंड हाँककर ले जाते हुए किसानके खेतके पाससे निकल रहा था। उसी समय किसानने खेतपर पशुओंका आक्रमण समझ उच्च-ध्वनिसे शंख फूँका। ‘बहुत लोग हमारा पीछा कर रहे हैं’, ऐसा समझ चोरोका दल पशुओंको वही छोड़ भाग गया। प्रातःकाल किसानने बिना ग्वालेके पशुओंके उस झुंडको वही चरते देखा। वह उन पशुओंको हाँककर गाँवमें ले गया। ‘एक देवताने मुझे ये पशु भेंट किये हैं,’ ऐसा कहकर उन्हें सब गाँववालोको बाँट दिया। दूसरे-दूसरे चोर भी इसी तरह अपना चुराया हुआ सब धन आदि छोड़कर भाग जाते रहे। पर इस सस्ती प्रसिद्धि और चोरोकी संपत्तिका कड़वा फल उसे दीप्त ही मिल गया। एक रातमें चोरोका वही दल पुन उसी मार्गसे निकला, और फिर वही ही शंख-ध्वनि सुन, उसे पहचान, अपनी पुरानी भूलको समझ खेतमें घुस गये, तथा उस मचानको उखाड़कर किसान सहित नोचे पटक दिया। किसानको बहुत मारा-पीटा, यातना दी और नगा करके अन्धेले रोते छोड़, उसके पशु व अन्य जमा पूँजी सब-कुछ लेकर चले गये। इसी प्रकार मोक्ष सुखकी अति उत्कण्ठवश कहीं तुम अपने प्रातः सुखोको भी मत खो बैठना !’

यह कथा जंबूचरिचरि के अतिरिक्त परि० पर्वमें इमो रूपमें तथा इसके स्थानपर जं० मा० च०, प्रह्लाद जिनदाम एवं पं० राजमल्लके चरितोमें शंख नामक कवाडीका आख्यान मिलता है। इसके उत्तरमें जंबूने पामानुर यून्यति वानरका आख्यान सुनाया।

[१९] बुद्धि-सिद्धि

सय हाथ जोत्तर बननेना (परि० पर्व नभसेना) वीली—नाथ ! कहीं दिव्य-सुरोके अति लोगके धारण नुन्दागी अदम्भा बुद्धि नामक यज्ञ जैगी न हो, जिनकी वहाँकी दम प्रकार सुनी जाती है—

‘भाग्न धोत्रं मार्गं दानगेमे बुद्धि-सिद्धि नामनी दो यज्ञाएँ रहनी थी। ये परन्तर चट्टन ही पतित भिन्न थी, और दोनों ही दान्द्रपमे अत्यंत दुर्गी। बुद्धि दोष फालमे मचने भक्ति भावमे मोक्ष

1. बिर्मा ग्रन्थके अनुसार अन्धग्र जाकर बेच दिया।

नामक यक्षकी पूजा कर नैवेद्य और पुष्प चढाया करती थी। उसको सच्ची भक्तिये प्रसन्न हो यक्ष बुद्धिकी इच्छानुसार सुखपूर्वक जीवन-यापन हेतु प्रतिदिन उसे एक दीनार प्रदान करने लगा। इससे बुद्धि शीघ्र ही पड़ोसियोंमें सबसे धनवान् बन गयी। सिद्धिकी यह रहस्य ज्ञात होनेपर वह भी यक्षको प्रसन्न कर बुद्धिसे दुगुना प्राप्त करनेमें सफल हुई। अब तब दोनोंमें कुस्पर्दा प्रारंभ हो गयी, और बार-बार यक्षको भेंट देकर एक-दूसरेसे दुगुना मांगती रहीं। यक्ष भी देता चला गया। एक बार सिद्धिने अत्यंत दूषित चित्त हो, यक्षसे अपनी एक आँख फोड़ देनेको कहा, यक्षने वैना ही किया। बुद्धिने पुनः यक्षको प्रसन्न करके सदाकी तरह जो कुछ सिद्धिकी दिया उससे दुगुना मांगा और दोनों आँखें गंवा बैठी। इसी प्रकार तुम भी दिव्यसुखोंके अतिलोभमें पड़कर कही दोनो लोकोंके सुखोंको न खो बैठो !

यह कथा जंबूचरियके अतिरिक्त केवल परिशिष्ट पर्वमें मिलती है।

[२०] जात्यश्व

जंबू : कनकसेना ! मैं ऐसा मूर्ख नहीं हूँ। मैं तो श्रेष्ठ कुलीन अश्वके समान कभी भी सत्यका मार्ग नहीं छोड़ूँगा। सुनो कैसे ?

वर्मतपुरके राजा जितशत्रुकी घुड़सालमें एक बड़ा भाग्यवान् और श्रेष्ठ लक्षणसे संपन्न घोड़ा था। उसके पुण्य प्रभावसे राजा दिनों-दिन बलवान् एवं दुर्जेय होता गया। राजाने वह घोड़ा सुरक्षा एवं लालन-पालन हेतु अपने नगरके पवित्र हृदय और विश्वसनीय जिनदास नामक श्रावकको सौंप दिया। जिनदास बहुत ध्यानसे घोड़ेकी देख-रेख करने लगा। वह उसपर बैठकर उसे एक पुष्करिणीमें ले जाता, स्नान कराता और रास्तेमें एक जिनमंदिरकी तीन प्रशंशना देकर वापस ले आता। यही उसका दैनिक मार्ग और क्रम था। पड़ोसी राजा, जितशत्रुकी दुर्जेयतामें घोड़ेके प्रभावका रहस्य जान, घोड़ेको मारने या चुरानेका उपक्रम करने लगे, पर जिनदासकी सावधानीके कारण कोई कुछ कर नहीं पाया। एक प्रतिद्वंद्वी राजाके मंत्रीने घोड़ा चुरानेके लिए छह महीनेको अवधि मांगी। वह जैन श्रावक बनकर वसंतपुर गया, और जिनदासका विश्वासपात्र बनकर उसके घर रहने लगा। किसी समय जिनदासको आवश्यक गृहकार्यसे दूर गाँवमें अपने संबंधियोंके घर जाना पड़ा। वह अपना घर-बार और घोड़ा, सब कुछ उस कपटी श्रावकके भरोसे छोड़ गया। रातमें उस कपटीने घोड़ेको खोल अपने राज्यमें भगा ले जानेका प्रयास किया, पर घोड़ा घरसे पुष्करिणी, वहाँसे मंदिर और मंदिरसे वापिस घर, इस मार्गके सिवाय कितनी भी मार-पीट और कुछ भी करने पर, अन्य मार्गपर एक पग भी नहीं गया। इस तरह जब सारी रात बीत गयी और सबेर हो गया तो वह कपटी मंत्री घोड़ेको छोड़ भाग निकला ! लौटनेपर जिनदासको सब पता चल गया, पर घोड़ा सुरक्षित था, इससे जिनदासको परम आनंद हुआ। इसी प्रकार हे कनकसेना ! ये इंद्रियोंके चोर मुझे कितना भी बहकायें, फुसलायें या यातना दें, पर मैं इनका वशवर्ती हो अपना भोलका मार्ग नहीं छोड़ूँगा !

यह कथा जंबूचरिय तथा परिशिष्ट पर्वमें उपलब्ध होती है।

[२१] ग्रामबोड-पुत्र

कनकश्री (परि० पर्व : कनकसेना) : स्वामिन् ! ऐसा कदाग्रह करके ग्रामबोड (या गाँवकूट—गाँवका सबसे उदार व्यक्ति) पुत्रके समान मूर्ख मत बनिये ! सुनिये—

भारतके वंग प्रदेशमें मद्दालंद नामक गाँवमें ग्रामबोडकी विधवा पत्नी अपने अत्यधिक आलसी पुत्रके साथ रहती थी। एक बार उसने कुछ भी न करनेके लिए पुत्रकी बहूत भर्त्सना की। तब पुत्रने कहा—माँ, अबसे मैं जीनेके साधन जुटानेके लिए अपनी शक्ति-भर सब कुछ करूँगा। एक दिन जब गाँवके लोग एक गोष्ठीमें बैठकर गप्-शप कर रहे थे, तभी गाँवके कुम्हारका एक दुष्ट गधा रस्सा तुड़ाकर भाग निकला। कुम्हार, पकड़ो ! पकड़ो ! चिल्लाता हुआ उनके पीछे दौड़ा। कोई उस दुष्ट गधेको पकड़ने आगे नहीं बढ़ा। तब उस ग्रामकूट पुत्रको लगा कि अपना पुरुषार्थ दिखाकर यह कुछ अर्थ-प्राप्तिका अवसर है, ऐसा सोच उसने दौड़कर उस गधेकी पूँछ पकड़ ली। गधा उसे दुर्लक्षिणी मारने लगा, लोगोंने भी उसे बहूत कहा,

पर उसने पूँछ नहीं छोड़ी। अंततः गवैने जोरसे उसके मुँहपर लात मारी, उसके सारे दाँत टूट गये, और वह पछाड़ खाकर गिर पड़ा। इसी प्रकार स्वामिन् ! मोक्षके लिए दुराग्रह करने मूर्ख मत बनिये !

यह कथा भी जंबूचरियं तथा परिशिष्ट पर्वमें उपलब्ध होती है।

[२२] घोड़ीपालक

चंबू : कनकधरी ! नारीमें प्रेम करनेका परिणाम बड़ा बुरा होता है। कैसे ? इसे मुझसे सुनो—

‘भारतके कलिंग प्रदेशमें सिंहनिवास नामक ग्राममें किसी एक भुक्तिप्रालम्बके पास बहुत उत्तम घोड़ी थी। उसने उसे सोल्लक नामक एक व्यक्तिके पास देख-रेखके लिए रख दिया। पर सोल्लक घोड़ीको खानेके लिए दो जानेवाली अच्छी-अच्छी वस्तुओंमेंसे थोड़ी-सी ही उसे देता, शेष कुछ स्वयं खा लेता और कुछ बेच देता। क्रमशः क्षीणकाय होते-होते घोड़ी अंततः चल बनी। अपने समयपर सोल्लक भी मर गया। पर अपने दुष्कृत्यके परिणाम स्वरूप वह बार-बार पशु जातिमें जन्मा। बहुत जन्मोंके बाद एक दरिद्र ब्राह्मणके यहाँ पुत्र रूपमें उत्पन्न हुआ। उसका नाम सोमदत्त रखा गया। लगभग उसी समय कई जन्मांतरोके उपरांत घोड़ी भी उसी नगरकी एक वेश्याकी पुत्री होकर, नगरमें सर्वोच्च सुंदरी कन्या हुई। युवकोंमें उसकी कृपा प्राप्त करनेकी होड़ लग गयी। सोमदत्त भी उसपर अत्यंत आसक्त था, पर दरिद्र होनेके कारण वेश्यापुत्री उसकी ओर अच्छी प्रकार देखती तक नहीं थी। फिर भी कमसे कम उसके सान्निध्यमें रहने हेतु अत्यासक्तिवशात् सोमदत्त उसका सेवक बन गया। पर कोई उसे चाहता नहीं था। अतः जब उसे धरते निकाला जाने लगा तो उसने कठोरसे कठोर बंड, यातना, भूख-प्यास सब कुछ सहना स्वीकार किया, परंतु अपनी प्यारी वेश्यापुत्रीका धर नहीं छोड़ा। तो हे कनकधरी ! मैं तुम लोगोंके प्रेमाधीन होकर, उस ब्राह्मण पुत्रके समान यातनाओंमें नहीं पड़ूँगा।’

यह कथा भी जंबूचरियं तथा परिशिष्ट पर्वमें पायी जाती है।

[२३] मा-साहस पत्नी

कमलवती : हे नाथ ! मा-साहस पत्नीके समान दुःसाहसी मत होइये ! सुनिये—

‘कित्ती जंगलमें एक पत्नी सोते व्याघ्रके मुखमें घुसकर उसके जबड़ोंमें लगा मांस नोच-नोचकर खाता, बार-बार उड़कर पेड़की डालपर जा बैठता। मा साहस ! (दुःसाहस मत करो) मा साहस ! कहता और फिर व्याघ्रके मुखमें प्रवेश कर मांस नोचने लगता। सोचो ! उस पत्नीकी कयनी क्या ? और करनी क्या ? तथा उसका परिणाम क्या हुआ होगा ? स्वामिन्, तुम भी उस मा-साहस पत्नीके समान बन रहे हो ! तुम चाहते मुख हो, पर सुखके साधनोंकी निंदा करते हो, और साक्षात्मुखको छोड़ अदृष्ट मुखकी चाहसे तप करनेको उद्यत हुए हो। हे भोले नाथ ! तुम्हारे कथन और कर्ममें मा-साहस शकुनि जैसा साक्षात् विरोध दिखाई देता है।’

यह कथा भी जंबूचरियं और परिशिष्ट पर्वमें मिलती है।

[२४] तीन-मित्र

चंबू : हे कमलवती ! मैं सच्चा मित्र, संवधी, प्रेमी और हितैषी कोन होता है, उसे जानता हूँ। अतः तुम लोगोंकी बातोंमें पडकर अपने स्वार्थ (परमार्थ) से वंचित नहीं होऊँगा। सुनो ! मैं तुम लोगोंकी तीन (प्रकारके) मित्रोंका एक आशयान सुनता हूँ—

‘क्षितिप्रतिष्ठ नगरमें अपराजित नामक राजा था। उसका सुबुद्धि नामक मंत्री था, जिसके तीन मित्र थे—सहमित्र, पूर्वमित्र, जोहार (प्रणाम) मित्र। सहमित्र निरंतर सुबुद्धि मंत्रीके साथ रहता। खाना,

१. तुलना : महाभारत २, १५४८।

२. परि० पर्व : जितशत्रु राजा; सोमदत्त ब्राह्मण—कृष्ण पुरोहित व प्रधान अमात्य।

पीना, सोना, उठना, बैठना सब कुछ साथ ही करता, और सुबुद्धि भी दिन-रात उसकी देख-भाल रखता । ये दोनों घनिष्ठतम मित्र थे । पर्व-मित्रसे जब कभी विशिष्ट प्रसंगों-पर भेंट हुआ करती, तब दोनों प्रेमसे एक साथ मिलकर उठते-बैठते, खाते-पीते । जोहार मित्रसे यदा-कदा भेंट हो जानेपर आपसमें केवल प्रणाम भर हुआ करता और बस । एक बार किसी कारण राजा अमात्य पर अत्यधिक क्रुद्ध हो गया । अमात्य अपने प्राण बचाने हेतु राजाके पाससे भाग निकला और सहमित्रके घर पहुँचा । ऐसी स्थितिमें भी सुबुद्धि मंत्रीने सहमित्रकी शरण नहीं मागी, केवल दूसरे देशको चले जानेमें सहायताकी अपेक्षा की । सहमित्रने उत्तर दिया— 'तुम कौन हो ? कहाँसे आये हो ? मैं तुम्हें नहीं जानता । तुम मेरे घरसे तत्क्षण निकल जाओ ! मैं तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकता ।'

अमात्य अत्यंत निराश हो पर्व-मित्रके घर पहुँचा । उसने अनादर तो नहीं किया, बल्कि सम्मान किया, परदेश जानेमें कोई सहायता नहीं दी । हाँ परंतु चौराहे तक जाकर छोड़ बाया और कहा—'इस रास्तेसे चले जाओ ।

अब त्रिलकुल निराश हो, सहायताकी कोई अपेक्षा न कर वह बड़े संकोच और संत्रमके साथ जोहार मित्रके घर पहुँचा । उसने बिना कुछ कहे-सुने-सब जान लिया । सुबुद्धि मंत्रीका अपनी आत्माके समान सम्मान-सत्कार किया । आत्मोपतापूर्वक अपने घरमें रखा और परदेशमें भी उसके साथ गया । वहाँ दोनों सुखसे साथ-साथ रहने लगे ।'

इस दृष्टांतमें सुबुद्धि-मत्री आत्मा है, सहमित्र देह, पर्व-मित्र स्वजन-संबंधी, और जोहार मित्र है धर्म । राजाका क्रोध यमदंडका पतन (मृत्यु) है, चौराहा श्मशान है, जहाँ तक स्वजन संबंधी साथ देते हैं और परदेश है परलोक, जहाँ केवल धर्म ही साथ जाता है, अन्य कोई नहीं ।

यह कथा जंबूचरियं तथा परिसिण्ट पर्वमें पायी जाती है ।

[२५] चतुर ब्राह्मण कन्या

यह सब सुनकर सबसे अंतमें आठवीं विजयश्री (परि० पर्व जयश्री) नामक बधू जंबूस्वामीसे इस प्रकार कहने लगी—हे स्वामिन् ! माना कि तुम अतिशय बुद्धिमान्, चतुर और महान् प्रतिभावान् हो, पर चतुर भट्टपुत्रीके समान ये सब क्षुब्ध कथानक कहकर तुम दूसरोको बहका सकते हो, हम लोगको नहीं ! सुनिये । मैं सुनाती हूँ कि उस भट्टपुत्रीको चतुराईकी कथा—

'वाणारसी (वाराणसी) नगरमें अपराजित राजा था ।^१ उसे प्रतिदिन कहानियाँ सुननेका व्यसन था । नगरके ब्राह्मणोंकी यही उपजीविका थी । इसी नगरमें नागशर्म ब्राह्मण, सोमश्री ब्राह्मणी व उनको एक चतुर कन्या थी ।^२ ब्राह्मण था अशिक्षित । सो एक दिन राजाको कहानी सुनानेकी उसकी पारी आ गयी । उस दिन ब्राह्मण घरमें बड़ा दुःखी, दुर्मना, चिंतित दिखाई-दिया । यह देख पुत्रीसे न रहा गया, बोली—'पिताजी ! आज आप ऐसे व्याकुल क्यों लग रहे हैं ? क्या कारण है ? कहिये भी तो,' और पितासे इसका कारण जान, कन्याने कहा—'पिताजी आप चिंतित न हों, आज आपके बदले मैं राजाको कहानी सुनाने जाऊँगी ।' यह कहकर कन्या राजदरवारमें पहुँच निर्भीक भावसे राजासे बोली—'राजन् ! मुझे वालक समझकर मेरा अपमान न किया जाय ! आज अपने पिताके बदले, मैं आपको कहानी सुनाऊँगी ।' राजाने कहा—'सुनाओ ! तब कन्या कहने लगी—

एक बार मेरे माता-पिता एक समागत ब्राह्मण पुत्रके साथ मेरा वाग्दान करके; उसे व मुझे घरमें छोड़; विवाहके लिए सामग्री माँगने चले गये । रात्रिमें मैं भी उसके साथ सो रही, और अपने हाव-भाव विकारोंसे उसे उत्तेजित कर दिया । इससे वह मेरे साथ बलात्कारको उद्यत हो गया । मैं चित्ला पड़ी ! आस-पासके लोग इकट्ठे हो गये । वह भयभीत हो मेरी खाटके नीचे छिप गया । मैंने आगे हुए लोगोंसे कहा यह मेरा स्वामी है । मैंने आज ही इसका वरण किया है । अब यह अचानक अस्वस्थ हो

१-२. परि० पर्व; रमणीय नामक नगर, नागश्री नामक ब्राह्मण कन्या; शेष कोई नाम नहीं ।

गया है। तब, 'इसकी-सेवा करो, मलो, मर्दन करो' ऐसा कहकर लोग चले गये। मैं फिर उसके साथ सी गयी। अब मेरे साथ सुरत झोडाकी तीव्र अमिलाषा आदि कामविकारोको दबानेसे उसे अचानक असह्य शूल वेदना उत्पन्न हो गयी और उसीसे उसका प्राणांत हो गया। मैंने रो-धोकर, गड्ढा खोदकर उसे वही गाड दिया। ऊपरसे लीप दिया और घुप दे दी। इतनेमें सवेरा हो गया। माता-पिता लौटकर आ गये। मैंने उनसे सब वृत्तांत कह दिया। यही मेरी कहानी है।' इतना कह वह चतुर ब्राह्मण-कन्या चुप हो गयी। राजाने पूछा, 'यह सब सच है या झूठ?' कन्याने उत्तर दिया—आपने अब तक जो अन्ध कहानियाँ सुनीं, यदि वे सब सच हैं, तो यह भी सच है; आदि।^१ इस प्रकार, हे स्वामिन्! ब्राह्मण कन्याके समान झूठी कथाएँ सुनाकर तुम हम लोगोको बहकानेमें सफल नहीं होगे।

यह कथा भी जंबूचरियं तथा परिशिष्ट पर्वमें उपलब्ध होती है।

इसपर जंबूस्वामीने कहा—मैं ललितांग (ज० सा० च० : चंग, अंतर्कथा क्र० १६) के समान विषयाद्य नहीं हूँ। इन सब आख्यानोंके उपरांत सबको निश्चय हो गया कि जंबूस्वामी किसी भी प्रकार दीक्षा लेनेके निश्चयसे नहीं डिगेंगे, तो सभीने उनके साथ प्रव्रज्या लेनेका निर्णय किया। अंतमें जंबूने निम्नलिखित दो दृष्टांत और सुनाये। पहला दृष्टांत सम्यग्दृष्टि (सच्चा-श्रद्धावान्) सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिथित श्रद्धावान्) और मिथ्यादृष्टि पुरुषोके संबंधमें प्रतीक रूपसे है।

[२६] तीन वणिक् और खदानें

तीन पुरुष दारिद्र्य पीडित हो अर्थोपार्जनके निमित्त परदेशको चले। राहमें चलते जाते वे एक भयंकर अटवीमें फँस गये। पर उनके भाग्यसे अटवीमें आगे चलकर उन्हें लोहेकी एक खदान मिली। तीनोंने जितना हो सका, उतना लोहा ले लिया। और आगे चलनेपर उन्हें चाँदीकी खान मिली। एकने सब लोहा फेंककर चाँदी ले ली, दूसरेने 'इतनी दूरसे डोकर ला रहा हूँ, इसलिए सब लोहा कैसे फेंकूँ', ऐसा कहकर आधा लोहा छोडा, उतनी चाँदी ले ली। तीसरा यही कहकर लोहा ही लिये रहा। पहलेने दोनोंको बहुत समझाया कि भाई लोहेकी अपेक्षा चाँदी अधिक बहुमूल्य है, अतः सब लोहा फेंककर चाँदी ले लो? पर वे दोनों अपनी-अपनी बातपर अडे रहे, उसका कहना नहीं माना। और आगे जानेपर सोनेकी खान मिली। पहलेने चाँदी भी सब फेंक दी और पूरा सोना ले लिया। दूसरेने अपने तर्कके अनुसार तीनों वस्तुएँ वराबर परिमाणमें ले ली। तीसरा अपने कदाग्रहके कारण लोहा ही लिये रहा। पहले व्यक्तिके समझानेको फिर भी दोनों नहीं माने। इसके बाद वे घर लौट आये। पहला सर्वसुखी हो गया। दूसरा मध्यम, और तीसरा वैसा दरिद्रका दरिद्र रह गया।

ये तीन व्यक्ति क्रमशः (१) सम्यग्दृष्टि (२) सम्यग्मिथ्यादृष्टि और (३) मिथ्यादृष्टि व्यक्तियोंके प्रतीक हैं। प्रथम प्रकारके व्यक्ति सब मतोको छोड, सच्चा मार्ग ग्रहण कर मोक्ष पाते हैं। दूसरे नाना मतोके बखेडेमें आगे नहीं बढ़ते। उनकी नीचे गिरनेकी संभावना बनी रहती है। और तीसरे अनत दुखोसे परिपूर्ण इस अतर-अथाह अपार संसार-सागरमें जन्म-जन्मातरोमें भटकते रहते हैं।

यह कथा केवल जंबूचरियंमें पायी जाती है।

१. परिशिष्ट पर्वमें कहानी कुछ प्रकारांतरसे है। नागभीने राजासे कहा—'एक बार मेरे माता-पिता यात्रापर गये थे। पीछे जिससे मेरा चागदान किया था, वह घर आ गया। मैंने यथासंभव उसका उचित सम्मान-सत्कार किया। रात्रिमें घरमें एक मात्र शैथ्या होनेके कारण, गंदी भूमिपर न लेटकर मैं भी सुपचाप उसके पास लेट गयी। स्वर्णसे उसे मेरी उपस्थितिका पता लग गया, और एकाएक उठी हुई अपनी तीव्र कामवासनाको दबानेके प्रयास व आत्मलज्जा जनित क्षोभके कारण उसकी तरक्षण मृत्यु हो गयी। 'इन परिस्थितियोंमें मैं ही इसकी मृत्युकी अपराधिनी मानी जाऊँगी' इस भयसे मैंने उसके मृत देहके टुकड़े-टुकड़े काट, ग्रसस्थानमें गड्ढा खोदकर गाड़ दिया, और घटनाके सारे चिह्नोंको मिटा दिया। तब माता-पिता आये।

[२७] आख्यान—चिंतामणि (द्रव्याटवी-भवाटवी)

उपर्युक्त दृष्टांत सुनानेके पश्चात् जंबूस्वामीने सबको धार्मिक आशायों-प्रतीकोसे परिपूर्ण निम्नलिखित धर्मकथा सुनायी । यह कथा बड़ो होनेसे लौकिक व्यर्थके साथ-उनके आध्यात्मिक आशायोको साथ-के-साथ कोष्ठकोंमें दिया जा रहा है । गुग्गलने इस दृष्टांतको चिंतामणि रत्नके समान सर्वोत्कृष्ट फलदायी आख्यान कहा है—

अवंति देशकी उज्जयिनी नामक नगरीमें धन नामक सार्थवाह रहता था । कदाचित् वह नाना मांड भर कर रत्नद्वीपको प्रस्थान करनेके लिए उद्यन हुआ । नगरके दुःखी लोगोंपर अनुकंठा करके, यह सोचकर कि इन्हें रत्नद्वीपमें शिवपुरीमें स्थापित कर दूँगा, जहाँ ये सब सुखसे रह सकेंगे; उसने नगरमें अपने रत्नद्वीपको गमनकी घोषणा करा दी, और कहला दिया कि जो भी लोग उसके साथ चलना चाहें प्रसन्नतासे चल सकते हैं ! बहुत लोग (जीव) आये । सार्थवाह (सद्गुरु, केवलज्ञानी अर्हंत) ने कहा—शिवपुरी (मोक्ष) के मार्गमें एक भयानक अटवी (भव—जन्म-परंपरा) पडती है । उसमें-से दो रास्ते जाते हैं, एक सीधा (साधु-धर्म) दूसरा टेढ़ा (गृहस्थ-धर्म) । टेढ़ा रास्ता बहुत लंबा है । उससे बहुत देरसे, पर सुखसे शिवपुरी पहुँचते हैं । सीधा रास्ता छोटा है । उससे शीघ्र पहुँचते हैं, पर वह बहुत कष्टकर है । उस रास्तेमें बहुत काँटे (वाघाएँ) हैं और महा भयानक सिंह, व्याघ्र, (राग-द्वेष) आदि भी मिलते हैं । प्राय दोनों मार्गोंमें चरनेवाले पुरुष (आत्माएँ) प्रमादवश भटक कर उन्मार्गमें लग जाते हैं, और जीवन पर्यंत चलनेपर भी फिर उन्हें सच्ची राह नहीं मिलती । शिवपुरीके मार्गमें आगे बढ़नेपर खूब घने हरे-भरे सुगंधित पत्र-पुष्प फलोसे लदे हुए शीतल छाया-वाले बड़े आकर्षक मनोरम वृक्ष (देव-मनुष्य गतियोंमें सुंदर-सुंदर युवा सुखदायक रमणियोंसे पूर्ण वसतिर्या) हैं । पर उनकी छायाके नीचे कभी विश्राम नहीं करना चाहिए, क्योंकि उनकी छाया बड़ो मारक होती है । बलिक पीले, सूखे, सड़े हुए पत्तोंवाले छायाहीन वृक्षों (शून्य, त्यक्त, स्त्रियोसे रहित, निर्जन गृह, देवकुल, श्मशान, एकांत वन आदि बुद्ध वसतिर्या) के नीचे केवल मूहूर्त्त भर ठहरकर आगे फिर अपने पथपर अविश्रान्त भावसे चल देना चाहिए । मार्गमें किनारेपर बैठे हुए बहुत ही रुचवान् और मधुर वाचावाले पुरुष (नाना-धर्ममतोंवाले पापंडो) बुलाते हैं, उनके वचन नही सुनने चाहियें । क्षणभरके लिए भी सहायकों (सहयोगी साधु जन) को नही छोड़ना चाहिये, क्योंकि एकाकीकी वहाँ अवश्य भय है । वहाँ मार्गमें भयानक दुरंत दावानल (क्रोध) जलता रहता है । यत्न और सावधानी (आत्मसमय) पूर्वक उस दावानलको बुझाना चाहिये । नही बुझानेसे वह प्रचलित होकर पुरुषको जलाये बिना नहीं छोड़ता । उसके आगे बड़ा महान् ऊँचा शैल (मान, अहंकार) मिलता है, उसे भी जागरूकता पूर्वक पार करना चाहिये । उसे पार नही करनेवालोका नियमसे भरण (पतन) होता है । उससे भी आगे बढ़नेपर बहुत कुटिल व घनी उलझी हुई वींसीकी झाड़ी (माया) मिलती है । उसमें-से प्रयत्न पूर्वक निकलना चाहिये, नही निकलनेसे अनेक दोष होते हैं, और आगे बढ़ना असंभव ही जाता है । उससे और आगे बढ़नेपर ऊपरसे दीखनेमें बहुत छोटा, परंतु वास्तवमें अपूर ऐसा एक गर्त (लोभ) मिलता है, जिसके पास मनोरथ (इच्छाएँ) नामक विप्र सदैव बैठा रहता है और कहता है कि इस गड्ढेको भरकर जाओ । पर कभी भी उसको भरनेके व्यर्थ प्रयासमें नहीं पड़ना । उसे जितना भरते हैं, उससे अधिक वह विस्तारको प्राप्त होता जाता है, और पथिक मार्गच्युत होकर वही ठहर कर रह जाता है, आगे बढ़ नहीं सकता । यही आगे बढ़नेपर बहुत दिव्य पके हुए और सुरभिपूर्ण किपाक फल (विषयभोग) उपलब्ध होते हैं, परंतु वे महान् प्राणनाशक होते हैं, अतः उन्हें छूना भी नहीं चाहिये । और आगे चलनेपर मार्गमें महा भयंकर व क्रूर वाईस पिशाच (लुधा-नृपादि वाईस परोपह; देखें त-० सू-० ९.९) मिलते हैं, जो हर समय निगलनेको तैयार बैठे रहते हैं, उन्हें भी प्रयत्न-पूर्वक जीतना चाहिये । उस मार्गमें चलते हुए पथिककी सदैव स्वादहीन भोजन-पान करना चाहिये और निरयप्रति रात्रिके प्रथम व अंतिम दो यामोंमें गमन (स्वाध्याय) करना चाहिये, कभी भी अप्रयाण (ठहरना, संयममें अनुत्साह) नहीं करना चाहिये । इस विधिसे वह दीर्घ अटवी (जन्मोंकी अनादि परंपरा) शीघ्र पार कर ली जाती है और आगे जाकर व्यक्ति सकल दुःख-दुर्गति-जन्म-जरा-मृत्यु-अंधाधिसे

रहित, सर्वोत्तम अनंत-अक्षय-अव्याबाध-अनुपम और स्वाधीन सुखोकी श्रेष्ठ वसति शिवपुरी अवश्यमेव उपलब्ध होती है। धन-सार्थवाहकै इस प्रकार कहनेपर अनेक व्यक्ति शिवपुरकी राहमें उसके साथ चले। जो सीधे मार्गसे गये, वे शीघ्र उसके साथ शिवपुर पहुँच गये। जो टेढ़े-लड़े मार्गसे चले वे भी पहुँच गये, पर देरसे। यह सब कहकर अंतमें जंबूने कहा कि 'उपर्युक्त कथनके विपरीत जो कोई भूढ-पुरुष शब्द रूप-रस-गंध-स्पर्शसे मोहित होकर इस पथको छोड़कर उन्मार्गमें लग जाते हैं, वे इन सकल दुःखोंके निधान, भयानक, अनौर-पार, सुदुस्तर, दुर्लब्ध, घोर संसार-सागरमें अनंतकाल तक भ्रमण करते रहते हैं। यहाँ जिनवचन-रूपी पीतको छोड़कर दूसरी कोई नाव नहीं है।

यह आख्यान भी केवल जंबूचरित्रमें पाया जाता है।

इस रीतिसे सक्षेपमें जंबूस्वामीने प्रभव आदिके समक्ष सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्र रूपी मोक्ष-मार्गाका निरूपण किया। जंबू, प्रभव, वधुएँ, जंबू और वधुओके माता-पिता सभीने दीक्षा ली। जंबूके गुरु आर्य सुधर्मा, जंबू और प्रभव मोक्ष गये। शेष अपने-अपने तपके अनुसार विभिन्न स्वर्गोंमें इंद्र, अहमिन्द्र और देव हुए।

वीर कृत जं० सा० च० तथा अन्य चरितोंमें आयी हुई उपर्युक्त अंतर्कथाओको वसु० हिंडी, उ० पु०, जंबूचरित्रं, जं० सा० च०, परि० पर्व० तथा ब्रह्म जिनदास एवं पं० राजमल्लकृत चरितोकी कुल कथानक संख्या, परस्पर समान कथानक, क्रम संख्यानुसार स्थिति, तथा इन ग्रंथोंमें जंबूस्वामी कथाके विकासक्रमको निम्नलिखित कथासारिणी-द्वारा समक्षनेमें सरलता होगी :—

जंबूस्वामिचरितोंकी कथासारिणी

(I) संघदास गणिकृत वसुदेव हिंडी (प्राकृत)	(II) गुणमद्र कृत उत्तर पुराण (संस्कृत)	(III) गुणपाल कृत जंबूचरित्रं(प्राकृत) और (IV) हेम० कृत परि० पर्वं	(IV) वीर कृत जंबूसामिचरित्र(अपभ्रंश) (VI) जम्बूस्वामी च० (सं०) जिनदास (VII) ,, (सं०) राजमल्ल
	(III)	(V) (IV)	(VI) (VII)

१ जंबूने कहा :

१ इम्यपुत्र		७		×		
२ पांचमित्र		८				
३ मूयपतिवानर प्रभवागमन		२१		१७	७	७
४ मधुविदु	१०	९		५	९	९
५ ललितार्ग	९	२७		२३	१९ चंग	१९ १७
६ कुबेरदत्त-कुबेरदत्ता		१०		६		
७ गोप युवक						
८ महेश्वरदत्त		११		७		
९ एक कौटीके लिए करोड हारनेवाला मूर्ख वणिक्						

(I) संवदास गणिकृत, चतुर्वेदीको (प्राकृत)	(II) गुणमद्रकृत उत्तरपुराण (संस्कृत)	(III) गुणपालकृत जंबूचरित्रं (प्राकृत) और (V) हेम० कृत० परि० पर्व	(IV) वीरकृत जंबूवामिचरिड (अपभ्रंश) (VI) जम्बूवामि च० (सं०) जिनदास (VII) ,, (सं०) राजमल्ल	(III)	(V)	(IV)	(VI)	(VII)
१० प्रसन्नचंद्र- वल्लचारी विद्युन्माली देवागमन चार देवियाँ	१ धर्मरुचि	१	१					
११ अणाडिप देव वृत्तात	११	६	२	३	३	३	३	
१२ भवदत्त-भवदेव वृत्तात नागिलाने कहा :	१२ गणिनीने कहा :	२	३	१	१	१	१	
१३ वासनाग्रस्त ब्राह्मणपुत्र	१३ दासी-पुत्र	३	×					
१४ वमनभयो ब्राह्मणपुत्र	१४ राजश्वान १५ दुर्द्धि-पथिक	४	४					
१५ सागरदत्त-शिव- कुमार भव		५	सागरदत्त-शिवकुमार भव और शिवकुमार- कनकवती प्रेमाख्यान	[सा० दत्त-शिवकुमार]				
				[वधूने कहा :]				
जंबूने कहा : ४	जंबूने कहा : १०	१	५	१० सर्प व करकंटा	१० १०			
				जंबूने कहा : १ अमर १ मधुविद्रुदृष्टांत ११ मृत वीलको ११ ११ खानेवाला वृद्ध वीलको शृगाल खानेवाला शृगाल				
				विद्युच्चरागमन विद्यु०ने कहा : १२ मधुलोभी १२ १२ कंठ १४ असती १४ १३				
चतुर्थनीलयशा लंभक- के अंतर्गत	४ (८) मुदंग वादक			१६ भील शृगाल	१६ ×			
				(१८) वीळ नट (१८) नट और नत्तकियाँ [जंबूने कहा :]				
	१३	१५	११	१३ तुषित वणिकपुत्र	१३ ×			

	५ रत्न-रासि और भूर्खंपथिक			१५ चितामणि- रत्न	१५ १४
	७ सोया हुआ वणिक और चोरो			१७ सकलहारे- का स्वप्न	१७ १५
५ ललित ५	९ ललितांग गणधरने कहा :	२७	२३	१९ चंग	१९ १७
११	११ अणाद्विय देव	६	२		३ १
१२	१२ भवदत्त-भवदेव दीक्षा	२	३	१	१ १
नागिलाने कहा :	गणिनीने कहा :	[नागिला कथित]			
१३	१३ दासीपुत्र				
१४	१४ राजश्वान	४	४		
	१५ दुर्वृद्धि पथिक				
		[बधूने कहा]			
		१२ मूर्ख हीलो ८		४	४ ४
		गुहमठककथा			
		१४ धानर-युगल १०	१ धानर	६	६
		१६ नूपुर-पठिता १२	१४	१४	१४ १३
		१८ दाल-घमक १४	८ संविषी ८	संगक-बाढ़ी	
		२० बुद्धि-मिद्धि १६			
		२२ भ्रामकूट-पुत्र १८			
		२४ मा-साहस पत्नी २०			
		२६ चतुर शास्त्रण २२			
		कन्या			
		[जंबूने कहा :]			
षण्णुर्ष नीलमदार्यमणके अंतर्गत		१३ भीवा	९	५	५ ५
	३ दाह उदर पीड़ित	१५ ईगाल दाहक ११	१३ सुपित्त यनिगुप्त	१३	×
		१७ मेघरस- विसृग्नापी	१३		
३		१९ मृगपति वागर १५	७	७	७
		२१ जाम्बून १७			
		२३ पीडी पागक १९			
		२५ धीम मित्र २१			
५	९ गुर्ग	२७ अलिशान २३	१९	१९	१७
		२८ धीम मित्र २५	×		
		श्रीर लक्ष्मी			
		२९ अक्षयण विद्यामणि ×			

उपयुक्त सारिणीसे ज्ञात होता है कि वीर कविने अपनी प्रस्तुत काव्य कृतिमें कथानक क्र० ५, ७ और १६ वसु० हिंडीसे संग्रहीत किये हैं। कथा क्र० १, ३ व १९ वसु० हिंडी तथा उ० पु० दोनोंमें समान रूपसे उपलब्ध हैं। कथा क्र० ४ मूर्खहाली, क्र० ६ वानर, क्रमांक ८ संक्षिपी, क्र० ९ भ्रमर एवं क्र० १४ असती, ये पांच कथाएँ गुणपाल कृत जंबूचरियंमें कुछ परिवर्तनोंके साथ विस्तृत रूपमें विद्यमान हैं। कथा क्र० २ चार देवियोंका पूर्वभव, क्र० १० सर्प व, करयँटा, क्र० ११ मृत वील और शृंगाल, क्र० १५ चितामणिरत्न एवं क्र० १७ लकड़हारेका स्वप्न, ये पाँच आख्यान कविने स्वतंत्र रूपसे निबद्ध किये हैं, जिनके मूलस्रोत विविध प्रसिद्ध लोक-कथा साहित्य एवं लोकाख्यानोंमें सरलतासे खोजे जा सकते हैं।

‘जंबूसामिचरिउ’ की अंतर्कथाओंका तुलनात्मक अध्ययन करनेपर हम देखते हैं कि अपने कथा-गठनमें जहाँ-कविने अनावश्यक कथाओंको सर्वथा छोड़ दिया है—जैसे कि प्रसन्नचंद्र-बल्कलचारी एवं महेश्वरदत्त आदिके कथानक; वहाँ समस्त आख्यानोंको यथासंभव संक्षिप्त भी कर दिया है। ऐसा करनेमें कविने कथानकके आशयको तो पूर्णतया सुरक्षित रखा है, परंतु उनमें-से अधिकांशमें-से अतिमानवीय, दैवी तत्त्वोंका लोप कर दिया है, और अपने समस्त आख्यानोंको शुद्ध लोककथाओंके रूपमें वर्णित किया है। जहाँ दूसरे गद्य-पद्य चरितकारोंपर उनके अंतर्भनका उपदेशक रूप हावी रहा है, वहाँ वीर कवि धार्मिक सिद्धांतों, विश्वासों और श्रद्धासे अनुप्राणित रहनेपर भी अपने कवि-हृदयको धार्मिक उपदेशछापनेसे अभिभूत नहीं होने देता। इसलिए जहाँ अन्य समस्त चरितकारोंने प्रत्येक कथाको आध्यात्मिक आशयो या प्रतीकोसे चाद दिया है, वहाँ वीर कवि सब कथानकोंका आशय अधिकसे-अधिक दो-अथवा एकाव पंक्तिमें ही कहकर समाप्त कर देता है; और इस प्रकार कहीं भी अपने आख्यानोंको धार्मिक प्रतीकोंसे बोधिल करके उनका काव्य-कथा-रस दबने नहीं देता। यही कारण है कि एक ऐसा सामान्य पाठक भी जिसका जैन धर्म व जैन संप्रदायसे कोई संबंध तथा परिचय न हो, वह भी बहूत थोड़ेसे धार्मिक चर्चावाले अंशको छोड़कर, शेष संपूर्ण रचनामें काव्य-रसका अनुभव ले सकता है, जबकि अन्य चरित्तोंके साथ साधारणतः ऐसा नहीं है। उनका बहुत सारा अंश सामान्य पाठक विलग्नूल ही नहीं समझेगा। अतः इनमें प्रचुरतासे विद्यमान साहित्यिक रसका भी वह कोई अस्वाद नहीं ले सकेगा। उदाहरणके लिए गुणपाल कृत ‘जंबूचरियं’का आख्यान-चितामणि नामक अंतिम कथानक देखें। आख्यानके उत्तरार्द्धमें पूर्वार्द्धके प्रत्येक पात्र, घटना, वस्तु सभीका आध्यात्मिक आशय बताया गया है, पूर्वार्द्ध केवल उसका प्रतीक मात्र है। अब कालव्यव, जीवात्माएँ, मोक्ष और रत्नत्रय आदि तत्त्वोंको सामान्य पाठक क्या समझे? अतः उसके सामने कमसे-कम अमुक-अमुक अंशको छोड़ देनेके सिवाय और क्या उपाय रह जाता है? वीर कवि ऐसी स्थिति कही भी उत्पन्न होने नहीं देता और धार्मिक-दार्शनिक तत्त्वोंकी चर्चा भी पाठकके मनमें जिज्ञासा और कौतूहलकी सुदृढ़ पृष्ठभूमि निर्माण कर चुकनेकी स्थितिमें करता है। अर्थात् किसी भी स्थितिमें रचनाकी साहित्यिकता या काव्यात्मकता अन्य तत्त्वोंसे दबने नहीं पाती।

प्रत्येक महाकाव्यमें अनेक अंतर्कथाओंकी योजना अनिवार्य रूपसे की जाती है। उसमें कविका महान् आशय निहित रहता है। ये अंतर्कथाएँ कहीं काव्यकी मूल कथावस्तुको क्षिप्र गतिचौलता प्रदान करती हैं, जो कहीं उसकी गति-नींब्रताको संवर बनाती हैं; और कहीं कथावस्तुकी मूलधारामें आवश्यक मोड़ लाती हैं, जो कहीं भावी घटनाओंके संकेत भी प्रदान करती हैं। इसके अतिरिक्त अंतर्कथाओंका सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान नायकके चरित्रके अधिकसे-अधिक सुप्त और अंतर्निहित गुणों तथा उसके सर्वांगीण जीवनके विविध पक्षोंको प्रकाशमें लानेमें होता है। इनका एक और विशिष्ट आशय आद्योपांत पाठककी जिज्ञासा और कौतूहल वृत्तिको जागृत करते हुए, क्रमशः थोड़ा-थोड़ा शांत करते-करते महाकाव्यकी ‘इति’ तक इस प्रकार ले जाना रहता है कि अंतमें भी पाठकका कौतूहल भले ही शांत हो जाये, पर उसकी यह जिज्ञासा बनी ही रह जाये कि अब इसके आगे और क्या हो सकता है? क्या हुआ होगा? या क्या होनेकी संभावना है? इन्हीं कल्पनाओंमें पाठक काव्यका अध्ययन समाप्त कर चुकनेपर भी मालो उसीका एक अंग, एक पात्र बनकर साधारणीकरणकी स्थितिमें आकर, रसात्मक अवस्थाको प्राप्त होकर उसीके चिंतनमें आनंद-विभोर होकर रह जाता है।

घोर कविने अपने महाकाव्यमें जिन अंतर्कथाओंका जिस प्रकार जिस-जिस स्थल-पर समावेश किया है, वे अपनी-अपनी स्थितिमें मुख्य कथावस्तुको गतिदान आदि करती हुई नायकके चरित्रके विविध गुणों एवं विविध पक्षोंका उद्घाटन कर कथावस्तुको एक निश्चित उद्देश्य अर्थात् नायकको फल-प्राप्तिको घोर निरंतर रूती चलती है। इस प्रकार घोर कविने प्रस्तुत महाकाव्यके आध्यायमें इन अंतर्कथाओंके समावेशका पूर्ण औचित्य सिद्ध किया है।

कथा तत्त्व तथा कथानक रूढ़ियाँ

'जंबूस्वामीचरिउ' में समाविष्ट अंतर्कथाओंका कथा तत्त्वों तथा कथानक रूढ़ियोंकी दृष्टिसे भी विश्लेषण आवश्यक है

साहित्यकारोंने लोक कथाओंमें निम्न तत्त्वोंका होना आवश्यक माना है :-

१. लोक-कथाओंका लोक-प्रचलित होना।
 २. अप्राकृतिक, अतिप्राकृतिक तथा अमानवीय तत्त्वोंका समावेश होना।
 ३. इनका देश-काल आश्चर्यजनक और कल्पना भंडित होना।
 ४. लोकचर्चाका मनोरंजक चित्रण होना।
 ५. लोकचित्तको आदोलित करना, प्रेरित करना और निश्चित उद्देश्यकी ओर ले जाना।
 ६. लोकश्रुतिसे प्राप्त लोक कथाओंको लोकभाषामें निबद्ध करना।
 ७. ऐतिहासिक, रूढ़िग्रस्त और पौराणिक घटनाओंका कल्पनाके साथ सम्मिश्रण होना।
- इन सातों ही तत्त्वोंका कुछ-न-कुछ समावेश 'जंबूसामिचरिउ' में अंतर्कथाओंके रूपमें समाविष्ट लोक कथाओं में हुआ है। इनमें निम्न कथा तत्त्व अधिक स्पष्टतासे समाविष्ट पाये जाते हैं :-

१. प्रेमका गंभीर पुट, जैसे भवदत्त-भवदेवके माता-पिता, भवदत्त-भवदेव दोनों भाई, भवदेवका अपनी पत्नी नागलाके प्रति मुनि बन जानेपर भी अनन्य अनुराग, भवदत्त-भवदेवका निरंतर पाँच भवोंमें अभिन्न स्नेह, शिवकुमारके जन्ममें उसके मित्र दृढदर्म और माता-पिताका उसके प्रति गहरा अनुराग।
२. स्वस्थ श्रृंगारिकता : जंबूस्वामीकी वधुओंका उनके प्रति श्रृंगार-भाव प्रदर्शन और गृहस्थ मिथुनोंकी रति-क्रीड़ा।
३. कीर्तुहलका समावेश प्रायः सर्वत्र; विशेष रूपसे इन घटनाओंमें। भगवान् महावीरका समोशरण आनेपर सब ऋतुओंकी वनस्पतियोंका फूल उठना; विद्युन्माली देवका महावीरके समोशरणमें आना, श्रेणिककी सभामें गगनगति विद्याधरका आकाश भांगसे आना।
४. अतिप्राकृतिकताके तत्त्वका प्रकटीकरण : भ० महावीरके समोशरण आनेके समयकी घटनाएँ।
५. उपदेशात्मकता : सभी अंतर्कथाओंमें स्पष्ट रूपसे उपलब्ध।
६. अप्राकृतिकता : असतीके आस्थानमें शृगालका मनुष्यवाणीमें बोलना।
७. अनुश्रुतिमूलकता : सभी अंतर्कथाएँ कथा-प्रतिकथाके रूपमें कही गयी हैं, घटनाओंके रूपमें नहीं।
८. पारिवारिक जीवनका चित्रण : भवदत्त-भवदेवके तीनों मनुष्य जन्मोंकी कथाओंमें, तथा मूर्ख हालीकी कथामें।
९. पूर्वजन्मके संस्कार और फलाभोग : शिवकुमार जंबूस्वामी तथा चार देवियोंकी कथाओंमें।
१०. साहसका निरूपण : अकेले जंबूस्वामी-द्वारा हस्तिनिग्रह और रत्नशेखर-परअयके वृत्तांतमें।
११. जनभाषा : अपभ्रंशका प्रयोग।
१२. सरल अमिथ्यजना : कथानकके सरल स्पष्ट वर्णनमें। जंबूसामिचरिउके कुछ कथानकोंमें अस्पष्टता और दुर्लभता भी दिखाई देती है उदाहरणार्थ संखिणीके आख्यायनमें।

१३. लोक-जीवनका चित्रण : विविध रूपोंमें विस्तारसे उपलब्ध ।^१

१४. लोक-कल्याणकी भावना : जंबूस्वामी और रत्नशेखरके अकेले-अकेले दृढ़ युद्धमें, जिससे अन्य सैनिकोंका व्यर्थ संहार न हो ।

१५. परंपराको रक्षा : श्रेणिककी वाग्दत्ता विलासवती, एवं जंबूस्वामीकी वाग्दत्ता कन्याओंके क्रमशः श्रेणिक व जंबूको ही विवाह जानैमें ।

१६. धर्म श्रद्धा : संपूर्ण कथावस्तुका केंद्र भूत तत्त्व ।

उपर्युक्त तत्त्वोंके अतिरिक्त 'जंबूसामिचरित्'में समाविष्ट अंतर्कथाएँ वास्तवमें जन-साधारणके सामान्य लौकिक सुख-भोग प्रधान जीवन और मनोदशाको तीव्रतासे आंदोलित कर, उसके अंतस्तरमें धार्मिक जीवनकी बलवती प्रेरणा उत्पन्न कर, उसे धार्मिक साधनाके पूर्व निश्चित उद्देश्यकी ओर स्वाभाविक रूपसे बहाकर ले जाती हुई दिखाई पड़ती हैं । कविको अपनी ओरसे कोई उपदेश देना-दिलाना नहीं पड़ता ।

ऐतिहासिक और पौराणिक घटनाओंका भी वीर कविने स्थान-स्थानपर कल्पनाके साथ सुंदर सम्मिश्रण किया है, जैसे विद्याटवीकी उममा कुरुक्षेत्रकी युद्धभूमिसे देना, अथवा-लंकानगरीसे देना, या कात्यायनी देवीसे करना, अथवा नववसंतगमनकी तुलना सीताका वृत्तांत लेकर आये हनुमान्से करना । और भी अनेक स्थलोपर शंकर-गौरी आदि देव-देवियों और उनसे संबद्ध पौराणिक वर्णनोंका सम्मिश्रण सुंदरतासे कवि-कल्पनाके साथ यथास्थान किया गया है ।

कथानक रूढ़ियाँ

कथानक रूढ़ियाँ लोक-कथाओंका अभिन्न अंग होती हैं । "विभिन्न कथाओंमें बार-बार व्यवहृत होने-वाली एक जैसी घटनाओं अथवा एक जैसे विचारोंको कथानक रूढ़ि कहा जाता है । उक्त प्रकारकी घटनाएँ या विचार संबद्ध कथानकके निर्माण अथवा उसके विकासमें योग देते हैं ।"^२ इस संबंधमें आ० डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदीने लिखा है, "हमारे देशके साहित्यमें कथानककी गति और घुमाव देनेके लिए कुछ ऐसे अभि-प्राय दीर्घकालसे व्यवहृत होते आये हैं जो बहुत दूर तक यथार्थ होते हैं और जो आगे चलकर कथानक रूढ़ियोंमें बदल गये हैं ।"^३ आ० हरिभद्रने अपने कथा-साहित्यमें, उनके पूर्व बसुदेव हिंडीमें तथा आगे चलकर गुणपालने अनेक कथानक रूढ़ियोंका प्रयोग किया है ।^४ वीर कवि क्योकि मूलतः कवि हैं, कथाकार नहीं, अतः उसने अधिक कथानक रूढ़ियोंका प्रयोग नहीं किया । उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ विशेष कथानक रूढ़ियाँ निम्नलिखित हैं :—

१. लोक प्रचलित विश्वासोंसे संबद्ध रूढ़ियाँ : जैसे जंबूस्वामीकी माताके पांच स्वप्न और मुनि-द्वारा उनका फल-कथन तथा मृगांक पुत्री विलासवतीके श्रेणिकसे विवाहकी भविष्यवाणी ।
२. नागदेवोंसे संबद्ध रूढ़ि : जैसे लोगो-द्वारा वृत्तांत पूछनेपर चंगका यह कहना कि 'रूपासक्त नागदेवियाँ मुझे पाताल स्वर्गमें उठा ले गयी थीं ।
३. तंत्र-मन्त्र-औषधियोंसे संबद्ध रूढ़ि : 'जैसे विद्युच्चक्रके द्वारा औषधियोंसे पहरेंदारको स्तंभित करके अपने पिताके शयन कक्षमें चोरीके लिए प्रविष्ट होना ।
४. आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक रूढ़ियाँ : इस वर्गकी रूढ़ियोंका वीर कविने सबसे अधिक प्रयोग किया है, जिनमें-से प्रमुख प्रयुक्त रूढ़ियाँ निम्न लिखित हैं :—

१. प्रस्ता०—१० ।

२. डॉ० नैमिचंद्र शास्त्री : हरिभद्रके प्रा० कथा सा० का आलो० अध्ययन०, पृ० २१० ।

३. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्यका आदिकाल, पृ० ७४ ।

४. हरिभद्रके प्रा० कथा सा० का आलो० अध्ययन, पृ० २६-२२८ ।

- (i) शिवकुमार-सागरदत्त भवमें सागरदत्त मुनिको देखकर शिवकुमारको संसारसे स्वतः वैराग्य उत्पन्न हो जाता है और वह मुनिसे इसका कारण पूछता है । इसी प्रकार सुधर्मा—जंबूस्वामी भवमें भी यही घटना घटित होती है ।
- (ii) तीसरे भवमें मुनि सागरदत्तके द्वारा, पाँचवें भवमें सुधर्मा-द्वारा तथा स्वयं जंबूके द्वारा अर्धपूर्व-भव-परंपरा कही जाती है ।
- (iii) विद्युन्माली देवकी चार देवियाँ पूर्व भवमें हृदयसे इच्छा करती हैं कि सूरसेन जैसा पति फिर न मिले; और तपश्चरणके फलसे स्वर्गमें विद्युन्माली देवकी प्रिय देवियाँ होनेपर पुनः इच्छा करती हैं कि आगामी भवमें भी, जब यह देव जंबूस्वामीके रूपमें जन्म लेगा, तब भी किसी भी प्रकार इससे हमारा संग न छूटे और हम लोग पुनः इसे अपने पतिके रूपमें प्राप्त करें ।
- (iv) कथाक्रममें स्थान-स्थानपर धर्मका स्वरूप तथा ज्ञानोपलब्धिका जिज्ञासा व्यक्त हुई है ।
- (v) जंबूस्वामीने सुधर्मसे सम्यक्त्वोपलब्धिका कारण पूछा है ।
- (vi) वैराग्य प्राप्तिके निमित्त : सागरदत्तको मुनि सुधर्मतिलकके धर्मोपदेशसे, शिवकुमारको मुनि सागरदत्तके तथा जंबूस्वामीको मुनि सुधर्मके दर्शनोके निमित्तसे वैराग्य होना ।
- (vii) जंबूस्वामीको केवल ज्ञानोपलब्धिके समय देवागमन और अन्य आश्चर्य ।
- (viii) मुनि सागरदत्त और सुधर्म गणवरके दर्शनसे क्रमशः शिवकुमार और जंबूको पूर्व भवोंका स्मरण ।
- (xi) जन्म-जन्मांतरोंकी शृंखला : भवदत्त-भवदेव, देवता, सागरदत्त-शिवकुमार, पुनः देवगति और अंतमें सुधर्म व जंबूस्वामीके जन्म-जन्मांतर ।
- (x) विद्युच्चरकी तपस्याके समय चंडमारी व्यंतरी कृत भयानक उपसर्ग और विद्युच्चर-द्वारा उपसर्ग-विजय ।

उपर्युक्त सभी कथानक रुद्धियाँ अधिकांशतया 'जंबूसामिचरित'की मुख्य कथावस्तुमें प्रयुक्त हुई हैं । इनके अतिरिक्त सभी अंतर्कथाओंमें दो आध्यात्मिक रुद्धियाँ प्रमुख रूपसे उपलब्ध होती हैं । जंबूस्वामीकी वधुओ और विद्युच्चर-द्वारा जो आख्यान कहे गये हैं उन सबका अभिप्राय यह है कि जो कोई उपलब्ध सुखोंको छोड़कर भविष्यमें, लौकिक या पारलौकिक स्वर्गादि अनुपलब्ध सुखोंको लालसा करता है उसे भविष्यके सुख तो उपलब्ध होते ही नहीं, वह उपलब्ध सुखोंको भी खो बैठता है । जंबू-द्वारा कहे गये आख्यानोका अभिप्राय इसके सर्वथा विपरीत यह है कि उपलब्ध क्षुद्र-क्षणिक सांसारिक सुख-मोगोंमें डूबकर मानव स्वर्ग मोक्षके अनुपम सार्वत्र सुखोंको भूल जाता है और सदाके लिए खो बैठता है ।

प्रस्तुत काव्यमें प्रयुक्त कथानक-रुद्धियोंके विश्लेषणसे यह तथ्य भलीभाँति प्रकट होता है कि वीर कविने अपने काव्यके उद्देश्यानुकूल आध्यात्मिक-धार्मिक रुद्धियोंका आद्योपात्त सर्वाधिक प्रयोग उचित रीतिसे किया है । अन्य रुद्धियोंका प्रयोग भी यथास्थान पाया जाता है ।

६. जंबूसामिचरितका काव्यात्मक मूल्यांकन

अन्य प्रसिद्ध महाकवियोंके समान कवि वीरने भी अपनी काव्य-सर्वधी निम्नलिखित मान्यताएँ प्रकट की हैं :—

१. व्याकरण समत भाषा (१.२.७) ।
२. ललित पद सन्निवेश (१.२.७ एवं ७.१.४) ।
३. श्रुति-मधुर वर्ण (सुदुसुहृत् १.२.११) ।
४. अर्थ-गाम्भीर्य (कव्वत्पु निवेश १.२.११ अहियं अर्थ; ८.१.८) ।
५. अर्थ स्पष्टता एवं अर्थसौंदर्य (७.१.४) ।

६. काव्यके विविध अंग तथा रस-भाव युक्तता (रसभावहि... १.२.१२; कण्णपुडएहि पिज्जइ जणेहि रसमउलियच्छेहि ३.१.२; सरसकव्वसव्वस्स ६.१.१; कव्वंगरससमिद्धं ८.१.३; कव्वस्स इमस्स मए विरइयवण्णस्स रससमुद्दस्स ८.१.७; रसदित्तं ९.१.४; गव्वं रसंतरं १०.१.४) ।

७. संवियुक्तता : (पयडव्वंसवाणहि (१.२.१४) ।

८. छंदोबद्धता : (सच्छवु १.३.३; चारित्तुविच्छु १.३.७) ।

९. गुणयुक्तता : (१.२.४) ।

१०. दोष-युक्तता : (१.२.४) ।

११. अलंकार-नियोजन : (अलंकारसल्लखणाई ३.१.२; सालंकारं कव्वं ८.१.९) ।

'जंबूसामिचरित' ग्यारह संघियोंमें रचित है । अर्थ-नाभीर्य, अर्थस्पष्टता एवं अर्थ-सौंदर्य तथा ललित पदरचना एवं ध्रुति-मधुरता आदि गुण काव्य रचनाके अल्पयनसे स्वतः प्रकट हो जाते हैं । काव्यगुणों, रीतियों तथा भाषात्मक एवं व्याकरणात्मक स्वरूपका विदलेपण आगे (प्रस्तावना ७-८) किया गया है । शेष काव्यात्मक तत्त्वोंपर निम्नलिखित शीर्षकोके अंतर्गत विचार किया जाता है :—

(क) चरित काव्यकी दृष्टिसे समीक्षा (ख) महाकाव्यात्मकता (ग) वस्तु-व्यापार वर्णन : देश, नगर, ग्राम, शैल, अटवी, उपवन-उद्यान, सरित्; ऋतुवर्णन वसंत श्रौष्म, वर्षा, दिन-विभाग : उप-, सूर्योदय, मध्याह्न, संध्या, प्रदोष, रात्रि, अंधकार और चंद्रोदय; क्रीडाएँ : उपवन-क्रीडा, जल क्रीडा मिथुनोंकी सुरत क्रीडा, वेश्याओंके काम-व्यापार एवं हस्तिकृत उपद्रव, सैन्य प्रयाण और पडाव; एवं विविध रूपोंमें प्रकृति-चित्रण । (घ) शील-विदलेपण (ङ) रस-भाव योजना (च) अलंकार योजना (छ) विव योजना (ज) छंद-योजना ।

(क) चरितकाव्यकी दृष्टिसे समीक्षा

जंबूस्वामीके जीवन-चरित और कथावस्तुके स्रोतोंके अध्ययनमें हमने देखा है कि प्राचीन-साहित्यमें जंबूस्वामीचरितकी ऐतिहासिक सामग्री अत्यंत सक्षिप्त है । उसीके आधारसे सर्वप्रथम संघदास गणिते वसुदेव द्विहीके 'कथा-उत्पत्ति' नामक प्रथम प्रकरणमें जंबूस्वामी चरितकी बृहद् कथा कल्पित की । उत्तर पुराण (गुणभद्र)की परंपरासे वह कथा वीर कविको प्राप्त हुई और उसी नौबपर उसने अपनी कल्पना और काव्य-प्रतिभाके सामर्थ्यसे 'जंबूसामिचरित' नामक प्रस्तुत महाकाव्यकी रचना की ।

अपभ्रंश साहित्य अतर्वाह्य सर्वतः प्राकृत-साहित्यको परंपरासे अविकिञ्चन-अभिन्न रूपसे संबद्ध है । अतः प्राकृत चरितकाव्योंकी जो विशेषताएँ विद्वानोंने निर्धारित की हैं वे पूर्णरूपसे अपभ्रंश चरित काव्योंमें भी उपलब्ध होती हैं । उनके परिप्रेक्ष्यमें जंबूसामिचरितका परिशीलन करने पर निम्नलिखित विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं :—

कथावस्तुकी व्यापक और गहन अन्विति : कथावस्तुके प्रवाह एवं उसकी हृदयस्पर्शताके निर्वाहके लिए संघियोंका प्रगाढ संहिलष्य संयोजन, कथानकमें चमत्कार उत्पन्न करनेके लिए परिस्थितियोंका नियोजन; तथा जीवन और जगत् संबंधी उपदेश, कथावस्तुमें रोचकता बनाये रखनेके लिए मूल कथानकसे संबद्ध और असंबद्ध देशकाल, समाज एवं व्यक्तियोंके रोचकवर्णन; पात्रोंके चरित्रोंका दृढात्मक विकास; सहृदय सामाजिक अथवा पाठकको रसानुभूतिकी दृष्टिसे साधारणोत्तरणकी स्थितिमें लानेके लिए पात्रोंका शील वैचित्र्य; चरितवर्णनमें अस्वाभाविकता और पाठकमें सज्जन्म नीरसतासे काव्यको अचानके हेतु सर्वसुलभ साधारण मानवोंकी भाँति पात्रोंके चरितोंमें उत्तार-उचावरूप तरतमता, जीवनके विविध व्यापारों, परिस्थितियों, जैसे प्रेम, विवाह, वियोग, मिलन सैनिक-अभियान, नगरकी धीरे-धीरे, युद्ध, जय-पराजय, का चित्रण; नाना विधनों एवं

१. डॉ० नेमिचंद्र शास्त्री : प्रा० मा० और सा० का आळो० इतिहास, अध्याय ४ ।

२. हिन्दी साहित्य कोश

उपमगोका निरूपण, परिस्थितियोंके कोयलपूर्ण नियोजनसे नायकके चरितना क्रमशः उद्घाटन; कथात्मक घटना और काव्यात्मक वर्णनोमें समन्वय; पात्रों और परिस्थितियोंके संपर्क-संधर्षसे नामाजिकोके हृदयमें रस निगमति, धार्मिक वृत्तियों, पौराणिक विषयों और आदर्श तथा औत्सुक्यपूर्ण सहज प्रवृत्तियोंका मद्भाव; जीवनकी समग्रताका चित्रण तथा पात्रोंके चरित्र-विकामके हेतु जीवनके विविध रूपों और पक्षोंका उद्घाटन करते हुए मूलकथा और अन्ततः कथाओंके अतिरिक्त विविध वस्तुओं, पात्रों और भाव अनुभावोंका निरूपण; तथा शैलीमें रोचकता, गंभीरता और उदात्तता। प्रस्तावनामें आगे यथास्थान इन विशेषताओंपर यथोचित प्रकाश डाला गया है।

(ख) महाकाव्यात्मकता

प्रस्तुत कृतिमें शास्त्रीय महाकाव्यके सभी लक्षण पाये जाते हैं। महाकाव्यके इतिवृत्त, वस्तु व्यापार-वर्णन, संवाद एवं भावाभिव्यंजन, ये चारों अवयव संतुलित रूपमें यहाँ घटित हुए हैं। कविने जीवनकी समग्रताका चित्रण कई जन्मोंकी कथाका अवलम्बन लेकर किया है।

नामकरण—महाकाव्योके नामकरणके निम्नलिखित प्रमुख आधार हैं—(१) काव्यमें वर्णित किसी प्रमुख घटनाके नामसे, जैसे 'सितुवंध' (२) प्रमुख पात्रके नामसे, जैसे 'गडडवहो'; (३) नायक या नायिकाके नामसे, जैसे 'पडमचरिउ'; (४) वर्णित वंश विशेषके नामसे, जैसे महाकवि कालिदासकृत 'रघुवंधम'; (५) प्राप्त संकेत या उपदेशके आधारसे, जैसे 'मयणपराजयचरिउ' एवं (६) कविके नामसे, जैसे 'भाषकाव्य'। स्पष्ट है कि कविने नायकके नामपर काव्यका नामकरण किया है। अतः यह अपभ्रंश काव्यकी वह विधा है जिसे चरितनामात महाकाव्य कहा जा सकता है।

ये तो पुराण और महाकाव्यका उद्भव और विकास समानांतर रूपमें होता है। आरंभमें इन दोनोंका रूप भी हमें एकमें घुलमिल दिखाई देता है, जिसके उदाहरणस्वरूप स्वयंभू कृत 'हरिवंशपुराण' या 'रिटुनेमिचरिउ'का नाम लिया जा सकता है। परंतु जब अलंकरणकी प्रवृत्ति और सौंदर्य बोधकी चेतना विस्तृत होती है, तो महाकाव्योका संगठन पुराणोंसे पृथक् शैलीमें होने लगता है। यही कारण है कि अपभ्रंश काव्योमें पौराणिक तत्त्वोंके साथ सौंदर्यचेतनाका विस्तार पाया जाता है। इस दृष्टिसे 'जंजूसामिचरिउ' एक चरितनामात महाकाव्य है। इसमें निम्नलिखित तत्त्व समाहित हैं—(१) शास्त्रीय नियमोंके आधारपर श्रवित जंजूसामीका इतिवृत्त; (२) वस्तु व्यापारोका संयोजन; (३) अवातरकथाओं और घटनाओंमें वैविध्यके साथ अलौकिक व अप्राकृतिक तत्त्वोंका सन्निवेश, (४) दर्शन और आचार संबंधी सिद्धांतोंका समावेश, (५) व्यापक और भ्रमस्पशी कथानकका एक ही नायकके जीवनके साथ संवध; (६) रस-भाव योजनाके हेतु रोमांटिक तत्त्वोंकी समाहित, (७) कथा-वस्तुमें विस्तारकी अपेक्षा गहनता; (८) सर्ग विभाजनके स्थानपर सवि विभाजनके रूपमें सानुबंध-कथाकी योजना, (९) कर्म सस्कारोंके विश्लेषण, उद्घाटन हेतु कई जन्मोंकी कथाका ग्रंथन; (१०) प्रमुखपात्रोंके चरितका क्रमिक उद्घाटन एवं विभिन्न अवस्थाओंके माध्यमसे मोक्षप्राप्तिका उल्लेख; तथा (११) काव्यत्व उत्पन्न करने हेतु यथास्थान अलंकारों, गुणों एवं रीतियोंका संयोजन।

'जंजूसामिचरिउ' में इन महाकाव्य गुणोंके समावेश-संयोजनसे यह स्पष्ट प्रमाणित है कि यह एक उच्चकोटिका अपभ्रंश महाकाव्य है। कविने इसमें सज्जन प्रशंसा, दुर्जन निंदा, संघ्या, प्रभात, मध्याह्न, रात्रि, चंद्र, सूर्य, वन, पर्वत, नदी, सरोवर एवं ऋतु आदि वस्तुओंका सागोपाग चित्रण किया है। प्रबंध कल्पना भी महाकाव्यकी है। कथाकी अन्विति, सवि विभाजन, छंद परिवर्तन, प्रकृति चित्रण, भावाभिव्यंजन आदि महाकाव्यके सभी उपकरण प्रस्तुत काव्यकृतिमें समवेत हैं।

(ग) वस्तु-व्यापार-वर्णन

जं० सा० च०में तीन देशों, पाँच नगरों, एक ग्राम, एक वन, एक पर्वत तथा एक नदीका वर्णन उपलब्ध होता है। ग्राम आदिके वर्णनमें सरोवर आदिके भी उल्लेख हैं। कविने ऋतुओं, दिन-रात्रिके विभिन्न

प्रहरो, और अनेक विषय क्रीडाओंके सुंदर, स्वाभाविक, सजीव एवं मार्मिक वर्णन किये हैं। यह सामग्री विविध दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण है। ससोपमें जानकारी इस प्रकार है :—

देश वर्णन—और कविने अपनी रचनामें तीन देशोंका विस्तारसे^१ वर्णन किया है—मगध, पूर्व-विदेह तथा विध्य। इनमें मगध देशका वर्णन सर्वप्रथम तथा सबसे विस्तारसे और सांगोपांग रीतिसे किया गया है (१.६. १६से १.८.१-८)। इस संदर्भमें मगधकी समृद्धि, वहाँके नर-नारी, गृह-प्रासाद, नदी-सरोवर और उद्यान तथा ग्राम, उपवन, और खेतोंका अत्यंत सजीव वर्णन उपलब्ध होता है।

नगर वर्णन—‘जंबूसामिचरिड’में क्रमशः राजगृह, पुंडरीकिणी, वीतगोका, नर्मपुरपत्तन और संवाहन नामक नगरोका वर्णन किया गया है।^२ पुंडरीकिणी नगरोका वर्णन विस्तारसे उपलब्ध होता है (३.१.२०से ३.१.१ तक), जिसमें नगरकी बाह्याभ्यंतर रचना और नागरिकोंके सुखद जीवनका आकर्षक वर्णन है। अन्यत्र राजगृहकी नायिकोंके सुंदरता और नागरिकोंकी समृद्धि, नर्मपुरके लोगोंका धार्मिक जीवन और संवाहन नगरके व्यापारिक कारोवारका मनोहारी वर्णन उपलब्ध होता है।

ग्राम वर्णन—ग्रामों और खेतोंका बहुत कुछ चित्र कविने बहुधा देश वर्णन करते समय खींच दिया है, जो मगधदेशके वर्णनमें भी देखा जा सकता है। कान्यके ब्राह्मणोंके एक अग्रहार ग्रामका सुंदर वर्णन किया गया है (२.४.७-१२)।

शैल वर्णन—श्रेणिक राजाकी केरल देशकी और सस्येय यात्राके प्रसंगमें वीर कविने कुलपर्वतका सजीव वर्णन किया है (५.१०.११-१५)। कविने पर्वतके उन्मुक्त एवं स्वच्छंद पशु-पक्षी और वनस्पति जगतका चित्रण करते हुए, राजा श्रेणिकके स्वागत भावका आरोपण कर प्रकृतिका मानवीकरण किया है। कालिदासके हिमालय वर्णनकी तरह वीर कविने विध्य पर्वतको पूर्व और पश्चिम समुद्रोंका अवगाहन करके पृथ्वीके मापदंडके समान कहा है :—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम मगाधिराजः ।

पूर्वपरो तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ॥ कुमार० १-१

गिरिर्विज्जु दुग्गमसिंहव सरलवंसपव्वहिं बहिद्धिड ।

पुब्बाचरोवहिं घरवि घरपमाणदंडु व परिद्धिड ॥ (५.८.२-३)

हिमालयकी अपेक्षा विध्यके प्रति यह कथन अधिक उपयुक्त माना जा सकता है।

अटवी वर्णन—उपर्युक्त संदर्भमें ही विध्य महाटवीका परिपूर्ण सांगोपांग वर्णन निम्नलिखित दो पंक्तियोंमें पाया जाता है :—

गिरिनिष्कारकंदरविसम-सद्वरनियरवरिदु ।

रववहिरिवणयरममिर विज्जमहाडइ दिदु ॥ (५.८.४-५)

इसके उपरंत ५.८.६ से १४ तक नौ पंक्तियोंमें विध्याटवीके वृक्ष वनस्पतियोंका विशद उल्लेख है। ५.८.१५से २३ तक व्याघ्र, कोल, वन महिष, वानर, घूषड, वायस, शृगाल और शृगालीके फेंकारसे आह्वान कर उनका पकड़े जाना, वन्य झरने और पत्तोंसे ढके हुए सर्प और भयानक विपत्तोंके फेंकारसे प्रतीत होनेवाले धावानल, इस प्रकारके वन्य वातावरणका अति सटीक वर्णन है। इसके आगेकी पंक्तियोंमें कविका वर्णन इतना सजीव वन पड़ा है मानो अपने वर्णनके माध्यमसे उसने हमें सशरीर वहाँ ले जाकर खड़ा कर दिया हो। अटवीके मोलोंका जीवन साकार रूपमें प्रदर्शित कर कविने श्लेष शैलीमें उसकी सुलना महाभारतकी युद्धभूमि, लंकानगरी, कात्यायनीदेवी और गौरी सहित महादेवके साथ सटीक रीतिसे की है (५-८.२५-३६)।

१. जं० सा० च० १.६.१६से १-८; ३.१.१३-१९ एवं ५.९.१-११ ।

२. जं० सा० च० १.८.९ से १.१० राजगृह वर्णन; ३.२. पुंडरीकिणी वर्णन; ३.३.६-१० वीतगोका वर्णन; ५.९.१२-१७ नर्मपुर वर्णन और ८.३.५-१४ संवाहन नगर वर्णन ।

उपवन-उद्यान—बीर कवि-द्वारा किया हुआ मगधके उद्यानोका वर्णन आज भी सारे उत्तर औ दक्षिण विहार प्रांतको शोभा और प्राकृतिक समृद्धिके सूचक विविध उच्चकोटिके आमोद्यानो, जंबू और मधुव वृक्ष पंक्तिभो, द्राक्षा लतामंडपों और मिथिला प्रदेशके चारो ओर वाज्रवाटिकाओसे घिरे हुए कमल सरोवरोकें स्मृतिको नवीन कर देता है। एक समय था जब इस प्रांतके पथिक वास्तवमें अपने घरोंसे पायेय लेकर नहं चलते थे। राजमागोंके दोनो पार्श्वोंमें स्थित विविध फलोपवन तथा जामुन और महुएके वृक्षोंकी फलोसे लक्ष्मी कतारें उनके लिए सदैव पर्याप्त पायेय प्रदान किया करती थीं (१७. ३-८)।

वसंतागमन एवं नागरिकोके उद्यान क्रीडार्थं गमनके संदर्भमें (४. १६ १-९) किया हुआ उद्यानवर्णन वहाँ अवतीर्ण माघव-श्री अर्थात् वसंतशोभा और उसके मद्दमाते वातावरणको पाठकके मनोमंडलमें अवतरित करता-सा प्रतीत होता है।

नदी-सरिता—श्रेणिकके सैन्य प्रयाणके संदर्भमें (५. १०. ४-९) रेवा नदीका वर्णन पठनीय है इसमें कविवे रेवा नदीका सजीव चित्र खींचा है—कहीं सूर्यकी किरणोंसे तप्त हस्तिसमूह उसमें स्नान कर रहा होता है, कहीं टूट-टूटकर गिरते हुए जामुनके गुच्छे उसमें क्षुद्र लहरें उत्पन्न करते रहते हैं, तो कहीं उसमें गिरे हुए अकोल्ल पुष्पोकी गंधसे आच्छन्न भौंरे गुजार करते हुए दिखाई देते हैं। कहीं उसका प्रवाह तटवर्ती प्रदेशमें बड़ी-बड़ी खदानों (खड्डे) खोद डालता है, तो कहीं उसमें क्रीडा करती हुई भीलनियों उत्सुग, कठोर, सुपुष्ट स्तनोसे आहत होकर उसकी लहरें मानो टूक-टूक हो जाती हैं।

ऋतु वर्णन—लहो ऋतुओके वर्णनका विशिष्ट अवसर बीर कविको अपनी रचनामें उपलब्ध नहीं है सका। अतः वसंत, ग्रीष्म और वर्षाका वर्णन करके ही उसे सतोष करना पडा है।

जं० सा० च० में वसंत ऋतुका सागोपाग वर्णन पाया जाता है। वसंत आनेपर रात्रिका क्षीण हो और दिनका बढ़ना, आमोपर बीर आना और कोकिलका कूकना, क्षुद्र जलाशयोंमें जलका घटना और गुलाब पुष्पोका खिलना, अतिमुक्तक, विचकितल तथा पलाश और किशुक वृक्षोंका फूल उठना तथा इनके साथ प्रीषित-वसिका, मानिनी नारी, कामुकजन, प्रवासी पथिक, मिथुनोका भूषण परिव्याग, प्रियसंगमकी लालस तथा कामीजनोकी मतवाली अवस्था आदि मानवीय भावनाओके साथ वसंतागमनका एकीकरण एक अपूर्व, अलौकिक आनदानुभूति प्रदान करता है (३. १२. १-१३)।

ग्रीष्म—बीर कविवे ग्रीष्म ऋतुका सीधे-सीधे वर्णन न करके, जंबूके विवाहके संदर्भमें ग्रीष्मकालीन जन-जीवनका एक दिग्ब प्रस्तुत किया है (१८. १३. १-७)। तीव्र धूपमें पसीनेसे तर कामिनिथोके कपोलौ, पर स्वेदकण झलकने लगते हैं। वे अपने सारे शरीरमें चंदनका गाढा लेप करती हैं। वैवाहिक-भोज आदिके ध्वजसरपर लोग तिनकोके आसनोपर बैठकर जलकण चुम्राते हुए खंबरो तथा सुगंधित जलसे सिंगीये हुए बीजनोंसे शीतल सुगंधित पवनका सेवन करते हैं। सरोवरोका जल ईपत् उष्ण हो जाता है और तटवर्ती शिलाएँ सूर्यके तीव्रतापसे अग्निके समान गरम हो जाती हैं। दुर्दुर कर्दममें मोट-मोट होते हैं। भ्रमर, इंदीवरोमें छिप जाते हैं। असोके यूथ कीबडयुक्त जलमें लेट जाते हैं तथा गोमडल वृक्षोंकी छायामें जा बैठता है। यह वर्णन कितना सजीव और वास्तविक है।

वर्षा—करकंटे और सर्पको अंतर्कक्याके संदर्भमें (९. ९. ६ से ९. १०. ५) वर्षा ऋतुका यथार्थ चित्रण किया गया है। इस प्रसंगमें वर्षा ऋतुके आगमनपर आकाशमें घने बादलोका लटक जाना, धूलिका घात हो जाना और ऐसी घनघोर वर्षा जिसमें जल-धल सब एक हो जाते हैं, एक वृद्धासे वर्षाशिशुकी तुलना कर उसका मानवीकरण, तालावोंकी मेंढ फोड़कर पानीका वह निकलना तथा सात दिनों तक निरंतर वृष्टिसे दंष्ट्र ग्रामीणोंकी दशा आदिका अत्यंत मार्मिक व हृदयस्पर्शी वर्णन पाया जाता है।

जं० सा० च० में उप.काल एवं सूर्योदय (१०. १८. ७-१२), मध्याह्न (८ १३. १-७), तथा संध्या, सूर्यास्त, प्रदोपकाल रात्र्यागमन, अंधकार एवं चंद्रोदय (८. १४. ४-२१, ८. १५. १-१५) आदिके भी दोषक वर्णन उपलब्ध होते हैं।

उपकाल एवं सूर्योदय—रुम-रज और मोर्हावकारके नाशसे वैराग्य एवं आत्मबोधका जो अदृष्टपूर्व प्रकाशमय सूर्य विद्युच्चरके मनमें उदित हुआ है, उसीके प्रतीक और विव-प्रतिविवभावसे किया हुआ वर्णन विशेष पठनीय है। अथवाह संख्या-सूर्यास्त और रात्र्यागमनके वर्णनकी विशेषता यह है कि संख्याकाल और रात्र्यागमनके अवसरपर कामियोंके मनमें कामराग बढ जाता है और प्रिया मिलनकी आकांक्षा तीव्र हो उठती है; पर इस संदर्भमें इससे सर्वथा विपरीत घटना घटती हुई दिखाई देती है। जंबूत्वामीने विवाह किया, पर अपनी अप्रतिम सुंदरी बधुओंमें आसक्त न होकर, उसने मुक्तिरूपी अलौकिक बधूमें अपना ध्यान लगाये रखा। अतः मानी संख्याका आना निष्फल हुआ और उसको बधुओंके हाथ लगी निराशा तथा चिर वियोग। इन कौमल भावनाओंके परिप्रेक्ष्यमें उपर्युक्त संदर्भ दृष्टव्य है।

रात्रि और चंद्रोदय—का वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण शैली तथा मानवीय भावनाओंके उद्दीपनकारक रूपसे पाया जाता है (८ १५ १-१५)। रात्रिके आगमनपर अमिसारिकाएँ काले वस्त्राभूषण पहनकर निकलती हैं। दूतिकाओंका गमनागमन प्रारंभ होता है। दीपक जलाये जाते हैं और चंद्रोदय होनेपर प्रोपित-यत्निकाओंके हृदय विरहाग्निसे जल उठते हैं, अतः वे कंचुकिर्पा धारण कर लेती हैं। सारा जगत् मानों चाँदनीसे नहा जाता है, बयबा मानों क्षीरसागरमें तैरने लगता है और क्रमुद खिल जाते हैं। यह वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण होनेपर भी यथार्थ है। अतः सजीव और मनुर है।

अतक जिन वस्तु व्यापार वर्णनोंका विवेचन किया गया है, उनमें प्रकृति प्रवाह है और उसे विविध मानवीय भावनाओंके प्रतीक रूपमें चित्रित किया गया है तथा मनुष्यके वास्तविक क्रिया-कलापोंको केवल संकेत रूपमें ही ग्रहण किया गया दिखाई देता है। अब हम उन वस्तु व्यापारोंको देखें, जिनमें यथार्थ मानवीय क्रिया-कलापोंका वर्णन उपलब्ध होता है। इस वर्गमें नागरिकोंकी उद्यान-क्रीडा, जल-क्रीडा, रात्रिमें अपने-अपने शयनकक्षोंमें मिथुनोंको सुरत-क्रीडा, वैश्याओंके काम-व्यापार, हस्त्युपद्रव और तज्जन्म संक्षोभ, साधुओंके दर्शनोंके लिए राजाका सपरिवार, ससैन्य गमन एवं युद्धार्थ सेना सहित प्रयाण, सैन्यपड़ाव या छावनी तथा सेनाके-द्वारा नगर विध्वंस आदिके वर्णन रखे जा सकते हैं।

उद्यान क्रीडा—वसंत आ गया, मंदार वादि पुष्पोंकी मादक मंद मकरंदने संपूर्ण वातावरणको व्याप्त कर लिया और नागरिकोंके जोड़े मस्तीके साथ उद्यान क्रीडाको निकले। इस संदर्भमें मिथुनोंकी पूर्ण स्वच्छंद क्रीडाका माधुर्य-गुण एवं वक्रोक्तिपूर्ण वर्णन ४.१७ एवं ४.१८ में पाया जाता है।

जल क्रीडा—इसी प्रसंगमें मिथुनोंकी जलक्रीडाका संभोग शृङ्गार एवं प्रसाद गुण पूर्ण वर्णन अत्यंत मनोहारी है (४.१९)।

वैश्याओंके काम-व्यापार—अर्द्धरात्रिका समय, सर्व प्रकारका कोलाहल श्रांत, प्रकृति स्वप्न-नोरस-पहरेदारोंकी 'जागते रहो' को पुकारें मौन, ऐसी धीर निःशब्दताकी षड्भूमि विद्युच्चर चोरीके उद्देश्यसे वैश्या-वादमेंसे नगर भ्रमणको निकला। इस संदर्भमें वैश्याओंकी विविध चेष्टाओं, काम-व्यापारों एवं वैश्या जीवन-का अत्यंत यथार्थ चित्रण उपलब्ध होता है (९.१२.५-१९ एवं ९.१३.१-७)।

मिथुनोंकी सुरत-क्रीडा—वैश्यावाटसे निकलकर आगे चलनेपर विद्युच्चरने नागरिकोंके शयनकक्षोंमें मिथुनों-द्वारा पूर्ण विध्वंस भावसे की जाती हुई विविध प्रकारकी रतिक्रीडाको देखा। इसका अतिशय संभोग शृंगारपूर्ण वर्णन यहाँ देखा जा सकता है (९.२३.८-११)।

हस्त्युपद्रव—नागरिकोंके जोड़े अत्यानंद पूर्वक उद्यानक्रीडा (४.१७-१८) और जलक्रीडा (४.१९) पूर्ण करके शोचत्रासे नगरको लौटनेकी तैयारी कर ही रहे थे कि श्रेणिक राजाका हाथी महावतको मारकर भाग निकला और उसने चारों ओर महाविनाश, विध्वंस एवं यमलौलाका दृश्य उपस्थित कर दिया। इसका रोमांचकारी वर्णन जं० सा० ४० में पढ़ा जा सकता है (४.२०-७ से ४.२१.६)।

हस्त्युपद्रव जनित जनसंक्षोभ—जं० सा० ४०में हाथीकी विनाश-श्लोकासे भयवस्त नागरिक संक्षोभ-

का भयावह दृश्य वर्णित है। भयानक भाग-दौड़ और, कोलाहलकी स्थितिमें भी साहसी घूर्त्त कामुक अपना काम बना लेते हैं। कविका यह कथन बड़ा ही मनोरंजक है (४.२१.७-१७)।

(भगवद्दर्शनार्थ) सैन्य प्रयाणकी तैयारी—एक जवानके द्वारा विपुलाचलपर समोक्षण सहित भ० महावीरके शुभागमनकी आनंददायक सूचना पाकर श्रेणिकने अत्यंत प्रसन्न होकर भगवान्के दर्शनके लिए चलनेकी तैयारी की और आनंदभेरी बजवायो। इस शुभ अवसरपर सैन्यप्रयाणकी तैयारीका सुंदर वर्णन है (१.१४.५-१०)।

प्रयाण—इसी ऽसंगमें पौरजनों सहित चतुरगिणी सेनाके मस्तोसे भरे प्रस्थानका दृश्य प्रस्तुत किया गया है (१.१५.१-७)। युद्धार्थ सैन्यप्रयाणकी तैयारीके वर्णनमें अधिकांशतया विविध सैन्य वाद्य-वादनका वर्णन किया गया है (५.६)। उसमें बहुत कुछ वर्णन इसी विषयके पूर्वोक्त वर्णनके समान है। फिर भी एक अंतर देखा जा सकता है कि पूर्वोक्त (१.१४.५-१०) वर्णनको पढकर प्रसाद, प्रसन्नता एवं अव्यक्त माधुर्यको भावभूमि और वातावरण निर्माण होते हैं। यहाँ उसी वर्णनमें ओजकी प्रबल ध्वनि सुनायी देती है।

(युद्धार्थ) सैन्य प्रयाण—भविष्यवक्ता मुनिके आदेशानुसार अपनी वाग्दत्ता विलासवतीके पिता केरलराज मृगाककी, विद्याधर रत्नशेखरके विरुद्ध, जो विलासवतीको बलात्कारपूर्वक अपनी बनाना चाहता था, सहाय्यतार्थ श्रेणिकने सैन्य केरलकी ओर प्रस्थान किया (५.७.१-२५)। ये पंक्तियाँ केवल सैन्य-प्रयाण नही बल्कि इस माध्यमसे ग्रामीण व नागरिक जीवन और साधारण लोगोंकी आजीविकाके साधनों पर भी बड़ा भर्त्सपूर्ण प्रकाश डालती है।

सैन्य पड़ाव—विष्य देशमें पहुँचकर रेवा नदीके घुसोसे आच्छादित विस्तीर्ण तटवर्ती प्रदेशमें श्रेणिककी सेनाने पडाव डाला। जं० सा० च० में उसका संक्षिप्त वर्णन पाया जाता है (५.११.१-५)। दूसरी ओर केरलके बाहर शत्रु राजा विद्याधर रत्नशेखरकी सैन्य पडावका दृश्य वर्णित किया गया है (५.११.१०-१३)।

प्रकृति वर्णन—प्रकृतिके अधिकांश अंग जैसे—खेत, उद्यान, सरोवर, सरिताएँ, अटवी और पर्वत तथा वसंत ग्रीष्म आदि ऋतुएँ और उषः, सूर्योदय, सूर्यास्त, रात्रि एवं चंद्रोदय आदि सबके वर्णन ऊपर दिये हुए संदर्भोंमें आ चुके हैं। यहाँ केवल खेतोंके दृश्य और सैन्य-प्रयाण आदिके समय उड़नेवाली धूलिके संदर्भ दिये जा रहे हैं।

खेतोंका वर्णन—जं० सा० च० में भगवद्देशके वर्णनके प्रसंगमें वहाँकी अतिसमृद्धता-सूचक शल्य संपत्तिका बिलकुल यथार्थ हृदयकारक एवं आनंददायक वर्णन प्रस्तुत किया गया है (१.८.१-७)।

धूलिका प्रसार—जं० सा० च०में श्रेणिककी सेनाके प्रयाणसे जो धूल उड़ी उसका (५.७.१-५), तथा युद्धके समय उड़ती हुई धूलिका सुंदर चित्र खींचा गया है (६.४.१०-११, ६.५.१-४ एवं ६.६.१-२)। इन संदर्भोंमें आकाशमें उड़ती हुई धूलिका वर्णन उसके प्राकृतिक, मानवीकृत एवं अलंकार विधानके आलंबन रूपोंमें किया गया है।

धूलि शात होनेका वर्णन—जं० सा० च० ६.५.१०-११ में मानवीकरण करके किया गया है।

प्रकृति चित्रणके विविध रूप—इस प्रकार हम देखते हैं कि वीर कविके प्रकृतिके विभिन्नअंगोंका नाना रूपोंमें विस्तारसे चित्रण किया है, जिनमें प्रकृतिके उपदेशिका, आलंबन, उद्दीपन और अलंकारविधान, इन सभी रूपोंमें प्रकृतिका अत्यंत मनोहारी चित्रण उपलब्ध होता है। इन रूपोंमें प्रकृति चित्रणके कुछ संदर्भ यहाँ दिये जा रहे हैं।

(क) प्रकृतिका उपदेशिका रूपमें चित्रण—इसके प्रमुख संदर्भ ये हैं—जं० सा० च० १.६.१९, २४-२५, १.७.१-३ (भगवद्देश वर्णन) एवं ६.५.१०-११ (धूलि शात होना)।

आलंवन रूपमें—प्रकृति चित्रणके अनेक उदाहरण जं० सा० च० में पाये जाते हैं जिनमेंमें कुछ प्रमुख संदर्भ ये हैं :—१.७ ४-१४ (मगध), १.७ १-१० (राजगृह), ३.१.१३-२१ (पुष्कलावती), ३.२ (पुडरिफिणीनगरी), ३.३ ६-१० (वोतशोकानगरी), ४.१६ (उद्यान), ५.८ (विद्यावती), ५ ७ (विद्यप्रदेश), ५ १० ४-७ (रेवानती), ८.१३.१-७ (श्रीष्म), ९.९.१-१४ तथा ९ १० १-५ (वर्षा वर्णन)। इन सब सदर्योंमें प्रकृतिके आलंवन रूपका चित्रण किया गया है।

उद्दीपन रूपमें—प्रकृतिके उद्दीपन रूपमें चित्रणके उदाहरण अपेक्षाकृत अल्प हैं। इस विषयके शैली प्रसंग (३ १२.४.१६.७-१६) वसंतागमनसे संबद्ध है। इनमें प्रवासी पक्षियों और प्रोपित-पतिकाओं आदिके विरह, प्रिय मिलनकी तीव्रकामना, मानिनी प्रियाओका मानसंग, कामक्रीड़ाभिलाष आदि भाव-नाओके उद्दीपनका हृदयस्पर्शी चित्रण किया गया है।

अलंकार विधान रूपमें—प्रकृतिका चित्रण द्विविध रीतिसे किया गया है—(१) मानवीकरण, जिसमें प्रकृतिके विविध अंगोका सचेतन, संवेदनशील मानव रूपमें वर्णन पाया जाता है। उदाहरण है :—मगधदेश (१ ८ १-७), तथा कुरल पर्वतका समान मानवीकृत चित्रण (५.१०.१०-१५), एवं अस्तंगमनशील सूर्यका नायक रूपमें तथा पश्चिम दिशा और दिवसलक्ष्मीका नायिका रूपमें (८ १४ ८ व १३-१५), एवं समुद्रका मानव रूपमें चित्रण (८, १४ १०-११)।

उपमा व उत्प्रेक्षालंकारोंके उपमान-उपमेय रूपोंमें प्रकृति चित्रणके अनेक उदाहरण जं० सा० च० में उपलब्ध होते हैं, जिनके संदर्भ ये हैं—तरुणिके स्तन मंडलके सुखद संस्पर्शके समान मगध देशकी सुखदत्ता, (१.६.१८), संवाहन नगरका उपमाओसे पूर्ण वर्णन, (८.३.५-१४), अंधकार (८.१४.१६-२१), तथा चंद्रोदय और ज्योत्स्नाके उपमा व उत्प्रेक्षालंकार युक्त वर्णन, (८ १५.५-१४), वर्षागमनकी वृद्ध स्त्री से उपमा (९ ९.७-८) एवं उषा तथा सूर्योदयके रूपकालंकारसे अलंकारसे अलंकृत वर्णन (१०.१८.७-१२)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वीर कविये उपयुक्त नाना रूपोंमें प्रकृति चित्रण करनेमें अपना भरपूर कला-कौशल प्रदर्शित किया है।

(घ) शील-विश्लेषण

'जंबूसामिचरि' में अनेक पात्र आये हैं, पर चरित्र-चित्रणकी दृष्टिसे चरितनायक जंबूके भवदेव, शिवकुमार और जंबू तथा सुचमकि भवदत्त, सागरदत्त और सुवर्मा ये तीन-तीन जन्म, भवदेवकी पत्नी मागवसू, जंबूके माता-पिता और उसकी चार बधुएँ तथा उसके साथ दीक्षा लेनेवाला विद्युच्चर एवं कल्पित प्रति-नायकके रूपमें हंसद्वीपका राजा रत्नसेखर, इन पात्रोंके चरित्र महत्त्वपूर्ण हैं।

नायक जंबूस्वामी—इनका चरित्र-चित्रण पाँच जन्मोंकी कथा द्वारा किया गया है। इनमेसे दो बार स्वर्गोंमें देवताके रूपमें जन्म इस दृष्टिसे निरर्थक हैं। अतः प्रस्तुत कृतियोंमें भवदेव, शिवकुमार और जंबूके रूपमें नायकके चरित्रका क्रमशः उद्घाटन और विकास किया गया है।

भवदेव, भवदत्त और नागवसु—एक वेदपाठी ब्राह्मणपुत्रके रूपमें भवदेव एक साधारण व्यक्तिके वेशमें हमारे सामने आता है। अत्यंत सुंदरी-भरपूर नवयौवना नागवसुसे उसका विवाह हो ही रहा था कि बड़े भाई भवदत्त, जो बारह वर्षकी अवस्थामें ही भवदेवको गृहस्थीका भार सौंपकर शोचित हो गये थे वे उसे प्रव्रजित करनेकी सुनिश्चित मनोभावनासे उसके घर आये। भवदेवने मुनिका उचित स्वागत सत्कार किया और नगरके बाहर तक उन्हें छोड़नेके निमित्तसे उनके पीछे-पीछे चला। अन्य लोग लौट आये। भवदेव भी मनमें शेष वैवाहिक रीतियों और नागवसुकी अधूरी शृंङ्गार-सज्जाको पूर्ण करनेकी कल्पना करता हुआ घर लौट चलनेकी सोचता रहा। पर अग्रजके स्वयं अनुमति न देनेसे लज्जा और सम्मान बच लौटा नहीं। मुनिसंघमें जाकर भाईकी सम्मान रक्षा हेतु उसने वेमनसे दीक्षा ले ली और बारह वर्षों तक एक ओर सुंदर पत्नीके साथ नाना प्रकारके कामभोगोंकी सुखद कल्पनाएँ और दूसरी ओर ऊपरी रीतिसे ब्रतोंका

पूर्ण निर्वाह करते हुए जीवन व्यतीत करता रहा। मुनि संघके द्वारा ग्रामके निकट जाने पर उसके द्विविध अंतर्द्वैतमें इन्द्रिय सुखोंकी वासनासे उसे पराभूत कर दिया और वह पत्नीसे मिलने घरकी ओर चल दिया। राहमें चलते हुए बारह वर्षोंकी दीर्घ अवधिमें पतिके बिना पत्नीका क्या हुआ होगा?, क्या वह कुल-धर्ममें स्थित रही होगी अथवा जीवनके वशीभूत होकर उसने अन्य पति कर लिया होगा?, आदि अनेक विकल्प उसके मनमें आते रहे। गाँवके बाहर एक मंदिरमें ही नागवसूसे भेंट हो गयी। परन्तु इवर भवदेवका बारह वर्षोंका मुनि जीवन, और उधर नागवसूकी घरमें रहते हुए व्रतोंकी साधना। इससे उनका दैहिक सौंदर्य और यौवन न जाने कहाँ विलीन हो गये थे। नागवसू एक जरा-जीर्ण वृद्धाके समान प्रतीत होने लगी थी। अतः वे दोनों परस्परको पहचान नहीं पाये। भवदेव मुनिके द्वारा अपने माता-पिता व पत्नीके संबंधमें जिज्ञासा करनेपर नागवसूने उसे पहचान लिया। उसने मुनि चरित्रसे डिगते हुए भवदेवको धर्ममें स्थिर करने हेतु सद्गुणोंका विवरण दिया, जिससे भवदेवकी आत्म-विवेक उत्पन्न हो गया। उसने मुनि संघमें आकर आचार्यसे सब कुछ निवेदन कर दिया और अपनी आलोचना की व प्रायश्चित्त किया। इसके पश्चात् उसने कठोर तप किया और मृत्युके उपरांत दोनों भाई स्वर्गमें देव हुए। इवर नागवसू भी आर्याका (साध्वी) हो गयी और तपोमय जीवन व्यतीत करने लगी।

भवदेवके इस जीवन चरित्रमेंसे हम देख सकते हैं कि यद्यपि मुनि होनेके पश्चात् भी दीर्घकाल तक वह इन्द्रिय सुखोंका चिंतन करता रहा, तथापि उसने धर्मका परित्याग नहीं किया, और मुनि जीवनकी भर्थावायिका ऊपरी तीरसे ही क्यों न हो, पूर्ण पालन करता रहा और जब वह धर्मसे डिगनेको हुआ तथा ऐसा आभास होने लगा कि अब उसकी जीवनधारा सदाके लिए बदलकर ही रहेगी, तब उसकी पत्नीने ही उसे हस्तावर्लंबन देकर डूबनेसे बचा लिया। जिन परिस्थितियोंमें भवदेवने मुनि दीक्षा ली, वे प्रत्येक सहृदय सामाजिककी संपूर्ण सहानुभूति भवदेवकी ओर अनायास खींच लेती हैं, और अग्रज भवदत्तके इस कार्यसे कुछ क्षणोंके लिए ही सही, उसके मनमें एक वितृष्णा-सी उत्पन्न हो जाती है। भवदत्तका यह कार्य अश्वघोषके सौंदर्यद काव्यमें बुद्धके द्वारा नंदकी दीक्षाके प्रसंगसे पूर्णतः मेल रखता है।

भवदत्त—ठीक विवाहके समय ही वैवाहिक जीवनका रंचमात्र भी सुख देखे बिना अनुजको 'उसकी इच्छाके सर्वथा विपरीत भूमि बना लेनेमें पाठकको पहले पहल भवदत्तकी परम कठोरताका आभास होता है। पर जब हम धार्मिक विद्वांसोंकी पृष्ठभूमिमें भवदत्तके इस कार्यको तोलकर देखते हैं, तो अनुजको संसारके अज्ञत आवागमनके चक्रसे छुड़ाकर उसके शाश्वत-कल्याण (मोक्ष-प्राप्ति) की दृष्टिसे भवदत्तका यह कार्य उसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न किये बिना नहीं रहता।

भवदेवको बोध देनेका एकमात्र प्रसंग जो कि काव्यकी संपूर्ण कथावस्तु और नायकके चरित्रोत्कर्षकी सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है, नागवसूके चरित्रका एकाएक उद्घाटन कर देता है। नागवसूका यह कार्य भारतीय नारीके चरित्रको युग-युगोंके लिए सर्वोच्च स्थानपर प्रतिष्ठित कर देता है। नागवसूके इस कार्यने अ.पतनके गर्तमें गिरते हुए एक सामान्य विषय लीलुप व्यक्तिको त्रिलोकपूज्य ऋषि बना दिया। इसी प्रकारकी एक घटना हमें उत्तराव्ययनमें पढनेको मिलती है, जिसके अनुसार साध्वी राजीमतीने अरिष्टनेयिके चचेरे भाई रघुनेमिको पतनके महान गर्तमें गिरनेसे बचाया। नागवसूका यह चरित्र भारतीय नारीके जीवनका सर्वोच्च आदर्श रहा है। भारतीय संस्कृतिके इतिहासमें ऐसे असंख्य उदाहरण हैं जबकि नारीने न केवल गृहस्थ जीवन, जो मनुष्यके वृहत्तर जीवन एक अंग मात्र है, बल्कि युद्ध और मृत्यु एवं तप-साधना तक सभी क्षेत्रोंमें सदैव पुरुषकी अनुगामिनी-सहयोगिनी बनकर मोक्ष प्राप्ति पर्यंत स्वयंके और पतिके जीवनको उठाया है। तुलसीको संत कवि तुलसी बनानेमें नारीकी ही प्रेरणा निहित है, यह विदित तथ्य है। इसी लिए 'यशोधरा'के कविकी पीठा यह नहीं कि बुद्धने स्त्री-पुत्रको छोड़कर संन्यास क्यों लिया? बल्कि उसकी

१. उत्तरा० २२ रहनेमिर्ध्न ।

२. स्व० मै० श० गुप्त द्वारा रचित हिंदी काव्य ।

वास्तविक वेदना तो यह है कि बृद्धने यशोधराके अनजाने यह क्यों किया ? यदि वे यशोधरासे कहकर जाते तो क्या यशोधरा उनके पयकी बाधा बनकर खड़ी होती ? नहीं ! वल्कि निज मनके इन दीर्घल्यने कि कहीं मैं न फँस जाऊँ, उन्हें ऐसा करनेको प्रेरित किया होगा । इस प्रकार नागवसूका जीवन चरित नारी जीवनके चञ्चलम आदर्शका प्रतीक है ।

सागरदत्त-शिवकुमार—भवदत्त और भवदेवके स्वर्गिक जीवनके संबंधमें कुछ विशेष कथ्य नहीं है । जब वे दोनों स्वर्गसे आकर दो राजाओंके सागरदत्त और शिवकुमार नामक पुत्र हुए, तो सागरदत्त एक भूमिका उपदेश भुनकर दीक्षित हो गया और वीत्ताशोक नगरोंमें जहाँ शिवकुमार उत्पन्न हुआ था, उसे दोष देने गया । शिवकुमारको इस बार मुनिके दर्शन करते ही अपना पूर्वमन्त्र स्मरण हो आया और वैराग्य हो हो गया । फिर भी माता-पिताके आग्रहसे घरमें ही रहकर बारह वर्षों तक नाचना करके वह पुनः स्वर्ग गया और विष्णुनाली नामक देव हुआ । मुनि सागरदत्त भी समाधिमरण करके स्वर्ग गये । यहाँ शिवकुमारके जीवनमें अंतर्द्वंद्वका अभाव पाया जाता है । युवावस्था तक निर्द्वंद्व भावसे सारे राजमुख और इंद्रिय भोग भोग कर मुनिदर्शन मात्रसे सहसा उसे बोध हो आता है और वह धर्मसाधनामें लग जाता है ।

सुधर्मा और जंबू—स्वर्गसे आकर सुधर्मा एक विद्वान् ब्राह्मणपुत्र हुए और महावीरके दर्शनसे बोध प्राप्त कर उनके शिष्य बन गये तथा उनके निर्वाणोत्पन्न बारह वर्ष तक मधके प्रधान रहे । उबर विष्णुनाली देवने राजगृहीमें अर्हंदास सेठके घरमें जन्म लिया और उसका नाम जंबूस्वामी रखा गया । बाल्यकालसे लेकर मोक्षगमन पर्यंत जंबूस्वामीके जीवन-चरितमें वे सारे गुण उपलब्ध होते हैं जो महाकाल्यों और नाटकोंके धोरोदात्त नायकोंमें कहे गये हैं । सर्वसंपन्न घग्नेमें उत्पन्न अप्रतिम और अपूर्व रूपलक्ष्मीके जन्मजात धनी, लोगके अनुराग और कामिनियोंकी अनयायान आसक्तिके अद्वितीय बालंबन, गंभीर स्वभावी, महासत्त्व, स्थिर प्रकृति, बुद्धव्रती और अत्यंत विनयशील तथा कृतज्ञ होनेपर भी अदम्य स्वाभिमानी ! ऐसा वर्णित किया है वीर कविने जंबूके जीवनको । वसंत ऋतु आनेपर अनेक मित्रोंके साथ सरोवरमें कामिनियोंके मध्य जंबूकी जलक्रीडाके वर्णनसे उसके जीवनमें युवावस्था सुलभ रसिकताकी प्रतीति होती है और वचपनसे ही बृद्धके समान एकांतप्रिय वैरागी न दिखला कर, कवि सहृदय पाठकोंको नायकके जीवनके साथ समरस होनेका अवसर प्रदान कर उसे साधारणीकरणकी रगारमक अनुभूति करानेमें सफल हुआ है । जलक्रीडाके अवसरपर राजहंसिके उपब्रवका वर्णन कर कविने अत्यंत कुशलतासे जंबूके धैर्य गुणको प्रकट किया है । विलासवतीके राजा श्रेणिकसे परिणयकी भविष्यवाणी, हंसद्वीपके विद्याधर राजा रत्नशेखरका उसके लिए दुराग्रह और कन्याके पिता मृगांकद्वारा उसके आग्रहको ठुकरानेके प्रसंगोंकी स्व-करण प्रसूत सृष्टि करके कवि एक प्रतिनायककी योजना करनेमें सफल हुआ । इसी प्रसंगकी लेकर कविने केरलमें राजा मृगांक तथा विद्याधर रत्नशेखरकी सेनाओंमें युद्ध होनेका विस्तारसे वर्णन करते हुए अंतमें जंबूस्वामी और रत्नशेखर, और राजा श्रेणिकका सेना सहित केरलकी ओर प्रयाण, रास्तेमें सैन्य पडाव तथा युद्धमें जंबूकी विजय दिखलाकर नायकके चरितमें लौकिक दृष्टिसे भी परमोत्कर्ष दिखलाया है, और उनके शूरोरता और क्षमाशीलता इन दोनों गुणोंका पूर्ण उद्घाटन किया है । युद्ध-विजयके उपरांत केरलसे वापिस लौटते समय राजगृहीके वाहर ही उद्यानमें सुधर्मा मुनिके दर्शन, धर्मोपदेश और पूर्वभक्तयत्नसे जंबूको एकदम वैराग्य हो जाता है । माता-पितासे दीक्षा लेनेकी अनुमति नहीं मिलती, प्रत्युत जंबूको चार कन्याओंसे विवाह करना पड़ता है । परंतु यहाँ कवि नायकके मनमें किसी प्रकारका अंतर्द्वंद्व नहीं दिखलाता क्योंकि पूर्व संस्कारोंके कारण प्रव्रज्या लेनेका उसका निश्चय अटल होता है । फिर भी विवाह होता है और कामदेवकी रतिके समान अपूर्व रूप-यौवन संपन्न वयुर्षे अपने हाव-भाव विलास और अंग-प्रत्यंग प्रदर्शन, गीत, हास्य आदिके द्वारा जंबूको रतिमुखमें बुदोनेका भरपूर प्रयास करती हैं । कथनोपकथन होते हैं, पर जंबू अडिग रहता है । यदृष्टि लेकर जंबूके मोक्षगमन पर्यंत कथावस्तु सीधे-सीधे तीव्रतासे फलागमकी ओर बढ़ती हुई नायकको फलप्राप्ति होनेपर पूर्ण होती है ।

विद्युच्चर—यह एक प्रकारसे जंबूस्वामीका सहयोगी पात्र तथा रचनाका उपनायक है । जन्मः

राजपुत्र, कर्मसे चोर और वेद्यान्यसनी, इस रूपमें विद्युच्चर पाठकके सामने जाता है और चोर बनकर जंबूस्वामीके घरमें प्रवेश करता है। वहाँ वर और वधुओके बीच होते हुए कथा वार्तालापको सुनकर ठहरे जाता है और उसे सुनते-सुनते उसका चित्त बदल जाता है। जंबूकी जाग्रत तथा चिंताविह्वल भाँ उसे दे लेती है। दोनोकी वार्ता होती है। विद्युच्चरको जंबूका मामा बनाकर जंबूकी भाँ उसे पुत्रके सामने उपस्थित करती है। एक चोर, दूसरा भविष्यत् केवली, ऐसे अद्भुत मामा-मानजोके मध्य कथा संवाद प्रारंभ होता है। पहले दार्शनिक चर्चा और फिर वही लोक कथाओका सिलसिला। विजय होती है जंबूकी। विद्युच्चर अपने असली रूपको प्रकट कर जंबूका चिर अनुशासी गिष्य बन जाता है। विद्युच्चरके हृदय परिवर्तनकी यह घटना अनायास एक ओर हमें महर्षि वाल्मीकिके जीवन चरितका स्मरण कराती है, दूसरी ओर अपने द्वारा हत्य किये हुए मनुष्योकी गिनतीके लिए उनकी एक-एक अगुली काटकर, उसकी माला पहिननेवाले भयानक दस्यु अंगुलिमाल एवं महात्मा बुद्धकी भेंटका, जिसकी परिणति उस नर-पिशाच अंगुलिमालके लोकपुण्य अर्हत् अंगुलिमाल बननेमें होती है। जंबूके साथ दोष लेनेके उपरांत विद्युच्चर जैन सघके एक प्रमुख अर्हत् बने और इवे० परंपरानुसार जंबूके पश्चात् ग्यारह वर्षों तक संघके प्रधान भी रहे। साधु जीवनमें उन्होंने अनेक भयानक उपसर्गोंको अविचल भावसे सहन किया और दीर्घ तपस्या कर स्वर्गमें देव रूपसे उत्पन्न हुए। विद्युच्चरका यह जीवन इस बातकी उच्चतम स्वरसे घोषणा करता हुआ प्रतीत होता है कि महापुत्रोकी संगति वह दिव्य पारस है जो निकृष्टतम लोहेके समान नराधमोको भी अपने स्पर्श मात्रसे त्रिलोक पुण्य महात्मा बना देता है।

रत्नशेखर—प्रतिनायकके रूपमें वीर कविने रत्नशेखरको धीरोद्धत नायकके गुणोसे संपन्न व्यक्ति वर्णित किया है। वह अन्यायसे बलपूर्वक श्रेणिकके निमित्त प्रदत्त कन्याको प्राप्त करना चाहता है और साम, दाम आदिसे उपलब्ध न होनेपर युद्ध ठान देता है। शस्त्र युद्धमें मृगाकको जीत न पानेपर माया युद्ध-द्वारा मृगाकको बाधकर कैद कर लेता है। यह समाचार मिलनेपर जंबूस्वामी उसे ललकारते हैं और उसे सब प्रकारके युद्धमें पराजित कर अंतमें बांध लेते हैं और नगरमें ले जाकर अमा कर देते हैं। रत्नशेखर भी सारे वीर विरोधको भूलकर जंबूस्वामीका भक्त और मृगाकका मित्र बन जाता है। रत्नशेखरका यही संक्षिप्त चरित हमें प्रस्तुत काव्यमें उपलब्ध होता है।

जंबूस्वामीकी चार वधुएँ—विवाहके पूर्व ही यह जान लेनेपर भी कि जंबूस्वामीको वैराग्य हुआ है और वह दीक्षा लेनेवाला है, चारो वधुओने भारतीय आदर्शके अनुकूल उसीसे विवाह किया। उन्हें विश्वास था कि हमारा यह अप्सराओ-जैसा दिव्य और अनुपम रूप-यौवन जंबूको आकृष्ट करके अपने पाशमें बाँधनेमें अवश्य सफल होगा और यदि हम लोग जंबूस्वामीको न जीत सकें तो भी हम उन्हीकी अनुगामिनी बनकर उन्हीके साथ दीक्षा लेंगी। विवाह हुआ और चारो वधुओने नारी सुलभ जो-जो हाव-भाव-विलास आदि काम चेष्टाएँ हो सकती हैं, सभी कुछ किया। इन सबका जंबूपर कोई प्रभाव न पडता देख अंतमें अपने कथा-कौशलके द्वारा उसे वैराग्यसे पराङ्मुख करनेका मनोवैज्ञानिक यत्न किये। पर जब इधमें भी जंबूने उन्हें प्रतिक्रियानकोके द्वारा निरन्तर और मूक कर दिया, तो वे शांत होकर बैठ रही और प्रातःकाल होनेपर जंबूके साथ ही दीक्षा ले ली। इस प्रकार उन्होंने जीवनपर्यंत पतिके मार्गका अनुसरण-अनुगमन किया। भवदेवके जन्ममें उन परिस्थितियोंमें नागवसुने जिस आदर्शकी स्थापना की थी, उससे कुछ भिन्न परिस्थितियोंमें जबकि एक दीर्घ संभावना यह अवश्य थी कि जंबूस्वामी गृहस्थोंमें रह सकें, युवावस्थाकी स्वाभाविक प्रवृत्तियोंके अनुसार इन्द्रियसुखकी भावनाओसे प्रेरित जो चेष्टाएँ थी, वे सब करके जब वे हार गयीं, तब अंतमें उन वधुओने जो उसी आदर्शका पालन किया। फिर वे जंबूके मोक्षमार्गको यात्रामें बाधक बनकर खड़ी नहीं हुईं। भारतीय नारीके इसी सर्वोच्च आदर्शकी वीर कविने पाठकोंके हृदयपर बार-बार अधिकाधिक दृढ़तासे छाप लपानी चाही है, अकल करना चाहा है और हृदयकी अधिकतम गहराइयोंमें अमिट रेखाओ-द्वारा उत्कीर्ण कर देनेका सत्प्रयास किया है।

शिवकुमारके माता-पिता—ने उसे दीक्षा लेनेकी अनुमति नहीं दी थी और मोहवश उसे घरमें ही रहकर तप-साधना करनेकी पूर्ण सुविधा प्रदान की। माँ-बाबाका अपने इकतीते पुत्रके प्रति न जाने कितना मोह, असीम वास्तव्य और अनंत मनोभावनाएँ आवृद्ध रहती हैं। परन्तु फिर भी जब पुत्रको अलो-किक मोक्ष-साधनाके मार्गपर चलना हो तो वे उसमें बाधा तो नहीं देते, लेकिन पुत्र बाँवके सामने रहे यह भावना और तज्जग्य संतोष कितना महान् होता है इसे प्रत्येक माता-पिताका हृदय समझ सकता है। वही शिवकुमारके माँ-बापने किया। इससे वे हमारी सृज्य अनुभूति समवेदना आरुप करते हैं।

जंबूके माता-पिता—शिवकुमारको वैराग्य हुआ था तब, जबकि वह एक प्रकारसे राज्यवैभव और यौवन, संपत्तिके सारे सुख भोग चुका था। जंबूने यौवन सुख किये कहते हैं, यह जाना तो अवश्य था, पर भोगा नहीं, तभी उसे ससारसे विरक्ति हो गयी। चार कन्याओंसे विवाह वचनसे ही निश्चित किया जा चुका था। फिर भी जंबूके समझानेसे उसके माता-पिताने धैर्य धारण कर लिया और कन्याओंके घर जंबूको वैराग्य उत्पन्न होनेका समाचार भिजवा दिया, जिससे कन्याओंका संबंध अन्य योग्य वरसे किया जा सके। पर यह नहीं हो सका। कन्याओंके स्वयंके धाग्रहके कारण जंबूके माता-पिताको उसे विवाह कर लेनेको कहना पडा। जंबूने प्रव्रज्या लेनेके अपने पूर्व निश्चयपर अटल रहते हुए भी विवाह करना स्वीकार किया। विवाह हुआ जंबू अडिग रहे।

जंबूकी बचुओंके बीच कथोपकथनके अंतरालमें उसको माँको मनोदशाका कविने अत्यंत मनोवैज्ञानिक और मार्मिक चित्रण किया है। प्रायः काल जंबूने दीक्षा ली, साथमें बचुओ तथा माता-पिताने भी। यह पढकर अनुभव होता है, मानो जंबूके चरितके क्रमिक उत्थानके साथ-साथ उससे संबद्ध अन्य व्यक्तियों अर्थात् माता-पिता एवं बचुओंके चरितमें भी उत्तरोत्तर उत्कर्ष आता गया है। शिवकुमारने घरमें रहकर ही तप-साधना की थी, पर उसकी पत्नियो, माता-पिता कृपिकी धार्मिक साधनाओंका कोई उल्लेख हमें नहीं मिलता। परन्तु जब शिवकुमारने अतिमकेवली होनेवाले जंबूस्वामीके रूपमें जन्म लिया, तब उसके माता-पिता और बचुएँ भी मानो उसीके साथ उन्नत हो गये और जंबूके साथ इन सवने भी जिनदीक्षा स्वीकार कर ली। सब है पुत्र और पत्निकी भाँतिक आध्यात्मिक उन्नतिके साथ-साथ माता-पिता-पत्नीका भी सर्वतोमुखी उत्थान, उन्नति, विकास स्वाभाविक और अनिवार्य है। यही वह संदेश है जिसे कवि अपनी संपूर्ण रचना और चरित-चित्रणके माध्यमसे देना चाहता है।

इन प्रमुख पात्रोंके अतिरिक्त जं० सा० च० में कुछ और भी पात्र आये हैं—जैसे राजा श्रेणिक, विद्याधर गगनगति, राजा मृगांक व उसकी विलासवती कन्या तथा अणाद्विय नामक यक्ष। इनके चरित-विवलेपणके संबंधमें बहुत अल्प सामग्री जं० सा० च० में उपलब्ध होती है, अतः इनके विषयमें कोई विवेक कथ्य नहीं है।

अब यदि चरितचित्रणकी दृष्टिसे जं० सा० च० के विषय-वर्णनका विवलेपण किया जाये तो हम देखेंगे कि जंबूस्वामीके विवाह और बचुओंके जंबूस्वामीको वशमें करनेके प्रयत्नपर आकर जं० सा० च० की आठवीं सवि समाप्त होती है और वास्तवमें इतना ही इस रचनाका श्रेष्ठ काव्य रसात्मक अंश है। सवि ९ और १० में अनेक अंतर्कथाओंके द्वारा जंबूके विवेक और वैराग्य-भावकी दृढता प्रकट की गयी है और १०वीं सविके १९ से २४ तक कुल पाँच कडवकोंमें जंबूका दीक्षासे लेकर मोक्षगमन पर्यंतका सारा वृत्तान्त कह दिया गया है। सवि १०, कडवक २५ से लगाकर, ११वीं सविके अंत तक मुनि विद्युच्चरपर घोर उपसर्ग, बारह भावनाओं-द्वारा उपसर्ग-विजय और समाधिप्ररण करके सर्वार्थसिद्धि स्वर्गगमनका वृत्त कहा गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि घोर कविने अपने कथ-पात्रोंका चरित्र-चित्रण रचनाके उच्छुद्ध भागमें किया है, और धर्मसंबंधी चर्चाओं व तप-साधना आदि जो कि सर्वनाधारण पाठककी रुचिके विषय नहीं हैं, उन्हें बहुत अल्प स्थान दिया है। इस कारण इनकी रचनामें आखोपात कहीं भी शुष्कता व तोरसता नहीं आ पाती और संभवतः "पायवधुवत्लङ्गु जणहो विरइज्जज कि इयरे" (१४.१०) तथा "सरिसर-निवाणठिउ बहु वि जलु सरमु नु तिह मणिज्जइ । योवउ करयत्थु विमलु जणिण अहिलामे जिह पिज्जइ ।"

(१५१०-११) वीर कविकी इन पंक्तियों तथा 'काव्यं यदमेऽर्चयते व्यत्रहारादि निवेतरक्षयते । काव्ता सम्मिततयोपदेशयुजे' मम्मटाचार्यकी इस कारिकावा यही हेतु था जिसे सफ़लीभूत करनेमें हमारा कवि यहूत दूर तक सफल हुआ है ।

(ङ) रस-भाव योजना

जंबूसामिचरिदके परिशौलनसे जात होता है कि यह एक प्रेमाट्जानक महाकाव्य है । अन्वयोंपकृत सीदरमंद महाकाव्यके ममान इन काव्यका प्रारंभ भी बड़े भाईके द्वारा छोटे भाई भवदेवके अनिच्छापूर्वक दीक्षित कर लिये जानेसे प्रिया-वियोगजन्य विप्रलम्भ शृंगारने होता है । काव्यमें विप्रलम्भशृंगार रस-योजनाकी दृष्टिमें उच्चकोटिका माना जाता है । भवदेवके प्रेमकी प्रवर्धता और महत्ता इसमें है कि जैन संघके कठोर अनुशासनमें दिगंबर मुनिके वेपसे बड़े भाईको देखनेमें नहने हुए भी तथा जैन मुनिके अतिकठोर आचारका पालन करते हुए भी उसने बारह वर्षोंका शीर्षक अथवा पत्नी नागवसूके रूप धितन तथा उसीके ध्यानमें विता दिये । उपाय्याओं-द्वारा पढाये जानेपर उसे एक अक्षर नहीं आता था, और वह निरंतर अपनी सुंदर पत्नी नागवसूके अंग-प्रत्यंगोका स्मरण-वितन करते हुए यही मोत्रता रहता कि अब वह कैसी होगी ? और वह धन्य-दिवस कौन-सा होगा जब मैं प्रियाका गाठ अलिंगन करके उसके साथ सवेच्छ सुरत-मुख भोगूंगा ? इस प्रकार बारह वर्ष बीत गये और मुनिबंध पुन उसके गाँवमें लाया । उस समय एक और भवदेवका पत्नीसे मिलकर विषय-भोग करनेका अदभ्य उत्पन्न व दूबरी और अपनी मुनि अवस्था, और तीसरे मुनि जीवनको कलंकित करनेवाले उसके कु-आचरणसे उसके अग्रज भवदत्तको कैसी महान् लज्जा उत्पन्न होगी, इसका विचार, इन प्रेय और श्रेय-वृत्तियोंका दंड काव्यमें अत्यंत मार्मिक वन पडा है ! अंततः भवदेव गाँव की ओर चला दिया । गाँवके बाहर मंदिरमें ही पत्नीसे भेंट हो गयी, परंतु ब्रह्मोपासनासे क्षीणकाय होनेसे वह उसे पहचान नहीं सका । नागवसूने अपने माता-पिता दोनों भाई, और अपनी पत्नीके विषयमें पूछाछ करनेपर नागवसूने उसे पहचान लिया कि यह मुनिवर्ममें विचलित भवदेव है । उसने तुरंत निश्चय किया कि मैं इसे बोध देकर धर्ममार्गमें स्थिर करूँगी । अपने इस निश्चयमें वह पूर्णतया सफल रही, और भवदेव बोध प्राप्त कर उसी क्षणसे सच्ची तप-साधनामें लग गया । इसी स्थलसे भवदेवके चरित्रका उत्थान प्रारंभ होता है, जो क्रमशः जंबूसामीके रूपमें जन्म लेकर अंतिम देवलज्ञानी हुआ, और मोक्ष लाभ कर परमात्म-पदको प्राप्त हुआ । नागवसूका यह कार्य इस चरित्रमें एवं नारतय नारीके इतिहासमें उसे अत्यंत महान् पद प्रदान करता है कि वह एक पतनोन्मुख सामान्य विपयलोकुंगी मानवकी त्रिलोकपूष्य परमात्म अवस्था तक उठानेमें हेतुभूत हुई । वास्तनामय होनेपर भी परमप्रेमकी परम वैराग्यमें यह परिणति, परिवर्तन व त्यागांतरण और उदात्तकरण एक ऐसी मन-वैज्ञानिक घटना है जो अनेक भारतीय ऋषियों, मुनियों संतो व तुलसी जैसे महाकवियोंके जीवनमें घटित हुई है, जिसके कारण ही उन्हें वह पद प्राप्त हुआ है, जिसपर वे आज विराजमान हैं । जब प्रेमाव्रसे निराधा होती है, तो वह व्यक्तिने वैराग्योन्मुख करती है, ऐसा आधुनिक मन-वैज्ञानिकोंका भी अभिमत है । इस काव्यका प्रारंभ प्रेयसे होकर उसकी चरम परिणति परम वैराग्यमें हुई है । इस दृष्टिसे इसमें नागवसूका महत्त्व सर्वोपरि है, और उसका जीवनवृत्त अत्यल्प होते हुए भी उसके इस एक ही काव्यने उसे इस चरितकाव्यकी नायिकाका पद प्रदान कराया है ।

इस प्रकार विप्रलम्भ शृंगारसे काव्यका प्रारंभ होकर, शातरसमें पाठकको शांति प्रदान करता हुआ यह चरित-काव्य अमृतपयस्विनी गंगाकी धाराके समान विभिन्न रसों रूपी घुमावों वीर भोगोंमें होता हुआ अंतमें शांतरसके सुधा-सागरमें परिणत हो जाता है ।

वीर कविने अपनी इस रचनामें प्रमुख रूपसे वीर, वीमत्स, रौर, भयानक एवं शात रसोंकी योजना की है । अद्भुत, करुण एवं हास्य रसात्मक अंश भी काव्यमें विद्यमान हैं, परंतु वे बहुत अल्प हैं, और उनमें रस अपने पूर्ण उत्कर्षको प्राप्त नहीं हो सके हैं । उन अंगोंमें रसकी अपेक्षा उनके स्थायी और संचारी भावोंका ही प्राधान्य दिखाई देता है । कविने स्वयं भी अपनी रचनाको 'शृंगारवीर-रसात्मक महाकाव्य'

कहा है। भयानक, रौद्र एवं वीभत्स रसोकी योजनापर यदि गहराईसे विचार किया जाये तो प्रतीत होगा कि वे वीर-रसके पोषक-रस रूपसे यहाँ नियोजित हुए हैं। 'घातरस' काव्यका केंद्रीभूत रस है। इस प्रकार शृंगार, वीर और शांत तीनों समान रूपसे काव्यके प्रधान रस माने जा सकते हैं। संदर्भोके परिप्रेक्ष्यमें उन्हें संक्षेपमें इस प्रकार देखा जा सकता है :—

शृंगार रस—महाकवि वीरने प्रेमियोके हृदयमें संस्कार रूपसे धर्तमान रति या प्रेमको रसावस्था तक पहुँचाकर उसमें आस्वाद योग्यता उत्पन्न की है। कविने शृंगार रसकी पूर्णता तय्योग वा संभोग शृंगारमें न मानकर विप्रलम्ब शृंगारमें मानी है। वस्तुतः वियोगाग्निमें तपनेपर ही प्रेममें उत्कटता और उत्कर्ष आते हैं। अतएव वियोगावस्थामे पात्रके जैसे उद्गार अभिव्यक्त होते हैं, वैसे संयोगावस्थामे नहीं। प्रस्तुत काव्यमें कविने भवदेवकी दाम्पत्यविषयक रतिका सजीव चित्रण किया है। विरक्त होनेपर भी भवदेव अपनी पत्नीके आकर्षणको भूल नहीं सका। साधना करते समय भी उसका मन नागवसूके अंग-प्रत्यंगकी रूप-सुषमाके चिंतनमें लगा रहता है। वीर कविने इस प्रसंगमें विप्रलम्ब शृंगारके अभिलाष, चिंता, स्मृति आदि अंगोंका सरस वर्णन किया है (२-१४-१५)।

जंबूस्वामी युवा होनेपर नगर भ्रमणके लिए निकलते हैं। इस प्रसंगमें वीरने जंबूस्वामोको देखकर काम विह्वल होती हुई नगरकी नारियोका रोचक वर्णन किया है (४.११)। यहाँ दर्शन अन्य पूर्वराग नामक शृंगार रस है, तथा कुमारके अनुपलब्ध होनेसे इसमें विप्रलम्बका भाव धनीभूत हो उठा है।

जंबूस्वामीकी भावी वधुओं—चार श्रेष्ठि-कन्याओंके सौंदर्यका शृंगार पूर्ण वर्णन भी रस परिपाककी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है (४.१३)।

बसंत ऋतुका आगमन हुआ। नागरिकोके जोड़े उद्यान-क्रीडाके निमित्त बाहर निकले और रस विभोर हो क्रीडाभोगमें डूब गये (४.१७-१८)। उद्यान क्रीडाके उपरांत जलक्रीडाका वर्णन है (४.१९)। इन दोनों प्रसंगोंमें संभोग शृंगारका परिपाक हुआ है।

इसी प्रकार सूर्यस्त एवं संध्याके आगमनपर (४.१४) विप्रलम्ब शृंगार, एव विवाहके उपरांत वधुओंकी काम चेंप्राओं (८.१६) और बैर्यावाटके वर्णनमें (९.१२) वीरने संभोग शृंगारका सविशेष वर्णन किया है।

वीर रस—बसंतोत्सव मनाकर जब लोग अपने-अपने घरोंको लौटनेकी तैयारी कर रहे थे, उसी समय राजाका पट्टहाथी मेंठको मारकर भाग निकला और उसने चारों ओर महाविनाश तथा मृत्युका दृश्य उपस्थित कर दिया। जंबूस्वामीने अपने पौरुषसे उस दुष्ट हाथीको अपने वशमें कर लिया। नायकको वीरताका वर्णन इस हस्तिविजयके प्रसंगमें वीर रसके अनुरूप हुआ है (४.२१)। इस संदर्भमें हस्ति आलवन है उसके द्वारा कुमार-पर प्रहार उद्दीपन है, कुमारका युद्धार्थ उद्यम अनुभाव है और अयर्ष-जादि संचारी है। स्थायी भाव कुमारका हस्तिविजय विषयक उत्साह है।

इसी प्रकार रत्नशेखरकी राजसभामें उत्तेजक और अपमानकारक बातें कहनेके कारण राजाके आदेशसे जब विद्याधर भटोने जंबूकुमारको चारों ओरसे घेर लिया उस प्रसंगमें (५.१४.१२.२४) भी वीर रसकी सुंदर योजना की गयी है। संधि ६ और ७ में प्रचुरतासे वीर, रौद्र एवं वीभत्स रसोंका समावेश हुआ है। जं० सा० च० ६.४.४—९; १५.५—१०; ६.६३—८, ६ एव ६.९, में केरलनुप मुर्गाक और रत्नशेखर विद्याधरकी सेनाओंके बीच युद्ध वर्णन, तथा ६.१०.५-१४ एव ६.१३ में रत्नशेखर एव गननगति विद्याधरके बीच युद्ध; ७.७ में जंबूस्वामी और रत्नशेखरका परस्पर आह्वान, ७.९ व ७.१० में इन दोनोंका युद्ध इत्यादि सारे वर्णन वीर रस पूर्ण हैं। ७.६ में दडक रूपमें वीर, वीभत्स एवं भयानक रसोंका एक साथ बहुल अच्छा संयोजन हुआ है।

रौद्र रस—केरलराज मुगाकने जब विद्याधर रत्नशेखरको अपनी विलासवती नामक कन्या देनेसे सर्वथा अस्वीकार कर दिया, तो रत्नशेखरने क्रुद्ध होकर केरल पुरीको घेर लिया और वहाँ सर्वनाश एव

महाप्रलय जैसा दृश्य उपस्थित कर दिया (५३)। चीरने यह वर्णन रौद्र रस युक्त किया है। यहाँ स्थायी-भाव रत्नशेखरका क्रोध है, बालंबन विभाव कन्याका प्राप्त न होना है, उद्दीपन विभाव मृगांक-द्वारा उसका अपमान आदि है; सेनाकी उग्रता, आवेग, मद एवं गर्व आदि अनुभाव हैं, तथा अमर्ष इत्यादि संचारी भाव हैं।

रौद्र रसका एक और उदाहरण वहाँ उपलब्ध होता है, जब जंबूस्वामी ब्रूतेक महाने रत्नशेखरकी छावनीमें घुसकर उसके समक्ष पहुँचे और जाते ही नाना प्रकारसे उसे बुरा-भेला कहा, निंदा व भर्त्सना की और अपमान करने लगे। यहाँ प्रतिनायक रत्नशेखरका रौद्ररस-मय वर्णन दर्शनीय है (५१३-१४-११)। यहाँ भी स्थायी भाव क्रोधके साथ बालंबन विभावके रूपमें जंबूस्वामी हैं। उद्दीपन विभाव जंबूकी वर्ष एवं अपमान पूर्ण कटु उक्तियाँ हैं। बाँखोका लाल होना, बोट कांपना, मुल लाल हो जाना, कंठका स्तम्भ होना, स्नेह बाना, बोट काटना, नासापुटोंका भयानक रूपसे फड़कना आदि अनेक अनुभाव हैं; और अमर्ष आदि संचारी भाव हैं। इसी प्रकार ५१४-६-११ में भी इसी संदर्भमें रौद्र रसकी सुंदर योजना वन पडी है।

भयानक रस—और और रौद्र रसोका पोषक रस है भयानक। ज० सा० च० में युद्ध वर्णनके प्रसंगमें भयानक रसके संयोजनके कई उदाहरण हैं, जैसे ६७४-७; ६१०-१-४, ७१४-१०-१४, ७११-२२; ७६५-१४; एवं ७८७-१२। बागे चलकर असती विषयक अंतक्याके मंदर्ममें (१०.९१-३) भी भयानक रसकी आश्रित्य पूर्ण योजना हुई है। इन संदर्भोंमें स्थायी-भाव भय है। आश्रयपात्र कायर सैनिक एवं नीच पुत्र आदि हैं। बालंबन-विभाव शत्रु सैनिक है, और उद्दीपन विभाव उनके द्वारा किया जाता हुआ भयानक शत्रु संहार है। शत्रुओं और कायरोंका झर-उबर बिलख जाना, पलायन करना आदि अनुभाव हैं; एवं द्राघ, गंका, संभ्रम तथा मृत्यु आदि संचारी भाव हैं।

वीभत्स रस—ज० सा० च० में वीभत्स रसके बहुत्र योड़ेसे उदाहरण पाये जाते हैं। विद्युच्चक्र महा मुक्ति के उपर दैवी उपसर्गका वर्णन (१०.२६.१-४) वीभत्स रस पूर्ण है। चंग नामक मुनार-पुत्र रानीके द्वारा बुराये जाने पर उसकी शोषापर जाकर बैठा ही था कि राजा युद्ध विजय करके लौट आया और चंगको निकालनेके सब मार्ग अवलोकित जानकर रानीने भयके मारे चंगको गूथ कूर्ममें डाल दिया (१०.१७४, ६-८)। यह दर्शन भी वीभत्स रसात्मक है। इन संदर्भोंमें स्थायी भाव जुगुप्सा; दुर्गम युक्त विद्या, मर्ष, चर्वा आदि बालंबन तथा उद्दीपन विभाव हैं; आँखें बंद कर लेना आदि अत्यंत अनुभाव हैं, एवं मोह, व्याधि, आवेग, मरण आदि संचारी भाव हैं।

करण रस—ज० सा० च० में करण रसकी योजना कई स्थलोपर योग्य रीतिसे हुई है। नवदत्त-भवदेवके पिताकी नृत्य और उनकी माँ के जीवित ही चित्ताने जलकर सती होनेका प्रसंग अत्यधिक काव्यिक है। उसमें करण रसका पूर्ण परिपाक हुआ है (२.५११-१७)। इस संदर्भमें स्थायी भाव शोक है, बालंबन विभाव माता-पिता, उद्दीपन उनका विर विद्योग, रोदन आदि संचारी भाव हैं। इसी प्रकार शिचकुमारकी मुनिदर्शनके निमित्तसे पूर्व-भवका स्मरण होने पर, उसके सहना मूर्च्छित हो जानेसे, उसके अंत-पुरकी अवस्था (३७४-७) एवं माता-पिताकी अवस्थाका वर्णन (३.८१-४) भी करण रसात्मक है। सुप्रमत्त दर्शन एवं धर्मोद्देशको मुनकर जंबूको मंदारमें बँधाय हो गया और उसने माँके समल अपनों दीक्षा लेनेकी इच्छा प्रकट की। इस प्रसंगमें माँकी अवस्थाका वर्णन अत्यंत करण रस पूर्ण हुआ है (८७११-१४)। जंबूके दीक्षा लेनेके निश्चयको जानकर पश्यती आदि कन्याओंके पिताओं तथा स्वजनोंकी जैसी बहस्या हुई, उसका चित्रण (८.१०१-५); तथा एल और, प्रातःकाल होनेपर जंबूके दीक्षा लेनेकी प्रभावना एवं दुमरी और, वधुओंके प्रति आकृष्ट होनेको धोषा काया, इन बातेंद्वैदमें पटो हुई जंबूस्वामीकी नाकी अवस्था (९१४६-१०, ९१५-९-१५) और जंबूके दीक्षा लेनेपर उनके माता-पिता दोनोंकी दुःख अवस्थाका अत्यंत मर्मस्पर्शी चरण रस पूर्ण वर्णन पाया जाता है (९१८८-६)।

अद्भुत रस—ज० सा० च० के कुछ स्थल, जैसे भगवान्के धर्म-नरपणमें विद्युन्माला देवता लागमन

(२.३ २-४) एवं श्रेणिककी राज सभामें गगनगति विद्यावरका आकाश मार्गसे अकस्मात् प्रवेग (५.२.१-५), ये वर्णन अद्भुत रसके उदाहरण रूप रखे जा सकते हैं।

वात्सल्य रस—वात्सल्य या वत्सल रसके सर्वथमें साहित्याचार्योंमें पर्याप्त मतभेद है। भोजराज (११ श० ई० पूवार्द्ध) ने स्पष्टतः वात्सल्यको एक स्वतंत्र रस माना है। उद्भट (८-९ श० ई०) तथा रुद्रट (९ श० ई०) ने वात्सल्यको स्वतंत्र रस नामसे तो नहीं गिनाया, पर उनके 'प्रियस' भावकी मान्यता वात्सल्य रसकी स्वीकृतिका आभास देती है। मम्मट (१२ श० ई०) ने वात्सल्यको स्वतंत्र रस नहीं माना, पर साहित्यदर्पणकार विश्वनाथने उसे स्वतंत्र रसका स्थान दिया है। जं० सा० च० से ऐसा प्रतीत होता है कि वीर कवि भी संभवतः वात्सल्यको स्वतंत्र रस स्वीकार करते थे। जं० सा० च० २ ९ १९-२०; ६ ११ ९-११ ६-१२.१-२, ४, एवं ७ १३ ६-७के वर्णन वात्सल्य रससे ओत-प्रोत है। इन प्रसंगोंमें स्थायी भाव है स्नेह, आलवन है अग्रज भाई एवं अपने स्नेही संबंधीजन, उद्दीपन अपने इन स्नेहीजनोंके प्रति गुणानुराग; अनुभाव रोमांच आदि, एवं संचारी भाव है हृषीकेश। केरलमें रत्नशेखर विद्यावरको परास्त कर, उसके तथा मृगांक उसकी रानी व कन्या विलासवती एवं विद्यावर गगनगति आदिके साथ जंजूस्वामी कुहू-पर्वतके पास छावनीमें महाराज श्रेणिकसे आकर मिले। श्रेणिकने भरपूर वात्सल्य भावसे जंजूस्वामीका स्वागत किया (७ १३ ६-७)। यह प्रसंग वात्सल्य-रसका सांगोपांग उदाहरण है। इसमें वात्सल्य-रसके स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव एवं संचारी भाव सभीकी अभिव्यक्ति अत्यंत स्पष्टतासे हुई है।

शांत रस—प्राचीनकालके सभी प्रमुख संस्कृत-प्राकृत महाकाव्यों, नाटकों, व चरित्तोके समान जं० सा० च० की चरम-परिणति भृंगार, वीर आदि रसोंकी सरिताश्रोते होती हुई शांत रसके महासागरमें हुई है। इस दृष्टिसे विचार करनेपर हम देखते हैं कि आद्योपात संपूर्ण रचना शांतरससे ओत-प्रोत है, वीर सभस्त रसके पीछे कहीं दूर, कहीं सन्निकट नैपथ्यमें-से शांतरसको अव्यक्त मधुर ध्वनि मानो वार-वार पाठकके कर्णपटोपर आकर झंकात होती रहती है। अतः स्वाभाविक रीतिसे शांत रसात्मक वर्णन रचनाके आदिसे अंत तक व्याप्त है।

शांतरसका प्रथम सांगोपांग उदाहरण हमें इस संदर्भमें मिलता है कि सीधर्म नामक मुनि बर्द्धमान ग्राममें आये और उनका उपदेश सुनकर भवदत्तकी वैराग्य हो गया और उसने गुरुके पास दीक्षा ले ली (२७)। अग्रजके द्वारा दीक्षित होनेके चारह वर्ष उपरांत जब कामवासनासे पीड़ित भवदेव पुन अपने गाँव आया, तब वहाँ स्वयं उसकी पत्नीने उसे बोध दिया। वह प्रसंग शांतरसका अत्यंत मार्मिक उदाहरण है (२.१७-१९)। इसमें भवदेवाश्रित शांत रसकी अत्यंत सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। भवदेव १२ वर्षसे दीक्षित होकर तनसे योगी, पर मनसे भोगी था। नागवसूसे मिलन और चार्त्ता होनेपर उसने भवदेवकी वृत्तियोंको पहचान कर, उसे प्रतिबोध दिया। नागवसू-द्वारा निज रूप-योवनकी दुरवस्था एवं विनश्वरता भवदेवके वास्तविक शम (शांत-निकाम भाव) का कारण बनी। नागवसूकी उद्बोधक उक्तिश्रोते उपशम भावके उद्दीपनका कार्य किया। किसी मुनि या साधुके दर्शन उपदेश आदिने नहीं। १२ वर्षों तक मुनिसंघमें मुनि जीवनकी कठोर चर्चाका पालन करते रहकर, आचार्योंके दिन-रातके उपदेश-संगति एवं सहवास आदिका जिस भवदेवके ऊपर रचमात्र भी प्रभाव नहीं पडा था, और ये सब निमित्त जो कार्य करनेमें सर्वथा असमर्थ रहे थे, भवदेवके कामरागको शांत कर, उसके ब्रह्मोन्मुख शम-भाव या शांत-भावको जाग्रत करनेका वह महान् कार्य धर्म-साधनामें रज, सच्ची धर्मपत्नीकी तप-पूत, सत्यपूत वाणीने कुछ ही क्षणोंमें कर दिखाया। इस प्रसंगमें (२.९) स्थायी भाव वैराग्य; आलवन नागवसूका तप-कृश शरीर, उद्दीपन उसका सदुपदेश, रोमांच आदि अनुभाव तथा निर्वेद, म्लानि, लज्जा आदि संचारी भाव हैं।

आगे चलकर शिवकुमारकी वैराग्य (३८) जदूकी वैराग्य (८.७ ५-१०); बधुओंकी कामचेष्टाओंसे जंजूके शम-भावका और अधिक उद्दीपन (११), विशुचकरकी वैराग्य (१० १८ १-२) एवं विशुचकरका

अनित्य, अवधारण आदि १२ भावनाश्रेणी चिंतन (संवि ११ पूर्ण), ये सब प्रसंग पाठकोको शांत रसका हृदयावर्जक वर्णन कराते हैं ।

रसोके उपर्युक्त विवेचनसे हमारा ध्यान स्वयं इस तथ्यपर आकृष्ट होता है कि वीर कविते जं० सा० च०में सभी रसोकी योजना सफलतापूर्वक की है, जिनमें शृंगार, वीर एव शांत ये तीन रस प्रवाल हैं । किसी रसका अतिरेक भी किसी काव्य-कृतिको रस हीन आस्वादहीन बना देता है । कवि वीरकी इस रचनामें कही भी यह रसातिरेक नहीं दिखाई देता । यही कारण है कि जं० सा० च०का पाठक विविध रसोकी मदाकिनीमें अभिषिक्त होता हुआ स्वयमेव अपने संपूर्ण अहंको छोकर अपनी संपूर्ण आत्म-सत्ताको शांत रसके महासागरमें समर्पित होते हुए देखता है ।

रसाभास एवं भावाभास—रस-योजनाके साथ जं० सा० च०में रसाभास, भावाभास, भावोदय, भावशांति, भाव-संवि एव भावशब्दलताके भी कुछ प्रसंग-उपलब्ध होते हैं ।

रसाभास—जल-श्रीढाके प्रसंगमें कामिनियोके द्वारा निर्जिव जलमें सुभग नायकके समान रति भावका आरोप (४.१९ २०-२१) होनेसे अनौचित्य है । अतः शृंगारारसाभास है ।

विवाहोपरांत चारो वधुओके साथ जंबूस्वामी एकांत वासगृहमें पलंगपर बैठे । वधुओंने उन्हें वैराग्यसे विमुख कर, भोगोन्मुख करनेके उद्देश्यसे नाना कामचेंटाएँ करनी प्रारंभ की (८.१६.६-१५) । इस प्रसंगमें स्थायी, आलवन, उद्दोषन, विभाव, अनुभाव एवं संचारी भाव सभी कुछ है, परंतु नायकके वैराग्योन्मुख होनेसे यहाँ अनुभयनिष्ठ रति रूपी अनौचित्य है, अतः शृंगार रसाभास है । रसकी दृष्टिसे उपर्युक्त दोनो संदर्भ काव्य-दोषोके समकक्ष हैं । परंतु एकमें प्रकृतिका मानवीकरण और दूसरेमें अत्यंत कामोत्तेजक वातावरणमें नायकके चरित्रकी दृढताका धोतन होनेसे ये प्रसंग दोषके बदले काव्यके अलंकार बनकर अभिव्यक्त हुए हैं ।

भावाभास—जंबूस्वामीका दीक्षा लेनेका दृढ निश्चय जानकर भी पद्मश्री आदि चार कन्याओंने अपने अद्वितीय अनुपम रूप-सौंदर्य और काम-कला-विलासके द्वारा जंबूको अपने वशमें कर लेनेके विश्वाससे उसे एक दिन विवाह करके प्रातःकाल दीक्षा ले लेनेका प्रस्ताव किया । इस अवसरपर उन्होंने अपने पिताजीके समक्ष कामवासनापूर्ण उद्गार व्यक्त किये । (८.१२.१-१५) । इस संदर्भमें पितृजनोके समक्ष रति भावका इस प्रकारका प्रदर्शन सर्वथा अनुचित है ।

यहाँ उद्दोषन-विभाव, अनुभाव एवं संचारियोके अभावके कारण शृंगाररसका भी परिपाक नहीं हो पाया है, और पितृजनोके समक्ष यह सब कहलवाना निश्चित रूपसे रति-भावाभास है । आलंकारिक या चरित्र विकासकी दृष्टिसे भी इस प्रसंगका औचित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता ।

भावोदय—वनारसके राजाकी विरहिणी काम-पीडित रानीने चंग नामक सुंदर सुनार पुत्रको राजमार्गसे जाते देखा । उसे देख रानीका रतिभाव सहसा उद्दोषित हो उठा । उसी समय राजा युद्ध विजय कर लौट आया, अतः रानीका रति भाव रसावस्थाको प्राप्त नहीं कर सका । इसे भावोदयका दृष्टत माना जा सकता है; और उपनायक निष्ठ होनेसे इसमें भावाभास भी है ।

भावशांतिका—उत्कृष्ट उदाहरण है—नागवसूके वीरपरक मानिक कथनको सुनकर भवदेवके रति-का शांत होना (२१ १८-१९) ।

अपनी सारी कामोत्तेजक चेंटाओके उपरांत जंबूकुमारको सर्वथा निर्विकार देखकर वधुओके रति-भावकी शांति वीर दुःख एवं लज्जाका वीध (९ २.१-२) भी भाव-शांति एवं भावोदयका सुंदर दृष्टांत है ।

भावसंवि—इसी संदर्भमें जंबूस्वामीकी माँकी अवस्थाका चित्रण भाव-संधिका दृष्टांत है । जंबूस्वामी वासगृहके भीतर वधुओके साथ निर्विकार भावसे कथा सलाप करते हुए बैठे हैं । बाहर माँ व्यग्र है । पुत्रके प्रातःकाल दीक्षा लेनेकी प्रबल संभावनाके उद्बेगसे उसकी आँखोंमें नींद कहीं ? वह बार-बार घरके भीतर जाती, बाहर आती और कपाटोके छिद्रमें-से झाँककर देखती कि क्या कुमार अभी भी दृढ-प्रतिज्ञ है, अथवा वधुओको कुछ विद्या उपपर चल् पायो, क्या अभी भी वह मोक्ष-यास चाहता है कि उसके गलेमें प्रियशो-बाहुपाका पट गया (९ १४ ६-१२) ।

इस प्रसंगमें माँके हृदयकी परम निराशा प्रकट होनेपर भी उसमें आगाकी जो अतिशय, अव्यक्त शक्ति विद्यमान है, उससे इसे आशा-निराशा भावोंकी संघिका दृष्टात कहा जा सकता है।

भावशब्दलता—इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण १२ वर्षोंके उपरांत अवसर पाकर काम भोगकी इच्छासे मुनि भवदेवके घरकी ओर चलनेके प्रसंग (२.१५ ७—१७) में मिलता है। उस समयकी उसकी मानसिक अवस्था और अंतर्द्वंद्व भावशब्दलताका सुंदर उदाहरण है। इन प्रसंगमें एक ओर भवदेवकी प्रबल भोगामिलापा तथा दूसरी ओर लज्जा, आत्मग्लानि, अग्रजके गौरवके नष्ट होनेकी शंका, आत्मालोचन, पत्नीकी वर्तमान अवस्था, और १२ वर्षोंके पति-विहीन दीर्घकालके संवेगमें यह आशंका कि न जाने इस बीच उसका आचरण कैसा रहा होगा?, और इस दिग्बंदर मुनिके वेपमें नागवसू मुझे पहचानेगी भी या नहीं, यह सदेह, आदि अनेक संचारी भावोंकी एकत्र शब्दलताका यह अत्यंत सुंदर सटीक उदाहरण है।

भावयोजना—जं० सा० च० में भक्ति, प्रीति, प्रथम, रति एवं निवेदादि अनेक भावोंकी अभिव्यक्ति स्थान-स्थान-पर झुई है। काव्यका प्रारंभ मंगलाचरणके रूपमें देवता विषयक रति या भक्ति-भावके होता है (१. मं० १-१४)। बीच-बीचमें भी कई स्थलों (एवं ४.४ १०—१३ देव भक्ति; ८ ६ ४—१० गुरु भक्ति आदि) पर भक्ति-भावकी अभिव्यक्ति पायी जाती है। राजा श्रेणिक-द्वारा म० महावीरकी स्तुति (१.१८) देवविषयक रतिका सुंदर उदाहरण है।

पतिविषयक शुद्ध रति—कृष्ण रोगसे आक्रांत होकर भवदत्त-भवदेवके पिता आर्यवसूने जीवित ही अपनेकी अग्निकी समर्पित कर दिया। एकनिष्ठ परम-पतिव्रता और पति-सर्वस्व, पति-प्राणा उनकी माँ सोमशर्मा ने भी अपने पतिकी चित्तामें जीवित ही जलकर परलोकमें भी पत्तिका अनुगमन किया (२.५.४, ६, १५)। यह प्रसंग पतिविषयक शुद्ध रतिका एक श्रेष्ठ उदाहरण है। गिबकुमारके प्रति उसकी पलियोंके अनुरागका चित्रण भी इसीका एक और दृष्टांत है (३ ७.५—६)।

भ्रातृविषयक रति—भवदत्त और भवदेव दोनोंके रग-रगमें परस्परके प्रति-अनुराग मरा या, तथा उनमें शब्द और अर्थके समान अभिन्न, अखंड एवं अविच्छेद्य संवध था (२.५ ९), यह तथा आगेके दो और प्रसंग (२ ९ १९—२०, २.१०.९—१०) भ्रातृविषयक रतिके उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

अन्य भाव—अब तक चर्चित भावोंके अतिरिक्त जं० सा० च० में अन्य भी अनेक भावोंकी अभिव्यक्ति मिली है। उदाहरणार्थ—विस्मय (२ ३ २—३ एवं ३ ६.६—७), आशंका (२.१३ ४) अत्यंत करुणापूर्ण दोनता-विवशता (२ १३ ९); पतिविषयक निष्काम स्नेह (२ १९ ३); खेद (३.३.१६); करुणाजनक जुगुप्सा (३ ११ ३-४); सुंदर, युवा पलियोंके प्रति हृष्य पतिकी ईर्ष्या व शंका (३.११.५—११), पत्नियोंका क्षोभ व खेद (३ ११ १२-१३); देवभक्ति, श्रद्धा और दैन्य (३ १३.३-४); पश्चात्ताप (४ ३ ४-५), उपहास (५ ४ १२-१३), चित्तका उतावलापन (५ ५ १६-१७, ५ ७.१६-२७); उत्साह (५ ६ १६-१७) तथा वीरभाव पूर्ण गर्व (५ १२-२३-२५, ५ १३ १-८; ५.१४.१-५) आदि अनेक स्थायी एवं संचारी भावोंकी जं० सा० च० में आद्योपांत सुंदर रीतिसे योजना की गयी है।

(च) अलंकार-योजना

अनुसामिचरित्तमें प्रमुख रूपसे निम्नलिखित अलंकारोंका प्रयोग पाया जाता है :—अनुप्रास (१), यमक (२), श्लेष (३), उपमा (४), उत्प्रेक्षा (५), रूपक (६), निदर्शना (७), दृष्टांत (८), वक्रोक्ति (९), विभावना (१०), विरोधाभास (११), व्यतिरेक (१२), सदेह (१३), आतिमात् (१४), सहोक्ति (१५) एवं अतिशयोक्ति (१६)।

शब्दालंकारोंमें अनुप्रास और यमक अलंकारोंका प्रयोग पूरी रचनामें प्रारंभसे अंत तक हुआ है। मगधदेश (१.६ १-७) तथा पुंडरिकाणी नगरी (३ २ ४-९) के वर्णन इस दृष्टिसे विशेष उल्लेखनीय हैं। पादांत यमकोंमें शाब्दिक श्लेषके उदाहरण अत्यधिक संख्यामें उपलब्ध हैं।

अर्थालंकारोंमें उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपकोसे रचना आद्योपात विभूषित है। कुछ विशेष संदर्भ इस प्रकार हैं—

उपमा—नागन्मि फुरइ भुअणं एकं नकखत्तमिव गयणे । (१ मं० १०); विजयंतु जए कइणो जाण वाणी अइट्टुपुवत्थे । उज्जोइयवरणियला साहयवट्टि ज्व निव्वडइ (१ ६ ७-८) ।

मालोपमा—नीलकमलदल कोमलिए सामलिए नवजोव्वणलीला ललिए पत्तलिए (२ १५ ३) । अन्य संदर्भ : विघ्नाटवी वर्णन (५ ८ ३०-३५); भोजन वर्णन (८ १३ ९-१३, श्लेषगर्भित मालोपमा) । इन दोनों संदर्भोंमें एक ही उपमेयका विविध रीतिसे नाना उपमानों-द्वारा वर्णन किया गया है ।

उत्प्रेक्षा—डोल्लहरि व लग्गी कंठहें लग्गी वल्लहमुहचुं वणु करइ ।

धणरमणविडविणि का विनिर्विणि निहुअणकेलिहि अणुहरइ ।

(वसंत ऋतुमें मिथुनोकी उद्यान-क्रोडा ४ १६.११-१२)

अन्य प्रमुख संदर्भ हैं—कामिनिधोकी विह्वलता (४ ११ ४-५), नारी सौंदर्य वर्णन (४ १२ १५-१६; ४.१३.१-१६, तथा ४-१४ ७-८ (रूपक गर्भित उत्प्रेक्षा), मलयपवनका (उत्प्रेक्षाओकी निरंतर-शृंखलाओ द्वारा) वर्णन (४.१५ १-५, ७-१६); फूला पलाश (४ १५ १५-१६) अलकावली (५ २ १७), धूलिका उडना (६ ४ १०-११, ६ ५ १०.१० एवं ६ ६ १-२), सवाहन नगर (८ ३ ६-१३); वर्षा ऋतु एव वर्षा (९ ९ ६-१२); सध्या सूर्यास्त एवं रात्रि-आगमन और अधकार वर्णन, (८ १४ १०-२१); तथा चादनी (८ १५ ६-१४) । ये सब वर्णन उत्प्रेक्षालंकारके प्रयोगकी दृष्टिसे पठनीय है । इनके अतिरिक्त कामिनियोकी जल-क्रीडाका उत्प्रेक्षामाला सदृश शृंखलामें परोया हुआ वर्णन (४ १९.८-१७, २१-२२) भी अवश्य पठनीय है ।

मालोत्प्रेक्षा—मालोपमाके समान मालोत्प्रेक्षाके भी अनेक प्रयोग ज० छा० च० में प्राप्त होते हैं । जंबूसामीका दीक्षा लेनेका निश्चय जानकर पद्मश्री आदि चार वादत्त कन्याओके माता-पिता-स्वजनोकी अवस्थाका मर्मस्पर्शी वर्णन (८ १० १-५) मालोत्प्रेक्षाके प्रयोगका बहुत सुंदर उदाहरण है ।

फलोत्प्रेक्षा—मालोत्प्रेक्षाकी तरह फलोत्प्रेक्षाका प्रयोग भी दर्शनीय है । (४ १४ ३-६)

रूपक—काव्यमें रूपकालंकारका प्रयोग आद्योपात सख्यातीत परिमाणमें हुआ है । इसके कुछ छोटे-छोटे उदाहरण हैं—नहमणि (१ मं० ५), क्षाण्णिगि (१ १ ८) ससारसमुदुत्तारसेज (१ १ ४), भव्वयणकमल-कंदोठ वट्टु (१ १ ८) एव माणुसपत्तु, सम्मत्तनिवि, सिरकमलु, वयणसुहा, ससारतरणिणी, चरणजुयल-पंकयभसलु, जिणवरगरुड, विरहाणल, आदि ।

रूपकमाला—रूपककी तरह रूपकमालाके उदाहरण भी उपलब्ध हैं (३ ७ १२-१४) ।

निदर्शना—महाकवि कालिदासके अनुकरणपर कविका विनय प्रदर्शन (१ ३ ७-१०), नागवग्गुकी बोधप्रद वार्ता, (२-१८ ५-७) बालककी वृद्धि (४ ९ १-३), बालक (जंबूस्वामी) की कीर्ति (४ ९ ९-१०) एव जंबूस्वामी द्वारा रत्नदोसरको आह्वान (५ १४ १-३) आदि स्थलोंमें निदर्शनाके उदाहरण द्रष्टव्य हैं ।

दृष्टांत—कविके आत्मनिवेदनकी निम्न पंक्तिओमें इस अलंकारका सुंदर प्रयोग हुआ है :—

वट्टुजे कइ विरयइ एक्कगुणु अण्णेवट्टु पत्तंजिव्वट्ट निजणु ।

एवट्टु जे पाहाणु हेमु जणइ अण्णेवट्टु परिक्का तामु कुणइ । (१ २ ८-९)

वक्रोक्ति—वसंत महीनेमें मिथुनोकी उद्यान क्रीडाके अवसरपर जंबूस्वामी और किसी कामिनीके मध्य वक्रोक्ति पूर्ण मवादा वटा ही चित्तरूपक और मधुर है (४ १८ १-१३) ।

विभावना—जंबूस्वामीका जन्म हुआ तो कालिका न होनेपर भी आजादा निरञ्ज हो गया, वर्षा न होने पर भी पृथि नान और वसंत न होनेपर भी मंगूर्य यन्त्रगति स्वयं फूट उठी (४ ८.१०-१४) ।

भ० महावीरका समोशरण राजगृहके विपुलांचल पर्वतपर आया और वनमालीने राजा श्रेणिकको आकर समाचार दिया—‘महाराज, आज असमयमें ही वनस्पति सब फल-फूलोसे समृद्ध हो उठी है, तालाबोंमें तटो तक भर आया जल हिलोरें मार रहा है, बिना बोये ही खेत नाना प्रकारके पके धान्यसे भरपूर हो गये हैं और बिना दुहे ही गायें प्रचुर दूध क्षरण कर रही है (१.१३ ३-७) ।’ इन प्रसंगोंमें विभावना अलंकार का सुंदर प्रयोग हुआ है ।

विरोधाभास—विद्युच्चर चोरीके उद्देश्यसे कामलतावेश्याके घरसे वेश्यावाट छोडकर निकला । इस प्रसंगमें वेश्यावाटका वर्णन विरोधाभासका एक विशिष्ट उदाहरण है (१.१२ ७-८, १२) ।

व्यतिरेक—इस अलंकारके बहुत-से प्रयोग काव्यमें उपलब्ध हैं—जंबूस्वामीकी जीवन प्राप्ति (४ ९ ७-८) नारी सौंदर्यका वर्णन (४ १७ १९-२२) पुन. नारी सौंदर्य (५ २ २०-२१, ८.५ ५-६); रत्न-शेखरकी वीरता (५ ११-१६-१७) तथा जंबूस्वामीके त्याग संबंधी वर्णन (१० १.९) ।

संदेह—जलक्रीडाके समय तैरती हुई किसी कामिनीके मुखको देखकर एक भ्रमर संदेहमें पडा रहा कि यह मुख है या कमल (४.१९.९) इसी प्रकारके मंगलाचरणकी निम्न पंक्तियाँ शुद्ध संदेहालंकारके उदाहरण हैं :—

सो जयउ जस्स जम्माहिसेयपयपूरपंडुरिज्जंतो ।

जणियहिमसिहरिसंको कणयगिरी राइओ तइया ॥

भमिरभुअवेयमामियजोइसगणजणियरयणि-दिणसंकं ।

इय जयउ जस्स पुरओ पणच्चियं चारु सुरवइणा ॥ (१ मं० ३-६)

भ्रांतिमान—मृगाकराजाकी पुत्री और अपनी भागिनीया विलासवतीके सौंदर्यका संक्षिप्त वर्णन करते हुए गगनगति विधाधर कहता है—‘वह कन्या अपने विधाधरोके अपनी शुद्ध धवल दंतपंक्तिमें प्रतिबिंबित होती हुई कांतिको पहचान नहीं पाती । अतः उन्हें धवल बनानेके लिए बार-बार छीलती रहती है—न मुणइ रत्ताहर रंगगुणु जा छोल्लइ सुद्ध वि दंत पुणु (५ २ १८) ।

उद्यानक्रीडा करते समय किसी धूर्त नायकने अपनी भुग्धा नायिकाका प्रणयकोप दूर करनेके लिए कहा, ‘तउ मुहूहो जणियसयवत्तभंति आवति निहालहि भमरपंति ।’ (४.१७ ६)

सहोक्ति—चंद्रोदयका सहोक्त्यलंकारमय वर्णन—‘जालियाउ गयवइहिययहि सहुँ उइउ नहंगण मयलंछणु लहु ।’

अतिशयोक्ति—काव्य रचनाओमें अतिशयोक्ति एक सहज, सामान्य और सर्वाधिक प्रचलित अलंकार रहा है । वीर कविने भी जं० सा० च० में अनेक स्थलोपर प्रचुरतासे इस अलंकारका प्रयोग किया है । काव्यका आदि मंगलाचरण आद्योपात अतिशयोक्तिसे भरपूर है । इसके कुछ अन्य संक्षिप्त उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं :—

समोशरणमें स्थित महावीरके विपयमें एक पक्ति है :—

अलिउलकेसुव्मासियवरसिह दंतदित्तिधवलियजयमंदिर । (१ १७ ७)

नारी सौंदर्य—विहिं बाहहिं अबरंडणु चंगइ दुक्कर पुज्जइ वियडनियंवइ ।

मसिणोस्यहिं जगु जि वसि किज्जइ नहदित्तिए महियलु कवलिज्जइ । (२ १४.९-१०)

इसी प्रकार वीताशोक नगरीका अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन पठनीय है (३.४ ७-१०) ।

(छ) बिंब-योजना

काव्यालोचनमें बिंब-योजना शाब्दिक दृष्टिसे आधुनिक है । परंतु कल्पनाकी अपेक्षा किसी भी काव्य-सिद्धांतके समान प्राचीन है । बिंब-योजनाका अर्थ है कवि किसी वस्तुका मूख-शिल्प, या द्रव्यगत भौतिक वर्णन न करके उसका एक भाव-चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित करता है, जिसे ‘बिंब’ नामसे अभिहित किया जाता है ।

विंव दो प्रकारके होते हैं, (१) एक तो स्मृति-जन्य जो पूर्वकालिक अनुभूतिका पुनरुत्पाद मात्र होते हैं, जैसे अपने किसी पूर्व-मित्रकी साक्षात् चित्रवत् स्मृति, जो उसकी शाब्दिक भावमय प्रतिमा हमारे मनमें निमित्त कर देती है, अथवा किसी नायक-द्वारा अपनी प्रियतमा नायिका और उसके विविध अङ्ग एवं भाव-भंगिमाओकी तीव्र स्मृति । (२) दूसरे प्रकारके विंव पूर्वानुभूत नहीं होते । वे कवि यो साहित्यकार-की निज नवनिमित्त और मौलिक कृति होते हैं । महाकवि कालिदास कृत मेघदूत इनका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है । यह नूतन प्रतिमा निर्माण या विंव विधान-समस्त काव्य-कला संगीत और नवनिर्माणका मूलाधार है । भाषा और चिंतनके मूल उपादान विंव ही हैं ।^१ 'जंबूसामिचरिउ' में ऐसे अनेक वर्णन उपलब्ध हैं, जिन्हें विंव-योजनाके अंतर्गत रखा जा सकता है ।

(१) ज० सा० च० १११ में कविने राजा श्रेणिकका नख-शिख वर्णन न करके उसकी शूरवीरता एवं प्रचंड प्रताप आदिके वर्णन द्वारा उसका एक भावात्मक विंव खींचा है ।

(२) इसी प्रकार आगे चलकर राजा श्रेणिकके सुंदर, सौम्य, रमणियोंके हृदयहारी एवं बर्भ और न्याय-नीति परक रूपको गन्धोमें प्रकट कर उसके कोमल एवं उदार व्यक्तित्वको प्रकट किया गया है ।

(३) इसी प्रकार केरलराज मृगाकके अत्रु-राजा विद्याधर रत्नगेखरके प्रचंड तेजस्वी, कालके समान भयानक, महान् विकाशकारी एव अपराजेय व्यक्तित्वका भी यथार्थ विंव पाठकोके समक्ष खींचा गया है (५४.२०-२१, तथा ५-५.१-५) ।

(४) भवदेवने अग्रजकी लाज रखनेके लिए दीक्षा ले तो ली, पर क्षण-भरके लिए भी प्रियतमा नागवसूका रूप उसके मानसपटले ओझल नहीं हुआ, और वह निरंतर नागवसूका जो भावात्मक विंव उसके हृदयमें बस गया था, उसीका स्मरण करता रहा (२.१४ ६-११) ।

(५) भवदेवके हृदयपर बने हुए नागवसूके एक और विंवका वर्णन (२.१५ १-२) ।

(६) 'वारह वर्षोंकी दीर्घ-अवधिमें मेरे वियोगमें नागवसूकी अवस्था कैसी हो गयी होगी' भवदेवकी इस चिंताका विंवात्मक वर्णन (२.१५ ३-४) ।

(७) श्रेष्ठिकी चार-पत्नियोंका अत्यंत सुंदर विंवमय वर्णन, कुल दो पंक्तियोंमें (३.१० १४-१५) ।

(८) गर्भवती मांकी अवस्था दिनोदिन कैसी होती जाती है, इसका साविशय यथार्थ विंव (४.७.३-९) ।

(९) द्वितीयाके चंद्रमा, चलते-चलते महानदीके विस्तार, और पिंगल शास्त्रके फैलाव और व्याकरण-की व्याख्याओके समान दिन-प्रतिदिन बालक जंबूस्वामीके बढनेका विंवात्मक वर्णन । (४.९ १-३)

(१०) 'जंबूस्वामीके युवावस्थाके प्राप्त होनेके साथ-साथ उनके रूपगुणोका यशोगान हर गली-कूचे, घर और बाहर, एवं चौक-चौरस्तेपर सर्वत्र गाया जाने लगा । उनके धवल-यशसे सारा-भुवन ऐसा धवलित हो उठा मानो पूर्ण चंद्रमाके ज्योत्स्ना रससे लीप दिया गया हो । सारे हाथो ऐरावतके समान, सब नदियाँ गंगाके समान, सभी पर्वत हिमालयके समान, सबके सब पक्षी हंसोके समान और सारी मणियाँ (श्वेत) मणियोंके समान दिखलायी पडने लगी', बालककी यशोवृद्धिका यह मनोहारी विंवात्मक वर्णन (४.१०.३-७) ।

(११) जंबूस्वामीको देखकर पुर-गारियोंकी काम-विह्वल अवस्थाका विंव (४.११ १-१३)

(१२) इसी प्रकार जंबूस्वामीकी चार भावी बहुओं पद्मश्री, कनकश्री, विनयश्री एवं रूपश्रीका नख-शिख वर्णन विषयगत होते हुए भी उनके वर्ण्य अंगोका कोई अपूर्व विंव पाठकोके हृदय-पटलपर चित्रित करता प्रतीत होता है (ज० सा० च० ४.१४.१-८) ।

(१३) केरल विजयसे लीटनेके उपरांत जंजूस्वामीके साथ अपनी कन्याओंका विवाह करनेकी उत्साह एवं आतुरता पूर्वक प्रतीक्षा करते हुए श्रेष्ठियोंने जब समाचारवाहकसे जंजूस्वामीके दोहा लेनेका निश्चय जाना, तो उनके हृदय करीतसे विदीर्ण किये-जैसे, अथवा विप-भ्रमणसे मूर्च्छित-जैसे हो गये। सब लोग इस प्रकार अधोमुख होकर बैठ रहे, जैसे इद्रके वज्रायुधसे भग्न किये हुए पर्वत, गरुडसे क्षपेटा हुआ सर्पकुण्ड, सिंहके द्वारा विदीर्ण कुंभस्थल हरित-समूह अथवा तीक्ष्ण-परशुके द्वारा छिन की हुई गावाओवाला वृक्ष हो जाता है। यह वर्णन भी विपयगत है, तथापि इतना अधिक भावमय है कि वह पाठकके हृदयपर ऐसा गहरा विप निर्माण करता है, जिससे पाठक स्वतः उन श्रेष्ठियोंके साथ एकाकार हो जाता है, और वह सहानुभूतिकी रसात्मक अवस्थाको प्राप्त हो जाता है (८१०-१-५)। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जं० सा० च० की रचनामें वीर कविते विप-योजनामें भी अद्भुत सफलता प्राप्त की है।

(ज) छंद-योजना

जंजूसामिचरिउकी रचना प्रमूख रूपसे १५ मात्रिक अलिल्लह एवं पज्जटिका छंदोंमें हुई है। इनके उपरांत १५ मात्रिक पारणक-अथवा विसिलोव छंदका स्थान है। इनके साथ बीच-बीचमें अन्य छंदोंका भी प्रयोग हुआ है। अविकासतया वीर कविते समवृत्त मात्रिक छंदोका उपयोग किया है। वाणिक छंदोंमें कुल पाँच समवृत्त छंदोका प्रयोग मिलता है। विपमवृत्त मात्रिक छंदोंमें गाथा छंदके विविध प्रकार, दोहा, रत्नमालिका, वस्तु एवं मणिगेखर केवल ये पाँच छंद पाये जाते हैं। पाँच स्थलोपर दंडक-छंद भी उपलब्ध होता है। काव्यमें प्रयुक्त छंदोका मात्रा तथा वर्णोंकी संख्यानुसार पहले समवृत्त, फिर विपमवृत्त, इस क्रमसे यहाँ विरलेपण किया जा रहा है :-

समवृत्त : मात्रिक

१. करिसकरभुजा ८ मात्रिक अंत ल ल ७-१०

(क) उदा०—विहडफफडु अरि करिखंबोवरि।
कडिडजु विसहड थाहर न लहड। (७-१०-२०-११)
अपवाद : (पंक्ति ५, १६, १७ में अंत ग ग)

(ख) ८ मात्रिक अंत ग ग २-९

उदा०—ता भवएओ कयसंखेओ।
विणयविमीसो पणवियसीसो।
घोसिरवत्थो जोडियहत्थो।
सुघणसहाओ वाहिरि आओ। (२९ १५-१८)

अपवाद . पंक्ति १, ४, ६, १२ अंत ल ग।

२. दीपक १० मात्रिक अंत ग ल ४ २२

उदा०—संतेण ता मुक्कु वसि होवि पुणु थक्कु।
जो नट्टु समरिडु पडिमिलिउ जणविट्टु। (४-२२-२३-२४)
अपवाद . (पंक्ति १४, १८, १९, २१ व २२ अंत ल ल)

३. (?) १० मात्रिक त्रिपदी अंत खीण (-पं-) १०-१९

उदा०—एम नवणवर्ण फुल्लफुल्लदलवर्ण वदियुवंतवो।
खंखेसपण्णयं मुणिगणाइण्णयं आसमं पत्तवो। (१०-१९ १५-१६)

४. खड्यं १३ मात्रिक अंत रगण (-पं-) ८-१-२२

(सधि ८, कडवक २ से प्रत्येक कडवकका आदि छंद)।

उदा०—गृह तउ दंसणकारणं लहिवि वियप्यह मे मणं ।

सहै तुम्हेहिं समुच्चयं चिरभवि कहि मि परिच्चयं । (८.२ १-२)

५. पारणक था विसिलोय (पद्मडिया) १५ मात्रिक अंत नमण (uuu)

१, २, ४, १२; २ ६—८, १०, १६—१८, २०; ३ १, ३, ७, ९, ५ २, ४; ८. ३—
४, ९; ९. ३, ६—७, १८, १० १६.

उदा०—रसमार्वाहिं रंजियविससयणु सो मुयवि सयभु अण्णु कवणु ।

सो चय गव्बु जइ नउ करइ तहा कज्ज पवणु तिहुयणु घरइ । (१ २.१२-१३)

अपवाद : ८ ९ ९—११ अंत जगण ।

६. (?) १५ मात्रिक अंत रगण (—u—) ४ ८.१२—१५

उदा०—अयालरुक्खसंतई तई पहुल्लिया वणासई सई ।

सुवण्णविट्ठोमासुरासुरा मुजति तत्थ सामुरासुरा । (४ ८.१४-१५)

७. पद्मडिया (पञ्चटिका) १६ मात्रिक अंत जगण (u—u)

१. ८, १४, २, ५, १३; २. ११; ४ ११-१२, १५, १७-२०, ५. ३, ७-८ (२४—२९, ३१—३६),
११-१२, ६ २, ४—५, ८, ११—१३, ७. ७—९, १२, ८. ८, १०; ९. २, ९, १४, १०. १. ३,
६-८, १०, १२-१३, १७, २१, २४-२५

उदा०—सरलंगुलि उम्मिवि जंपिएहिं पयडेइ व रिद्धिक्कुंविएहि ।

देउलंहिं विहूसिय सहहिं गाम सग व अवहण्ण विचित्तवाम । (१.८ ७-८)

अपवाद : उपर्युक्त अक्षिकाश कडवकोमें एक-एक पंक्ति व किन्हीं-किन्हींमें २, ३ या ४ पंक्तियोंमें अंतमें सर्व लघु नमण (uuu) पाया जाता है ।

८. अलिल्लह १६ मात्रिक अंत ल ल १.६ (१५-२३), ७, १०—११, १३, १७, २. २, ४, १३—१५, ३. २, ६, ८, १२—१४; ४. १-४, १०, १३—१४; ५. १३; ६. १, १, ३, ९, १४, ७. १—३, ११, १३; ८. २, ७, ११—१६; ९. १, ४—५, ८, १०—१३, १५, १०. २, ४-५, ११, १४-१५, २०, २२-२३; ११ १-१५, (पूर्णाक्षि) ।

उदा०—जलगयकुंमथोरथणहारउ फेगावलिसोहियसियहारउ ।

उहयकूलद्रुमनियसियवसणउ जलखलहलरवसज्जिय रसणउ । (१ ६ २२-२३)

अपवाद : अलिल्लहके अक्षिकाश कडवकोमें एक-एक व किसी किसीमें २, ३, पंक्तियोंमें अंतमें दो गुरु (ग ग) पाये जाते हैं ।

९. सिंहावलोक १६ मात्रिक अंत मगण (u u-) ३ ५, ६. ६; ९ १६

उदा०—विधंति जोह जलहरसरिसा वावल्लमल्लकण्णियवरिसा ।

फारक्क परोप्पर ओवडिया कोताउह कोतकरहिं भिडिया । (६ ६ ७-८)

१०. त्रोटनक १६ मात्रिक अंत ल ग १ ५; ४ ७, ८. ६

उदा०—पंचमिहं वसंतं पक्खं धवले रोहिणिठिण्ण मयल्लणं विमलै ।

पच्चूर्स पसुय सल्लखणउ कुलमंगलु जयवल्लहू तणउ । (४ ७.१०-११)

११. पादाकुलक १६ मात्रिक (क) अंत ग ल १.१; १ ३, २ १

उदा०—वरकमलालिगियचासमुत्ति रयणत्तयसाहियपरममुत्ति ।

तड्लोयसामि-सममित्तसत्तु वयणसुहासासियसयलसत्तु । (१ १ ९-१०)

अपवाद : १.१ ७, १ ३ ३; २ १.६, ७, १३ पंक्तियोंमें अंत ल ल ।

(ख) अंत ग ग ४.६; ८.५

उदा०—दिट्टे जलणे जालइ कम्मं सालीछेत्ते लच्छीहम्मं ।
सरवरदंसणे रयणाहारो उवहिण्ण भवसमुद्दगयपारो । (४.६.१२-१३)

अपवाद : ४.६.९ अंत ल ग
(ग) अंत × १.१६; २.११; ३.१०; ४.९; ५.१०

उदा०—बहुकालेण थिराण्ण सइत्तिण्ण तिहुअणभमि गमु सज्जिज कितिण्ण ।
नरसंकमणपरंपरचवलण्ण किच्च वीसामयामु थिच्च कमलण्ण ।

१२. उर्वशी २० मात्रिक अंत राण (-u-) ३.४; ५.६, ९; ७.४

उदा०—जम्मदिवसम्मि पुत्तस्स बहुपरियणो चक्कवट्टी-कयाणंदवद्दावणो ।
नियवि पुत्ताणं गहिरसरवाइणा सिवकुमारहिहाणं कयं राइणा । (३.४.३-४)
अपवाद : पंक्ति ५.६.८ अंत सगण (u u-) ।

१३. सारीय २० मात्रिक अंत ग ल ५.१४; १०.१८

उदा०—तो महितलपंतविज्जाहरिदेण उक्खित्तहत्थेण णं वणकरिदेण ।
नवनिसियपहरणफडाडोयनाएण पंचमुद्दगुंजारसन्निहनिनाएण (५.१४.६-७)
अपवाद : ५.१४.१९ व १०.१८.९ पंक्तियोमं अंत ल ल ।

१४. सग्गिणी (सन्निवणी) २० मात्रिक अंत ल ग १.९, १५; ४.१६

उदा०—कसणमणिल्लंडच्चिच्चइयवरणीयलं सप्पसंकाइचलवलयिकिरणुज्जलं ।
पर्याहिं चंपेवि आहणइ जा किर थिरं धुणइ कुंचइय-चच्चूमऊरो सिरं ।
सग्गिणीनामच्छंदो ।

१५. मदनावतार २० मात्रिक अंत यगण (-u-) १.१८; २.१९; ६.७; १०.९, २६

उदा०—सुमं देव सव्वण्हु लच्छीविसालो अहं वण्णिऊणं न सक्केमि वालो ।
समुज्जोइयासोह वा तेयपूरो न पुज्जिज्जए किं पईवेण सूरो । (१.१८.१-२)

१६. ? २० मात्रिक अंत × ६.१०

उदा०—परिसम्मि दुद्धरम्मि सीसणे रणे गस्यनाय-दिण्णघाय-सुट्टपहरणे ।
सुहडसंड-वाहूदंडमुंडमंडिरे लुणियटक-अणियसंक-वाहूहिडिरे (६.१०.१-२)

समवृत्त : वाणिक

१७. त्रिपदी शंखनारी (या सोमराजी) ६ + ६ + ६ वर्ण गणः य य + य य + य य ४.५

उदा०—नमसेवि वीरं महामेखीरं तिलोयगथक्कं ।
विलीणासुहाणं जणंभोरुहाणं पवोहिकअक्कं । (४.५.१-२)

१८. समानिका ८ + ८ वर्ण गण र ज ग ल + र ज ग ल ९.१७

उदा०—मे कणिट्ठु भाइ एककु मंडलंतरम्मि थक्कु ।
वच्छरेसु आउ अज्जु जाणिऊण तुज्ज कज्जु । (९.१७.८-९)

१९. भुजंगप्रयात १२ + १२ वर्ण गण य य य थ + य य य थ ४.२१.१३-१७, ५.५

उदा०—तवो पेल्लियं क्षत्ति जाणेण जाणं गइदेण अण्णं गइदं सदाणं ।
सुरंगेण मग्गम्मि तुंगं सुरंगं भुयंगं भुयंगेण वेसासु रंगं । (४.२१.१३-१४)

२०. ? १४ + १४ वर्ण गण ज र ज र ल ग + ज र ज र ल ग २.३

उदा०—इमं कहंत्तरं जिणेतरे कहंत्तए नरामरे विसुद्धमावणं वहंत्तए ।
तवो नियच्छियं नहंगणाउ एंतयं फुरंततेयवारिपूरियावियंत्तयं । (२.३.१-२)

२१. धवला अथवा दिनमणि १९ + १९ वर्ण गण ६ × न गण + ग ७.५

उदा०—उह्यवलमिलणपडिबुहियजलयरवलं ।
 समय-तडफिडवि झलझलइ जलनिहिजलं ।
 तुरय-करि-सुहड-रह-फुरियरइपहरणं ।
 गिलइ तिहुवणु व कलयलण पुणरवि रणं (७५.११-१४)

विषमवृत्त : मात्रिक .

२२ गाथा (क) गार्ह (उपगीति) : मात्राएँ १२, + १५; १२ + १५ प्रथम, तृतीय यतिर्यां शब्दके बीच, १ १ ५-६ तथा संधिके प्रत्येक कडवकका घत्ता ।

उदा०—मयरद्वयनचु नडंतिड जंबुकुमारें भेलिलयड ।
 बहुवाउ ताउ ण दिट्टुड कट्टमयउ वाउल्लियउ ॥ (११५-६)
 (ख) ? मात्राएँ १२ + १६; १२ + १४ प्रथ० १३-१४

उदा०—जस्स य पसणवयणा लहुणो सुमइ सहोयरा तिणिण ।
 सीहल्ल-लमखणका जसइ नामेत्ति विक्खाया ॥

(ग) पथ्या : मात्राएँ १२ + १८, १२ + १५ १ मं० ९-१०, १६.१-८;
 १.११.१५—१८, ४ १४.३-४, ७-८, ५ १ १-४, ७ १.५-६, ८.१.९-१०;
 प्रथ० १-४, ११-१२, १५-१८

उदा०—सो जयउ महावीरो ज्ञाणानलहुणियरइसुहो जस्स ।

नाणमि फुरइ भुअणं एवकं नवखत्तमिव गयणे ॥ (१. म० ९-१०)

(घ) परपथ्या (१) . मात्राएँ १२ + १८, १२ + १५ प्रथम चरणकी यति शब्दके मध्य १ मं० ७-८, १.६-९-१०, १ ११.१३-१४, ३.१ १-४, ७ ४ ४-७;
 ७ ६ १६-१७, २२-२५; १० १ १—२, प्रथ० ५-१०

उदा०—जाणं समगसदोहज्जेणुउ रमइ मइफडवकम्मि ।

ताणं पि हु उवरिल्ला कस्स व बुद्धी परिफुरइ ॥ (१६९-१०)

परपथ्या (२) . मात्राएँ १२ + १८, १२ + १५ तृतीय चरणकी यति शब्दके बीच

उदा०—मा वणुउ असमत्थो धारेउ सव्वकव्वरसपूरं ।

नियसत्तिह्वसमहियरसकणो द्वाउ तुण्हवको ॥ (८१५-६)

(ङ) विपुला मात्राएँ १२ + १८, १२ + १५ प्रथम, तृतीय चरणकी यति पद या शब्दके मध्य १ मं० ११-१२, ४ १४ १-२, ७ ६ २८-२९ ।

उदा०—रइविप्पकोयसतत्तमयणसयणं व कुसुमसवलिं ।

धारंति ताउ विट्टुमहीरथरइवतुर अहर ॥ (४ १४ १-२)

(च) उग्गाहा (उग्गाथा या गीति) (१) : मात्राएँ १२ + १८, १२ + १८,
 ७ १ ३-४, ८ १ १-४

उदा०—अत्थानुह्वभावो हियए पडिफुरइ जस्स वरफइणी ।

अत्थं फुडु गिरइ निरा ललियववत्तेम्मिएहि तम्म नयो ॥ (७ १ ३-४)

उग्गाहा (२) मात्राएँ १२ + १८; १२ + १८ प्रथम चरणकी यति पदके बीच १. मं १-४

उदा०—विजवंतु वीरचरणगवपिए मंदरम्मि घरहरिए ।

वन्नुचउ तंतोए मुतरणिलगसविट्टुं नारा ॥ (१ मं० १-२)

उग्गाहा (३) मात्राएँ १२ + १८, १२ + १८ नृतीय चरणकी यति पदके बीच

उदा०—जयउ सिरिपासणाहो रेहइ जस्संगनीलिमामिन्नो ।

फणिणो तल्लिहियनवघणो व्व मणिगन्निमणो फणकडप्पो ॥

उग्गाहा (४) मात्राएँ १२ + १८; १२ + १८ प्रथम, तृतीय चरणोको यतियाँ पदोके
वीच १. मं० ५-६; १ ११.९-१२

उदा०—चंडभुअदंडलंडियपयंडमंडलियमंडलोचिसडे ।

घाराखंडणभोय व्व जयसिरिवसइ जस्स खग्गे ॥ (१.११.९-१०)

(छ) मात्राएँ १२ + १८; १२ + १६

(१) यति सामान्य ४.१ १-२; ७ ६.२०-२१

उदा०—घवलेण तेण विसमे धुयकंवरडंतकसरमुवकभरो ।

लीलाप्र कड्ढिओ तह जह फुट्टइ कुसामिणो हिययं ॥ (७.६.२०-२१)

(२) प्रथम चरणको यति पदके वीच ४.१४.५-६

उदा०—चलणच्छविसामफलाहिलासिकमलेहिँ सूरकरसहणं ।

चिज्जइ तवं व सलिले निययं घित्तूण गलपमाणम्मि ॥

(ज) मात्राएँ १४ + ११, १२ + १५ ७.१.१-२

उदा०—चिरकइक्वामयमुहाण रुडभंगरसाणं ।

सुयणाण मए वि कयं अल्लयकसरक्कउक्कव्वं ॥

(झ) मात्राएँ १६ + १२, १६ + १२ ६.१.३-६

उदा०—हृत्ये चाओ चरणपणमणं साहुसीलाण सीसे ।

सच्चावाणो वयणकमलए वच्छे सच्छापविस्ती ॥ (६.१.३-४)

(ञ) मात्राएँ १८ + १२; १२ + १५ ६-१ १-२,

उदा०—देंत दरिइ परवसणहुम्मणं सरसकन्नसव्वस्सं ।

कइवीरसरिसपुरिसं घरणि घरंती कयत्थासि ॥

२३. दोहउ : मात्राएँ १३ + ११; १३ + ११ ४.१४.९-१०; ७ ६.३०-३१

उदा०—जाणमि एककुजि विहिं घडइ सयलु वि जगु सामण्णु ।

जे पुणु आयउ निम्मविउ को वि पयावइ अण्णु ॥ (४.१४.९-१०)

२४. रत्तमालिका (चतुष्पदी) : मात्राएँ १४ + ६; १४ + ६ प्रत्येक पदके अंतमें सगण (u u-)

उदा०—नीलकमलदलकोमलिए सामलिए नवजोव्वणलीलालिए पत्तलिए ।

रुवरिद्धिमणहारिणिए मारिणिए हा मइँ विणु मयणं नडिए मुद्धिए ॥

(२ १५.३-४)

२५. वस्तु : मात्राएँ १५ + २५ + २७ + दोहा ५ १ ७-११ तथा सविके प्रत्येक कडवकका आदि छंद

उदा०—ताम राए दिण्णु अत्थाणु

सिहासणु विहिं मि ठिउ एककु पासि कामिणि जणावलि ।

पज्जलियमणिमउडसिर पुणु निविट्टु मडलियमडलि ।

पुणु सामत महंत थिय सेणिउ इयराउत्त ।

मडयड थक्क विणोयकर नरनाणाविहवुत्त ॥ (५ १ ७-११)

२६. मणिशेखर : मात्राएँ २२ + १० दोनो पदोंमें अत रगण (-u-) ५ ८ ६-२३

उदा०—कहिं मि महिपडियतरुपणसछन्नया संठिया पन्नया ।

कहिं मि फणिमुक्कफुक्कारविससामला जलिय दावानला । (५-८.२२-२३)

२७. मालागाहो : मात्राएँ ४० + ३० + २६

१४

उदा०—नहशुलिसादलियमायंगतुंगकुंगयलयकीलालकित्तमुत्ताहलोह—

धिप्फुरियकविलवेसारकलावघोलंतकंधरहेमा ।

रजंति ताम सीहा जाम न सरहं पलोयति ॥ (७ ४ १-३)

२८. दंडक : ४.८.१-११; ४.२१.१-१२; ५.१.१२—२९; ७.६.१-१५; ९ १९

उदा०—भर्लनियनिरांतेण तरुणारणदित्तातेण बालेण पसरेण वा तेण सूयाहरे दिण्णदीवोहदित्ती-
निहिंत्ता सुदूरे किया निप्पहा । विद्धिबद्धावणावंतलोएहिं वज्जंतपहुपहहरतरडसर-
मदवहुमदुलुद्दामकलवेणुवोणाणुणीसालकंसालतालानुसारेण आणददरमत्तपुम्मंतवर-
लच्छिनच्चततग्णीमहाथट्टु सघट्टुट्टुंतआहरणमणिमडिया चरुण्णहा ।

(घ) ध्रुवक एवं घत्ता

संघि	कडवकोके आदिमे ध्रुवक-प्रकार	कडवकोके अतमें घत्ता-प्रकार
१.	चतुष्पदी १५ + १२ (केवल कडवक १ के आदिमें)	चतुष्पदी १५ + १२
२.	चतुष्पदी १८ + १३ (केवल कडवक १ के आदिमें)	चतुष्पदी १८ + १३
३.	दुवर्द्ध १६ + १२ (१.७ - ८) (प्रत्येक कडवकके आदिमें)	पट्पदी ६ + ८ + १३
४.	पट्पदी १० + ८ + १३ (१.३ - ४) (केवल कडवक १ के आदिमें)	पट्पदी १० + ८ + १३
५.	वस्तु (१.७ - ११) (प्रत्येक कडवकके आदिमें)	पट्पदी १२ + ८ + १२
६.	पट्पदी ९ + ७ + १४ (१.७ - ८) (केवल कडवक १ के आदिमें)	पट्पदी ९ + ७ + १४ (कडवक १ को पट्पदीमें १० + ८ + १४ माराएँ है ।)
७.	पट्पदी ९ + ७ + १४ (१.७ - ८) (केवल कडवक १ के आदिमें)	पट्पदी ९ + ७ + १४
८.	खडयं १३ + ११ (२ से १६ प्रत्येक कडवकके आदिमें)	पट्पदी १३ + ७ + १४
९.	चतुष्पदी १४ + १३ (१.५ - ६) (केवल कडवक १ के आदिमें)	चतुष्पदी १४ + १३
१०.	सम-चतुष्पदी १५ + १५ (१.५ - ६) (केवल कडवक १ के आदिमें)	सम-चतुष्पदी १५ + १५
११.	चतुष्पदी १३ + १६ (१.३ - ४) (केवल कडवक १ के आदिमें)	चतुष्पदी १३ + १६

पाठक्रमानुसार छंद-योजना

संघि

१. १,३,१६ पादाकुलक (११); २,४,१२ पारणक (५), ५ त्रोटनक (१०); ६,७,१०-११,१३,
१७ अलिल्लह (८); ८,१४ पद्धडिया (७), ९,१५ सनिगणी (१४), १८ मदानात्तार (१५) ।

२. १,११ पादाकुलक (११); २,४,१३-१५ अलिल्लह (८); ३ : १४ वर्णिक (ज रं ज र ल ग) छंद (२०); ५,१२ पदड्विया (७); ६-८,१०,१६-१८,२० पारणक (५), ९ करिमकरभुजा (१); १९ मदनावतार (१५) ।
३. १,३,७,९ पारणक (५); २,६,८,१२-१४ अलिल्लह (८); ४ उर्वशी (१२); ५ सिंहावलोक (९); १० पादाकुलक (११); ११ पदड्विया (७) ।
४. १-४,१०,१३-१४ अलिल्लह (८); ५ त्रिपदी खंखनारी (१७); ६,९ पादाकुलक (११); ७ त्रोटनक (१०); ८ १-११ दंडक (२८); ८ १२-१५ : १५ मात्रिक (अंत रगण) छंद (६); ११-१२,१५,१७-२० पदड्विया (७); १६ सगिणी (१४); २१.१-१२ दंडक (२८); २१.१३-१७ भुजंगप्रयात (१९); २२ दीपक (२) ।
५. १.१२-२९, दंडक (२८), २,४ पारणक (५), ३,७,८(२४-२९,३१-३६),११,१२ पदड्विया (७); ५ भुजंगप्रयात (१९); ६,९ उर्वशी (१२); ८-६-२३ मणिनेखर (२६); १० पादाकुलक (११); १३ अलिल्लह (८); १४ सारीय (१३) ।
६. १,३,९,१४ अलिल्लह (८); २,४,५,८,११-१३ पदड्विया (७); ६ सिंहावलोक (९); ७ मदनावतार (१५), १० : २० मात्रिक (अंत ×) छंद (१६) ।
७. १-३,११,१३ अलिल्लह (८); ४.१-३ मालागाहो (२७); ४ उर्वशी (१२), ५ बबला या दिनमणि (२१), ६.१-१५ दंडक (२८), ७-९,१२ पदड्विया (७), १० करिमकरभुजा (१) ।
८. २,७,११-१६ अलिल्लह (८), ३,४,९ पारणक (५); ५ पादाकुलक (११), ६ त्रोटनक (१०); ८,१० पदड्विया (७) ।
९. १,४-५,८,१०-१३,१५ अलिल्लह (८); २,९,१४ पदड्विया (७); ३,६,७,१८ पारणक (५) १६ सिंहावलोक (९); १७ समानिका (१८); १९ दंडक (२८) ।
१०. १,३,६-८,१०,१२-१३,१७,२१,२४-२५ पदड्विया (७); २,४-५,११,१४-१५,२०,२२-२३ अलिल्लह (८), ९,२६ मदनावतार (१५), १६ पारणक (५); १८ सारीय (१३); १९ : १० मात्रिक (अंत रगण) त्रिपदी (३) ।
११. १-१५ अलिल्लह (८) ।

७. 'जंबूसामिचरित' की गुण और रीति युक्तता

(माधुर्य, आज, प्रसाद); रचनाशैली (वैदर्भी, पांचाली, गौड़ी, लाटी) एवं सुभाषित और लोकोक्तियाँ

साहित्य शास्त्रमें गुणके प्रथम प्रस्तुत कर्ता आचार्य भरत मुनि (४ श० ई०) ने दोषोके विपर्ययको ही गुण माना है (नाट्य १७.९५), जिनमें कुछ गुण तो दोषोके अभाव रूप हैं, पर अधिकांश भावात्मक गुण हैं । दंडी (७ श० ई० काव्या० २.३) एवं गुणोके प्रतिष्ठाता आचार्य वामन (९ वीं शतीका मध्य काव्या० ३,१,१) के अनुसार गुण काव्यको शोभा प्रदान करनेवाले तत्त्व हैं । तथा ध्वनिसिद्धांतके प्रवर्तक आचार्य आनंदवर्द्धन (९ श० ई०) एवं उनके अनुवर्त्ता आचार्य मम्मट (११ श० ई०) ने गुणोका स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार न कर उन्हें रसाश्रित माना है, और परवर्ती विश्वनाथ (१४ श० ई० पूर्वार्द्ध) आदि आचार्योंने इन्हीका अनुकरण किया है । इस प्रकार काव्यको शोभाको संपादित करनेवाले या काव्यकी आत्माको प्रकाशित करनेवाले तत्त्व या विशेषताएँ गुण हैं । ये गुण शब्द और अर्थके धर्म हैं और धर्म-संबन्धन, शब्दयोजना, शब्दचमत्कार, शब्दप्रभाव तथा अर्थकी दीप्तिपर आश्रित हैं ।^१

गुणोंकी संख्याके संबंधमें भी विद्वानोंमें मतभेद है। आचार्य भरतने (१) श्लेष (२) प्रसाद (३) समता (४) समाधि (५) माधुर्य (६) ओज (७) पदवीकुमार्य (८) अर्थ व्यक्ति (९) उदारता और (१०) कांति, इन प्रसिद्ध दस गुणोंको स्वीकार किया; अग्निपुराणमें १८; एव भोजने २४, तथा प्रत्येकके बाह्य आस्थंतेर और वैशेषिक तीन-तीन भेद, इस प्रकार यह संख्या बढ़कर ७२ तक जा पहुँची। अंततः आनंद-वर्द्धन आचार्यने रसके धर्मरूपमें गुणको मानकर, चित्तकी तीन अवस्थाओं द्रुति, दीप्ति और व्यापकत्वके आधारपर केवल तीन गुणों माधुर्य, ओज और प्रसादको स्वीकार किया। मम्मटाचार्यने भी दसगुणाद-का खंडन कर दसोका इन्हीं तीन गुणों माधुर्य, ओज एवं प्रसादके अंतर्गत समावेश किया है और गुणोंकी यह सामान्य परिभाषा दी है—“जिस प्रकार बीरता आदि आत्माके गुण हैं, देहके नहीं, उसी प्रकार माधुर्य, ओज आदिक भी रसके ही गुण हैं, पदसमुदायके नहीं।”^२ जंबूस्वामिचरित्र माधुर्य, ओज तथा प्रसाद गुणोंसे सर्वत्र ओत-प्रोत है।

माधुर्य—जिसमें अंत.करण द्रुत^३ (गलित) हो जाये ऐसा आनंद-विशेष माधुर्य कहलाता है।^४ सां० को० के अनुसार ‘माधुर्यका अर्थ है श्रुति सुखदता, समासरहितता, उक्ति वैचित्र्य, आर्द्रता, चित्तकी द्रवित करनेकी विभेयता, भावमयता और आह्लादता। ट ठ ड ढ को छोड़कर क से म तकके स्पर्श वर्ण, मूर्धन्य वर्ण और अंत्य (पंचम) वर्णों तथा समासोंके अभाव एवं छोटे-छोटे समस्त पदोंके प्रयोगसे माधुर्य गुणका संपादन होता है। इस प्रकारका वर्ण प्रयोग संयोग, वियोग, करण एवं शात रसोंमें क्रमसे आविश्यके साथ पीपक होता है, अर्थात् संभोग शृंगार और विप्रलंब शृंगार तथा करण एवं शात रसोंकी स्थितिमें माधुर्य गुण क्रमसे बढ़े हुए उत्कर्षके साथ प्रकट होता है। इस प्रकारकी रचना समास रहित या अल्प समास हीनी चाहिए, तभी माधुर्यगुण युक्तता कही जा सकती है^५।

जंबूस्वामिचरित्रमें माधुर्य गुणयुक्तताके निम्न उदाहरण प्रमुख है—भवदेवका पत्नी स्मरण-(२.१४), रस-विप्रलंब शृंगार, मिथुनीकी उद्यान-क्रीड़ा (४ १७—१८), रस-संभोग शृंगार, जंबूके प्रज्ज्या लेनेकी इच्छा जानकर माँकी अवस्था (८ ७ ९—१४), रस-वात्सल्य, नागवसू-द्वारा भवदेवको. बोध-प्रदान (२ १८), रस-शात, भवदेवका अंतर्द्व (२.१६) भाव—रतिभावमें परिणत होती हुई भावशबलता। अन्य सदर्थ है :—भ० महावीरका उपदेश (२.१); संधि ३ लगभग संपूर्ण, जंबूस्वामीको देखकर नारियोजीका काम-विह्वलता ४ ११; संधि ८ और ११ लगभग संपूर्ण, एव ९ १,३; १०.२,६,१८,२० एवं २५।

इन सब उदाहरणों एवं संदर्भोंके अतिरिक्त एक अनिर्वचनीय माधुर्यकी ध्वनि और आस्वादन संपूर्ण रचनामें विद्यमान है, और यही रचनाका सर्वप्रधान गुण है। माधुर्यके साथ प्रसादगुणका भी घनिष्ठ संबंध है। जहाँ-जहाँ श्लेषादि अलंकारोंका विशेष प्रयोग हुआ है, जैसे कि उपर्युक्त उदा० २ में, और अर्थ सुनते ही

१. हि० सा० कोश ‘गुण’।

२. मम्मट काव्य प्र० ‘गुण’।

३. द्विबीभाव : रसकी भावनाके समय चित्तकी चार अवस्थाएँ होती हैं—काठिन्य, दीप्तत्व, विक्षेप और द्रुति। किसी प्रकारका आवेश न होनेपर अनाविष्ट चित्तकी स्वभावसिद्ध कठिनता और आदि रसोंमें होती है। क्रोध और मन्यु (अनुताप) आदिके कारण चित्तका दीप्तत्व और आदि रसोंमें होता है। विस्मय और हास्य आदि उपाधियोंसे चित्तका विक्षेप अद्भुत और हास्यादि रसोंमें होता है। इन तीनों दशाओं काठिन्य, दीप्तत्व और विक्षेपके न होनेपर रति आदिके स्वरूपसे अतुल्य आनंदके उद्भूत होनेके कारण सहृदय पुरुषोंके चित्तका पिबल-सा जाना (आर्द्रप्रायत्व) द्विबीभाव या द्रुति कहलाता है। (सा० द० अष्टम परि० ‘गुण’)।

४. मम्मट का० प्र० ‘गुण’।

५. हि० सा० कोश; मम्मट का० प्र०।

तुरंत पूर्ण रूपसे स्फुट नहीं होता, कुछ चिंतनकी आवश्यकता जिसमें होती है, ऐसे स्थलोंको छोड़कर माधुर्यके साथ प्रसाद गुणका सहभाव स्वीकरणीय है।

ओज गुण—ओजका शाब्दिक अर्थ है तेज, प्रताप, दीप्ति। काव्यके अंतर्गत जो गुण सुननेवालोंके मनमें उत्साह, वीरता, आवेग आदि जाग्रत करनेकी क्षमता रखता है वह ओज कहलाता है।^१ ध्वनि अनुयायी आचार्योंके मतसे चित्तका विस्तारक या दीप्तिकारक गुण 'ओज' है; अथवा दूसरे शब्दोंमें चित्तको फड़क उठने रूप भडकानेवाले गुणका नाम ओज है।^२ वीर, वीभत्स और रौद्ररसोंमें क्रमसे इसकी स्थितिमें उत्कर्ष और प्रखरता बढ़ते जाते हैं। इसके लिए वर्णोंके आद्य और तृतीय (प्राकृत, अपभ्रंशमें तृतीय-चतुर्थ) वर्णोंको संयुक्ताक्षरता; ट,ठ,ड,श,प (प्राकृत अपभ्रंशमें स) आदिका प्रयोग, लंबे-लंबे समास और विकट या उद्धत पदरचना आवश्यक मानी गयी है। इस प्रकार ओज गुणमें उदात्त भाव तथा कर्कश, विलुप्त वर्ण सघटन और संयुक्त अक्षरोका प्रयोग होता है।^३ जंबूसामिचरिउमें इस गुणके प्रयोगके कुछ प्रमुख संदर्भ निम्न हैं :—

हस्तिका उपद्रव (४ २१), रस-भयानक; युद्ध वर्णन (५ १४, ६.११), रस-वीर, युद्धवर्णन (६.७.५-७; ६.१० १-४; ७ १.९-२२) रस-भयानक एव वीभत्स, तथा अन्य रौद्र रसात्मक वर्णन ५ १३ ९-११; (५.१४ १-१४); संधि ६ का शेषांश; संधि ७ १-११ एवं १०.२६।

प्रसाद गुण—प्रसादका शाब्दिक अर्थ है प्रसन्नता, खिल जाना या विकसित हो जाना। सभी रसोंमें और सभी रचनाओंमें ऐसा धर्म या प्रसिद्ध अर्थोंमें शब्दका ऐसा प्रयोग जिसे सुनते ही सामाजिकके हृदयमें भाव या अर्थ क्षण-भरमें व्याप्त हो जाय, वह प्रसाद गुण है। जैसे सूखे इंधनमें अग्नि और जैसे स्वच्छवस्त्रमें जल तुरंत फैल जाता है, उसी प्रकार चित्तको रसोंमें और रचनामें जो तुरंत व्याप्त कर दे, वह गुण प्रसाद है। अर्थात् प्रसाद गुण वहाँ होता है जहाँ सरल, सहज, भावव्यंजक शब्दावलीका प्रयोग किया जाता है। अर्थकी स्वच्छता या निर्मलता इसकी विशेषता है और यह सभीमें व्याप्त रहता है।^४

जं० सा० च० में इस गुणके प्रयोगके शताधिक उदाहरण हैं; जिनके कुछ प्रमुख संदर्भ ये हैं :— कविका विनयप्रदर्शन (१ २); मगध देवा वर्णन (१ ८), रानियोका सौंदर्य (१ १२); सागरचंद्रका मुनिदर्शनों को जाना (३ ५), कन्याओंका सौंदर्य (४ १३), वसंतागमन (४ १५ ७-१६); जंबूका आत्मचित्तन (९ १); अंतर्कथाएँ (९ २-११ एवं १० ७-१७)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि वीरने अपनी रचनामें माधुर्य, ओज एवं प्रसाद तीनों गुणोंका प्रचुर समावेश किया है। इनमें माधुर्यका प्राधान्य है, इसके उपरांत ओज एवं प्रसाद गुणोंका।

रचना-शैली—'जंबूसामिचरिउ'की रचना-शैली या रीतिकी दृष्टिसे विश्लेषण करनेके प्रसंगमें 'शैली' शब्द और उसके स्वरूप, सख्या आदिपर प्रकाश डालना आवश्यक है। संस्कृत साहित्यमें शैलीके स्थानपर 'रीति' शब्दका प्रयोग हुआ है। हिंदी साहित्यकोशमें साहित्य शास्त्रके प्राचीन ग्रंथोंके आचारपर शैलीकी परिभाषा इन शब्दोंमें दी गयी है—'शैली अनुसूत विषयवस्तुको सजानेके उन तरीकोंका नाम है जो उस विषयवस्तुकी अभिव्यक्तिको सुदूर एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं।' 'अर्थात् शैली किसी भी काव्यादि साहित्यिक कृतिके रस-पोषण संवर्द्धन एवं प्रेषण अर्थात् सहृदय सामाजिकको पूर्ण रसानुभूति आदि विविध रूपोंमें रसोपकारक उपादान है। इसी हेतुसे संस्कृत साहित्यमें रीति (शैली) को काव्यकी आत्मा माना गया है। संस्कृतके साहित्यप्रणेतों आचार्योंने रीतिके स्वरूपपर भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किये हैं। उन सबका सारांश यह है कि रीतिका संबंध 'विशिष्ट पदरचना' अर्थात् गुणों एवं 'पदरचना' जो कि समासपर निर्भर

१. हिन्दी साहित्य कोश 'गुण'।

२. सा० द० अष्टम परिच्छेद।

३. हि० सा० कोश एवं सा० द० ८.४.६।

४. हि० सा० कोश; तथा सा० द० अष्टम परिच्छेद।

है, तथा वर्ण संघटनसे है। अतः कुछ आचार्योंने 'समासहीनता' 'स्वल्पसमासता' व दीर्घ समासताके रूपमें शैलीको देखा है, और मामह तथा दंडी (७-८ श० ई० काव्यालंकार, काव्यादर्श) ने भरतके प्रदेशानुसार आर्वंती, दाक्षिणात्यादि (ना० शा० १४.३६ ४९) प्रवृत्ति विभाजनके अनुकरणपर, रीतिका भी देशोपे संबंध स्थापित किया है। जैसे वैदर्भी अर्थात् विदर्भदेशमें प्रचलित शैली, गौडी गौड़ देशमें, पांचाली पाचाल जन-पदसे और लाटी अर्थात् (गुजरात) प्रदेशमें प्रचलित शैली। उपयुक्त चारो रीतियोंके अलग-अलग स्वरूपके संबंधमें भी साहित्यशास्त्राचार्योंमें पर्याप्त मत विभिन्नता दिखलायी देती है।^१ पर वैदर्भी और गौडी रीतियोंके स्वरूपपर जो कुछ मतंथ्य प्रकट होता है, उसपरसे यह कहा जा सकता है कि 'वैदर्भी वह रीति है जिसमें माधुर्य गुणका उसको समस्त विशेषताओ श्रुति सुखदता, चित्तको द्रवित करनेको क्षमता भावभयता एवं आह्लासता आदि सहित प्राधान्य हो, जो संयोग एव विप्रलम्भ-शृंगार, करुण, वात्सल्य एवं शातरसोको उपकारक हो; जिसमें समास-साहित्य अथवा अल्पसमासता हो, जिसमें ट, ठ, ड, ढ वर्णोंको छोड़कर बगोंके पंचमासरोसे युक्त क से म तकके स्पर्श वर्णोंका प्रयोग हो तथा श, ष, एवं अन्य कठोर महाप्राण ध्वनियोंका अभाव पाया जाता हो; और इस प्रकार जिसको संपूर्ण रचना सुकुमार एवं मधुर हो।' गुणोंको अपेक्षासे माधुर्यके समान प्रसाद गुणका भी इसमें पूर्ण समावेश होता है। इस संबंधमें एक ध्यान देने योग्य बात यह है कि दंडी और वामनके अनुसार वैदर्भी रीतिका काव्यके श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य, सुकुमारता, अर्थव्यक्ति, उदारता, ओज, कांति, और समाधि इन दसो गुणोंसे युक्त होना कहा गया है, वह समीचीन प्रतीत नहीं होता। क्योंकि श्लेष, समाधि, उदारता एवं ओज, जिन्हें मम्मटादि सब आचार्योंने ओजगुणके अंतर्गत माना है, तथा ओजगुणके जो लक्षण किये हैं, वे वास्तवमें वैदर्भीके स्वरूपमें घटित नहीं होते। रूद्रट इस संबंधमें मीन है। लगता है कि प्राचीन आचार्योंके इस मतको स्वीकार न करते हुए भी उन्होंने इसका स्पष्ट खंडन नहीं किया और यदि ओज गुणको भी वैदर्भीके अंतर्गत मानना हो, तब या तो ओजगुणकी परिभाषा ही बदलनी होगी, जिससे उसमें कठोरता एवं पुरुषवर्णताकी अपेक्षा माधुर्य और सुकुमारताका प्रवेश हो, अथवा फिर सभी रीतियोंको वैदर्भीमें ही समाहित करना होगा, या फिर अल्पसमासता एवं बहुलसमासता, यही रीतिविभाजनका एक मात्र निर्वल आधार शेष रहेगा। यदि वैदर्भीमें दसो या तीनों गुणोंका समावेश होता है, तो एक ओर रूद्रट एवं दूसरी ओर विश्वनाथ, इन दोनोंने ही वैदर्भी रीतिमें, विशेष रूपसे, शृंगार, करुण, वात्सल्य एवं शातरसोका ही अस्तित्व क्यों स्वीकार किया ? और, रौद्र, बीभत्स एव भयानक इन उग्ररसोको भी उसमें समाहित क्यों नहीं माना ? इस विषयपर अधिक चर्चा करना इस प्रबंधकी सीमाओंके बाहर है, फिर भी प्रसंगोपात् होनेसे हलना लिखना आवश्यक हुआ। इस चर्चाका तात्पर्य यह है कि वीर कविने इस विषयमें वैसे ही अन्य रीतियोंके संबंधमें भी रूद्रटके मतको ही स्वीकार किया है तथा ऐसा लगता है कि वैदर्भी रीतिकी सुकुमारता एवं माधुर्य के वैशिष्ट्यके निमित्तसे काव्यरचनामें सर्वाधिक उपयुक्त होनेके कारण इसे जो महत्ता प्रदान हुई, उससे प्रभावित होकर आचार्योंने अतिशयोक्तिपूर्वक इसे सर्वगुण संपन्न लिख डाला है।

गौड़ी रीतिके स्वरूपके संबंधमें कुछ अधिक स्पष्टता और मतंथ्य है : जिसके अनुसार ओजको प्रकाशित करनेवाले कठिन वर्णोंसे बनाये हुए, बड़े-बड़े महाप्राण प्रयत्नवाले अक्षरोसे युक्त, शब्दाडंबरसे पूर्ण एवं दीर्घसमासोसे रचित उद्भट बंध अर्थात् ओजपूर्ण शैली, मधुरता, सुकुमारताका अभाव और लवे-लवे समासो-से पूर्ण रचनाको गौडी शैली कहना चाहिए। पर 'जंबूसाभिचरिड'के अध्ययनके परिप्रेक्ष्यमें यहाँ भी यह अवश्य कथनीय है कि यहाँ ओजगुणका प्रचुर सद्भाव होनेपर भी अधिक लवे समासोका प्रयोग गिने-चुने आठ-दस कडवकोमें ही हुआ है तथापि अन्य लक्षणोंसे वहाँ गौड़ी रीति ही सिद्ध होती है। अतः वीरके मतसे गौड़ी रीतिमें लवे समासोके प्रयोगकी अनिवार्यता प्रतीत नहीं होती।

पाचाली और लाटी रीतियोंको लेकर आचार्योंमें अत्यधिक मत विभिन्नता है। इस कारण इनका

१. हिंदी-साहित्य कोश: 'रीति'।

२. वही, एवं साहित्यदर्पण : विमला (हिंदी) न्यायया परि० ६।

अलग-अलग स्वरूप और उनकी विभाजक रेखा या तत्त्व भी स्पष्ट नहीं है। परन्तु सब मतोपर कुछ गहराईसे विचार करनेसे पाचालीका स्वरूप कुछ इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है—'पाचाली वह रीति है जो माधुर्य एवं सुकुमारतासे संपन्न हो और जिसमें पांच-छह पदों तकके लघुसमास हो। भोजने इसे ओष एवं कांति गुणोसे संपन्न माना है, और उसोसे किसी अन्य आचार्यने इस रीतिको वैदर्भी एवं गौड़ीके बीचकी रीति भी कहा है। परन्तु रुद्रटकी परिभाषा और वीरकी प्रस्तुत कृतिको ध्यानमें रखकर व अन्य भी साहित्यिक उल्लेखोसे यह मत समाचीन प्रतीत नहीं होता। अपने भाव और भाषा संघटन दोनों दृष्टियोसे पांचाली रीति वैदर्भीके बहुत निकट प्रतीत होती है, और इसकी प्रवृत्ति वैदर्भीकी ओर ही झुकने की है। पांचाली श्रेष्ठ वैदर्भी रीतिकी अपेक्षा एक मध्यम रीति है।

अब हम लाटी रीतिको लें। रुद्रटके अनुसार यह मध्यम समासवाली उग्र रसोके वर्णनके लिए उपयुक्त है और विश्वनाथ (१४ श० उक्त०, सा० द०) ने इसे वैदर्भी तथा पांचालीके बीच स्थापित किया है। इस कथनसे लाटीका स्वरूप और भी अधिक अवृक्ष व अस्पष्ट हो जाता है। इसी कारण साहित्य कोशमें भी इसके संबंधमें कहा गया है कि 'लाटीको कोई अलग विशेषता ज्ञात नहीं होती'। पर इससे तो हम और भी भटक जाते हैं तथा लाटीको समझनेका कोई मार्ग ही हमारे सामने नहीं रह जाता। यहाँ भी हमें वीरकी यह कृति कुछ आलोक प्रदान करती है और रुद्रटकी परिभाषाके प्रकाशमें इसका अध्ययन करनेपर हमें ज्ञात होता है कि 'मध्यम समासरचना, वर्ण-संघटन, ओजगुणात्मकता (प्रभाव) एवं भावोकी अभिव्यक्ति इन सभी दृष्टियोसे लाटीरीति गौड़ीके सबसे निकट है, तथा इसकी प्रवृत्ति निरंतर उसीकी ओर झुकने की है।'

उपर्युक्त चर्चासे पांचाली एवं लाटीका स्वरूप भी कुछ स्पष्टतर हो जाता है, और उनकी विभाजक रेखाका भी कुछ संकेत उपलब्ध होता है जिसके अनुसार इन चार रीतियोके दो वर्ग बनाये जा सकते हैं— (१) वैदर्भी एवं पांचाली और (२) गौड़ी तथा लाटी। वीरकी प्रस्तुत अपभ्रंश रचनाकी आलोचनाकी दृष्टिसे यह कहना भी आवश्यक है कि संस्कृत भाषाकी अपेक्षा प्राकृत-अपभ्रंशके अनिर्वाय वर्णपरिवर्तनोको दृष्टिगत रखकर प्रस्तुत रचनामें वैदर्भी रीतिमें भी ट, ठ, ड, ढ मूर्धन्य एवं घ, झ, ष भ, ह महाप्राण वर्णोका प्रयोग बहुधा उपलब्ध होता है।

उपरकी आलोचनानेसे यह भी प्रकट होता है कि 'जंबूसामिचरित्त' को संपूर्ण रचना किसी एक ही शैलीमें नहीं बल्कि चारो शैलियोमें मिश्रितरूपा है। नीचेके विश्लेषणसे यह तथ्य और भी अधिक स्पष्ट होगा। निम्न पंक्तियोमें जं० सा० च०में चारो रीतियोके प्रयोगके कुछ सदर्भ प्रस्तुत हैं—

वैदर्भी रीतिके उदाहरण :

कविके प्रेरणा-दायकका वंश परिचय (१.५), सधि २ का अधिकांश भाग, विशेष रूपसे भ० महावीर-का उपदेश (२.१); भवदेवकी दीक्षा और पत्नी-स्मरण (२.१४); भवदेवका अंतर्द्वंद्व (२.१६); एवं नागवसू द्वारा भवदेवको बोध प्रदान (२.१८); मिथुनोकी उद्यानक्रीड़ा (४.१७-१८), श्रेणिककी सभामें गगनगति-द्वारा विलासवतीका वंश आदि परिचय (५.२.१२-२०); रत्नशेखरकी सेना-द्वारा केरलपुतीकी घेराबंदी और लूट-पाट (५.३.४-१३), रत्नशेखरको पराजित करके जंबूस्वामी आदिका राजगृहकी ओर वापिस प्रस्थानसे लयाकर सुषमं स्वामीके दर्शनो तकका वृत्त (७.१३); सधियाँ ८ व ९ लगभग संपूर्ण, अंतर्कथाएँ (१०.१-१७); जंबूस्वामीकी दीक्षासे लेकर विद्युच्चर मुनिपर उपसर्ग तकका वृत्तांत (१०.२०-२६); एवं मुनि विद्युच्चर-द्वारा बारह भावनाओंका चिंतन तथा मरकर सर्वार्थसिद्धिको गमन (११.१-१५)। माधुर्य गुणके प्रसंगमें दिये हुए शेष संदर्भ भी इस रीतिके अंतर्गत आते हैं।

पांचाली रीतिके उदाहरण :

भ० महावीरके दर्शनोके लिए आनंदमेरी आदिका वज्रवाया जाना (१.१४), भवदेवके धरमें मुनि भवदत्तका आगमन (३.१२), पूर्वविदेहमें पुष्कलावती प्रदेश, पुंडरिकागिरी नगरी एवं बीताशोक नगरी तथा

सागरदत्त, शिवकुमारके जन्मके वृत्तांत (३ १-४), मुनि सागरदत्तका वीताशोक नगरीमें आगमन (३.६); अणाद्विदेवका वृत्त (४.२), जंबूकी माँके स्वप्न (४.६), वसंतके आनेपर उद्यानका सौंदर्य (४.१६), सैन्य प्रयाण (५.७), विध्यदेश वर्णन (५.९); रेवा नदी वर्णन (५.१०), जंबूस्वामीका दूत बनकर रत्नशेखरसे वाद-विवाद (५.१२) आदि । तीसरी संधि अधिकाशमें वैदर्भीकी ओर झुकती हुई पाचाली शैलीमें रचित है ।

गौड़ी रीतिके उदाहरण :

जंबूस्वामीका जन्म (४.८), हस्तिका उपद्रव (४.२१), श्रेणिककी राजसभा (५.१); गगनगति-द्वारा रत्नशेखरकी वीरताका प्रतीकात्मक वर्णन (५.५१-५), सैन्य प्रयाणकी तैयारी (५.६), युद्ध (५.६४, संधि ६; संधि.७ १ से १२), एवं विद्युच्चरका देश-दर्शन (९.१९) ।

लाटी रीतिके उदाहरण :

जंबूस्वामीकी माँकी गर्भावस्था (४.७), बालक जंबूका दिनोदिन बढ़ना (४.९.१-४); विद्याटवीका वर्णन (५.८.६-३६) आदि ।

उपर्युक्त विश्लेषणसे यह बिलकुल स्पष्ट है कि वीर कविने अपनी संपूर्ण रचनामें सबसे अधिक प्रयोग किया है वैदर्भीका, जो कि इसके प्रधान रसों शृंगार एवं शातके सर्वथा अनुकूल तथा पोषक है । आरंभकी संधि.२ व ३ का अधिकांश भाग, और संधि ८, ९, १० व ११ लगभग संपूर्ण वैदर्भी शैलीमें रचित है । माधुर्य एवं प्रसाद गुणोका प्राधान्य होनेसे ऐसा होना स्वाभाविक है । वैदर्भीके उपरांत पाचालीका प्रयोग है । परंतु वीर-रस रचनाका एक प्रमुखरस होनेसे परिमाणमें गौड़ीका प्रयोग अधिक हुआ है । संधि ६ और ७ लगभग संपूर्ण गौड़ी शैलीमें रचित है और लाटीका प्रयोग सबसे कम किया गया है, जो कि लाटीकी अपनी अनिश्चित-सी स्थितिके कारण स्वाभाविक है ।

'जंबूसामिचरिड' में प्रयुक्त सुभाषित और लोकोक्तियाँ

वीर कविने अन्य महाकवियोंके समान अपनी रचनामें सुभाषित और लोकोक्तियोंका भी प्रचुर प्रयोग किया है । उनका हिंदी रूपांतर यहाँ प्रस्तुत है.—

सज्जन-दुर्जन—

सज्जन व्यक्ति दूसरेके गुणग्रहणके लिए ही जीता है । वह स्वप्नमें भी किसीका लेशमात्र दोष नहीं देखता । इसे यू भी रख सकते हैं—दूसरेके गुण ग्रहण मात्रकी ओर लगी हुई सज्जन पुसवकी दृष्टि कभी किसीके लेशमात्र दोषको नहीं देखती (१.२२) ।

(ऐसा) स्वभावसे पवित्र हृदय सज्जन किसीके गुण दोषोकी परीक्षाके पचहेंमें नहीं पढता (१.२.३) ।

दुर्जन व्यक्ति अपने स्वभावसे ही जानते हुए भी दूसरेके गुणोको तो झाँपता है और झूठे दोषोको प्रकट करता है (अस-झूठदोषो-झावन) (१.२.४) ।

सच्चा मित्र—

जिसके पास अपने ही दूसरे हृदयके समान मित्र न हो, उसके लिए राज्य एक रज्जुबंधनका निमित्त-मात्र है, अर्थात् राजाके लिए सच्चे मित्रकी सर्वोच्च महत्ता है (६.१२-४) ।

फलहीन होनेपर भी अपनी घनी छायासे युक्त महान् वृक्ष वितके कार्यके लिए तो सफल होता ही है (६.१२-३), अर्थात् जो हृदयसे महान् है, उसके पास कुछ भी न रहे तो भी वह अनेकोका आश्रयभूत बनता है ।

सुभटोका रुधिर, हाथियोंका मद, और घोड़ोके फेनके प्रवाहसे (युद्ध भूमिमें) धूल उसी प्रकार शांत हो जाती है जिस प्रकार सुहृदो (सज्जनमित्रों) का रक्त (घन एवं यश) पीकर दुर्जन शांत हो जाता है ।

(६.५-१०-११) ।

सच्चा बंधु—

जो महान् विपत्तिमें सहारा देता है उसके समान और कोई बंधु नहीं होता; अथवा बंधु वही जो महान् विपत्तिमें सहारा दे (६.१२.२) ।

दरिद्रोंको दान देने वाले, परदु ख कातर और सरस काव्य रचनाके धनी पुरुषोंको धारण करनेसे ही यह धरित्री कृतार्थ होती है (६१ गाथा १)।

हाथमें धनुष, सायूसील पुरुषोंके चरणोंको गिरना प्रणाम, मुखमें सन्धोवापी, हृदयमें स्वच्छ प्रवृत्ति, कानोंसे सुने हुए (सच्चे) श्रुतका ग्रहण तथा दो भुजलताओंमें विक्रम, यह वीरपुरुषका सहज (वास्तविक) परिकर होता है, नेप तो वाह्य-सावन मात्र होते हैं (६१ गाथा २-३)।

विद्याधरकी छोड़ी हुई बाणावली जवूस्वामीके पास इन प्रकार गयी, जैसे कोई असती किसी सत्पुरुषके पास जाये, अर्थात् निरर्थक लौट गयी। तात्पर्य यह कि किसी सत्पुरुषके प्रति शत्रु-द्वारा की गयी कोई बुराई उसका कुछ नहीं विगाड सकती (९,२)। हिंदीमें—'चंदन विप व्यापत नहीं लिपटे रहत भुजंग'।

गुणहीन लोग गुणोंको समझते नहीं और गुणवान लोग दूसरोंके गुणोंको देखना दक नहीं सह सकते। स्वयंगुणी और परगुण-प्रिय ऐसे लोग तो कोई बिरले ही होते हैं (४,११-२)।

कवि और काव्य—किसीमें केवल काव्य रचनेकी शक्ति होती है, और कोई उसका व्याख्यान, बालोचना या अभिनय करनेमें ही निपुण होता है। (१,२,८)

एक पापाण (आकर) सोनेको जन्म देता है, दूसरा (कसौटी, पत्थर) उसकी परीक्षा करता है (१२२)। दोनों प्रकारको प्रतिभासे संगन्त व्यक्ति बिरले ही होते हैं; अर्थात् सवमें सब गुण नहीं होते। किसीमें कोई गुण होता है, और किसीमें कोई। जिनमें जो गुण हो, उसे उस गुणका पूरा लाभ उठाना चाहिए (१२-१०)।

दूसरोंकी काव्यरचनाओंमें वर्ण या शब्दपरिवर्तन करने काव्यरचना करनेवाला कवि बिना कहे ही अपने काव्य संगठनमें, बुधजनको द्वारा पहचान लिया जाता है कि यह चोर कवि है (१,२,१४-१५)।

अपने भोलपनसे ऐसा मान कर कि मैं काव्य रच सकूँगा कवि कर्ममें प्रवृत्त होना भुजाओंसे सागर तर जानेकी कल्पनाके समान है। ऐसे प्रयास लोगोंमें उसी प्रकार उपहासके पात्र बनते हैं, जिस प्रकार ऊँचे वृक्षके फलोंकी ओर हाथ बढ़ानेवाला कोई शूद्रावान् पशु (१,३,७,८)।

जिस प्रकार हीरेसे बीजे हुए मणिमें कच्चे सूतका धागा भी सरलतासे प्रवेश कर जाता है, उसी प्रकार किसी विषयपर महाकवियों-द्वारा रचित प्रबंधोंको देखकर अल्पमति कवि भी उस विषयपर काव्य रचना कर सकता है (३३ ९-१०)।

सरिता, सरोवर और चरहियो (खड्डों)में जो बहुत-सा (अस्वच्छ, अपथ्य) जल है, वह किस कामका। उससे तो मिट्टीके कारवमें रखा हुआ थोड़ा-सा निर्मल, शीतल एवं सुम्बादु जल कही अच्छा, जो लोगोंके द्वारा अभिलाषा पूर्वक पिया जाता है; अर्थात् किसी विषय पर ऐसे ठडे-ठडे महाकाव्योंसे क्या?, जो साधारणजनको समझके बाहर हों। उनसे तो वह लघुकाव्य अथवा जिम्का सर्व साधारण लोग भी पूर्ण स्वाद (आनंद) ले सकें (१५,११,११८,२०-२१); अथवा किसी धनिकका वह अपार धन किन्तु कामका जिसका उपयोग कोई भी न कर सके, इससे तो किसी साधारण धनिककी वह तुच्छ संपदा भली जो सबके काम आये।

जिनके मुख प्राचीन कवियोंके काव्यामृतपानसे भरे होनेसे उनकी (काव्य) रसनाका स्वाद विगड़ गया है, वे अदरकके फूलकी कलीके समान भिन्न व बटगटे स्वादवाले (अवुसामिचरिउ सद्ग) काव्योंको रसपान करें (७१ गाथा १)।

चिंतनशील कवियोंके-द्वारा काव्यके (अलंकारादि) अंगो व रसोंसे समृद्ध जो कुछ युक्तियुक्त कहे जाते हैं, वह सब (चाहे वास्तवमें घटित हुआ हो या न हुआ हो) सच्चरित्रमें घटित (ममाहित और उचित) होता है (८१ गाथा २)।

जिनमें समस्त काव्यरसोंके पूरको धारण करने (और व्यक्त करने) की शक्ति नहीं है, उन्हें निज शक्तिके अनुसार (काव्य रचनाकी अपेक्षा) काव्योंके अध्ययनके द्वारा उनका यथासंभव रसास्वाद लेकर ही सुष बैठना चाहिए; अर्थात् निकृष्ट काव्य रचनाका व्यर्थ प्रयास नहीं करना चाहिए। (८१ गाथा ३)

कसौटी, राप और छैनीसे परोलित गूढ मुद्रणके सनान सज्जनके द्वारा मुग्दीकित शचीन काष्ठीके तुलापर तौले हुए तथा बुद्धिहृगे कसौटीपर कचे हुए काष्ठी-रसोसे देवीपुनान एवं मुंदर शब्दसमूहसे दृक काष्ठीको ही ग्रहण करना चाहिये: (मुद्रण नाव या काष्ठी नावके) स्नेहसे नहीं (१.१. गाय १) ।

वैनवसे, राजके नैऋत्य (सालिष्य या आश्रय)से अथवा कलह (दृष्टवर्जन)से ही, निम्नके काष्ठीयुग सत्यम होता है ऐसे काष्ठीके विकार है (१०.१ गाय १) ।

बीजपूर्ण उक्तियाँ—

उंद्रमाली निरपोको लीन छू सकता है ? (५.५.१०)

मूर्ध (के घोड़ों) को यदि लीन रोक सकता है ? (५.५.१)

यमराजके सैन्धवे सींग कौन उखाड़ सकता है ? (३.५.२)

गहड़के मूछमें कौन प्रवेश कर सकता है ? (५.५.२)

क्रूरग्रह (राहु, केतु, शनि आदि) का निःश्रु लीन कर सकता है ? (५.५.३)

कलते हुए अग्निमें लीन प्रवेश कर सकता है ? (५.५.३)

शेयनागके फनमगिको बलात् लीन उपहरण कर सकता है ? (५.५.५)

प्रलयकालमें महाबलिर्विध उग्र उठती हुई अयंकर लहरसे दृक समूहको मुझाओसे लीन कर सकता है ? (५.५.५); अर्थात् ऐसे अचंचल काष्ठीका संनादन लीन कर सकता है ?

दर्प-कुर्नाति—

सूर्य, सूर्य और चंद्रमालो को बनेवाले रावणका सीताके कारण मरण हुआ (५.१३.६) ।

छूटे दर्पसे विसत मत्स्य दुर्गावनका श्रौष्ठीके कारण सर्वनाश हुआ (५.१३७); अर्थात् दर्प और दुर्गाविष्णुकी निश्चित नाश होता है ।

जैदिके (शरीरके) आकाशमें उड़ सकते मात्रसे ही वह गुपी नहीं हो जाता (५.१३.३०); अर्थात् शारीरिक गुण या अमता नाव निष्ठीके गुपी या शक्तिशाली होनेके शोचक नहीं है ।

हस्ति समूहका संहार करनेके सिद्ध पंडित कंदराओमें जाकर संता है, यह उसकी प्रवृत्ति या स्वभाव ही है, न कि गीदड़के भयसे वह ऐसा करता है (५.१३.३२.३३) अर्थात् जोते हुए या शोच दृष्टको आपर अथवा दुर्बल नहीं मान लेना चाहिये ।

हाथके पंजरेके कुंभीके कुंभस्पर्शको विदीर्ण करके जानेवाले सिद्धके नलोसे गिरे हुए गजमुकुओंको देखकर भी उस सिद्धको मारकर उन्हें प्राप्त करना चाहे, वह अवश्य यमराजका वधू (नीतका प्याग) है (५.१४.२-३) ।

जो सैद्धिक हृदय सहित अपना सिर तो स्वामीके लिए दे देता है, मांस सौ-सौ टुकड़े करके गंध भोजी पशु-जियो एवं राक्षसोंको दे देता है, अपना जीवन समर्पणकर; मुररनजियेके लिए त्याग देता है, और योग को बंध रहा है, उसे भी पृथ्वीको अग्नि कर देता है, उस पृथ्वीके सनान और लीन क्या हो सकता है ? (३.८९-११) ।

वीर-प्रशंसा—

श्रेष्ठ नक्षत्रि युक्त एक केसरी अच्छा, महागर्वन करनेवाला हस्तिजोका मेला नहीं (७.२.११)। आकाशमें चावमान एक कल्पेका विलमगि (मूर्ध) कच्छ; लघोदक (कुण्डू) कीडोका समूह नहीं (७.२.१२) । बटा हुआ विजयल कल्पेका बड़वानल कच्छा गन करका उदममूह नहीं (७.२.१३) ।

अपठ मारनेवाला एक गहड़ अच्छा; महान् उग्रधारी विपथर समूह नहीं (७.२.१५) । उदीर्ण कुर्ण समूहको लीननेवाला अकेला वीर पुंरु सहस्राब्धि सैन्यय बनसे नहीं अच्छा ।

अपने नडहरी कच्छसे शक्तिके विदीर्ण किये हुए समूह कुंभस्पर्शसे गलित होनेवाले गजप्रवाहसे कपिलधर्ष हुए केसर कलाप सिद्धके स्वंध प्रदेगपर म्हराते है, ऐसे सिद्ध समर्पणक इहाहते है, उदरक के

धारमको नहीं देख लेते (७४ १-३); अर्थात् श्रेष्ठ नरसिंह भी नरशार्ङ्गलोसे निश्चित रूपसे भय खाते हैं, परास्त होते हैं ।

अपनी पत्नीके धासगृहमें बँटकर बहूत लोग भटजनोचित समुल्लाप अर्थात् अपनी बहादुरीका विवाद बखान करते रहते हैं, पर मित्रका कार्य समान करनेवाले (सच्चे वीर) पुष्प बहूत बिरले होते हैं (७४ ४-५) । हिंदी : अपने घर कुत्ता भी दोर होता है ।

दूसरेके कार्यभारकी धुराको धारण करनेसे उसके गुहृतर धर्पणसे जिनके कंधोपर चिह्न बन गये हैं, ऐसे लोग अगत्तमें दो ही तीन होते हैं या कोई एक ही होता है (७.४. ६-७) ।

अपने धवल (श्रेष्ठ) वृषभ (प्रतीक-श्रेष्ठपुरुष) का अपमान करके गँरे (अधम) बैल (प्रतीकार्थ अधम पुरुष) पर अनुराग करनेवाले स्वामीका परिचारक वर्ग भी उसको भार (कार्य) निर्वाह करनेकी क्षमताको न जानते हुए उस श्रेष्ठवृषभको हृदयसे सर्वथा भुलाकर गँरे बैलके ही प्रतिपालनमें लग जाता है । परन्तु चिक-चिक-चिकने कीचड़ (प्रतीकार्थ महान् सकट) में चक्का फँस जानेसे गाडोके रुक जानेपर जब अधम बैल कंधेको गिराकर मुक्त हो जाता है (भाग जाता) है, तब वही श्रेष्ठ वृषभ गाडोको क्षणभरमें इस प्रकार निकाल देता है कि कुट्टामी (पृथ्वीपति, प्रतीकार्थ कुराजा) का हृदय प्रसन्नता (या पवचात्तापकी अग्नि) से फूट पडता है (७ ६ गाथा १-३) ।

अत्यंत अधम बैलके प्रतिपालनमें लगे हुए स्वामीके द्वारा अपने अपमानको भी जो नहीं गिनता, और आपत्तिमें धुराको धारण करता है, उस श्रेष्ठ वृषभको धार-वार नमस्कार (प्रतीकार्थ वही, ७ ६ गाथा ४) । गँरे बैलके साथ जोते जानेपर श्रेष्ठ वृषभ अपने पाद्वर्गमें देखता है कि गुहृभार खीचनेमें यह गँरा बैल मेरा जतिरिक्त भार मात्र होगा (प्रतीकार्थ वही, ७.६ गाथा ५) । गँरे बैलवाला एक चक्का रुक जानेपर श्रेष्ठ वृषभ अपने हृदयमें इस प्रकार झूरता है, हाय ! मुझे ही काटकर दोनो दिशाओ (पाद्वर्गों) में बयो नहीं जोत दिया गया, अर्थात् मैं अकेला ही भार भली भाँति खीच लेता (प्रतीकार्थ वही, ७ ६ गाथा ६)

जिसके धुरा धारण करके खुरोसे धाहत मार्गमें प्रवेश करनेसे समूद्र भी शका (भय) करता है (कि उसमें जानेसे मुझे भी पादाक्रांत होना होगा), वैसे श्रेष्ठ वृषभके साथ स्पृहा करने या जुतनेसे गँरा बैल निश्चित भरेगा (प्रतीकार्थ वही, ७ ६, गाथा ७) ।

राजघरने भृगुशिष्यके स्थानमें यदि सिंहजावक्रको अपने अकमें धारण किया होता, तो उस सिंहशावक-के जोते भी राहुके लिए चद्रमाका मर्दन करना दुष्कर होता, अर्थात् कायरोकी अपेक्षा वीर पुरुषोको आश्रय देना निश्चित अच्छा होता है (७-६ दोहा) ।

सत्रियका एक यही परम धर्म है कि युद्धमें कभी लाजघर्म भंग न हो, विजय और पराजय तो वैवा-चोन होती हैं, पर पीठ दिखानेसे तो लोभोमें लज्जा व निंदाका पात्र बनना पडता है (७ १२ १३-१४) ।

ऐसा कोई घर नहीं जिसमें पाप न हो (सुंदर एव युवा पत्नियोके प्रति शंकाप्रस्त ईर्ष्यालु तथा व्याधि-ग्रस्त सेठकी उक्ति ३ ११ ६) । हिंदी: कोई दूधका घोया नहीं ।

पुत्र ही बहकती सतानोको धारण करनेवाला आशावृक्ष होता है । वही कुलके गुहृभारको अपने कंधो-पर उठाता है और पुत्र ही कुलका नाश करनेवाली आपदारूपी बल्लरीकी विध्वंस करनेवाला श्रेष्ठ हस्ति होता है (८ ७. १५-१६) ।

सत्पुत्र लक्षण—

जो कुलको उज्ज्वल करे, गुणियोकी गणनामें प्रथम हो, और आचारवान हो वही (सच्चा) पुत्र है (८.८ ४) ।

कुपुत्र लक्षण—

जिसके पैदा होनेसे शत्रु क्रदन न करने लगे, सज्जन सदा सुखसे आनंद न करें (८.८.५) और जिसके दान देनेसे अथवा युद्ध अथ करनेसे, सुकविरसे अथवा जिन (देव) कीर्तनसे (८ ८ ६), जिसका यशो-इस इस ससारके पिजडेमें न समाकर सारे ब्रह्मांडका अतिक्रमण न करे (८.८ ७), उस सततिभावकी वृद्धि

करनेवाले और निजमाताके यौवनको लूटनेवाले पुत्रसे क्या (लाम्) ? (८८८)

दुर्व्यसनीसे भोगा हुआ पुत्र कुलरूपी अकुरको समूल उखाड़नेवाला और धनके लिए निजके मां-बाप को मार डालनेवाला होता है (८८४-९) ।

माँके लिए पुत्रके दीक्षा लेने विषयक वचन पर्वत शिखरपर वज्रपतनके समान कठोर होते हैं (८७१३) ।

स्वसुरके लिए जामाताका गृहत्याग विषयक समाचार हृदयको करीबसे चीर देनेके समान अथवा विषभक्षण-द्वारा मूर्च्छित कर देनेके समान दुःखद होता है (८१०-१२), और संवधीजन—

वज्रपातसे विध्वस्त पर्वतराजके समान (८१०-३) अथवा गरुडसे क्षपेटे हुए सर्पसमूहके समान (८१०-४) अथवा सिद्धके द्वारा विदीर्ण-कुम्भस्थल-हस्तिपूथके समान (८१०-४) एव तीक्ष्ण परशुसे काटी हुई शाखाओंवाले (ठूठ) वृक्षके समान अधोमुख होकर बैठ रहते हैं (८१०-५) ।

पुत्र विद्योगके कुठारसे माँका हृदय इस प्रकार विदीर्ण कर दिया जाता है, जिस प्रकार अनिपुजमें डाला हुआ लवण टूक-टूक हो जाता है (९१५-१४१५) ।

उच्चकुलीन कन्या—

निर्मलगुण और उच्चगोत्रवाली कन्याओंका एक ही पति होता है, एक ही माँ, एक ही पिता, एक ही देव (वीतराग) जिन, एक श्रेष्ठ (वीतराग) साधु ही गुरु, और एक ही (सखा) जिससे धर्मका लाम हो (८१०-१३१४) ।

तपकी निरर्थकता—

यदि मनमें राग-द्वेष नहीं है तो फिर वनमें तप लेकर ही क्या करना है; अर्थात् उमकी कोई आवश्यकता नहीं (३९-३) ।

यदि मन कपायो (राग-द्वेषादि) से रमा है तो फिर तपश्चरणसे ही क्या सिद्ध होनेवाला है, अर्थात् ऐसी स्थितिमें तपश्चरण निरर्थक है (३९४) ।

अद्भुत घटना—

कातिक आये बिना अबरका निरभ्र होना (४८९) ।

बिना वर्षाके घूलि घात होना (४८१०) ।

बिना वसतके वनस्पतिका फूल उठना (४८-११) ।

हिंदी—(बिन वसत बहार), वन्यमान् अन्वरण शुभ कार्योंका गंगन रोना ।

मनोहर देशोंको छोटकर भी नदियाँ (सारे) जलपूर्ण नागरका अनुमग्न करती हैं । हममें तो यही मित्र होता है कि जनमयी (नदियों) एवं जजमति स्थलोंमें विवेक नहीं होता, उनका आदर मगुण (गुण नग्न) के प्रति नहीं, नलोंमें (नलवण अर्थात् माग्न, पद्ममें—सुदृग् पृग्) के प्रति होता है (१६०८-२५) ।

दृष्टिमान् लोग ममान (हुल, वयन् आदि) विवाहकी प्रदग्ना करते हैं (२११-३) ।

जीवने कोई वन नहीं पलटता और धीतवने लिए कोई स्वर्ग नहीं वैचना (२१६-५) ।

योगीना पन ला-आकर घर भरना (३१८००)

घमकी : यदि धर्ममें एन पन भी धर्ममें रग तो ती मं अपना (गार्गर्) नाम छोट है (८०१८-१५) ।

दूरके नाँवके ममान वाह्यना घटना (८९१) ।

एन शिस्तना सारे लोग नामाग्यनी घटना है, एन मुदद पग्याशोर, गग्नेयाया ती कर्तृ ह्यमती प्रशानि रोना है (८१८-२०) ।

नगार्ग वमर्गी (सार्ग) उगार्गो उगग्नाम माग्ने क्या सुधि ? (४१८००) ।

मुग्दग्गो उगर्ग उगर्ग उगग्ने को रोती एन भी वग्ग है (१८४) ।

मिग्दग्ग माग्ग, भी योग्यग्ग देव (मीमें गग्गो, १,२,३, ४, ५) (१८१३) ।

शत्रुको देखते ही बिना प्रतीक्षा किये तुरत पड़ले स्वयं भिड जाना चाहिए, अर्थात् शत्रुको देखते ही, उसे बखस्र दिये बिना, जो शत्रुपर प्रथम आक्रमण करता है, उसको विजय निश्चित है (६.५ ८)।

कहावतोंकी कहानियाँ—

वर्तमानमें उपलब्ध सुयोको त्याग कर जो भविष्यत् सुत्रोंकी अभिलाषा करता है वह दोनोंसे हाथ धो बैठता है जैसे—(१) मूर्ख किसान (९ ४); (२) विद्यावर (९ ६) एवं (४) सर्प (९ १०)।

विषयलोलुप जीव नर्वनशको प्राप्त होता है जैसे (१) माम लोभी कौवा (९ ५), (२) कामातुर वानर (९.७); (३) कमलगधलोभी भ्रमर (९ ९), (४) मांघ लोभी शृगाल (९ ११), हिंदी: मौतका मारा शृगाल गाँवकी ओर दौडता है, (५) मयु लोभी ऊँट (१० ७) एवं (६) विषय लोलुप चंग।

अति लोभी शृगाल मृत्युको प्राप्त हुआ (१० १२)। जो सोवे सो खोवे (१०.११)।

लकड़हारको स्वप्नमें राज्यप्राप्ति (१० १३)।

मुँहका माँसखण्ड छोडकर मच्छको पकडनेका असफल प्रयत्न करनेवाला शृगाल मांस (जिसे वाच उठा ले गया) और मच्छ (जो पानीमें कूद गया) दोनोंसे गया (१० १६); हिंदी . आधी छोड़ सारीको धावे, धावी रहै न सारी पावे।

धूर्स स्थीका कपटभरा प्रेम उसे भोगकर छोड़ दिया जाता है (८ १३ १४ १५)।

पतिको त्याग, जारको भी मरवा डालनेवाली असती चोरसे भी गयी और घन तथा बस्त्रोसे भी हाथ धो बैठे (१० ८-१०)।

बेव्याह्रें घन, वैभव संपन्न पुरुषको चिरकाल तक आवरपूर्वक आलिंगनदिके द्वारा मयुके छनेके समान पूर्णतया चूस कर छोड़ देती है, और नये क्षुद्र पुरुषको चूमने (चूमने)में लग जाती है (९ १२ १८-१९)।

'जंबूसामिचरिड'में प्रयुक्त सुभाषितो एवं लोकोक्तियोका विषय क्रमसे अव्ययन करनेपर ज्ञात होता है कि वीर कविने जिस प्रकार अपनी सपूर्ण रचनामें और उसको अंतर्कथाओंमें समाज जीवनके विविध पक्षोका सर्वांगीण उद्घाटन किया है, उसी प्रकार सुभाषितोमें भी उन्होंने उसका कोई पक्ष छोडा नहीं। कविसमयके अनुसार सञ्जन और दुर्जनोकी प्रकृतिका प्रथम उल्लेख, गुण-दोषोंकी चर्चा; कवि और काव्य-विषयक स्थापनाएँ, अोजपूर्ण उक्तियाँ, जिनके आलम्बन सुर, नर, पशु सभी हैं; पारिवारिक जीवन, सुखद-दुःखद दोनों प्रकारका, माता-पिता, संबंधियोका वात्सल्य, कुलीन कन्या व कुलपुत्रोके लक्षण; साध्यात्मिक-धार्मिक विश्वासोसे सबद्ध उक्तियाँ, सामान्य लोक प्रचलित उक्तियाँ और कहावतोंकी कहानियाँ, यह सब कुछ कविने अपने काव्यमें प्रयुक्त सुभाषितोके आध्यात्ममें पिरोया है। इन सबके कारण 'जंबूसामिचरिड' के महा-काव्यत्वमें और भी अधिक निखार आ गया है।

८. जंबूसामिचरिडका भाषा एवं व्याकरणात्मक विश्लेषण

गत-पचास वर्षोंमें अपभ्रंश भाषा और साहित्यके क्षेत्रमें पर्याप्त कार्य हुआ है। इस बीच दलाल और गुणे-द्वारा 'भविष्यत्कहा'; लासदास भगवानदास गाधी-द्वारा अपभ्रंश काव्यत्रयी, डॉ० उपाध्ये-द्वारा परमात्मप्रकाश और योगसार, प० ल० वैद्य-द्वारा पुण्यदंत कृत अपभ्रंश महापुराणके तीन भाग और 'जसहृद चरिड', डॉ० ही० ला० जैन-द्वारा सावयवमम दोहा, पाहुडदोहा, पायकुमारचरिड, करकंडचरिड, भयणपरराज्यचरिड, सुगयवशमीकथा और सुदंशचरिड तथा सिरिचंद कृत अपभ्रंश कहकोसु, डॉ० ह० व० नायाणी-द्वारा स्वयंभू कृत पञ्चमचरिड (तीन भाग), स्वर्गीय राहुल-द्वारा अपभ्रंश दोहाकानु तथा अण्डु-रहमान कृत सदेशरासक आदि अनेक अपभ्रंश रचनाएँ प्राकृत-अपभ्रंशके उपयुक्त मूह्य विद्वानों-द्वारा

सुसंपादित होकर प्रकाशित हुई है। इनके संपादको-द्वारा इन ग्रंथोंकी भूमिकामें प्रत्येक ग्रंथकी भाषापर विशेष और अपभ्रंश सामान्यके स्वरूपपर बहुत विस्तार और सूक्ष्मतासे प्रकाश डाला गया है। इन रचनाओंके अतिरिक्त स्व० पिशल महोदयके व्याकरण, डॉ० तगारे कृत अपभ्रंशका ऐतिहासिक व्याकरण, डॉ० देवेन्द्र कृत अपभ्रंशप्रवेश, डॉ० नेमिचंद शास्त्री कृत अभिनव-प्राकृत व्याकरण, मधुसूदन चिन्मलाल मोदी-द्वारा संपादित अपभ्रंशपाठावलीकी भूमिका, डॉ० नामवरसिंह कृत 'हिन्दीके विकासमें अपभ्रंशका योगदान'; डॉ० देवेन्द्र कुमार कृत 'अपभ्रंश भाषा एव साहित्य', डॉ० हरिवंश कोछड कृत 'अपभ्रंश साहित्य' डॉ० सोमर कृत 'प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य' प्रभृति ग्रंथोंमें भी अपभ्रंश भाषाके स्वरूपपर बहुत ही गहराई और सूक्ष्मतासे विवेचन किया गया है। सामान्यतः 'जंबूसामिचरिउ'की भाषा वही नागर अपभ्रंश है, जिसमें स्वयंभू और पुष्पदंत जैसे श्रेष्ठ अपभ्रंश महाकवियोंकी कान्य कृतियां हैं। इसकी भाषामें इन कवियोंकी रचनाओंसे जो विशिष्ट भेद है, वह प्रारंभिक और मध्यवर्ती संयुक्त न, स के प्रयोग विषयक है। इस विषयमें 'पाठ संपादन पद्धतिके अंतर्गत विवेचन किया गया है। भाषा और व्याकरणका स्वरूप सक्षेपमें निम्नप्रकार है—

- § १ प्रयुक्त स्वर - अ, वा, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, - (अनुस्वार) एव ० (अनुनासिक) ।
 § २ व्यंजन : क ख ग घ, च छ ज झ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, प फ ब भ म्, य र ल व स ह,

स्वर विकार

- § ३ अ > इ अकहिञ्जमाण (१२) उरिड (५१०) ।
 अ > व मुणइ (५.१३) अरुहास (४.३) अरुणाह (३१३)
 अ > ए एत्यतरे (१.५) एत्यु (२११) वेरिल (५१३)
 § ४ आ > अ सीय ३ १२ मालिइलय ५ २
 आ > उ उल्लिय ९ १५
 § ५ इ > अ सिरस ८ ९
 इ > व उच्छू ५ ९
 इ > ए उत्तोडिय ५ ७, जि > जे, विष > वेंव
 § ६ ई > आ भारिस ९ १६
 ई > ए एरिस ८ १०
 § ७ उ > अ कत्य ७ १, कुए > करि ८ १, गरुयारउ १ ५, मउड, कुसम ८ ९
 उ > इ कुए > करि ८ १०, किगुरिस ९ १२
 उ > ई सुणी १ १५, कुहिता > घोय ११ ३
 उ > औ सुकुमारिका > सोमालिया ८ १०, पोगल १० ५, मोगर ६ १०, कोव ५ १४
 § ८ ऊ > व अउव्व ९ २, फुक्कार ५ ८
 ऊ > ए नेउर ८ ९
 ऊ > औ बहुमोल्ल १० २१, थोर ८ ११, तवोल ८ ९
 § ९ ऋ > अ कय ९ ४, कयत ३ ७
 ऋ > इ किण्ड ४ १३, अलकिअ ३ ८, अतित्त १ १०, अमिय ८ २; किउ ४ ९ आदि
 ऋ > व पुहह १० ११, अपाउस ४ ८
 ऋ > ए स्वगुह > संगेह ४ ५
 ऋ > रि रिद्धि ३ ६
 ऋ > अरि उद्भूत > उव्वरिय ३ ७

- § १० ए > इ अणिमिस ८-९; अमरिद ४.१
 ए > ई लोह ५.१४
 ए > ए अंति; जर्ग १.१; कर्ज १ २; जर्ण १.३ आदि
- § ११ ओ > व अवस्यर ५ २; अण्णुण २ ५, उट्टवम्म ९ १
 ओ > ऊ ऊमारिय ७.७
 ओ > आ तर्हा १.३; वीरर्हा १.२; विउसर्हा १ २
 ओ > ए करोमि > करेमि १.३
- § १२ ऐ > ए अवरेवक ९ १६
 ऐ > इ अवरिवक ९ ६
 ऐ > अइ कइलास ९ ६; कइरव ८ १५; दइव ५.१३
- § १३ ओ > ओ जोव्वणु ४ १३; अवमोयस १०.२१; ओसही ३.१४
 ओ > अउ पउरजण १ १५
- § १४. ह्रस्वस्वरका दीर्घीकरण : जहाँ किसी मध्यवर्ती संयुक्त व्यंजनमें-से एकका अथवा प्रथम स्वरके अनुस्वारका अथवा अंत्य व्यंजनका लोप कर दिया जाता है, वहाँ पूर्वका ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाता है—
 अड्ढाइय ११.११, वीसमण ४ ९, वीया ४ ९, सीस (शिष्य) ७ १३, वीसोवहि ११ १२; सिहो २ ५८
- § १५. दीर्घस्वरका ह्रस्वीकरण : संयुक्त व्यंजनके पूर्वका दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है—
 अफ्फालिय १ १५; अच्छेरअ ९.१०; अज्ज (आर्य) १ ५, चरणम १.१; तित्तु १.७; परिक्खा १ २, रज्ज ३ १४ आदि । अन्यत्र भी जैसे - तित्थर १.५; अड्ढ १० १३; विण ७ ३, कुमर ५ ७; गहिय १ १ मं०, गहिर ४ १९, यविय ११ ६ आदि । छंदार्थ—महकइ १.३, संतुव १ ४
- § १६. ह्रस्वस्वरका अनुस्वारत्व : अंसु ४ ११, अंट १० ७, अंवर ५.८, कंचाइणी ७ ६; करफंसण ५ ४, दंसण ८ २
- § १७. स्वरलोप
 (क) आदि स्वरलोप : हउं ३ ७; हेड्डामुह २ १८, हेड्डिल ११ १०
 (ख) मध्य स्वरलोप : उड्डिह १०.२, देवदत्त १ ५, पत्ति ४ २१, पोफल १ ८
 (ग) अत्य स्वरलोप . अवमासो १ २, इयरो १.४, चलणमो १ १, सहावो १.२ आदि ।
- § १८ आदि स्वरागम : इत्थिरज्ज ९ १९
- § १९. स्वरभक्ति . आयरिय २.८, वीहुर १ ३, सलह्ज्जह ४ ९, सिविण १ ३; वरिसिय ३ १२, किलेस १० १२
- § २०. स्वरव्यत्यय . आदचर्य > अच्छरिय > अच्छेर ९ १०, ब्रह्मचर्य > वंसचरिय > वंसचेर ३ ९;
- § २१. स्वरागम . जब किसी शब्दमें पहले आया हुआ कोई स्वर उसीके पीछे आनेवाले स्वरसे प्रभावित होता है, तो उसे स्वरराग कहा जाता है । जैसे —इक्षु—इच्छु > उच्छु ५ ९; कृत्वा—करवि, करेवि, करिवि इसी प्रकार अप्पिवि, आयण्णिवि ९ ७; पइसिवि ९ १०; पेक्खिवि, मेल्लिवि, मेल्लेवि, मिखिलवि ६ १३ ८ १०, आदि ।

व्यंजन विकार

- § २२. (क) आदि असंयुक्त व्यंजन साधारणत यथास्थित सुगणित रहते हैं पर कुछ विशिष्ट शब्दोंमें उनमें परिवर्तन या ध्यत्यय हो जाता है, जैसे .—धृति > दिही १ ६, दुहिता > वीय ११ ३, दग्ध-डज्ज २ १४, डहण ७ ९, डाढ ३ ८, निलाड ४ १३ ।

(ख) आदि 'य' को 'ज' : जमल १० १६; जयुल १.१ मं०; जत्तुल्लव ३.१३; जहा १०.१, जर्पति ५ ६ ।

(ग) आदिमें मंयुक्त व्यंजन रहनेपर एकका लोप हो जाता है : पडिवयण, पडिवया-वोयड; थंभ, खंभ, छूह, कणिर; फार ४ ५ इत्यादि ।

§ २३. मध्यवर्ती असंयुक्त व्यंजनोमें क् ग् च् ज् त् द् प् व् य् व् का प्राय. लोप होता है, उनके स्थानमें कही तो केवल उद्बृत्त स्वर ही शेष रहता है, और कही 'य' श्रुति या 'व' श्रुति होती है ।

§ २४. 'य' और 'व' श्रुतिका नियम : हेमचन्द्रके अनुसार उद्बृत्त 'व' और 'वा' स्वरोंके बीच 'य' श्रुति होती है, कभी नहीं भी होती है । परंतु 'जंबूसामिचरिउ' नें ऐसे उदाहरण नहीं मिलते जिनमें 'व', 'वा' स्वरोंके बीच इन्ही शुद्ध स्वरोंका प्रयोग ही अर्थात् अ-आ स्वरोंके बीच यहाँ सर्वत्र य श्रुति होती ही है । अन्य स्वरोंके बीचमें अचिक्रांततया य श्रुतिका सद्भाव दिखाई देता है, जैसे :—इ-ई और अ-आके बीच, उ और, अ-आ के बीच, ए और अ-आ के बीच तथा ओ एवं अ-आ के बीच इन सबके उदाहरण नीचे दिये गये हैं ।

'व' श्रुतिकी स्थिति बहुत अनिश्चित है । सामान्य रूपसे उ और ओ के बीच 'व' श्रुति होती है, ऐसा माना जाता है । परंतु प्रस्तुत रचनामें स्थिति इससे भिन्न है । विशेष बात यह है कि अनेक स्थलोंपर 'य' और 'व' श्रुतिके प्रयोगमें कोई भेद दिखालायी नहीं देता । बल्कि यह वास्तवमें लेखकके स्वच्छंद अर्थात् स्वच्छापर निर्भर करता है कि अ-आ स्वरोंके बीचको स्थितिको छोड़कर इनमेंसे किसी भी श्रुतिका प्रयोग करे अथवा केवल उद्बृत्त स्वर ही रहने दे । मूल लेखको-द्वारा श्रुतियोंके प्रयोगमें यह स्वच्छंदता देखकर ही प्रतिकारोने कुछ स्वच्छंदताका वर्तन किया है, यह प्रतियोगके पाठभेदोपरन्तु स्पष्ट प्रतीत होता है । जहाँ एक प्रतिमें 'य' श्रुति है तो दूसरीमें 'व' श्रुति और तीसरीमें केवल उद्बृत्त स्वर । पाठभेदोपर ध्यान देनेसे ऐसे अनेक उदाहरण दृष्टिगत होंगे । अब कुछ चुने हुए उदाहरण प्रस्तुत हैं :—

'य' श्रुतिके उदाहरण

(क) अ-आ के बीच : अरुह्यास ४ १; बाय १०.२५; कयकणिय ६.३; कयावि ३ ६; कायरी ९ १७; नायणु १४.४, पायार ४.१४, भवयत ३ ३, मायरी ९ १७; लयड ९.१३; लायण्णु ४.१४, वयणुल्लउ ५.२, सयल ७ १३ ।

(ख) इ-ई एवं अ-आ के बीच . कणिय ६ ३; तावीयड ९.९; पटियाणवि ७.१३, पाहरिय; वीयड २ ५; मियंक ७ १३; लइयं ८.१५; वइरियाण ६ १२; वियार ९ १३; सीयल १ १३; सम्माणिय ७ १३ इणिय १ १ म० ।

(ग) उ-ऊ एवं अ-आ के बीच . गरयारउ १५, जुयलुल्लउ ८ १६; भुयण ६.२, भुयदंड ६ २, जूय ४ ३, जूयार ४ २, हूय ५ १३; दूयडिया ८ १५; धूयविलंबण ११ ६, पूण १-१८, रुयण्णु ९ १८ सूयाहर ४-८ ।

(घ) ए एवं अ-आ के बीच : वेयार ५ ९; तेयमाल १० १; तेयवारि २ ३; पेयलड ५ ४४; भेय ५ ३, सेय ३ ८; हेमेयड ८ १५ ।

(च) ओ एवं अ-आ के बीच : कोयड १०.१२, खोयणु ९ ८; भोय १.१०; भोयण ८ १३; भोया-वर ५ २; भोयण ६ ३; लोयाण ९-८, लोयाणार ८ ७; लोयण ११ १२, लोय ३ १; लोयाहाण ५ ४. सोयाउर ३ ७ ।

'व' श्रुतिके उदाहरण

(अ) अ-आ के मध्य . भयवत्त २ ५

(ब) आ-इ के मध्य : परिणाविय ३ ४

(स) उ-ऊ एवं अ-आ के मध्य : उवय ११.९, उवयागउ ९ १, उवहि ४ १६, उवहि ५ १३, उवार ८.२, उवडाणिय ५ ९, लहवारउ ३.५, विरुवउ ५ १३; मसिगोरुव ८ १६

(द) ओ एवं अ-आ के बीच : जोवइ ९.१४

इन उदाहरणोंपर-से 'य' और 'व' ध्रुतियोंका इस रचनामें प्रयोग बाहुल्य तो स्पष्ट होता ही है, उनको अनियमबद्धता भी प्रकट होती है। और साथ ही 'व' ध्रुतिका एक भी ऐसा दृष्टात उपलब्ध नहीं होता जहाँ 'उ' और 'ओ' स्वरोंके बीच 'व' ध्रुतिका प्रयोग हुआ हो।

§ २५ 'य' और 'व' से सबद्ध एक और नियमका यही उल्लेख करना उचित है। वह है सप्रसारण-का नियम। इसका अर्थ है 'य' के स्थानपर 'इ', एवं 'व' के स्थानपर 'उ' होना। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(क) कात्यायनी—कंचाङ्गी ७ ६, उष्पाङ्गि ४.३; विज्स् १.२

(ख) 'इ' के स्थानपर 'य' और 'उ' के स्थानपर 'व' का प्रयोग संप्रसारणके ही समीपवर्ती स्थिति है। जैसे—देवालय—देउल ४ १०, देवल १० ८, पइज्जु ४.२; पयज्जु ५ ११।

§ २६ व्यंजन परिवर्तनोंके व्यवस्थित उदाहरण प्रस्तुत करनेके पूर्व एक और विशेष नियम उल्लेख-नीय है, जिसे वर्णप्रक्षेप कहा जाता है। जिसका अर्थ है किसी शब्दमें किसी वर्णके स्थानपर किसी अन्य अविद्यमान वर्णका आना जैसे—आम्र—अंवं ४.२; ताम्रावर—तंवाहर ४ १८, तंवरि ५.१२, ललाट—निलाट ४-१३, चिकुर-चिहुर ४ १३।

व्यंजन परिवर्तन और विकारोंके उदाहरण

(क) क् और ग् आउंचिय ४ १३, आउल ५.६, आय (अगता) ८ ४, आयम ३.९ आदि

(ख) च् और ज् आयरिय २ ८, आयार ८ ८; परिच्य—परिचय ८ १, भुयंग ३ ८

(ग) त् और द् आगया ९ १७, आह्य ८.७, आसाइय १०.१, आइहु ५ ६, आएस १ १६, आसाइय १० १; उवयाण ५ ३

त् > इ उप्पिड ५ १०, पडिय ५ १०, पडियार ७.८

त् > ह भरह (भरत) १.५, मारह १ ६

द् > ब इज्ज, उहण, डाड

(घ) प > व आउण्ण ४ ६, आऊरिय १०.२४

प > ब आवण्ण ५ १, आवाणअ, ४.२, उवभुजइ २.१३, थवइ (स्थपति) ३.४; मवइ (मापयति) ४ १९

प > फ फुल्ल १० १९, फोफल १ ८

(च) ट > ड आरडिअ ७ ८; उग्पाडइ ९ ८, उष्पाडण १० २०, कण्णाड ६ ६

(छ) इ, इ > ल कामकील १० २३, चलण ६.१४

(ज) न् > न् ज्ञापानल १ १ म०, महानल ३ ८

न लोप स्थान > ठाय ५ ४

म् > व् कहविय ४ २२, दवण ४.२०, रवण्ण ३.१३, सवण २.१९

(झ) व् > स् एवमेव > एमहँ २ १८

व लोप कइ, कइत्त आदि

(ट) म् > व नम्र > नउर ४ ६

(ठ) र् > इ आठविय (आरठव) ३ ९

(ड) श् > ह दहलवखण ११-१३; दहविह ११ २

(ढ) श् > स (सर्वत्र) दसमए ८ ५; सरीर ८ ७

§ २७ अथोप महाप्राण वर्णों ख् घ् थ् ध् फ् म् के स्थानपर शुद्ध महाप्राण ह् का आदेश :—

(क) ख् > ह् : अहिमुह ७ १०, आहडल, २ ४, सिहडि ५ ८; सिहि (शिखिन्) ९ ९

(ख) घ् > ह् विहडंत १०.१८

(ग) थ् > ह् अहव १० २३; आरिसकहा ८ १, जहा, तहा आदि

१६

(घ) घ > ह, अहरत्त ११.६; अहरुल्ल २.१४, अह्लि ९.१०

(च) फ > ह, अहल ८.१४

(छ) भ > ह, अविहत्त २ ५, अहिणंदिच ४.४, अहिमुह, अहिराम १०.१, अहिसारिखा ८.५

§ २८. मध्यवर्ती संयुक्त व्यंजनोके विषयमें अवसर्ग संयोगके स्थानपर अवसर्गसंयोगके द्वारा समीकरणकी विधि सर्वप्रधान है। इस समीकरणमें सदैव प्रबलतर ध्वनि दुर्बल ध्वनिको अपनेमें समीकृत कर लेती है, चाहे वह संयुक्त व्यंजनमें पूर्व हो या पीछे। जब पीछे आनेवाला व्यंजन अपनेसे पूर्ववर्ती व्यंजनको समीकृत कर लेता तो उसे पुरोगामी समीकरण कहते हैं—

(क) पुरोगामी समीकरण—आरुट्ट ७.६; उक्कठिय ७.१२, उक्कठिय ५.८; उक्कथ ५.११ उक्कठिय ९.१८, कम्म, जम्म, धम्म आदि।

(ख) पश्चगामी समीकरण जब पुरोगामी व्यंजन अपने पश्चवर्ती व्यंजनको अपने रूपमें समीकृत करता है, जैसे, अज्ज, अग्गि, अमुक्क, कत्थ, जोग आदि।

(ग) जब ऊपमोका समीकरण होता है तो वे दूसरे व्यंजनको सप्राण कर देते हैं। जैसे—अत्थइरि ६.१०, अत्थाण ५.१, कुच्छिय २.२, खंघ ६.११, थम ५.१२, पासत्थ २.५ आदि।

(घ) स्वरभक्तिसे विसंयोजन : आयरिय २.८, आरिसकहा (आर्षकथा) ८.२ उक्कथिय ३.७; किल्लेस १०.२२, दरिसिय ३.१२

(च) संयुक्त व्यंजनका सरलीकरण करके अनुनासिकीकरण : कंचाइणि ७.६, पडिजपइ ८.१६; जिणवंसण २.१८, विमिय ३.१ आदि।

§ २९. कुछ विशिष्ट संयुक्तव्यंजनोके परिवर्तनके उदाहरण

ख्य > ह, लोयाहाणठ ५.४

वव > क, कणिर ४.१५

झ > कख, उक्कित्त ९.१२, दहल्लखण ८.३; भखालिय १.१३

झ > ख, खयकर ३.७, खज्जोयय ७.२, खत्तम्बु ७.१२, खति ११.८; खोणिमडल ४.२१

झ > ह, छुह १.८, छत्त ५.९

झ > झ, झर ६.९

म्ब > ज्झ, डज्झमाण ४.१४

झ > न, नाणावरण १०.२४

> ण, आणत्त ४.१६

> ण्ण, विण्णायण ८.४, अण्णानुवण्ण ८.३

त्म् > प्प, अप्पणु १०.५, अप्पत्त ९.११

त्य > च्, कचाइणि ७.६, कचायणि १०.२५

> च्च्, सच्चावाणी ६.१

त्स् > च्छ, उक्कथ ४.८, उक्कहा ७.१२, उक्कहे ३.१

झ > ज्ज, उज्जाण-३.१२, उज्जोदय १.१५, जिज्जुमालि २.३

ध्य, ध्व > ज्झ, उज्झाट १०.५, बुज्झइ ८.९, अज्झाण (अब्बान) २.८

ध्व > च्च, च्चिकुर > च्चिकुर > च्चिहुर ४.१३

ध्त् > ध्त्, अहरोट्ट ९.१८, आरुट्ट ७.६, दिट्ट ६.१

ध्त् > ध्, वेडिड ६.१

ध्त् > ध्, मसिदाढ ६.१

> द, उट

ध् > ह्, अहिट्टिच ४.१३

ण् > ह्, °ह्	विट्ठ २६; उण्ह १० १५
स्क् > ख्	खंघ ६ ११
स्ख > ख	खलइ
स्त् > ख्	खंभ ४.१३
> थ्	थंभ ५.१२
> त्थ्	कत्थूरिय ८ १४; विणेप : सस्त > ल्हसिय ४ १९
स्व् > थ्	अथाम ४.११, थवइ ४ २; थाण ७.१०, थिउ ५.१४, थोत्त १ २९, थोर ८ ११
> ठ्	ठविय ४ १४, ठाण ५.१०; ठाय (स्याल) ५ ४
स्फ् > फ्	फाडिय ७ १; फलिह्वणु १.१७, फार ४.५
स्म् > म्, स्न्, स्म्	विभिय २ १३, विभउ ३.६, सरिअ ६.९; अम्हइं ५.१३
ह् > घ्	संघरेवि ६ १
ह्व > ह्	विह्लंघल ८.११; विह्लक्फड ३ ८

कारक रूप

संज्ञाएँ : अकारांत पुल्लिग व नपुं० लिग :

एकवचन

प्रथमा : अंतेउरु, आउसु, कुंजरो, चोरु, जणो,
जिणो, तउ, तित्थंकर, तेयं, दिउ, देउ,
देवदत्तु, नरु, निउणु, परम गुघ, वालो,
मऊरो, मुहं, रउजु राउ, रिसहो, वड्ढमाणु,
वरइत्तु, वीरु, वेसरो, सुयणु, सेणिउ, सूरो
द्वितीया : देवसहं, फलुरयणसिहं, (शेष प्रथमानुसार)
तृतीया : कुमरें, जणेण, जिणसरे, ताएँ, देवें, धम्मं,
नाहें, पाविणं, पियरें, भाविणं, राइणा,
राएं, राएण, सुत्तेण, सेणिएण, होरेण

इकारांत-उकारांत पु० व नपु० लिग :

एकवचन

प्रथमा : कइ, नरवइ, नराहिवइ, परिमिद्धि
द्वितीया . मेरु, रवि, रिसि, सामी

तृतीया : मुणिणा, सट्ठिणा, हत्थिणा
पंचमो : कुगइपहं, घराउ, ठायहो उत्थहो, व्हिं,
नियडउ, नयरहो, मुहहो, वामहो
चतुर्थी } अज्जेणए, कज्जे, कज्जहो, केवल्लिहि,
एव } जणेरहु, तेल्लियहो, दइयहो, देवत्ताहो,
पण्ठी } देपहो, निवहो, पएसहो, रज्जहो,
राउलउ, रायहो, वोरहो, सामिहि,
हत्थिहो, नरस्स, पुरिसस्स, पुस्सोत्त-
भस्स, वोरस्स, समुद्धस्स

बहुवचन

गामार, गोवाल, जणु, नायरा, वाला,
पहरणा, रिउणो, विरला, सवा (शवाः)

उज्जाणइं, गयउलाइं, जणाइं, तलायइं,
तीरइं, देसइं, घणइं (प्र० द्वि० दोनोमें)

बहुवचन

अयाणा, कइंदा, गुणिणा
वइरिणो, अहारहिं, उरुयहिं, कुडुविएहिं,
जूयारहिं, तेहिं, विक्खिएहिं, धण्हिं,
नारइयहिं, पहियहिं, भावहिं भिल्लेहिं,
मुहेहिं, सत्थहिं
सेवयहिं । कहहिं, पाइहिं

कामुयाण, खयरण, चदसूराण, भन्वाण,
मुणिदाण, रायाण, तियसह, मिट्ठणहं,
कठहं (पष्ठयार्थे ससमी)

इका-उका : नरवइणो, पट्टणो, विहिणा
 ससमी : अहरप्र, खम्भके, गोट्टुणणे, तरवर
 पच्चूसे, मग्गे, रयणि, रज्जे
 रमणीये, रवणइ, सलोणप्र, सिहरि
 सुयणे, सोत्ते, हत्थि (हस्ते), हियवइ
 घरम्मि, दारम्मि, नाणम्मि, फडडकम्मि
 संबोधन : केवलनाणघरु, ताय, तित्थंकरु, देउ, देव,
 परमेसर, पुत्त, पुरंदर, भवएव, राय
 निविभक्तिकरु : सेणिउ (पछचार्ये), पडिहारय (तृतीयाये)
 स्त्रीलिङ्ग : आकारात, ईकारांत

एकवचन

प्रथमा : अन्छर, कुमारी, खोणी,
 द्वितीया : तिय, पियारी, पुहवि, वसुमइ
 सतुव, सिवएवि

तृतीया : अहिलासें, उत्तालियाप्र, ओसहीप्र
 कुट्टणियइ, °जोईप्र, चाप्र, दित्तिप्र
 विट्ठिए, पढाए, भत्तिए, भित्तिए
 मुद्धियए, °रिद्धिए, लच्छीए, वाणिए
 संकप्र, सुहाए

पचमी

चतुर्थी } अवादेव्यहिं, कतहं, कोइलाप्र,
 एवं } धणियहं, पुट्ठीहं, महिलहं, मुद्धहं,
 षष्ठी } वणमालहं, विह्वइहं, सरिहं, सुद्धिहं
 ससमी : आउसि, कण्णप्र, सेणिण, निउसिहं

सबोधन : कंत, मुद्धिउए, मुद्धि, मुद्ध, सुंदरि.

सर्वनाम : पुल्लिङ्ग-नपुंसकलिङ्ग :

एकवचन

प्रथमा : हउं, तुमं, तुहं, सो, जं, तं, इहु
 एहु, काइं, किं
 द्वितीया : मइं, तउ, तुमं, तं
 तृतीया : मइं, मइ, पइं, तेण, आए, एण, हूजेण
 चतुर्थी } मज्हु, मम, महु, महु वणउ, मे, मोर
 एवं } तउ, तव, तुह, तुहार, तोर
 षष्ठी } तस्स, तहो, तासु, आयहो, स्मस्स,
 एयहो, कस्स, कहां, कहां, कासु,
 जस्स, जसु, जासु, तस्स, तहो, तासु
 संबोधन : तुम

घरहिं, दक्खहिं, नयणेहिं
 नारइयहिं, पाडलियहिं
 भूमंगहिं, °भोयणहिं
 लोयणहिं, विमाणहिं
 घरेसुं, वणेसुं

बहुवचन

अज्जियाउ, कवोला, कामिणिउ
 कुमारियाउ, गोरिउ, ताउ, देविउ, वाविउ,
 साहउ, सणाहउ, सुरमणिउ, वालियाहं,
 राणियणु

अतेउरिहिं, अच्छिहिं
 गोविहिं, तरुणहिं, विट्ठिहिं
 नियवणोहिं, पायारहिं
 वाहहिं, वैल्लिहिं

घरिणिहं, पउसियदइयहं, रमणिहं, घणोच्चत्थ-
 णोणं, लोयणीण, दूरपियाण

करिणिहं, जडमइयहिं, तियहिं, पालंबहिं,
 भुएहिं, मंडुरहिं, कीनासु

बहुवचन

तु० पु० जे

जाइं ताइं
 अम्हारिसिहिं, इयरहिं
 अम्हहं, तुम्ह
 तुम्हहं, वहु (तेषा)
 ताणं, जाणं, जाणं

स्त्रीलिंग :

प्र० एह, क (का), जा (या)

द्वि० क (काम्)

तृ०

तेहिं (ता मिः)

च० प० : तह, तहे, ताह, तिह, कहे, काहि, जाहे

तहुं (तासाम्), एयाण

सर्वनाम, विशेषण और अव्यय :

[१] (अ) परिमाण वाचक विशेषण एत्तिउ, केत्तिउ, जेत्तउ, तेत्तउ एतडउ, तेत्तडउ, एवडा ।

(ब) गुणवाचक विशेषण . एहुउ, जेहुउ, तेहुउ, अम्हारिस, ऐरिस, केरिस, केरिसी (स्त्री०) जारिस, तुम्हारिस ।

[२] अव्यय : (क) स्थल वाचक : एतु, केत्थ, जित्तु, जेतथ, तत्थ, तित्तु, तेत्थ, केत्थुहा, जेत्तह, तेत्थहा; इह, कहिं, जहिं, तहिं, कउ (कुतः) तउ (तत.); अण्णेतह, एत्तहिं, एत्तह, जेत्तह ।

(ख) समय वाचक जा, ता, जाम, ताम, जाव, ताव, एमहि, एवहिं, जामहिं, तामहिं, तावहि, जइयहु, तइयहु, तइया ।

(ग) रीतिवाचक अह, किह, जह, जिहा, जिह, तह, तथा, तिह, जिम, जेम, तेम

(घ) अस्मद् और युष्मद्के पष्ठी रूपोमे 'आर' प्रत्यय युक्त अव्यय : अम्हारउ, तुम्हारउ, महारउ

(च) संज्ञा और सर्वनामोके पष्ठी रूपोके साथ 'केरउ' और 'तणउ' प्रत्यय लगाकर भी अव्यय बनते हैं 'अम्हकेरउ, करवालकेरउ, महुतणउ ।

(छ) संबंधवाचक अव्यय : सहुं (सार्द्धम्) ।

संख्यावाचक शब्द :

एक, एककु, दो, वे, त्रिणि, तिउ, तिष्णि, चयारि, पंच, छ, सत्त, अट्ट, नव, दस, दह, एयारस, एयारह, वारह, तेरह, चउदह, चउदस, पण्णारह, सोलह, सत्तारह, अट्टारह, बीस, बाबीस, पंचवीस, तीस, तेतीस, चउसट्टि, सय, सहस, लक्ख ।

संख्यावाचक विशेषण पढमु, पहिलउ, पहिलारउ, वीयउ, तइयउ, चउत्थु, चउत्थउ, पंचमु, छट्टुम, सत्तम, अट्टम, नवम, दसम, एयारसम ।

तृतीया बहुवचन—तिहिं ।

सप्तमी एकवचन—एककहिं, तइयइ, चउथइ, पंचम, छट्टुम, सत्तम, अट्टमि, नवमइ, दसमइ, एयारसमइ, एयारहम, वारहम ।

सप्तमी बहुवचन—तिहिं, पंचहिं । अन्य रूप- चउक्क, चउक्कउ (चतुष्क) ।

तद्धित प्रत्यय :

अल्ल : एककल्ल, नवल्ल (स्वा० प्र०) । आर : गरुयार (स्वा० प्र०) लहुवार । आल : सांहालिया (नामसे विशेषण) । आवण : भयावण, सुहावण, सुहाविणि (विशेषण) । इक्क : तिडिक्किय, पाइक्क (स्वा० प्र०) । इण : अज्जेणअ । इर : उव्वेविर, कंखिर, कणिर, कोक्किर, नमिर, विच्छिट्टिर, विवरेर (क्रियासे विशेषण) । इल्ल : जइल्ल, रसिल्ल, (नामसे विशेष०) । उल्ल : अहएल्ल, फल्लिहल्ल, भुवणुल्लउ, रमणुल्लउ । एर : जणेर । डिय : चारहडिय (स्वा० प्र०) । तण : नरतण, वुहत्तण (भाववाचक संज्ञा) ल : अंवलउ, जमल, विण्जुल (स्वा० प्र०)

क्रिया रूप

अपभ्रंशमे वर्तमान, भूत और भविष्य, कुल ये तीन 'लकार' हैं। इनमे भी वास्तवमें कुल दो, वर्तमान और भविष्यके ही रूप उपलब्ध होते हैं। भूतकाल वाचक बहुते थोड़े गिने-चुने शब्द उपलब्ध हैं। शेष भूतकालका सारा कार्य कृदन्तोसे लिया जाता है और केवल वर्तमान तथा भविष्यके ही अधिक रूप अपभ्रंश काव्योमे उपलब्ध होते हैं। आत्मनेपद और परस्मैपदका भेद भी अपभ्रंशमे नहीं है और वृत्तियोमे प्रमुख रूपसे विध्यर्थ और कुछ थोड़े-से आज्ञार्थकरूप प्राप्त होते हैं। इच्छार्थक और आज्ञार्थकके रूप समान ही हैं। इनके अतिरिक्त कर्मणि-प्रयोगके अनेक रूप उपलब्ध होते हैं। इन तत्त्वोसे ही अपभ्रंशका दिया संवंधी संघटन-संविधान और प्रयोगोका प्रामाणिक विवरण उपलब्ध हो जाता है।

वर्तमान काल

एकवचन

बहुवचन

प्र० पु० : अणुसरमि, उदकीरमि, जामि, भणमि, भुजमि, लेमि, होमि ।

द्वि० पु० : जाणसि, मुणहि, होसि ।

तृ० पु० : अणुणइ, अटिमट्टइ, आउच्छइ, ईहइ, उप्पज्जइ, करइ, उप्पज्जंति, फंदहिं, कीलहिं, गुदंति
कुणइ, गच्छइ, जाइ, पढइ, सि (अस्ति), होइ जुप्पंति, दीसंति रणरणाहिं, रमति

भूतकाल

आसि (आसीत्)

तृ० पु० : अच्छोडिउ, अब्भसियउ पइट्ठु आय—आगता (स्त्री०) गय—गता (स्त्री०)

भविष्यत् काल

प्र० पु० : जाएसमि, लेसमि

द्वि० पु० : .

तृ० पु० : उप्पज्जेयइ, करेसइ, जाएसइ, पडिहहिं, भमेसइ, लेसइ, विज्जाएसइ, होसइ ।
बहुवचन . होएसहिं, होसति ।

आज्ञार्थ

द्वि० पु० . करउ, करइ, करि, रुइ, कह, जाणाहि, जाहि, भणु ।

विध्यर्थ

उ० पु०

द्वि० पु० . करिज्जहि, दिखंताहि, दिज्जहि, देहि देह, पव्वज्जहि, पेक्खु, पेक्खइ, भणहि, भविसज्जउ ।
बहुवचन . वरइ

तृ० पु० . किज्जउ, जयउ, दिज्जउ विज्जयतु, होउ ।

कर्मणि प्रयोग

विध्यर्थ कृदन्त—अच्छेवउ, अगुचेट्टेवउ, करिव्वउ, जाएव्वउ, होएव्वउ, खंचेवाड्डे, वंचेवाड्डे ।
 हेत्वर्थ कृदन्त—अणुसासिउं, अहिएउं, गंतु, गंतूण (गतमर्थे) जिखेवण्ण, पवोत्तुं ।
 संबंधक या पूर्व कृदन्त—अंचवि, अडोहिय, अणुनणिवि, संरेवि, अप्पिवि, आयणवि, आयणिवि;
 उप्पाइवि, करवि, करिवि, खंचवि, गंवि, जणवि, तरवि, नमंसेवि, पइसरेवि पइसिवि, पेवखवि,
 पेक्खिवि; वइसरेवि, वच्चिवि भणवि, मेल्लवि, मेल्लिवि, मेल्लिवि
 ऊणः तल्लिज्जणु, मुत्तूण; प्पिणु आउच्छेप्पिणु करेप्पिणु, जाएप्पिणु, देप्पिणु, पणवेप्पिणु मरेप्पिणु,
 हरेप्पिणु, होएप्पिणु; विणु उड्डेविणु, देविणु, लएविणु ।

धातुएँ

प्रे० धातु—कारियं, नच्चावइ, नच्चाविय (विशे०) बुज्जाविउ (विशे०) पइसारइ, पाविज्जइ ।
 पीन'पुन्यदर्गक धा०ः—पेक्खु पेक्खु, बल-बल, वलु-वलु ।

नामधातुः फुक्कारइ, सहावइ, हक्कारइ ।

ध्वनिधातु—करयइ, कसमसइ, कुलकुलइ, गडयइ, गुमगुमइ, घवघवइ, छमछमइ, रणरणइ,
 डमडमिय, तडतडिय, धुमधुमिय, सलसलिय

उपर्युक्त प्रकारसे प्रस्तुत काव्यमे प्रयुक्त स्वरो, व्यंजनो, उनके परिवर्तनों, विकारो, 'य' 'व' श्रुति
 आदि नियमों, कारक व क्रिया रूपो, तथा तद्धित और कृदन्त प्रत्ययो आदिका विश्लेषण 'जंबूसामिचरिउ'
 की भाषा और व्याकरणका स्वरूप स्पष्ट कर देता है ।

९. वीर तथा अन्य कवि

(क) 'जंबूसामिचरिउ' पर पूर्वकालीन संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश कवि तथा साहित्यकारोंका
 प्रभाव : अश्वघोष, कालिदास, प्रवरसेन, वाण, भवभूति, स्वयंभू(७००ई०), सोमदेव, पुष्प-
 दंत, और गुणपाल ।

(ख) 'जंबूसामिचरिउ' का पश्चात्कालीन संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश कवियोंपर प्रभाव :
 नयनदि, रङ्गू, ब्रह्म जिनदास और राजमल्ल ।

प्रायः उच्चकोटिका प्रत्येक कवि-साहित्यकार अपने पूर्ववर्ती महाकवि एव साहित्यकारोसे अपनी
 रचानामे अनेक प्रभावोको ग्रहण करता है । ये प्रभाव काव्यके शरीर जैसे शब्द-संचय, पद संघटन और
 अलंकार योजना आदिपर भी कार्य करते हैं; और काव्यकी आत्मा, जो उसकी सौली गुण, रस, भाव,
 कथावस्तु एवं काव्यात्मक कल्पनाएँ हैं, उनपर भी । और इस प्रकारसे धीरे-धीरे काव्यके शरीर और
 उसकी आत्माका अलंकरण-उद्योतन करनेके हेतु जिन तत्त्वोंका बार-बार अनेक महाकवियों-द्वारा प्रयोग
 किया जाता है, वे ही तत्त्व काव्य-साहित्य-भवनके मूल आधार स्तंभ बन जाते हैं । उन्हींको हम 'साहित्य-
 शास्त्रके सिद्धांत' रूपसे स्वीकार करने लगते हैं । हिंदीके रीतिकालीन साहित्य तक प्राचीन एवं मध्यकालीन
 संपूर्ण भारतीय साहित्य इन्हीं सिद्धांतोकी भित्तिपर खड़ा हुआ है । 'जंबूसामिचरिउ'का रचयिता कवि वीर
 सब अर्थोंमें रीतिवद्ध कवि है । अतः उनमे अपनी रचानामे रीति अर्थात् साहित्यशास्त्रके सिद्धांतो विपय रु
 उन सभी आदर्शोंका ग्रहण और पालन किया है जो उसके पूर्वकालीन महाकवियोने स्थापित और पोषित
 किये थे । इसीलिए वीर कविकी रचानामे जहाँ सभी प्रमुख रसों, भावों, माधुर्यादि गुणों, वैदर्भी आदि
 रीतियो एव उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, अतिशयोक्ति आदि अलंकारोके सुंदरसे सुंदर प्रयोग व उदाहरण
 उपलब्ध होते हैं, वही ऐसी अनेक काव्य कल्पनाएँ, भावनाएँ एवं वर्णन भी मिलते हैं, जो प्रमुख प्राचीन
 साहित्यकारोकी रचनाओसे वही शब्दत, कही अथत और कही भावात्मक दृष्टिसे समानता रखते हैं ।

‘जंबूसामिचरिउ’ पर प्राचीन साहित्यकारोंके इस प्रभावको तुलनात्मक संदर्भोंके साथ यहाँ प्रस्तुत किया गया है—

अश्वघोष (प्र० श० ६० पू०) और वीर-

यह पहले कहा जा चुका है कि ‘जंबूसामिचरिउ’की मुख्य कथावस्तुमें भवदत्त-भवदेवकी कथापर सौंदर्य नंदके भगवान् बुद्ध और नंदकी कथाका प्रभाव बहुत गहरा और स्पष्ट है। नंदकी घर वापस न लौटने देनेके लिए बुद्धके द्वारा उसके हाथमें अपना रिक्त भिक्षा-पात्र देने और ठीक उसी प्रकार जंबूसामिचरिउमें ‘भवदेवके विवाहके समय ही मुनि भवदत्तका उसके घर जाना एवं भिक्षा ग्रहण करनेके उपरांत मुनिके आदर एवं लोकमयदाके रक्षार्थ भवदेवका अत्यंत अनिच्छापूर्वक, प्रतिक्षण घर लौट चलनेको सोचते-सोचते मुनि भवदत्तके पीछे चलना’, इस प्रसंगसे लेकर एक ओर भवदेव तथा दूसरी ओर नंदको सच्चा बोध एवं वैराग्य प्राप्त होने तकके वृत्तांतका मिलान निम्न संदर्भोंके अनुसार किया जा सकता है :—

जंबूसामिचरिउ	सौंदर्यनंद
अग्रजके } २ १२-४	५ २ पूर्वार्द्ध
साथ } २-१२-५	५ ११ पूर्वार्द्ध एवं ५ १९
जाना } २-१२-१२	५ २०
भवदेवकी दीक्षा: २ १४ १-३	५ १५, ३४, ५१ नंदकी दीक्षा
अंतर्द्वंद्व व } २-१३ ५-६, ९-११; २ १४ ५-१२;	
	४ ४२, ४५, ५ १९, ५, ५०; ७ १६, १७, ४७, ५२;
पत्नीका ध्यान: } २-१५, १-४ १०-१९, २.	नंदका अंतर्द्वंद्व
	१६ १-९, २-१७ ८-९
भवदेवको नागवसूका उपदेश—२.१८ ४-१६	नंदको भिक्षुका उपदेश ८ २१, ४७, ४८, ५२, ५४; ९.६, २६, २९, ४८

इन संदर्भों और संदर्भगत भावनाओं एवं घातावरणपर जितनी ही गहराईसे विचार किया जाय उतना ही यह विचार पुष्टतर होता चला जाता है कि भवदत्त-भवदेवका कथानक सारी जैन-परंपरामें और भवदेवका अंतर्द्वंद्व वीर कविने अवश्यमेव सौंदर्यनंद काव्यसे ही ग्रहण किया है।

कालिदास और वीर

वीरकी रचनामें आत्मनिवेदन, जंबूका जन्म, जंबूको देखकर पुरनारियोंकी काम-विह्वल अवस्था और विशोभ, सेनाके प्रयाणके समय धूलिका उड़ना और घात होना तथा युद्ध-वर्णन इन-विषयोंपर कालिदासके रघुबंध एवं कुमारसंभव महाकाव्योंका प्रभाव स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। उनके तुलनात्मक संदर्भ निम्न-प्रकार हैं :—

जंबूसामिचरिउ	कालिदास . रघुबंध तथा कु० म०
आत्मनिवेदन १ ३ ७-१०	वही : १ २-४ रघुबंध
भवदत्त-भवदेवका परस्पर स्नेह २ ५ ९	शिवपार्वती संयोग, रघुबंध १ १
जंबूका जन्म ४.८ १-२, १२-१४	रघुका जन्म, रघु० ३.१५; एवं कार्तिकेयका जन्म कु० म० १ १ ३८-३८
जंबूसामीने दर्शनमें पुरनारियोंकी विज्ञानता ४.११.८-११	रघुवर्णन (रघु० ७ ५-९; ७ १२) तथा कार्तिकेयके दर्शनमें नारियोंकी अवस्था, कु० म० ७ ५७

सेना प्रयाण और धूलि उड़ना ५ ७.१-५.६.५.४-८	रघुकी दिविजय यात्रामे युद्धके समय उड़ी धूलि : रघु० ७ ३९.४१, ४२, ४३
वंसतवर्णन ४ १-५.१४	वही : कु० स० ३.३२
श्रेणिककी राजवभाका वर्णन ५.१.१६-१८	रघुके प्रभावका वर्णन रघु० ९.१३
श्रेणिक राजाका वर्णन १ ११ १७-१८ गाथा ५	सुदर्शन राजाका वर्णन रघु० १८.४४
युद्धवर्णन ६.५ से ६.१०; ७.१; ७.६	वही : कु० स० १६.२; २९, ३०, ३२, ३९, ४९; १७.
माया युद्ध ६.१४.१-४, ७ ९ ५-११ १	१६, १९, २२, १६.२६, ३५, ३७, ३९, ४१-४५
युद्धवर्णनमे कुमारसंभवके १६वें और १७वें सर्गों- की सर्वत्र छाया तथा उल्लिखित संदर्भोंमें बहुत अधिक साम्य है ।	

प्रवरसेन (लगभग ४५० ई०) और वीर

वीर कविने अपनी रचनामें जिन घोड़ी सी कृतियोंके नामोल्लेख (जं० सा० च० १.३) किये हैं, उनमें प्रवरसेन कृत् मेतुवंच भी एक है, और उनके रचियताको महाकवि कहकर वीरने प्रवरसेनके प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित किया है । प्रभावकी दृष्टिसे निम्न संदर्भ उल्लेख्य हैं :—

जंबूसामिचरिउ

सेतुबंध

३.१२.१-२ वसंत वर्णन	१ ३५-३६ हनुमानागमन
५.७.१-५ सेनाके प्रयाणसे उड़ती हुई धूलिसे मध्याह्नमें ही सूर्यास्तका दृश्य	१३ ३९, १३.६१ युद्धमे उड़ती हुई धूलिका दृश्य
७ १२ विद्याधर सैन्यके पराजयका दृश्य । इन उल्लिखित संदर्भोंके अतिरिक्त ६वीं और ७वीं संधियोंमे युद्ध-पुनर्व्युद्धके वर्णनपर सेतुबंधके १३वें आश्वासका प्रभाव परिलक्षित होता है ।	१३.७५ राक्षस सैन्यके पराजयका दृश्य

बाण (७वीं शती ई०) और वीर

हर्षचरितकार महाकवि बाणका भी कुछ प्रभाव 'जंबूसामिचरिउ' की रचनामें दृष्टिगोचर होता है । निम्नलिखित प्रसंग विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं :—

जंबूसामिचरिउ

हर्षचरित

१.२.१४-१२ चोर कवि	१ ६ चोर कवि'
१.११ १५-१८ श्रेणिकका प्रताप वर्णन	उच्छ्वास ४, हिं० अनु० पृ० १५५, हर्षका प्रताप वर्णन
५ १३ १६-२१ क्रोध और क्रोधीकी निंदा	उच्छ्वास १, हिंदी अनु० पृ० ११-१२, दुर्वासके क्रोध- की निंदा ।

भवभूति (८वीं श० ई० पूर्वार्द्ध, लगभग ७००-७३३ ई०) और वीर

भवभूतिकृत उत्तररामचरितके पाँचवें अंकमे चंद्रकेतु और लवके युद्ध वर्णनका भी कुछ प्रभाव जंबूसामिचरिउपर दिखाई देता है । निम्न उद्धरण मिलाकर देखिए :—

जंबूसामिचरिउ

जंबू और रत्नशेखरकी वात्ता

ज अट्टसहस्रहरणकराहँ
 माराचिय वरविज्जाहराहँ ।
 हेवाइउ इय सुहृदत्तणेण
 चारहृदि न मण्णमि एत्तडेण ।
 जइ अत्थि अंगि तउ जुज्झ गम्बु
 तो अच्चउ सेणु नित्तु सव्वु ।
 तुज्झु वि मज्झु वि सगामु होउ
 अज्जु वि मा मरउ वराउ लोउ । ७.७ ५-७

उत्तररामचरित

चद्रकेतु और लवकी वात्ता

भो भो लव महाबाहो किमेभिस्तव सैनिकैः ।
 एषोऽहमेहि मामेव तेजस्तेजसि शाम्यतु ॥ (५.७)

तत्किं निजे परिजने कदनं करोषि
 नन्वेष दर्पेनिकषस्तव चन्द्रकेतुः ॥ ५ ९ अंतके दो चरण

इन उद्धरणोंमें परिस्थिति और वातावरण एव प्राज्ञोंके अनुसार जो परिवर्तन किये गये हैं वे सरलता-से समझे जा सकते हैं। जंबूसामिचरिउमें पक्षमें जंबू हैं, और विपक्षमें रत्नशेखर नामक दक्षिण व दृष्ट रत्न-शेखर। उत्तररामचरितमें पक्षमें हैं चद्रकेतु और विपक्षमें अवतक अज्ञात स्वयं रामपुत्र लव। अतः प्राज्ञोंके स्वभाव, प्रकृति तथा परिस्थितिके अनुरूप वीर कविने अपनी रचनामें संबद्ध प्रसंगमें उचित परिवर्तन कर उसके भावको ग्रहण कर लिया है; और वह यह है कि 'सामान्य सैनिक हमारे-तुम्हारे बल परीक्षा-की वास्तविक कसौटी नहीं हैं। अतः ये बेचारे व्यर्थ क्यों मरें? केवल हमारा तुम्हारा युद्ध हो जाय। उसमें हम लोगोकी वास्तविक शक्तिपरीक्षा हो सकेगी।' जंबूसामिचरिउ (७ ९) में जंबू और विद्याधरके आग्नेयास्त्र और वारुणास्त्र युद्धमें भी ल० रा० च० (६६ के उपरांत गद्य) की कुछ छाया देखी जा सकती है।

स्वयंभू (लगभग ७०० ई०) और वीर

वीरने महाकवि स्वयंभूका उल्लेख (ज० सा० च० १२; ५१) अत्यंत आदरपूर्वक और अपभ्रंशके प्रथम श्रेष्ठ कविके रूपमें किया है। जंबूसामिचरिउपर उनके पञ्चमचरिउका प्रभाव निम्न दो स्थलोंपर अत्यधिक स्पष्ट है। स्वयंभू कृत राजगृह वर्णनको वीर कविने पर्याप्त विस्तार करके मगध देशके वर्णनके रूपमें अपनी रचनामें समाविष्ट कर लिया है। मिलाने योग्य प्रसंग हैं —

वीरका आत्मनिवेदन १३ १-६

स्वयंभूका आत्मनिवेदन प० च० १३, २३ १ २-५,
९-१०

वीरकृत मगधवर्णन १ ६-७-८

स्वयंभू कृत राजगृह एव मगध वर्णन (प० च० १ ४-५)

इनके अतिरिक्त सैनिक वाद्यो (ज० सा० च० ५६; प० च० ६३ १) तथा अनेक देश नामोंमें भी साम्य है। प० च० (६५ १ और ६६ ९) के युद्धवर्णनमें १, २ पंक्तियोंकी छाया भी वीरके युद्ध-वर्णनमें दिखलाई पड़ती है।

सोमदेवसूरि (वि० सं० १०वीं शती) और वीर

सोमदेव कृत यशतिलकचम्पू (रचनाकाल वि० सं० १०१६) भारतीय साहित्यका एक अनमोल एव अनुपम रत्न है। 'गद्य कवीना निकप वदन्ति' यह उक्ति इस रचनामें उसी प्रकार चरितार्थ होती है, जिस प्रकार कि बाणकृत हर्षचरित और कादंबरीमें। अपभ्रंश महाकवि पुष्पदंत इनके लगभग समकालीन रहे हैं। पुष्पदंत कृत महापुराणकी रचना सोमदेव कृत यशतिलकचम्पूसे, छह-मात वर्ष बादकी तथा जसहर्ष-चरिउ एव पाण्डुमारचरिउ और भी पीछेकी रचनाएँ हैं। अतः प्रतीत होता है कि पुष्पदंतने अपने

‘जसहरचरिउ’ की सपूर्ण कथावस्तु यथास्तित्तलकसे ली है। हाँ, पुष्पदंतकी काव्यप्रतिभा अपनी अद्वितीय है, यह निर्विवाद तथ्य है। वीर कृत ‘जंबूसामिचरिउ’ की रचनामे यथास्तित्तलकका प्रभाव निम्न-संदर्भमे विशेष रूपसे दिखाई पडता है —

जंबूसामिचरिउ

यथास्तित्तलकचंपू

चोरकवि १२ १४ १५

वही : १.१३

कथ अणवण परियत्तणु वि ..

कृत्वा कृतीः पूर्वकृताः पुरस्तात् प्रत्यक्षरं ता. पुनरीक्षमाणः ।

तथैव जल्पेदथ सोऽन्यथा वा स काव्यचौरोऽस्ति स पातकी च ।

कवि और काव्य : कव्हु जे कइविरयइ एवकगुणु*** १.२.८

१.१६

वही . चिरकइकव्यामयमुहाण ***

७.१गाथा १

१.३३

वही : विजयंतु जए कइणो***

१ ६.७-८

१.२५

१.५ १०-१५ एवं १ १८ २०-२१ संस्कृत पद्य

आत्मनिवेदन . एक्कु जे पाहाणु हेमु जणइ*** १.२ ९

१.२८

कवि और काव्य तुम्हेहिं वीर कव्वं ***चिरकव्वतुलातुलियं

९.१ गाथा १-२

१.२९

वही : विह्वेण रायनियडत्तणोण*** १०.१ गाथा १-२

१.३०

आत्मनिवेदन -करजोडिदि विउसहो अणुसरमि*** ।

अवसद्धु नियवि मा मणि धरउ*** । १.२.६-७

१.३६

वसंत वर्णन : मलयपवनके पक्षमे :

राजाके पक्षमे : कुत्तलकाम्तालकभङ्गनिरत

कुंतलि कुतलभरपत्तल्लणु ४.१५ ११

१.२११

पुष्पदंत (११वी शती विक्रम पूर्वार्द्ध) और वीर

अपभ्रंश महापुराण (रचनाकाल वि० सं० १०२२), जसहरचरिउ एवं णायकुमारचरिउके रचयिता महाकवि पुष्पदंत अपभ्रंशके मूर्धन्य कवि है। ये ही दूसरे व्यक्ति हैं, जिनका नाम स्वयंसूके पद्यत् द्वितीय-कवि (जं० सा० च० ५.१) के रूपमे वीर कविने अत्यंत आदरपूर्वक लिया है। और यह सच भी है कि अपभ्रंश साहित्यके इतिहासमे रचनाश्रीकी साहित्यिक उत्कृष्टताकी अपेक्षासे स्वयंसूके उपरांत स्वतः पुष्पदंतका नाम मुखपर आ जाता है। जंबूसामिचरिउकी रचनामे पुष्पदंतके महापुराण और णायकुमारचरिउका प्रभाव अत्यंत व्यापक और गहरा परिलक्षित होता है। देश-ग्राम अटवी एवं नारीका नख-शिल वर्णन, सुंदर नायकके दर्शनसे पुरनारियोकी विह्वलता, युद्ध, नायकका गृहत्याग आदि सभी प्रकारके वर्णनोंपर पुष्पदंतके ऐसे वर्णनोंकी गंभीर छाप सर्वत्र भलकती है। उदाहरणार्थ निम्न संदर्भ प्रस्तुत हैं:—

जंबूसामिचरिउ

पुष्पदंत

१ ६.१६-१ ८ ८ मगध देश वर्णन

वही : णा० कु० च० १ ६ ४-११

५.९ १, ३-१० विंध्य देश वर्णन

जस० च० संवि १ योधेयसूमि वर्णन

१ मगध देशका वर्णन स्वयंसू, पुष्पदंत और वीर तीनोंने क्रमभंग एक समान, पर एकसे दूसरेसे बढ़ते हुए क्रमसे किया है ।

तथा ३ १ १८-१९ पुष्पलावती विषय वर्णन

'मंवररोमघणचलिय ... 'से लगाकर
जहि उच्छुवणहैं रघसचिराइ
... ..

जहि जणघणकणपरिपुण्यगाम
पुर-णयर-सुसीमाराम-साम', तक
तथा ज० च० सालव-ग्राम वर्णन :
'जहि हालिणिह्वणिवद्धचक्रु' से लगाकर
चगज दक्खालिवि वयणचंडु' तक

५८ ३१-३४ विध्याटंभी वर्णन

१ १२.१-५ श्रेणिककी रानियोका सौदर्य वर्णन
तथा ४.१२ १५-१६ एवं ४.१३ कन्या सौदर्य वर्णन
४.१०.८ से ४.११.१३ जंबूके दर्शनसे पुरनारियोकी
विह्वलता

णा० कु० च० ८.३ ८ विजय नगरके समीप नंदनवन
णा० कु० च० १.१७ ८ से १२, १५-१६ कन्या-
सौदर्य वर्णन
महापुराण ८.३.२-३ वसुदेवके दर्शनसे नारियोका
कामोन्माद एवं णा०कु०च० ५-८ नागकुमारके दर्शनसे
काशमीरकी नारियोकी मदनोन्मात्तना

५-१.१९ राजवरवारका प्रतिहार

जस० च० वही
तहि धवसरि पडिहारें वरेण कणममयदंडभंडियकरेण ।

युद्धवर्णन —

५.१३ १-५ जंबूका दौत्य और रत्नशेखरको
विलासवतीके लिए दुराग्रह एवं दुर्नीतिको
छोडनेके लिए प्रेरणा तथा उसकी भर्त्सना

णा० कु० च० ७=१३-५-६ नागकुमार-द्वारा अलय-
नगरके राजाकी भर्त्सना
भगिण्यं कुमारेण कयतियसतीसेण
पाविट्ट खदो सि एएण बोसेण ।
परघरणि परतवणि परदविण कखाए
मरिहिसि दुच्छार-खलचोरसिक्खाए ।

६=९. ३-९, ७-५. १-१४, ७-६ युद्ध

णा० कु० च० ७.७ गिरिनगरमें युद्ध
मडमुहमुक्क.....
भोडियछत्तवडवसंडइ

६.८.५-७, ६.१० १—४, ७ १ १०-२२ युद्ध
भूमिका दृश्य

णा० कु० च० ४ १०; ४ १५ १-८ युद्ध एव युद्ध-
भूमिका दृश्य

७.१० जंबू-रत्नशेखर युद्ध

णा० कु० ५.४ नागकुमार-दुर्वचन युद्ध

८. ४ ५-८ सत्युवलक्षण

,, ७ १५ ७-१० नागकुमारके जन्मकी सार्थकता

९ १४.६-७ पुत्रके वैराग्य लेनेको संभावनासे
मांकी विकलता

म० पु० ८३.७ वसुदेवके गृहत्यागसे भाभी शिवदेवी-
की विकलता

वावेत्ताहि जंबूकुमारजणणि

सिवएवि जेम दुहवियलपाण

१ इस प्रसंगको वीरने परिवर्तित रूपमें लिया है। महापुराण (८६.२) में जहाँ नेमिके युद्ध-
त्यागपर माता शिवदेवीके दुःखसे विकल होनेका प्रसंग आता था, उसे पुनर्दंतने पूर्णरूपसे
ढाल दिया है। यहिक म० पु० ८३.७ में अपने देवर वसुदेवके गृहत्यागपर शिवदेवीकी
शोकविह्वलताका सामिक वर्णन किया है। यहाँसे संकेत ग्रहण कर धीरे कतिने उदं चहाँसे
उठाकर नेमिनाथके गृहत्यागके साथ संयुक्त कर दिया है, जो इस प्रसंगमें अधिक उचित भी है।

गुणपाल (वि० की ११वीं शती या उससे पूर्व) और वीर

'जंबूसामिचरिउ' की कथाकी पूर्वकालीन दीर्घ परंपरा और कथास्रोतोंके अव्ययन (प्रस्ता०— ३ पृ० ३५-३७) में यह कहा जा चुका है कि मूल कथावस्तुके गठन एवं अंतर्कथाओंके चयन इन दोनों ही तत्वोंमें वीर कविकी प्रस्तुत रचनापर गुणपाल कृत प्राकृत 'जंबूचरियं'का अत्यधिक प्रभाव है, और यही 'जंबूसामिचरिउ'का आदर्श आधार ग्रथ है। इसी प्रकार काव्य-रचनामें भी अनेक स्थलोंपर जं० सा० च० पर 'जंबूचरियं'का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। मूखं हाली (अंतर्कथा क्र० १); कामातुर वानर (कथा क्र० ४) तृपित वणिक् पुत्र (कथा क्र० १०; जंबूचरियं में इंगालदाहक) एवं व्यभिचारिणी वणिक् वधू (कथा क्र० ११; जंबूचरियंमें व्यभिचारिणी रानी, कथा क्र० १६) के आख्यानोंकी काव्यात्मक रचनामें भी वीर कविने गुणपालसे बहुत अधिक प्रभाव ग्रहण किया है। इनके अतिरिक्त इन रचनाओंके निम्न संबंध तुलनीय हैं :—

जंबूसामिचरिउ

जंबूचरियं

सज्जन स्तुति १.२३.

वही : १.१८

कविका आत्म-निवेदन, रचनाकी पूर्वपरंपरा : महाकवि-रचित ग्रंथ

वही : १.४१

संघ्यावर्णन ८.१४.१३-१५; २१; एवं १०.२५.१०-११ आदि ।

वही : ७.११-१२

वीर और नयनंदि

ज० सा० च० की प्रस्ता०—२, पृ० १३ पर यह लिखा गया है कि "वीर कविका समय वि० सं० ११०० से पूर्व होनेका एक अति प्रबल एवं अकाट्य प्रमाण यह है कि वि० सं० ११०० होनेवाले मुनि नयनंदिके 'सुदंसणचरिउ' पर 'जंबूसामिचरिउ'का अत्यंत गंभीर और प्रचुर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।" वहाँ इस कथनकी परीक्षाका स्थान न होनेसे इसकी पुष्टि नहीं की जा सकती थी। यहाँ नयनंदिकी रचना-पर 'जंबूसामिचरिउ' के प्रभावकी जांच विस्तारसे की जा सकती है।

मुनि नयनदिने अपने 'सुदंसणचरिउ' की रचना, भोजराजके समयमें, वि० सं० ११०० व्यतीत होनेपर धारा नगरीमें रहकर पूर्ण की थी। 'सुदंसणचरिउ' पर 'जंबूसामिचरिउ'के प्रभावकी जांच करने हेतु सु० च० की कथावस्तुकी संक्षिप्त जानकारी आवश्यक है। वह इस प्रकार है—

भ० महावीरकी स्तुति और विनय प्रदर्शनके उपरांत मुनि नयनंदि कथा प्रारंभ करते हैं। मगव-वेशके राजगृह नामक नगरमें राजा श्रेणिक राज्य करता था। उसकी महादेवीका नाम चेलना था। एक दिन एक पुरुषने दरबारमें आकर विपुलाचल पर्वतपर भ० महावीरके समोशरण सहित घुमागमनकी सूचना दी। राजाने सेना व प्रजासहित भगवान्की चंदनाके निमित्त प्रस्थान किया। उन्हें विपुलाचलके दर्शन हुए और वे सब भ० महावीरके समोशरणमें पहुँचे। भगवान्की स्तुति-चंदनाके पदचात् राजा श्रेणिकने गौतम गणधरसे पंचनमस्कार मंत्रके प्रभावके संबंधमें प्रश्न किया। इस प्रश्नके उत्तरमें गौतमने निम्न-लिखित कथा कहनी प्रारंभ की :—

अगदेशकी चंपानगरीमें घाईवाहण नामका राजा था। उसकी महादेवीका नाम अमया था। इसी नगरमें ऋषभदास नामक सेठ अपनी अहंदासी नामक सेठानीके साथ सुखपूर्वक रहता था। उनके घर सुभग नामक एक सरल हृदय श्वाल युवक रहता था। एक दिन सुभग गोपने वनमें एक महान् मुनिराजसे पैंतीस अक्षरोवाला पंच नमस्कार मंत्र सुन लिया और मुनिराजकी तेजस्वितासे प्रभावित होकर हर समय सोते, उठते, बैठते, चलते, जाते, रोते, हँसते दिन-रात उसीका पाठ करने लगा। ऋषभदास सेठने गोपके मुखसे मंत्र सुनकर उसका बड़ा माहात्म्य बतलाया, और श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उस मंत्रका पाठ करनेकी कहा। एक दिन गंगामें जलक्रीडा करते समय सुभग गोप एक हृदय विदारक खूंटमें फँस गया। वह भक्तिपूर्वक णमोकार मंत्रका पाठ करते हुए यह निदान (इच्छा) करके श्रुत्युकी प्राप्ति हुआ 'यदि इस मंत्रका कोई

प्रभाव हो तो मरकर मैं पुनः इसी बणिक् कुलमे जन्म लूँ।' उसका यह निदान सफल हुआ। उसी रातको सेठानी अहर्दाभी (जिनवासी) ने 'एक विशाल-पर्वत, नया-कल्पवृक्ष, इद्रका घर, विशाल समुद्र और जावत्व्यमान बनिन', ये पाँच स्वप्न देखे। प्रातःकाल मंदिर जाकर मुनिराजसे स्वप्न-फल पूछनेपर उन्होंने कामदेवके समान सुंदर, यशस्वी और मोक्षगामी (चरम शरीरी) पुत्र होना बतलाया। उचित समयपर शुभ मुहूर्तमें पुत्रजन्म हुआ और उसका बड़ा उत्सव मनाया गया। उसका नाम सुदर्शन रखा गया। बाल-क्रीडाएँ करता हुआ वह दिन-प्रतिदिन बड़ा होने लगा। समय आनेपर उसे विद्याध्ययनके लिए भेजा गया। उसने नाना विद्याओंमें दक्षता प्राप्त कर ली। उसका शरीर अनेक शुभलक्षणोंसे मंडित था। युवा होनेपर-नगरकी कामिनियाँ उसके दर्शन मात्रसे कामरागसे उत्तेजित, विह्वल और विकृष्ट होने लगी। सुदर्शनकी कपिल नामका ब्राह्मणसे मित्रता हो गयी। एक दिन सुदर्शनने सागरदत्त सेठ और सागरसेना सेठानीकी पुत्री मनोरमाको देखा। वह उसपर अत्यंत आसक्त हो गया। मनोरमा भी उसे देखते ही उसपर मगध हो गयी। दोनों एक-दूसरेके विरहमें व्याकुल रहने लगे। सारिञ्चूत खेलते समय की हुई प्रतिज्ञानुसार उनके पिताओंने दोनोंका विवाह-सवध निश्चित कर दिया। दोनों घरोंमें विवाहकी तैयारियाँ होने लगीं। विवाह हुआ, और मध्याह्न कालमें वैवाहिक भोज। उसके उपरांत मुख-शुद्धि आदि। इतनेमें सच्चा हो गयी। वर-वधू घर बाधे। रात्रि हो गयी। वर-वधू दोनोंने यथेच्छ रति-क्रीडा की। समय व्यतीत होनेपर उन्हें एक सुंदर पुत्र उत्पन्न हुआ। सुदर्शनके पिता ऋषभ-दासको समाधिगुप्त मुनिके दर्शन कर, उनके धर्मोपदेशसे वैराग्य हो गया। उन्होंने अपने पुत्र सुदर्शनको लोक-व्यवहारकी उचित शिक्षा दी और अपना दीक्षा लेनेका निश्चय प्रकट किया। सुदर्शनने भी दीक्षा लेनेकी इच्छा व्यक्त की। 'सत्पुत्र ही कुलका रक्षक होता है' आदि रूपसे सुदर्शनको समझाकर, उसे गृहस्थाका भार सौंपकर सेठ ऋषभदासने दीक्षा ले ली। सुदर्शन सुखपूर्वक रहने लगे।

सुदर्शनके मित्र कपिल ब्राह्मणकी स्त्री कपिला उसके रूप-गुणोंकी ख्याति सुनकर उसपर मगध हो गयी। एक दिन कपिलकी अनुपस्थितिमें चतुराईसे उसने सेठ सुदर्शनको अपने घर बुलवाया और उससे अपनी कामेच्छा प्रकट की। 'मैं नपुंसक हूँ' ऐसा कहकर सेठ सुदर्शन वहाँसे बच निकला।

इधर वसंत ऋतुका आगमन हुआ। वनपालने राजाको इसकी सूचना दी। राजाने उद्यान-क्रीडाईयं नगर-निर्गमनकी तैयारी की। नाना वाद्योंका मधुर वादन किया गया। राजा-प्रजा सभी उद्यान-क्रीडाके लिए गये। सुदर्शनकी पत्नी मनोरमा भी उद्यान-क्रीडाके लिए आयी। अमया रानीने-उसके सौंदर्य, सौभाग्य एवं पुत्रवती होनेकी अपनी सखी कपिलाके समक्ष बहुत सराहना की। कपिलाने कहा, 'इसका पति तो षड है, ऐसा मैंने किसीसे सुना है। फिर इसे पुत्र कहाँसे हुआ।' कपिलाके यह कहनेसे उसका रहस्य खुल गया। उसने रानीके समक्ष स्वीकारोक्ति की। इसपर रानीने उसकी वृद्धिका बड़ा उपहास किया, और कपिलाके व्यग्य करनेपर यह दुःप्रतिज्ञा की 'या तो मैं सेठ सुदर्शनसे रमण कहेँगी, या फाँसीमें लटककर प्राण दे दूँगी'। प्रेमियोने खूब उपवन क्रीडा की। परस्पर छलोलियाँ कही गयीं। तदुपरांत सरोवरमें जलक्रीडा की गयी। यथेच्छ क्रीडा करके सब लोग नगरको लौट बाधे।

अमया रानी सुदर्शनके विरहमें दिन-रात भूरने लगी। अतःपुरकी पंडिता नामक धायने उसकी यह दशा देख, इसका कारण पूछा, और उसे जानकर अमया रानीको अपने कुनिश्चयसे टालनेका बहुत सत्प्रयास किया। अमयाने अपना दुराग्रह नहीं छोड़ा। हारकर पंडिताने सुदर्शनको महलमें लानेकी योजना बनायी। एक अष्टमीके दिन जब सुदर्शन सेठ रात्रिमें श्मशानमें ध्यानस्थ बैठ था, पंडिता वहाँ गयी। सुदर्शनको बहुत प्रलोभन दिये, पर सुदर्शनने अपना ध्यान नहीं तोड़ा। तब पंडिता उसे सशरीर कंधोपर डालकर उठा ले गयी और पुतलेके बहाने रानीके अंतपुरमें पलगपर ले जाकर बैठा दिया। अमया रानीने सुदर्शनको बहुत प्रलोभन दिये। स्त्रीसुलभ सभी काम-चेष्टाएँ कीं। डराया धमकाया भी। पर सुदर्शन ध्यानसे नहीं डिगा। तब हारकर रानी उसे वापस श्मशानमें पटकनेको चली। इतनेमें सूर्योदय हो गया। अब रानीने अपनी प्राणरक्षाके निमित्त स्त्री-चरित्र किया। अपने सारे शरीरको नखीसे नोच

हाला, केश विलीन कर लिये, वस्त्र फाड़ लिये और घोर मचा दिया कि यह दुष्ट मुद्गर्जन न जाने कहाँसे धाकर मुझसे बलात्कार करनेपर तुला हुआ है। राजाको यह समाचार मिलते ही उसने अपने भटोकी सुदर्शनको पकड़कर मार डालनेकी आज्ञा दे दी।

इवर सुदर्शनके घर्मध्यानके प्रभावसे एक व्यंतर उसकी रक्षाको आ गया। उसकी माया-निर्मित सेना और राजाकी सेनामे बड़ा भयानक युद्ध हुआ। भटोकी पतिनयोने वीरतापूर्ण कामनाएँ व्यक्त की। फिर राजा और व्यंतरमे युद्ध हुआ। दोनोने एक दूसरेको खूब ललकारा। राजाने व्यंतरको एक दो बार घायल और मूर्च्छित भी कर दिया। पर अंतमे अपनी मायासे व्यंतरने राजाको परास्त कर दिया, और सेठ सुदर्शनसे अपनी प्राणरक्षाके निमित्त क्षमा माँगनेको कहा। राजाने सुदर्शनसे क्षमा माँगी। व्यंतरने राजाको अभयाकी सारी सत्य-कथा सुनायी। इसके बाद राजाने सुदर्शनको आधा राज्य आदि देनेके अनेक प्रलोभन दिये, पर सेठ सुदर्शनको वैराग्य हो गया और उसने जीवन तथा संसारकी क्षणभंगुरता जानकर दीक्षा ले ली। अभया रानीने फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली, और मरकर एक व्यतरी हो गयी।

पड़िता घाय भागकर पाटलिपुत्र पहुँची और देवदत्ता गणिकाके यहाँ रहने लगी। उसने उसे मुनि सुदर्शनका वृत्तान्त सुनाया। यह सुनकर देवदत्ताने भी सुदर्शन मुनिसे रमण करके दिखलानेकी प्रतिज्ञा की। मुनि सुदर्शन धूमते-धूमते पाटलिपुत्र आये और भिक्षार्थ नगरमे गये। देवदत्ता गणिकाने दासीसे कहकर उन्हे घरमें बुलवा लिया। पहले उन्हे स्त्रीसुखके सारे प्रलोभन दिये। फिर तीन दिनो तक उन्हे घरमे बंद करके वेदव्यासुलभ सभी कामचेष्टाएँ कीं। अंतमें निष्फल, निराश होकर मुनि सुदर्शनको ध्यान-चिंतनकी अवस्थामे हमशानमे पटकवा दिया।

इस प्रकार जब मुनि सुदर्शन ध्यानमे लीन थे, उसी समय, अभया (रानी) व्यंतरीका विमान आकाशमार्गसे जाते हुए मुनि सुदर्शनके ऊपर आकर ठहर गया। उसने इसका कारण जाननेके लिए सब ओर देखकर नीचे सुदर्शनको ध्यानस्थ देखा। उन्हे देखकर उसे महान् रोप हुआ, और अपना पूर्वभव (रानीका जन्म) स्मरण हो आया। उसने अपने भूत-वैतालो सहित मुनिपर भयानक उपसर्ग करने प्रारंभ कर दिये। यहाँ भी उसी व्यंतरने आकर मुनिकी रक्षा की और उस व्यंतरीको पराजित कर भगा दिया। ध्यानावस्थित मुनिको कुछ ही समयमे केवलज्ञान हो गया। इंद्रादि देवोने उनकी पूजा-वन्दना की। मनोरमाने भी दीक्षा ले ली, और तप करके मरकर स्वर्ग गयी। सुदर्शन मुनि आठो कर्मोका नाश कर मोक्षको प्राप्त हुए।

‘सुदसणचरित’ की इस संक्षिप्त कथावस्तुके अध्ययनसे हमे ज्ञात होता है कि यद्यपि इस कथाका केंद्रीय तत्त्व ‘स्त्रीका किसी पर-पुरुषपर अगुचित अनुराग’ है, तथापि जिस रीतिसे ‘सुदसणचरित’ की कथाका काव्यात्मक वर्णन और विकास किया गया है, ‘जवूसामिचरित’ की कथावस्तुसे मिलान करने-पर उसमे आदिसे अत तक ‘जवूसामिचरित’ की काव्यात्मक शैली, वर्णनक्रम और वस्तु-व्यापार वर्णनोको अत्यंत स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। इन्हे समानांतर वर्णनोके संदर्भोमे निम्नप्रकारसे दिखाया जा सकता है—

जवूसामिचरित

भ० महावीरकी स्तुति-१. मं० ५-६, ११५
कवित्व, त्याग और पौरुषसे यशकी उपलब्धि ८८. ६-७
कवि विनय १३. ७
सगंधवर्णन १६. २४-२५
राजगृह वर्णन १. ८ ९
हस्त-उपद्रवका दृश्य ४२१ १३-१७

सुदसणचरित

वही ११. ५-६
वही ११. १४
वही १. २-३
वही १. २ १३-१४
वही १ ३ ९
भगवद्दर्शनार्थ सैन्यप्रयाण १७ ९-११

श्रेणिकका विपुलाचलदर्शन १ १५.१०-१२; १ १६ ३
 श्रेणिकका कुशलपर्वतको देखना ५.१२-१५
 सवाहन नगर वर्णन ८ ३ ६-९
 सुद्यवीरकथाका उल्लेख १ ४.४
 जंबूके दर्शनसे पुर-नारियोजी कामोत्तेजना ४ ११.१२-१३
 पद्मश्री आदि चार कन्याश्रीका सौंदर्य ४.१४.५-६
 जंबूके माता-पिता . सेठ ऋषभदास-जिनमती

जंबूकी पत्नी पद्मश्रीके पिताका नाम : सागरदत्त

ऋषभदास और सागरदत्तादिश्रेष्ठियोजी विवाह सवधी-
 वात्सा ४ १४.११-२१
 विवाहकी तैयारी ४ १५ १-५
 विवाह-आगमन और विवाह ८.१२ ३-४
 पद्मश्रीकी रागात्मक उक्ति ८.११.१०

मध्याह्नकालमे वैवाहिक भोज ८ १३.८-१५
 भोजनके उपरात छोडा हुआ उच्छिष्ट ८ १३. १४-१५
 भोजनोपरात मुखशुद्धि ८.१४ १-२
 सव्या-आगमन ८.१४ ८, ९, १२
 सूर्यास्त ८ १४.५
 सत्पुत्र लक्षण ८ ७ १४-१५; ८.८ ९
 वसंत-आगमन ३.११.१४-१५, ३.१२.५, १०-११
 वनपालसे सूचना मिलनेपर भगवद्दर्शनार्थ
 प्रयाणकी तैयारी, नाना वाद्य-वादन २.१४
 उद्यान क्रोडार्थ गमन ४ १६.१
 उद्यान क्रोडामे प्रेमियोजी वक्रोक्तियाँ ४ १७.४, १७
 मियुनोकी जलक्रीडा जलका मुभग युवकके समान
 आचरण ४.१९.११, २१-२२ एवं ४.१९.१८
 कामिनीके नख-व्रण युक्त स्तनकी शोभा ४.१९.१५
 लोगोका सरोवरसे निर्गमन ४ २० १
 वेश्यावाटका चित्र ९ १३ १-२, ३-४, ५
 वधुश्रीकी कामचेष्टाएँ ८ १६.६-१०
 रत्नशेखरकी अप्रमाण सेना-द्वारा केरलकी घेरेवदी ५ ३ ७
 मियुनोकी युद्धके ममान कामक्रीडा ९ १३ १०, ११, १४-१६

युद्धमे धूलिका घात होना ६ ५ २, १०
 हृत्तियोपर स्थित जंबू और रत्नशेखरकी शोभा ७ ८ ६

उन्हीका युद्ध ' चाप आस्फालन आदि ७.८.८, १०, ११-१२

वही १.८.६-१०
 श्रेणिकका विपुलाचल दर्शन १.८.१-५
 चंपापुर वर्णन २ ३.२, ३, ७
 सुद्धयकथाका उल्लेख ३ १ ७
 वही (सुदर्शनके दर्शनसे) ३ ११ २-५
 मनोरमाका सौंदर्य ४.२ १
 सुदर्शनके माता-पिता . सेठ ऋषभदास-
 धर्म्मासी (जिनदासी)
 सुदर्शनकी पत्नी मनोरमाके पिताका नाम :
 सागरदत्त

वही ५.२.५-६; ५.३ ४-१०

वही ५ ४.७-९

वही ५ ५ १-२

वर-वधू-मिलन ५ ५ ६; एवं जलक्रीडा
 ७.१७.१०

वही ५.६

वही ५.६ १५-१६

वही ५ ७, १-२

वही ५ ७.९-१६

वही ५.८. १-२

वही ६ २०.३-१०

वही ७ ५.१-४, ११-१२

उसी प्रकार वसंतमे उद्यान कीडार्थ
 गमनकी तैयारी ७.६

वही ७.७.३

वही ७.१५ ४

वही ७.१७ ३-७, १०

वही ७.१७ ११-१२

वही ७ १७.१९

वही ८.१९.२, ३, ५,

अभयाकी कामचेष्टाएँ ८ २८ ३-५, ८-१०

व्यतरकी मायाभिन्मित अप्रमाणसेना ९ १.११

मियुनोकी कामक्रीडाके समान युद्ध ९ ५.३,
 ६, ७, ८

वही ९ ६ ९-१०

वही (व्यंतर और राजा धार्वाहन) ९.८.
 ९-१०

वही ९ १२ ३, ४, ६-७

विद्युच्चर मुनिपर व्यंतीका उपसर्ग और मुनिकी दृढ़ता
१०-२६

मुनि सुदर्शनपर व्यंतीका उपसर्ग और सुद-
र्शनकी दृढ़ता ९, १७-१९
सुदर्शनको कैवल्य और मोक्ष

जंबूको कैवल्य और मोक्ष

उपर्युक्त संक्षेपोंमें इन रचनाओंमें केवल भावात्मक ही नहीं, बल्कि वातावरण, प्रसंग तथा शब्द और अर्थ सभीमें स्पष्ट समानता है।

वीर और ब्रह्म जिनदास

ब्रह्म जिनदासका कुछ परिचय ऊपर था चुका है। इनका समय वि० सं० १४५० के लगभग है और इनकी अनेक रचनाओंमें जंबूस्वामीचरित (संस्कृत) तथा जंबूस्वामीरास भी हैं। इनमेंसे जंबूस्वामिचरित (सं०) लगभग शब्दशः 'जंबूसामिचरित' का संस्कृत रूपांतर है। 'जंबूस्वामीरास' के संबंधमें उसके उपलब्ध न हो सकनेसे कुछ कहना कठिन है।

वीर और राजमल्ल (वि० की १७वीं शती पूर्वार्द्ध)

पं० राजमल्लकी एक रचना 'जंबूस्वामीचरित्रम्' (संस्कृत) है, जिसका रचनाकाल वि० सं० १६३२ है। यह रचना भी कहीं विस्तारसे, कहीं संक्षेपमें 'जंबूसामिचरित' का संस्कृत रूपांतर है।

उपर्युक्त दो रचनाओंके अतिरिक्त हेमचंद्र (१३वीं शती ई०) के परिशिष्ट पर्वकी रचना पूर्णतः गुणपालके 'जंबूचरित'के आदर्शपर की गयी है। संभव है हेमचंद्रको 'जंबूसामिचरित' भी उपलब्ध रहा हो। एक महत्त्वकी बात यह है कि हेमचंद्रके प्रसिद्ध प्राकृत व्याकरणमें जो अनेक दोहे उद्धृत किये गये हैं, उनमेंसे कुछ 'जंबूसामिचरित'की गाथाओंसे पूर्ण समानता रखते हैं। इससे हेमचंद्र-द्वारा वीरकी इस रचनाको देखने व उसका ऋणी होनेकी संभावनाको कुछ अधिक बल मिलता है। वे दोहे निम्नलिखित हैं:—

धवलु विसूरह सामिअहो गच्छा भर पिक्खेवि ।
हळं कि न जुत्तउं दुहुं दिसिहिं खंडइं दोणिण करेवि ॥८५॥
मइं वुत्तउं तुहुं धुव धरहि कसरेहिं विगुत्ताइं ।
पई विणु धवल न चडइ भर एम्बइ वुन्नउं काइं ॥१६१॥
पाइ विलागी अन्नडी सिह ल्हसिउं खन्धस्सु ।
धो वि कटारइ हत्यडउ वलि किज्जउं कंतस्सु ॥१९९॥

—डॉ० नामवर सिंह : (हिंदीके विकासमें अपभ्रंशका योगदान, तु० संस्करण)

इन दोहोंका मिलान क्रमशः जं० सा० च० के ७ ६ २६-२७ (गाथा ६), ७ ६ २०-२१ (गा० ३) तथा ६.३ ९-१० से करणीय है।

वीर और रङ्गू:—अनेक अपभ्रंश ग्रंथोंके वर्त्ता रङ्गू विक्रमकी १५वीं शतीके हैं। इन्होंने अपनी दो रचनाओंमें वीरकविका उल्लेख किया है। परन्तु उनकी रचनाओंपर वीरकी कृतिका कितना प्रभाव है, इस संबंधमें कुछ कहना शक्य नहीं है, क्योंकि संपादकको रङ्गूकी रचनाओंका अध्ययन करनेका सुअवसर प्राप्त नहीं हो सका।

१०. समसामयिक अवस्था

भौगोलिक स्थिति, भारतकी चतुर्दिक् सीमाएँ, पर्वत, वन, वन्य जीवन; ग्राम और ग्रामीण जीवन; नगर और नागरिक जीवन; आर्थिक अवस्था, सामाजिक स्थिति, शिक्षा और साहित्य; एवं धार्मिक स्थिति

प्रत्येक युगका सच्चा साहित्यकार, कवि या महाकवि स्वयं अपने समयकी सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक परिस्थितियोंके परिप्रेक्ष्य एवं पृष्ठभूमिके पटपर ही अपने वर्णविषयके कालकी श्युक स्थितिके-चित्रकी रेखाएँ अंकित करता है। वह किसी भी कालकी स्थितियोंका वर्णन करे, परंतु उसके अनुमानका आधार तो उसका वर्तमान ही होता है। इसी वर्तमानके पटपर, उसकी कल्पना रूपी तूलिका मनमाने रंग भर-भरकर नये-नये चित्र बनाती है। उसका सजागरूक यत्न रहता है कि वह पाठकको वर्तमानसे उठाकर उसके मानसको अपने वर्ण कालके स्तरपर ले जाये और इस यत्नमें उसे जितनी सफलता मिलती है, वही उसके साहित्यिक साफल्यका मापदंड बनती है। पर सम-सामयिक युगकी स्थितियोंका सही-सही चित्रण भी उसके साफल्यकी उतनी ही महत्त्वपूर्ण कसौटी है जितनी कथा-वस्तुगत वर्ण कालके चित्रण की। इस दृष्टिसे वीर कविने तत्कालीन भारतकी भौगोलिक स्थिति, देश, प्रात और मंडलोमे विभाजन, प्रमुख पर्वत, नगर, नदियाँ, वृक्ष-वनस्पतियाँ, पशु-पक्षी, दक्षिणसे लगाकर उत्तरपूर्व और उत्तर-पश्चिमके दक्षिणापथके मार्ग और विन्ध्यके उत्तरमें उत्तरके प्रमुख महाजनपथोंके सबधमें प्रसूत व प्रामाणिक जानकारी प्रदान की है। देशके तत्कालीन सामाजिक जीवन, व्यापार, कृषि, शिक्षा, साहित्य, सामाजिक रीति-रिवाज एवं धार्मिक विश्वासों तथा ग्रामीण व नागरिक जीवनका सटीक परिचय प्राप्त करनेकी दृष्टिसे भी यहाँ प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है। देशकी राजनीतिक अवस्थाके सबधमें कविने प्रत्यक्ष तो नहीं परंतु अप्रत्यक्ष रूपसे जो संकेत दिये हैं, उनसे तत्कालीन मालवाकी राजनीतिक अवस्थाका शक्य बोध हो जाता है। परंतु देशके शेष भागोंमें इस दृष्टिसे कैसी अवस्था थी, इस विषयमें जं० सा० च०से कोई सामग्री उपलब्ध नहीं होती।

भौगोलिक स्थिति

भारतवर्षके भौगोलिक विभाजनका कविका ज्ञान विशद और प्रामाणिक था। इसकी अनुभूति हमें 'जंबूसामिचरिउ'की नवम सर्गिके अंतेमें विद्युतचक्रके यात्रा-वर्णन अथवा देश-दर्शनके रूपमें उपलब्ध होती है। इस बहाने कविने अपने महाकाव्यमें मात्र 'देशदर्शन' विषयक रूढिका पालन ही नहीं किया, अपितु विक्रमकी ग्यारहवीं शतीके भारतका भौगोलिक मानचित्र हमारे सामने खींच दिया है। इस विषयमें उसने वृहत्सहिताकार बराहमिहिरका अनुकरण नहीं किया, क्योंकि संपूर्ण देशों, नगरों, पर्वतों, वनों, नदियों और जातियोंका वर्णन करना यहाँ कविका अभीष्ट नहीं था। उसे तो देशकी भौगोलिक स्थितिका सामान्य ज्ञान कराना इष्ट था, और उसमें वह सफल हुआ है।

कविने प्रमुख त्रेपन देशों व मंडलो, तैतीस नगरों, दस बंदरगाहों व पत्तनों (तीर्थों), छठारह पर्वतों और पर्वत श्रेणियों, दस नदियों, आठ उत्तरीय एवं उत्तर-पर्वतीय जातियों, पाँच द्वीपों एवं चार सागरों (पूर्वोदधि, पश्चिमोदधि, क्षीरोदधि एवं लवणसमुद्र)का सल्लेख किया है। इन सबका संक्षिप्त परिचय और पहचान अंतमें भौगोलिक नामकोशके अंतर्गत दिये गये हैं।

भारतके दक्षिण समुद्रसे लेकर उत्तर-पश्चिमकी ओर चलते हुए गुजरात तक, फिर पश्चिममें राजस्थानसे लेकर दक्षिण-पूर्वमें ताम्रलिप्ति (तमलुक) तक, उत्तरमें शाक्यती (अजमेर) से लगाकर सुदूर उत्तरमें काश्मीर और इससे भी ऊपर उत्तर-पश्चिममें फारस देश तक; एवं पूर्व (उ० प्र०) में गौड-(गौडा प्राचीन राजधानी श्रावस्ती) से प्रारंभ करके कामरूप तक जाकर, गंगासागर होते हुए

सप्त-गोदावरी भीमतीर्थ तकके जिन यात्रा-महापथोका संकेत वीर कविने किया है, पांचवी शती ई० पूर्वसे ग्यारहवी शती ई० तक भारतके ऐतिहासिक व्यापारिक, महाजनपथोसे उनकी तुलना की जा सकती है ।^१

विद्युच्चरके यात्रा वर्णनसे विक्रमकी ग्यारहवी शतीमें वृहत्तर भारतवर्षकी भौगोलिक सीमाएँ, उत्तरमें आधुनिक पश्चिमा (फारस) से लगाकर, हिमालयकी अनेक पहाड़ी जातियोके प्रदेशोको सम्मिलित करते हुए काश्मीरको लेकर, उसके उत्तरसे सिन्धु नदीके किनारे-किनारे चलते हुए कैलाश पर्वत तक; उत्तर-पश्चिममें पूरा सिंध व पंजाब, पश्चिममें द्वारिका एवं प्रभास (सोमनाथ) तीर्थ, और सीधे दक्षिणमें समुद्र (हिंद महासागर); तथा दक्षिण-पूर्वमें बंगाल सागर (पूर्वोदधि)के तटपर ताम्रलिप्तिसे उत्तर-पूर्वमें कामरूप (आसाम) पर्यंत प्रतीत होती हैं। अर्थात् तीन ओर सागर एवं उत्तरमें हिमालयके सुदूर उत्तरीय प्रदेश।

पर्वत—ऊपर कहा गया है कि जं० सा० च० में देशके लगभग अठारह पर्वतो और पर्वत श्रेणियोका उल्लेख है, जिनमें मुख्य हैं—हिमालय, कैलाश, मंदारगिरि, विपुलाचल, अर्बुद (आर्बु) विष्य, वज्राकर (विष्यपाद, सतपुड़ा), पारियात्र, सह्याद्रि, श्रीशैल और मलय। कविने अधिकांशतया इन पर्वतोका उल्लेखमात्र करके छोड़ दिया है।

वन—जं० सा० च० में भारतके वन भागोकी बहुत अल्प चर्चा मिलती है। राजगृहके समीप एक प्राचीन नंदनवन नामक उद्यान और विष्य अटवी इन दोका उल्लेख कुछ विस्तृत वर्णनके साथ उपलब्ध होता है। नंदनवनके वर्णनमें केवल विभिन्न वृक्षों व लताओके नाम मात्र हैं, जैसे ताल, कदली, पयाल, आम्र, जंबीर, जंबू, कदंब एवं न्यग्रोध आदि^२; लताओमें नागलता (पानकी बेल) तथा द्राक्षा अर्थात् अंगूरकी बेल। ये अधिकांश वृक्ष मगध और विदेहमें आज भी बहुतायतसे मिलते हैं। नागलताकी बेती विहारके उत्तर और दक्षिण दोनों भागोमें कई जगहोपर व्यापारिक स्तरपर की जाती है। कुछ स्थानोंमें अब अंगूर भी उगाया जाता है। संभव है विहारमें प्राचीन कालमें भी अंगूरका उत्पादन किया जाता रहा हो। और केले तथा आमके उद्यान तो आज भी विहारके कृषकोकी आयके प्रमुख स्रोत हैं।

विध्याटवीका वर्णन कुछ अधिक विघट है। उसमें खदिर (खैर) और बाँसोके बड़े-बड़े गुल्म, कटीला झाड़ियाँ, घीसम और अजन आदि अनेक वृक्षोके नामोके^३ अतिरिक्त विध्याटवीके बहुतसे पशुओका भी नामोल्लेख कर आदिवासी भीलोके जीवनका अत्यंत सजीव और वास्तविक चित्र खींचा गया है। पशुओमें हाथी, सिंह, गवय (नील गाय), कोल (सूअर), शृगाल, जंगली भैंसे और वानर प्रमुख हैं, पक्षियोमें कौआ और घूक (उल्लू)। 'जहाँ-जहाँ पानी वहाँ-वहाँ कमल,' इसी प्रकार 'जहाँ-जहाँ वन वहाँ-वहाँ अष्टापद-शरभ या शार्दूल', इस कविसमयके अनुसार शरभका भी नाम कविने लिया है।

विध्याटवी और वन्य जीवन—विध्याटवीमें चोरोके निवास योग्य घने काँटेदार वृक्ष और झाड़ियोके जंगल थे, जैसा कि आज भी विष्यकी चंबलघाटी बड़े भयानक डाकुओका दुर्गम व दुर्भेद्य अड्डा बनी हुई है। अटवीमें भीलोके एक-सरीखे घर-द्वार थे, जिनमें पशुओको पकड़नेके जाल और फाँस तथा मछली पकड़नेके काँटे और जाल लटके रहते थे। शृगोका मांस सुखता रहता था, और मारे हुए चीतोंके शव या खालें पड़ी रहती थी। उनकी मूछोमें बाल नहीं होते, पर दाढ़ी लंबी रहती और भीलोकी मंडली शापसमें बैठकर परस्परके जंघादलकी प्रशंसा किया करती। उस विध्याटवीमें कहीं पर्वत तटोंपर हाथियोकी विघाड सुनकर सिंह क्रुद्ध होते और कहीं शस्त्रसे आहत, दहाड़ते हुए व्याघ्र नील गायोंको विदीर्ण कर डालते। कहींपर घुर-घुराते हुए कोलोके दाढोसे उखाड़े हुए कंद-मूल सुखते रहते, और कहीं

१. डॉ० मोतीचंद्र : सार्थचाह

२. जं० सा० च० वृक्ष-वनस्पति-कोश

३. वही

हुंकार करते हुए प्रचंड बली भैंसोंके सींगोंसे उखाड़े हुए वृक्ष भूमिपर गिर पडते । कहीं दीर्घ हुंकार छोड़ते हुए वानर भागते दिखाई देते और कहीं सैकड़ों ध्रुको (उल्लू) की ध्रु-ध्रु ध्वनिसे क्रुद्ध हुए कौबे काँव-काँव करते रहते । कहीं श्रुगावीकी फेकारसे आकृष्ट श्रुगाल पकड़े जाते । कहीं कल-कल कर भरते हुए भरने, तो कहीं काले धारीरवाले भील दिखाई पडते । कहीं वृक्षोंके पत्तोंसे ढके हुए सर्प पड़े रहते और कहीं फणधारी नागोंके तीक्ष्ण फुत्कारोंसे भयानक दावानल जल उठते । विच्यटयी एवं वन्य जीवनका यह चित्रण अपनी सजीवतासे स्वयमेव फडकता हुआ प्रतीत होता है ।

देशके वृक्षों और वनस्पतियोंके संबंधमें अधिक कथ्य नहीं है, क्योंकि उनके नाममात्र उल्लिखित हैं, परंतु यह सत्य है कि मगध और विज्यमें आज भी उनमें-के लगभग शत-प्रतिशत वृक्ष-वनस्पतियोंको उपलब्ध किया जा सकता है ।

ग्राम और ग्राम्य जीवन—जं० सा० च० मे बहुत अधिक ग्रामोंका उल्लेख नहीं है । गिने चुने दो गाँवोंका नाम मिलता है । एक गुलखेड जो कविका जन्म स्थान था, इसका भी कोई वर्णन कविने नहीं किया । दूसरा है मगधमे बर्द्धमान नामक गाँव । यह ब्राह्मणोंका कुल-श्रमागत अग्रहार (दान-स्वरूप प्राप्त) ग्राम था । यहाँकी रमणियाँ बहुत सुंदर होती थी, और ब्राह्मणोंके समूह मिलकर वेदपाठ किया करते थे । नव-दीक्षित पुरोहित पशुहोम किया करते तथा प्रतिदिन खूब सोमपान किया जाता (दिक्खिएहिं जहिं पसु होमिज्जइ दिवि-दिवि-सोमपाणु जहिं किज्जइ २.४.१०) और शिष्यवृंद अपनी लंबी-लंबी चौटियोंको पूँछके समान हिलाते हुए वानरोंके समान वृक्षोंपर झीडा किया करते । यह एक शुद्ध ब्राह्मण गाँवका पूर्णतः वास्तविक वर्णन है । विज्य देशके ग्रामोंके संबंधमें कविने लिखा है कि वहाँके ग्राम नगरोंके समान, तथा ग्रामीण नागरिकोंके समान सर्वसुख साधन सपन्न और श्रद्धालु थे । इन गाँवोंके बाले बड़े-बड़े ब्रजों (मोमडल) का पालन करते थे । ब्रजोंके लिए गाँवोंमे बड़े-बड़े सरोवर थे । महुँके वृक्ष बहुतायतसे थे, और धानकी खेती होती थी । खेतीकी रक्षा कृषक वधुएँ किया करती थी । स्थान-स्थानपर पथिकोंके लिए प्याल लगी रहती, जिनमें स्त्रियाँ पानी पिलाया करतीं । गाँवोंके लोग सुदरवस्त्र धारण करते और स्थान-स्थानपर गोपियाँ गहरे रंगोंके वस्त्रोंको धारण कर रास रचाया करतीं ।

साधारण दरिद्र ग्रामीणोंके जीवनका एक अति मार्मिक चित्र प्रस्तुत करते हुए कविने लिखा है—शात दिनों तक दिनरात घनघोर वर्षा होती रहती । जल-थल सब एक हो गये और मार्ग दुर्लभ । तालाबोंकी पाल फोड़कर जलका प्रवाह बह निकला । सब व्यवसाय समाप्त हो गये और आहार अत्यंत दुर्लभ । भूखसे क्रंदन करते हुए बच्चे और बूढे सब तृणोंसे निर्मित गलती हुई कुटियोंकी दीवारोंसे चिपककर लडफटे हुए बैठे रहे । पक्षी अपने बोलोंमें ही रुके रह गये और बार-बार मूर्च्छित होने-लगे ...आदि । वर्षाकालमे भारतके किसी दरिद्र गाँवका यह वर्णन कितना सच्चा, सजीव और मार्मिकदर्शी है ।

नगर और नागरिक जीवन—नगरोंका वर्णन बहुत कुछ कवि-स्वभाव और काव्य-रचनाजय्य अतिशयोक्तिके अतिरिजित होनेपर भी उसमे वास्तविकताका अंश भी प्रचुर परिमाणमें है । कविने मगधमे राजगृह और संवाहन तथा (पौराणिक) पूर्व-विदेहमे पुडारकिणी और वीतशोका नगरियोंका सुंदर वर्णन किया है । इन वर्णनोंसे ज्ञात होता है कि बड़े नगर सुरक्षाकी दृष्टिसे परिखा और प्राकारसे युक्त होते थे, जिसमे विद्याल गोपुर बने रहते । नगरोंमें गवाक्षोंसे युक्त कई-कई तलोंके प्रासाद, ऊँचे-ऊँचे देवालय, चैत्यगृह, दानशालाएँ, (३ ३ ९) झूतगृह (टेंटा ८ ३ १३) वेद्यागृह, (३ २.५-६) एवं बड़े-बड़े हाट होते थे । नगरोंके बाहर वृक्ष-गुल्मों बलता-गुल्मोंसे युक्त बड़े-बड़े उद्यान एवं सरोवरयुक्त वाटिकाएँ रहती थी । नगरोंके बाहर घुडदौड़के मैदान (बाहियालि ३.२.१०) भी रहते थे । नगरोंके बाहर हरे-भरे खेत रहते और

कृषक-वयुर्षु उनकी रक्षा किया करती। बाहर उद्यानों और खेतोंमें हरिण नुब छलाग लगाया करते और बाटिकाओंमें मयूर नाचा करते। नगरके लोगोका जीवन निश्चित रूपसे ग्रामीणोंकी अपेक्षा अधिक धन-समृद्धि-संपन्न, अतः भोग-विजास पूर्ण हुआ करता। नगरकी कामिनियाँ और बालक सुंदर-सुंदर सुवर्ण एवं रत्न-आभूषण धारण करते थे। और घर-घर लोगोको संगीत, वाद्य तथा नृत्यमें प्रगाढ़ रुचि रहती थी। पतिहारिने कुओंसे पानी लाया करती, जैसा कि आज भी गाँवोंमें देखा जाता है। दूत लोगोका एक समाज एवं राजमान्य मनोविनोदका साधन था (८.३.१३) तथा वेण्याएँ भोगकी सर्वसम्मत सामग्री (३.२.६; ९.१२-१३)। स्त्रियाँ प्रसाधनके लिए दर्पणोका, सुगन्धित चंदन द्रव्य बाटिका व कुकुम इत्यादिका प्रयोग किया करती थी, और मुख-शुद्धिके लिए लोग दातूनका प्रयोग करते थे। बड़े नगरोंमें कवि और जुआड़ी समान रूपसे नगरकी शोभा बढ़ाते थे (८.३.१३)। यही नगरोंका सामान्य जीवन था। सामाजिक जीवन रीति-रिवाज, छटि, धार्मिक श्रद्धा और अंधविश्वास आदिकी चर्चा आगे की गयी है।

देश—नौवीं सदीके अंतमें बहुतेसे देशों, नगरों आदिके जो नाम उल्लिखित हैं, उनमेंसे किसीका भी कुछ विस्तृत वर्णन कविने नहीं किया है। जिन देशोंका थोडा-सा वर्णन मिलता है, वे हैं—भारतमें मगध और विन्ध्य तथा पूर्व विदेहमें पुष्कलावती। राजगृह, संवाहन तथा पुडरिक्पिणी और वीतशोका नगरों तथा विन्ध्य देशके गाँवोंके प्रसंगमें बर्णित ग्रामीण जीवनके वर्णनसे ही इन देशोंका भी चित्र उपस्थित हो जाता है। इनमें कुछ विशेषताएँ हैं, जैसे मगधके लोगोंने धार्मिक श्रद्धाका प्राबल्य; अत्यंत उपजाऊ भूमि, सरोवर, नदियों और उद्यानोंकी प्रचुरता, नागलता, कदली, द्राक्षा, मिरिच, सन और घानकी खेती (१.६-८)। पुष्कलावती देशकी कोई अलग विशेषता नहीं है। इतना ही है कि वह बहुत समृद्ध देश था। विन्ध्य देशके वर्णनमें और कोई विशेषता नहीं है। उसमें भी प्रमुख रूपसे घानकी खेती, बहुतेके वृक्षोंकी अधिकता आदि कही गयी है। विशेषता है एक बातमें कि इस देशमें प्याउओंका प्रचलन बहुत था। मगधराज्यके वर्णनमें एक और ध्यान देने योग्य सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वहाँ पथिक पाथेय लेकर नहीं चलते थे (१.७.७)। इसका तात्पर्य यह है कि ग्रीष्मकालमें तीन-चार महीने ब्राम तथा वपके वारहों महीने इतना केला विहारमें होता है कि वास्तवमें वहाँ कभी घरसे पाथेय लेकर चलनेकी आवश्यकता नहीं होती। इसका पोषक एक और तथ्य यह है कि विहार प्रांतमें सदासे ही अतिथिको देवतुल्य मानकर उसका यथासंभव उच्च सम्मान-सत्कार किया जाता रहा है। भोजन, पान और निवासके संबंधमें यह बात विशेष रूपसे सत्य है। और इन सुविधाओंके बदलेमें उस प्रांतमें किसी घरमें कभी कुछ नहीं लिया जाता था। आज भी कुछ अंशोंमें यह स्थिति विद्यमान है।

प्राथिक अवस्था

'जंदूसाभिचरिड'में उपलब्ध सामग्रीपरन्ते भारतकी तत्कालीन प्राथिक अवस्थाका अध्ययन करने-पर ज्ञात होता है कि साधारणतः देशके अधिकांश भागोंमें कृषि ही आजीविकाका सर्व-प्रमुख साधन थी। बड़े-बड़े नगर, राजगृह, संवाहन, सिंधुवरिपी और केरल आदि, व्यापारके बड़े केंद्र थे, और उनके विशाल हाट-बाजारोंमें भिन्न-भिन्न स्थानों, व देशोंसे व्यापारार्थ आये हुए लोगोकी भीड़ लगी रहती थी। कभी-कभी व्यापारमें किन्हीं कारणोंसे गिरावट या रुकावट आ जानेपर व्यापारियोंको एक स्थानपर ही रुकना पड़ जाता था। वनिये संभवतः नौकाओंसे भी व्यापार करते थे। मापकी वस्तुओंके लिए द्रोण एवं प्रस्थ नामक माप व्यवहारमें लाये जाते थे (८.३.९)। स्थल मार्गसे कांस्य व अन्य धातुओंके वरतनोंका व्यापार बहुत प्रचलित था। राज-सैन्यके मार्ग या पहावमें आ पड़नेपर व्यापारियोंकी बहुत हानि होती थी, क्योंकि शस्त्रोंको चमक-दमक, रथोंकी घर्षराहट और हाथियोंकी चिंघाड़से उनके वाहन, जो अकसर वैल होते थे, वे भूँडक उठते थे और उनका सामान पटक देते थे, जिससे कसेरोके धरतन-बासन फूट जाते, सब सामान बिखर जाता और कभी-कभी तो वैल भाग भी जाते (५.७.१४-२३)। तैली और कलाल (मद्यका व्यापार करनेवाले)

का भी इसी प्रसंगमें उल्लेख आया है। कोई-कोई दोन-अनाथ स्त्री दूधरोका खाना बनाकर भी आजीविका करती थी (५७.१६)। दूध संभवतः व्यसनमात्र ही नहीं बल्कि कुछ लोगोंकी आजीविकाका नियमित साधन था (८३१३)। नट अपना पारिश्रमिक या पुरस्कार लेते और वेध्याएँ अपना भाड़ा (भाडि १.१३५)। वेतनभोगी भृत्योंका कोई उल्लेख उपलब्ध नहीं होता। संभवतः सैनिको या परिजनोका वेतन नगद धनके रूपमें नहीं, बल्कि जीवनोंपयोगी सामग्रीके रूपमें दिया जाता था। ब्राह्मणोंके लिए पीरोहिय और अध्यापन वे दो ही आजीविकाके साधन थे, ऐसा प्रतीत होता है। नगरोका जीवन अधिक साधन-समृद्ध होनेसे ग्रामोंकी अपेक्षा अधिक सुखकर और विलासमय रहा होगा। परंतु ग्रामोंमें भी लोग धर्मपूर्वक अपनी आजीविका करते हुए सुखपूर्वक रहते थे, प्रासाद निर्माण, मंदिर निर्माण, मूर्ति निर्माण और गृह निर्माण भी आजीविकाका एक प्रमुख साधन रहा होगा।

सामाजिक स्थिति

वर्ण, जाति, आजीविकाके साधन, विवाहकी पद्धति व स्थिति, वरका चुनाव, पारिवारिक व्यवस्था (संयुक्त), कुलपतिका स्थान, घर और समाजमें कन्या; वहन, पत्नी व माँके रूपमें नारीकी प्रतिष्ठा, दैनिक उपयोगकी वस्तुएँ, रीति-रिवाज और मनोरंजनके साधन

‘जंबूसामिचरिड’में उपयुक्त त्रिपयोपर निम्न जानकारी उपलब्ध होती है :—

वर्ण—चार : ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ब्राह्मण यज्ञ-यागादि करते और वैदिक साहित्यका अध्ययन-अध्यापन करते थे। राजा और श्रीमंतोंका पीरोहिय भी उनकी आजीविकाका साधन था। सेनाके प्रयाणके साथ भी कुछ विद्वान् पंडित जाते थे, जो स्नानोपरांत टीका लगाकर गलेमें फूलोंकी माला डालकर गरीरपर चंदनका लेप करके दशमे संध्यावंदन किया करते थे (५११)। तिल और जौ देकर पितरोंको पिंडदानकी क्रिया प्रचलित थी (२६)। सामाजिक अन्य वर्णोंमें ब्राह्मणोंकी क्या स्थिति थी, इस सबबमें जं० सा० च० से कोई अनुमान नहीं लगता।

क्षत्रिय—क्षत्रियोका प्रमुख कार्य युद्धोंमें लड़ना था। यही उनकी आजीविका थी। केरलके राजाको क्षत्रिय कहा गया है (५.३)। जं० सा० च० से क्षत्रियोके संबंधमें इतनी ही जानकारी उपलब्ध होती है।

वैश्य—वैश्य जातिके उल्लेख वणिक् गोत्र, वणिक् या वनियेके नामसे जं० सा० च० में अनेक बार आये हैं। स्वयं वीर कवि वणिक् वंशके ही थे। व्यापार-वाणिज्य वनियोका प्रमुख व्यवसाय था। विद्युच्चरके वैश-दर्शनके बहानेसे कविने हमें यह बतलाया है कि व्यापारी जल और स्थल दोनों मार्गोंसे व्यापार करते थे। अन्य वर्णोंको अपेक्षा वैश्योंकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी, यह अनुमान लगाना उचित है।

शूद्र—जं० सा० च० में शूद्र ‘शब्द’का कही भी उल्लेख नहीं मिलता। ऋग्वेदी अंतर्कथामें (१०१५-१७) मेहतरोंके लिए ‘कर्मकर या कर्मकार शब्दका प्रयोग आया है, प्राचीन कालमें उसका प्रयोग सामान्य रूपसे सभी नौकर-चाकरोंके लिए होता था। ‘मेहतर’ अर्थमें इस शब्दका प्रयोग बहुत पुराना नहीं मालूम पड़ता। आजकल उत्तर-प्रदेशके मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुरके जिलोंमें मेहतरोंको ‘कमानेवाला’ और उसके कामको ‘कमाना’ कहते हैं। इस ‘कर्मकार’ शब्दसे शूद्रोंकी स्थितिका कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

अन्य जातियाँ, एवं आजीविकाके साधन—इन चार वर्णोंके अतिरिक्त ऋषिको (हाली या कुड़वा) और ग्वालो तथा ऋषिको वधुआ (हालीवधु, पामरी) और गोपियोंके उल्लेख कई बार (१७, १८, ३१; ५२) हुए हैं, वीर इनके सुखी जीवनका मुंदर चित्र खींचा गया है। ‘तेला’ और ‘कलाल’ (सदका व्यापारी) का उल्लेख (५७) इन जातियोंके होनेकी सूचना करता है। नट, नट विट, डोम और कुट्टिनियों (५२, ५७; ५११)के उल्लेख जातियोंके नहीं बल्कि अमुक-अमुक आजीविकाके साधनोंके मुक्त हैं। भट्ट पहलू

राजाओ आदिकी विरुदावली गायन करनेवाले ब्राह्मण होते थे। बादमें अन्य जातियोने भी इसे अपना लिया।^१ डोम बूद्रोकी कोटिमें रखे जा सकते हैं। लेकिन नट, विट और कुट्टनियोंकी जाति कौन जान सकता है ?

विवाह संस्था—भारतवर्षमें बहुत प्राचीन समयसे ही विवाह संस्थाका सम्मान और महत्त्व बहुत अधिक रहा है तथा आज भी है। संस्कृत साहित्यमें आठ प्रकारके विवाहोंका उल्लेख है^२। इन सभीको सामाजिक मान्यता प्राप्त थी। पर सबसे अधिक प्रचलन और आदर विवाहके उस प्रकारका था जिसमें वर और कन्या दोनोंके माता-पिता एवं परिवारके लोग सब-कुछ सोच-विचारकर विवाह संबंधोंका निर्णय करते थे, और ग्राम या नगरके सब प्रमुख लोगो एवं स्वजातीय तथा जातीयेतर विवाह समाजकी सान्नीमें जिसे विवाह रूपमें परिणत किया जाता था। इसी प्रकारके विवाहोंका परिचय हमें 'जंबूसामिचरिउ'से प्राप्त होता है। भवदेवका नागवसूसे विवाह (२९—१०) और जंबूस्वामीका चार श्रेष्ठि कन्याओंसे विवाह (४१४, एवं ८.१२-१४) उसकी समकालीन सामाजिक विवाह पद्धतिके द्योतक हैं। इस प्रकारके विवाहमें वरकी खोजका कार्य कन्याके पिताका ही होता था। कभी ऐसा भी होता था, जैसा कि जंबूस्वामीके संवयमें हुआ (४१४), कि वर और कन्याके पिताओंमें मैत्री-संबंध रहनेसे उन संबंधोंको स्थायी करने हेतु वे आपसमें एक दूसरेके पुत्र-पुत्रियोंके विवाह संबंध निश्चित कर लेते थे। अभी भी धनिष्ठ मित्रोंमें ऐसे संबंध होते देखे जाते हैं। विवाह संबंधोंकी स्थापनामें दोनों ओरसे पिताका ही महत्त्व सर्वोपरि दिखाई देता है, तथापि माताओंसे भी सलाह अवश्य ली जाती रही होगी, जैसाकि एक अन्य जंबूस्वामीचरितमें उल्लेख है।^३ मित्र, वाचनो, परिजनोकी सलाहको भी पूर्ण महत्त्व और आदर दिया जाता था।

वैवाहिक पद्धति—जं० सा० च० के रचनाकालमें भी विवाह लगभग इसी रीतिसे, कुलाचारोंके अनुसार संपन्न होते थे, जैसे कि आज वणिक् और ब्राह्मण समाजमें संपन्न होते हैं। घरकी चूनेसे पुताई, गोबरसे लिपाई और घर पर शिखर हो तो उसे गेरु(या चूने) से चमकाना, तोरण और वंदनवार बाँधे जाना, मंडप बनवाना और सजवाना, स्थान-स्थानपर सुगंधित चूर्ण या द्रव्य छिड़के जाना, विविध रंगोंसे चौक पूरना, सुगंधित पुष्पोंकी मालाएँ लटकाना और भेंट करना आदि सारी बातें आज भी उसी प्रकार होती हैं। नाग प्रकारके मंगलोपचार, मंगलगान, वाद्य एवं संगीत, तथा कामिनियोंके मनोभिराम नृत्य, ये सब आज भी प्रचलित हैं। वरके घरसे आये हुए समाचार, विवाहकोके स्वागतकी विधि—आगे जाकर साथ ले जाना और आसन देना; फिर अक्षत, कुसुम, तांदूल आदि औपचारिक स्वागत करनेकी बातें ऐसी वर्णित हैं (८.९) मानो साक्षात् घटित हो रही हो। वरके हाथमें ऊर्गामय कंगन बाँधना, नये कपड़ेका जोड़ा पहनाना, सुगंधित पुष्पोंका मुकुट पहनाना, और शरीरपर चंदनादि सुगंधित द्रव्योंका लेप करके अनेक आभूषणोंसे सजाना, कन्यादानके निमित्त कन्याके पिता-द्वारा जलाजलि दी जाना, और वरको यथासंभव अधिकसे अधिक दायज (दहेज) देना। ये सब आज भी समाज-प्रचलित व्यवहार हैं। समूह कन्याओंके पिता अब भी वरकी सेवाके लिए दास-दासी भेंट स्वरूप साथमें भेजते हैं। उस कालमें पाणिग्रहणकी विधि संभवतः प्रातःकालके समय संपन्न की जाती थी।

वैवाहिक भोज—कविने लिखा है कि लोग तृणमय आसनोपर बैठे। शीघ्र ऋतु होनेसे तालपत्र निमित्त और सुगंधित जलसे भीगे हुए पंखोंसे हवा की जाने लगी तथा नाना प्रकारके मीठे, खट्टे, चरपरे व मिश्रित व्यंजन परोसे गये। कूर नामक (धानके) चावलसे बनाया हुआ तथा खूब घीसे सिक्त भात; खट्टे अचार, चटनी, तक्र (मट्ठा, पर यह यहाँ दहीके लिए प्रयुक्त मालूम पड़ता है, क्योंकि आजकल भी देशके कई प्रांतोंमें जैसे बिहार, बंगाल एवं महाराष्ट्र आदिमें भोजनके साथ दही परोसा जाता है, मट्ठा अर्थात् छाछ नहीं।)

१ Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol 2. bhāt and chāran

२. मनु० अ० ३ ब्रह्मो २१

३. ब्रह्म जिनदास कृत संस्कृत : जम्बूस्वामिचरित्र

और मूंगसे बने हुए नाना व्यंजन बहुत-सी कटोरियोंमें रखकर परोसे गये। मगध, मालवा और उत्तर-प्रात्योंमें मूंगकी उपज अधिक होनेसे मूंगके मोठे व नमकीन दोनों प्रकारके व्यंजनोका भव भी खूब प्रचलन है। भोजन-से तृप्त होकर जलसे मुख शुद्धि कर लेनेपर सुगन्धित द्रव्य और ताबूल भेंट किये गये। विवाहके उपरांत वर-वधुओंके साथ अपने घर आया। मित्र एवं दासवोका उचित सम्मान करके, भेंट आदि देकर उन्हें आदर पूर्वक बिदा दी गयी और प्रदोषकाल आ जानेपर वर, वधुओंके साथ सुंदर रूपसे सजे हुए शयनकक्षमें प्रविष्ट हुआ। उपर्युक्त संपूर्ण वर्णन मानो आज ही किसी विवाहका साक्षात् चित्र हमारे सामने खीच देता है। वणिक् परिवारके विवाहमें वणिक्कोका सामाजिक भोज और विप्र विवाहमें विप्रोका भोज जानी-पहचानी बातें हैं।

इन्हीं वर्णनोंसे यह भी स्पष्ट होता है कि उस कालमें संयुक्त परिवार प्रणाली थी। घरमें पिता ही कुलपति होता था और परिवारमें उसका स्थान सर्वोच्च था। विवाह एक साथ एकाधिक कन्याओंसे किये जा सकते थे। पचीस-तीस वर्ष पूर्वतक भारतमें यह प्रथा सुप्रचलित थी, विशेषकर समृद्ध क्षत्रिय एवं राजघरानोंमें। सूरसेन श्रेष्ठीकी चार युवा सुंदर पत्नियोंकी जो धार्मिक कथा वीर कविने लिखी है (३.१० १३) वह एक सत्य घटनाके समान प्रतीत होती है। स्वयं वीर कविने चार विवाह किये थे। परंतु कन्याओंके लिए निरपवाद रूपसे एक बार माता-पिता-द्वारा निर्धारित व्यक्ति ही आजन्म एकमात्र पति, स्वामी सब कुछ होता था। जो कुछ पतिका भाग्य वही पत्नीका। हाँ, कोई कन्या या वधू पतिके साधु बन जानेपर सभ्यतः दूसरा पति कर सकती थी (२.१६); पर इसे अच्छा नहीं माना जाता था। कभी यदि पिता-द्वारा पूर्व निश्चित व्यक्तिसे संवध होनेकी संभावना न दिखाई दे, तो सुशिक्षित कन्याओंसे दूसरा वर बुढ़नेके सबबमें सलाह ली जाती रही होगी (८.१०)। घरमें पिताके पश्चात् माँकी स्थिति सर्वोच्च थी, और फिर बड़े पुत्रकी। छोटा भाई बड़े भाईको पिता तुल्य मानता था (२.१०.११) और बड़ा भाई छोटेकी पुत्रवत् स्नेहसे रखता व उसके साथ गृहस्थीका संचालन करता था (२.६)। पुत्री और बहूका स्थान समान अधिकारकी दृष्टिसे बादमें आता था।

अन्य सामाजिक प्रथाएँ, दैनिक जीवन एवं मनोरंजनके साधन

मृत पतिके साथ पत्नीके द्वारा जीवित ही उसकी चितामें जल मरनेको प्रथा इस देशमें सन् १८२९ में राजा राममोहनरायके जीवनकालमें अगरेजी सरकारने कानून-द्वारा बंद करायी थी। यद्यपि अथर्व वेदमें पतिकी मृत्युके बाद उसकी विधवा पत्नीके लिए मर जाना ही धर्म कहा गया है, परंतु पतिकी चितामें एक बार उसके साथ केटनेपर, उसे सतति और संपत्ति रूपी वरदानकी प्राप्ति बतलायी गयी है। ऋग्वेदके समान ही अथर्ववेदमें भी विधवाको चितासे उठकर नये पतिका अनुसरण करनेको कहा गया है। और इस प्रकार मृत पतिकी चितामें एकबार उसके साथ केटनेपर विधवा पत्नीको उसमेंसे उड़ाकर उसका दूसरा विवाह वही सबकी साक्षीमें कर दिया जाता था। परंतु कुछ अशुभ कारणोंसे इस प्रथामें परिवर्तन आया, तथा विधवा पत्नीको मरे हुए पतिके साथ उसकी चितामें ही जीवित ही उनके पिताकी चितामें जल मरी (२.५)। यह उल्लेख भवदेवके पिताकी मृत्युके उपरांत उनकी माँ जीवित ही उनके पिताकी चितामें जल मरी (२.५)। यह उल्लेख कविके समयकी किसी घटनाकी ओर संकेत करता है। उनके पिता धार्मिक ब्राह्मण होनेसे कुष्ठरोगसे पीडित हो जानेपर विष्णुका स्मरण करते हुए जीवित ही स्वयं अपनी चिता रचकर अग्निमें प्रविष्ट हुए थे। कुछ व्याधिका कोई उपचार न होनेसे एक धार्मिक व्यक्तिके लिए इस जीवनको समाप्त करनेके सिवाय और श्रेष्ठतर उपाय क्या हो सकता था ? और शायद यह समाजमान्य भी रहा होगा। सती प्रथाके प्रचलनका एक और संकेत युद्ध वर्णनमें (जं० सा० च० ६८) में मिलता है कि प्रियतमके साथ मरनेकी इच्छासे आभी हुई एक सुभटप्रिया शस्त्रोंसे अत्यंत शत-विक्षत योद्धाओंके शत्रुओंमें अपने प्रियतमकी पहचान नहीं पायी, और झूती हुई बैठ रही।

दैनिक उपयोगकी वस्तुओंमें जल रखनेके निमित्त (मुक्तिका निमित्त) करवेका प्रयोग उल्लेखनीय है (१५, १.१८)। विषय देशकी स्त्रियोका कटिवेश्य (घोती, नाडी)में कछोटा लगाना, और लोपोका मोटे वस्त्रसे शिरपर गोलाईदार दुपट्टा (पगडी) बाँधना (५७) ये सच्ची बातें हैं। नगरमें हस्ती आदि कृत कोई आकस्मिक उपद्रव खड़ा होनेपर जान रखाको दौड-भूपमें बिट और कुट्टनियों तथा स्वेच्छाचारिणी कामिनियों-द्वारा इस विकट परिस्थितिका लाभ उठा लेना (४२१), जल-क्रीड़ाके समय किसी बिटके द्वारा हुक्की लगाकर किसी दासीको पैर पकड़कर घसीट ले जाना और दासीके चिल्लानेपर पास ही खड़ी कुट्टनीका और जोरसे चिल्ला पडना (जिससे कोई दासीकी पुकार सुन न सके, ४.१९) ये सामाजिक जीवनके मनोरंजक चित्र हैं।

सेनाके प्रयाणके समय मार्गके नगरो व ग्रामोंमें संजीमकी स्थिति, सैनिकोंका लोगोंके घरोंमें घुस पडना, कद्दो अति साहसी लोगोंके द्वारा क्रुद्ध होकर राजसेनाका कोई हाथी पकड़ लिया जाना अथवा खेतोंमें हानि पहुँचानेपर किसी बोडेको पीटना या मार डालना (५.७) तत्कालीन लोकजीवनकी वास्तविक झाँकी प्रस्तुत करते हैं।

मनोरंजनके साधनोंमें जल-क्रीडा, उद्यान-क्रीडा, गोपियोंके रास व चर्चरी नृत्य, कामिनियों-द्वारा गायन, वादन व नृत्यादि सर्व-प्रचलित थे, तथा वृत्तक्रीडा और वैश्यागमनकी भी शासन व समाज दोनोंसे मान्यता प्राप्त थी, और कुछ लोगोंके लिए ये आजीविकाके साधन भी थे (४.२, ८, ९, १२-१३)।

शिक्षा और साहित्य

जं० सा० च० के अध्ययनसे तत्कालीन भारतमें शिक्षा और साहित्यके संबंधमें निम्न जानकारी उपलब्ध होती है :—

(क) ब्राह्मणोंकी शिक्षा-दीक्षा : प्राचीन आश्रम पद्धतिपर आधारित थी। परंतु आश्रमोंका कोई उल्लेख नहीं है। विद्यार्थी गुरुके घरपर ही शिक्षा ग्रहण करते थे। श्रुति, स्मृति, वेद, कथा (पुराण), व्याकरण और ज्योतिष और निबंध तथा छंद-शास्त्रकी पारंपरिक शिक्षा शिष्योंको प्रदान की जाती थी। यज्ञ, पशुबलि और सोमपानका प्रचलन था। चौर्यविद्याका भी संभवतः किसी रूपमें शिक्षण रहा होगा (३१४), जैसा कि मूच्छकटिककार सूत्रके समय तक होनेके निश्चित संकेत मिलते हैं।

(ख) जैन बालकोंकी शिक्षा गुरुओंके घरपर जैन साहित्यमें होती। परंतु व्याकरण, निबंध, काव्य और छंद तथा दर्शन शास्त्र और तर्क शास्त्रकी शिक्षा सबके लिए समान रूपसे प्रचलित थी। बड़े घरानोंके युवकोंको हस्तशिक्षा, अस्त्रशिक्षा, युद्धकला आदि क्षात्र विद्याओंका भी अभ्यास कराया जाता था। समृद्ध व सुषंस्कृत जैन परिवारोंमें संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तीनों भाषाओंकी शिक्षा देनेका प्रचलन था (४१२.११)।

(ग) वनवान् कुलीन घरानोंमें कन्याओंकी भी शिक्षा दी जाती थी और सामान्य शिक्षाके अतिरिक्त उन्हें वाद्य-वादन, गायन, नृत्य एवं कामशास्त्रकी भी शिक्षा प्रदान की जाती थी (४.१२)।

(घ) साधारण समाजमें रास क्रीडा (१७९-१०) और चर्चरी नृत्योंका प्रचलन था (१४५)। अर्थात् ११वीं शतीमें प्रचुर परिमाणमें रास एवं चर्चरी साहित्य उपलब्ध था।

(ङ) रामायण, महाभारत, वेद, श्रुति, स्मृति, पुराण, व्याकरण, निबंध, छंद, अलंकार, दर्शन, न्याय और तर्क एवं रास और चर्चरीके एकाधिक वार उल्लेख होनेसे प्रतीत होता है कि उपर्युक्त विषयोंपर प्रभूत साहित्य देशमें उपलब्ध तथा पठन-पाठनमें प्रचलित था। व्याकरणोंमें कविके समय पाणिनीय व्याकरणके पंतजलि कृत महाभाष्यपर कैयट (विक्रम ११वीं शतीके पूर्व) कृत 'महाभाष्य प्रदीप' (प्रचलित नाम प्रदीप) का विशेष प्रचलन रहा ज्ञात होता है, क्योंकि वीर कविने विशेष रूपसे प्रदीपका नामोल्लेख शब्द-शास्त्र कहकर किया है (जं० सा० च० १३२)। संस्कृत साहित्य एवं संस्कृत व्याकरण साहित्यके इतिहासोंसे भी इस तथ्यकी पुष्टि होती है।

१. वाचस्पति वैरोला—सं० सा० का संक्षिप्त इति०, पृ० ३७६ 'कैयट'; युधिष्ठिर मीमांसक—सं० व्याकरण सा० का इति० सा० १; शालग्राम शास्त्री—साहित्य दर्पण हिन्दी विमला व्याख्या। (प्रथमावृत्ति) भूमिका पृ० ५

धार्मिक स्थिति

अत्यंत प्राचीनकालसे ही यह देश धर्मप्राण रहा है, और इस भारतभूमिने न केवल मानवजगत्, अपितु सृष्टिके जीवमात्रके हित-सुख-कल्याणकी भावना रखनेवाले महान् धर्मको जन्म दिया है। पशुबलि प्रधान यज्ञ-यागादिका धर्म यहाँ अधिक युगो व क्षतियो तक ठहर नहीं सका। बुद्ध और महावीरने एक बार इसके विरुद्ध जो अहिंसाकी ध्वजा उठायी, तो फिर वह निरंतर उन्नत ही होती गयी। दसवी-ग्यारहवी सती ई० तक वचिचि पशुबलि प्रधान यज्ञ होते रहे, पर उनकी संख्या और परिमाण बहुत कम हो गये। इस बाह्य कर्मकांडमय धर्मके विरुद्ध यहाँ आभ्यतर आचारसुद्धि या भावसुद्धि प्रधान धर्मोका प्रचार-प्रसार हुआ और वैदिक परंपराके धर्मोने भी अहिंसा प्रधान आचारको अपनेमें पूर्णतः आत्मसात् कर अपनेको उसके अनुरूप बना लिया। वैदिक शैव और वैष्णव धर्म या पाशुपत और भागवत संप्रदाय पूर्ण-रूपसे अहिंसा प्रधान है। आधुनिक काल तक योगियो और साधु-सतोंकी परंपरा पूर्ण अहिंसा एव सर्वबोध-कल्याणकी भावनासे ओतप्रोत है। आत्मा और पुनर्जन्म, अत स्वर्ग-नरक एव मोक्षमें विश्वास इन समस्त अहिंसा प्रधान भारतीय धर्मोकी आधारभूमि है और इसी विश्वाससे प्रेरित हो यहाँ लौकिक जीवन और सासारिक कर्मोका नियमन, निर्धारण किया जाता रहा है। इसी विश्वासके अनुरूप दैनिकचर्या और नाना प्रकारके धार्मिक विश्वास यहाँके लोकजीवनमें प्राचीनकालसे अखंड परंपरासे चलते आ रहे हैं, और प्रत्येक संप्रदाय अपने-अपने इष्ट देवताओकी अपनी-अपनी रीतिसे पूजा-भक्ति करता चला आया है। जं० सा० च० में भी ऐसे अनेक धार्मिक विश्वासो व क्रिया-कलापोका उल्लेख किया गया है। तीसरी संधिमें जिन-मूर्तियोका न्हवन व श्रमणोकी वंदना आदिके पुण्यप्रभावसे भवदेवका देवगतिमें जाना और वहाँसे आयु पूर्ण होनेपर वीताशोक नगरीके महापद्म नामक राजाकी महादेवी वनमालाके गर्भमें आना एक ऐसा ही विश्वास है। जंबुकुमारके गर्भमें आनेसे पूर्व उसकी माँ जिनमतीको अंबुफलोका गुच्छा, निर्धूमामिन, धानसे लदा हरा-भरा खेत, खिले फूलोसे परिपूर्ण कमल सरोवर और जलजीवोसे संकीर्ण सागर, ये स्वप्न होना, ऐसे ही धार्मिक विश्वासोके प्रतीक हैं। शुभ घटनाएँ, जैसे महापुरुषोका जन्म आदि, अथवा कोई महान् दुर्घटनाएँ भी काल चक्रमें किसी-न-किसी रीतिसे अपने आगमनके पूर्वसकेत दे देती हैं। शुभ नक्षत्र और तिथिमें शिशुका जन्म लेना और जन्मके साथ आकाशका स्वच्छ, धवल, निरञ्ज हो जाना, दिशाओका धूलरहित निर्मल हो जाना और समस्त वृक्ष, वनस्पति एवं शस्यका हरा-भरा हो जाना, फूल उठना, इन मान्यताओमें यही विश्वास है कि महापुरुषोके पुण्य और धर्मकी शक्ति महान् होती है और वह सारी चराचर सृष्टिको प्रभावित करती है, क्योंकि धर्मका लोकजीवनसे और लोकका समयसे अभिन्न एव अन्योन्याश्रयी संबंध है। अत महापुरुषोकी धार्मिक शक्तिका प्रभाव लौकिक घटनाओपर पडना स्वाभाविक है। पुत्र-जन्म, विवाहादि अवसरोपर बघाई देनेकी लोकरीतिके पीछे भी यही धार्मिक भावना है कि शुभ भावनाओकी शक्ति अनंत होती है और उसका प्रभाव शिशु और नये वर-वधू आदिके भविष्य जीवनमें मंगलकारक होता है।

ये ही विश्वास जब आत्मासे बढ़कर परमात्मा और देवोमें केंद्रित हो जाते हैं, तब ये इष्ट देवताओ-की भक्तिपूर्वक पूजा, उनसे कोई वरदान मिलना या माँगना अथवा पुण्यके प्रभावसे महान् सततिका जन्म होना आदि लौकिक मान्यताओके रूपमें प्रस्फुटित होते हैं। जिनपूजा आदिके प्रभावसे शिवकुमार-का जन्म, और सेठकी चार पत्नियोका नागयज्ञसे यह वर माँगना कि बूरेसेके समान पति पुन न मिले (३.१३), इसी प्रकारके विश्वास है। इससे यह भी पता चलता है कि नागपूजा इस देशमें कितनी प्राचीन है।

विद्याधरोका आकाशगमन, आलोकिनी आदि दिव्यविद्याएँ, आग्नेयास्त्र, वारुणास्त्र, केरलमें जंबुकी विजयपर आकाशमें देवताओका नृत्य करना और जंबुको केवलज्ञान प्राप्त होनेपर देवोका आना व हर्ष मनाना ये सब बातें पुण्यकी महत्ताकी द्योतक हैं। क्योंकि कहा गया है कि पुण्यवानोको ही ये विशिष्ट क्षमिन्याँ, दिव्यास्त्र एव केवलज्ञान आदि उपलब्ध होते हैं।

साधुओं या गृहस्थोपर दैवीकृपा या दैवीप्रकोप भी पुण्य या पापके प्रभावसे ही माना जाता है। विद्युच्चरके ऊपर चंडमारीदेवीका अपने गणों सहित उपसर्ग (१० २६), यद्यपि स्वयं चंडमारी देवीकी दूषित भावनासे उत्पन्न नहीं है, तथापि विद्युच्चरके चोरके रूपमें किये हुए महान् कुकृत्य व पाप उसके मूल कारण रूपमें विद्यमान हैं।

कुछ शुद्ध लौकिक विश्वासोंका भी जं० सा० च०में उल्लेख है, जिनमें तंत्र, मंत्र, अद्भुत ओपधियो आदि विषयक मान्यताएँ हैं। शृगालकी कथामें आता है कि एक कामुकने शृगालका दाँत लेकर उससे अपनी प्रियाको वशमें करनेके लिए उसका दाँत तोड़ डाला (९.११)। विद्युच्चरने ओपधिके प्रभावसे अपने पिताके पहरेदारको स्तंभित कर दिया (३ १४); जागते हुए राजाको भी सोते सरीखा बना दिया (३ १४); जंबूकी माँसे कहा कि मैं ऐसे श्रुति-शास्त्रोंको जानता हूँ जिनसे दूसरोंका चित्त जान लेता हूँ और जिनमें लोगोंका वशीकरण, स्तभन और मोहन, प्रेमी व प्रेमिकाको मिलाने और विघटित करने; जागे हुएको मुलाने व सोते हुएको स्वप्नमें जागरणका सुख देनेकी शक्ति है (९ १६)। ये सब बातें शुद्ध लौकिक विश्वास हैं। तथापि इनके साथ भी धर्मका संबन्ध किसी-न-किसी रूपमें जुड़ा हुआ है।

व्रत, उपवास, तप आदिका धार्मिक साधनासे अभिन्न संबंध है। इस देशमें लोग नाना प्रकारके व्रतोपवास आदि धर्मभावनासे करते रहे हैं। जैनतर संप्रदायोंमें चाद्रायण व्रत करनेका प्रचलन रहा है। स्वयं चंद्रमाके द्वारा चाद्रायणव्रत किये जानेके व्याजसे वीर कविने इस व्रतके प्रचलनका उल्लेख किया है (४ १४)।



१. इस व्रतमें कृष्ण प्रतिपदाके दिनसे चंद्रमा घटनेके साथ-साथ प्रतिदिन एक-एक आस भोजन घटाते हुए अमावस्याके दिन पूर्ण निराहार रहा जाता है; और शुक्ल प्रतिपदाको एक आस भोजन लेकर प्रतिदिन एक-एक आस बढ़ाते हुए पूर्णिमाके दिन केवल १५ आस बाहार किया जाता है। इस प्रकार यह व्रत एक मासमें पूर्ण होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ एवं संकेत सूची

१. अपभ्रंश काव्यत्रयी, जिनदत्तसूरि, संपा० लालचंद भगवानदास गाधी, गा० ओ० सि० क्र० ३७, १९२७ ई०
२. अपभ्रंश पाठावली; संपा० मधुसूदन चिमनलाल मोदी, गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी, अहमदाबाद सन् १९३५ ई०
३. अपभ्रंश भाषा और साहित्य; डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन; भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, सन् १९६५ ई०
४. अपभ्रंश साहित्य; डॉ० हरिवंश कोछड; भा० सा० मंदिर, दिल्ली, वि० सं० २०१३
५. अनुत्तरोपपातिक दशासूत्रं, सुतागमे भाग १, सपा० पुष्पभिवक्तु
६. अन्तकृद्दशासूत्र; वही
७. अभिनव प्राकृत व्याकरण, डॉ० नेमिचंद्र शास्त्री; तारा प्रकाशन वाराणसी, सन् १९६३ ई०
८. आख्यानकमणिकोश, नेमिचंद्र सूरि, प्रा० टै० सो० ग्रंथाक ५, सन् १९६२ ई०
९. आचाराङ्गसूत्र; अनु० सौभाग्यमलजी महाराज, जैन साहित्य समिति उज्जैन, वि० सं० २००७
१०. उत्तररामचरित; भवभूति, हिंदी अनु० सहित, चौ० सं० सिरोज, वाराणसी।
११. उत्तराध्ययन; सपा० जे० चार्येन्टियर, उपसाल विश्वविद्यालय जर्मनी सन्, १९२२ ई०
१२. उत्तरपुराण (उ० पु०); गुणभद्र, संपा० अनु० प० पन्नालाल साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, सन् १९५४ ई०
१३. उपासकदशाङ्ग सूत्र; सपा० एन० जी० गोरे,
१४. उपासकाध्ययन (भूमिका); सोमदेव, सपा० अनु० प० कैलाशचंद्र शास्त्री; भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, सन् १९६४ ई०
१५. कथासरित्सागर, सोमदेव (हिंदी) अनु० विहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना
१६. कल्पसूत्र; स्थविवावलीचरित
१७. कहकोसु, (अपभ्रंश); श्रीचन्द्र, सपा० डॉ० ही० ला० जैन, प्राकृत टैक्ट सोसायटी, वाराणसी, द्वारा शीघ्र प्रकाश्यमान
१८. कालिदासग्रन्थावली; सपा० अनु० प० सीताराम चतुर्वेदी, अलीगढ
१९. काव्यप्रकाश; मम्मट, हिंदी अनु० व टीका डा० सत्यव्रत सिंह, चौ० वि० भ० वाराणसी, ग्र० १५, वि० सं० २०१२
२०. जंबू अतरगरास अथवा जंबूकुमार विवाहलो, सहजसुंदर, हस्तलिखित प्रति लाल० दल० शोध सं०, अहमदाबाद
२१. जंबूकुमार चौपाई, अथवा जंबूस्वामीरास, पाठक भुवनसुंदरगणि हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान, वही
२२. जंबूकुमार रास; वाचक जसविजय हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान, वही
२३. जंबूकुमार रास, मुनि भूषर, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
२४. जंबूचरित, अथवा जंबूस्वामि अज्झयण (प्रोकृत) हस्तलिखित प्रतियाँ, प्राप्तिस्थान, (१) वही, (२) प्राच्य संस्थान बडौदा, (३) भंडारकर प्राच्य शोध संस्थान, पूना
२५. जंबूचरियं (प्राकृत), गुणपाल, सपा० मुनि जिनविजय, सिवी जैन ग्रन्थमाला, भारतीय विद्याभवन, वंबई
२६. जंबूपृच्छा रास; अथवा कर्मविपाक रास, बीरजी मुनि, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान ला० द० शो० सं० अहमदाबाद

२७. जंबूसामिचरितं (प्राकृत); पूर्व मुनि जिनविजय; जैन साहित्यवर्द्धक सभा, भावनगर, वि० सं० २००४
२८. जंबूस्वामीकथा; विजयशकर विद्याराम, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान ला० द० शो० सं०, अहमदाबाद
२९. जंबूस्वामीगीता; उपा० यशोविजय, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
३०. जंबूस्वामीगुणरत्नमाला; जेठमल चोरडिया, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
३१. जंबूस्वामी चरित; अज्ञात कर्तृक, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
३२. जंबूस्वामी चरित्र, भावशेपर साह, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
३३. जंबूस्वामी चरित्र; धर्ममुनि, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
३४. जंबूस्वामी चरित्र; काव्य, जयशेखर, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
३५. जंबूस्वामी चरित्र; भापा, पाडे जिनदास, हस्तलिखित प्रति, पंचायती दि० जैन मंदिर, सरधना
३६. जम्बूस्वामी चरित्र; ब्रह्म जिनदास, हस्तलिखित प्रतियाँ (१) जयपुर शास्त्रभंडार, (२) ऐलक पन्नालाल जैन, सरस्वती भवन न्यावर, (३) भ० ओ० रि० इन्स्टी०, पूना
३७. जम्बूस्वामी चरित; पं० राजमल्ल, संपा० डॉ० जगदोशचन्द्र जैन, मा० दि० जैन ग्रन्थमाला, क्र०, ३५, वि० सं० १९९३
३८. जम्बूस्वामी चरित; मानसिंह, हस्तलिखित प्रति, भ० ओरि० रि० इन्स्टी०, पूना
३९. जम्बूस्वामी चौपाई; जिनप्रभसूरि, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान ला० द० शो० सं० अहमदाबाद
४०. जम्बूस्वामी चौपाई; अज्ञात कर्तृक, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
४१. जम्बूस्वामी रास; नयविमल, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
४२. जम्बूस्वामी रास; उपा० यशोविजय, सपा० डॉ० २० ला० ची० ला० शाह, प्रकाशित
४३. जम्बूस्वामी रास; नयविमल, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान; ला० द० शो० सं०, अहमदाबाद
४४. असहरचरित, पुष्पदंत, संपा० डॉ० पं० ल० वैद्य, अम्बादास चवरे, दि० जैन ग्रन्थमाला १, वि० सं० १९८७
४५. जातक, हिंदी अनुवाद, भाग १-६, अनु० भ० आ० कौसल्यायन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सन् १९४१ से १९५६ तक
४६. जिनरत्नकोश, संपा० डॉ० एच० डी० बेलणकर, भ० ओरि० रि० इन्स्टी०, पूना १९४४
४७. जैन ग्रन्थ और ग्रन्थकार, फतेहचंद बेलाणी, जै० सं० सशो० मंडल, वाराणसी, सन् १९५०
४८. जैन ग्रन्थावली, जैन स्वे० कान्करेन्स, मुंबई, वि० सं० १९६५
४९. जैन सत्यप्रकाश, वर्ष ४, अंक १-२, वि० सं० १९९४
५०. जैन साहित्य और इतिहास (द्वि० संस्करण), नाथूराम प्रेमी, संशोधित साहित्यमाला प्रथम पुष्प, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बंबई वि० सं० २०१२
५१. जैन साहित्यका इतिहास, पूर्व पीठिका, पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, गणेश० वर्णी दि० जैन ग्रन्थमाला वाराणसी, वीर नि० सं० २४८९
५२. गायकुमार चरित, पुष्पदन्त, संपा० डॉ० ही० ला० जैन, देवेन्द्रकीर्ति दि० जैन ग्रन्थमाला १, वि० सं० १९८९
५३. तत्त्वार्थसूत्र, ज्ञानपीठ पूजाञ्जलि, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, सन् १९५७
५४. तिलोयपण्णत्ति, यतिवृषभ, जीवराज जैन ग्रन्थमाला, शोलापुर, ग्रन्थाक १-२, वि० सं० २०००, २००७
५५. तिसट्टिमहापुरिसगुणालंकार, (महापुराण)—पुष्पदंत, सपा० डॉ० पं० ल० वैद्य, मा० दि० जैन ग्रन्थमाला ३७, ४१, ४४, सन् १९३७, १९४०, १९४१
५६. दशवैकालिक चूर्णि, जिनदासगणि, ऋषभदेव केशरियाजी, स्वे० संस्था० रतलाम, वि० सं० १८८९
५७. धर्माभ्युदयमहाकाव्य, उदयप्रभ, सिंधी जैन ग्रन्थमाला ४, भारतीय विद्याभवन बंबई, वि० सं० २००५
५८. धर्मापदेशमाला विवरण, जयसिंहसूरि, सिंधी जैन ग्रन्थमाला, भारतीय विद्याभवन बंबई, वि० सं०.....

५९. नायाधम्मकहाओ, संपा० एन० ह्वी० वैद्य, पूना
६०. नदीसूत्र, आगमोदय समिति प्रकाशन
६१. निरयावलियाओ, सुत्तागमे भाग २, संपा० पुष्पभिक्षु
६२. निशोथचूर्णि (सभाष्य) भाग १-४, उपा० अमरमुनि, सन्मति ज्ञानपीठ आगरा, १९५७-६०
६३. पउमचरिउ, स्वयम्भू, संपा० डॉ० ह० व० भायाणी (भाग १-३), सिंधी जैन ग्रन्थमाला ३४-३६, भारतीय विद्याभवन, बंबई १९५३, १९६०
६४. पउमचरिय, निमलसूरि, प्रा० टै० सोसा० वाराणसी, ग्रन्थाक ६, सन् १९६२ ई०
६५. परिशिष्ट पर्व, हेमचन्द्राचार्य, सपा० डॉ० हर्मन जैकोबी, एशिया० सोसायटी कलकत्ता, ग्रन्थाक ५७, सन् १८८३ ई०
६६. प्रश्नव्याकरण, सुत्तागमे भाग-१, सपा० पुष्पभिक्षु
६७. प्रभवजबूस्वामिवेलि, अज्ञात कर्तृक, हस्तलिखित प्रति, प्रासिस्थान, ला० द० शो० स० अहमदाबाद
६८. प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य, डॉ० रामसिंह तोमर
६९. प्राकृत-पैङ्गलम्, भाग १, डॉ० भोलाचंकर व्यास, प्रा० टै० सोसा० वाराणसी, ग्रन्थाक २, सन् १९५९ ई०
७०. प्राकृत-प्रकाश, वररुचि, सी० कुन्हन राजा, अड्यार लायनेरी सिरीज, क्र० ५४, सन् १९४६ ई०
७१. प्राकृत व्याकरण, हेमचन्द्र, सपा० डॉ० प० ल० वैद्य, विर्लिगहन कोलेज सागली, सन् १९२८ ई०
७२. प्राकृत भाषा और साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास, डॉ० नैमिचन्द्र शास्त्री, तारा प्रकाशन, वाराणसी १९६५
७३. बृहत्कथाकोश, हरिषेण, संपा० डॉ० आ० ने० उपाध्ये, सिंधी जैन सिरीज, भारतीय विद्याभवन, बंबई
७४. भगवती सूत्र, (व्याख्या प्रज्ञप्ति), अभयदेव कृत टीका सहित, आगमोदय समिति प्रकाशन
७५. भट्टारक सम्प्रदाय, डा० विद्याधर जोहरापुरकर, जीवराज जैन ग्रन्थमाला ८, शोलापुर वि०सं०२०१४
७६. भविसयत्तकहा, धनपाल, सपा० सी० डी० दलाल, पी० डी० गुणे, गा० ओ० सिरीज X X, सन् १९२३ ई०
७७. भारतीय सस्कृतिमे जैनधर्मका योगदान, डॉ० ही० ला० जैन, म० प्र० शां० सा० परिषद्, भोपाल, सन् १९६० ई०
७८. भोजप्रबन्ध, बल्लाल, हिन्दी अनुवाद (भूमिका), पं० जगदीश लाल शास्त्री
७९. मनुस्मृति, संपा० पं० चिन्तामणि शास्त्री, चौ० सं० सिरीज ११४, वाराणसी, वि० सं० १९९२
८०. मुद्रित जैन श्वेताम्बर ग्रन्थ नामावली
८१. यशस्तिलक चम्पू, सोमदेव, हिन्दी, अनु० प० सुंदरलाल शास्त्री, महावीर जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी सन् १९६० ई०
८२. राजस्थानके जैन भण्डारोकी ग्रन्थसूची, भाग १-४, सपा० डॉ० कस्तूरचन्द्र कासलीवाल, जैन शोध संस्थान, महावीर भवन, जयपुर
८३. वसुदेव हिण्डी, (मूल प्राकृत), सघदासगणि, सपा० मुनि चतुरविजय पुण्यविजय, जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, सन् १९३० ई०
८४. वसुदेव हिण्डी, गुजराती अनुवाद, अनु० डॉ० भोगीलाल जे० साडेसरा, बढौदा
८५. विपाकसूत्र, सुत्तागमे भाग १, सपा० पुष्पभिक्षु
८६. व्यवहार भाष्य
८७. संस्कृत व्याकरण शास्त्रका इतिहास, मुषिष्ठिर मीमांसक, प्रका० पं० भगदत्त वै० सायनाधम, देहरादून
८८. संस्कृत साहित्यका इतिहास, वाचस्पति गैरोला चौ० सं० वि० प्र० २९, सन् १९६०

८९. समराइचकहा, हरिभद्रसूरि, संस्कृत छाया, पं० भगवानदास, अहमदाबाद, सन् १९३८
 ९०. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, हिन्दी विमला व्याख्या, पं० शालिग्राम शास्त्री
 ९१. सुदसणचरिउ, मुनि नयनंदि, संपा० डॉ० ही० ला० जैन, प्राकृत शोध संस्थान वैशाली-द्वारा शीघ्र प्रकाश्यमान
 ९२. सूत्रकृताङ्ग, सुत्तागमे भाग १, संपा० पुष्पभिवखु
 ९३. सेतुबंध, प्रवरसेन, काव्यमाला श० ४७, निर्णय-सागर प्रेस, मुंबई सन् १९३५ ई०
 ९४. सेतुबंध; हिन्दी अनुवाद, डॉ० रघुवंग, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
 ९५. सौन्दरनन्द काव्य, अश्वघोष, हिन्दी अनु०, पं० सूर्यनारायण चौवरी, संस्कृत भवन, कठौतिया, (जिला पूर्णिया, विहार)
 ९६. स्थानाङ्गसूत्र, सुत्तागमे भाग १, संपा० पुष्पभिवखु
 ९७. हिन्दीके विकासमें अपभ्रंशका योगदान. डॉ० नामवरसिंह (द्वि० संस्करण)
 ९८. हिन्दी साहित्यकोश, संपा० डॉ० धीरेन्द्रवर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी
 ९९. हरिभद्रके प्राकृत कथा साहित्यका आलोचनात्मक अध्ययन, डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, प्राकृत शोध संस्थान वैशाली, १९६५
 100. Encyclopaedia of Religion and Ethics.
 101. Historical Geography of Ancient India, B. C. Law.
 102. Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India, N. L. Dey.
 103. Twentyfive hundred years of Buddhism, P. V. Bapat, Govt. of India 1956 A. D.

संकेत

अप०—अपभ्रंश	आज्ञा०—आज्ञार्थक	आत्मने०—आत्मनेपदी
उ० पु०—उत्तमपुरुष	एकव०—एकवचन	जं० च०—जंजूचरियं
जं० सा० च०—जंजूसाभिचरिउ	त० सू०—तत्त्वार्थसूत्र	तृ० पु०—तृतीयपुरुष
द्वि० पु०—द्वितीयपुरुष	दे—देशी	पु०—पुल्लिङ्ग
बहुव०—बहुवचन	भवि०—भविष्यत्काल	वसु० हिंडी—वसुदेवहिण्डी
विधि०—विधिलिङ्ग	विशे०—विशेषण	स्त्री०—स्त्रीलिङ्ग
हिं०—हिन्दी		

वीर-विरहउ
जंबूसामिचरिउ

[संधि—१]

विजयंतु वीरचरणगोचंपिप मंदरन्मि थरहरिण ।
कलसुच्छलंततोप मुनर्गणिलगंतविदुलंकारा ॥ १ ॥
मो जयउ जम्म जम्माहिसेयपर्य - परंपडुरिजंतो ।
जणियहिमसिह्रिसंका कणयगिरी राडओ नडया ॥ २ ॥
जयउ^३ जिणो जस्सारुणनहंमणिपडिलभाचक्खुमहसक्खो । ५
अणियच्छियं - मन्वावयव दुत्थपरिकलियलोयणो जाओ ॥ ३ ॥
भमिरभुअवेयभामियजोडसगणजणिय रयणि-दिणसंकं ।
इय जयउ जम्स पुरओ पणक्किचयं चारु सुरवडणा ॥ ४ ॥
सो जयउ महावीरो ज्ञाणाणलहुणियरडसुहो जस्स ।
नाणम्मि फुरउ भुअणं एकं नक्खत्तमिव गयणे ॥ ५ ॥ १०

संधि—१

[मंगलाचरण]

महावीर भगवान्के चरणाय (अंगुष्ठ) से आक्रान्त होनेपर मंदराचलके कंपायमान होनेसे (अभिषेक) कलगोसे छलकते हुए जलकी सूर्यमे टकराती हुई छि्टकारे जयवंत हो ॥१॥ उन (महावीर भगवान्) की जय हो जिनके जन्माभिषेकनिमित्तक जलके पूरसे पांडुवर्ण होता हुआ कनकाचल (सुवर्णगिरि मेह) हिमगिरिकी अका उत्पन्न करता हुआ गोभायमान हुआ ॥२॥ वे जिन भगवान् जयवंत हो जिनके अरुण-नख रूपी मणियोमे ही अपने समस्त चक्षुओको लगा देनेवाला सहस्राक्ष (इन्द्र) भगवान्के नेप सत्र अवयवोको न देख सकनेके कारण दुस्थ अर्थात् दरिद्र व परिसीमित अर्थात् अपर्याप्त नेत्रो वाला हुआ ॥३॥ घूमती हुई (स्वच्छद्विनिमित्त सहस्र) भुजाओके वेगसे समस्त ज्योतिर्गणोको घुमा देने अर्थात् स्वस्थान-भ्रष्ट कर देनेके कारण रात्रि है या दिन ऐसी, अथवा रातमे दिन और दिनमें रात ऐसी; अथवा क्षण-क्षणमे कभी दिन कभी रात, ऐसी गंका उत्पन्न करनेवाले सुरपतिने जिनके सामने अभिराम नृत्य किया, ऐसे जिन भगवान् जयवंत हो ॥४॥ उन महावीर भगवान् की जय हो जिनके द्वारा अपने (आत्म) ध्यानरूपी अनलमे रतिमुख अर्थात् विषयसेवन, अथवा रति अर्थात् निजभार्या, उसके साथ काम-भोगका भाव भस्मसात् कर दिया गया है और जिनके ज्ञानमे समस्त भुवन इस प्रकार स्पष्ट झलकता है जैसे आकाशमे एक नक्षत्र ॥५॥ अपने दोनों पाववों में स्थित नमि तथा विनमिकी कृपाणोमें

[१] १ क ड चल्, ख ग णि । २ क ड पइ । ३ क ड इ । ४ ख ग इच्छिय । ५. क व ड भुअ । ६ ख ग घ ज्ञाणाणल ।

जयउ जिणो पासड्ढियनमिचिणमिक्किवाणफुरियपडिर्विबो ।
 गहियणरूवजुथलो ँव तिजयमणुसासिउं^६ रिसहो ॥ ६ ॥
 जयउ सिरिपासणाहो रेहइ जस्सगनीलिमाभिन्तो ।
 फणिणो तडिळहियनवधणो ँव मणिगन्धिणो फणकडप्पो ॥ ७ ॥

[१]

पंच त्रि पणवेप्पिणु परमगुरु मोक्खमहागइगामिहि ।
 पारंभिय पच्छिमकेवलहि^{१०} जिह^{११} कह^{१२} जंबूसामिहि^{१३} ॥ ध्रुवकं ॥
 पणमामि जिणेसरु वड्डमाणु किउ जेण तित्थु जगं वड्डमाणु ।
 ससुरासुरकयजन्माहिसेउ संसारसमुदुत्तारसेउ ।
 ५ चलय्यो^{१४} दोलियमेरुधीर^{१५} निन्नासियसक्कासंक्वीर^{१६} ।
 नहकंतिजित्तससिसूरधामु परिआणियलोयालयधामु ।
 जयसासणु विहरियसमवसरणु चउगइदुहपीडियजीवसरणु ।
 ज्ञाणग्गिभूइकयकम्मबंधु भन्वयणकमलकंदोद्वंधु ।
 वरकमंलालिगियचारुमुत्ति रयणत्तयसाहियपरममुत्ति ।

जिनका प्रतिबिम्ब पड़ रहा है, जिनसे ऐसा लगता है कि मानो तीनों लोकोका धर्मानुशासन करनेके लिए उन्होने अपने ही अन्य युगल रूप निर्माण किये हैं, उन ऋषभजिनकी जय हो ॥६॥ श्रोपाश्वर्चनाथकी जय हो जिनके शरीरकी नीलिमासे विलक्षण सर्प (घरणेन्द्र) का मणिगर्भित फणाटोप विद्युत्की छटासे युक्त (आषाढ़के) नये मेघके समान शोभायमान है ॥७॥

[१]

पाँचों परमगुरुओ (अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु)को प्रणाम करके मोक्षरूपी महागति अर्थात् श्रेष्ठगतिको जानेवाले अन्तिम केवली जंबूसामीकी कथा यथा परम्परा प्रारम्भ की जाती है। मैं उन वर्द्धमान् जिनेश्वरको प्रणाम करता हूँ जिन्होंने लोकमे वर्द्धमान् अर्थात् सर्वोत्कृष्ट धर्मरूपी तीर्थका प्रवर्तन किया व देवताओंसहित असुरो-द्वारा जिनका जन्मामिपेक किया गया और जो संसाररूपी समुद्रसे पार उतारनेके लिए सेतु रूप हैं; जिन्होंने अपने चरणोंके अग्रभाग (अगुष्ठ) से स्थिर मेरुशर्वतको भी कम्पायमान कर दिया व इस प्रकार गक्रदेवेन्द्रकी शका (कि यही जिन है या नहीं; अथवा कही भगवान्का शिशुशरीर इतने सुदीर्घ प्रमाणवाले एक हजार आठ कलशके जलामिपेकके पूरमे वह तो नहीं जायेगा-टि०) को नष्ट कर दिया; तथा जिन्होंने अपने नखोंकी कान्तिसे चन्द्रमा व सूर्यकी प्रभाको जीत लिया है और समस्त लोकोलोककी स्थितिको जान लिया है; जगत्को (धर्मका) शासन देनेके लिए जिन्होंने समवशरणके साथ विहार किया, एवं जो चतुर्गति (देव, मनुष्य, तिर्यक व नरक) के दु खोसे पीडित जीवोंके लिए शरणभूत हैं, तथा जिन्होंने अपने ध्यानरूपी अग्निसे कर्मबंधको भस्मसात् कर दिया है और जो भ्रम्यजनो रूपी कमलसमूहके लिए सूर्यके समान हैं, व जिन्होंने चारुमूर्ति अर्थात् अत्यन्त गोभावती, शुद्धवर्णा व श्रेष्ठ शुद्धात्मस्वरूप लक्ष्मीका आलिंगन किया एव रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य) के द्वारा परममुक्ति अर्थात् सम्यक्त्वादि अष्टगुणोसहित सिद्धावस्थाको प्राप्त

७ क डं ह्य । ८ क डं सासिउ । ९. ख गं लिहियं । १०. स डं लिहि । ११ ख ग घ जिह ।
 १२. क ड कइ । १३. क ख डं हि । १४. क डं ण्या । १५ क ट णिणा । १६ ख गं धीर ।

^{१०} तद्दिलोयसामि-समसित्तसत्तु ^{१८} वयणसुहासासियसयलसत्तु । १०
घत्ता—निर्त्थकरु केवलनाणधरु सासयपयपहु सम्मइ^{१९} ।
जरसरणजम्मविद्धंसयरु देउ देउ महु सम्मइ^{१९} ॥ १ ॥

[२]

वीरहो पय पणविचि मंदमइ	सविणयगिरु जंपइ वीरु कइ ।	
जो परगुणगहणकज्जे जियइ	सिचिणे वि न दोसु लेसु नियइ ।	
सो सुयणु सहावे सच्छमइ	गुणदोसपरिक्खहिं नारुहइ ।	
गुण जंपइ पयडइ दोसु छलु	अन्भासे जाणंतो वि खलु ।	
परगुणपरिहारपरंपरए	ओसरउ ह्यासु सो वि परए ।	५
करजोडिचि विउसहो अणुसरमि	अन्भत्थण मज्जत्थहो करमि ।	
अवसद्धुं नियवि मा मणि धरउ	परिउंछिविं सुंदरु पउ करउ	
कन्हु जे कइ विरयइ एकगुणुं	अण्णेक पउंजिअइ निउणु ।	
एकु जे पाहाणु हेसु जणइ	अण्णेकु परिक्खा तासु कुणइ ^{१०} ।	
सो विरलु को वि जो उहयमइ	एवं विहो वि पुणु हवइ जइ ।	१०

क्रिया; जो त्रैलोक्यके स्वामी है तथा शत्रु व मित्रमे समान भाव रखते हैं व जिन्होंने अपनी वचनसुधासे सभी जीवोको (सद्गति रूप उपलब्धिका) आश्वासन दिया है। ऐसे घमंरूपी तीर्थके प्रवर्तक होनेसे तीर्थकर, केवलज्ञानके धारक, गादवतपद (मोक्ष) के स्वामी, जरा, मरण व पुनर्जन्मका विध्वंस करनेवाले सन्मति (महावीर) देव मुझे सन्मति अर्थात् सद्बुद्धि प्रदान करे ॥ १ ॥

[२]

वीर भगवान्के चरणोको प्रणाम करके मंदमति वीर कवि विनयपूर्वक कहते हैं—जो दूसरोके गुणग्रहण करनेके लिए ही जीवित अर्थात् जागृत व उद्यत रहता है और स्वप्नमें भी लेशमात्र दोष नही देखता, ऐसा स्वभावसे स्वच्छमति सज्जन (किसीके) गुणदोषोंकी परीक्षामें अयोग्य होता है—अर्थात् उस ओर उसकी प्रवृत्ति नहीं जाती। परन्तु दुर्जन अपने अभ्यास (आदत) दोषसे जानता हुआ भी दूसरोके गुणोको तो ढाँकता है और झूठे दोषको प्रकाशित करता है। दूसरेके गुणोंका निराकरण करनेका जिसका स्वभाव है, ऐसा दुर्जन भेरे इस निर्दोष काव्यमें दोष न ढूँढ़ सकनेके कारण निराश होगा। मैं हाथ जोड़कर विद्वानोका अनुस्मरण तथा मध्यस्थ जनोंकी अभ्यर्थना करता हूँ। कोई अपशब्द देखकर उसे मनमें धारण न करे। उसे दूरसे ही छोड़कर सुंदर पदरचना कर लेवे। काव्यकर्तृत्व ही जिसका एकमात्र गुण है, वह काव्यरचना ही करता है; और कोई अन्य उसका व्याख्यान करनेमें निपुण होता है। एक पाषाण स्वर्णकी उत्पन्न ही करता है, और एक अन्य पाषाण (कसीटी) उसकी परीक्षा ही करता है। ऐसा तो कोई विरला ही होता है जो उभयमति अर्थात् दोनों प्रकारकी (काव्य-रचना व काव्य-परीक्षा अथवा व्याख्यान करनेकी) प्रतिभासे सम्पन्न हो।

१७ ख ग^० लोक^० । १८ वयणामय^० । १९ ख ग^० इ ।

[२] १. ख ग^० इ । २. घ^० बखहिं । ३. क घ ड दोसि, ख दोस । ४. क ड^० सइ । ५. क ड^० उच्छिवि; ख ग उछवि । ६. क वि । ७. ख ग एक्कु । ८. ख ग अण्णेक्कु । ९. ख ग जेवइ । १०. प्रतियो में इं ।

सुहसुहयुरु पढइ फुरंतु मणे कव्वत्थु निवेसइ नियवयणे ।
 रसभावहिं रंजियविउसयणु सो मुयवि सयंसु अणु^१ कवणु ।
 सो चेय^१ गव्वु जइ नउ करइ तहो कज्जे पवणु तिहयणु धरइ
 घत्ता—^२ कय अण्णवण्णपरियत्तणु वि पयडबंधसंधाणहिं ।

१५

①

अकहिज्जमाणु कइ चोरु जणे लक्खिज्जइ वहुजाणहिं ॥ २ ॥

[३]

सुकवित्तकरणि मणवावडेण सामग्गिकवण किय मइ^२ जडेण ।
 परिकलिउ पईउ जि सइसत्थु सुत्तु वि निपज्जइ जेत्यु वत्थु ।
 वणगउ सच्छंडु निघंटु सुणिउ गोरसविथारु पर तक्कु मुणिउ^३ ।
 महकइविनिवद्धु^४ न कव्वभेउ रामायणस्मि पर सुणिउ^५ सेउ ।
 गुणु सुयणे विद्धि सुयनामकरणे चारित्तु^६ वित्तु पयबंधु वरणे ।

ऐसा यदि कोई हो भी जो श्रुति-सुखकर (कर्णमधुर) स्वरसे उसे पढे और मनमे स्फुरायमान होनेवाले काव्यार्थको अपने वचनमे रखे तथा रस और भावसे विद्वज्जनोका अनुरंजन करे तो वह (महाकवि) स्वयम्भूको छोडकर अन्य कौन हो सकता है ? ऐसा विद्वान् भी यदि (अपने ज्ञानका) गर्व नहीं करता, तो उसके लिए ही ये वातवलय त्रिभुवनको धारण करते है (अर्थात् ऐसे विद्वान्से ही यह त्रैलोक्य अलंकृत व सार्थक होता है) । जिस प्रकार कोई चोर अपना स्वरूप परिवर्तन (ब्राह्मणादिका वेष बनाकर) करनेपर भी प्रकट सैध लगानेके कारण बिना कहे भी विशेषज्ञो-द्वारा पहचान लिया जाता है, उसी प्रकार दूसरोको काव्यरचनाओमे वर्ण या शब्द-परिवर्तन करने मात्रसे काव्यरचना करनेवाला कवि अपने काव्यगठनमे बिना कहे ही काव्यश्लोचको-द्वारा पहचान लिया जाता है (कि यह चोर कवि है) ॥ २ ॥

[३]

सुन्दर काव्यरचनानामे लगे हुए मनवाले मुझ जडबुद्धिने कौन-सी सामग्री एकत्र की है ? क्या मैने प्रदीप नामक शब्दशास्त्रको प्राप्त कर लिया है जिससे कि वस्तुका शुद्धवचनो-द्वारा वर्णन किया जा सके ? अथवा क्या मैने वनमे जाकर (ऋषि-मुनियोसे) छदसहित निघट्ट नामकोशको सुना है ? बल्कि वनमे स्वछन्द तथा निर्घट्ट—घंटा रहित गज होता है, ऐसा मैने सुना है । अथवा क्या मैने गो—अर्थात् बाणीमे रसके विचार तथा तर्क (शुद्धता) को जाना है ? बल्कि गोरस—अर्थात् दुग्धका विकार तक्र होता है, यही मैने जाना है । महाकवि-द्वारा रचे गये काव्यभेद (काव्यविशेष) सेतुवधको भी मैने नहीं सुना, केवल रामायणमे सेतु (वधन) की बात सुनी है । शास्त्ररचनानामे गुण और वृद्धि (व्याकरणकी प्रक्रियाएँ) के नामपर, मैने सज्जनमे गुण तथा सुतके द्वारा ख्याति-प्राप्त करनेमे वृद्धि (अर्थात् वगवृद्धि-वशोन्नति) की बात सुनी है, और वृत्तका अर्थ मैने केवल चारित्र-अर्थात् आचरणसे समझा है, वृत्त अर्थात् एकाक्षरादि छदसमूहको मैने नहीं समझा, उसी प्रकार वरण अर्थात् पाणिग्रहणमे पयःवध अर्थात्

११ क अण्ण, व अणु । १२ क ड वेय । १३ घ अन्नवध ।

[३] १ ख ग करण । २ क ड मइ । ३ क घ ड उ । ४ ख ग वडड । ५ क घ ड मुणिउ ।
 ६ क घ ड त्ति, ख त्त ।

दुर्वचयुः पिमुणु जाणउ हयागु उवलकिरुड संवच्छरु समासु ।
 मुहियणु कन्वु मकमि करेमि डच उमि भुणहिं सायुरु तरेमि ।
 हंहरतरुफलिं दोयंतु हस्थु सद्धाट्टु पंगु व जणे निरस्थु ।
 वत्ता—अह महकडरडउ पवंचु मडं कवणु चोञ्जु जं किज्जड ।
 विद्धड वीरेण महारचणे मुत्तेण वि पडमिज्जड ॥ ३ ॥

१०

[४]

इह^१ अस्थि परमजिणपयसरणु गुलखेडैविणिग्गाउ मुहचरणु ।
 सिरिलाडवग्गु तहिं विमलजसु कडदेवयत्तु निवृद्धकसु ।
 बहुभाचहिं^४ जे वरंगचरिउ पद्धडियाबंधं उद्धरिउ ।
 कविगुणरसरंजियविलसहं^५ वित्थारिय सुहयवीरकहं ।
 चच्चरियबंधि विरडउ सरसु गाडज्जड संतिउ तारजसु ।
 नच्चिज्जड जिणपयसेवयहिं किउ रामउ अंवादेवयहिं ।
 सम्मत्तमहाभरधुरधरहो तहो सरमइदेविलद्धवरहो ।

५

जलापणके द्वारा वर-वधूका सयोग कराया जाता है, यही मने जाना है; परन्तु गद्य-पद्यमय पदबंध अर्थात् पदरचना-द्वारा महाकाव्यकी रचना करना मैं नहीं जानता। दुर्वचन अर्थात् (वैयाकरणके अनुसार) 'अपगव्'के नामपर मैं दुर्वचन बोलनेवाले दुष्ट-चुगलखोरको ही समझता हूँ व समास (कर्मवारथ, तत्पुरुष आदि) के नामपर मासयुक्त संबत्सरको। भोलपनसे ऐसा समझकर कि मैं काव्य रच सकूँगा, मैं कविकर्ममें प्रवृत्त होता हूँ, और इस प्रकार मैं भुजाओ-द्वारा सागरको तर जानेकी इच्छा करता हूँ। दीर्घवृक्षके फलोकी ओर हाथ बढ़ानेवाले थडालु पंगुके समान ही मैं लोकोमें विकलप्रयास अर्थात् असफल प्रयत्न होऊँगा। अथवा महाकवियों द्वारा इस विषयके प्रबन्ध (महाकाव्य) की रचना की गयी है, तब क्या आश्चर्य जो मैं भी वैसी ही रचना करूँ, क्योंकि हीरेसे विंधे हुए महारत्नमें धागा भी प्रवेश कर जाता है ॥ ३ ॥

[४]

इस देशमें अन्तिम तीर्थकर-महावीरके चरणोका भक्त, गुलखेडका निवासी, गृभ आचरणवाला, श्री लाडवर्गगोत्री, निर्मल यशवाला और (काव्यरचनारूपी) कसौटीपर कसा हुआ महाकवि देवदत्त था, जिसने पद्धडिया छंदमें नाना भावोंसे युक्त वरागचरितका उद्धार किया तथा काव्यगुणों व रसोंसे विद्वत्सभाका मनोरंजन करनेवाली सुहयवीरकथा (?) का विस्तारसे वर्णन किया। उन्होंने सरस चच्चरिया बंधमें शान्तिनाथका महान् योगान किया; तथा जिन भगवान्के चरणोकी सेविका अवादेवीका रास रचा जिसका जिनभगवान्के चरणसेवको-द्वारा नृत्याभिनय भी किया जाता है। ऐसे सम्यक्त्वरूपी महद्भारकी धुराको

१ क ष ड उ । ८ ख ग ं वि । ९ ख ग ं फल । १० क ण । ११ ख ग चोञ्ज ।

[४] १ ष अह । २ ख ग गुड । ३ ख ग निवृद्ध । ४ क भाचहि । ५ क ष ड सहा । ६ क ष ड कहा । ७ ख ग ताह ।

नामेण वीरु हुड विणयजुड संतुव-गम्भुम्भउ^१ पढमसुड ।

१० ० घत्ता—अखलियसर^१-सक्यकइ कलिवि^{१०} आपसिउ सुड पियरें ।
पाययपबंधु^{११} वल्लह्जु जणहो विरइज्जउ किं इयरें ॥ ४ ॥

[५]

अह मालवम्मि धणकणदरिसी नयरी नामेण सिंधुवरिसी^१ ।
तहिं धकडवग्गे वंसतिलड महसूयणनंदणु^२ गुणनिलड ।
नामेण सेट्ठि तक्खडु वसइ जसपडहु जासु तिहुयणे^३ रसइ^४ ।
महकइदेवत्तहो परमसुही ते भणिउ वीरु कयसुयणदिही ।
चिरु कइहि^५ बहुलगंधुद्धरिउ संक्लिहि^६ जंबुसामिचरिड ।
५ पडिहाइ न वित्थरु अज्ज^७ जणे पडिभणइ^८ वीरु संकियउ मणे ।
भो भव्वबंधु किय तुच्छकहा रंजेसइ केम विसिद्धसहा ।
एत्थंतरे पिसुणसीहसरहु तक्खडकणिहु वोल्लइ भरहु ।
वित्थरसंखेवहु दिव्वञ्जणी गरुयारउ अंतरु वीरु सुणी ।
घत्ता—सरि-सर-निवाण^१-ठिउ बहु, वि जेलु सरसु न तिह मणिज्जइ ।
१० थोवउ करयत्थु विमलु जणेण अहिलासे जिह पिज्जइ ॥ ५ ॥

धारण करनेवाले और सरस्वती देवीसे वर प्राप्त करनेवाले उस (देवदत्त) कविको सतुवा (भार्या) के गर्भसे विनयसम्पन्न वीर नामका प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ । पुत्रको अस्खलितस्वर अर्थात् अव्याबाध सस्कृत कवि जानकर पिताने आदेश दिया—लोकप्रिय प्राकृत प्रबन्ध (गैली) में काव्य-रचना करो अन्य रचनासे क्या ? ॥४॥

[५]

मालवदेशमें धनधान्यसे समृद्ध सिंधुवर्षी नामकी नगरी है । वहाँ धाकडवर्गवशका तिलकभूत, मधुसूदनका गुणनिधान पुत्र तक्खड नामका श्रेष्ठि रहता है, जिसके यशका डका तीनों लोकोमें बजता है । महाकवि देवदत्तके सज्जनको सुख देनेवाले उस परम सुहृत्ते वीर कविको कहा—चिरकालसे कवियो-द्वारा अनेक ग्रन्थोमें उद्धृत जंबूस्वामीचरित्रका सक्षेपमें कथन करो । तब 'आर्यजनको व्यर्थ विस्तार—अर्थात् पुनरुक्ति न मालूम हो' इस प्रकार मनमें शक्ति होकर वीर कविने कहा—हे भव्यवधु ! (मेरे-द्वारा) रचित सक्षिप्त कथा विशिष्टरूभा अर्थात् विद्वज्जनको अनुरजन कैसे कर सकेगी ? इसके अनन्तर पिशुनरूपी सिहोके लिए अष्टापदके समान, तक्खडके कनिष्ठभ्राता भरतने कहा—हे दिव्यध्वनि (देवोके समान सुमधुर वाणी) वाले वीर कवि सुनो, विस्तार और सक्षेपमें बड़ा भारी अन्तर होता है, नदी, सरोवर और चरहियोमें बहुत सा जल है, वह सभी सरस नहीं माना जाता; परन्तु करवें-में रखा हुआ थोडा-सा विमल जल लोगोके द्वारा अभिलाषापूर्वक पिया जाता है ॥५॥

म ख ग गंभं । १ क ग घ डं सरं । १० क ड कलवि । ११. क ड पायवं ।

[५] १ क घ डं करिसी । २ क णदण । ३ क डं वणे । ४ गं इ । ५ र वं हि । ६ र ग
० हि । ७ ख ग घ अज्जु । ८ क घ डं इ । ९. ख ग निवाणु ।

[६]

अवि च-सेट्टिसिरितम्बखडेणं भणियं च तओ समत्थमाणेण ।
 बड्ढइ^१ वीरस्स मणे कइत्तकरणुज्जमो जेण ॥ १ ॥
 मा हांतु ते कइंटा गरुयंपवंत्रेहिं^२ जाण निव्वुद्धा ।
 रसभावमुगिरंती विप्फुरइ^३ न भारई^४ भुवणे ॥ २ ॥
 संति कई चाई विहु वण्णुकरिसे सुफुरियविण्णाणां ।
 रससिद्धिसंचियत्थो^५ विरलो वाई कई एको ॥ ३ ॥
 विजयंतु जए कइणो जाणं वाणी अइहं^६पुव्वत्थे ।
 उज्जोइयवरणियलां^७ साहयं^८ -चट्टि व्व निव्वडई ॥ ४ ॥
 जाणं समग्गसद्दोहज्जेत्तु^९ रमइ मइफडक्कम्मि ।
 ताणं पि हु उवरिल्ला कस्स व बुद्धी परिप्फुरइ^{१०} ॥ ५ ॥

किं च स्वकृतमपि वृत्तं न स्मरसि—
 स कोऽयंतर्वेद्यो वचनपरिपाटीं घटयतः^{११}
 कवेः कस्याप्यर्थः स्फुरति हृदि वाचामविषयः ।
 सरस्वत्याग्र्यान् निगद्गनविधौ यस्य विपमा-
 मनात्मरियां चेष्टामनुभवति कष्टं च मनुते ॥ ६ ॥

[६]

और भी—भरतके इस वचनका समर्थन करते हुए श्रेष्ठ श्रौतवखडने ऐसे वचन कहे जिनसे वीरके मनमें काव्यरचनाका उद्यम (उत्साह) बढे । उन्होने कहा—वे श्रेष्ठ कवि नहीं हो सकते जिनकी परिपुष्ट भारती महान् प्रबन्धो (महाकाव्यों)-द्वारा रस व भावोंकी वृष्टि करती हुई लोकमें विस्फुरायमान नहीं होती । वर्णों (रंगों) के उत्कर्षमें (अर्थात् चटकदार रंग चढानेमें) अत्यन्त चतुर धातुवादी तथा वर्णोंके उत्कर्ष अर्थात् बडे-बडे व सुंदर शब्दोंके प्रयोगमें चतुर कवि इस लोकमें बहुत है; परन्तु रस (धातुरस) की सिद्धिसे अर्थ अर्थात् सुवर्णका संचय करनेवाला धातुवादी तथा काव्यरसोंकी सिद्धिसहित सुंदर अर्थका संचय करने-वाला कवि कोई एक विरला ही होता है । जगत्में वे कवि विजयी हों जिनकी वाणी अहृष्टपूर्व (अभूतपूर्व) अर्थके विषयमें घरणीतलको प्रकाशित करती हुई तथा उपयोग-विशेषके द्वारा गूढधनको प्रकाशित करनेवाली साधकवक्तिकाके समान प्रवृत्त होती है । जिनके मतिरूपी फलक-पर समग्र शब्दसमूह (संस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश) रूपी कन्दुक नाना अर्थोंमें प्रवृत्त होती हुई क्रीडा करती है, उनके भी ऊपर और किसकी बुद्धि प्रतिस्फुरित हो सकती है । और क्या तुम अपने ही रचे हुए इस वृत्तको स्मरण नहीं करते—'ऐसा कोई विरला ही अन्तर्वेदी कवि होता है जिसके हृदयमें वचन-परिपाटीकी घटना करते हुए वाणीके अगोचर कोई अभूतपूर्व ही अर्थ स्फुरित होता है, जिसके अर्थोंको कहनेके प्रयासमें सरस्वती भी बड़ी विपम अनात्मनीय (असौधारण) चेष्टाका अनुभव करती है और कष्ट मानती है ।

[६] १. क ड वड्ढइ । २. क घ ङं व । ३ गं वेवि । ४. ख ग विषरइ । ५. क घ ङं ही ।
 ६. क ड सुयणे । ७. ख ग णो; घं विण्णाणा । ८. क ड सव्वं; व संधिं । ९. क पुत्तं; वं त्थो । १०.
 प्रतियोमं यलो । ११. ख ग इ । १२. क ड हम्मंहुउ । १३. क घ ङ पडिं । १४. ख ग गमं ।

१५	इय निम्नोवि वयणु ^१ उच्छाहे अत्यि म्स्थु ^२ धगकणयममिद्धउ धम्मायारजुत्त निहसणु त्रिसयसारु वणिणज्जइ हंसु व कुलडकठवकहवधु व वीसरु ^३	पारंभिय ऋह जिणवड नाहे । मगह्वेसु महियलि सुपसिद्धउ । पंडवनाहु व भाग्हुभूसणु । कि न ^४ तरुणियणमंडलफंसु व । भावइ नीरसस्स सुमनोहरु । गुरुगंभीरवलाहियरमणउ ^५ । त्रियमियइंदीवरवरघयणउ । फेगावलिसोहियसियहारउ । जलखलहलरवसज्जियरसणउ ।
२०	जहि ^६ जलवाहिणीउ थिरगमणउ तरलमच्छद्रीहरचलनयणउ जलगयकुंभथोरथणहारउ ^७ उदयकूलदुमनियसियवसगउ ^८	

ये वचन सुनकर जिनमतिके पति (वीर कवि) ने उत्साहसे कथा प्रारम्भ की। यहाँ-पर वनकणसे समृद्ध, महीतलमे सुप्रसिद्ध मगध नामका देश है। वह धर्माचारसे युक्त है और वृषणरहित है, अतः पांडवनाथ युधिष्ठिरके समान भारत (महाभारत, पक्षमे भारतदेश) का भूषण है। वह सब देशोमे श्रेष्ठ कहा जाता है, अतएव सैकड़ो पक्षियोमे हंसके समान तथा विषयोमे श्रेष्ठ तरुणजनोके स्तनमण्डलके संस्पर्शके समान नयो न वर्णनीय हो ? अपने उद्यानादिकोमे वह पक्षियोके स्वर (वी + स्वर) से सयुक्त तथा जल और शस्य (नीर + शस्य)-से अति मनोहर होता हुआ कुकविकृत काव्यकथाबंधके समान स्वरहीन (विस्वर) है जो काव्यरसके ज्ञानसे हीन ग्राम्यपुरुषको खूब मनोहर लगता है। जहाँकी जलवाहिनियाँ जलवाहिनी (पनिहारिन) कामिनियोके समान है; वहाँकी पनिहारिने मद-मद गमन करने-वाली तथा विशाल, गभीर व सुपुष्ट नितम्बोवाली हैं, उसी प्रकार वहाँकी जलवाहिनियाँ मद-मद प्रवाहवाली तथा अति विशाल व गम्भीर हृदो रूपी सुपुष्ट नितम्बोको धारण करनेवाली हैं। वहाँकी पनिहारिने चंचल मत्स्योके समान दीर्घ व चंचल नेत्रोवाली, तथा विकसित ईदीवरके समान प्रफुल्लित एव सुदर मुखवाली हैं, उसी प्रकार वहाँकी जलवाहिनियाँ चंचल-मत्स्योरूपी दीर्घ व चंचल नेत्रोवाली तथा विकसित इदीवररूपी प्रसन्न व सौम्य मुखवाली हैं; वहाँकी पनिहारिने जलगजोके कुम्भस्थलोके समान स्थूल स्तनोको धारण करनेवाली तथा फेगावलिके समान शोभायमान श्वेत (मुक्ता) हारोको धारण करनेवाली हैं, उसी प्रकार वहाँकी जलवाहिनियाँ जलहस्तियोके कुम्भस्थलरूपी स्थूलस्तनोको धारण करनेवाली तथा फेगावलि-रूपी धवलहारोसे शोभायमान हैं; जिस प्रकार पनिहारिने पहने हुए वस्त्रो तथा घडोमे छलकते हुए जलके खल-खलरव एवं कटिमेखला (की किंकिणियोके मधुर कलरव) मे सुसज्जित रहती हैं, उसी प्रकार जलवाहिनियाँ उभयतटोके द्रुमोरूपी पहने हुए वस्त्र एव जलके खल-खल रव रूपी कटिमेखला (की किंकिणियोके मधुर रव) से सुसज्जित है। उस मनोहर देशको छोडकर नदियाँ अपेय त्रिप (जल व हालाहल) के आकर (सागर) का अनुसरण करती हैं, अथवा

१५ क ट ण । १६ ग एत्थ । १७ र ग किनु । १८ क ट वा । १९ क ड जहि । २० क ट णीन ।
२१ क घ ड गयकुभिकुम्भयण २२ र ग णिवनिय । - -

घत्ता—तं देसु मणोहर परिहरैवि सरिउ अपेउ विसायरु ।
जडमइयहिं अहव विवेउ कहिं तियहिं^{२३} सलोग^{२४} आयरु ॥ ६ ॥

[७]

जहिं सरवरइ हसियसयवत्तइ ^१	कुकलत्ता इव अविणयत्रंतइ ^२ ।
तटवरुछाइयसीयलनीरइ ^३	सज्जणहियया इत्र गंभीरइ ^४ ।
उज्जाणइ ^५ परिवडिइयमारइ ^६	जोवण इव पियालवणसारइ ^७ ।
दकखारसु वियलंतु न खिज्जइ	थलकमलिणिवृलनिवडिउ पिज्जइ ।
जहि खज्जंति कीरमुहचुंविउ	परिपक्खउ ऋयलीफलुंविउ ।
असुहावियमुहैहिं ^८ रुइरहियहिं	मिरियवेलि चक्खिज्जइ पहियहिं ।
इय आहारहिं जहिं छुह ^९ छिज्जइ	संवलु नियघराउ न वहिज्जइ ।
ओणामिज्जइ ^{१०} पावियफलभरु	नायवेलिवेडिउ फोफलतरु ।

५

जडमति (पद्ममें जलमयी) स्त्रियोंमें कही विवेक देखा जाता है ? वे तो केवल सलोनै (सुन्दर, पद्ममें सलवण-खारा) का आदर करती हैं ॥६॥

[७]

जहाँके सरोवर कुकलत्रोके समान है; कुकलत्र सैकड़ों उपहसनीय मुखों (या पात्रों अर्थात् उपपतियों ?) वाली तथा अविनयशील होती है; उसी प्रकार वहाँके सरोवर हसित अर्थात् विकसित शतपत्रोसे युक्त तथा अविनयशील अर्थात् जलके निरन्तर गमनागमनसे युक्त हैं । वे सरोवर तटवर्ती वृक्षोसे छाये रहनेके कारण शीतल जलवाले तथा सज्जनोके हृदयोके समान गंभीर हैं । वहाँके उद्यान यौवनके समान हैं; यौवनमें मार अर्थात् काम खूब बढ़ता है और प्रिय जनोंका कामोद्रेककारी आलाप ही उसमें सार होता है; उसी प्रकार वहाँके उद्यानोंमें मार (हठ) वृक्ष खूब बढ़ रहे हैं और प्रियाल वृक्षोकी पंक्तियों तथा पानीसे सार युक्त अर्थात् समृद्ध हैं । वहाँ (पके हुए फलोंके गुच्छोंसे) निरन्तर गिरता हुआ द्राक्षारस कभी क्षय नहीं होता और स्थल वमलिनियोंके पत्रों पर पडा हुआ पिया जाता है । जहाँ शुकोके द्वारा मुख चूबे हुए (चोच मारे हुए) लटकते हुए परिपक्व कदली फलोंके गुच्छे (कंले) खाये जाते हैं । और जहाँ (मुधातुल्य मीठा द्राक्षारस पीने व मीठे फल खानेसे जिनका) मुँह बेस्वाद हो जानेसे जिन्हें और कुछ खानेसे अरुचि उत्पन्न हो गयी है, ऐसे पथिकोके द्वारा मिरिचकी बेल चखी जाती है । ऐसे (प्राकृतिक) आहारोसे जहाँ क्षुधा क्षय हो जाती है, वहाँ अपने घरोसे संवल (पाथेय) लेकर नही चला जाता । तथा जहाँ नागलता (पानकी बेल) से वेष्टित पूगवृक्ष फलोंके भार-रूप पूर्ण सफलताको प्राप्त कर चुक रहा है । उस देगमें गोकुलके आँगनोंमें नीले वस्त्रोंको

२३ क डं हि । २४. क घ ङ णं इ ।

[७] १ क डं जहि सरवरइ हसियसयवत्तइ । २ क त्व ग डं वतइ । ३. क डं रइ । ४. क स ग डं गइ । ५ कं सारइ, स गं वट्टिअं । ६. क ग डं हि । ७ क जिह छुह । ८. कं पज्जइ । ९ क डं अणावित्ठइ, स ग उण्णां ।

२

घत्ता—गोट्टंगणे नीलनिधंसणिहिं वणथरणमणुकांतिहिं^{१०} ।

पहिं^{११} किज्जइ^{१२} गमणविलंबु जहिं गोविहिं रासु रभंतिहिं ॥ ७ ॥

[८]

जहिं कलमसालिफलेकयसुयंछु

वाचरइ समीरणु भरिथरंधु ।

हल्लिरमहल्लमंजरिवसेण

धुम्मइ व धरणि रंजियरसेण ।

उद्धूस इव वरधूसरेहिं

उच्चलइ व चवलयेवल्लरेहिं ।

हसइ व विसट्टंमुहवणफलेहिं

नच्चइ व नभंतहिं जो नलेहिं ।

५ मंडइ व त्रयणु कुसुमियसणेहिं

सव्वंगुक्करसिय करिसणेहिं ।

पुंडच्छुजंतच्चिकारएहिं

गाथइ व मुक्कसिकारएहिं ।

सरलंगुलिउट्ठिमविं जपिएहिं

पयडेइ व रिद्धि कुडुंमिएहिं^{१२} ।

६ देउलहिं विहूसिय सहहिं गाम

सग्ग व अत्रइणं विचिच्छाम ।

घत्ता—परिहापाथारहिं परियरिउ सुरपुरसिरिदलवट्टणु ।

१० ताहे देसि मणोहर रायगिहु नामे निवसइ पट्टणु ॥ ८ ॥

धारण करनेवाली तथा अत्यन्त धने स्तनों व रमणोंके भारसे आक्रान्त रास खेलती हुई गोपियों के द्वारा (पथिकोंके लिए) पथमे गमन करनेमे विलंब कर दिया जाता है ।

[८]

जहाँ कलम नामक धानकी वालीकी सुगंधिसे युक्त, समस्त रंघ्रोंको भरनेवाला (व रोम-रोम पुलकित करनेवाला) समीर वहता है । जिस देगकी भूमि बड़ी-बड़ी हिलती हुई मंजरियोंके वहाने मानो रसरजित (मदमत्त) होकर धूम रही है; श्रेष्ठ मूंगकी कोमल सेमयुक्त फलियोंसे मानो रोमाचित हो रही है; चपल कोपलोंके ऊपरके फलियोंके गुच्छोंके द्वारा मानो उछल रही है; विकसित मुख अर्थात् खिले हुए कर्पासफलोंसे मानो हंस रही है और झुकते हुए नलो (सरकंडे) के द्वारा मानो नाच रही है; फूले हुए सण से मानो मुखको सजा रही है और फूली हुई खेतीसे मानो सर्वांग उत्कषित अर्थात् उल्लसित हो रही है—ऐसा वह देश इक्षु रस निकालनेके यंत्रोंकी चीत्कारो-द्वारा मानो सीत्कारें छोड़ते हुए नाच रहा है । अपनी सरल अंगुलियोंको उठा-उठाकर बोलनेवाले अपने कुटुम्बी अर्थात् किसान गृहस्थोंके द्वारा जो अपनी ऋद्धि-समृद्धिको प्रकट करता है । देवकुलोसे विभूषित वहाँके ग्राम ऐसे शोभायमान है मानो विचित्र भवनोवाले स्वर्ग अवतीर्ण हो गये हो । उस देगमे परिखा और प्राकारोसे घिरा हुआ इंद्रपुरीकी गोभाको भी मात करनेवाला अत्यन्त मनोहर राजगृह नामका पत्तन है ॥८॥ ।

१० क व ड रमणं । ११. ख ग पहिं । १२ ख ग ई ।

[८] १. गं सालिकलं । २ ख गं ड । ३ ख गं लइ । ४ क डं हु । ५ घ ण, ड, डि । ६. क डं तिहिं । ७ डं हि । ८. क डं करिसिय । ९ क डं विक्कारं । १०. ख उंसिवि । ११. क व ड उंसिं । १२ क डं रंहिं । १३ कं हिण्ण; घं इत्त । १४ क व हि ।

[६]

गोडरं जत्थ भडरक्खियं दुद्धं
हद्धमगं पि चल्लंतु नायरजणो
कामिणीसेयच्चुयकुंकुमे खुप्पए
उवरितणभूमिधवलहरअट्ठमंतरे
सासमरुमिलियभमरं मुहं^३ दावए
फलहसिलघडियवरपंगणुम्मीसिया
दित्तरविकंतकिरणेहिं तमु खिज्जए
कसणमणिसंखंडिच्चइयधरणीयलं
पयहिं चंपेविं आहणइ जा किर थिरं

कुंभचिलयाण जंतोण कयकद्धं ।
एकमेकेसु संघट्टियंगो घणो ।
ल्हसियसिरकुंतुसुमदामेहिं तह गुप्पए ।
कामपंडुरकवोला गवक्खंतरे ।
राहुससिजोयभंतिं समुप्पायए ।
पोमराएहिं रंगावली दीसिया
जामिणी जत्थ निहाए जाणिज्जए
सप्पसंकाइ च्चलवलयिकिरणुज्जलं ।
धुणइ^१ कुंचइयं^२ -चंचूमऊरो सिरं ।
^३सगिणीनामछंदो ।

घत्ता—घरि घरि गोरिड सीमंतिणिउ सक्कु घणउ^{१२} ईसरु जणु ।
नियरिद्धिए मण्णउ^३ तुच्छसिरि सग्गु वि द्दुत्थु दयावणु^{१५} ॥६॥

१०

[६]

जहाँके गोपुर भटोसे सुरक्षित होनेसे (शत्रुशोके लिए) दुर्दम्य अर्थात् दुर्जेय है और जहाँ गमन करती हुई पनिहारिनोके द्वारा कर्म कर दिया जाता है; वहाँ हाट-मागोसि चलता हुआ नागर समुदाय परस्परके अंगोसे खूब संघट्टित होता है; कामिनियोके स्वेदसे चूये हुए कुंकुम (की कीचड़) में वह धंस जाता है और शिरसे खिसकी हुई पुष्पमालाओंमें स्खलित होता है । जहाँ ऊपरीतलके प्रासादके भीतरके गवाक्षोंमें कामोद्रेकसे पांडुरवर्ण कपोलवाली कामिनी अपने श्वासकी (सुगंधित) मरुत्से आकृष्ट हुई भ्रमरपंक्तिरसहित मुखमंडल दिखला रही है और राहु-शशि संयोग अर्थात् चन्द्र-ग्रहणकी भ्रान्ति उत्पन्न करती है वहाँ स्फटिक शिलाओसे घटित धर-प्रागणमे पद्मरागसे मिश्रित मणियोंकी रंगोली दिखाई देती है । देदीप्यमान रविकातमणिकी किरणोंसे जहाँ अन्वकार नष्ट हो जाता है, अतः वहाँ यामिनी केवल निद्रासे ही जानी जाती है । उन घरोंके पृथ्वीतल इन्द्रनीलमणियोंसे खचित हैं, जिनकी लहराती हुई किरणें चंचल सर्पोंकी गंका उत्पन्न करती है; इसलिए वहाँ मयूर पुनः-पुन अपने चरणोंसे भूमिको आक्रान्त (आहत) करके (वास्तविक सर्पको न पाकर) अपने चंचुको कुंचित करके सिर धुनता है । (सगिणी नामक छंद) । वहाँ धर-धरमें गौरी सोमन्तिनिर्या है (स्वर्गमें एक ही गौरी है) तथा धर-धरमें शक्र और धनद-कुवेर जैसे धनी लोग हैं (स्वर्गमें एक ही शक्र और एक ही धनद है) । इस प्रकार अपनी ऋद्धिकी तुलनामें वह नगर स्वर्गको तुच्छ धनवान्, दुःस्थित और दयनीय मानता है (विवेकके लिए देखो आगे टिप्पण) ।

[१] १ क सिया । २ क छ भंभं । ३ क छ सुह । ४ क ड जोय तहि भतिमुप्पायए । ५. क व ड द । ६. ख ग ई । ७ ख संड । ८. क छ चपेहि, घ चपेहि । ९. ख ग डं । १० ख ग कुचड । ११ क व ड में छद नाम नही । १२ ख ग व उ । १३ क व ड ड, ख ग मल्लइ । १४. ख ग वणउ ।

[१०]

घरे घरे तूरु मपोहरु वज्जइ^१
 घरे घरे सुम्मइ^२ सवणसुहावणि
 घरे घरे जहि^३ नेउररवभामिणि
 जहि^४ दप्पणकराणं आमत्तिण
 सुद्धियाणं ईहंतिणं सियगुणुं
 कामिणीउ णं चंदणसाहउ
 जाहं रूउ^५ पेक्खेवि^६ कलइत्तउ
 जयकंखिरु तिनयणभयतट्टउ^७
 घणयणकलसहि^८ सुद्धएप्पिणुं
 अहरए महुं छुहेवि^९ मयसंगहि^{१०}
 कामुअजणमणजगडणदक्खहि^{११}
 ऊरुखंभमंडियभुवणुल्लण

पुरवरि नं अयालि घणु गज्जइ ।
 गंधवाणुल्लगआलावणि ।
 दावइ हंसहो गइ गोसाभिणि ।
 अहरोवाहिरंगु अमुणंतिण ।
 दंतपंतिं छोलिज्जइ पुणु पुणु ।
 विरइयभोयभुअंगं-सणाहउ ।
 हेळइ^{१३} जित्तुं महेशरचित्तउ^{१४} ।
 सरणउ अंगि अणंगु पड्डइ ।
 नियसवसुं सिगारुं ठवेपिणु ।
 धणु सज्जोउ मुकुं भूभंगहिं ।
 वाणसमपियं नयणकडक्खहिं ।
 रइआवासु कियउ रमणुल्लण ।

[१०]

उस श्रेष्ठ नगरमे घर-घरमे ऐसा मनोहर तूर बजता है, मानो दुदिनमे मेघ गरजता हो । घर-घरमे गधवों-जैसा श्रवण सुखद वीणाका सगीत सुनाई पड़ता है । जहाँ घर-घरमे तूपुरध्वनि करती हुई गोस्वामिनियाँ (गोपियाँ), (तूपुर ध्वनिकी हसोकी ध्वनिसे समानताके कारण) हसोकी (भ्रान्ति उत्पन्न करके अपने पीछे-पीछे अनुगमन कराती हुई मानो उन्हे) चलना सिखलाती है । जहाँ हाथमे लिए हुए दर्पणमे अपनी ही सूरत देखकर आसक्त अर्थात् मत्त हुई मुग्धाके द्वारा अधरोकी उपाधि अर्थात् सामीप्य जन्य ईषत् लालिमाको न समझकर धवल बनाने को इच्छासे अपनी दत्तपवित्तको पुन-पुन छोला जाता है । जहाँकी कामिनिर्था सभोग सुख देने वाले (अथवा विरचित भोग अर्थात् ताना प्रकारके वस्त्राभरणादिसे सजे हुए) अपने प्रेमियोसे सनाथ है, अत वे चदनवृक्षोकी उन शाखाओके सदृश है जो विरचित भोग अर्थात् फैलाये हुए फणोवाले भुजगो (सर्पो) से युक्त होती है । जिनका सकलकला युक्त रूप देखकर हेलासे अर्थात् अनायास ही महेश्वरका चित्त विजित हो गया, अतः विज्ञयोकी आकाक्षा करनेवाला अनय उन त्रिनेत्र (महादेव) के भयसे त्रस्त हुआ उन कामिनियोके अगोकी शरणमे प्रविष्ट हो गया । जहाँ कामदेवने घने स्तनोरूपी कलशोमे चूचकोरूपी मुद्रा (मुहर) लगाकर उनमे अपना सर्वस्व शृंगार (सौंदर्य) स्थापित करके अधरोमे काममदसे भरा, मधु डालकर अपना धनुष चढाकर उनके भ्रूमगोमे छोट दिया है, अर्थात् अपने धनुषको तो भीहोको समर्पित कर दिया और अपने बाण कामोजनोके मनकी कदर्थना करनेवाले उनके नयन-कटाक्षोमे समर्पित कर दिये है, उन रमणियोका जंबाओरूपो स्तम्भोसे मडित श्रोणितलरूपी भुवन मानो रतिका

[१०] १. कं इ । २. घं इ । ३. कं जहि । ४. कं करए । ५. कं डणं भुणं ६. कं वं याइ, डं याइ । ७. कं डं तिय । ८. कं गुण । ९. कं दति । १०. कं डं भुवण, घं भुयग । ११. खं गं खं । १२. कं वं डं पिच्छवि । १३. गं घं इ । १४. खं गं जित्तुं । १५. खं गं मुराहिवं । १६. खं गं घट्ट । १७. कं वं सह, डं मह । १८. कं डं एविणु । १९. कं सवसु, डं सवसु । २०. खं गं तं । २१. कं रडं मुहु, कं डं रडं मह । २२. खं गं छुएवि । २३. कं डं मह । २४. कं डं मुक्क । २५. कं वं डं कामुयं । २६. कं डं प्पइ ।

घत्ता—तहि^{२७} सेगिउ^३ नयरे नराहिवइ रुवधिणिज्जियरइवरु ।
 लवणणवकूलावहि—सधरधरमंडलं^१—पालियकरु ॥१०॥

[११]

जेण वलिय मंडलियअसेस वि वसिकियलइयकप्पु वलिमंडलं^१
 मरगयवण्णंकिवाणुप्पणउ जासु पयावहुवासु अतित्तउ
 विहवीहुयाहि^२ जं जि सुमरिज्जइ इयकज्जेण डहणमणु चलियउ
 जो निव नोइत्तरंनिणिसायरु अरुहभत्तु सम्मत्तधुरंधरु
 अविय—चंडभुअददे^३—खंडियपयंडमंडलियमंडलीविसदे^४ ।

वगगिरिगहणनिरंतरदेस वि । जयसिरि वसइ जासु भुअददं^१ ।
 जसु जसु तो वि अमरगयवण्णउ । खीणारिंधणखोउज्जुं नियंतउ ।
 अवसु विवक्खु एत्थु पाविज्जइ । रिउधरणिहुं हियवइ पज्जलियउ ।
 सुयणसरोकहसंडदिवायरु । धम्ममहारहंओडियकंधरु ।

धाराखंडणभीयन्व जयसिरि वसइ जस्स खग्गंके ॥१॥

१०

आवास-भवन ही है । ऐसे नगरमे श्रेणिक नामका राजा रहता है, जो रूपमे रतिपतिको भी जीतनेवाला है, तथा लवणोदधिके कूल तक पर्वतोसहित समस्त घरामंडलका धारक अर्थात् स्वामो व करपालक अर्थात् कर ग्रहण करनेवाला है ॥१०॥

[११]

जिसने गहन वनों व पर्वतों तथा व्यवधानरहित देशों वाले समस्त माडलीकोको साध लिया है एव देवलोकको भी बलपूर्वक वशमे कर लिया है, तथा जिसके भुजदंडमे जयश्रीका वास है । जिसका यश मरकत (नील, कृष्ण) वर्ण कृपाणसे उत्पन्न होनेपर भी अमरगज अर्थात् ऐरावत हाथीके (धवल) वर्णका है, अथवा अमरगतवर्ण अर्थात् देवताओ तक भी उसकी स्तुति गायी जाती है । जिसका अतृप्त प्रतापान्नि शत्रुरूपी ईंधनके क्षीण हो जानेपर (अतिरिक्त ईंधनकी) खोज करता हुआ—शत्रुओकी विधवा हुई पत्नियोंके द्वारा अपने हृदय-मे निरन्तर उनका स्मरण किया जाता है, अतः शत्रुपक्ष वहाँ अवश्य प्राप्त होगा, इस हेतुसे उसे दहन करनेकी इच्छासे चला व रिपु-गृहिणियोंके हृदयोंमें (अपने मृतपतियोंके शोकाग्निके रूपमे) प्रज्वलित हो उठा । जो नृप नीतिरूपी तरंगिणिके लिए सागर है, वही सज्जनोरूपी कमलसमूहके लिए दिवाकर है । वह अरहंतोका भवत है तथा धर्मरूपी महारथ (की धुरा) को कंधेपर उठानेवाला है ।

और भी—जिसके प्रचंड माडलीकोकी मडलीके अति बलशाली भुजदंडोंकी काटने-वाले वीभत्स खड्गकी गोदमे जयश्री मानो उसकी धारासे खंड-खंड हो जानेके भयसे निवास करती है ॥१॥

२७. क ड तहि । २८. क ड ँड । २९. क ड मंडलु ।

[११] १ क ड मंडई; घ वडए । २. क भुयदडई; घ ड भुय दडइ । ३ क ड गइ । ४. ख ग वण्णु, व वन्न । ५ ख ग व हुवासु । ६. क ड खोजु । ७. क ड हुयहि । ८ क ड णिहि, व णिहि । ९. क ड पद्दामर । १० क घ ड भुय० । ११. क ड विपडे ।

रे रे^{१२} पलाह कायर मुहाई^{१३} पेक्खइ न संगरे सामी ।
इय जस्स पयावघोसणाए विहडंति^{१४} वइरिणो दूरे ॥२॥
जस्स य रक्खियगोमंडलस्स पुरुसोत्तमस्स पद्धाए^{१५} ।
के के सवा न जाया समरे गयपहरणा रिउणो ॥३॥

अर्णं च गाहा जुअल^{१६}—

१५

भग्गभूवल्लीसोही हरियाहरपल्लवारुणच्छाउं ।
समियालयालिमालो अहलीकयपुप्फपरिणामो ॥४॥
हयचंदणतिलयरई—रिउरमणीरम्मजोव्वणवणेषु ।
कोहदुव्वायवेउ नरवइणो जस्स निव्वडिओ ॥५॥

घत्ता—जसु तणप्र रज्जे नहमग्गे ठिउ वाउ वहइ रवि तप्पइ^{१७} ।

२०

संपुण्णमणोरहु^{१८} चउदिसिहि^{१९} सडं वसुमई^{२०} फलु अप्पई^{२१} ॥११॥

रे ! रे ! भाग (भागकर अपने प्राण बचा), क्योंकि स्वामी संग्राममे कायरोंके मुल नही देखते (पलके उठनेसे पूर्व ही तत्क्षण मार डालते है), इस प्रकारकी जिसकी प्रताप-घोषणासे ही वैरी दूरसे ही विघटित अर्थात् छिन्न-भिन्न हो जाते है ॥२॥

उस सरक्षित गोमंडल (गायोंका सघात अर्थात् ब्रजमंडल, राजाके पक्षमें पृथ्वीमंडल) वाले पुरुषोत्तम (विष्णु व पुरुषोमे उत्तम श्रेणिक राजा) की स्पृहसि (कि हमारा भी पृथ्वीमंडल अच्छी तरह सरक्षित है) युद्धमे कौन शत्रु गतप्रहरण अर्थात् शस्त्रहीन होकर, गदाप्रहरण अर्थात् गदाशस्त्रको धारण करनेवाले केशव (केसवा) अर्थात् शवमात्र नही हो गये (के सवा = के शवा: न जाता. टि०) ॥३॥

अन्य और गाथायुगल—जिस नरपतिके क्रोधरूपी दुर्वातिका वेग रिपुरमणियोके रम्य-यौवनरूपी वनोमे पड़कर इस प्रकार विनाशकारी हुआ—दुर्वात अर्थात् आधोका वेग रमणीक वनोमें पड़कर भूमिलताओको शोभाको भग्न कर देता है, क्रोमल पल्लवोकी अरुण-आभाको हर लेता है, नवाकुरोपरमे अलिमाला (भ्रमरपवित्त) को उपशान्त अर्थात् दूर कर देता है, पुष्पो-को गिराकर निष्फल-परिणाम कर देता है, तथा चंदन व तिलकवृक्षोकी रुचि (शोभा) को विनष्ट कर देता है; उसी प्रकार नरपतिके क्रोधरूपी दुर्वातके वेगने रिपुरमणियोके रमणीय यौवन कालमे ही उनपर पड़कर (उन्हे विधवा बनाकर) शृंगारके अभावमे उनके अधर पल्लवोकी अरुण कातिको हर लिया है, पुष्पसज्जाके अभावमे उनकी अलकोंपर आकृष्ट होनेवाली भ्रमरपवित्तको दूर कर दिया है, उनके 'पुष्पपरिणाम' अर्थात् ऋतुमती होनेको निष्फल कर दिया है, एव अंग-प्रत्यगमे चंदन लेप व माथेपर तिलकको शोभाका हरण कर लिया है ॥४-५॥ जिस नरपतिके राज्यके नभोभाग व नीतिमार्गमे वायु व सूर्य मर्यादाका अनतिक्रमण करते हुए वहते व तपते है, एवं जहाँ स्वयं वसुमति चारो दिशाओमे 'सम्पूर्णमनोरथफल' अर्थात् सभी मनोरथोको पूर्ण करनेरूपी फल प्रदान करती है ॥११॥

१२ क रे ले । १३ क छ ई । १४ क ड वि हुति । १५ क सदाए, ड सड । ए १६ क ड जुवलं, घ जुयल । १७ क घ ड समयालि । १८ र ग ई । १९ प्रतियो मे 'मणोरह । २० क ड 'दिसिहि । २१ ख ग 'मइ । २२ र ग ई । विशेष—७ प्रति मे छठो पवित्र के पश्चात् 'ताह तहं सुजमेहि उल्लसिपउ समयु विवत्ते हवइ मकुइयउ' यह पवित्र अतिरिक्त है ।

[१२]

तहो अट्टसहसदपियमयणु	सोहगुरुवनिहिराणिथुणु ।	
छणरुंदचंदमंडलवयणु	उत्तालवालहरिणीनयणु ।	
कलयठिकठकलमहुरसरु	बंधूयकुमुमर्तविरअहरु ।	
कलहोयकलसनिदिभंदथणु	अइझीणमञ्जु चकलरमणु ।	
वरकामिणिकरचालियचमरु	सुहमरुमिलंतगुंजियभमरु ।	५
सहुं तेहिं विलासे संचरई	नरवइ सत्तंगुं रंजुं करइ ।	
एकह दिणि सककोले वइइ	चामीयरसिहासणिं सहइ ।	
सामंतमतिपरिवारसहुं	अत्याणि परिट्टिउ जाम पहु ।	
घत्ता—अह कणयदंडविणिवदपहु	दुउवारियजणपेसिउ ।	
आयउ जुवाणु निरुं एक जणु	नरवइ तेण नमसिउ ॥१२॥	१०

[१३]

अहो रायाहिराय जयसिरिरस	चउरयणाथरंतपसरियजस ।
पेक्खु पेक्खु अचंचमउ वट्टइ	नहयलु दुंदुहिसईं फुट्टइ ।

[१२]

उस राजाकी मदनको दर्प पैदा करनेवाली, सौभाग्य व रूपको निधि अष्टसहस्र रानियाँ थीं। वे विशाल पूर्णचन्द्रमाके समान मुख तथा भयत्रस्त बालहरिणीके समान नेत्रोंवाली थीं। उनका स्वर कलकंठी (कोकिला) के समान मधुर था, व अधरोष्ठ बंधूक पुष्पके समान ताम्रवर्ण थे। उनके स्तन कलघौत कलशके समान निर्भेद्य अर्थात् कठोर व सुपुष्ट थे, कटिभाग अत्यन्त धीण व नितम्ब बड़े-बड़े चक्रोंके आकारके थे। सुंदर कामिनियोंके हाथोंसे उनके ऊपर चमर डुलाये जाते थे, एवं मुखकी सुगन्धित आश्वाससे आकृष्ट होकर एकत्र होते हुए भीरे गुंजार करते थे। उन रानियोंके साथ विलासपूर्वक विहार करता हुआ राजा सप्त-अंगो (स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोश, बल एवं सुहृद्) से पूर्ण राज्य करता था। इस प्रकार जब एक दिन शक्रके समान क्रीडा (विलास) धारण करता हुआ राजा स्वर्णसिंहासनपर विराजमान होता हुआ, सामंत व मंत्रियोंके परिवारसहित सभामंडपमें बैठा था, तब शलाकादंडसे कपड़ेको (मूठ बनाकर) बाँधे हुए दौवारिक द्वारा भेजा हुआ एक अत्यन्त जवान व्यक्ति वहाँ आया और उसने नरपतिकी प्रणाम किया ॥१२॥

[१३]

हे जयश्रीमें रस लेने वाले व चारों रत्नाकरोंके अन्त तक प्रसूत यशवाले राजाधिराज देखिए! देखिए! एक बड़ा अचंभा हो रहा है कि नभस्तल दुंदुभिके शब्दसे फूटा जा रहा है। आज

[१२] १. ख ग ञिठिठ । २. व खीण । ३. ख ग रई । ४. ख ञणु । ५. क ह दुउ । ६. ख ग आद्य । ७. ख ग नरु; क ह णिच ।

	अञ्जु अयाले ^१ वणासइ ^२ रिद्धी	अहिणवदलफलकुसुमसमिद्धी ।
	अञ्जु सुयंधु एहु सीयलु ^३ धणु	वाउ वाइ जं पूरियकाणणु ।
५	जं जि तलायइ ^४ वडिदय ^५ नीरइ ^६	विमलतरंगकखालियतीरइ ^७ ।
	अञ्जु अकिट्टपच्चकणधण्णहिं ^८	छेत्तभूमिपसत्रियवहुवण्णहिं ।
	दीसइ अञ्जु सरसु जं एहउ	गात्रिउ खीरु खिरंति अमोहउ ।
	वड्डुउ कोऊहलु उप्पायमि ^९	कारणु एउ देव वड्ढावमि ^{१०} ।
	घत्ता—इय समवसरणसंपयसहिउ	चउगइकम्मखयंकरु ।
१०	संपाइउ ^{११} विउलमहासिहरे	वड्ढमाणे ^{१२} तित्थंकरु ॥१३॥

[१४]

	आथण्णित्रि तं मगहेसरेण	सिरिकमलविउइयंजलि ^१ करेण ।
	जय-जय-गहिरकखरभासणेण	सहसत्तियुक्कसिंहासणेण ।
	केऊरकडयमणिकुंडलेहिं ^२	वड्ढावउ पुज्जिउ उज्जलेहिं ।
	सम्मत्तभत्तिकंउइयगत्तु	कंइवयपयाइ ^३ जाण्वि ^४ नियत्तु ।
५	वहिरियकण्णंत-दियंतपूरु	अप्फालिउ लहु आणंदत्तूरु ।
	थगधुगि-धुगिथगदुगि-पडहसददु ^५	धुमुधुमुधुम्मावियमुरयनददु ।

अकाल अर्थात् बिना ऋतुके ही समस्त वनस्पति हरी-भरी हो उठी है और वह अभिनव पत्रो-पुष्पो व फलोसे समृद्ध हो गयी है। आज ऐसा सुगंधिन शीतल व सघन वायु बह रहा है जिसने सारे काननको पूर दिया है। और जो तालाव हैं, सबमे पानी बढ गया है, तथा विमल तरंगोसे उनके तीर प्रक्षालित हो रहे हैं। आज बिना कृषि किये हुए ही पके हुए कणवाले अनेक प्रकारके धान्यसे समस्त क्षेत्र भूमि (कृषि भूमि) प्रसवित (निष्पन्न) हो रही है। आज यह दिखाई देता है कि गाये (बिना दुहे ही) प्रचुर मात्रामे अत्यन्त सरस दूध क्षरण कर रही है। हे देव ! मे आपको बड़ा भारी कौतूहल उत्पन्न कर रहा हूँ व इस हेतुसे आपको वधाई देता हूँ कि इस प्रकारसे समस्त समवशरण संपदाके साथ चारों गतियोके कर्मोका क्षय करने-वाले वर्द्धमान तीर्थकर विपुलमहाग्निखरपर पघारे है ॥१३॥

[१४]

उस शुभ समाचारको सुनकर मगवेश्वरने अपने शिरोकमलपर प्रणामांजलि करके जय ! जय ! का गंभीर घोष करते हुए सहसा सिंहासन छोडकर अपने उज्ज्वल केयूर, कडे और मणिकुंडलोसे वर्द्धापकका पूजा-सत्कार किया । फिर सम्यक्श्रद्धायुक्त भक्तिसे रोमांचित गात्र होकर कुछ पद आगे (भ० के समवशरणकी दिशामें) जाकर वापिस लौटा । गीघ्र ही कानोंको वधिर करनेवाला तथा समस्त दिगन्तोको पूरनेवाला आनंदर्यं वजाया गया । थग-धुगि, धुगि-थग-धुगि करते हुए पटहका शब्द होने लगा, व धुम-धुम करते हुए मुरजका नाद [सब

[१३] १. ख ग लं । २. ख ग वणं । ३. क व ड ल । ४. ख व ड ष ह । ५. ख ग वट्टियं । ६. क इ । ७. क हं । ८. क ड णोयमि । ९. क ड यमि । १०. क ड यइ । ११. क ड वडं ।

[१४] १. ख ग अंजलि । २. ख ग कयं । ३. क ड इ । ४. क जायवि । ५. ख ग घ थगधुगे

खडतड-तडिखरतडि-तरडखोहु रणझणझणतकंसालसोहु ।
 त्रं त्रं त्रं ताडिय डकसारुं रं रं रं रंजिय रंजफारु ।
 तडतडणतडिय काहलविलासु हूहुयइ^{१०} संख पूरंतसासु ।
 जणु चलिउ सयलु परिघुट्ट नाउ वारुअकरिणिहि^{११} संचडिउ राउ १०
 घत्ता—मंडलवइतारापरियरिउ^{१२} पुणिणमचंदु व उगगड ।
 जिणवदणहत्तिउ तुडमणु नरवइ नयरहो निग्गड ॥१४॥

[१५]

ताम चलयं चलतेण कियकलयलं पउरजणसंकुलं चावरंगं वलं ।
 कहिं मि पञ्जरियमयकुंजरो^१ धाविउ दंसियारेहि^२ वीरेहि रोसाविउ ।
 कहिं मि निषकुमारकसंघायताडियइओ खुँरपहारेण खोणो खणंतं गओ^३ ।
 कहिं मि धरहरियरहत्तासंमिस्त्रियसरो विचलियासणनरं नासए वेसरो ।
 कहिं मि कुंतासि-कडिसल्लं-करतकड^४ धंतखेज्जंतपाइक्कथडसंकडं^५ ५
 कहिं मि भूमोकमं छडिरो वारिया वंडधारेहि^६ निरवीरमोसारिया^७ ।

दिशाओंमें) धूमने लगा। खर-तड, तडि-खर-तडि करते हुए तरड वाद्य (लोकोंमें) क्षोभ अर्थात् आश्चर्यपूर्ण हलचल उत्पन्न करने लगा; व रण-झण रण-झण झंकार उत्पन्न करते हुए कांस्य वाद्य सुंदर लगने लगा, त्रं त्रं त्रं करते हुए श्रेष्ठ ढक्का (डमरु) बजाया जाने लगा, व रं रं रं करते हुए रंजा वाद्य उच्चस्वरसे रंजायमान हुआ। तड-तड-तड करते हुए काहल वाद्यका विलास हुआ व दीर्घ आश्वाससे आपूर्यमाण शंख हू हू करके बज उठे। सब लोग चल पड़े, वड़े उच्चस्वरका परिषेध हुआ व राजा भी शीघ्रगामी-हृथिनो पर सवार हो गया। जिस प्रकार नक्षत्रमंडलका पति पूर्णिमा का चंद्रमा तारोसे परिवारित अर्थात् चारों ओरसे घिरा हुआ उदित होता है, उसी प्रकार पृथ्वीमंडलका स्वामी वह राजा भी परिजन, पौरजन व मंत्रि-सामंत इत्यादिसे परिवारित होकर जिनवदनाकी भक्तिसे प्रसन्न मन होकर नगरसे निकला ॥१४॥

[१५]

तव पौरजनेसे युक्त चतुरग सैन्य चल पड़ा, व उसके चलनेसे बड़ा कलकल हुआ। कहीपर मद झराता हुआ हाथी आर दिखानेवाले अर्थात् महावत वोरोसे क्रुद्ध होकर दौड पड़ा। कहीपर नृपकुमारो द्वारा कशाघातसे आहत हुआ अश्व खुरप्रहारसे क्षोणी (पृथ्वी) को खोदता हुआ गया। कहीपर रथकी धर-धराहटसे त्रस्त हुआ खच्चर हिनहिनाकर सवारको आसनसे गिराता हुआ भाग खड़ा हुआ। कही कुंत, असि व कटिशूल आदि शस्त्रोको धारण करनेवाले समर्थ भुजाओंवाले पदातियोंका समूह खेलता हुआ दौड पड़ा। कही भूमिक्रम अर्थात् पक्ति

थगडुगे पडपडहसदु । ६. ख ग खरतड तडखर तड टरड वाहु; घ खरतड तडिखर तडि टरडखोहु ।
 ७. क ड रणवण । ८. क ड हंज । ९. क घ ड पडिय । १०. ख ग हूहुय । ११. क ड करणि,
 ख ग घ णिहि । १२. क ड पडिउरिउ ।

[१५] १. क कुंमिरो । २. क ड यारेहि । ३. क कुस । ४. क खर । ५. क खणंतगड । ख ग खणंत
 गओ । ६. क ख ग ड कहिमि । ७. ख ग घ तास । ८. ख ग तल । ९. क घ ड करि । १०. घ
 पाइल्लयड । ११. क करेहि । १२. क ड निरवीसमो ।

कहिं मि मणिखइयचंदोवयाडंवरं सिक्किरीधवलधयछत्तछइयंवरं ।
 ताव^३ थोवंतरे विलगिरि लक्खिओ हत्थपसरेण अवरोप्परं अक्खिओ ।
 जो समोसरण^१ लच्छीप्र उज्जोइओ^२ उद्धदिट्ठीहिं नियडेहिं^{१५} पुणु जोइयो ।
 १० "निययचंगत्तणाहिट्ठओ गज्जए कणयसेलो इमो केम मह पुज्जए ।
 यत्ता—इहु कंचणु^{१०} तुंगिम परप्रे कह^{१६} निवसियदेवणिकायहो ।
 देवाहिदेवे^{१७} महु सिहरि ठिउ किम समसीसी^{२०} आयहो ॥१५॥

[१६]

दूरुव्झियहयगयरहपत्ते^१ परिचणपउरजुप्रण सकलत्ते ।
 वीसइ समवसरणु^२ महिनाहें मोक्खदुवार व केवलवाहें ।
 इंदाएसें धणयविणिम्मिउ जोयणेक्कु चउगोउरपरिमिउ ।
 मणिक्कुहुंतरु दिण्णपयाहिणं^३ वारहकोट्टा दिट्ठसुहाचण ।
 ५ गणहरपसुहसवण ठिय एकहिं कप्पवासिदेविउ अण्णेक्कहिं ।
 तइयइ अज्जियाउ चउथइ पुणु फुरियकत्तिजोइसजुंवरईयणु ।
 पंचमे वित्तैरविलयउ सारिउ छट्टप्र दिट्ठउ भावणानारिउ ।

संगठनाका परित्याग करनेवाली अपनी वीर मंडलीको रोककर दंडधारी नायकोने उन्हें पंक्तिमें स्थित रखा; आकाश कहीपर तने हुए मणिलखित चंदोवो व कही पताकाओ तथा धवल ध्वजा और छत्रोंसे छा गया। तब थोड़ी दूरपर विपुलगिरि देखा गया और लोगोने हाथ पसार पसारकर एक दूसरेको बतलाया। जो (विपुलगिरि) समोसरणकी विभूतिसे जोभायमान था, उसे निकट गये हुए लोगोने आँखे उठाकर देखा। वह अपनी श्रेष्ठतासे हर्षित होकर (मानो) गरज रहा था कि यह कनकगौल (सुवर्णाचल-मेरु) मेरी तुलना कैसे कर सकता है? इसका यह सुवर्ण और यह तुंगिमा दूर हटाओ! नाना देवनिकायोसे बसे हुए इसकी मेरे साथ तुलना ही क्या? मेरे शिखरपर तो देवाधिदेव (तीर्थंकर) विराजमान हैं ॥ १५ ॥

[१६]

हाथी, घोड़े व रथ आदि वाहनोंको दूर ही छोड़कर परिजन, पौरजन एवं रानियोंके साथ भूपतिने समोसरणको देखा, जो केवलज्ञानको बहन करनेवाले तीर्थंकरसे मानो मोक्षका द्वार ही था। वह समोसरण इंद्रके आदेशसे धनदके द्वारा निमित्त किया गया था, तथा एक योजन विस्तार और चार गोपुरोंसे परिमित था, व मणिनिर्मित भित्तियोंके बीचमें प्रदक्षिणा बनी थी, उसमें राजाने बहुत सुहावने वारह कोठे देखे। एक कोठेमें गणधरको प्रमुख करके सब श्रमण बैठे थे, और दूसरेमें कल्पत्रासी देवियाँ, तीसरे कोठेमें आर्थिकाएँ और चौथेमें स्फुराय-मान् कांतिवाली ज्योतिष्क-युवतियाँ, पाँचवेंमें सुदर व्यन्तर नारियाँ थी, तो छठेमें भवनवासी

१३. क व ड ताम। १४ क लच्छीपउउजोइयो। १५. क ड डेहिं। १६ क ड नियणत्तणा।
 १७. क लण। १८. क ड णियडियं। १९ क ड देव। २० क ड रीसी।

[१६] १. क ख ल छत्तं। २. क ड सरण। ३. क ड हण। ४. क ड जुयईं। ५. स ग धं। ६. क ल भाविणुं।

सत्तमं जोइस अट्टमि वितरै
दसमई कल्पवासि थिय सुरवर
मुक्कविरोहतिरियसुहभावण

घत्ता—मरगयमउ पोमरायकुसुमु इंदनीलदलसुंदर^० ।

अह कोमलचलपल्लववहलु दिट्ट असोयमहातर ॥१६॥

नचमइ भावण थक्कनिरंतर ।
एयारहमइ^० मणुयमणोहर ।
धारहमइ^० संठिय सुत्थियमण ।

१०

[१७]

तहो तले कणय रयणहरि विट्टरै
पत्तपहुत्ततिछत्तालकिप्र
चामरकरजक्खेसरभइप्र
दिव्वप्र^० सव्ववाणिपरियाणिप्र
भामंडलमज्झट्टिउ छल्लिउ
अल्लिउलकेसुवभासिउ वरसिरु
उगयधम्मचक्रमंडियसहु
दिट्ट जिणहु^० पयाहिणदेते^०

किरणहयसुरिदसेहरकरे ।
देवकुमारमुक्ककुसुमकिप्र ।
हुंहुहिंसदनिहयपडिसइप्र^० ।
सयलभाससंचलियप्र^० वाणिप्र ।
फल्लिहवणु पडिदिव्वविचल्लिउ ।
दंतदित्तिधवलियजयमंदिरु ।
वीयराउ तइलोकपियामहु ।
पुणु पणविउ उच्चारियथोत्ते ।

५

देवोंकी स्त्रियाँ, तथा सातवेंमें ज्योतिषी देव; आठवेंमें व्यन्तर देव और नौवेंमें भवनवासी देव स्थित थे। दसवें कोठेमें कल्पवासी देव तथा ग्यारहवेंमें मनुष्य विराजमान थे। बारहवें कोठेमें परस्पर वैर—विरोधको भूलकर शुभभावनासे स्वस्थमन होकर सब तिर्यच जीव बैठे थे। तब राजाने मरकतमणिथोसे जड़े हुए पद्मरागमणिके समान पुष्पो व मरकतमणिदलोके समान अत्यन्त सुंदर, कोमल व चंचल पत्रोंसे प्रचुर अशोक महावृक्षको देखा ॥१६॥

[१७]

उस अशोक वृक्षके नीचे अपनी किरणोंसे सुरेंद्रके शोखरकी किरणोंको तिरोहित करनेवाले स्वर्णरत्नमय सिंहासनपर, (तीनों लोकोके) प्रभुत्वको प्राप्त व तीन छत्रों (अथवा तीर्थ-करत्व) से श्रलकृत, देवकुमारों द्वारा वर्षाये गये पुष्पोसे सुशोभित, कल्याणप्रद यक्षेश्वरके द्वारा हाथोंमें चवर धारण किये जाते हुए, (दिव्य) दुदुभिके शब्दसे समस्त प्रतिशब्दोके निहत होते हुए, एवं समस्त बोलियोंका परिज्ञान करानेवाली तथा (अठारह देशोत्पन्न) सर्वभाषा समन्वित दिव्यवाणीसे युक्त वे भगवान् भामंडलके मध्यमें बैठे हुए सुशोभित हो रहे थे। उनका वर्ण स्फटिकके समान था, जिसका कोई प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता। उनका उत्तम शिरोभाग भ्रमरकुलके समान काले केशोंसे उद्भासित था, और उनकी दंतपंक्तिकी दीप्तिसे संपूर्ण लोकरूपी मंदिर उज्ज्वल हो रहा था। उत्पन्न हुए धर्मचक्रसे मंडित सर्वशक्तिमान वीतराग और त्रेलोक्यके पितामह उन जिनेद्रको राजाने प्रदक्षिणां देते हुए देखा, और फिर स्तोत्रका उच्चारण करके

७. क छ वह^० । घ^० मई^० । ८. घ^० मई^० । ९. ख ग पोमारयकुसुमु । १०. क घ छ^० दल्लु^० ।

[१७] १ क छ रइणहरि^०; ख ग हरे^० । २ ख ग छ तित्यता^० । ३. क घ छ हं^० । ४. क घ छ हं^० ।

५. क छ संच^०, ख ग संवल्लए । ६. क छज्जइ; छ छज्जउ । ७. क उज्जइ, छ उज्जउ । ८. क घ छ जिणहु ।

९. क छ दित्ति; घ दित्ति ।

यत्ता—संसारनिसिहिं रइतमगहिउ मायानिहइ^१ भुत्तउ ।
 १० पई^२ केवलनाणदिवायरैणं^३ जगु संबोहिउ सुत्तउ ॥१७॥

[१८]

तुमं देव सव्वणहुं लच्छीविसालो अहं वणिउणं न सक्केमि बालो ।
 समुज्जोइय्यसोह वा तेयपूरो न पुज्जिज्जए किं पईवेण सूरो ।
 न ते वीयरायस्स पूयाइ^४ तोसो न वा संत वइरस्सें निंदाइ रोसो ।
 परं ते समुग्गीरिथं देव नामं पवित्तेउ चित्तं महं सुक्खथामं^५ ।
 ५ तुमं पुज्जमाणस्स लोयस्स एसो महापुण्णपुंजन्मि सावज्जलेसो ।
 कणो जेम हालाहलस्सप्पसत्थो सुहासायरंदूसिउं नो समत्थो ।
 अविग्घो तए देव सिट्ठो समग्गो तिलोयग्गामोण भव्वाण मग्गो ।
 पडंतो जणो मोहकालाहिस्सद्धो किओ देव वायासुहाए विसुद्धो ।
 तुमं पत्तसंसारकूवारतीरो तुमं सामि संपुण्णविज्जासरीरो ।
 १० तए नाणजोईइ^६ उदित्तमेयं^७ समुम्भासए चंदसूराण तेयं^८ ।

प्रणाम किया—इस संसाररूपी निशामे रति (काम व मोह)रूपी अंधकारसे ग्रहीत और मायारूपी निद्राके वशीभूत होकर सोते हुए (अर्थात् आत्महितसे विमुख) जगतको आपने अपने केवलज्ञानरूपी दिवाकरसे प्रतिबुद्ध किया ॥ १७ ॥

[१८]

हे देव ! आप सर्वज्ञ हे और (केवलज्ञानादिरूप) लक्ष्मीसे विशाल है । मैं अबोध-अज्ञानो आपका वर्णन करनेमे समर्थ नहीं हूँ । आपकी शोभा स्वयं प्रकाशित है, तथापि क्या तेजपूर्ण सूर्य दीपकसे पूजा नहीं जाता (अर्थात् मेरे द्वारा आपके गुणोका वर्णन सूर्यको दीपक दिखाने जैसा है) । वीतराग होनेसे, तुझे न तो पूजासे तोष (आनद) होता है और न शातवैर अर्थात् वीतद्वेष होनेसे निंदासे रोप । तथापि आपका नाम, जो कि सुखका घाम है, वह उच्चारण करने मात्रसे मेरे चित्तको पवित्र करे (अर्थात् पवित्र करता है) । तुम्हारी पूजा करनेवाले लोकके महापुण्य-सचयमे लेशमात्र पाप दूषण उत्पन्न करनेमे उसीप्रकार समर्थ नहीं होता, जिसप्रकार हालाहल विषका एक अमंगलकारी कण अमृतसागरको दूषित करनेमे । देव ! आपने त्रिलोकके अग्रभाग अर्थात् मोक्षको जानेवाले भव्य जीवोके लिये निर्विघ्न एवं समग्र मार्गका उपदेश किया तथा मोहरूपी कालसर्पसे खाये जाते हुए जीवोको अपनी दिव्यवाणी रूपी सुधासे, (उसीप्रकार) शुद्ध किया (जिसप्रकार सर्पका विष सुधा अर्थात् अमृत अथवा चूनेसे उतारा जाता है) । हे स्वामिन् ! आप इस संसार सागरके तीरपर पहुँच गये हैं एवं संपूर्ण विद्यारूपी शरीर अर्थात् केवलज्ञानके धारक हैं । आपकी ही

१० क ड णिदा । ११. क पइ । १२ क ड यरिणा ।

[१८] १ ख. ग तुम्ह । २. क घ ड ण्ह । ३. ख ञ्जोइय्यं । ४. र ग पुज्जाए । ५. क ड वीरस्स ।
 ६ क घ ड धामं । ७ क उ, ख ग य । ८. क ड तए । ९. क ड उदित्ठं र ग भेए । १०. ख ग तेए ।

मुहाभासयं दृप्पणे पेक्खमाणा
तथा वत्थुरुक्कं^{१२} अहं बुद्धिलुद्धा^{१३}
तुमं ज्ञायमाणस्स^{१४} नाणम्मि लीणं

मुहं चैवं^१ मण्णंति वाला अयाणा ।
सरुक्कं निरुक्वंति ते नाह सुद्धा ।
मणं होइ मे नाह^{१५} संकप्पस्सीणं ।

धत्ता—अंतेउरपरियणपत्तरसहुं^{१६} थोत्तसएहिं नरेसरु ।

कोट्टए निविट्ट एयारहमे वंदेवि वीरु जिणेसरु ॥१८॥

१५

जयति मुनिवृंदत्रंदितपद्युगलविराजमानसत्पद्मः ।

विबुधसंयानुशासनविद्यानामाश्रयो वीरः ॥१॥

कथेयं पूर्वसिद्धेव भूयो यत्क्रियते मया ।

तत्तस्या ग्रंथबाहुल्यात् सांप्रतं भीरवो जनाः ॥२॥

न बह्वपि^{१७} तथा नीरं सरो नद्यादि संस्थितं ।

करकरथं यथा स्तोत्रमिष्टं स्वादुश्च पीयते ॥३॥

इयं जंबूसामिचरिण सिंगारवीरे महाकव्ये महाकड्दं वयत्तसुयवीरविरहए

सेणियसमवसरणागमो नाम^{१८} पढमो संघी समत्तो^{१९} ॥संघि- ॥

ज्ञानज्योतिसे उद्दीप्त होकर यह चंद्र और सूर्यका तेज उद्भासित होता है । मूर्ख लोग दर्पणमें मुखाभास अर्थात् मुखके प्रतिबिम्बकी देखकर यह मुख है, ऐसा मान बैठते हैं । उसीप्रकार अहं बुद्धि (मैं वीर मेरा] से ग्रसित वे भोले लोग अपनी मतिके अनुसार वस्तुस्वरूपका [एकांगी] निरूपण करते हैं । हे देव ! आपका ध्यान करते हुए सच्चे ज्ञानमें लीन होकर मेरा मन समस्त संकल्प-विकल्प रहित हो जाये । इस प्रकार सैकड़ों स्तोत्रों द्वारा वीर जिनेश्वरकी वंदना करके अन्तःपुर, परिजन, व पीरजनोंके साथ राजा ग्यारहवें कोठेमें बैठ गया ।

मुनिवृंद जिनके चरणयुगलकी वंदना करते हैं, जो कमलासनपर विराजमान हैं और जो ज्ञानियोके संघका अनुशासन करनेवाले हैं, ऐसे समस्त विद्याओके आश्रय वीर भगवान्की जय हो ! (यहाँपर श्लेषमें वीर कवि यह भी प्रगट करना चाहता है कि वह ज्ञानीजनोंके संप्रदायका अनुशासन करनेवाली विद्याओका आश्रयभूत था) । यहाँ यह कथा पूर्वकालसे प्रसिद्ध होनेपर भी, जो मेरे द्वारा पुन रची जा रही है, इसका कारण है—ग्रंथ बाहुल्य होनेके कारण लोग अब उसके पढ़नेसे घबराते हैं । सरोवर और नदी आदिमें स्थित प्रभूत जल भी उस प्रकार नहीं पिया जाता, जिसप्रकार करवेमें रखा हुआ थोड़ा सा, इष्ट अर्थात् स्वास्थ्यकर और स्वादु जल लोगोंके द्वारा अभिलाषापूर्वक पिया जाता है (उसी प्रकार जंबूस्वामीकथाका पहलेसे बड़ा विस्तार होनेपर भी मेरी यह कथा संक्षेपमें होनेसे अभिलाषापूर्वक पढ़ी जायेगी) ॥ १८ ॥ इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर कवि द्वारा विरचित जंबूस्वामीचरित्र नामक इस शृंगार-वीर रसात्मक महाकाव्यमें राजा श्रेणिकका समोशरण-आगमन नामक प्रथम संघि समाप्त ॥ संघि-१ ॥

११. क ड देव, ख ग चय । १२. क वत्थुरुक्कं । १३. क ड लुद्धा । १४ ख ग ज्ञायणं । १५. क ड संकायं । १६. क व ड सहुं । १७. क व ड नवह्वमपि । १८. क घ ड पढमा इमा सवी; ख ग पढमो संघी ।

सन्धि—२

[१]

सुरनरसमवापं सेणियरापं सविणयल्लियक्खरगिरैणै।
पुच्छिउ केवलधरु सम्मइजिणवरु जीवतत्तु पणवियसिरैणै ॥

गुरुगज्जिरघणगंभीरवाणि	परमिद्धि पर्यपइ राय जाणि ।
अत्थित्ति निरंजणु जीउ संतु	सन्भावै दंसणनाणवंतु ।
५ संवेइयप्पपरपरमतत्तु	निरवहिसण्णाणपमाणभेतु ^५ ।
जाणंतु वि परु न परेण मिल्लिउ	आयासपमुहदव्वहि ^६ न खल्लिउ ।
नीसेसनिरत्थोवाहि ^७ सहइ	जंगभेण अजंगमु जेम वहइ ।
संते ^८ गयणे नवभवसमत्थु ^९	पावइ अवयासु धराइअत्थु ।
दिवसयरकिरणकारणुं लहंतु ^{१०}	रविकंतु व दीसइ अगिगवंतु ^{११} ।
१० तिहै ^{१२} जोग्गकम्मपरमाणुखंघु ^{१३}	परिवद्धिद्वयअहमिये ^{१४} बुद्धिवंघु ।

[१]

देव और मनुष्य सबके अभिप्रायसे श्रेणिक राजाने विनयसहित ललितवाणी-द्वारा केवलज्ञानके धारक सन्मति जिन भ० महावीरसे शिर नवाकर जीवतत्त्वके विषयमे पूछा । तब महान् गर्जनशील मेघके समान गंभीर वाणीसे परमेष्ठी कहने लगे—हे राजन् ! ऐसा जानो कि स्वभावसे यह जीव निरंजन (पूर्णतः कर्ममुक्त), शांत एवं दर्शन-ज्ञानसे युक्त है । यह आत्मा स्वयं और पर दोनोंके परमतत्त्व (परमार्थ-सत्य) को संवेदन करनेवाला है तथा (सत्ताको अपेक्षा अनादि-अनंत एवं (विस्तारकी अपेक्षा) स्वज्ञान-प्रमाण मात्र है । पर-पदार्थको जानते हुए भी यह 'पर' से मिलता नहीं और आकाश प्रमुख द्रव्यो (पुद्गल, घर्म, अधर्म, आकाश व काल) से इसका स्खलन अर्थात् इसकी किसी क्रियाका विरोध नहीं होता । (तथापि) प्रत्येक शरीरीजीव सर्वथा अनात्मस्वरूप कर्मजनित शरीरसे सुख-दुःखात्मक उपाधिको उसीप्रकार सहन करता है, जिसप्रकार जगम (सजीव) बलीवर्दादिक प्राणी अजंगम (निर्जीव) शकटादि वस्तुको होता है । आत्म-परिणामोसे प्रादुर्भूत कर्मपरमाणु नया भव ग्रहण करने तथा आत्मप्रदेशोमे अवकाश पानेमे उसी प्रकार समर्थ होते हैं, जिसप्रकार पृथिव्यादि पदार्थ आकाशमे स्थान पाने व स्वकार्य करनेमे समर्थ होते हैं । और जिसप्रकार सूर्यकातमणि रविकरणोके सपर्कसे अग्नियुक्त दिखाई देने लगता है, उसीप्रकार अचेतन पुद्गलात्मक कर्म-परमाणुओं-से प्रादुर्भूत शरीर भी सचेतन आत्माके सपर्कसे चेतन व क्रियावान् दिखाई देने लगता है । आत्माके (भाव) कर्मसे तदनु रूप कर्मरूप परिणत हुए पुद्गल-परमाणुस्कध (से जो इन्द्रियों

[१] १ क ङ ० गिरिणा । २. क ङ ० सिरिणा । ३. क ङ ० यप्पु । ४. क ङ ० मित्तु । ५. ख ङ ० दव्वहि । ६. ख ० निरत्था । ७. क ङ संगे । ८. क ङ ० समत्य । ९. क दिवसयर । १०. क ङ लहंति । ११. ख ग ङ अग्निवत्तु, ङ अगिगवति । १२. क ङ तिह, घ तिह । १३. क जोगकस्स, ङ जोगकम्म । १४. क ङ परिवद्धियअहमिय ।

जीवेण निमित्तं^{१५} मोहथासु सवियप्पु विचंभइ करणगासु ।
 इय जाव^{१६} जीव नइमिस्सिओ वि ववहारें भणइ जीड सो वि ।
 संसारनिबंधणु तेण जणिल तं नासु निरामड मोक्खु भणिल ।
 घत्ता—उप्पज्जइ खिज्जइ^{१७} गुरु-लहु किज्जइ नरयपमुहगइ^{१८} अणुहवइ ।
 कम्मासयवारणु भावियकारणु^{१९} सो च्चिय मोहजालु खवइ ॥१॥ १५

[२]

नरयगइहि^{२०} उप्पज्जइ जइयहु करवत्तहि^{२१} फाडिज्जइ तइयहु ।
 जलणकडंतणु तिल्ले तल्लिज्जइ नारइयहि^{२२} अवरुप्परु खज्जइ ।
 पावि वि तिरियजोणि निक्कारणु लहइ निबंधणु ताडणु मारणु ।
 मणुयत्तणं वि धम्मु नावज्जइ माणुसु^{२३} पावपिडु निप्पज्जइ ।
 सुरलोणु वि बालत्तवसाहणु कुच्छियदेउ होइ सुरवाहणु । ५
 अणं वि जे हवंति सुरसुंदरं कंदहि^{२४} चवणसमणं दुक्खाउर ।
 छम्मासावहि आउसि दुक्कइ हा विमार्ण-इट्ठच्छर मुक्कइ ।

निर्मित होती है उनको वृद्धिसे ही (आत्म-संबंधके कारण) 'मै बढ़ रहा हूँ' ऐसा बुद्धिबंध अर्थात् बुद्धिविकल्प उत्पन्न होता है। जीवके निमित्तसे एवं मोहनीय कर्मके सामर्थ्यसे यह नाना-विकल्पात्मक इन्द्रियसमूह उत्पन्न होता है। इस प्रकार जो भी जीवनिमित्तक (पर्याय) है, व्यवहारमे उस वस्तुको जीव ही कहा जाता है। उस जीवके द्वारा ही संसार-निबंधन और पुनर्बंधको बाँधनेमे कारणभूत जो कर्म उत्पन्न किया जाता है, उस कर्मका निरामय-निर्व्याधि अर्थात् निःशेष नाश ही मोक्ष कहा जाता है। यह (व्यावहारिक) जीव उत्पन्न होता है, क्षीण होता है अर्थात् मरता है; छोटा-बड़ा होता है—अर्थात् छोटी-बड़ी शरीरपर्याय धारण करता है; एवं नरक-प्रधान गतियोंका अनुभव करता है। और वही जीव कर्मस्त्रवको निवारण करने वाले कारण (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र) की भावना करके मोहजालको खपाता है, अर्थात् नष्ट कर डालता है ॥ १ ॥

[२]

जब जीव नरकगतिमे उत्पन्न होता है, तो उसे करौतसे चीरा जाता है, अग्निसे खौलते हुए तेलमे तला जाता है और नारकियोंके द्वारा परस्परको खाया जाता है। तिर्यच-योनिको प्राप्त होकर निष्कारण ही बाँधा, पीटा व मारा जाता है। मनुष्यत्वको पाकर भी मनुष्य धर्म नहीं करता, बल्कि पापके ढेरको ही इकट्ठा किया करता है। बाल-तपकी साधनासे देवलोकमें उत्पन्न होकर भी देवोका वाहनरूप कुत्सित देव होता है। दूसरे भी जो सुंदर देव होते हैं, वे भी देवलोकसे च्युत होते समय दुःखानुर होकर क्रंदन करते हैं। छह मास पर्यंत आयु शेष रहनेपर देवोको ऐसा होता है—हाय ! हमारा यह देवविमान और ये सुंदर अप्सराएँ छूट

१५. क ड निमित्तं, ख घ निमित्तं । १६. ख ग घ जाउ । १७. घ निज्जइ । १८. ख ग नरइ^० ।
 १९ क छ भवियणकारणु ।

[२] १ क ड गंइहि, घ गंइहि । २ क घ ड विणिवज्जइ । ३ ख ग माणुम । ४. घ बालत्तव^० ।
 ५. क छ अणु । ६ क सुसुंदर; ड सुसुंदर । ७. ख ग चयण^० । ८. ख ग विमार्णे ।

केम सरीरकंतिपरिभट्टे
हा हा रक्खहि^{१०} देव पुरंदर
घत्ता—इय जाणिवि नरवड^{१२}
१० चरिच्चु चरिज्जइ ताम हि छिज्जइ संसारिणि वड्ढंति^{१५} तिस^{१६} ॥२॥

[३]

इमं कंहतरं जिणेसरे^१ कंहतए
तओ नियच्छियं नहंगणाउ एंतय^२
अतिव्वतावयं न सूरगोनिउंजयं
किमेयमेरिसं चियप्पिऊण राइणा^३
५ इमो नरिइ नामविज्जुमालिभासुरो
सुरालयाउ सत्तमे^४ दिणे चविस्सए
तओ^५ रणत्तकिंकिणीविरायमाणयं
पियाचवक्कपंचमो^६ सहाप्र दिइओ

नरामरे विसुद्धभावाणं वहंतए ।
फुरंततेयवारिपूरियादियंतयं^७ !
अगज्जिरं निरंतरं न विज्जुपुंजैयं ।
पपुच्छिओ जिणो कहेइ साहुवाइणा ।
भमेइ वंदणांसमोहमाणओ सुरो ।
भवेण केवलीह पच्छिमो भजिस्सए ।
पराइओ सुरो मुयंतु खे विमाणयं ।
नर्मसिओ जिणेसरो^८ सकोहे विट्ठओ^९ ।

रही है; हाय ! हाय ! शरीर (की दिव्य) कातिसे परिभ्रष्ट होकर, यह सब अनिष्ट मुझसे अत्यन्त कष्टसे किसप्रकार सहन किया जायेगा ? हाय ! हाय ! हे देव पुरंदर ! रक्षा करो ! हाय ! यह मंदराचल फिर कहीं दिखाई देगा ? इसप्रकार हे नरपति ! यह चारो गतियोंके विविध-अनंत दु.खोको दिखानेवाली (कर्म) परिणति जानकर जब (सम्यक्) चारित्रका पालन किया जाता है, तभी यह बढती हुई सांसारिक तृष्णा (भोगाकांक्षा) नष्ट होती है ॥ २ ॥

[३]

जिनेश्वरके इस कथानकको कहते समय जब मनुष्य और देव शुद्ध भावनाको धारण कर रहे थे, अपने तेजरूपी जलके पूरसे दिशाओंको पूरता हुआ, अतीव तेजस्वी होते हुए भी जो सूर्यरश्मियों का अत्यन्त तापशुष्त निकुंज नहीं था, तथा निरन्तर (मेघ) गर्जना न होनेसे पुंजी-भूत विद्युत्पुंज भी नहीं था, ऐसा (एक देव) नभांगनसे आता हुआ देखा गया । यह कौन है ? इस प्रकारका विकल्प करके राजाके पूछनेपर साधुवचनोसे जिन भगवान् बोले—हे नरेंद्र । यह अत्यन्त भास्वर विद्युन्माली नामका देव है जो (जिन) वंदनाकी इच्छासे भ्रमण कर रहा है । यह स्वर्गसे सातवें दिन च्युत होगा और यही मनुष्यभवसे अन्तिम केवली होगा । इसके अनन्तर रण रण करती हुई किंकिणियोंसे शोभायमान विमानको आकाशमे ही छोड़कर वह देव वहाँ आया । अपनी चार प्रियाओके साथ पाँचवा वह सभामंडपमें बैठे हुए लोगोंके द्वारा देखा

१ ख ग विसहेवड । १० ख ग रक्खहि । ११ क ड कहि । १२. क ड खणरइ । १३. क घ परिणइ । १४. ख^० दरिसे, घ^० दरिसा । १५ क ग ड वट्टति । १६. घ तिसा ।

[३] १. क ड जिणेसरो । २ क ड यत्तमे; ख ग एंतए, घ इत्यं । ३ क ड^० दिव्यंतये, ख ग^० दिव्यंतए । ४. क ड^० तावये । ५ क ड^० पुज्जपुंजजयं, ख^० पुंजपुंजय । ६. क ड रायणा । ७. घ वंदण^० । ८. क सत्तम । ९ क घ ड हविस्सए । १० करओ । ११. क सहापहिट्टव । १२. ख ग जिणं । १३ प्रतियोमें 'सकोट्टए वड्ढओ' ।

घत्ता—गिन्वाणु कम्मकिसु विमलियदसदिसु^{१४} रूओहामियदेवसहु ।
पेक्खवि सुहत्तित्तव विंभियच्चित्तव पुणु आहासइ मगहपहु ॥३॥

[४]

परमेसर पइ^१ साहिउ तियसहुं
कंतिविणासु सरीरहो दुक्कइ
आउसु सत्तदिवसं पुणु आयहो
तिल्लु वि न तेयसहावें भेल्लिउ
कहहि भवतरे केण पयारें
आयण्णइ^२ सेणिउ ससुरासुर
रमणिरुवरंजियआहंडलि
नामं वडुहमाणु विक्खायउ
वेथपोसुं^३ जहिं वंभणसत्थहिं
दिक्खिपहिं^४ जहिं पसु होमिज्जइ

थक्कइ आउसंति छम्मासहु ।
मत्थइ कुसुममाल परिसुक्कइ ।
तणु लावणवण्णसच्छायहो ।
दीसइ फुरियदेहु पच्चेल्लिउ ।
चिण्णु चरित्तु एण वयधारें ।
अक्खइ चरिउ तासु तिहुवण्णुरुं ।
अत्थि गासु इह मगहामंडलि ।
अग्रहारुं^५ दियवरहं कमायउ ।
उच्चारियइ^६ भट्टपरमत्थहिं ।
दिविदिवि सोमपाणुं^७ जहिं किज्जइ ।

५

१०

घत्ता—जहिं तरुवरं^८ तरुवरं सघणलयाहरं अवरोप्परुं^९ कोक्खिर-कडुयं^{१०}
पालवहिं^{११} झंपिर चलसिहकंपिर वाणरुं वव कीलहिं^{१२} वडुयं^{१३} ॥४॥

गया और जिनेश्वरको नमस्कार कर अपने कोठेमें बैठ गया । उस क्षीणकर्मों वाले, दशों दिशाओं को विमल करनेवाले और अपने रूपसे देवोंकी सभाको भी तिरस्कृत करनेवाले देवको देखकर सुखसे तृप्त होकर, विस्मित मनसे मगधराज पुनः कहने लगे—॥ ३ ॥

[४]

हे भगवन् ! आपने (अभी) कहा है कि अन्तिम छः मास आयु शेष रहने पर देवोंके शरीरकी कांति विनाशको प्राप्त होती है, और मस्तककी कुसुममाला भी सूख जाती है । परंतु इसकी केवल सात दिन आयु शेष है, फिर भी शरीर अत्यन्त कांतिमान् और सुंदरवर्ण है । यह तिलभर भी अपने तेजस्वभावसे रहित नहीं हुआ, प्रत्युत इसकी देह प्रचुर तेजसे स्फुरायमान दिखाई देती है । तो कहिये कि पूर्वभवमें इस व्रतधारीके द्वारा किसप्रकारके चारित्रिका पालन किया गया ? तब श्रेणिक देवों व असुरोंके साथ सुनने लगा और त्रिभुवनगुरु (जिन भगवात्) उसका चारित्र कहने लगे—रमणियोंके रूपसे इंद्रको प्रसन्न करनेवाला, वर्द्धमान नामसे विख्यात ब्राह्मणोंका क्रमागत अग्रहार ग्राम है, जहाँ बड़े-बड़े भट्ट समुदायके विशेषज्ञ ब्राह्मण-समूहों द्वारा वेद घोष किया जाता है, जहाँ दीक्षितोंके द्वारा पशु होम किया जाता है, और जहाँ प्रतिदिन सोमपान किया जाता है । जहाँ वृक्ष-वृक्षमें एवं सघन-लतागूहोंमें एक दूसरेको कर्कश वचनोसे पुकारकर शाखाओंसे कूदते हुए, व अपनी (पूँछके समान) चंचल शिखाओंको नचाते हुए वटुक वानरोंके समान क्रोड़ा करते हैं ॥ ४ ॥

१४. क घ ङ लवो ।

[४] १. ख ग घ पइ । २. क व ङ तियसहुं । ३. क मत्थइ । ४. क घ ङ दिणइ । ५. क लावण्णुं ; ङ लायण्णुं । ६. क तिल । ७. ङ पच्चेल्लउ । ८. घ आयण्णइ ; ङ आयण्णइ । ९. क व ङ तिहुवण्णुं । १०. घ रमणे । ११. क ङ अगहारु । १२. ख ग ङ वेथपोस । १३. ख ग उच्चारियउ । १४. क व ङ दिक्खिपहिं । १५. ख ग सोमपाणु । १६. ख ग पिज्जइ । १७. क ङ तरुवर । १८. क घ ङ कोक्खिय । १९. घ कडुया । २०. ख ग पालवहिं । २१. क ख ग ङ कीलहिं । २२. क वडुया ; घ ङ वडुया ।

[५]

तहिं^१ गामि वसई जणलद्धसंसु
 सुडवेयकहालकरियकंडु
 कमलाचरो व्व गोविसनिहाणु
 तहो पैडवयधारिणि-कयसुकम्म
 ५ समयणतणुरत्ती^२ ललियकणण
 वहुनेहवद्ध-पयलग्ग वहइ
 भयवत्तु जाउ तहै^३ पढसु पुत्तु
 वायरण-वेय^४ जोइसपसत्थ^५
 अण्णुण्णनेहपरिपूरियंग
 १० अट्टारहवरिसपमाणजिट्ठे^६
 एत्थंतरि सो तहो तणउ ताउ
 चिरजम्मावज्जिउ^७ पावकम्म

गुणवंतु धणु व्व विसुद्धवंसु ।
 नामेण अज्जवसु सुत्तकंडु ।
 मंडलवइ व्व महिसीपहाणु ।
 पियगोहिणि नामे सोमसम्म ।
 अइञ्जीणमब्ब-वेणोरवण्णं ।
 पाणहियकंते को अण्णु लहइ ।
 वीयउ भवएउ दिएहि^{१०} वुत्तु ।
 परियाणिय दोहिं मि^{१३} सयलसत्थे^४ ।
 सइत्थजेम अबिहत्तसंग ।
 वारहसंचच्छरथिण्ठे कणिट्ठे^{१६} ।
 परिपीडिउ वाहिण्ठे भग्गळाउ ।
 कोठेण घत्थु हुउ झसियचम्म^{१८} ।

[५]

उस गाँवमे लोगोमें प्रशंसा-प्राप्त, विशुद्ध-वंश (बास) तथा गुण (प्रत्यंचा) युक्त घनुषके समान विशुद्ध-वंश (कुल) मे उत्पन्न और (शोलादि) गुणोसे युक्त, एवं श्रुति, वेद और कथाओसे अलंकृत-कंठ अर्थात् समस्त शास्त्रोको कंठमे धारण करनेवाला, आर्यवंसु नामका सूत्रकंठ (ब्राह्मण) रहता था । वह जल (गो), और पद्मिनी (विस) के अकुरोके निघान कमलाकरके समान अनेक गायों (गो) और वृषभों (विस) का निघान था । (सब रानियो में) प्रधान अग्रमहिषीसे युक्त मडलपति राजाके समान वह ब्राह्मण प्रचुर दूध-धी देनेवाली प्रधान महिषियो (भैंसो) से युक्त था । उसकी पतिव्रतको धारण करनेवाली कृतपुण्य-अर्थात् पुण्यवान् सोमशर्मा नामकी गृहिणी थी । उसका शरीर समदन अर्थात् कामोत्तेजक था, और वह अपने पतिमे अत्यन्त अनुरक्त थी : उसके कान बहुत सुंदर थे, कटिभाग अत्यन्त क्षीण तथा वेणी बहुत रमणीक थी और गहरे स्नेहसे बंधी हुई वह पतिके चरणोका अनुगमन करती थी । ऐसी प्राणोसे भी अधिक प्यारी कांता अन्य कौन पा सकता है ? उसे भवदत्त नामका प्रथम पुत्र हुआ, दूसरा द्विजोके द्वारा भवदेव कहलाया । उनका अंग-प्रत्यंग परस्परके स्नेहसे परिपूरित (ओत-प्रोत) था और वे शब्द व अर्थके समान सदा एक साथ रहते थे । जब जेठा (भाई) अठारह वर्षका हुआ और कनिष्ठ बारह वर्षका उसी समय उनका पिता व्याधिसे पीड़ित हुआ और उसकी कांति नष्ट हो गई । पूर्वजन्ममे अर्जित पापकर्मसे वह कुष्ठग्रस्त हुआ, उसका

[५] १. क तहि । २. र ग वसइ । ३. क सुइवयं । ४. क ड पयवयं । ५. क समयमणुं ; ड समय-
 णमणुं । ६. क वीणी । ७. घ पाणहियं । ८. क तहि, स ग व तह, ड तह । ९. क घ ड पढम । १०. घ
 ड दिएहि । ११. ख ग जोयसं । १२. क ड पसत्थु । १३. क ख ग ड दोहिमि । १४. क ड सत्थु ।
 १५. क ड जिट्ठ । १६. क ड कणिट्ठु ; ख ग कणिट्ठि । १७. र ग वज्जिअ । १८. र ग छसियं ।

करचरणंगुलि^१ नासाहरेहिं
जीवासाछिण्णु^२ सरंतु^३ विद्ध
पियमरणविरहु^४ असहंति इद्ध^५

चिलिसावणु परथि^६ थाणु तेहि ।
चिय विरइवि^७ पुणु हुयवहे पइट्ट ।
मुय^८ सोमसम्म सा तहि^९ पइट्ट ।

१५

घन्ता—तं मरणु नियंतहिं^{२०} धाहमुअंतहिं^{२१} दुक्खु-दुक्खु^{२२} दुक्खवघविय ।
वच्छयलु हणंता पुत्त रुअंता वेणिण चि सयणहिं संठविय ॥५॥

[६]

सोयाणलजालादढहियए
पाडेवि पिंडु पियरहं तुरिच
सकणिट्ठुं गिहासमनयपवर
अह तहिं^१ विसयाहिलासरहिउ
विहरंतु पत्तु गणपरियरिउं
सो मुणिवरिदु सुहदंसणहिं^२
जो जं पुच्छइ तहो दिव्वज्जुणि

तिलजव देविणु वंभणकियए ।
वहुदिणहिं दुक्खभरु ओसरिउ ।
भयवत्तुं तत्थ पालेइ घर ।
सोहम्ममहामुणिं मुणिमहिं^३ ।
‘धारहपयारतवगुणभरिउं^४ ।
पणविज्जइ संतचित्तजणहिं^५ ।
जीवाइतत्तुं तं कइइ मुणि ।

५

चर्म गल गया, तथा हाथ व पैरोंकी अंगुलियाँ व नाक और अधर केवल जुगुप्सनीय चिह्न मात्र शेष रह गये। जीनेकी आशा छूट जाने पर वह विष्णुका स्मरण करता हुआ चित्त रचकर अग्निमें प्रविष्ट हो गया। प्रियके मरणवियोगको न सह पाती हुई उसकी प्रिया सोमशर्मा भी उसी चित्तानिमें प्रविष्ट होकर मर गयी। उन दोनोंका मरण देखकर और धाड़ देखकर हा कष्ट ! हा कष्ट ! कहते हुए, छाती पीट-पीटकर रोते हुए उन दोनों पुत्रोंको स्वजनोंने धैर्य बंधाया ॥ ५ ॥

[६]

शोकानलकी ज्वालासे दग्धहृदय उन दोनोंने ब्राह्मण-क्रिया अर्थात् वेदविहित-अनुष्ठानके अनुसार तिल और जौ देकर शीघ्र ही पितरोंको पिंड पाड़ा। बहुत दिनोंमें उनका दुःखभार कुछ कम हुआ, और गृहाश्रमकी नीतिमें कुशल भवदत्त, कनिष्ठ (भ्राता) के साथ घरका पालन करने लगा। अथानन्तर विषयोंकी अभिलाषासे रहित, मुनियों-द्वारा पूजित एवं बारह प्रकारके तपोगुणसे भरे हुए सौधर्म नामके महामुनि अपने गण (संघ) के साथ विहार करते हुए वहाँ पधारे। शातचित्त और शुभदर्शन अर्थात् सम्यग्दृष्टि लोगोंने उन मुनिवरको प्रणाम किया। वे मुनि जो कोई जो कुछ पूछता था, उसे अपनी दिव्य वाणीसे जीवादि तत्त्वोंको

१९. क छ चरकरंगुलि । २०. क छ परि । २१. क छ जीवासाविणु । २२. क छ सुमरंतु । २३. ख ग विरयवि । २४. क घ छ मरणु । २५. ख ग इदट्ट । २६. ग मुह । २७. क छ तहि । २८. छ णियंतहि । २९. क छ मुयंतहि; छ मुयंतहि । ३०. क छ अइधायि ।

[६] १. क घ छ दढहियए । २. क छ । ३. क घ छ भयवत्तु । ४. ख ग छ तहि । ५. क घ छ सोहम्म । ६. ख ग सहिल । ७. ख ग रियरिउ । ८. क छ पयार । ९. ख ग भरियरिउ । १०. ख दंसणहि । ११. ख जणेहि । १२. क छ तत्तु ।

जगु सयलु वि इन्द्रियचंचलउ
जीवननिओथसणालुयउ^{१४}
रीणउ^{१५} णिणकम्महि^{१६} खारियउ

मिच्छन्तमोहतिमिरंधलउ^{१३} ।
कामाउरु^{१४} सुहतण्हालुयउ^{१५} ।
निसि सोवइ निहय^{१६} धारियउ^{१७} ।

१०

घत्ता—मरणभयणं लुक्कइ^{१८} अहव न चुक्कइ वंछइ सिवसुह^{१९} नउ लहइ ।^{२०}

तहवि^{२१} हु माणुसपसु^{२२} भयकामहु वसु सहिय^{२३} तप्पिवि तणु डहइ ॥६॥

[७]

अप्पाणु किलेसे^१ जेत्यु थवइ
दुक्करु वि विद्याणइ तं सुकरु
संतोह^२ नं को वि अहव मणहो^३
बिवरीयविवेउ लोउ जियइ
बाहिरउ^४ तो वि अहिलासप^५
निसुणंतहो इय मुणिजंपियउ
विण्णत्तु परमगुरु सुहकरणु^६

दुक्खेण परिग्गहु मेलवइ ।
नीसंगवित्ति^७ पुणु गरुयमरु ।
सुकरु वि दुक्करु भावइ जणहो^८ ।
अन्भंतरु देहहो^९ जइ नियइ ।
उड्ढावइ वायस वंडकर ।
भयवत्तहो^{१०} हियवउ कंपियउ ।
तउ चरणजुयलु सामिय सरणु^{११} ।

५

बतलाते थे (और कहते थे)—यह सारा जगत् इन्द्रियचंचल है, और मिथ्यात्व-मोहरूपी तिमिरसे अंधा है। जीवनके असि-मसि-कृषि आदि व्यापार व आहारादि संज्ञाओसे युक्त, कामातुर तथा सुखकी तृष्णावाला है। दिनभरके कामोसे थककर, श्रान्त होकर, रात्रिमें विद्रासे मूर्च्छित होकर सोता है। मरणभयसे यह लुकता है, परंतु किसी प्रकार उससे चूक नहीं पाता (बचता नहीं); शिवसुखको चाहता है, पर पाता नहीं। इसप्रकारका यह मनुष्यरूपी पशु भय और कामके वश होकर अपने हृदयसे ताप अनुभव करता हुआ तनको जलाता है ॥६॥

[७]

जिस परिग्रहमें मनुष्य अपने आपको बड़े क्लेशसे स्थापित करता है, अर्थात् बड़े कष्टसे जिसका संग्रह करता है, वह परिग्रह बड़े दुःखसे छोड़ा जाता है। यह लोक विपरीतविवेक (उल्टी मति) से जीता है, यद्यपि यह देहके भीतर देखता भी है तो भी बाह्याचारणमें शरीरादि परिग्रहके प्रति अभिलाषायुक्त होनेसे हाथमें दंड लेकर कौओंको उड़ाता रहता है। मुनिके इस कथनको सुनकर भवदत्तका हृदय कांप उठा और उसने उन परमगुरुसे विज्ञापना की, 'हे स्वामी ! आपके श्रुम अर्थात् हितकारक चरणयुगल ही मेरी शरण है, मुझ संसाररूपी

१३. ख ग मिच्छित्तं । १४. ग लयउ, उ लुइउ । १५. क घ कामाउरु । १६. क ड सुह तण्हालुयउ ; घ सुह तण्हालुयउ । १७. क रीणउ, घ रीणउ । १८. क ग कम्महि । १९. क णिदइ, घ निहइ, उ णिदइ । २०. ड धारियउ । २१. क घ ड कह व । २२. ख ग सुह । २३. ख ग तहु वि । २४. र ग माणुसु । २५. क ड सुहियइ, ख सुहियए, घ मुहियइ ।

[७] १. क घ ड किलेसि, ख ग किलेसि । २. ख ग नीसंगुं । ३. क घ ड संकेसु । ४. घ मणहो । ५. घ जणहे । ६. क ड देहहि; घ देहहि । ७. घ नियइ । ८. घ वहिराउ । ९. घ यरु । १०. क में भयवत्तहो...कंपियउ—यह अर्द्धपंक्ति नहीं । ११. घ भयदत्तहो । १२. क घ ड चरणु । १३. ख ग में इस पंक्तिके पश्चात् निम्नपंक्ति अधिक है :—'णिणुणिवि चित्तवइविसुद्धमई भयवत्तु चतु धरवासरई' ।

भवकर्म खुत्तु^{१४} समुद्धरहि^{१५}
संताने सहोदर परिठववि^{१६}

पवज्जहि^{१६} मह पसाउ करहि ।
दिक्खंकिउ मणकसाय^{१८} खववि^{१९} ।

घत्ता—दंसणु सलहंतउ बिसयचयंतउ^{२०} सुद्धचरित्तु^{२१} दियंवर ।
गुरुवयण-सवणरइ दिढमइ^{२२} विहरइ कम्मासयकयसंवर ॥७॥

१०

[८]

हउं^१ परकयत्थु संजणियदिहि,
जम्मंतरकोडिहि^३ पत्तु न वि
अणुदिणु सञ्जाय-ञ्जाणु करइ
आगमदिडिणु^५ विहरंतु सया
सो सवणसंघु वयखामियउ
उवचारवुद्धि सम-निय-परहो
भवएउ अणुउ भवगुरुसरिहि^७
मइ संते^९ सावयवउ धरइ^{१०}
चित्तवि^{११} आयरियहो विण्णवइ

जं लद्धु दुलहु^२ सम्मत्तनिहि ।
तं दंसणु पाविउ भवे भमिवि ।
तवचरणु^४ सुघोरु वीरु चरइ ।
संवच्छर वारह जा मया ।
तहो गामहो नियडवेसे थियउ ।
तो हुय भयवत्तं^६ दियंवरहो ।
मा पडउ वराउ दुक्खदरिहि^८ ।
मिच्छत्तभाउ^{१०} जइ परिहरइ^{१२} ।
जोयणअञ्जाणु^{१४} गामुहवइ ।

५

कर्ममें पड़े हुए व्यक्तिका समुद्धार कीजिए, और प्रव्रज्या देकर मेरे ऊपर कृपा कीजिए ।
संतानोंपर (संरक्षक रूपसे) सहोदरको स्थापित करके, मनमेंसे कषायोंका क्षय कर भवदत्त
दीक्षित हो गया । सम्यग्दर्शनकी सराहना करते हुए, विषयोंका त्याग करते हुए, वह दृढमति
व शुद्धचरित्र-दिगंबर, गुरुवचनको सुननेमें मन लगाता हुआ, कर्मासूत्रोंका संवर करके विहार
करने लगा ॥७॥

[८]

मे परम कृतार्थ हूँ जो कि धैर्य (साहस) धारण करके सम्यक्त्व जैसी दुर्लभनिधि को पा
गया । कोटि-कोटि जन्मान्तरोंमें भी जो नहीं मिला, वह सम्यक्त्व अब भव-भ्रमण करते-करते पा
लिया । वह वीर (भवदत्त) प्रतिदिन स्वाध्याय और ध्यान करता था, तथा अत्यन्त घोर
तपस्चरण करता था । सदैव आगम-दृष्टिसे अर्थात् शास्त्रानुसार विहार करते हुए जब बारह
वर्ष व्यतीत हो गये तो व्रतोसे क्षीण-शरीर वह श्रमणसंघ उस गाँवके निकट प्रदेशमें ठहरा ।
स्वयं और परके प्रति समान उपकारबुद्धिवाले उस भवदत्त दिगंबरको ऐसा हुआ—‘भैरा
अनुज बैचारा भवदेव दुःखकी गर्तस्वरूप ससाररूपी महानदीमें न पड़े, यदि मेरे रहते हुए वह
श्रावक व्रतोको धारण कर ले और मिथ्यात्व-भावको छोड़ दे’ । यह सोचकर भवदत्तने आचार्यसे

१४. ख ग खत्त । १५. क सुमुद्धरही; ङ समुद्धरही । १६. व पवज्जहि । १७. क घ ङ ठविवि ।
१८. क मणिकसाउ; ङ मणकसाउ । १९. क ङ खविवि । २०. क व ङ चवंतउ । २१. क घ ङ सुद्धं ।
२२. क विहुं; ङ विहुं ।

[८] १. ख ग ङ हउ । २. ख लद्धुवदुल्लहु; ग लद्धुदुल्लहु । ३. व कोडिहि । ४. क ङ चरण ।
५. क ङ आगमिं । ६. ख ग भवयत्त; व भयदत्त । ७. ङ सरिहि । ८. व वरिहि । ९. क ङ व संति;
ग संते । १०. ख ग धरइं । ११. ख ग भाव । १२. ख ग हरइं । १३. क घ ङ चित्तवि । १४. व जोयणं ।

न पमाड गमणे^{१५} जइ संभवइ . उवसावमि^{१६} जइ कणिट्ठु सवइ^{१७} । १०
 संघाडइ दिज्जउ^{१८} एककु^{१९} रिसि अणुमण्णिउ नत्थि पमाथ दिसि ।
 घत्ता—गच्छहु आपसिय गुरुसंपेसिय विण्णि व मुणिवर नीसरिया^{२०} ।
 दियवरसंपुण्णउ^{२१} गामु रवण्णउ वड्ढमाणु खणे पइसरिया^{२२} ॥१॥

[६]

दीसइ पवरं	भवएवघरं ।	
गोमथलित्तं	चुण्णयसित्तं ^१ ।	
गेरुयपिंगं	दिप्पिरसिंगं ^२ ।	
तोरणकलियं	मंडवल्लियं ।	
वज्जियतूरं	मंगलतूरं ।	५
धुयधयचवलं	गाइयधवलं ।	
मणअहिरामं	नत्थियरामं ।	
पथडियसिप्पं	मुंजियविप्पं ।	
चंदणसालं	धुसिणवमालं ।	
सत्थियबंधं	कुसुमसुयंधं ।	१०
दाचियभोयं	माणियलोयं ।	
तो ^३ तवपवलं	मुणिवरजुयलं ।	

विज्ञापना की—‘यहाँसे एक योजनके अन्तरपर (मेरा) गाँव है, यदि वहाँ जानेमें कोई प्रमाद (दोष) न हो, और यदि कनिष्ठ भ्राता मेरी बात सुने, तो मैं उसे उपशांत करना चाहता हूँ, ‘तो फिर मेरे साथ एक ऋषि बीजिए ।’ गुरुने अनुमोदन किया और कहा—(वहाँ जानेमें) लेशमात्र भी दोष नहीं है, अतः तुमलोग वहाँ जाओ; ऐसे गुरुके आदेश व सप्रेषणसे वे दोनों मुनिवर निकलकर चले और क्षणभरमें उत्तम ब्राह्मणोंसे भरे हुए उस रमणीक वर्द्धमान गाँवमें प्रविष्ट हुए ॥८॥

[६]

भवदेवका सुंदर घर दिखाई देने लगा, जो कि गोवरसे लिपा और चूनेसे पुता था, (और कहीपर) गेरुसे पिंगलवर्ण दिखाई देता था, व जिसका शिखर खूब चमक रहा था, तथा जो तोरणोंसे युक्त और मंडपसे शोभित था; व जहाँ मंगल तूर बज रहा था, चपल ध्वजाएँ फहरा रही थी, मंगलगान गाया जा रहा था और स्त्रियाँ मनोभिराम नृत्य कर रही थी; स्थान-स्थानपर काष्ठचित्र आदि निर्मित थे, विप्रोंको खिलाया जा रहा था; और चदनकी शालाएँ कुंकुमसे सुगंधित हो रही थी, स्वस्तिक बंधमें बँधे हुए कुसुमोंकी सुगंध फैल रही थी; और दान देकर लोगोका सम्मान किया जा रहा था । उन तपः-प्रवल मुनि-युगलको

१५. क ड समणि । १६. क ड उवसामवि । १७. क ख ग ड समई । १८. स ग दिज्जइ । १९. क ड एक । २०. क व ड णीसरिय । २१. क दियवइ, ख ग संपण्णउ । २२. क घ ड सरिय ।

[९] १. ख ग सित्तं । २. क ख भिंगं; घ सेंगं । ३. क ड ते ।

जणवयदिद्धं	भाइहिं ^१ सिद्धं ।
मुणि भयवत्तो ^४	तव घरं ^५ पत्तो ।
ता भवएओ	कयसंखेओ ।
विणयविमीसो	पणविणसीसो ।
घोल्लिरवत्थो	जोडियहत्थो ।
सुयणसहाओ ^७	वाहिरि आओ ^८ ।

१५

घत्ता—भवदेवहो नियमणि वंधवदंसणि^१ रहसमहाभरु नउ धरिउ ।

फुट्टिवि पसरंतउ अंगि न मंतउ पुलयछलेण व^२ नोसरिउ^३ ॥९॥ २०

[१०]

महिबीढे निवेसिवि सिरकमलु^४
 मुणिणावि अणुउ संभाविणयउ
 करफंसणु पुट्टिहे^५ तहो करेवि^६
 बुल्लणह^७ लग्गु भयवत्तु^८ मुणि
 जं दीसइ^९ नवसियवत्थधरु^{१०}
 परिणयणलच्छिल्लणज्जमुहु^{११}
 नववरु पमणेइ^{१२} सवाहनयणु^{१३}

पणविज्जइ भाइहिं^१ कमजुयलु^४ ।
 सुय धम्मविद्धि संभवउ तउ ।
 मंडवि दिण्णासणि वइसरंवि^५ ।
 इउ पयरणु^६ किं भवएव सुणि^७ ।
 उण्णामयकंकणवद्धकरु ।
 वरइत्तु जाउ कहिं^८ वच्छ तुहुं ।
 उद्धंतमणु^९ गगिरवयणु ।

५

पौरजनोंने देखा और भाईको कहा—मुनि भवदत्त तुम्हारे घर आये हैं। तब भवदेव शीघ्रता करके, विनययुक्त होकर, शिर झुकाये हुए, वस्त्रोंको फहराता हुआ, हाथ जोड़े हुए, स्वजनोंके साथ बाहर आया। भवदेवके मनमें वांधवदर्शनसे होनेवाला उद्वेग रुक नहीं सका, और अंगोंमें न माता हुआ, फूट-फूटकर प्रसृत होता हुआ, मानो पुलक (रोमांच) के बहानेसे निकल पड़ा ॥९॥

[१०]

अपने शिरकमलको पृथ्वीपर रखकर भवदेवने भाईके पदयुगलको प्रणाम किया। मुनि-ने भी—'हे वत्स ! तुम्हें धर्मकी वृद्धि हो', कहकर भाईको आशीर्वाद दिया। उसकी पीठपर हाथ फेरकर, मंडपमें दिये हुए आसनपर बैठकर भवदत्त मुनि बोलने लगे—हे भवदेव ! सुन। यह क्या बात है, जो तू उपयाचितक वस्त्र धारण किये हुए दिखाई देता है, हाथमें ऊनसे बना हुआ कंकण बँधा है, परिणयकी शोभासे तुम्हारा मुख ललनीय (सलौना) हो गया है; वत्स ! तू कहीं वर (दुल्हा) तो नहीं हो गया ? तब नेत्रोंमें आँसू भरकर, स्नेहाभिमानपूर्वक गद्गद

४. ख ग भाएहि, क घ भाईहिं । ५. ख ग भयवत्तो । ६. क घ ड तउ । ७. क घ ड सयणं । ८. व जंओ । ९. ख ग दंसणे । १०. क घ ड य । ११. ख ग नोसरियउ ।

[१०] १. क ड कमलु । २. ख ग घ भाईहिं । ३. क ड पयं । ४. क पिट्टिहे; ख पिट्टिहि; ड पिट्टिहे । ५. क करेवो, ख ग तउ करवी, तहो करवी । ६. क संरेवी; ख ग वंसरेवी; घ वइसरवी । ७. क ख ग ड बुल्लणह । ८. क घ ड भयवत्तु । ९. ख ग पइरणु । १०. क तव एणु सुणी, ड तवं एव सुणी । ११. क घ ड दीसहिं । १२. ग धरु । १३. क ड उण्णामउ । १४. क ड ललिणज्जमुहु । १५. क ड कहिं । १६. क ड पमणेइ; ग घ पमणेइ । १७. क संवाहणइणु, ड सवाहणइणु । १८. क ड उद्धंतमणु ।

जं जणणि जणेरहु^{१९} पिसुण पिया^{२०} पच्चक्ख तुम्ह सा वरण^{२१} किया^{२२} ।

घत्ता—मई^{२३} सिसु अगणंतहि^{२४} नाह चयंतहिं जो चिरु तुम्हहिं^{२५} भंसियड^{२६} ।
१० सो अज्जपमाणहिं^{२७} कयआगमणहिं नेहु पुणुणणउ दंसियउ ।

[११]

एत्थु जि वड्ढमाणे कुलभूसणु
नाथएवि तहो भज्जपियारी
सा परिणिय मई^{२३} एह सुलक्खणं
तो भवयन्तमुणिंदे^{२४} वुच्चइ
५ सयलुं पहाउ एहु सुहकम्महो
धम्मं^{२५} चक्खवट्टि-हरि-हलहरं^{२६}
धम्मं^{२७} मणुय महागुणसीला
धम्मु अहिंसा लक्खणलक्खिउ^{२८}
आगमुं^{२९} सो जि जित्थुं^{३०} दये किज्जइ

जाणहुं^{३१} तुम्हइ दिउ दुम्मरिसणु ।
नाथवसू सुय ताहं कुमारी
समु विवाहुं सलहंति वियक्खण ।
किउ सुंदरुं जं सयणहं^{३२} रुच्चइ ।
दोसइ फलुं^{३३} पच्चवसु जि धम्महो ।
धम्मं^{३४} लोयवाल-ससि-दिणयर ।
मुंजियभोय-पुरंदरलीला ।
किज्जइ आगमेण सुपरिक्खिउ ।
पुंवावरविरोहु न कहिज्जइ ।

वाणीसे वह नव-वर यूँ बोला—तुम्हारे समक्ष ही माताने पितासे जैसा कहा था, उसी प्रियाका आज मैने वरण किया है । हे नाथ ! मुझ शिषुकी परवाह न करके, घर छोड़कर, पूर्वमे जिस स्नेहको तुमने तोड़ दिया था, आज अपने आगमनसे, उसे पुनः नवीन अर्थात् जागृत करके दिखलाया है ॥१०॥

[११.]

इसी वद्धमान नगरमें तुम्हारा जाना हुआ दुर्मर्षण नामका स्वकुलभूषण द्विज है । उसको नागदेवी नामकी प्यारी भार्या है, उन दोनोंकी नागवसू नामकी पुत्री है, उसी सुलक्षणाका मैने परिणय किया है । विचक्षण लोग समविवाहकी ही सराहना करते है । तब भवदत्त मुनीद्वने कहा—तुमने स्वजनको रुचनेवाला अच्छा काम किया । यह सब शुभकर्मका प्रभाव है । धर्मका प्रभाव प्रत्यक्ष दिखाई देता है । धर्मसे ही चक्रवर्ती, हरि (वासुदेव) और बलराम होते हैं, तथा धर्मसे ही लोकपाल, व चंद्रमा और सूर्य । धर्मसे ही मनुष्य महान् गुणोवाली व भोगोंकी प्रदान करनेवाली पुरंदरकी लोला धारण करते है । धर्म अहिंसा लक्षणवाला है, और आगमसे अच्छी तरह परीक्षा करके उसे किया जाता है । और आगम वही है जो जीव दया बताये, तथा जिसमे पूर्वापर विरोध कथन न किया जाये । इसप्रकार अपना हित जानकर

१९. क घ जणेरहुं, ङ जणेरहु । २०. ङ पिय । २१. क ख घ ङ वरण । २२. ङ किया । २३. क ड मई । २४. ङ अगणंतहि । २५. क ङ तुम्हहि । २६. क ङ भासियउ । २७. ख ग घ अज्जुं ।

[११] १ क ङ जाणहु; ख ग जाणउ । २. क घ ङ तुम्हइ । ३ ख ग ङ मइ । ४. क घ ट सुलक्खण । ५. क ङ विवाह । ६. ख ग मुणिंदे, घ मुणिदि । ७. ख सयणहो; ङ सयणह । ८ क ड सयल । ९. घ ङ एउ । १० क फल । ११. क घ ङ वि; ख ग जे । १२. प्रतियोमं धम्मि । १३. क हलघर । १४ क घ ङ धम्मि । १५. ख ग लक्खणुं । १६. क ख ङ आगम । १७. क ङ जीउ, ख जेत्य; ग जेत्यु । १८. ख ग दइ ।

घत्ता—इय जाणिवि नियहिउ जेण न भवि किउ धम्मु जिणागमभासियउ^{१९} । १०
धी तं^{२०} अचरणहि^{२१} माणुसु मण्णहि^{२२} अज्ज वि गढभासे डियउ ॥११॥

[१२]

मुणिवयणसुहाभावियमणेण
विणएण भण्ड विण्णवमि कज्ज
अणुमण्णउ तं मुणिपुंगवेहिं^{२३}
तउ अक्खयदाणु भणेवि चलिय
भवएउं वि निउभरनेहवद्धु
मंडवि महिलायणु नियइ कोहुं
चित्तंतु एम वाहुडणसीलु
पहु पेक्खु पेक्खु पसरंतपाउ^{२४}
हल्लितरंगु सरवरु रवणुं^{२५}
आगमविरोहुं^{२६} रक्खंतु संतु

सावयवयाइं^{२७} गेणहेवि तेण ।
भोयणु धरि किज्जउं मव्ज्जु अज्जु ।
आहारु विहाणे लयउ तेहिं ।
अणुवक्खविं पणविवि लोय वलिय ।
गच्छइं^{२८} नियत्तणाए ससद्धु । ५
छोडेवउं^{२९} कंकणु करि सखेहु ।
उहेसइ अण्णालावलीलु ।
नगगोहमहादुसु वहल्लउ ।
रुणुणियभमरसयवत्तण्णुं^{३०} ।
वाहुडहि वच्छ न भणइं^{३१} महंतु । १०

जो इस भवमे जिनागममें कहे हुए धर्मका पालन नहीं करता उसे धिक्कार है, उसकी अवहेलना करो और उमे अभी भो गर्भवसासमें ही स्थित मानो ॥११॥

[१२]

मुनिकी वचनसुधासे भावित-मन होकर, श्रावकके व्रत धारण करके, उसने विनयपूर्वक कहा—एक कार्य निवेदन करता हूँ, आज मेरे घर भोजन कीजिये । मुनिपुंगवोने उसको स्वीकार किया, और उन्होने विधानपूर्वक आहार लिया । 'तुझे अक्षयदान (का लाभ) हो' ऐसा कहकर मुनि चल चड़े और लोग उनके पीछे (कुछ दूर तक) जाकर प्रणाम करके लौट पड़े । भवदेव भो गाढ-स्नेहसे बंधा हुआ श्रद्धायुक्त भाव से (तथापि) लौटाये जानेकी इच्छासे उनके पीछे पीछे चलता रहा । मंडपमें महिलाजन इस कौतुकको देखे, जब मै क्रीड़ापूर्वक कंकण छुड़ाऊँ । इसप्रकार चिन्तन करते हुए चलते चलते अन्योक्ति आलापकी रीतिसे वह बोला—हे प्रभु ! फैलती हुई शाखाओं तथा बहुत घनी छायावाले इस विशाल न्यग्रोध वृक्षको देखिये ! और इस चंचल तरंगोंवाले रमणीक सरोवरको देखिये, जो गुंजार करते हुए भ्रमरोसे युक्त शतपत्रोंसे आच्छादित है । आगम-विरह (वचनसे अपने) को वचाते हुए बड़े भाईने यह नहीं कहा कि वत्स, (वापिस) चले जाओ । वे मुनि बोले यह कोई अपूर्व (अदृष्ट) प्रवेश नहीं है,

१९. क ङ जिणागमिं । २०. क व ड ही त; ख ग धीति । २१. क व ड गण्णमि, ख ग गण्णहिं ।
२२. क ड मण्णमि, घ मण्णमि; ख ग मण्णहिं ।

[१२] १ क व ड सुहासासियं । २. क ड वयाइ । ३. क व ड किज्जइ । ४. क व ड पुंग-
मेहिं । ५. क व ड ते । ६. ख ग वक्खवि । ७. क ड मयएउ; घ भएएउ । ८. ख ग गच्छए । ९. ख
कोहुं । १०. क ख ग ड छोडेवउ, घ छोडेवउ । ११. क याउ । १२. क ड रवुणु, घ रवुणु । १३. क
ड रण्णियभमरु । १४. क ड विरोह । १५. घ भणइं ।

मुणि भणई^{१६} अऊव न इयै^{१७} पपम वालत्तणे परिखाळिय असेम ।
महुँ^{१८} तेहिं^{१९} एम सो विमणगनु^{२०} रिनिंसंयु जेथ्युं^{२१} त^{२२} थाणु पत्तु ।

यना—गुरु पणाविच सीसहिं^{२३} भनिविमीसहिं^{२४} भवपवेण^{२५} वि वंदिच ।

अग्गए आयरियहो बहुगुणभरियहो नववरडनु नवरि ठियच ॥१२॥

[१३]

पेत्तिववि वेसु नासु सपसत्थे^{२६} अहिणंदिच दिच मुणिवरमत्थं ।
एकं मरलसहावे^{२७} मीसई^{२८} आउ गहु तवचरणु लएसई ।
साहु साहु उवयारपयत्ते^{२९} मंनोहिदि^{३०} आणितं भयवत्ते^{३१} ।
विक्रवत्तरु सुणंनु मणि डोलई^{३२} निट्ठुरु केम दिचंवरु डोलई ।
५. नुरिउ नुरिउ थरि जासि पवत्तमि^{३३} सेसु विवाहकज्जु निट्ठवत्तमि ।
दुल्लहु सुरयविलासुवसुंजमि^{३४} नववहुवाए समउ सुहु सुंजमि ।
एउ नाउ जं मुणिणा लडयउ^{३५} पणि व जेट्टे^{३६} चिरु निच्छइयउ^{३७} ।
निलयहो जं न नियत्तिउ मवउ^{३८} भाई पइज्जहे^{३९} गहु जि^{४०} पवउ ।
कइमि^{४१} कासु कइ^{४२} वरमि महारडि एत्तहे^{४३} वग्गु^{४४} पामे इह दोत्तहिं^{४५} ।

वालपनेमें हम लोग इस सम्पूर्ण क्षेत्रके नव अभ्यस्त थे । इस प्रकार वह भवदेव उन मुनियोंके साथ विमनगात्र अर्थात् अनिच्छापूर्वक चलता हुआ जहाँ ऋषिमेंव था, उस स्थानको प्राप्त हुआ । दोनों शिष्योंने भक्तिपूर्वक गुणको प्रमाण किया, भवदेवने भी गुणकी वंदना की और वह नव-वर उन अनेक गुणोंके संडार आचार्यके आगे बैठ गया ॥ १२ ॥

[१३]

प्रधान्त वेदा देवकर मुनिमंथके द्वारा उन द्विजका अभिनंदन किया गया । एकने मरल स्वभावसे कहा—यह आया है, नृपस्वरण लेगा । उपकारमें प्रयत्नवान् वे भवदन वन्य हैं, जो इसको संबोधन- करके यहाँ लाये । इन तीन्हे अक्षरोंको मुनकर वह मनमे काँप गया, यह दिवात्रर कैसी निष्ठुर चाणी बोल रहा है । मैं बहुत त्वरापूर्वक घर जाऊँगा और जेप विवाहकार्य निवटाऊँगा । दुर्लभ मुरत-क्रीड़ा कइँगा और नववचूके साथ मुत्त भोगूँगा । मुनिने जो यह (दोषा स्नेका) नाम लिया, वह व्येष्ट (भाई) ने बहुत पहलसे ही निश्चय कर रखा था, और मूझे जो घर नहीं लौटा दिया, यही भाईकी पंज (प्रतिज्ञा) का प्रत्यय है । मैं किसमे कइँ ? कैसे फूट-फूटकर रोऊँ ? इधर पासमें व्यात्र है, और इधर (दूमरी ओर) दुष्ट नदी ।

१६. क ड अनुळ । १७. क ड महु । १८. ड तेहिं । १९. क वि पणय गत्तु, घ ट विणयगत्तु ।
२०. क ड जित्तु; व जिण्यु । २१. क त । २२. क ड भवदेवेण ।

[१३] क ड मीसई । २. क लएसई । ३. ल ग णिवि । ४. क ड आणितं । ५. क व भयवत्ते ।
६. क डोलई, ड डोलई । ७. क व ड पउंजमि । ८. क ड वहुवाड, व वहुवाड । ९. क ड जि, म ग जे ।
१०. म लडयउं । ११. क व ड जिट्ठि; म ग जेट्टे । १२. क ड यउ । १३. क ड मवउ । १४. म ग नाए । १५. क ड पइज्जहि; व पइज्जहि । १६. क व ड एउ । १७. म ग जे । १८. क व इमि ।
१९. क ल ग व हहो । २०. क व एत्तहि; ड एत्तहि । २१. ग वग्गु । २२. क होत्तडे; म ग दोत्तडे ।

तो बरि नें^{३३} करमि एहु अमाणउं^{३४}
पवजेमि अज्जे^{३५} नीसल्लए^{३६}

जेट्टसहोयरु जणणसमाणउं^{३७}
को वारइ^{३८} जाएसमि^{३९} कल्लए^{४०} ।

१०

घत्ता—इय हियघ्र समासइ पुणु आहासइ पहु दिक्खहे^{३१} पसाउ करहि^{३२} ।
भवयत्तु वसंतउ मइ^{३३} वि पडंतउ भववइतरिणिहे^{३४} उद्धरहि^{३५} ॥१३॥

[१४]

इय बोल्लंतु कलत्तुम्माहिउ
मग्गइ दिक्ख हियइ घर चाहइ
फुडु आसन्न भवु अकलंकिउ
मुणिसंधाडएहि^३ लक्खिज्जइ
पाढंतह^४ अक्खरु नउ आवइ
दिवि दिवि चिंतइ कंत हे^५ सुंदरि
फारत्तणु^६ नयणेहि^७ सुहल्लए^८
वट्टइ वट्टल-वणथणमंडलि^९

अवहि पउंजिवि गुरुणा चाहिउ ।

लज्जपरव्वसु पर निव्वाहइ ।

इय मण्णंतं पुणु दिक्खंकिउ ।

न लहइ विरुचंतरे^१ रक्खिज्जइ ।

लडहंगउ कलत्तु पर भायइ ।

वट्टइ^२ का वि अवर जोव्वणसिरि^३ ।त्रिदुमरायफुरणु^४ अहरुल्लए^५ ।लंघइ तिबलि^६ कसणरोभावलि ।

५

तो ठीक है, मैं इनकी बात अमान्य नहीं करता, (व्योक्ति) ज्येष्ठ सहोदर पिताके समान होता है। आज निःशय (निःशंक) होकर प्रव्रज्या ले लेता हूँ, कल चला जाऊँगा, मुझे कौन रोक सकेगा ? इस प्रकार हृदयमें पर्यालोचन करके फिर बोला—हे प्रभु ! दीक्षा देकर प्रसाद कीजिये । भवदत्तके रहते हुए मुझ गिरते हुए का भी भव-वैतरणीसे उद्धार कीजिये ॥१३॥

[१४]

इस प्रकार बोलेते हुए, (परंतु हृदयमें) स्त्रीके प्रति उमाह रखते हुए (भवदेव) को गुरुने अवधिज्ञानका प्रयोग करके जाना कि यद्यपि यह दीक्षा मांगता है, पर हृदयमें घरको चाहता है, तथापि लज्जावश यह उसका निर्वाह करेगा । 'यह निश्चयसे निष्कलंक आसन्न-भय (शीघ्र मोक्ष जानेवाला) जीव है, ऐसा मानते हुए गुरुने उसे दीक्षा दे दी । मुनि-युगल उसकी देख-रेख करने लगे, और इस प्रकार उसे रखने लगे कि वह मार्गान्तरको प्राप्त न कर सके अर्थात् भाग न पावे । पढ़ते हुए उसे अक्षर नहीं आता था, वह तो सुंदर अगों वाली पत्नीका ही ध्यान करता था । दिन दिन यही सोचता हे काता ! हे सुंदरी, तुम्हारी यौवन-श्री कोई अपूर्व ही है । मुख पर नेत्रोकी विचालता है व अधरोमें विदुमरागका स्फुरण (अर्थात् कांति) है, वतुंलाकर घनी स्तनमंडली है, और कृष्ण रोमावलि त्रिवलिका लंघन करती है ।

२३. क में 'ण' नहीं । २४. ख ग अपमाणउं; घ अपमाणउं । २५. घ समाणउं । २६. घ क ग ङ अज्जु । २७. घ ल्लइ । २८. ख ग वारए । २९. ख ग समे । ३०. घ ल्लइ । ३१. क दिक्ख, व दिक्खहि, ङ दिक्खइ । ३२. क ङ करहि । ३३. क ङ मय; ख ग घ मइ । ३४. क वयतरिणिहि, घ ङ वयतरणिहि । ३५. क घ ङ उद्धरहि ।

[१४] १. क ङ भासन्तु । २. क ङ पुणु वि, ग मंनति व्व पुणु । ३. ङ डिएहि; ङ डिएहि । ४. क ङ विघतत । ५. क ङ पाट्टहं । ६. क आवइ । ७. क ङ भावइ । ८. क कंतंकि, घ ङ कंतहि । ९. क ङ वट्टइ । १०. घ अवर का वि । ११. क ङ जोवण । १२. क ङ फारइत्तणु । १३. ङ णेहि । १४. क ङ उहल्लइ, घ मुहल्लइ । १५. क ङ अणण । १६. क ङ हल्लइ, घ ल्लइ । १७. ख ग ल ।

विहिं^{१८} वाहहिं^{१८} अवसंढणु चंगइ^{१९} दुक्कर पुज्जइ^{२०} विउडनियंवइ^{२१} ।
 मसिणोरुयहिं जगु जि^{२२} वसिं^{२३} किज्जइ नहदित्तिप्र महियलु कवलिज्जइ^{२४} । १०
 घत्ता—सुद्धइ^{२५} संपुण्णउ^{२६} तं तारुणउ^{२७} किदीसिहइ^{२८} पुणुणवउ^{२९} ।
 सो कइयहं होसइ^{३०} जो मणु सोसइ कवणु दिवसु सो धणवउ^{३१} ॥१४॥

[१५]

लीणिय पड्डिविचिय लिहिय उक्कोरिय पड्डिहाइ ।
 हियप्रं छुहेविणु धण निचिड दइए^३ खीलिय नाइ ॥१॥

रत्नमालिकाः

नीलकमलदलकोमलिए सामलिए नवजोव्वणोलीलालिए पत्तलिए ।
 रुवरिद्धिमणहारिणिए मारिणिए हा मइं विणु मयणे नडिए सुद्धलिए ।
 इय सोच्चइ^३ बोळिय देसंतर विहरंतहो वारहं संवच्छर । ५
 ताम परायउ मुणिगणु धणवउ^३ वड्डमाणगामहो आसण्णउ^३ ।
 उववासिउ भवएउ निएसिउ^३ पारणत्थे^३ संघाडणु^३ पेसिउ ।
 चरियामग्गे^३ पइहं वुत्तउ^३ अंतराउ महु^३ जाउ निरुत्तउ^३ ।

है । दोनो बाहुओसे आलिगन करने पर वह अपने सुपुत्र और विस्तीर्ण नितम्ब-भागमें बहुत दुष्करतासे सेवित होती है । उसके मसृण ऊरुओसे सारा लोक वशमें किया जाता है, और उसके नखोकी दीप्तिमें सपूर्ण महीतल चित्रित होता है । उस मुग्धाका वह भरपूर यौवन क्या (कभी) फिर वैसा ही नूतन दिखाई देगा ? ऐसा कब होगा, और वह धन्यदिवस कौन-सा होगा, जो मेरे मनको सतुष्ट कर सके ॥ १४ ॥

[१५]

वह धन्या (भार्या) मेरे मनमें लीन है, प्रतिबिम्बित है, लिखित है, और उत्कीर्ण है । अतएव ऐसा प्रतीत होता है जैसे मानो देवने हृदयमें रखकर खूब गहरी कील ठोक दी हो । नीलकमलदल जैसी कोमल, श्यामलागी, नवयौवनकी लीलासे ललित और पतली देह वाली ऐसी अर्पनी रूपश्रद्धिसे मनको हरण करनेवाली, और मार डालने वाली, हे मुग्धे ! शोक है कि तू मेरे बिना कामसे पीड़ित हुई होगी ॥ १ ॥

इसी सोच-विचारमें देवान्तारोंमें विहार करते करते वारह संवत्सर व्यतीत हो गये । तब वे धन्य मुनिवृद्ध वर्द्धमान ग्रामके निकट आये । उपवास किये हुए भवदेवको देखकर, उसी पारणाके किये मुनियुगलके साथ भेजा गया । गोचरीके मार्गमें प्रविष्ट होने पर उसने कहा मुझे

१८. क र ग विहिं । १९. क ड च्चंगइ । २०. क ट्टियइ, स टियउ, ग तियमो; ड टियइ । २१. क ड गियवड । २२. र ग जे । २३. ख ग ड वलि । २४. र ग उजए । २५. क ड सुद्धहिं, ग मुद्धइ, घ मुद्धहिं । २६. क ड णणउ, घ णणउ । २७. क दीसं । २८. क पुणु णवउ । २९. क ड । ३०. क ड घणणउ, र ग उ, घ घणमउ ।

[१५] १. क ड हाइ । २. क ड हियइ, घ हियइ । ३. क घ ड दइवि । ४. क ट्टणं । ५. क ड जोवणं । ६. क घ ड मारिणिए । ७. क सो उजइ; र मयत, ग सेउउ, घ सेउउ, ए सेउउ । ८. र ग वागह । ९. घ ड घणणउ । १०. घ ड णणउ । ११. क ड गियं, घ तियं । १२. क घ ड णणु । १३. र ग विघाडइ । १४. क घ ड मग्गं । १५. क वुत्तउ । १६. र ग महु । १७. क ड गियउत्तउ ।

मुणिणा भणितं^{१८} जाहि^{१९} गुरुनियड^{२०} तो गई^{२१} पल्लट्टि^{२२} वियड^{२३} ।
 चिकमंतु चित्तु वि^{२४} परिओसइ^{२५} एरिसु विचसु न हुयउ न होसइ । १०
 तो वरि वरहो जामि पियपेक्खमि^{२६} विसयसुक्खु मणवल्लहु चक्खमि ।
 वंचिवि दिट्ठि कियंतक् जाणवि^{२७} चल्लिउ सिग्घु दिसउ निज्जाणवि^{२८} ।
 पुणु दूरंतराले सुपसत्थे^{२९} चित्तिजइ^{३०} संपुण्णहियत्थे ।
 एकसिअज्जे^{३१} धणह^{३२} रंजमि मणु सरहसुगाहु करमि आलिंगणु ।
 कररुहेहिं थणमंडलु मंडमि^{३३} अहरविउ वंतगहिं^{३४} खंडमि । १५
 वडिड^{३५} पेम्मपुंज^{३६} लज्जंकिउ दुल्लहु माणुसु विरह^{३७} झुलुकिउ^{३८}
 जिह जिह^{३९} नियडगामु^{४०} परिसक्कइ^{४१} निह तिह^{४२} चित्तु मणाउ चमक्कइ ।

घत्ता—जिणसासणु वहुगुणु इउ कारणु पुणु धिद्धिकारिउ आरिसहिं^{३९} ।
 पयपूरणमत्तहिं^{३८} काई जियंतहिं^{३७} काउरिसहिं^{३६} अन्हारिसहिं^{३५} ॥१५॥

[१६]

लज्जेसइ हा भवयत्तमुणि^३वीणोवम धणियह^२ महरुज्जणि ।

निरिचित अन्तराय हो गया है । तब एक मुनिने कहा—गुरुके पास चले जाओ । वह शीघ्रगतिसे लौट पड़ा । चलते हुए उसके चित्तमे बड़ा आनंद हुआ कि ऐसा दिन न कभी हुआ और न होगा । तो ठीक ! घर जाकर प्रियाको देखूंगा और मनचाहा विषयसुख भोगूंगा । फिर थोड़ी दूर जाकर (मुनियुगलकी) दृष्टि बचाकर (धरकी) दिशाका विशेष ध्यान करके शीघ्रतासे चला । और फिर दूरसे ही भलीभांति अपने हृदयमे भरे हुए भावोके विषयमे सोचने लगा—आज एक बार मैं अपने मनको अपनी धन्यासे प्रसन्न करूँगा, व उरकंठापूर्वक अतिगाढ-आलिंगन करूँगा, नख चिह्नोसे उसके स्तनमंडलको मडित करूँगा और अधरविदको दांतोसे काटूँगा । उसका दुर्लभ मनुष्य (प्रिया) के विरहसे झुलसा हुआ, व (अवतक) लज्जासे दबा हुआ प्रेमपुंज बढ़ गया । जैसे जैसे गाँव निकट आता गया, वैसे वैसे उसका चित्त कुछ इसप्रकार चमत्कृत हुआ (अर्थात् इसप्रकार चिन्तन करने लगा)—यह जिनशासन बहुत गुणवाला है, और आर्ष-ऋषियो द्वारा विषयभोगके लिये इसप्रकारके (व्रतभंगादि) कारणको अत्यन्त धिक्कार किया गया है । हम जैसे केवल पदोको पूर्ण करनेवाले, अर्थात् मुनि-पदका केवल वाह्यतः निर्वाह करने वाले, कापुरुषोके जीनेसे ही क्या ? ॥ १५ ॥

[१६]

हा शोक ! (इधर तो) भवदत्त मुनि (मेरे इस आचरणसे) लज्जित होंगे, (और उधर) उस धन्याकी वीणाके समान मधुर ध्वनि (सुननेको मिलेगी) ; (एक ओर तो)

१८ क घ ड भणितं । १९. क व जाहि । २०. क गइए, ङ गईइ । २१. क ड पल्लट्ट, ख ग घ पल्लट्टउ ।
 २२ ख ग मं वि नही । २३. ख ग जायवि । २४. क ड यवि; घ इवि । २५. ग चित्तिजइ । २६ क ग
 घ ङ अज्ज । २७ क ग घ ङ धणहि; घ घणहि । २८ ख ग गगहि । २९. क ङ वट्टिउ । ३०. क ग घ ङ
 पेम् । ३१. ख ग पुंज । ३२. ख ग विरहु । ३३. ख ग झुलुकिउ । ३४. ग व हं । ३५. ख ग नियहु ।
 ३६ क सक्कइ । ३७. ख ग रिसिहि । ३८ ख ग मित्तिहि । ३९. क त्तिहि ।

[१६] १ ख ग घ भवयत्तुं । २ क घ ड धणियहि; ख ग वुणियहे ।

	रिसिसंघु निवारइ कुगइपहे ^३	ऊरुयफंसणु ^४ को लइइ तहे ^५ ।
	संसारुच्छेयहो वय भणिया	रेहाविय ^६ वरकंतहे ^७ तणिया ।
	परिहरहि ^८ चित्त मिच्छत्तभरु ^९	सकियत्थु धरेसइ तहे ^{१०} अहरु ।
५	इय हरिस-विसायहि ^{१२} पहि ^{१३} वहइ	आसंक अण्ण हियवउ उहइ ।
	वरिसहि ^{१४} वारहहि ^{१५} विलासपिया	तहे ^{१६} जाणहु ^{१७} वट्टइ कवण-किया ।
	जोळवणवसि ^{१८} करइ किमण्णु पइ	अह कुलकसु पालइ कह व जइ ।
	तो महु ^{१९} लुंघियसिर-मलघरहो	दुगंधसरीरदियंवरहो ।
	संकेसइ ^{२०} झत्ति न पइसरमि	वाहिरि उवलंभु ताम करमि ।
१०	ता ^{२१} गामलगु ^{२२} सियलुहधवलु	देवबलु दिट्ठु धुयधयचवलु ^{२३} ।
	चित्तवइ न हांतउ एउ चिरु	जा पइसइ ता तं चेइहरु ^{२४} ।
	जिणपडिम नियवि वंदण करिवि	जा नियइ विसत्थउ वइसरिवि ^{२५} ।

वत्ता—ता एकखणंतरि^३ तिय कोणंतरि द्विद्व नियमवयखिण्णतणु ।
अणुहरइ विरुवहो सुलिणिरुवहो सुककबोलहि^४ तसइ जणु ॥१६॥

ऋषि संघ कुगतिके पथसे निवारण करता है, (परंतु दूसरी ओर) उस जैसी सुंदरीका जंघा-स्पर्श किसे मिलता है; (इधर तो) संसारके उच्छेदनके लिए व्रत कहे गये हैं, (और उधर) उस श्रेष्ठ कांताकी सौंदर्यसे दीप्तिमान देहयात्रि है; अरे चित्त ! यह मिथ्यात्व वर्तन अर्थात् मिथ्याचरण छोड़ दे ! (पर) उसके अघरोका चुवन करके कृतार्थ होगा । इसप्रकार हर्ष-विपादपूर्वक वह मार्गमें चल रहा था कि एक अन्य आगका उसके हृदयको जलाने लगी— वारह वर्षोंमें रतिक्रीड़ा-प्रिय उस भामिनीकी आजकल कैसी क्रिया है, क्या जानूं ? क्या यौवनके वन होकर उसने अन्य पति कर लिया होगा ? अथवा यदि किसी तरह कुलक्रम (कुलाचार) का पालन किया भी हो तो लुंचितशिर, मलघारी, तथा दुर्गंधयुक्त गरीरवाले भुल्ल दिगंबरको देखकर वह हैरान होगी । इसलिए मैं शीघ्रतासे प्रवेग नहीं करूंगा, बल्कि पहले उसे बाहर ही बुलवा लूंगा । इतनेमें उसने गाँवसे लगा हुआ, ज्वेत चूनेसे धवल, और फहराती हुई चपल ध्वजासे युक्त एक देवकुल देखा । (और) सोचने लगा—पहले तो यह नहीं था । जब उसने उस चैत्यघरमें प्रवेग किया, तथा जिनप्रतिमाको देखकर वदना करके जब विवस्वत होकर बैठे, तो क्षणभरके उपरांत नियमव्रतोसे क्षीणशरीर एक स्त्रीको एक कोनेमें बैठे देखा जो विरूपाकृतिके कारण चंडीके रूपका अनुसरण कर रही थी, और सूखे कपोलोसे लोगोंको त्रास उत्पन्न करती थी ॥१६॥

३. क ड कुमइपहि, स. ग पहे; घ कुमइ । ४ स ग करयलफ । ५. क ड तहि, स ग तहो । ६. ग ग संमार । ७. ख विमु (?) ८. क ड हि; ख ग व हि । ९ स ग घ हरिहि । १० क स घ ड नरु । ११. क घ ड तहि । १२. ख ग ये । १३. क पति । १४. प्रतिवामे 'तहि' । १५. स ग जाणहो । १६. ख ग वस । १७ क संको । १८ स ग व ड तो । १९ क गवण । २० व धवलु । २१ क ड चय । २२. घ सरवी । २३. ख ग तरे । २४ ख ग लहे, घ लहि ।

[१७]

तो पणविउ ताण भत्तिजणनि
तुम्हई किर अत्रे चिराउसई^३
भवयत्तु अवरु भवएउ^४ तहि
जाणमि सा भणई आसिठियहो
संसारसरंगिणि तेहिं तरिया
पडिभणई सवणु मणि जणियग्गु
विणु नाहें किह कुलमग्गे ठिया
लायण्णतरंगुभसियउ
वोल्लंतु ताण^१ सो परिकलिउ

मुणि पुच्छइ धम्मवुद्धि^१ भणवि ।
इह वसहु सयलु जाणेहु सई ।
दियतणय सहोयर वे वि कहि^२ ।
त्रे नंदण अज्जवसूदियहो ।
आयरिय^३ वित्ति-दइयंवरिया ।
भवएवें परिणिय नायवसु ।
कि वट्टइ तहे^४ त्रिवरीयक्रिया ।
तारुणु ताहि^५ केरिसु थियउ ।
भवएउ एउ^६ फुडु^७ वयचलिउ ।

घन्ता—गय परमविसायहो परिणइ^८ रायहो पेक्खहु^९ केण^{१०} निवारियइ^{१०} । १०
जहिं अट्टवियड्डे^{११} चम्महो^{१२} खडें माणुसु^{१३} केम वियारियइ^{१४} ॥१७॥

[१८]

निन्नासमि आयहो पावमउ
घण्णो सि सवग तिहुवणत्तिलउ

सम्मत्तदिट्ठि पुणु सा चवइ ।
जिणदंसणु पाविउ सुहनिलउ^१ ।

[१७]

तो फिर उस स्त्रीने भक्तिपूर्वक मुनिको प्रणाम किया । 'तुम्हें धर्मवृद्धि हो' कहकर मुनि पूछने लगे—हे अवे तुम्हारी दीर्घ आयु है, यहाँ बसनेवाले सभीको तुम स्वयं जानती होगी । यहाँ एक भवदत्त और दूसरा भवदेव ये दो सहोदर ब्राह्मणपुत्र थे, वे कहाँ हैं ? उसने कहा—जानती हूँ, यहाँ आर्यवसू द्विजके दो पुत्र रहते थे, उन्होंने दिग्बर-वृत्ति (दीक्षा) का आचरण करके इस संसार नदीको तर लिया । तब मनमें और दिलचस्पी उत्पन्न होनेसे श्रमणने फिर कहा—भवदेवने नागवसूका परिणय किया था, पतिके बिना क्या वह कुलमार्ग (पतिव्रत-धर्म) में स्थित रही, अथवा कुछ विपरीत-क्रिया करके रहती है ? लावण्य-तरंगोसे उद्भासित उसका ताश्य कैसा रहा ? बोलता हुआ वह मुनि उसके द्वारा पहचान लिया गया कि यह निश्चय ही ब्रतोसे डिगा हुआ भवदेव है । वह परमविवादको प्राप्त हुई, कि देखो इस रागकी परिणतिका कौन निवारण कर सकता है, जहाँ कि मनुष्य आड़े-टेढ़े वा गले-सड़े चर्मखंडसे कैसे-कैसे विकारको प्राप्त होता है ॥१७॥

[१८]

'इसकी पापमतिको नष्ट करूँगी', (मनमें ऐसा निश्चय करके) वह सम्यग्दृष्टि (नाग-वसू) बोली—हे त्रिभुवनतिलक श्रमण तुम धन्य हो, जिसने सुखका घाम, ऐसा जिनदर्शन पा

[१७] १. क ख ग ङ विद्धि । २. क अंचि, ख ग, अरिय; ङ अवि । ३. क विराउ । ४. क ङ भय । ५. क ङ कही । ६. प्रतियोगें 'मणइ' । ७. क घ ङ आसरिय । ८. क घ ङ मणइ । ९. क घ ङ तहि, ख ग तहि । १०. क घ ताहि । ११. क ताइ । १२. घ एहु । १३. ख ग फुड । १४. ख ग णय । १५. ग पेक्खहे । १६. क केसा । १७. ख ग ण वारि, व ङ यइ । १८. ख ग वियडें । १९. ख ग चम्महुं । २०. ख ग माणुस । २१. व ङ यइ ।

[१८] १ क घ ङ तिहुवण । २ क सह ।

तरुणत्तणे^१ वि इन्द्रियद्वयणु
परिगलिष्टं^२ वयसि सत्वहो वि जइ
कञ्चे पल्लट्टइ को रयणु
सम्गापवग्गसुहु परिहरइ
को महिलहं^३ कारणे लेइ दिसि
जिह जिह^४ आहासइ सुद्धमइ
जा पुच्छिय तुम्हहिं^५ नायवसु
नालियरसरिसु^६ मुंडियउ सिरु
नयणइ^७ जलबुबुयसरिसयइ^८
चिच्चुयनिडालकवोलतयइ^९
निम्मंसु निलोहिउ देहघर
नीसल्लु अवरु^{१०} हियवउ जणउ

दीसइ^१ पइं मुयवि^२ अणु कवणु ।
विसयाहिलाससिहिं^३ उवसमइ ।
पित्तलप हेमु विकइ कवणु । ५
को उररवि नरइ पईसरइ ।
सञ्जायहाणिं^४ को कुणइ^५ रिसि ।
हेट्टासुहु^६ लज्जणं^७ सुणि हवइ ।
सुणु पयडमि तुहे^८ लायणगरसु^९ ।
लालाविलु सुहु^{१०} घग्घरियगिरु । १०
नियथाणु मुअविं^{११} तालु वि गयइ^{१२} ।
रणरणहिं^{१३} नवरि वायाहयइ ।
चम्मेण नद्ध^{१४} हड्डुहं^{१५} नियरु ।
पडिछंठु निहालहिं^{१६} महु तणउ^{१७} ।

घत्ता—इय रूण-सरिच्छउ हियउ तिरिच्छउ सल्लु काइ तुम्हहं^{१८} थियउ । १४
परलोउ न साहिउ एमइ^{१९} वाहिउ^{२०} कालु निरत्थउ पर नियलं^{२१} ॥१८॥

लिया । तर्णाईमे भी इन्द्रियोंको दमन करनेवाला तुम्हारे अतिरिक्त और कौन दिखाई देता है ? यदि परिगलित वयस्मे सभीका विषयाभिलापरूपो अग्न शांत हो जाता है (तो उससे क्या लाभ ?) । कांचसे रत्न कौन बदलवाता है ? पीतल के लिए स्वर्ण कौन बेचता है ? स्वर्ण और अपवर्ग (मोक्ष) सुखको छोड़कर रौरव नरकमे कौन प्रवेश करता है ? महिलाके कारण व्रतानुष्ठानादि क्रियाओंसे कौन भ्रष्ट होता है व कौन ऋषि अपने स्वाध्याय (आत्मचित्तन) की हानि करता है ? जैसे-जैसे वह शुद्धमति बोलती गई, वैसे-वैसे मुनि लज्जासे अधोमुख होते गये । (उसने फिर कहा)—तुमने जिस नागवसूको पूछा, सुनिये ! उसके लावण्यरस (सौंदर्य स्वरूप) को प्रकट करती हूँ—उसका शिर नारियलके समान मुडित है, मुख लारयुक्त हो गया है, और उसमे-से वाणी घरघराती हुई निकलती है । नेत्र जलके बुलबुलेके समान, अपने स्थानको छोड़कर तालु तक चले गये हैं; चिबुक, ललाट, कपोल और त्वचा मानो वाताहत होकर रण-रण शब्द करते हैं (अर्थात् सारा शरीर शिथिल हो गया है, उसमे क्षुरियां पड गयी हैं, अतः सदैव किटकिट आदि शब्द करता हुआ कांपता रहता है) । यह देहरूपी घर निर्मास और निर्लोहित होकर चर्मसे नथा हुआ अस्थिपंजर मात्र अवशिष्ट रह गया है । हृदयको और भी निःशल्य करनेवाले मेरे इस प्रतिरूपको देखिए । इस सदृश रूप तुम्हारे हृदयमे कुटिल-शल्यको भांति कैसे स्थित रहा ? तुमने परलोक नहीं साधा ऐसे ही समय विताया । तुम्हारा सारा समय निरर्थक ही गया ॥ १८ ॥

३ ख ग तरणं । ४. ख ग इ । ५. क व ङ मुइवि । ६ क व ङ मलिय । ७ ख गं हवि । ८ ख ग कुम्महेलहे, घ कुमहिलहि । ९ क ड अज्जायं । १० क घ ङ इ । ११ क घ ङ जिहं जिह । १२. क ड मुहुं । १३. क ख ग ङ लज्जइ । १४ क ड तहि, घ तहि । १५. क ड लावणं । १६ घ सरिस । १७ क णाणाविट्टलु; घ ड लालाविट्टलु । १८. ख ग व वव्वुव । १९. क घ ड सयइ । २०. क घ ड मुएवि । २१ क ड गयइ । २२ क घ ङ कवोलयइ । २३. ख ग रणहिं । २४. ख ग चम्मे निवद्ध । २५ ख ग हड्डं । २६. ख अहव । २७. क लहिं । २८ ख ग तणउ । २९. घ तुम्हइं । ३०. ख ग एम वि; घ एमइ । ३१. क उ । ३२ क ड णियउ ।

[१९]

तओ तम्मि संबोहणालावकाले
मणं तस्स नीसल्लभावे^१ पउत्तं
अहं चैय ते गेहिणी नाह मुक्का
घरे आसि जं संठियं तुम्ह दग्गं
इमं सुंदरं कारियं चेइगेहं
सुणेअण चित्तं तरं लज्जमाणो
गिरा तुम्ह जाया महं सुद्धभावा
तओ निग्गओ पुव्वसंकेयचत्तो^२

तडत्तीह तुट्टे महासोहजाले ।
फुडं जाणिअणं पुणो तीण वुत्तं ।
कुलायार-भत्तारधम्मं न चुक्का ।
मए द्विण्णयं धम्मकज्जम्मि सव्वं ।
वयोवासियं सोसियं पेक्खु देहं ।
पर्यपेइ संलद्धसिक्खापमाणो ।
पडंतस्स संसारनीरम्मि नावा ।
खणद्धे^३ मुणिदाण पासम्मि पत्तो ।

५

घत्ता—गुरुचरणइ^४ वंदेवि अप्पउ निंदेवि सयलु वि कज्जु^५ निवेइयउ ।
पहु अज्जु म वंकाहि^६ पुणु दिक्खंकाहि^७ संसारहो उव्वेइयउ ॥१०॥ १०

[२०]

संकिट्टभाव सव्व वि चइया
अट्ठमसइ निरंजणु परमपद
रंभइ मणवयणकायपसरु

सविसेसद्विक्ख पुणारवि लइया ।
वे मेल्लइ^१ रायदोस अवरु ।
नासइ इदियविसया अवरु^२

[१९]

तव (नागवसूके) उस संबोधनात्मक वार्तालाप करते-करते ही उसका मोहजाल तड़से टूट गया; और उसका मन निःशाल्य भाव (शुद्धात्मपरिणाम) में लग गया, ऐसा स्फुरूपसे जानकर उस नागवसूते पुनः कहा—हे नाथ ! मैं ही तुम्हारी परित्यक्ता गृहिणी हूँ । मैं पतिधर्मरूपी अपने कुलाचारसे च्युत नहीं हुई । घरमें तुम्हारा जो द्रव्य रखा था, वह सब मैंने धर्मकार्यमें दे दिया, और यह सुंदर चैत्यघर बनवा दिया । मेरा यह व्रतोपवाससे शोषित शरीर देखिए ! यह मुनकर चित्तमें लज्जित होता हुआ प्रामाणिक धर्मशिक्षा पाकर वह बोला—हे जाया ! मैं जो संसार सागरमें डूबा जा रहा था; तुम्हारी वाणीसे मेरी नावकी चेष्टा (गति) अब निर्दोष हो गयी है । और फिर पूर्व-संकेत अर्थात् विषय-सेवाके संकल्पको छोड़कर वह वहाँसे निकला व अतिशोघ्न मुनीन्द्रोके पास जा पहुँचा । गुरुचरणोंकी वंदना करके व आत्मनिंदा करके संपूर्ण घटनाका निवेदन किया, (और प्रार्थना की) हे प्रभु ! आज मेरी प्रार्थनाको मत ठुकराइए, मुझे पुनः दीक्षा दीजिए, मैं संसारसे उद्विग्न हो गया हूँ ॥ १९ ॥

[२०]

उसने सभी सविलभ्राभावोंको त्याग दिया और पुनः विज्ञेय-दीक्षा ग्रहण की । वह निरंजन परमात्माका अभ्यास (ध्यान) करने लगा, और राग व द्वेष इन दोनोंका त्याग कर दिया । मन, वचन, कायके प्रसारको अवरुद्ध कर लिया, और इंद्रियविषयों (अर्थात् भोगवासना) का नाश कर

[१९] १ क घ ङ णिस्सल्ल^१ । २ क वत्तो । ३ क खणद्धं, घ ण्दि । ४ क घ ङ चरणइ ।
५ ख कज्ज । ६ ख ग वंकाहि । ७ क ख ग कंकाहि ।

[२०] १ क ङ मेलइ, ख मिल्लइ । २ क ङ विसइ; घ वसरु ।

अग्नि-मित्तु ^३ सरिसु समकणयतिगुं ।	सुहृदुहसमु समजीवियमरणु ।	
निंदापसंसमसु वयविमलु	भुंजेड अजिन्सु व करि कवलु ।	५
अंधो व्व रुवदंसणु ^४ कुणडं	वहिरो व्व निरोहु सदुहु सुणडं ।	
पाहणुं व परसु वेयडं ^५ विसंसु	वावीसपरीसहसहणसुमु ।	
भवयत्तसहिउ इउ ^६ तउ करडं ^७	पुव्वासियकम्मइं निज्जरइं ^८ ।	
अत्रसाणे विमलगिरि आसरिवि ^९	अणसणे पंडियमरणे मरिवि ^{१०} ।	
विणिण वि लपणण सग्गे तइए	सायरडं ^{११} सत्त आउसमइए ।	१०

वृत्ता—टिउवच्छरलक्खिय नयणकडक्खिय कडयमउडकेऊरधर ।

हियडक्खियसोणहिं^{१०} रमहिं^{११} विमाणहिं^{१२} अतुलवीर^{१३} विणिण वि अमर ॥२०॥

इय जंबूसामिचरिण सिंगारवीरे महाकव्ये महाकइदेवयत्तसुयवीरविरइए भवणवस्स
सणकुमारमग्ग-गमणं नाम^{१४} दुइज्जो मंघी समत्तो^{१५} ॥संधि-२॥

२०

दिया । उसके लिए व शत्रु व मित्र एक समान हो गये और स्वर्ण व तृण वरावर ; सुख-दुःख, जीवन-मरण सब एक-सा; तथा निंदा व प्रशंसा सबमे समान बुद्धि । वह शुद्ध ब्रतवाला हुआ । वह हाथमे श्रास लेकर जिह्वारहितके समान भोजन करता, अंधेके समान रूप-दर्शन करता, तथा वहिरेके समान निरोहभावसे शब्द सुनता । कठोर स्पर्शको वह पत्यरके समान वेदन करने और क्षुधा-तृपादि वाईस परीपहोको सहन करनेमे समर्थ हुआ । इसप्रकार भवदत्तके साथ तप करते हुए उसने पूर्वोपाजित कर्मोंकी निर्जरा की । जीवनके अन्तिम समयमे विमलगिरिका आश्रय लेकर अनशनपूर्वक पंडितमरण करके दोनों ही भाई सात सागर आयुवाले तृतीय स्वर्गमे उत्पन्न हुए । वहाँ दिव्य अप्सराओके नयनकटाक्षो-द्वारा लक्षित, कंकण, मुकुट, व केयूरोके धारक, हृदयेच्छित आकार धारण करते हुए, वे दोनों अतुल वीर्यवान देव स्वर्गविमानोमे रमण करने लगे ॥ २० ॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर कवि द्वारा विरचित जंबूस्वामीचरित नामक इस शृंगार-वीर-
रसात्मक महाकाव्यमे भवदेवका मनलकुमार स्वर्गगमन नामक द्वितीय संधि समाप्त ॥ २ ॥

३ डंमित्त । ४ घ तणु । ५ क एव । ६ ड कुणडं । ७ क ड सुणड । ८ क ड पाहाणु, ख ग पाहाणु । ९ क ख ग ड वेयड । १० क वीवीस । ११ ख ग इय । १२ ख ग इ । १३ क ख ग इ । १४ क व ड रवी । १५ क ड रवी । १६ ख ग रइ । १७ क ड इच्छिय । १८ क रमहि । १९ क वीच । २० क दुइज्जो इमा संघी; ख ग दुइज्जो परिच्छेउ सम्मत्तो, घ ड दुइज्जो इमा संघी ।

[१]

वालकीलासु वि वीरवयणपसरंतकन्वपोऊसं ।
कण्णपुडएहि^१ पिज्जइ जणेहि^२ रसमउलियच्छेहि ॥१॥
भरहालंकारसलक्खणाई लक्खेपयाइ विरयंती ।
वीरस्स वयणरंगे सरस्सइ जयउ नच्चंती ॥२॥
सुविसालए तहि^३ अमरालए^४ विविहपयार विलासु किउ ।
अच्छंतहि^५ सुहुं भुंजंतहि आउसु सायरसत्त निउ ॥३॥

दुवई—यहु मण्णंति सग्गे देवाउसु जे नर-किविणमाणसा ।
सन्नु वि कालदव्वु तहुं तिणसमुं जे संपन्ननाणसा ।

अह मंदराउ जणनयणपिउ	पुव्वासगु पुव्वविदेहु थिउ ।
ओछपिणी ^६ अवसपिणि न तहि	लोयाहिव ^७ उपज्जंति जहि ।
नाहेय ^८ वाहुवलि-भरह-जया	अरहंत-सिद्ध-चक्खवइ सया ।
धणुसयइ ^९ पंच-उच्छेहतणु	पुव्वाण कोडि जीवेइ जणु ।
तत्थत्थि असुणियविच्चक्खभउ	नामेण पुक्खलावइ विसउ ।

[१]

वालकीलाओम भी वीर (कवि) के मुखसे प्रसूत होते हुए काव्य-पीयूषको लोगोके द्वारा आनंदसे निमीलित नेत्र होकर कणपुटोसे पिया जाता है ॥ १ ॥ भरतके अलंकार और काव्यलक्षणोसे युक्त लक्ष्य पदो अर्थात् काव्यपदोकी रचना करती हुई, वीर कविके मुखरूपी रगमचपर नृत्य करती हुई सरस्वती जयवत होवे ॥ २ ॥

उस विशाल स्वर्गमें दोनो देवोने विविधप्रकारका विलास किया । इसप्रकार वहाँ रहकर सुख भोगते हुए सात सागरकी आयु बीत गयी ॥ ३ ॥ जो स्वर्गमें देवायुको बहुत मानते हैं, वे लोग कृपण-मानस अर्थात् अल्पबुद्धि है ॥ परन्तु जो ज्ञानलक्ष्मीसम्पन्न हैं, उनके लिए तो समस्त कालद्रव्य (काल परिमाण) भी एक दिनके समान है ॥ ५ ॥

मंदराचलसे पूर्व दिशामें लोगोके नेत्रोको प्यारा पूर्वविदेह स्थित है । वहाँ उत्सपिणी-अवसपिणी रूपसे कालचक्रके आरे नही बदलते, तथा वहाँ लोकके नाथ तोर्यंकर (सदैव) उत्पन्न होते रहते हैं । वहाँ नामेय जिन (ऋषभनाथ), वाहुबलि, तथा भरत और भेषेस्वर ये अरहंत सिद्ध एवं चक्रवर्ती सदैव विद्यमान रहते हैं । वहाँ शरीरकी ऊंचाई पाँच सौ धनुष प्रमाण होती है । ओर जोव पूर्व-कोटि वर्षों तक जीता है । वहाँ शत्रुके भयको न जाननेवाला पुष्कलावती

[१] १ क घ ङ पेओसं । २ ख एहि; घ कन्नं । ३ घ ङई । ४ तिहि । ५ ख ग घ सुहुं ।
६ क घ ङ गउ । ७ क खं घ ङ तहु । ८ क घ ङ दिणं । ९ क ख ग ङ सपणणं । १० ख ग ओसं ।
११ क ख ग ङ हिय । १२ क णणयं । १३ ख ग संयइ ।

- जो जलनिहि व्व रयणुद्धरणु
 १५ धणनंदणवणसंछइयदिसु
 कणकणिरदसणसीयलसलिलु
 विलसंतपवणकंपियसरलु
 तरलच्छिच्छेत्तठियहलियवहु
 पहसंतरमियगाभीणजणु
 २० छत्ता—मणिसारहि तिहि^{१९} पायारहि^{१९} परिहामंडलि^{२०} जलपयारि ।
 बहुभोयहि^{१९} मंडियल्लोयहि^{१९} अत्थि पुंडरि^{२०} किणि^{२०} नयरि ॥१॥

[२]

- दुवई—बारहजोयणाई वीहत्ते नवजोयण सुविथरा ।
 सग्गु वि वीसरंति सा पेक्खिवि मोहियमाणसामरा ॥१॥
 नयरिमणोरमभुअणपइवहो^१ तिलयभूय जा जंबूद्वीवहो ।
 मंडालंकियाई^१ उज्जाणई^१ वाहिरि अचमंतरि निवथाणई^१ ।
 ५ जहिं वाहारे वाडीउ सतालउ अचमंतरि पुणु नञ्चणतालउ ।
 सरपालिउ विडंगनहवणियउ^३ वाहिरि अचमंतरि पुणु गणियउ^३ ।

नामका देश है, जो जलनिधिके समान रत्नोको धारण करनेवाला है, व जहाँ धरोके शिखरोसे टकराकर बादल झरने लगते है। धने नंदनवनसे वहाँकी दिशाएँ आच्छादित है तथा शस्यके कंपनशोल तीक्ष्ण-अग्रभागोंसे उसकी समृद्धि दृश्यमान है। जहाँ दातोंको कपायमान करनेवाला शीतल पवन बहुता है और कोकिलाके सुमधुर स्वरसे सब कंदर-विवर भर जाते है, क्रोडापूर्वक बहुता हुआ वायु सरल नामक वृक्षोको कपित कर देता है, चचल हरिणिया सीधो छलाग लगाती है, और जहाँ खेतोमे खड़ी हुई चचल आखोवालो हालि (कृषक) वधुओको देखकर अत्यन्त विस्मित हुए पथिकोसे मार्ग अवरोध हो जाता है, तथा जहाँ शमीणजन अत्यन्त प्रमादपूर्वक रमण करते है, और जो नागरिकोके जोडोको (वहाँ रहनेको) अभिलाषा उत्पन्न करता है, उस देशमे मणिजटित-प्राकार व जलप्रचारसे युक्त परिखामडल सहित तथा अनेकप्रकारके भोग भोगनेवाले लोगोसे मंडित पुंडरिक्किणी तामकी नगरी है ॥ १ ॥

[२]

बारह योजन लंबो और नव योजन विस्तृत उस नगरीको देखकर मोहित हुए मनुष्य व देव स्वर्गको भी भूल जाते है। वह मनोरम नगरी भुवनके प्रदीप रूप जंबूद्वीपकी तिलकभूत है। उस नगरीके बाहर अनेक वृक्षगुल्मो व लतामंडपोंसे अलंकृत उद्यान है, व भीतर सर्वत्र नाना प्रासादो (मड) से अलंकृत राजकुल है। वहाँ बाहर तालाबोंसहित वाटिकाएँ है, व भीतर ताल-मजीर इत्यादि वाद्यवादनसे युक्त नृत्यशालाएँ। बाहर विडग वृक्षोसे ललित सरपाली अर्थात् सरोवर-परितयाँ है, व भीतर विदग्ध-जनोके नखोसे व्रणित स्मरपालित (कामयक्त)

१४ घ वरं । १५ क ड षियत, घ फलत । १६ घ करिणी । १७ क घ ड व द्विभमं । १८ ख ग न तयरिं । १९ क ल तहिं । २० क क घ ड मडल । २१ ख ग षिणि ।

[२] १ घ भुवणं । २ घ महुं । ३ ख ग यड ।

मुणिवरमंडियकीलामहिहर
वाविउ सुपओहरउ सुरमणिउ^५
सहलसुपत्तइ मंडवथाणइ^६
वाहिरि वाहियालि हरिसंगय^७
वाहिरि गयउलाइ रयणरुयइ^८

वाहिरि अउभंतरि चेईहर ।
वाहिरि अउभंतरि वररमणिउ^५ ।
वाहिरि अउभंतरि जणदाणइ^६ ।
अउभंतरि वसंति नायरपर्य^७ ।
अउभंतरि सहंति डिभरुयइ^८ ।

१०

घत्ता—गुणमंदिरु नयणाणंदिरु वज्जयंतु तहं रज्जधरु ।
रणसूरहो^९ परवलु^{१०} दूरहो जसु नामेण वि वहइ डरु ॥२॥

[३]

दुवई—तहो महएवि विमलकमलाणण कमलदलच्छिनेत्तिया ।
कमलुज्जलसरीर कमला इव नाम जसोहणा पिया ॥१॥

भवयत्तु^१ जेट्टु जो अमरु हुआओ
सायरगंभीरु^२ चंदवयणु
परिकलियसयलविज्जाकुसलु
अह तहं जि जणमणाणंदयरि

तहं^२ जाउ पुत्तु सो सग्गचुओ ।
सायरचंदु जि वाहरइ जणु ।
जिणचर गजुयलपंकयभसलु ।
नामेण वीयसोयानयरि ।

५

गणिकाएँ है। बाहर मुनिवरोसे शोभायमान क्रीडापर्वत हैं और भीतर चैत्यगृह। बाहर स्वच्छ जलवाली अत्यन्त रमणीय वापिया है, व भीतर मनोहर पयोधरों (स्तनो) वाली अति-रमणशील सुंदर रमणिया। बाहर (उद्यानोमें) सुंदर फलों व पत्रोसे युक्त मंडपस्थान हैं, तथा भीतर मनोवाञ्छित फल देनेवाला सुपात्र दान किया जाता है। बाहर अश्वों सहित अश्व-क्रीडास्थल है, और भीतर नागरिक प्रजा रहती है। बाहर गजकुल अपने दातोकी दीप्तिसे, व भीतर बालक अपने रत्नाभरणोकी कातिसे शोभायमान है। वहाँ गुणोका निवास तथा नयनों-को आनंद देनेवाला वज्रदंत नामका राजा था, जिस रणशूरके नामसे ही शत्रुबल दूरसे ही भयभीत हो जाता था ॥ २ ॥

[३]

उसकी यशोधना नामकी महादेवी स्वच्छकमल जैसे मुखवाली, कमलदलके समान नेत्रोवाली, कमलसदृश उज्ज्वल शरीरवाली और स्वयं कमला (लक्ष्मी) के समान थी, जो उसे बहुत प्रिय थी। ज्येष्ठ भाई भवदत्त जो देव हुआ था, वह स्वर्गसे च्युत होकर उसका पुत्र हुआ। वह सागर जैसा गभीर और चंद्रमाके समान मुखवाला था, इसलिए लोग उसे सागरचंद्र कहने लगे। सन्न विद्याओको सीखकर वह उनमें कुबल हो गया था और जिन भगवान्के पदयुगलरूपी कमलोका भ्रमर (भवत्) था। और वहीपर लोगोके मनको आनंद देनेवाली वीताशोक नामकी

४ कंणिओ। ५ कंसगण। ६ कडंजण। ७ कख ग ड रयणुं, घंरयइं। ८. घंरयइं। ९. ग रज्जुं। १० ख ग रणुं। ११ क ख ग लंवल।

[३] १. क भयं। २. क ख ग ल तहं, घ तहं। ३ क सायइं। ४ ख ग जे। ५. ख ग लुयलं।

	जहिं ^६ सूरकंति संभूयै-हवि	वावरइ महाणसि पयणछवि ।
	पिज्जइ सुसाउ सीयलु विमलु	मणिचंदकतिपञ्जरियजलु ।
	जहिं ^७ मरगयभित्तिप्र सामलिय	गोरंगी नाहें नउ कलियं ।
१०	जहिं ^८ इंदनीलमहिं ^९ मणिं ^{१०} घरइ	चिरु छलिव न दूव-वि मिगु, चरइ ।
	तहिं ^{११} अत्थि अत्थिजणकप्पदुमु	पउमालंकरिउ महापउमु ।
	नबनिहिरयणाहिउ चक्कधरु	छक्खंडवसुंधरि धरियकरु ।
	बत्तीससहसमणिमउडधरा	सेवंति नराहिवआणकरा ^{१२} ।
	छण्णवइसहसअतेउरहो ^{१३}	कडिहारदोरकुंडलधरहो ।
१५	वणमाल तित्थु ^{१४} महएवि ठिय	सुहकंतिजित्तहरिणंकसिय ।
	चक्कवइविहूइह ^{१५} सवग्गुणु	ज नत्थि पुत्तु तं डहइ मंगु ।

घत्ता—जिणहवणहिं^{१४} वदियसवणहिं पुण्णपहावे^{१५} सरगचुओ ।
 वणमालह^{१०} नयणविसालह^{१६} भवएवामरु जाउ सुओ ॥३॥

नगरी थी, जहाँपर कि महानस (रसोई) में हविष (खाद्यसामग्री) को एकत्र करके सूर्यकात मणियोको पाकाग्निके काममें लाया जाता था, अथवा जहाँ सूर्यकातमणिसे उत्पन्न अग्निसे महानसमें भोजन पकाया जाता था । जहाँ चद्रकातमणियोसे द्वारा हुआ सुस्वादु, शीतल और विमल-जल पिया जाता था, जहाँ मरकतमय भित्तियोकी कृष्णछाया पडनेसे, अपनी गौरागी प्रियाओको भी श्यामवर्ण हो जानेसे उनके स्वामी पहचान नहीं पाते थे, जहाँ इद्रनीलमणियोसे निर्मित व (हरित) मणियोसे जडी हुई भूमिसे कभी पहले ठगा हुआ मृग अब दूबको भी (हरित मणि समझकर) नहीं चरता, वहाँ याचकजनोके लिए कल्पद्रुमके समान, व (राज्य) लक्ष्मीसे अलंकृत महापद्म नामका राजा था । वह मंत्री आदि नौ निधियोका रत्नाकर तथा षट्खंड वसुंधरासे कर लेनेवाला चक्रवर्ती था । मणिमय मुकुटोके धारक वत्तीस सहस्र आज्ञापालक राजा उसकी सेवा करते थे । कटिहार, कटिसूत्र एव (कर्ण) कुंडलोको धारण करनेवाली उसकी छयानवे हजार रानिया थी, जिनमें वनमाला महादेवी थी, जो अपनी मुखकातिसे हरिणाक (चद्रमा) की शोभाको जोतनेवाली थी । इस प्रकार चक्रवर्तीकी विभूतिके सभी गुण (सर्व साधन) उसके पास थे, एक पुत्र ही नहीं था, यह बात सदैव हृदयको दु खसे जलाती रहती थी । जिन भगवान्का न्हवन और श्रमणोकी वदनाके पुण्यप्रभावसे भवदेव देवता-का जीव विशालनेत्रोवाली वनमालाका पुत्र हुआ ॥ ३ ॥

६. ख ग जहि । ७. ख ग उ । ८. ख ग मरगइ । ९. क घ ङ मणि । १०. क घ उ महि । ११. क ष घरा, व दरा । १२. घ छन्नवइ । १३. ते । १४. क ट थहि । १५. घ ङ्हवणहि । १६. घ पुत्र । १७. क घ ल्हि, ख ग ङ ल्हि । १८. ङ ल्हि ।

[४]

दुवई—सुहनकखत्तजो^१ तिहिवार^२ पुण्णि^३मडंदवयण^४ ।वरवत्तीसदेहलकखधरु कुवलयदीहनयण^५ ।

जन्मदिवसस्मि पुत्तस्स बहुपरियणो ^६	चक्रवट्टी-कयाणंदवद्धावणो ।	
नियच्चि पुत्ताणणं गहिरसरवाइणा	सिचकृमाराहिहाणं कथं राइणा ।	
वालुं वडडंतु ^७ सो कहि मि नड सुचप	हत्थहत्थाउं रायाणं न पहुचप ।	५
अट्टवरिसो चि सिमुभावपरिचत्तओ	सयलविज्जाकलाथाणु संयत्तओ ।	
चक्किणा कोउहल्लेण संथाविओ	रायकण्णाणं सयपंचपरिणाविओ ।	
मंति ^८ -सामंतकुमरेहि ^९ परिवारिओ	देहि आपसु जीव ^{१०} च्चि जयकारिओ ।	
रायधरवाहिरं जेम नड निज्जए	अंगरकखाण कोडाहिं ^{११} रञ्जिज्जए ।	
हरिणनयणीहिं ^{१२} सरिसं सुहं माणए	जामिणी नेव ^{१३} दिवसं गथं जाणए ।	१०

यत्ता—ता एत्तहं^{१४} अच्छड जित्तहं^{१५} सायरचंदु विसुद्धगुणि ।

विहरंनड वमदयवंतड पत्तु पुंडरिगिणिहिं सुणि ॥४॥

[४]

शुभ नक्षत्र, योग, तिथि और वारको पूर्णचंद्रमाके समान मुखवाले, वत्तीस उत्तम अगलक्षणके धारक तथा कुवलयके समान दीर्घ नेत्रवाले उस पुत्रके जन्मदिन पर बहुत-से परिजनाने चक्रवर्तीको आनंद-वधाई दी । पुत्रके मुखको देखकर गंभीर स्वरसे बोलनेवाले उस राजाने उसका नाम शिवकुमार रख दिया । बड़ा होता हुआ वह बालक कही भी (पृथ्वीपर) छोड़ा नहीं जाता था, तथा सब राजाओके हाथोंसे हाथों तक भी नहीं पहुँच पाता था । आठ वर्षका होते ही वह शिबुभावको छोड़कर सकल विद्याओं व कलाओका धाम बन गया । चक्रवर्तीने कौतूहल पूर्वक उसे युवराज पदपर संस्थापित (अभिषिक्त) कर दिया और पांच सौ राजकन्याओंके साथ परिणय करा दिया । वह, आदेश दीजिए, जीवंत होइए आदि वचनपूर्वक जयजयकार करनेवाले मंत्री व सामंतकुमारोंसे घिरा रहता था । जिसप्रकार उसे राजप्रासादसे बाहर न ले जाया जा सके, इसप्रकार अंगरक्षकोंकी बहुत बड़ी सेना द्वारा उसकी रक्षा की जाती थी । वह मृगनयनी रानियोंके साथ मुख भोगता था, और रात्रि व दिन कव गये यह नहीं जान पाता था । तबतक इधर जहाँ वह विशुद्धगुणोका धारक सागरचंद्र रहता था, वहाँ, उस पुंडरि-किणी नगरीमे इन्द्रियोंका दमन करनेवाले दयावान मुनि विहार करते हुए पधारे ॥ ४ ॥

[४] १. ख ग तिहिं । २. क पुण्णमं । ३. प्रतियोमे णयणव । ४. क थणे । ५. क डाल । ६. क ड वट्टंतु । ७. क घ ड हत्थाण । ८. क घ ड रायाड । ९. ख ग व ड कन्नाण । १०. ख मंत । ११. रेहिं । १२. क जीवि । १३. ख ग उ; घ ए । १४. ख ग णेहिं । १५. क ड पेव, ख ग पेव । १६. क तावित्तहिं; घ तावित्तहिं । १७. क घ ड हिं ।

[५]

दुवई—मई-सुइ-अवहि-विमलमणपउजयनाणं चउक्कसामिउं ।

नाम सुवंधुतिलउं उववणे ठिउ चारणरिद्धिगामिउ ॥ १ ॥

	रिसिचलणवंदणुच्छाहमणुं	चल्लंतु नियच्छविं पउरयणु ।
	गउ सायरचंदु कुमारु तहि	उज्जाणे परमसुणि थकु जहिं ।
५	भत्तिप्र पणवेवि परंपरए	आउच्छइ निय जम्मंतरए ।
	मुणि भणइ भरहे सुविसुद्धमणां	दियनंदण तुम्हईं वे विं जणा ।
	भवयत्तु जेहु तुहुं ^१ पवरभुओ	लहुघारउ तहिं भवएउ हुओ ।
	तवचरणुं ^२ करिवि आउसि खइए ^३	उपपण मरेवि सगे तइए ।
	तहिं चयवि जाउ सम्भत्तरु	तुहुं वज्जयंतसुउ निवकुमारु ।
१०	तुहुं ^४ अणुउ आसि जो सो वि तुहुं ^५	चक्कवइमहापउमंगरुहु ।
	अहिहारणं सिवकुमारु अभउ	इय कहिउ भवंतरं ^६ सिगघु तउ ।

वत्ता—आयणिविं^१ भवगइ मणिविं^२ विज्जुलचल आसंक्रियउ ।

नयजुत्तहिं सहुं^३ राउत्तहिं उयहिचंदुं^४ दिक्खंक्रियउ ॥५॥

[५]

मति, श्रुत, अवधि और विमल-मनःपर्यय इन चार ज्ञानोंके स्वामी सुवंधुतिलक नामके चारणरिद्धिधारी मुनि उपवनमें ठहरे। ऋषिचरणोंकी वंदनाका उत्साह मनमें लिये हुए पौरजनोंको चलते हुए देखकर कुमार सागरचंद्र भी वहाँ गया जहाँ उद्यानमें वे परममुनि ठहरे थे। परंपरानुसार भक्तिपूर्वक प्रणाम करके अपने जन्मान्तरोंको पूछा। मुनिने कहा—तुम दोनों भारतखंडमें पवित्र मनवाले ब्राह्मणपुत्र थे। तू जेठा भाई भवदत्त था और तेरा छोटा भाई उत्तम भुजाओंवाला भवदेव था। तपश्चरण करके आयुष्य क्षय होनेपर मरकर तीसरे स्वर्गमें उत्पन्न हुए। वहाँसे च्युत होकर तुम वज्रदंतके पुत्र, सम्यक्त्वधारी राजकुमार हुए हो, और वह जो तुम्हारा अनुज था, वह महात्मा महापद्म-चक्रवर्तीका शिवकुमार नामका ज्ञानवान् पुत्र हुआ है। इस प्रकार सक्षेपमें तुम्हारा भवांतर कह दिया गया। यह सुनकर व भवगति अर्थात् भवस्थितिको विद्युत्के समान चंचल मानकर जन्म-मरणसे भयभीत वह सागरचंद्र नीति-सदाचार युक्त राजपुत्रोंके साथ दीक्षित हो गया ॥ ५ ॥

[५] १ क ड मई । २ प्रतिगोमें णाणं । ३ क ड सामिउं । ४ क ड सुवंधुं, घ सुवंसतिलय । ५ क घ ड रिसिचरणं । ६ क घ ड क्खिवि । ७ क ड पमणइ, घ मणइ । ८ क ड विसुद्धिं । ९ क ख ग डं इ । १० ख ग वेण्णे । ११ घ तुहुं । १२ क णं । १३ ख ग आउसे खइ । १४ ग तुहुं । १५ क ख ग तहु, ड वुहो । १६ क घ ड कहत्तरं । १७ घ विवि । १८ ख ग सहु । १९ क घ ड उवहिं ।

[६]

दुवई—तवसिरिभूसिथंगु गुणपरिमिउं रायपमायताडणो ।

खमदमसोलिनियसययत्रिगहु इंदियदृप्पमाडणो ॥१॥

वारहविहु तवचरणुं चरंतहो

उवरि उवरि गुणथाणु सरंतहो ।

सायचंडु मुणिहिं संपुणउं

चारणाइरिद्धिउं उप्पणउं ।

अह कयावि सासयसुहरत्तउ

वीयसोयनयरिहिं संपत्तउ । ५

मज्झणहो चरियाउ पईसइ

विभियचित्तिहिं लोयहिं दीसइ ।

पग्गि व मुणिवरवेसकयायरु

अवस तवइ तउ चालादवायरु ।

अण्णहो कहो पयाउ इह निम्मलु

देहदित्तीपिगीकयनहयलु ।

राउलनियडघरेण वणीसे

ठाहु भणंतं पणवियसीसे ।

विहिणा पारावियउ दिथंवरु

पूरइ रयणविद्धि सिद्धिहिं घरु । १०

तं अच्छरिउ नियवि सुविहोयहिं

उट्टिव कोलाहलु किउ लोयहिं

तं कलयलु सुणंतुं मणि भिण्णउं

सिवकुमारु धवलहरि चड्डिणउं ।

तो अण्णेके वइयरु सीसइ

सेट्टिघराउ जंतुं मुणि दीसइ ।

घत्ता—उहुं मुणिवरुं मइं दिद्धु चिरु इउं कुमरं विभव धरिउ ।

मुणिदंसणि दुक्कियभंसणि नियजम्मंतरु संभरिउ ॥६॥ १५

[६]

तपःश्रीसे भूपित अंग, गुणोसे वेष्टित, राग व (पंद्रह प्रकारके) प्रमादका नाश करनेवाले, क्षम-दमशील, नियम और ब्रतोंरूपी गरीरवाले, तथा इन्द्रियोंके दर्पको गलित करनेवाले उन सागरचंद्र मुनिको वारह प्रकारका तपश्चरण करते हुए, तथा ऊपर-ऊपरके गुणस्थानोंका अनुसरण (आरोहण) करते हुए चारण (ऋद्धि) आदि सभी ऋद्धियां उत्पन्न हो गयीं । पश्चात् किसी समय स्वाश्रय सुख (अर्थात् आत्म-सुख) में लीन रहते हुए वीताशोक नगरीमें पधारे । मध्याह्नमें उन्होंने चर्चके लिए नगरमें प्रवेश किया, और विस्मितचित्त लोगोंने उन्हें ऐसे देखा मानो पहलेसे ही मुनिके उत्तम वेशके प्रति आदरयुक्त होकर वालदवाकर ही तप करता हो ; (अन्यथा) अन्य किसका ऐसा निर्मल प्रताप हो सकता है, जिसने अपनी दीप्तसे नभस्तलको पिगलवर्ण कर दिया हो ? राजकुलके निकट ही एक घरसे एक वणिकपतिने शिरसा प्रणाम करके, ठहरिए ! ऐसा निवेदन करते हुए, विधिपूर्वक उन दिगंबरको पारणा करायी । इस आहारदान (के प्रभाव) से रत्नोंकी वपनि श्रेष्ठीके घरको पूर दिया । उस आश्चर्यको देखकर वैभवसंपन्न लोगोंके द्वारा किया हुआ बड़ा भारी कोलाहल उठा । उस कलकलको सुनकर, मनमें आश्चर्यचकित होकर शिवकुमार अपने प्रासादपर चढ़ गया । तब किसी एकने (राजकुमार से) वृत्तान्त कहा, और श्रेष्ठीके घरसे मुनि जाते हुए दिखाई दिये । 'इन मुनिवरको मैंने चिरकाल पूर्व देखा है', इसप्रकार कुमार मनमें

[६] १ क ख चरण । २. क व ड ण्णउं । ३. क ड चारणाइं । ४. क ड ण्णउं । ५. व रिहिं । ६ ख ग ण्णहो; घ व्हो । ७. ग वित्तहिं । ८. क ड अण्णहिं; घ अण्णहिं । ९ प्रतियोगे 'कहिं' । १०. ख इ । ११. क घ ण्हिं, ख ग सेट्टिहिं । १२. ख ग सु । १३. व न्णउ । १४. व अन्निके । १५ क ड १६. घ इंतु । १७ क घ ड इह । १८. ख विरु, घ विरु । १९. ख ग मइ । २०. क ड एम, घ इमु । २१. क ड रि । २२. प्रतियोगे 'फंसणि' । २३ घ रिउं ।

[७]

दुवई—आयहो लहुव आसि हर्ष^१ बंधच एहु महंतु थाविच ।एण वि हुंतएण सुपसाए^२ मई सन्मत्तु पाविच ॥१॥

तउ करिवि सुरालई वे वि हुया

सुमरंतु भवंतरु^३ मुच्छगओधाहाविउ बाल्लेउरिहि^४

रोवंति मंति-सामंतसुया

चमराणिल-चंदणसिचियउ^५

जम्भंतरसुमरणु कहिउ तहो

निठिवणु^६ मित्तु हउ इह भवहोचक्केसरु महु वयण^७ भणहि^८गउ रायत्थाणे^९ पइसरवि^{१०}तउ तणउ^{११} देव पइ^{१२} विणवइ^{१३}

ईदियफडालु चउगइवयणु

रइदाहु^{१४} विसयजीहातरुपणु एत्थ^{१५} जाय फुडु तत्थ चुया ।

हा हा रउ उट्टिउ गरुउ तओ ।

भत्तारदुक्खसोयाउरिहि^{१६} ।हियउल्लउ फुट्टिवि^{१७} कि न मुया ।कह-कह व दुक्खउम्मुच्छियउ^{१८} ।

दिढधम्महो मंतिउणुभवहो ।

संदरसिय^{१९}-जरसरणुभवहो ।तउ लंतहो महु म विग्घु करहि^{२०} ।पहु पणविचि जंपइ वइसरवि^{२१} ।

भवकालसपु जगु परिहवइ ।

मिच्छत्तमोहविसरिसनयणु ।

उठभरियसुहासुहफलगरु ।

विस्मित हुआ, तथा मुनिदर्शनके कारण (पूर्वकृत) अशुभकर्मके क्षय होनेसे उसने अपने जन्मान्तर (अर्थात् पूर्वजन्म) को स्मरण किया ॥६॥

[७]

मै इसका छोटा भाई था, यह मेरा बड़ा। इसीके होनेवाले सुप्रसादसे मैने सम्यक्त्व पाया था। तप करके हम दोनों स्वर्गमें देव हुए, फिर वहाँसे च्युत होकर यहाँ उत्पन्न हुए, इसप्रकार भवातरको स्मरण करते ही वह मूर्च्छित हो गया। तब बड़ा भारी हाहाकार मचा। पतिके दुःखसे शोकातुर होकर कुमारका अन्तःपुर धाड़ देने लगा। मंत्रियो व सामंतोकी पुत्रियाँ इस प्रकार रोने लगी—हाय ! हम लोग हृदय फटकर मर क्यों नहीं गयी, चंवरकी वायु और चंदनसे सीचनेपर वह किसी किसी तरह कष्टपूर्वक उन्मूर्छित हुआ। उसने मंत्रीपुत्र दूढधर्मको अपना जन्मान्तर स्मरण होना बतलाया (और कहा)— 'हे मित्र ! मै जरा-मरण युक्त इस संसारसे उदासीन हो गया हूँ, चक्रेश्वरको मेरे वचनसे कहना कि तप लेनेमें मुझे विघ्न न करे।' वह गया, राजसभामें प्रविष्ट होकर प्रभुको प्रणाम करके बैठा, और कहने लगा—हे देव ! आपका पुत्र आपसे विज्ञापना करता है कि यह भव (अर्थात् पुनः पुनः जन्ममरण) रूपी काला सांप सारे लोकको पराभूत करता है; जो कि ईन्द्रियोरूपी फणा, चतुर्गतिरूपी मुख, मिथ्यात्व-भोहरूपी विसदृशनेत्र, रतिरूपी दाढ, तथा विषयभोगरूपी चंचल जिह्वासे युक्त है, और शुभाशुभ कर्मफलरूपी गरलसे भरा हुआ है। उसका क्षय करनेवाला तपरूपी मंत्राक्षर (मंत्र) जिन भगवान्तरूपी गरुड-

[७] १. ख ग ड हउ । २. क घ ङ सप । ३. ख ग लय । ४. क एत्थु । ५. क सम । ६. क घ ङ तर । ७. उरेण; ख ग उरेहि । ८. व फुल्लिवि । ९. क ङ किण्ण, ख ग घ किन्न । १०. क यउ । ११. ख ओमु । १२. प्रतियोमं पिठिवि । १३. क ङ हउ । १४. ङ घ ङ संदरि । १५. क ग ङे । १६. क ङ ही । १७. क घ ङ जणही । १८. घ ङ त्याणु । १९. क घ ङ पई । २०. क घ ट सरवी । २१. क घ ङ उं । २२. क ख ग पइ । २३. घ विन्न । २४. ख ग विसई ।

वत्ता—तहो खयकरु तवमंतकखरु जिणवरगरुडसमुद्धरिउ ।
मई लेवउ अणुचेट्टेवउ वारहचिहु बहुगुणभरिउ ॥७॥

१४

[८]

दुवई—तं^१ तवगहणसदुं^२ आयण्णविं^३ पुत्तहो पुत्तवच्छलो ।
विहडफडु नरिंदु गउ तित्तिहिं^४ वडिडयैदुहमहानलो ॥१॥

रसणखलंतु कणिरपयनेउरु	वणमालालंकिउ अंतेउरु ।
सेयजलोल्लिय नयणाणदिरु	पत्तु तुरंतु कुमारहो मंदिरु ।
आहासइ चक्केसरु तणुरुहं	कवणु कालु पावज्जहं ^५ किर तुहं ^६ ।
अखयनिहाणं ^७ रयणरिद्धिल्लि	रायलच्छिं ^८ तुहं ^९ मुंजहिं ^{१०} भल्लि ।
भणइ कुमारु ताय जइं ^{११} सुंदर	ता कहिं ^{१२} चक्कवट्टि-हरि-हलहर ।
सयलकाल-नव-नव-वरइत्ति	वसुमइं ^{१३} वेस व केण न भुत्ति ।
तो मुंजमि जइं ^{१४} आउ न तुट्टइं ^{१५}	दुत्तरवाहितरं ^{१६} गिणि खुट्टइं ^{१७} ।
तो मुंजमि जइं ^{१८} जर नउं ^{१९} वंकइ	कालभुयंगदाढं ^{२०} नउ डंकइ ।
अह कल्लइं ^{२१} विणासु जइ रज्जहो	तो वरि अज्ज जासिं ^{२२} नियकज्जहो ।

१०

ने उद्धृत किया है। वह मेरे द्वारा लेने और पालन करने योग्य है। वह (तप) बारह प्रकारका है और बहुत गुणोंसे भरा है ॥७॥

[८]

पुत्रके तपग्रहणकी बात सुनकर वह पुत्रवत्सल राजा वही विह्वल हो गया और उसे दुःखकी महाज्वाला बढ़ गयी। करघनीको खलित करती हुई, पगनूपुरोंसे रणरण करती हुई, और स्वेदजलसे आर्द्र रानियाँ (कुमारकी माताएँ) वनमालासे अलकृत होकर अर्थात् वनमाला देवीको आगे करके तुरंत कुमारके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले आवासमें पहुँची। चक्रेश्वरने कहा—बेटा ! तेरा यह प्रव्रज्या लेनेका अभी कौन-सा काल है ? तू अक्षय घन तथा रत्नश्रद्धिसे युक्त इस भली (अर्थात् सुंदर व सुखदायक) राज्यलक्ष्मीको भोग। तब कुमार कहने लगा—हे तात ! यदि यह सुंदर है तो फिर (इसे भोगनेवाले) चक्रवर्ती, वासुदेव और बलराम आज कहाँ हैं ? सदा नये नये वरोंको वरण करनेवाली यह वसुमती वैश्याके समान किस-किसके द्वारा नहीं भोगी गयी। मैं तब इसे भोगूँ यदि (कभी) आयु न टूटे, और यह दुस्तर व्याधि-तरंगिणी खंडित हो जाये, (अथवा) मैं तब इसका भोग करूँगा यदि जरा शरीर को क्षीण न करे और काल-भुजंगकी दाढ़ इसे कभी डसे नहीं। परंतु यदि कल राज्यका विनाश होना हो, तो मैं आज ही अपने (मोक्षसाधनके) कार्यके लिए

[८] १. घ भवं । २. ख ग गहणुं । ३. क छ णिणवि; घ णेवि । ४. ख ग हो । ५. क ख क वट्टिय । ६. क ड णलो । ७. क ड तणरुह, ख ग तणुरुहु । ८. क पवज्जहि; ग पवज्जहे, घ पावज्जहि, ङ पवज्जहि । ९. ख ग तुहु । १०. ख ग णु । ११. क घ ड रिद्धि । १२. ख ग तुहु । १३. क हिं १४. ख ग जय । १५. ख ग कहि । १६. मई । १७. क इं । १८. क छ जरउ ण । १९. क ड डाढ । २०. घ इं । २१. क घ ड णि ।

घत्ता—अजरामर^{२२} सासयपुरवर^{२३} ताय करिठवउ^{२२} मइ^{२३} निलउ^{२४} ।
चयणिज्जह^{२५} करमि अविज्जह^{२६} अविलवेण^{२७} वि तह^{२८} विलउ ॥॥

[६]

दुवई—निच्छउ मुणेवि भणइ चकसेरु हियवउ मञ्जु डब्जए ।
निग्गहुं इंदियाण तउ तं^३ किर सुय निलए वि सिञ्जए ॥१॥

जई रायदोस नै बसंति मणे तउं लेवि करेवउ काइ^{१०} वणे ।
अह रइउ कसायहिं^९ हियउं जहि तवचरणुं सञ्जु किर काइं तहि ।
५ तो वरि अचभत्थण महु करहि घरि^{११} संठिउ नियमवयई^{१२} धरहि ।
पड्विज्जिउ कुमरे पिउं^३ वयणु गउ निय-निय-निलयहो सव्णुं^{१३} जणु ।
तद्विसहो लग्गेवि रायसुओ घरसंठिओ वि घरकज्जुओ ।
मंगवयणकायकयसंवरणुं^{१४} नवविहवरवंभचेरधरणु ।
पासट्ठिओ^{१५} वि तरुणीनियरु मण्णइ^{१६} वहिपुंजिउ व्व कयरु ।
१० दिढधम्ममुं^{१७} मंतिमुउ आढविउ आहारु आरणालगघविउं^{१८} ।
नउ कारिउ न किउ न इच्छियउ सावयघरभिकखं^{१९}-पडिच्छियउ ।

जाता हूँ । हे तात ! मुझे अजर अमर व शाश्वत और श्रेष्ठ, ऐसे मोक्षनगर मे निवास बनाना है, और मैं त्यजनीय अविद्यारूपी (भ्रान्त, असत्य एव अशाश्वत) राजलक्ष्मीका शीघ्र ही त्याग करूँगा ॥ ६ ॥

[६]

(पुत्रके) निश्चयको जानकर चक्रेश्वरने कहा—पुत्र (दुःखसे) मेरा हृदय जल रहा है, तथापि मुझे यह कहना है कि इन्द्रियोंका निग्रह ही तप है और वह घरमे भी सिद्ध हो सकता है । यदि मनमें राग-द्वेष निवास नहीं करते तो तप लेकर वनमे ही क्या करोगे ? और यदि हृदय काम-क्रोधादि कषायोसे रचित है, तो फिर वहाँ तपस्चरण कैसे साधा जा सकेगा ? तो इसलिए मेरी यह अभ्यर्थना मानो कि घरमे रहते हुए ही नियम और व्रतको धारण करो । कुमारने पिताके वचन स्वीकार किये और सब लोग अपने-अपने निवासको चले गये । उस दिनसे लगाकर वह राजपुत्र घरमे रहता हुआ भी घरके कार्योंसे अलग रहने लगा । उसने मन-वचन-कायका सवरण कर लिया और नवविष ब्रह्मचर्य धारण कर लिया । पासमे स्थित तरुणी-समूहको वह रूप बनाये हुए व्याधिपुंजके समान मानने लगा । उसने मत्रीपुत्र दृढधर्मसे सम्मान-पूर्वक कहा कि मुझे काजीका ही आहार दिया जाये । न (तैयार) कराया हुआ, न स्वयं किया हुआ, न अपनी इच्छा (अनुमोदन) से बनवाया हुआ, ऐसा श्रावकोके घरसे मिशामे

२२ स ग करेवउ । २३ क स ग घ मइ । २४ क ङ उ । २५ क वयणिज्जहिं, घ वयणिज्जहिं, ङ चयणिज्जहिं । २६. क घ ङ ज्जहिं । २७. प्रतियोमं अवं । २८. क ङ तहिं; घ तहिं ।

[९] १ क घ ङ इ । २ क हुं । ३ क ङ कि किर । ४. य ग जय । ५. क ङ णिवमति । ६ क वउ । ७. क ङ काइ । ८ स ग यहिं । ९ क उं । १० क घ उं यरणुं । ११. क घ ट घर । १२ स ग इ । १३ क घ ट पिय । १४ क मव्व । १५ स ग काइकयगवं । १६ क ङ ट ट्टिउ । १७ क ङ इ, घ मन्नइं । १८. क ङ धम्म । १९. य ग जारनालं । २० क ङ घरिं, घं घरं ।

एकंतरि^{२१} छट्टमष्ट दिने
जं एम कुमारं तहो कहिउ
आणइ^{२२} परवरहो भिक्खभमइ^{२३}
तहो सिंखमहावयपहरणहो
पहरणे^{२४} ठिउ लोहु गंडहु^{२५} मउ^{२६}
भोउ वि विलग्गु मरुभोयणाहि^{२७}

आणहि^{२२} महु पारणकल्लु^{२३} मुणि ।
सुविसुद्धभत्तु^{२४} कंजियसहिउ ।
निवनंदणु पाणिपत्ते जिमइ ।
नासंति विसय उवसममणहो ।
राउ वि दिण संझहे^{२५} सरणु^{२६} गउ ।
अंजणु सीमंतिणि लोयणहि^{२७} ।

१५

धत्ता—अयनिम्मलु अज्जियतवफ्लु वरिससहसचउसट्टि थिउ ।

जिणे^{२४} दिट्टउ आगमे^{२५} सिट्टउ^{२६} आउसंते सण्णासु^{२७} किउ ॥९॥

[१०]

दुवई—एरिसतवफलेण वंभोत्तरे^१ तणुक्रियसुरहिवाउ सो ।

एहु^२ सो विउजुमालि^३ हुउ सुनररु दससायरथिराउसो ॥१॥

आए^४ विणयगुणेहि असुक्के

सुहु^५ मुंजइ^६ सह^७ देविचउक्के ।

एत्तई सायरचंडु समाहिप्र

हुउ मरेवि सुरु तहि जि^८ अवाहिप्र ।

स्वीकृत आहार मेरी पारणाके लिए छट्टे-आठवे दिन एकान्तरसे ला देना, ऐसा जान लो । जब कुमारने उसको ऐसा कहा तो वह दूसरे-दूसरे धरोसे भिक्षा-भ्रमण करके काजी सहित विशुद्ध भात उसे लाकर देने लगा और राजकुमार उसे अपने करपात्रमे ही जीमने लगा । महाव्रतों-रूपी तीव्र शस्त्रको धारण करनेवाले उस उपशात-मन राजकुमारके विषय (विषय वासना) नष्ट हो गये, प्रहार पड़नेसे लोभरूपी गर्जेंद्र मारा गया, और राग भी दिनके समान (सान्ध्य अरुणिमाके रूपमें) सन्ध्याकी क्षणमे चला गया अर्थात् अस्तंगत हो गया । उसका भोग (भोगाभिलाष) महत् भोजी सर्पोंमें भोग अर्थात् फणाटोपके रूपमे जा लगा, और अंजन अर्थात् पापरूपी कलमव सोमन्तिनियोके नेत्रोंमे (काजलके रूपमें) लग गया । तपका फल अर्जन करके वह चौसठ हजार वर्षों तक जीवित रहा और आयुष्यके अन्तमें जिन भगवान्के द्वारा उपदिष्ट एवं आगममे निदिष्ट संन्यासमरण किया ॥ ९ ॥

[१०]

ऐसा वह (शिवकुमार) तपके फलसे ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें अपने शरीरकी गंधसे वायुको सुगन्धित करनेवाला, दस सागरकी स्थिर आयुवाला विद्युन्माली नामका श्रेष्ठ देव हुआ है । यह कभी भी विनयगुणको न छोड़नेवाली चार देवियोंके साथ सुख भोगता है । इधर सागरचद्र मुनि भी निर्बाध (अखंड) समाधिपूर्वक मरकर उसी स्वर्गमे देव हुआ है । वह इंद्रके समान

२१ ग एक^१ । २२ क घ ङ^२ हि । २३ ख ग कज । २४ क ङ सुविसुद्ध^३ । २५ क घ ङ^४ इ । २६ क^५ समइ, ख ग^६ भमइ । २७ ख ग^७ इ । २८ क ङ^८ रण । २९ प्रतियोगे गइहि । ३० क सठ^९ । ३१ ख ग सण्णहे, क घ ङ सण्णहि । ३२ ख ग^{१०} ण । ३३ क घ ङ^{११} णिहि; ख घ^{१२} णहि । ३४ ख ग सीमंतणे^{१३}, क ङ^{१४} लोयणिहि । ३५ क घ ङ जिण । ३६ क ङ आयमि । ३७ उ । ३८ घ सणासु ।

[१०] १ क घ ङ तणुकण^१ । २ क घ ङ इहु । ३ ख ग विज^२ । ४ घ सुहुं । ५ ख ग इं ।

६ ख ग सहु । ७ ख ग जे ।

५. इंदसमाणु पडिंदु पसंसिउ
इय तवफलु महंतु इय तणुपह
एवहिं सत्तमदियहें^{१०} चएण्णिणु
तउ लेसइ विज्जा-बलथामें^{१२}
तहिं अवसरि पणवि वि निम्माएं
१०. देविचउक्कहो^{१५} विहियतवंतरु
भणइ^{१६} जिणहुं^{१७} भरहें जणक्किणीं^{१८}
इउभसेड्ढि तहिं वसइ सुचित्तउं^{१९}
तहो जयभइ-सुभइविसत्थी
करइ विलासु सुरेहिं नमंसिउ ।
अक्खिय विज्जुमालिं देवहो कह ।
चरमसरीरु मणुउ होएण्णिणु^{११} ।
सहुं चोरेण^{१३} विज्जुचरनाभें ।
वड्डमाणु जिणु पुच्छिउ राएं ।
कहहि भडारा पुणवभवंतरु ।
चंपानयरि अत्थि वित्थिण्णीं^{१४} ।
नाभें सूरसेणु धणइत्त ।
धारिणि-जसमइ कंत-चउत्थी ।
वत्ता—सुहनक्खउ तिक्खकडक्खउ सज्जियउच्छु धणुद्धरहो ।
१५. विघेवण्ण भुअणु जिणेवण्ण^{२१} भल्लिचउक्कउ रइवरहो ॥१०॥

[११]

दुवई—तेहिं समाणु सुक्खु भुंजंतउ सेड्ढि सकम्मभाविणं ।
वाहिसएहिं^२ घल्लु हुउ निप्पहु अज्जियपुणवपाविणं ॥१॥
तहो जाउ जलोयरु कासु सासु खयरोउ भयंदरु जणियतासु ।

प्रशासित प्रतींद्र हुआ है और देवताओंसे नमस्कृत होता हुआ वहाँ विलास करता है। यह तपका महत् फल और इसप्रकार शरीर-काति संबंधी विद्युन्माली देवकी कथा कह दी गयी। अब यहाँसे सातवें दिन च्युत होकर, अन्तिमशरीरी मनुष्य होकर यह विद्या एव बलके धाम विद्युत्चर नामक चोरके साथ तप लेगा। उस अवसरपर प्रणाम करके (व्यवहार) निपुण श्रेणिक राजाने बर्द्धमान जिनसे पूछा—‘हे भट्टारक! इन चारो देवियोंका विघेण तपानुष्ठानयुक्त पूर्व-भव कहिए।’ (तब) जिनेंद्र कहने लगे—भारतदेशमें जनसकुल और विस्तीर्ण चंपा नामकी नगरी थी। वहाँ एक बहुत धनवान समृद्ध व स्वच्छ चित्तवाला सूर्यसेन नामका श्रेष्ठी रहता था। उसकी जयभद्रा, सुभद्रा, धारिणी व चौथी यशोमती नामकी विश्वस्त पत्नियाँ थी। वे बहुत सुंदर नखोंवाली तथा कामदेवरूपी धनुर्द्धरके पौने किये हुए बाणके समान तीक्ष्ण कटाक्षों-वाली थी, जो मानो उस रतिपत्तिकी सारे भुवनको बीचकेर जीतनेवाली चार बरछियाँ ही थी ॥ १० ॥

[११]

उनके साथ सुख भोगता हुआ श्रेष्ठी अपने कर्मके वेसे भाव अर्थात् वेसी कुछ परिणतिये पूर्वोपाजित पापके कारण सैकड़ों व्याधियोंसे ग्रस्त होकर कातिहीन और अदर्शनीय हो गया। उसके जलोदर, काश, श्वास और त्रासोत्पादक क्षयरोग व भगदर हो गया। अस्थिवात उसके

८. स ग विज्जं । ९. क घ ड ण्हि । १०. क घ ण्हि । ११. स ग विणु । १२. स ग वल्लु । १३. क ट चोरे । १४. क ड विज्जुचरं १५. क देव । १६. क घ ड ण्हि । १७. क घ ट जिणहु । १८. क जिणं ; घ ण्किणी । १९. घ ण्णी । २०. क ड तवि, च तसिं । २१. क ण्हं ; घ ट ण्हं ।

[११] १. क ड सुवत्त । २. क वाहिं ।

तणु मोडइ फोडइ अट्टिवाउ	विसरिसमणु हुउ विवरीयघाउ ।	
नियकंतहँ ^३ कंति निर्यंतु रुट्टु	अणुदिणु ईसालुउ जाउ सुट्टु ।	५
निवसु वि तं नत्थि न ^४ जित्थु पाउ	अच्छइ अ दिंतु गुरुलट्टिवाउ ।	
खरफरुसवयणु ^५ बोल्लइ सकूरु	परपुरिसचंदु ^६ जइ अह व ^७ सूरु ।	
थरु पंगणु ^८ कोट्टु ^९ नियहु पासु	तो तुम्ह सहट्टव ^{१०} लुणमि नासु ।	
जइ जाइ कह व वाहिरै स खुट्टु	उवरए ^{११} छुहेवि ^{१२} तालउ समुट्टु ।	
दिट्टु देविणु रक्खणु ^{१३} विट्टुपुरिसु	आइइ ^{१४} पेक्खंतु विमुहसरिसु ।	१०
निययाहिण्हाणु ^{१५} पुच्छइ सकोहु	किं कोवि न आयउ ^{१६} जारु गेहु ।	
बोल्लंति परोप्परु दुक्खियाउ	न मरइ हयासु इहु ^{१७} टुट्टभाउ ।	
जै ^{१८} नियहु जंत-आवंतयाइ ^{१९}	पिय ^{२०} -मायवंपुसयणिल्लयाइ ^{२१} ।	

घत्ता—इय संतं काले वहंतं पपसियदइयहँ^{२०} देंतु भउ ।

रइथावणु मिहुणसुहावणु भासु वसंतु^{२१} पहत्तु तउ^{२२} ॥११॥ १५

शरीरको मोड़ने व फोड़ने लगा । उसका मन विसदृज अर्थात् प्रतिकूल हो गया और समस्त वात-पित्तादि धातुएँ विकृत हो गयी । अपनी पत्नियोंकी कांति देखकर वह रुष्ट होने लगा और प्रतिदिन अधिकाधिक ईर्ष्यालु होता गया । 'ऐसा कोई निवास नहीं है जहाँ पाप न हो, (ऐसा सोचते हुए) वह उनपर लाठीसे भारी आघात करता हुआ रहने लगा । वह बड़ी क्रूरतासे तीखे और कठोर वचन बोलने लगा (कि), परपुरुष चाहे वह चंद्र हो अथवा सूर्य, यदि वह घरके प्रागणमें, या दीवारके पास (कहीं भी) तुम लोगोंके साथ देख लिया तो तुम लोगोंका ओष्ठसहित नाक काट लूँगा । वह क्षुद्र यदि किसी कारणसे बाहर जाता था, तो उन लोगोंको मुद्रांकित तालेमें बंद करके निवृत्त होता । उसने एक वृद्ध पुरुषको उनका कड़ा रक्षक नियुक्त कर दिया । (इस पर भी) जब भी वह लौटकर आता तो इस प्रकार देखता हुआ कि भानो तालोंकी मुद्रा तोड़ दी गयी हो, तथा अपनी शपथ देकर क्रोधपूर्वक पूछता—क्या कोई जार तो घरमें नहीं आया ? वे दुःखित होकर परस्परमें कहतीं— यह दुष्टभावोंवाला हताबा (दुर्जन) मरता भी क्यों नहीं, जो आने जानेवाले पितृ व मातृबन्धुओं (चाचा व मामा) को भी शयनीयोके रूपमें देखता है अर्थात् इन पितृजनोके साथ भी हम लोगोंके द्वारा संभोग किये जानेकी नीच शंका करता है । इस प्रकार रहते हुए, व काल व्यतीत होते हुए प्रोपित-पत्निकाओंको भय देता हुआ, रतिको स्थापित करनेवाला (अर्थात् रतिभावको बढ़ानेवाला) व मिथुनोके लिए सुखकर वसंत मास आ गया ॥ ११ ॥

३. क तिर्ष । ४. प्रतिभोमें 'ण' । ५. क छरु । ६. क घ रु 'पुरिसु' । ७. प्रतिभोमें 'कहव' । ८. क घ रु धरपंगणि । ९. ख ग कोहु । १०. क घ रु सउ । ११. क घ रु उवरइ । १२. ट छुह्वि । १३. क रु ण । १४. क रु आयउ । १५. क घ ट 'हिहाणु' । १६. क घ ट जार गेहु । १७. क व रु इह । १८. क जे । १९. क घ ट पिउ । २०. ख ग घ पवसिर्ष । २१. क घ रु पहत्तु ।

[१२]

दुषई—दहसुहहरियसीयचिरहाउररामालोइयंतओ ।

मारुयचुंबियासु हणुवंतु व बिलसइ नववसंतओ ॥१॥ -

दिणि दिणि रयणिमाणु जिह^३ खिज्जइ^३ दूरपियाण निह^३ तिह^३ खिज्जइ^३ ।
 दिवि दिवि दिवसपहर जिह^३ वड्डइ^३ कामुयाण तिह^३ रइरसु वड्डइ^३ ।
 दिवि दिवि जिह^३ चूयउ मउरिज्जइ^३ माणिमाणहो तिह^३ मउ रिज्जइ^३ ।
 कलकोइलकलयलु जिह^३ सुम्मइ^३ तिह^३ पंथिय करंति घरे सुम्मइ^३ ।
 सलिलु निवाणहि जिह^३ परिहिज्जइ^३ तिह^३ भूसणु मिहुणहि परिहिज्जइ^३ ।
 पाडलियहि जिह^३ भमरं^३ पहावइ^३ पियसंगरि तिह^३ होइ पहावइ^३ ।
 जिह^३ पियसंगु विरहु निद्धाडइ^३ कुसुमसमिद्धं^३ तेम निद्धाडइ^३ ।
 १० मालइकुसुमुं भमरं^३ जिह^३ वज्जइ^३ घरे घरे गहिरं^३ तूरु तिह^३ वज्जइ^३ ।
 वियसियकुसुमुं जाउ अइमुत्तं^३ धुम्मइ^३ कामिणियणु अइ-मुत्तं^३ ।

[१२]

रावणके द्वारा हरी गयी सीता तथा विरहातुर कामिनियोके द्वारा निंदा किया जाता हुआ, तथा मास्त अर्थात् दक्षिण पवनके द्वारा दिशाओ (रूपी वधुओ) के मुखको चूमनेवाला वसंत, रावणके द्वारा हरी गयी सीताके विरहमे आतुर रामके द्वारा (सीताका कुशल समाचार लानेके उपरांत आशापूर्वक) देखे जाते हुए एवं मास्त अर्थात् अपने पिता पवनजय के द्वारा (स्नेहपूर्वक) चुंबित मुख हनुमानके समान विलास करने लगा ॥

प्रति दिन, जैसे-जैसे रात्रिका मान घटने लगा, वैसे-वैसे जिनके प्रिय दूर है, ऐसी कामिनियोकी निद्रा भी क्षीण होने लगी। प्रतिदिन जैसे-जैसे दिवस-प्रहर बढ़ने लगा वैसे-वैसे कामियोका रतिरस भी बढ़ने लगा। प्रतिदिन जैसे-जैसे आन्नपर बौर आने लगा, वैसे-वैसे मानिनियोका मान-मद मुकुलित अर्थात् क्षीण होने लगा। जैसे-जैसे कलकंठी कोकिलाका कलरव सुनाई देने लगा, वैसे-वैसे पथिक घरकी ओर मति (मन) करने लगे। जैसे-जैसे गढोमे जल क्षीण होने लगा, वैसे-वैसे मिथुन आभूषण कम करने लगे। जिसप्रकार भ्रमर .पाटल पुष्पोंकी ओर दौड़ने लगता है, उसीप्रकार प्रभावती अर्थात् सुंदरी नायिकाएँ अपने प्रियपतियोके सग होने लगी। जिसप्रकार प्रियका संगम विरहको बाहर निकाल देता अर्थात् नष्ट कर देता है, उसीप्रकार कुसुमोकी समृद्धि बाहर निकलने अर्थात् प्रकट होने लगी। जिसप्रकार भ्रमर मालती पुष्पसे भयभीत (त्रस्त, निराश) हो, गुंजार करने लगता है, उसीप्रकार घर-घरमें गंभीर तूर बजने लगा। अतिमुवतकका फूल जैसे खिलता है, वैसे ही कामिनीजन अत्यन्त

[१२] १. ख ग घ हणवंतु । २. ख जहं, ग घ जिहं । ३. क ट तह, व तह । ४. क घ टं । ५. क घ ट वट्टइ । ६. क घ तह, ट तहं । ७. क ट वट्टइ । ८. क घ ड जह । ९. व तिहं । १०. ख ग खिज्जइ । ११. ख ग घं । १२. क घ टं । १३. क घ डं । १४. क टं । १५. क घं । १६. कं हि । १७. घ जिहं । १८. क घ ड महइ । १९. घ संगिरि । २०. ख ग कुसुमं । २१. ख ग कुसुमु । २२. क मर । २३. क वच्चइं; ड वच्चइ । २४. क घ ट गहिर; म ग गहइ । २५. ख ग तहि, व तिहं । २६. क ख ग टं मत्तव । २७. क घ टं ।

दरिसिद्ध कुसुमनियरु^{३०} वेयल्ले^{३०} पहिए^{३१} धरु गम्मइ^{३०} वेयल्ले^{३०} ।
नील पलास रत्त हुय किंसुय भंतचित्तु जणु^{३१} जाणइ^{३२} कि सुय ।
देवउल्लहं जणु पुज्ज समारइ वट्टइ मिहुणहं^{३३} हियइ समा रइ^{३३} ।
तुरयहिं^{३४} अल्लहज्जि नच्चिज्जइ नववसंतु तरुणिहिं नच्चिज्जइ । ११
दावानलु^{३५} पुल्लिदजणु लायइ^{३५} सरधोरणि अणंगु गुणे लायइ ।
मंदु मंदु^{३६} मलयानिलु^{३५} वायइ^{३०} महुरसदुदु जणु वल्लइ^{३१} वायइ^{३०} ।
अहं^{३४} तहिं^{३४} सियपंचमिहिं^{३४} वसंतहो नंउणवणे देवउल्ले वसंतहो ।
फणमणितेओहामियजलणहो^{३६} करइ जत्त नायहो जणु जलणहो ।
घत्ता—नायरजणु^{३७} निवइ सपरियणु पयडीकयनियनियविहउ । २०
फणिजक्खहो नयरीरक्खहो जत्तकज्ज उज्जाणे गउ ॥१२॥

[१३]

दुवई—ताम पियाचउक्कु रविसेणे विविहाहरणभूसिओ ।
जंपाणाहिरुदु जत्तुच्छवि रक्खणसहिउ पेसिओ ॥१॥
गयउ ताउ अहिभवणु तुरंतिउ तणुकंतिप्र वणु उज्जेयंतिउ ।
पुज्जविं पणविवि फणसच्छायहो हिययदुक्खु विणणप्पइ नायहो ।

स्वच्छन्द होकर घूमने लगी (देखिए परिशिष्ट) । विचकिल्लके वृक्षने जैसे कुसुमसमूहको दर्शाया, वैसे ही पथिक वेगपूर्वक घर जाने लगे । पलाश नीले (हरित) हो गये, और किंशुक-लाल, परंतु भ्रान्तचित्त (कामी) को (हरित दलोंके ऊपर लाल-लाल पुष्पोंको देखकर) लगा कि कहीं ये शुक पक्षी तो नहीं हैं । लोग देवकुलोंमें पूजा समारने लगे, और मिथुनोके हृदयमें समान भावसे रति उत्पन्न हो गयी । जिसप्रकार गीले चनोंको (देखकर) घोड़े नाचने लगते है, उसीप्रकार नववसंतको (देखकर) तरुणियां नाचने लगी । पुल्लिद (भोल) दावानल लगाने लगे और कामदेव धनुषपर प्रत्यंचा चढ़ाने लगा । मंद-मंद मलयपवन बहने लगां । और लोग मधुर स्वरसे वीणा (वल्लकी) बजाने लगे । अथानन्तर वहीं वसंतकी सुक्लपंचमीके दिन, नंदनवनके देवालयमें रहनेवाले, अपने फणमणिङ्के तेजसे अग्निके तेजको तिरस्कृत करने-वाले, उवलन नामक नागदेवकी यात्राके लिए लोग चले । नागरिकजन, तथा अपने परिजनो-सहित राजा, अपने-अपने वैभवको प्रगट करते हुए नगरीके रक्षक नाग-यक्षकी यात्राके लिए उद्यानमे गये ॥१२॥

[१३]

तब रविसेनने अपनी चारों प्रियाओंको विविधाभरणोसे भूषित करके पालकीमें बैठाकर रक्षकके साथ यात्रोत्सवमे भेजा । वे अपने शरीरको कात्तिसे वनको प्रकाशित करती हुईं, तुरंत नागभवनको गयीं । फणशोभासे युक्त नागकी पूजा, प्रणाम करके, उसको अपने हृदयका दुःख

२८. क घ ड वेइल्ले । २९. क घ ड थ । ३०. ख ग वेइल्ले । ३१. क ड जाणइ, व जाणइ । ३२ क घ ड जणु । ३३. क ख ग णहु; घ ड णहुं । ३४. क ड रइ । ३५. ख ग यहि । ३६ क ख ग ड णलु । ३७. क ड लावइ; ख ग घ लायइ । ३८. ख ग मंद मंद । ३९. क ड णिलु; ख ग नलु; । ४० ग घ इं । ४१ क ड वुं । ४२ घ इं । ४३. क ड अहु । ४४ क ख ग तहि । ४५. क घ ड मिहि । ४६. क फणिमणि । ४७ क णारयं ।

[१४] १. क घ ड पुज्जवि । २. घ विन्नं ।

- ५ परमेसरै एत्तडउ करिज्जहिँ
पुणु नोसरिवि तित्थुँ आसण्णइँ
अरुहनाहु पणवि वि अहिर्णदिउ
पुच्छिउँ ताहिँ^{१२} विणासियभवनिंसि
माणुसु जं सुहभायणु दीसइ
१० पावें सल्लतुल्लदुहुक्खिउ
पुण्णफलाहिलाससमच्चित्तइँ^३
कइवयदिणहिँ^{१५} वाहिसंतत्तइँ^{१६}
पच्छइ कारिवि केवलवाहो
सुव्वयपासि चयारि वि कंतउ
१५ घत्ता—तवसाहिँ मरेवि समाहिँ विज्जुमालिदेवहो ठियउ ।
वंभोत्तरे सोक्खनिरंतरे एउ चयारि वि हुयँ पियउ ॥१३॥

[१४]

दुवई—इह विज्जुवइ नाम विज्जुप्पह इह आइच्चदंसणा ।

तिहिँ मि चउत्थ अवर दीसइ पिय इह भण्णइँ सुदंसणा ॥१॥

एत्थंतरे मगहाहिउ जंपइ

देव तुम्ह चळणहिँ विण्णप्पइँ ।

जेण समाणु एहु लेसइ तउ

विज्जुच्चरहिहाणुँ जायउ कउ ।

कहने लगी—हे परमेश्वर ! बस इतना करना कि सूरसेनके समान कात मत देना । फिर वहाँसे निकलकर वासुपूज्यके आसनवर्ती रमणीक जिनमंदिरमें अर्हत भगवान्को प्रणाम करके प्रसन्न हुई, और वहाँ सुमति नामक मुनिपुंगवको देखकर वंदना की । उन्होंने मुनिसे पूछा और वे भवनिशा अर्थात् मोहान्धकारको नष्ट करनेवाले महर्षि पुण्यपापका फल कहने लगे—'मनुष्य जो सुखका भाजन दिखाई देता है, वह सब पुण्यका ही प्रभाव कहा जाता है । पापसे जीव शूल लगनेके समान दुःखसे दुःखी, भारसे आक्रांत, एवं प्यासा और भूखा रहता है ।' चित्तमे पुण्यफलकी अभिलाषाके साथ वे श्रावकव्रतको लेकर घर आ गयी । कुछ दिनोंमे व्याधि-संतपत और सत्वहीन होकर सूरसेन मर गया । पीछे अपने द्रव्यसे केवलज्ञानके धारक जिनभगवान्का मंदिर बनवाकर वे चारो स्त्रियाँ घरसे निकलकर सुव्रता (आर्यिका) के पास आर्यिकाएँ हो गयी । तप साधकर और समाधिपूर्वक मरकर ये चारो निरन्तर सुखवाले ब्रह्मोत्तर स्वर्गमे विद्युन्माली देवकी प्रियाएँ बनी ॥ १३ ॥

[१४] -

यह विद्युत्वती है, यह विद्युत्प्रभा, यह आदित्यदर्शना, तथा इनमे यह जो अन्य चौथी प्रिया दिखाई देती है, वह सुदर्शना कहलाती है । इसके अनन्तर मगधपति कहने लगे—देव ! तुम्हारे चरणोंमे यह विज्ञप्ति है कि जिसके साथ यह (विद्युन्माली देव) तप लेगा, वह विद्युत्चर नामका

३ क संसु । ४. ख ग करेउजहि । ५. ख ग हि । ६. ख तत्थु, ग तत्थु । ७ क ट ण्णउ, घ ण्णइ । ८. क ल वासपुज्ज । ९. क ण्णउँ, व ण्णइँ; ट ण्णइँ । १०. स ग इ । ११ ट उ । १२. क स ग ट तेहि । १३. घ पुत्त । १४. क ल पुणु । १५. क ल ग क कवय । १६. क त्तउ । १७. क ट ववय । १८. ख ग हुउ ।

[१४] १. क ट संसु । २. क ट इँ, घ ण्णइ । ३. घ विपत्त । ४. ल ग हिहाणु ।

संपई कहि वट्टइ मूसियजणु
 भणइ जिणिहुँ अस्थि पुइइवरु
 तहिँ परवलघणपलयमहामरु
 पिय सिरिसेण तासुँ विक्खाइय
 परिवट्टुँते^{१०} तेण कुमारें
 इह विण्णाणु^{११} महीयले जं जं
 अणुदिणु विज्जउ परिसीलंतहो
 ओसहीप्र थंभेवि थाणंयरु^{१२}
 जगंतो वि राउ किउ सुत्तउ
 तो पहाप्र नरवइ चिताविउ
 अह व सिविणु जइ ता कहिँ रयणइँ
 नियनंदणु हक्कारिचि चारिउ
 काइँ^{१४} न पुजइ तुह किर रज्जे
 तं निसुणेवि कुमारें चुचइँ^{१५}
 परणु पुणु अणंतु जं दीसइ
 निष् निवारिओ वि मण्णइँ^{१६} नउ

किं कज्जेण पत्तु चोरत्तणु। ५
 मगहदेसि पट्टणु हथिणाउरु।
 वसइ नराहिउ नामविसंधरु।
 सुउ विज्जुवरु नाम वि याइय।
 पत्तसयलवरविज्जापारें।
 परियाणिउ नांसेसु वि तं नं। १०
 चोरिय तहो पडिहासिय चित्तहो।
 निसिहिँ पडट्टु निययतायहो घरु।
 हरिउ कडउ कंठउ कडिसुत्तउ।
 किं मइँ^{१३} सिविणउ एहु विभाविउ।
 कंठयकडयपमुहआहरणइँ^{१४}। १५
 तकरकम्म सुयणधिकारिउ।
 चोरिय करहिँ^{१५} पुत्त कि कज्जे।
 सावहिरज्जु ताय किम रुचइ।
 अक्खयनिहिँ^{१६} तं महुकरे निवसइ।
 पच्चेल्लिउ तायहो रुसविँ^{१७} गउ। २०

चोर कहाँ उत्पन्न हुआ है ? सम्प्रति वह लोगोंको लूटता हुआ कहाँ विद्यमान है ? और किस कारणसे चोरपनेको प्राप्त हुआ ? तब जिनेंद्र कहने लगे—मगवदेशमें पृथ्वीमें श्रेष्ठ हस्तिनापुर नामका नगर है। वहाँ शत्रुबल रूपी वादलोंके लिए प्रलयकी आंधीके समान विश्वंवर नामका राजा रहता है। उसकी श्रोतेना नामसे विख्यात प्रिया है, उसको विद्युत्चर नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। बड़े होते हुए उस कुमारने सकल श्रेष्ठ विद्याओंका पार पा लिया, और इस पृथ्वीतलपर जो-जो कुछ भी विज्ञान है, उस सबको उसने निःशेषरूपसे जान लिया। इस-प्रकार प्रतिदिन विद्याओंका अनुशीलन करते हुए, उसके चित्तको चोरी भा गयी। औपचिसे पहरेदारको स्तम्भित करके रात्रिमें अपने ही तातके घरमें प्रविष्ट हो गया। जागते हुए राजाको भी सुप्त (जैसा) करके उसने कंठा, कड़ा और कटिसूत्र हूर लिये। तो प्रभात होनेपर राजा चिंतामे पड़ा कि क्या मंने यह (चोरी) स्वप्नमे देखा ? अथवा यदि स्वप्न है, तो फिर रत्न और कठा व कटक (कड़ा) प्रमुख आभरण कहाँ गये ? अपने पुत्रको बुलवाकर इस कार्यसे रोका कि यह तस्कर-कर्म सज्जनोसे निन्दित है; तुझे राज्यसे क्या नहीं पूरता ? (तो फिर) हे पुत्र ! तू किस कारणसे चोरी करता है ? यह सुनकर कुमारने कहा—तात ! यह सावधि (सीमित) राज्य मुझे कैसे रुचे ? यह जो अनन्त पर-धन दिखाई देता है, वह समस्त अक्षय-निधि मेरे हाथमे वसती है। इसप्रकार नित्य रोकनेपर भी वह नहीं माना, बल्कि तातसे

१ ख ग ई। ६. ड। ७. ख ग जिणट्टु। ८. क धरु। ९ क ड णाम; घ नाम। १०. क ङ वट्टुँते।
 ११. घ विण्णाणु। १२. प्रतियोंने 'घाणंतव'। १३. क ख ग मइ। १४. क घ ङ 'कडय-मडड'। १५. र ग काइ। १६. ख ग ई। १७. क ङ ई। १८. क ड णिहिँ। १९. क ड डं; घ मण्णं। २०. क व ङ रुसिवि।

पुरे रायगिहे तरुणजणभामिणि^१ कामलय ठ्व कामलयकामिणि ।
ताप्र^२ समाणु विलासुवहुंजइ^३ मूसिवि नयरु अस्थु घरे पुंजइ ।

घत्ता—विणु नित्तिप्र तकरवित्तिप्र नयरं तुहारप्र विज्जुचरु ।
विलसंतउ विज्जावंतउ वीरपुरिसु अच्छइ पवरु ॥१४॥

इथ जंबूसामिचरिए सिगारवीरे महाकब्बे महाकइदेवयत्तसुयवीरविरइए सिवकुमारस्स
विज्जुमालीदेवयसंभवो नाम^२ तइओ सघी समत्तो^३ ॥संधि-३॥

रूसकर चला गया । राजगृह नगरमे तरुणकी प्यारी, व कामकी लताके समान कामलता नामकी कामिनी है, उसके साथ विलास भोगता है और नगरको लूट-लूटकर धन उसके घरमे लाकर भर देता है । न्याय-नीतिसे रहित तस्करवृत्तिसे, वह विद्यावान्, उत्तम वीरपुरुष विद्युत्चर विलास करता हुआ तुम्हारी नगरीमे रहता है ॥१४॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-ऋषि-द्वारा विरचित जंबूस्वामीचरित्र नामक इस शृंगार-
वीर-रसात्मक महाकाव्यमें 'शिवकुमारका विद्युन्माली देव बनना' नामक यह
तृतीय संधि समाप्त ॥ संधि—३ ॥

२१ ख ग भाविणि । २२ क ड ताई; घ ताई । २३. क भुंजइ । २४ क घ ङ तइया इमा गंधी, रग तईउ सघी ।

संधि—४

[१]

अगुणा न मुणति गुणं गुणिणो न सहति परगुणे ददुं ।
 वल्लहगुणा वि गुणिणो विरला कई वीरसारिच्छा ॥१॥
 का मायरि को पिउ अक्खहिं कहिं थिउ गोत्तु कयत्थउ तं कवणु ।
 भगहाहिउ घोसइ^१ एमहिं^२ होसइ^३ विज्जुमालि जहिं^४ नररयणु ।
 नायनरामरेदवदियकमु अक्खइ वड्ढमाणु जिणपुंगसु । ५
 एत्थु जि रायगेहि तउ पुरवरे देउलसिगलभगधाराहरे ।
 इह जो दीसइ नयणाणंदणु नामें अरुहयासु वणिनंदणु ।
 एयहो पियहो^५ विणयगुणधामहो^६ गम्भे हवेसइ जिणमइनामहो^७ ।
 तं तित्थयरवयणु निसुणंतउ उट्ठिउ जक्खु एक्खु नच्चंतउ ।
 रहसिउ जंपइ किह निव्वणमि^८ अप्पउ परकयत्थु हउं मणमि^९ । १०
 जासु गोत्ति विद्धंसियभवकलि उप्पजेसइ पच्छिमकेवलि ।
 संभवति तं धण्णउ^{१०} कुलु पर^{११} जहिं अरहंत-सिद्ध-केवलधर ।
 यत्ता—पुच्छिज्जइ रापं सविणयवापं जिणवरिंदु विभियमणं^{१२} ।
 आणंदु पवुच्चइ^{१३} जक्खु पणच्चइ कहइ^{१४} देव कि कारणेण ॥१॥

[१]

गुणहीन लोग गुणको समझते नहीं हैं; और जो गुणी हैं, वे दूसरोके गुणको देखना भी नहीं सहते । जिन्हे दूसरोके गुण प्रिय हैं, ऐसे कवि वीरके समान गुणी लोग विरले ही होते हैं ।
 तब भगधराजने पूछा—भगवान् वतलाइए उसकी कौन माता है, और कौन पिता ?
 वे कहाँ हैं ? तथा कौन-सा वह कृतार्थ गोत्र है जहाँ विद्युन्माली नररत्न इस कालमें जन्म लेगा ?
 तब नागेन्द्र, नरेंद्र व अमेरेंद्रो-द्वारा बंदिता-चरण जिनश्रेष्ठ बद्धमान कहने लगे—यही तुम्हारे इसी राजगृह नामक उत्तम नगरमें, जहाँ देवकुलोके श्रृंगोसे मेघ टकराते हैं, यहाँ जो नेत्रोंको आनंद देनेवाला अरहदास नामका वणिकपुत्र दिखाई देता है, इसीकी अत्यन्त विनयशील जिनमती नामकी प्रियाके गर्भमें उत्पन्न होगा । तीर्थकरके इस वचन (कथन)को सुनकर एक यक्ष नाचता हुआ उठा, और हर्षोत्कण्ठित होकर कहने लगा—(अपने वंगकी) 'कैसे प्रगंसा कहूँ ? मैं स्वयंको परमकृतार्थ मानता हूँ जिसके गोत्रमें भवकलि अर्थात् सांसारिक कालुष्य या कर्ममलसे रहित (अथवा कर्ममलका नाश करनेवाला) अन्तिम केवली उत्पन्न होगा । वह कुल परम धन्य है, जहाँ अरहंत, सिद्ध, व अन्य केवलज्ञानी जन्म लेते हैं ।' तब विस्मित मनसे राजाने जिनवरसे पूछा—हे देव ! कहिए, आनंदपूर्वक बोलता हुआ यह यक्ष किस कारणसे नाच रहा है ? ॥ १ ॥

[१] १ क परमगुणी, ड परगुणी । २ ख ग ड, घ ङ । ३. क ड कहि । ४. क ड । ५. ख ग एतहि । ६. ख ग ड । ७. ख ग जहि । ८. क हि, घ ड हि । ९. क ड धामहि, ख ग धामहो, घ धामहि । १०. क घ हि; ड हि । ११. घ ङमि । १२ व ङउं, ड उं । १३. क ड पर । १४. ख ग विभयं । १५ क ख ग ड पर । १६. क ड हि; घ हि ।

[२]

आयहो जकखामरहो विरुञ्जइ
 भणइ^२ नाहु तउ नयरि सइत्तउ
 पिय गोत्तवइ तासु गुणथामहो
 नंदणु अरुहयासु संजायउ
 ५ बीयउ सुउ जिणयासु पवुत्तउ
 अणुदिणु दविणु घराउ हरेप्पिणु
 वज्जियडक्क^१-हुडुक्क^२-समाणप्प^३
 कंकरसर^४-जुवारविरसक्खरु^५
 १० एकदिवसि^६ हारिय वरवणणहो^७
 टंठमज्झि^८ दक्खवियनियारे^९
 पभणइ^१ कवणु^२ गहणु मणमि^३ तणु
 योल्लइ छलउ तिक्खनिट्टरगिरु
 रे जिणदास वोल्लविप्फारहि^४
 एह पइज्ज मज्झु जाणिज्जइ^५

माणुसु गोत्तु केम संबज्झइ^१ ।
 संतप्पिउ वणीसु धणइत्तउ ।
 चंदहो रोहिणि व्व रइ रामहो ।
 पुण्णपुंजु नरवेसे आयउ ।
 तारुणणइ दुज्वसणहि^{१०} भुत्तउ ।
 वेसायणु भुंजइ तं देप्पिणु ।
 पियइ मज्जु विरइय^{११} आवाणप्प^{१२} ।
 रमइ^{१३} जूउ मंडियवडुप्फरु^{१४} ।
 जूए सहसवत्तीस सुवण्णहो^{१५} ।
 धरियउ छलयनामजूयारे^{१६} ।
 जायवि^{१७} निलए देमि तउ कंचणु ।
 मंदिरु वच्चंतहो तोडमि सिरु ।
 हंवाइउ^{१८} इयरहि^{१९} जूयारहि ।
 घरु दूरयरु^{२०} पउ वि जइ^{२१} दिज्जइ^{२२} ।

[२]

इस यक्ष देवका मनुष्य गोत्रमे संबंध कैसे हो सकता है ? यह बात तो (सिद्धान्त) विरुद्ध पडती है । तब भगवान् कहने लगे—नुम्हारी इसी नगरीमे धनदत्त नामका एक धनी व सतोषी बणिक् रहता था । उस गुणवान्की चंद्रकी रोहिणी व रामकी रति अर्थात् सीता जैसी गोत्रवती नामकी पत्नी थी । उसे अरहदास नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, मानो मनुष्य वेशमे पुण्यका पुंज ही था गया हो । दूसरा पुत्र जिनदास कहलाया, जो अपनी यौवनावस्थामे दुर्ब्यसनोसे भोगा गया (वशीभूत हुआ) । वह प्रतिदिन घरसे द्रव्य अपहरण करके, उसे देकर वेश्या-जनका भोग करता, और डिडिम व डक्का बजते हुए सजी हुई दुकानोमे मद्य पीता, तथा जूएका एक बडा फलक सजाकर कंकारोके स्वर और जुआडियोकी विरस ध्वनियोके साथ जूआ खेलता । एक दिन वह जूएमे सुवर्णकी बत्तीस सहस्र मुद्राएँ हार गया । चूतगृहमे छलक नामक जुआडीने अत्यंत अपमानित करके उसको पकड लिया । इसने कहा—यह क्या भारी बात है ? मै इसे तृण बराबर समझता हूँ, घर जाकर तुझे सुवर्ण (मोहरें) दे दूँगा । तब छलकने ये निष्ठुर वचन कहे—यदि घरको चले तो सिर तोड़ दूँगा । रे जिनदास ! बडे बोलोसे दूसरे जुआडियोने तुझे बडा गर्वित कर दिया है (बहुत चढा दिया है); परंतु तुम मेरी यह पैज (प्रतिज्ञा) जान लेना कि घर तो दूर ही रहे, तू एक पैर भी आगे रख ले तो मै अपना

[२] १ क इं । २. प्रतियोमे इं । ३ क घ टं यत्तउ । ४ घ पुत्रं । ५ क घ ड पत्तउ ।

६. क ड ण्णहि, घ च्चहि । ७ ख ग णइ । ८ घ विज्जियं । ९ क हुटवणु, ख ग हुटवणु । १० क घ ड णइ, ख ग णइ । ११ क यइ, ड यइ । १२ क व ड णइ । १३ क ट वकरं, घ ककरं । १४ क ड विरसव्वरु । १५ प्रतियोमे इं । १६ क वट्टइ पउ, ड वट्टयपपउ । १७ घ एणुं । १८ घ च्चंतो । १९ क मज्झि । २० क घ ड सयारिं । २१ क घ टं णइ । २२ क घ टं ण । २३ ख ग मज्जि । २४ क व ड जाएवि । २५ घ टं रहि । २६ ख हिवां, ग हिवां, घ देवां । २७ न ग रंहिं । २८ क ञ्जइ । २९ क टं यरि । ३०. ख ग मइ ।

तो न ब्रह्मि^{३१} नियनासु सछायउ पमिग व पइजिचि^{३२} ईसवि^{३३} जायउ । १५
 घत्ता—इय विहि^{३४} मि^{३५} निरगलु वडिदउ^{३६} कंदलु असिदुहियइ^{३७} जिणदासु हउ ।
 पेक्खिचि महिपत्तउ घोळिरअंतउ पाण लएविणु छलउ गउ ॥२॥

[३]

एत्तहि ^{३१} आयणिणवि ^{३२} तं वइयरु	निउ जिणदासु अरुहयासे ^{३३} घरु ।
अंतइ ^{३४} धोविचि वणु सीवाविउ	जेठ्ठे भणिउं ज्यफलु पाविउ ।
निम्मलसावयकुलि ^{३५} उप्पज्जिउ	एक्कु वि वसणु वंधु नउ वज्जिउ ।
बुवइ जिणदासे जाणंते	कुलमइलणु हउं खदुधु कयते ।
एवहि ^{३६} मरणकालि जं किज्जइ	तं उवएसु कि पि महु दिज्जइ ।
सावयवयइ ^{३७} लेवि जिणदासे	पाण विसज्जिय पुणु सण्णासे ।
इह सो मरिचि जक्खु हुउ सुहमणु ^{३८}	कुंडल-कडय-मउडमंडियतणु ^{३९} ।
मह भाइहि ^{३९} कियसुरनरवंदणु ^{४०}	चरमसरीरु हवेसइ नंदणु ।
इय कज्जे नबइ हरिसियमइ ^{४१}	घार-वार नियगोत्तु ^{४२} पसंसइ ^{४३} ।
विज्जुमालि सुरु ^{४४} लच्छिपउत्तहो	नंदणु अरुहयासु वणिउत्तहो ।
जंबूसामि नाम उप्पज्जिचि	तउ लेसइ घरवासु विसज्जिचि ^{४५} ।

सुख्यात (सार्थक) नाम छोड़ हूँ । इसप्रकार पहलेसे ही पैज करके वह उसके प्रति ईर्ष्या (द्वेष) युक्त हो गया । इसप्रकार दोनोमे निरगल (निर्वाध) झगड़ा बढ़ा, और बुयाड़ीने जिनदासको कटारीसे आहत किया । तब जिनदासको भूमिपर पड़े हुए और आँते निकली हुई देखकर 'छलक' अपने प्राण लेकर भाग गया ॥ २ ॥

[३]

और इधर उस दुःखद वृत्तातको सुनकर अरहदास जिनदासको घर ले गया । आँतोंको धोकर (अन्दर करके—टि०) ब्रणको सिलवा दिया । तब जेठे भाईने कहा—घूतका फल पा लिया । तू निर्मल श्रावककुलमे उत्पन्न हुआ, परतु हे वंधु ! तूने एक भी व्यसन नहीं छोड़ा । बड़े भाईकी इस बातको जानकर जिनदासने कहा—कुलको मलिन करनेवाला मैं कृतान्तसे खा लिया गया । अब इस मरण-समयमे जो करना चाहिए, ऐसा ही कुल उपदेश मुझे दीजिए । फिर जिनदासने श्रावकव्रत लेकर संन्यासपूर्वक प्राणोंका त्याग किया । वही (जिनदासका जीव) मरकर यहाँ शुभमनवाला, कुंडल, कड़े और मौड़ (मुकुट) से आभूषित गरीरवाला यक्ष हुआ है । 'मेरे भाईको सुर-नरवंधु चरमशरीरो पुत्र होगा', इस कारणसे हर्षितमन होकर यह वार-वार अपने गोत्रकी प्रशंसा करता हुआ नाच रहा है । यह विद्युन्माली देव लक्ष्मीवान् (पत्त ?) वणिक्पुत्र अरहदासका प्रिय पुत्र होकर, जंबूसामि नाम उपाजर्ज करके, गृहवासको छोड़कर

३१. क ड ह्रमि, घ ल्हमि । ३२ क पई, ख ग ंजिव; घ पईजिव । ३३. क घ ड ईसिवि
 ३४ ख गे विहि मि । ३५ ख ग वट्टिय । ३६. घ ईयइ ।

[३] १ ख ग हि । २. व ंनेवि । ३. व दासें । ४ क ख ग ई । ५ क घ ड उ । ६ ।
 ड णिम्मलि । ७. क ख ग हि । ८. ख ग वयइ । ९. घ सत्तात्ति । १० क मई, घ गइ, ड मइ
 ११. क ड मडियकय; घ मंडियच्छइ । १२. क हि । १३ ख ग किर । १४ क घ ड मणु । १५
 घ ड भोत्त । १६. क घ ड सणु । १७. ख ग सुर । १८. क घ ड विव ।

वत्ता—जय निम्मलसासण जय जयमासण जयहि जिणेसर परमपर ।
दुत्तरभवतारउ देव तुहारउ चलणजुवलु^३ महु होउ थर ॥१॥

[५]

नमसेवि ^१ वीरं	महामेरुधीर ^२	तिलोयगशकं ।	
विलीणामुहाणं	जणभोरुहाणं	पवोहिक्कअकं ।	
सहाभासिरीए	थिराए सिरीए	समुहित्तेहं ।	
पडट्टो ^३ नरिंदो	मसामंतविंदो	पुरं रायगेहं ।	
जिणुहिद्धधम्मं	सरंतो सुकम्मं	सकंतो ससेणो ।	५
मयालोयणीणं	धणोच्चत्थणीणं	मणत्थाहत्थेणो ।	
हयाणेद्धसंधो	पराणं दुलंबो	फुरंतपयावो ।	
पचजंतदक्को	भडामुक्कहक्को	समुट्टंनरावो ।	
रमालीढवच्छो	निवाथारदच्छो	पयापालणिट्टो ।	
सुमाणिकफारं	महासीहद्वारं	सगेहं पडट्टो ।	१०
समगो ^४ सइत्तो	जिणंढम्मं ^५ भत्तो	सदाणो मभोओ ।	

के मनको रजित करनेवाले, आपकी जय हो । जय हो ! हे निर्मल-शासन (पवित्र धर्मोपदेण देने-वाले) तथा प्राणियोंको (सद्गतिरूपी) आशवासन देनेवाले देव ! आपकी जय हो ! हे जिनेवर ! हे परम + पर—परमात्मा आपकी जय हो ! और हे देव ! दुस्तर भवसागरसे पार उतारनेवाले आपके चरणयुगल मेरे वारक अर्थात् अभ्युद्धारक हो ॥ ४ ॥

[५]

त्रिलोकके अग्रभागपर विराजमान, महामेरुके समान वीर, जिनके अगुभक्तर्म क्षोण हो पये हूँ, ऐसे भव्यजनोरूपी कमलोंको प्रबुद्ध करनेके लिए एकमात्र सूर्य, ऐसे वीर भगवान्को नमस्कार करके सभाकी भास्वर करनेवाली स्थिर गोभासे देदीप्यमान देहवाला नरेंद्र जिनोपदिष्ट धर्म व सुकर्मका अनुस्मरण करता हुआ, सामंतवृंद तथा अपनी रानी एवं-सेना सहित राजगृह नगरमें प्रविष्ट हुआ । वह मृगलोचना तथा घने व ऊँचे स्तनोंवाली प्रमदाओंके मनसमूहरूपी घनको चुरानेवाला था । दूसरोंके लिए दुर्लभ्य ऐसे अनिष्टसंध अर्थात् शत्रुसंधको उसने नष्ट कर दिया था, एवं उसका प्रताप निरन्तर स्फुरायमान अर्थात् वृद्धिगत हो रहा था । दक्काके बजने व भटोकी छोड़ी हुई हांकोसे बड़ा कोलाहल हो रहा था । उसका वक्षस्थल राज्यलक्ष्मीसे आलिंगित था, और नृपाचार अर्थात् राजनीतिमें वह पूर्ण दक्ष था । इसप्रकार प्रजापालनप्रिय वह राजा सुंदर माणिक्योसे जगमगाते हुए महा सिंहद्वारसे अपने घरमें प्रविष्ट हुआ । स्वमार्ग अर्थात् स्वधर्ममें सावधान, जिनेद्रके भक्त दानशील व भोग (-साधनों) से युक्त पुरवासी लोग

१२ क घ ट जुयलु ।

[५] १. क णममेमि । २. घ वीरं । ३. क मृहा । ४. न्व ग घ पयट्टो । ५. क जणु । ६. क ट ससिणो । ७. क ट प्रणुवच्छणीणं । ८. घ ट वारं । ९. क ख घ ट समगो । १०. क घ ट जिणिदं ।

	निएसुं घरोसुं ^{१३}	ठिओ ^{११} सुंदरेसुं	पुरावासिलोओ ^{१०} ।
	तओ सत्तरत्ते ^{१३}	कमेणं पवत्ते ^{१३}	सुहापंडुधामे ^{१०} ।
	विराथनचित्ते ^{१४}	सदित्ते पवित्ते	वरे वासधामे ^{१०} ।
१५	च उत्थम्मिजामे	तर्मांससरामे	सिए णं मयंके ।
	पढावेददण्णे ^{१८}	सुअंघे ^{१९} सुवण्णे	सुहे तूलियंके ^{१०} ।
	घत्ता—सिचिणउ ^{२१}	निब्भाइउ ^{२३}	संगलराइउ ^{२३}
	लायणगुहामण ^{२५}	जिणमइनामण ^{२५}	अरुहयासकुलउत्तियए ^{२०} ॥५॥

[६]

	दीसइ जंबूफलनिउमंत्रं	गंधायडिदयममरकुडंवं ^३ ।
	धगधगंतजोडयसत्तवासं	निद्धमं जलतसत्तवासं ।
	सहलसालिछेत्तं सुहगंधं	महमहंतमरु-पूरियरंवं ^३ ।
५	कूडयचकमरालवलार्यं	पप्फुस्त्रियसयवत्तलार्यं ।
	मयरमच्छकच्छवपायारं	रयणाडणं ^{१०} पारावारं ।
	नियभत्तारहो जं जिह् विट्टं	पडिबुद्धण पहाण तं सिट्टं ।
	तं सोऽण्णाणं ^{१०} दियभाओ	सेट्ठि समज्जो सचणसहाओ ^{१०} ।
	गयउ तुरंतउ ^{१०} दुक्कियनासं	जिणवरमंदिरि महरिसिपासं ^{१०} ।

अपने-अपने सुंदर घरोंमें स्थित हो गये । तदनन्तर क्रमज. सातवी रात्रि आनेपर चूनेसे पूते हुए; चित्रोंसे सजे हुए व दीप्तिमान और पवित्र श्रेष्ठ निवासगृहमें रात्रिके अवसानमात्र जेप चौथे प्रहरके रमणीय समयमें, मुगांकके समान बबल, सुंदर चादरसे ढके हुए, मुगंधित व उत्तम रई-के गद्देपर पलंगके ऊपर सोती हुई, उद्दाम लावण्यवती जिनमती नामकी अरुहदासकी कुलपुत्री (कुलवधू) ने ये मांगलीक स्वप्न देखे ॥५॥

[६]

उसने अपनी गंधसे भ्रमरकुलको आर्कषित करनेवाले जंबूफलोका गुच्छा देखा । घग-धग करके जलते हुए समस्त दिशाओंको प्रकाशित करनेवाले निर्धूम-अग्निको देखा । फूले हुए शालिक्षेत्रको देखा, जिसकी शुभगंधसेयुक्त पवन समस्त रंघोंको पूरता हुआ सर्वत्र प्रवृत्त हो रहा था । चक्रवाक, हंस, और बलाकाओंके कूजनसे युक्त फूले हुए कमलसरोवरको देखा, तथा मगरमच्छ और कच्छपोके संचारसे युक्त एवं रत्नोंसे पूर्ण उदधिको देखा । उसने जो जैसा देखा था, वैसा प्रभातमें जागने पर अपने भर्तारको कहा । उसको मुनकर प्रसन्नचित्त होकर श्रेष्ठी तुरन्त अपनी पत्नी तथा स्वजनोके साथ जिनमदिरमें पापोका नाश करनेवाले महर्षिके

११. घ ठिउं । १२. क ड पुरं । १३. क व ड रतो । १४. क घ ड त्तो । १५. क च ड धामो । १६. क ड विराणत्तं, क चित्तो । १७. क ड धामे । १८. क घ ड पडवेदिं, च छत्ते । १९. क घ ट मुयवे । २०. क ड त्तलिं, ख ग सुहि त्तुलिं । २१. व णंत्ते । २२. क ख ग क्क यउ । २३. क ड रत्तयव । २४. ख ग वड । २५. क घ ड हामड । २६. क घ ड वड्ढामडं । २७. क घ यंत्तं, ड यड ।

[६] १. व कुडुवं । २. क ड जोडलं । ३. घ गंत्तं । ४. ख ग लाए । ५. व उडलं । ६. क घ ड भावो । ७. क घ ड सहावो । ८. क घ ड तुरतो । ९. क ड णामे, ख ग नात्ते । १०. क ख ग ट पात्ते ।

पणवेषिणु भक्ति ए नउर-हियं
भयवंतो^{१२} साहइ परमन्थं
जंबुफलालोए गुणजुत्तो
दिट्ठे^{१४} जलणे^{१०} जालइ कम्मं
सरवरदंसणे रयणाहारो

सुडणालोयं^{११} सव्वं कहियं ।
अरुहयास निमुणहि^{१३} सिव्णिणत्थ । १०
रइवइरूयो^{१५} होसइ पुत्तो ।
सालीलित्ते^{१८} लच्छीहम्मं ।
उवहिण्ण भवसमुद्दगयपारो ।

घत्ता—तव^{११} होसइ नंदणु नयणाणंदणु सोलहवरिसपमाणु पुणु ।

घरवासु चएसइ दिक्ख लएसइ चरमसरीरु महंतगुणु^{२०} ॥६॥ १५

[७]

तं निमुणेवि हरिसिउ वणियवरु
तहि काले देउ तडिमालि चुओ
गुरुहारइ^३ अंगइ^४ लालसइ
आपंडुरु मुहं निज्जिणइ^५ ससि
णं मरगयकलसहिं^६ सेहरिया
णं विण्णि चडिण्ण मऊरवरा
अहवइ हंसु^{१२} च सोहंति सुहा

मुणि नविवि सपरियणु गयउ वरु ।
गन्धमन्तरे जिणमइहे^७ हुओ ।
वहुद्विसहिं^८ जायइ सालसइ ।
सियथण ह्य णं मुहं दिण्णमसि ।
रूपमयकुंभं^९ लच्छिण धरिया^{११} । ५
मयरद्वयधवलगेहसिहरा ।
चंचुक्खयपंफिलकंदमुहा^{१३} ।

पास गया । भक्तिपूर्ण नम्रहृदयसे प्रणाम करके सारे स्वप्नदर्शनको वतलाया । वे भयवन् स्वप्नोका परमार्थ इसप्रकार कहने लगे—अरुहदास । स्वप्नोका अर्थ सुनो । जवूफलोके देखनेसे तुम्हे गुणवान् व कामदेवके समान रूपवाला पुत्र होगा । अग्नि देखनेसे वह कर्मोको जलायेगा और शालिक्षेत्र देखनेसे (केवलज्ञानरूपी) श्रेष्ठ लक्ष्मीका धाम होगा । सरोवर देखनेसे वह (सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र्यरूप) रत्नोका धारक होगा, और उदधि देखनेसे भवसमुद्रसे पार होगा । तुझे नेत्रोको आनंद देनेवाला पुत्र होगा, जो गृहवास छोडकर दीक्षा लेगा, व महान् गुणोका धारक चरमगरीरो होगा ॥६॥

[७]

उस स्वप्नफलको सुनकर वणिक्वर हर्षित हुआ और मुनिको नमस्कार करके परिजनोके साथ घर गया । उसी समय विद्युन्माली देव स्वर्गसे च्युत होकर जिनमतीके गर्भमे आया । उसके गुरुभारसे जिनमतीके कोमल अंग कुछ ही दिनोमे आलस्ययुक्त हो गये । उसका पांडुरवर्ण मुख चद्रको जीतने लगा, और श्वेत स्तनमुख ऐसे काले हो गये मानो उनके मुँहपर स्याही लगा दो गयो हो अथवा मानो लक्ष्मीने मरकत्तमणि कलशोको सबसे ऊपर शिखररूपसे रखकर रजतमय कुंभ धारण किये हो, अथवा मानो मकरध्वजके प्रासादशिखरपर दो मयूर चढे हो, अथवा वे ऐसे श्वभ्र हंसोके समान शोभित हो रहे थे, जिनके मुखमे चंचुसे खडित

११. ख ग सुयणा । १२ क वंता । १३ घ ण्हि । १४. क ड सुयं, घ मुइ । १५ क ड रडवरं ।
१६. घ दिट्ठं । १७ घ णं । १८. क घ ड साल्लित्ति वर । १९ क घ ड तड । २० क ड मट्टुं ।

[७] १. क छ देव । २ ख ग वड्ठे, घ वड्हि । ३ ख ग घ ड रड । ४ ख ग ड । ५ क सहि । ६. क घ ड आवं । ७ क घ ड णडं । ८. ग तं । ९ कलियहिं । १० ख ग ण्णयमयं ।
११ क ड धरिया । ११ क घ ड हंन । १३. ख ग कटमुहा ।

गद्मभेण विराड्य^{१४} गद्मभवइ
 १० णं नवपयपुण्णपओहरिया
 पंचमिह^{१५} वसंत^{१०} पक्खे धव्वले
 पच्चूसे पसूय सलक्खणड^{१६}
 घत्ता—वद्भावणत्तूरहिं दसदिसपूरहिं^{१७} काई नयरि तहिं^{१९} वणिययइ^{२०} ।
 गायंत-पढंतहिं जणहिं नडंतहिं कण्णपडिड^{२३} नायणियइ^{२५} ॥७॥

[८]

अलंकियनिसंतेण तरुणारुणदित्तेएण बालेण पसरेंण वा तेण
 सूयाहरे दिण्णोदीवोहदित्तीनिहित्ता सुवूरे किया निप्पहा ।
 विद्धिवद्भावणावंतलोएहिं वज्जंतपडुपडहखरतरडसरभंदधहुमद्दुहाम^३ कलवेणुवीणाण्णुणी
 सालकंसालतालानुसारेण आणंद्दरमत्तधुम्मंततरलच्छिनच्चत्तं—
 ५ तरुणीमहाथट्टसंचट्टुत्तुत्तआहरणमणिमंडिया चउप्पहा ।

कीचडयुक्त कमल-कद—कमलाकुर हो । वह विशुद्धमति गर्भवती उस गर्भसे इसप्रकार शोभित
 हुई जैसे दानसे समृद्धि । पासमे स्थित ज्येष्ठाओ अर्थात् (प्रसवकर्ममे कुशल) वृद्ध परिचारि-
 काओ, व नये दुग्धसे युक्त पयोधरोसे वह ऐसी लगती थी, मानो ज्येष्ठा (नक्षत्र) के
 पासवाली, नये जलसे परिपूर्ण पयोधरोसे युक्त पावस-श्री ही हो । वसतमासमे शुक्लपक्षकी
 पचमीको निर्मल-चंद्रमाके रोहिणी नक्षत्रमे स्थित होने पर उसने प्रत्युषकालमे रोहिणी नक्षत्रमे
 शुभलक्षणोसे युक्त, व कुलके लिए कल्याणकारी और जगद्वल्लभ अर्थात् सर्वलोकाप्रिय पुत्रको
 जन्म दिया । उस नगरीका क्या वर्णन किया जाये जहाँ कि दशो दिशाओको पूरनेवाले बघाईके
 तूरो और मगलगान गाते व पढते तथा नृत्य करते हुए लोगोके कारण कान पडा कुछ सुनाई
 नही देता था ॥७॥

[८]

तरुण, अरुण व दोप्त तेजवाले बालरविने अपने तेजके प्रसारसे निशात अर्थात् उप-
 कालको अलंकृत किया, अथवा मानो उस सिंशुने ही अपने अति आरक्तवर्ण व दोप्तिमान तेजके
 प्रसारसे निशात अर्थात् राजगृह (टि०) को अलंकृत किया, तथा प्रसूति-गृहमे जलाये हुए
 दीपकसमूहसे उत्पन्न दीप्तिको अपनी देहकातिसे निष्प्रभ करके दूर कर दिया । सुख, समृद्धि
 एव अभ्युदयकी बघाई देनेवाले लोगोके द्वारा बजाये जानेवाले पटुपटह, तीखे तरड, मदस्वरवाले
 बहुतसे मर्दल, और उहाम व मधुर वेणु तथा वीणाकी ध्वनि एवं साल व कसालकी तालके
 अनुमार आनदसे ईषन्मत्त हुई, धूमती हुई व नाचती हुई चंचलाक्षी तरुणियोके महासमूहोके

१४ क यड । १५ क र ग ड आसण्णं । १६ क ड पचमि, घ पचमिहिं । १७ क ड विवसत,
 ख ग घ वसत । १८ क घ ड णड । १९. घ ड उ । २० क घ ड दसदिसिं । २१ र ग तहिं ।
 २२. घ वणियड । २३ क ड वडिड, घ कड । २४. घ नायणियड ।

[८] १ घ दिस । २ ख ग मरमदलुहाम । ३ र ग नच्चत्तिं ।

छद्दियपडिपट्ट-पट्टोल-पंडोपहावतनेत्तेहि संछद्दयमंडववियाणेसु
 लंवंतमुत्ताहलादाम-झुल्लंतमाणिक्कुंजुक्कसकावहायार-
 पसरंतकिरणावलीजालचित्तलियघरपंगणं ।
 सेट्टिणा कणय-धणरयणवरवत्थविट्ठी^५ सम्माणिए सयल्लोयम्मि
 छट्टे णिणे^६ राइजायरणपमुहुच्छवे सुरवराणं पि चित्ते चमक्कारिणी १०
 का त्रि अंबडण^७ अण्णासिरी एव^८ नयरंतरं तत्थ जायं जणाणंद्दवद्धावणं ।

अवि य-अकत्तिए निरंतरंतरं हुयं निरट्टभसंयंरंवरं ।
 अपाउसे असारयं रयं धरायले^९ ण्व निक्खयं^{१०} खयं ।
 अयालरुक्खसंतई तई पहुल्लिया वणासई सई ।
 सुवण्णविट्ठीभासुरासुरा मुअंति^{११} तत्थ सासुरा सुरा । १५
 घत्ता-कल्लाणपरंपरे इसम^{१२} वासरे सवणसुहावणु हिययपिउ ।
 जंयुहलनिवेसे सिविणुदेसे^{१३} नामे जंयूसामि किउ^{१४} ॥८॥

[९]

दिणे दिणे देहरिद्धि परिवडडइ^१ वीयाइंदु व वालु विगडडइ^२ ।

परस्पर सघट्टनसे टूटते हुए आभरणोके मणियोसे चतुष्पथ मडित हो गये । लटकाये हुए प्रतिपट्ट व पटोल, पाड्य देश निमित्त नेत्र नामक वस्त्रोसे छाये हुए मंडपवितानोमे लटकती हुई मुक्ता-फलोकी मालाएँ व झूलते हुए माणिक्यके झूमकोसे फैलते हुए इद्रामुधके समान पचवर्ण किरण जालसे घर-प्रागण चित्रित जैसे हो गये । श्रेष्ठीके द्वारा धान्य, धन, रत्न व उत्तम वस्त्रोकी वर्षा अर्थात् अपरिमाण भेट द्वारा सब लोगोका सन्मान किये जानेपर छठे दिन रात्रि-जागरण प्रमुख उत्सवके समय देवताओके चित्तको भी चमत्कृत करनेवाली कोई अपूर्व ही शोभा उस नगरमे अवतीर्ण हुई, और इस प्रकार लोगोका आनंद वढा ।

और भी- कार्तिक नहीं होनेपर भी आकाश निरतिशयरूपसे अभ्रमुक्त हो गया; तथा वर्षाकाल नहीं होनेपर भी असार (क्षुद्र) रज मानो धरातलमे पूर्ण उपशमको प्राप्त हो गया । उससमय काल (ऋतु) नहीं होनेपर भी न केवल वृक्षसंतति, बल्कि समस्त वनस्पति स्वयं प्रकृषितासे प्रफुल्लित हो उठी, और असुरकुमारो सहित देवोर्ने वहाँ सुराके समान भास्वर सुवर्णकी दृष्ट की । इसप्रकार निरंतर मंगल मनाते हुए दसवे दिन स्वप्नमे जवूफलोके दर्शन और उसके फलके कथनानुसार श्रवणसुखद व हृदयको प्यारा जवूसनामो नाम रखा गया ॥८॥

[९]

प्रतिदिन बढती हुई देह-ऋद्धि अर्थात् दैहिकसौंदर्यके साथ बालक द्वितीयाके चद्रमाके

४ क ड सल्लवियं । ५ क घ ड विट्ठीए । ६ ख ग रायं । ७ घ डड । ८ घ ड एम । ९ घ धरणेवक ।
 १० क छ ति । ११ ख ग मयति । १२ क घ ड मड । १३ ख ग घ ट्टेसि । १४ ख ग कियउ ।

[९] १ क घ ड यडडइ । २ ख ग पवं ।

जंतु जंतु महणइवित्थारु ^३ व	सूयमाणपिंगलपत्थारु ^३ व ।
विचरियंतु ^४ विउसहिं वायरणु व	वारहविहतवेण मुणिचरणु व ।
अडुवरिसकपेण कुमारे	पुण्णारवजियविज्जापारे ।
गुरुपाठपानिमित्तमंतत्थइ ^५	जाणियाइ ^६ पडियाइ ^७ व ^८ सत्थइ ^९ ।
संपाइयतिग्गराफल रसियउ	नीसेसाउ कलउ अउभसियउ ।
जिहू जिहू तरुणभाषे संलग्गइ ^{१०}	रुवभिक्ख ^{११} तिहू रइवइ मग्गइ ^{१२} ।
हउ ^{१३} भूसिउ किर एण कुमारे	अप्पउ सलहिज्जइ सिगारे ।
बहुकालेण थिराए सइत्ति ^{१४}	तिहुअणभमि ^{१५} गमु सज्जिउ कित्ति ^{१६} ।
१० नरसंक्रमणपरंपरचत्रलए ^{१७}	किउ वीसामथासु ^{१८} थिरु कमलए ^{१९} ।
घत्ता—सहुं रायकुमारहिं ^{२०} पेसणयारहिं ^{२०} परिमिउ ^{२०} रायलीलधरइ ^{२०} ।	
उवहुजियभोयहिं ^{२०} परमविणोयहिं ^{२०} नाणाविह-कीलउ करइ ।	
	[१०]
चञ्जरु तं न तं न ^२ घरु ^३ राउलु	तं न ^२ हट्टु उज्जाणु न देउलु ।
जेत्थु न जंबूसामि वणिणज्जइ	गिज्जइ नच्चिज्जइ न पडिज्जइ ।

समान इसतरह बढने लगा, जैसे जाते-जाते महानदीका विस्तार, दिन-दिन फूलता हुआ चक्र-वर्तीका कोश, अथवा सुनते-सुनते पिंगल-ग्रंथका विस्तार, विद्वानोके द्वारा व्याख्या किया जाता हुआ व्याकरण, और बारहविध तपसे मुनिका चारित्र्य बढता है आठ वर्ष आयु होनेपर कुमारने सकल विद्याओका पार पा लिया। गुरुके पढानेके निमित्तसे उसने मंत्रार्थो अर्थात् सूत्रोके मंतव्योको और शास्त्रोको पहलेसे ही पढे हुएके समान जान लिया। त्रिवर्गफल अर्थात् धर्म, अर्थ व कामका सपादन करनेवाली और (चित्तमे) रस अर्थात् आनंद उत्पन्न करनेवाली नि गेव कलाओका अभ्यास कर लिया। जैसे-जैसे वह तरुणावस्थामे प्रवेश करने लगा, वैसे-वैसे रतिपति (कामदेव) उससे रूपभिक्षा मागने लगा— इस कुमारसे सचमुच मै भूषित हो गया, क्योंकि श्रृंगारसे ही अपनी सराहना होती है। बहुत कालसे स्थिर सोयी हुई उस कामदेवकी कीर्तने त्रिभुवनमे भ्रमणके लिए गमनकी तैयारी की। परंपरासे ही एकसे दूसरे मनुष्यमे संक्रमण करनेके चंचल स्वभाववाली कमला (लक्ष्मी) ने जंबूस्वामीरूपी कमलमे स्थायी विश्राम-स्थान बना लिया। आज्ञाकारी राजकुमारोसे विरा हुआ वह जंबूकुमार राजलीलाको धारण करता हुआ व भोगोको भोगता हुआ, परम विनोदपूर्वक नाना प्रकारकी क्रीडाएँ करने लगा ॥ ९ ॥

[१०]

ऐसा कोई चौक नहीं था, न घर और न राजकुल, न हाट, उद्यान और न देवकुल जहाँ जंबूस्वामीका वर्णन नहीं किया जाता, तथा उसका नाम ले-लेकर गाया, नाचा व

३. क महणइ^० । ४ क ड विउरि^० । ५ ड सुममत्थइ । ६ क याइ, ड जाणिया य । ७ क ड पठिया इव, घ पठिया डव । ८ क ड इ । ९ क ड रमि । १० क म्गइ । ११ क रूप । १२. घ ड । १३ ख ग हउ । १४ ख ग सए । १५ क घ ड तिहुयणु । १६ क ड वज्जलउ, र ग च वलइ । १७ क ड बोसमण, र ग वीसामु थाम । १८ क ड लउ । १९ घ रिहिं । २० र ग मारिहिं । २१ र ग परिमिउ । २२ क ड ।

[१०] १. क ख ग ड त ण्ण । २ र ग घ र । ३ घ वत्ति । ४ क ट पटि ।

धवलजसेण भुअणु^५ धवलीकिउ णं छणससिजोण्हारसलिपिउ^६ ।
 कवणु हत्थि जो अत्थि न सुरकरि^७ सा सरि कवणं न हुय जा सुरसरि^८ ।
 सो मणि कवणु जो न सुत्ताहलु सो न गिरिउ जो न तुहिणायलु ।
 सो कहि^९ पक्खि हंसुहुउ जो नहि^{१०} कवणु समुदु जो न खीरोवहि ।
 जो न वि सेसु कवणु सो विसदरु पायउ कवणु^{११} न लुह-महातरु ।
 दंसणे खुहिउ^{१२} नयरनारीयणु मयरद्वयसरपहर^{१३} सवेयणु ।
 घत्ता—क वि त्रिहं कपडु सुणउ^{१४} जंपडु^{१५} नियउ कुमारे हिययधणु^{१६}
 मइ दुक्खवसहावडु^{१७} विमड भावइ^{१८} वीयउ अत्थि कि कहि मि मणु ॥१०॥ १०

[११]

काहि वि विरहाणलु^१ संपलित्तु अंसुजलोहलिउ^२ कवोले^३ खित्तु ।
 पल्लइ हत्थु करंतु सुणु^४ दंतिसु चूडल्लउ चुणु^५ चुणु^६ ।
 काहि^७ वि हरियंदणरसु रमेइ लगंतु अंगे छमछमछमेइ ।

(स्तुतिपाठ) पढ़ा नहीं जाता । उसके धवल यगने भुवनको इसप्रकार धवलीकृत कर दिया, मानो पूर्णचंद्रमाके ज्योत्स्नाहृषी रससे लीप दिया गया हो । ऐसा कौनसा हाथी था जो (उसके धवलयगसे अभिभूत होकर) ऐरावत न हो गया हो, ऐसी कौन-सी नदी थी जो सुरसरि गंगा न हो गयी हो; ऐसा कौनसा मणि था जो मुक्ताफल न हो गया हो और ऐसा कोई पर्वत न था जो तुहिनाचल अर्थात् हिमालय न हो गया हो, ऐसा कोई पक्षी कहाँ था जो हंस न हो गया हो, और ऐसा कौनसा समुद्र था जो क्षीरोदधि न बन गया हो; जो शेष (नाग) न बन गया हो, ऐसा विपवर कौन रह गया था; और ऐसा पादप कौनसा था जो लोध्रका महावृक्ष नहीं बन गया था । उसके दर्गनसे नगरकी नारियाँ मकरध्वजके गरप्रहारकी वेदनासे क्षुब्ध हो उठी । कोई विरहसे कांपने लगी; व गून्य भावसे आलाप करने लगी कि भेरा हृदयरूपी धन तो इस कुमारके-द्वारा ले लिया गया, फिर भी जो मुखे दुःखका सहन (वेदन) कराता है, उससे मुखे विस्मय होता है, कि कहीं कोई दूसरा भी मन (हृदय) है क्या (जो इस कुमारके साथ नहीं गया) ? ॥१०॥

[११]

किसी कामिनीका विरहानल प्रदीप्त हो उठा, और वह अश्रुजलके पूरके द्वारा कपोलों पर विखर गया । कोई गून्य वनाती हुई हाथको घुमाने लगी जिससे उसका दाँतका वना चूडा चूर-चूर हो गया अथवा कोई इस तरहसे हाथ घुमाने लगी जिससे उसका हाथीदाँतका वना चूडा हाथको शून्य करके (अर्थात् हाथसे गिरकर) चूर-चूर हो गया । किसीने लालचंदनका

५ क व ड भुवणु । ६ वं जोण्हारसं, ख गं जोण्हारसिं । ७ क व ड कवणु णं (व न) अत्थि हत्थिं; ख ग कवणु ण हत्थि अत्थिं । ८ ख ग णु । ९ ख ग मरे । १० ख ग कहि । ११ क ड णहिं; ख ग नहिं । १२ घ ज न्न । १३ क जोदु, घ न गोहं, छ न जोदु । १४ क व ड दसणं । १५ क व ड पहर । १६ व सुन्नउ; ड उ । १७ ख ग ड । १८ ख ग हियउ १९ क ड वडं । २० ख ग ड ।

[११] १ व नलु । २ ख ग मे 'लित' नहीं । ३ क व ड ल । ४ व डु । ५, घ काहिं । ६ क ड मेइ ।

- रत्तंदणेण क वि सुसइ सित्त नं कामभल्लि-लोहियवचित्त ।
 ५ क वि कंजपुंजु पयरइ सलील दरिसावइ कामकरेणु कील ।
 द्वियउल्लउ विरहे खयहो^{१०} जंतु नोसामुल्लिच्चणु^{११} जइ न हुंतु ।
 शुइमुहरवंदिसंदोहसारु^{१२} रच्छाणु^{१३} जंतु जाणेवि कुमारु ।
 वाहुलयनिविसियकंचुयाणु^{१३} कंठालु न^{१४} पारिय देवि ताणु ।
 चत्तालियाणु^{१३} गलि न किउ हारु अद्धंजिउ एक्कु जि नयणु फारु ।
 १० एक्कु जि चलउल्लउ करि करंति विलुलियकवरीभरथरहरंति^{१५} ।
 असमत्तमंडणुम्मायभग्ग फलिहुल्लयतोरणखंभे लग्ग ।
 पयडियथण अहरु डसंतिवाल मयजलभरंत जंघंतराल ।
 वोल्लइ कुमारु थिरु थाहि ताम तव^{१६} रुवे लिहमि अणंगु जाम ।
- घत्ता—कुलसोलसउण्णउ^{१०} सियलावण्णउ^{१०} कुंदधवल्लु जसु नहे चडइ^{१८} ।
 १५ केवल-तित्थयरहो नरहो न अवरहो सावण्णहो^{११} जणे संवडइ^{३०} ॥११॥

[१२]

अह तेत्थु जि जिणपयकमलभत्तु पुरि निवसइ सेट्ठि समुददत्तु ।

लेप लगाया जो उसके शरीरमें लगते ही (विरहतापके कारण) छमछम करके चटक गया । कोई रक्तचदनसे सीची जानेपर भी सूखने लगी, और ऐसी लगी मानो कामदेवकी लोहूसे लिप्त बरछी ही हो । कोई लीलापूर्वक कमलपुंजको विखेरने लगी, और इसप्रकार कामोन्मत्त हस्तिनीके समान ब्रीडा दिखलाने लगी । बेचारा क्षुद्र हृदय तो विरहसे क्षय ही हो जाता यदि विरहानलके तापको बाहर निकालनेके लिए निःश्वास रूपी रहुट-यंत्र न होता । स्तुतिमुखर वंदीसमूहसे उस श्रेष्ठकुमारको रास्तेमें जाते हुए जानकर कोई जो कंचुकको वाहुओमें पहन चुकी थी, वह उसे कठमै नहीं पहन पायी । कोई उताबलेपनके कारण गल्लेमें हार नहीं डाल सकी और अपने एक विगाल नेत्रको भी अबूरा ही अंजन लगा पायी । एक बलयको हाथोंमें पहनती हुई, केशपाशको लहराती हुई, तथा (कमोत्तेजनासे) कापती हुई, मंडनकर्मको पूर्ण किये बिना ही कामोन्मादसे पीडित होकर स्फटिकमय तोरणस्तम्भसे जा लगी । कोई वाला जिसके स्तन प्रकट हो रहे थे और जिसकी जघाओका अन्तराल मदजल (रजस्राव) से भर रहा था, वह कुमारको कहने लगी—जरा तबतक ठहर जा, जबतक मैं तेरे रूपको अनुकृतिसे अनगको लिख लूं (चित्रित कर लूं) । उस कुलशौलसे संपूर्ण कुमारकी सौंदर्यलक्ष्मीका कुंदपुष्पके समान धवलया आकाशमें चढ गया । केवली या तीर्थकरके अतिरिक्त लोगोमें अन्य किसी सामान्य व्यक्तिको ऐसा सौंदर्य प्राप्त नहीं होता ॥११॥

[१२]

उसी नगरीमें जिनभगवान्के चरणकमलोका भक्त समुद्रदत्त नामका श्रेष्ठी रहता था ।

७. क घ ड वियं । ८ ख ग करेण । ९. प्रतियो में 'विरहिं' । १०. क ड विउउ । ११. क ट ल्लिच्चणु ।
 १२. र ग थुइमुहरं । १३. क घ ड ड । १४ प्रतियो में 'ण' । १५ क ट विलुलियकवरीभयं ।
 १६. ख ग घ तउ । १७. क घ ड ण्णउ । १८ क ड । १९ घ नहो । २० क ड सचउड, र ग सावडइ ।

पिययम पउमावइ पउमवण^१ पउमसिरिनाम^२ तहो पवरकण्ण ।
 वीयउ कुवेरदत्ताहिहाणु मालंतकणय-कंतासमाणु ।
 उप्पण तासु कणयसिरि दुहिय वियसियसयवत्त-ससंकमुहिय ।
 वइसवणु^३ तइउ वइसवणजुत्ति^४ पिय विणयमाल विणयसिरिपुत्ति । ५
 धणयत्तु^५ च इत्थल कुवलअच्छि^६ विणयमइ-भज सुय-रुवलच्छि ।
 एयाउ चयारि कुमारियाउ भल्लिउ मयणेण व फेरियाउ ।
 गन्धे वि ठियउ पडिन्नणिगाउ^७ पियरेहिं कुमारहो दिणियाउ^८ ।
 पइ होसइ जाणिवि भुणणसारु नीसेससत्थसंपत्तपारु ।
 इय कजे^९ कोउहलेण^{१०} ताउ नाणाविह-विज्जउ सिक्खियाउ । १०
 भासातय-लक्खणु-लक्खु मुणिउ^{११} दंसण-नएहिं सहुं तक्खु मुणिउ^{१२} ।
 छंडालंकार-निघंटसत्थु धम्मत्थ-कामकारणु पसत्थु ।
 गाएव्वउ नच्चेव्वउ सच्चित्तु वीणाइयज्जु^{१३} जाणिउ^{१४} विच्चित्तु ।
 अवराइ^{१५} मि मुणियइ जाइ जाइ को लक्खेचि सक्कइ ताइ^{१६} ताइ ।
 यत्ता—तियरयणचउक्कउ घडिचि विमुक्कउ अंगरक्खु धणु-घाणकरु^{१७} १५
 रइवइ तहो जडियउ दइवे घडियउ^{१८} विद्धइ^{१९} अवलोयंतु निरु^{२०} ॥१२॥

उसकी पद्मके समान गौरवर्ण पद्मावती नामकी प्रियतमा थी, उसे पद्मश्री नामकी श्रेष्ठ कन्या हुई। दूसरा कुवेरदत्त नामका था, उसको कनक(सुवर्ण)मालाके समान सुंदर कनकमाला नामकी काता थी, उसे कनकश्री नामक दुहिता हुई, जो विकसित शतपत्र व गंगांके समान मुखवाली थी। तीसरा वैश्रवण (कुवेरके) समान युक्तिवाला (अर्थात् धनके सवर्द्धन, संरक्षण एव संविभाजनमें कुशल) वैश्रवण नामका श्रेष्ठो था, जिसकी विनयमाला नामक भार्या, व विनयश्री नामकी पुत्री हुई। चौथा धनदत्त था, उसकी कुवलय अर्थात् नीलकमलके समान नेत्रोवाली विनयमती नामकी भार्या, व रूपश्री नामकी कन्या हुई। ये चारो कुमारियां मानो मदनके-द्वारा (लोकोपर) घुमायी हुईं वरछियां ही थीं। जब ये गर्भमें ही थीं, तभी इनके पिताओके-द्वारा ये कुमारके लिए दे दी गयी और इन्हे स्वीकार कर लिया गया। यह जानकर कि अगेष शास्त्रसंपत्का पारगामी व लोकमें श्रेष्ठ कुमार इन लोगोका पति होगा, इस हेतुसे इन सबको नाना विद्याएँ सिखायी गयीं। इन कन्याओंने तीनों भाषाओं (संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश—टि०) को जाना, लक्षणशास्त्र (व्याकरण) को जाना और उसके लक्ष्य अर्थात् साहित्यको भी जान लिया। दर्शनशास्त्र व न्यायशास्त्रके साथ तर्कशास्त्रको भी सुना। छंद, अलंकार व निघंटुशास्त्रको भी जाना, और धर्म, अर्थ व कामके प्रगस्त साधनोको भी जान लिया। विविधप्रकारका गाना व नाचना सीखा, और अनेकप्रकारका वीणादि वाद्य भी। और भी उन्होंने जो-जो कुछ सीखा, उस सबको कौन लक्ष्य कर सकता है (कौन कह सकता है)। विधाताने एक स्त्रीरत्नचतुष्क गढ़कर छोड़ दिया, और धनुष व बाणको अपने हाथमें

[१२] १ घंन । २ ख ग नामे । ३ ख ग वयं । ४ ख-ग वयसवणं । ५ ख ग म्मेत्तु
 ६ क व ड यच्छि । ७ घ पडिबन्निं । ८ घ दिन्निं । ९ क घ ड कज्ज । १० क कोहल्लेण,
 घ उ हल्लेण । ११ घ उ । १२ क ग म्मुं । १३ क व ड वीणावज्जु व । १४ प्रतियो में 'जाणिउ' ।
 १५ क ख ग ड राड । १६ क ताड ताड । १७ क वाणुं । १८ क यउ । १९ क व ड विवड ।
 २० क ड णरु, ख ग नरु ।

[१३]

तहुँ ^१ नवल्लु जोळवणु उम्मीलइ	मयणवाहु पारद्धि व कीलइ ^३ ।
घोलइ चिहुरभारु पठभारे	वगुरपासु व मंडिड मारे ।
आरंचिय विलुलइ अलयावलि	नं अणरौअंगुलिताणावलि ।
अद्धेदु व निलाडु ^५ संकिणणउ	मुड्डिगाहु धणुमळ्झि व दिण्णउ ^६ ।
५ वंकुज्जलु ^४ भूजुयलउ भाविउ	णं रइणाहुँ चाउ चडाविउ ।
तिक्खकळक्खनयणसरलाइय	जण वणयर विद्धंतुद्धाइय ^७ ।
नासावंसु सरलु जगु मोहइ	अहरमुइ करमुइ व सोहइ ^८ ।
कोमलज्जुणि ^९ वीण व झकारइ ^{१०}	धणुगुणु ^{११} मयरचिधु टंकारइ ^{१२} ।
अच्छकवोलजुयलु मुहं तडियउ	विहिं ^{१३} भायहिं ^{१४} ससिखंडु व ^{१५} घडियउ ।
१० रेहइदु कंतु कलु छज्जइ ^{१६}	विजयसंखु कंदप्पहो ^{१७} नज्जइ ।
वाहुजुयलु मुणि मणु वि विडंवइ ^{१८}	मालइदामु ^{१९} व कामहो ^{२०} लंघइ ^{२१} ।
उक्कुकरिय ^{२२} -सिहिणपीवरतड	रइवइरायहो ^{२३} नं मज्जणघड ।

धारण किये हुए मदनको भी निर्मित करके उसके अगदक्षकल्पसे उसीमे जड़ दिया, जो उसकी ओर देखनेवालेको निश्चित बोध डालता था ॥ १२ ॥

[१३]

उनका नवीन यौवन उन्मीलित होने लगा, मानो मदनके बाहु मृगयाके लिए क्रीड़ा करने लगे । उनका घना चिकुरभार ऐसा लहराता था, मानो मारने (कामीजनरूपी) पशुओंको फँसानेवाला फंदा ही सजाया हो । उनकी घुँघराली अलके इसप्रकार लोट-पोट होती थी, मानो अनंगकी अगुलियोसे उत्पन्न होनेवाली स्वर-लहरी हो । उनका ललाट अर्द्धचंद्रके समान संकीर्ण था, और मध्यभाग (कटि) ऐसा था, जो मूठ्ठीमें आ सके, जैसी कि धनुषके मध्यमे मूठ होती है । उनका भ्रूयुगल ऐसा बाँका व उज्ज्वल था, मानो रतिनाथने चाप खींचा हो । उनके सरल तथा तीक्ष्ण कटाक्ष युक्त नेत्र जनसमूहलूपी वन्य-पशुओंको वीचते हुए विस्तीर्ण होते थे । उनकी सुंदर नासिका सारे लोकको लुभाती थी, और अधरोक्ती मुद्रा (रचना) करमुद्रिकाके समान (वर्तुलाकार व अत्यन्त छोटी और पतली) गोभायमान थी । उनकी कोमलध्वनि वीणाके समान ऐसी झंझूत होती थी, मानो मकरध्वज धनुषकी डोरीकी टंकार कर रहा हो । मुख तक फैला हुआ उनका स्वच्छ-सुंदर कपोल-युगल ऐसा था, मानो दोनो ओर एक-एक चंद्रखंड ही निर्मित कर दिया गया हो । रेखाओसे युक्त उनका कोमल कंठ ऐसा शोभायमान था, जो कंदर्पके (त्रिभुवन-) विजयसूचक शंख जैसा जान पड़ता था । उनका बाहुयुगल मुनियोके मनको भी पीड़ा देता था, और ऐसा लगता था मानो मदनकी मालतीमाला ही लटकी हो । उनके खूब ऊपर उठे हुए स्थूल स्तन ऐसे थे, मानो मदनराजाके

[१३] १ क घ ड तहो । २ क इ । ३ घ अणंत । ४ क घ छ निडालु । ५ क ट ण्णउ, घ ण्णउ । ६ क ड ण्णउ, ष ड उज्जल । ७ क घ ड विवतु । ८ क इ । ९ क वीणज्जकार । १० क ड ण्णुण, ख ग वण । ११ क घ रइ । १२ क घ रइ । १३ ख ग विहिं । १४ हि । १५ क घ ट ननि लडि वि । १६ क इ । १७ ख ग, ण्हो । १८ घ मालइ । १९ ख ग घ कामु व । २० क इ । २१ क ग विकरिय । २२ ख ग रइवय ।

गुलियाधनु विणोष्ट^{२३} कामें क्रिउ^{२४} गुलियाठाणु नाहिमंडलु किउ ।
 अइकिणहें^{२५} दोहें लवरि गण^{२६} वद्धु वलित्तउ वररोमंचण^{२७} ।
 जणमणतुरयथट्टभामंतहो^{२८} कडियलु बाहियालि रइकंतहो । १५
 रंभागन्भोरयरइरामहो^{२९} तोरणखंभु व चम्महधामहो ।
 कुम्मायारु चलणजुयलुललउ दरत्रियसियपंकवपडितुल्लउ^{३०} ।
 घत्ता—अह ताहें सउण्णउ^{३१} तं लायण्णउ^{३२} जो वण्णइ^{३३} सो कवणु कइ ।
 जहि देसि न दिट्टउ ताउ अहिट्टिउ^{३४} तहि^{३५} उज्जलउ सुवण्णु जइ^{३६} ॥१३॥

[१४]

गाहाचउकं—रइविण्णओयैसंतत्तमयणसयणं व कुसुमसंवलियं ।
 धारंति ताउ विद्धुमहोरयंरइदंतुरं अहरं ॥ १ ॥
 एयाण वचणतुल्लो होमि न होमि ति पुण्णिमादियहे^३ ।
 थिरमंडलाहिलासो चरइ व चंद्रायणं चंदो ॥२॥
 चलणच्छविसामफलाहिलासिकमलेहि सूरकरसहणं । ५
 चिज्जइ तथं वं सलिले नियथं विसूण गलपमाणम्मि ॥३॥

स्नानघट ही हो । उनका नाभिमंडल ऐसा प्रतीत होता था, मानो कामदेवने विनोदपूर्वक गुलिया-धनुष (गुलेल) धनाया हो, जिसमें उनका नाभिमंडल तो गुलिया (गुटिका रखने-का स्थान) था और वलित्रयरूपी धनुष, जो उसके ऊपर चढी हुई विलकुल काली, दीर्घ एवं सुंदर रोमराजिरूपी प्रद्युंचासे बँधा था । उनका कटितल (नितम्ब प्रदेश) लोगोके मनरूपी अश्वसमूहको भ्रमण करानेवाले रतिकात (कामदेव) के अश्व ब्रीडास्थलके समान (अतिविस्तीर्ण) था । मानो वे रम्भाके गर्भसे उत्पन्न रतिके राम- (अर्थात् मन्मथ) के भवनके तोरणस्तम्भ ही थी । उनके कूर्माकार चरणयुगल ईपत् विकसित कमलपत्रके समान थे । उनके उस संपूर्ण लावण्यका जो वर्णन कर सके वह कौन कवि है ? यदि सारे देशमें कही उज्ज्वल व सुंदर वर्ण दिखाई नहीं देता, तो (निश्चयसे) उसने वहाँ उन कन्याओको अधिष्ठित कर लिया है ॥१३॥

[१४]

रतिके वियोगसे संतप्त (अतएव अति श्वेतवर्ण) मदनकी कुसुमोसे व्याप्त जैय्याके समान उन कन्याओके अधर विद्रुम और हीरककी शोभासे विलक्षण थे, अर्थात् विद्रुमवर्णके उनके अधरोष्ठ हीरकके समान धवल दंतपवित्तसे दंतुरित (स्फुरायमान) थे । 'पूर्णिमाके दिन भी मैं इनके मुखके समान होऊंगा या नहीं होऊंगा, इस गकासे ही मानो स्थिर (पूर्ण) मंडल-को अभिलाषा करनेवाला चंद्रमा मास भर चांद्रायणव्रत करता है । उनकी चरणच्छविकी तुल्यता चाहनेवाले कमलोके-द्वारा अपनेको गले तक जलमें डुबोकर सूर्यकी किरणोको सहते

२३ क घ ड विलोए । २४ क कामुकिउ । २५ ख घ किण्हें । २६ ख ग गण, व गणें । २७ क घर, ड धरं, ख ग रोमचिए । २८ क ड तुरियं, ख ग तुरिययट्टुं । २९ ख ग गन्भोर व र्थं । ३० क ड पकयदलं । ३१ क ख ग ड ण्णउं, घ श्रउ । ३२ क घ ड ण्णउ । ३३ क घ ड ङं । ३४ ख ग घ-डुउ । ३५ ड तहि । ३६ क जड ।

[१४] १ क ड रइविण्णओयै । २ ख ग होरडं । ३ व पुण्णिमां । ४ ख थियं ग पियं । ५ क ड हिलास । ६ क ड विं । ७ क व

सखवद्विखाइयलं नार्हादुग्गन्मि तिवलिपायारं ।

हरडञ्जनायक्रामो रोमावलिधुनिरं० लीणो ॥४॥

दोहउ—जाणमि एक्कु जि विहि यडड सयलु वि जगु सासयगु ।

१० जे पुणु आयउ निन्सविउं को वि पयावइं अणु ॥१॥

नं लाययगु नियवि नं जोळवणु धरि हासियळुवेरसंपययणु ।

सायरउत्तपसुहवणित्तहिं बुचइ अरुहयामु नयजुताइं ।

मित्त कुमारभावे रइवंतहिं क्रिय पइज्ज पंचहिं मि रनंतहि ।

एक्को पुनु होइ जइ वणगउ इयरहं चउहुं नि जायहिं कणउं ।

१५ तो सही णियरहिं दुहियउ देवउं तेण वि वरेण ताउ परिणवउ ।

पुणगवसेग उउु तुहं जायउ तिहुयगभनियकित्तितिविन्हायउ ।

अन्हहं पुणु मुणालकोनलकरु कणणचउकु जाउ लम्पवणधरु ।

संगइ पुणवभणित्तं पालिज्जउं पाणिग्गहणु कुमारहो किज्जउं ।

पभणइं अरुहयामु नासंभमि अज्जु कलि किर तुन्हहं संधमि ।

२० एवहिं तुन्हहं सई जि पुहु दुत्तउं लइ किज्जउं परिणयणु निरुत्तउ ।

ठविउ विवाहउरगुं धगरासिपुं अक्खयत्तइयदिवसे जोइसिपुं

हुए नानो तप संचय क्रिया जाता है । उनके रूपको देखकर कामवाणोसि विद्ध होनेसे (उपपर बृद्ध हुए) नहद्वेके द्वारा भस्म किया जाता हुआ कामदेव मानो उनके, नाभिके नीचेकी गहरी रेखाद्वरी छाईसे युक्त त्रिवलीद्वपी प्रकारसे धिरे हुए तथा रोमराजिके कारण वृत्रवपके, नाभि-दुर्गमें झिलीन हो गया है । मैं तो ऐसा समझता हूँ कि एक विवि (वह्मा) सारे लोक सामान्यको गदत्ता है, पर जिनने इनको गढ़ा है, वह तो कोई दूसरा ही प्रजापति है ।

(उन कन्याओंके) उस लावण्य और उस यौवनको देखकर धरमें कुवेरको धननंपत्तिका भी उपहास करनेवाले सागरउत्त प्रनूख न्याय नीतिवापु वणिक्पुत्रोंने अरुहदासको कहा— मित्र ! कुमारावस्थानें परस्पर प्रीतिवंत हम पाँचोंने क्रीड़ा करते हुए यह पैज (प्रतिजा) की थी, यदि एकको भग्यवपु पुत्र हो, व इतर चारोंको कन्याएँ हो जायें तो कन्याओंके पिताओंके द्वारा वे कन्याएँ उस- (पुत्रके पिता) को दे दी जानी चाहिएँ, व उसके द्वारा उन कन्याओंका अपने पुत्रमें परिणय करा दिया जाना चाहिए । पुणवण तुझे पुत्र हुआ है, जिसकी विख्यात-कीर्ति तीनों भुवनोंमें उमग करती है, और इधर हम लोगोंको मृगालके समान कोनल करवावानी लक्षणसंपन्न चार कन्याएँ हुई हैं । तो अब पहले कहे हुए का पालन किया जाये, और कुमारका पाणिग्रहण कर लिया जाये । अरुहदासने कहा— 'मैं स्वयं तो कुछ निश्चय करता नहीं, आज या कल आप लोगोंकी ही लीज करता । तो लीजिये, अपनी स्वयं आप लोगोंने प्रकटहंसे जैसा कहा, उदनुसार परिणय निश्चित कर दीजिये । धनरागिमें मुक्कपय-

८. ख ग ङको । ९. क रो । १०. क घ ङ भूमिरो । ११. प्रतिगोमें जि । १२. क निन्सिउ, घ ड निन्सिउ । १३. क ङड । १४. क व ड अट्टु । १५. क व ड निएकि । १६. व हि । १७. व ट उ । १८. ख ग हु । १९. क हि । २०. ख ग ङहे । २१. ख ग वेविउ । २२. न ग तु । २३. न गिगं उउउ । २४. क व ड उ । २५. क व ड ङड । २६. घ ड । २७. क व ड अगमि । २८. क ट पु । २९. ख ग ड । ३०. ख ग विवहो । ३१. ख ग ङसे, धं रामि । ३२. न ग अणु । ३३. क ट ङु. ग ङंसे व जोडवि ।

घत्ता—गय नियय-निवासहि^{३४} पुणजयासहि^{३५} पंच वि बद्धिद्यमाणगिरि^{३६}
तत्त्रखणे अवङ्गणी^{३७} जणसंकिण्णी^{३८} सेट्टिघरोहिं विवाहसिरि ॥१४॥

[१५]

पंचहि ^३ मि घरहि ^३ पंचण्यारु	गाइज्जइ मंगलु धवल्लेसारु ।	
पंचहि ^३ मि घरहि ^३ पंचंगु सज्जु	सुम्मइ वद्धावउं त्रवज्जु ।	
पंचहि ^३ मि घरहि ^३ पंचसु जुणति	सरभेयहिं वज्जई महुतरंति ।	
पंचहि ^३ मि घरहि ^३ रइरसनिहाणुं	सज्जियधणु विथरई पंचवाणु ।	
पंचहि ^३ मि घरहि ^३ वणुज्जलीउ	दिज्जंति रथणरंगावलीउ ।	५
पंचहि ^३ मि घरहि ^३ हियजणमणाइ	वज्जंति सुपल्लवतोरणाइ ।	
इय तहि विवाहसामग्गि जाम	विलसंतु वसंतु पहुचु ताम ।	
संचरइ सुहावणु मलयपवणु	विज्जाहरमाणिणिमाणदचणु ^{१०} ।	
सरलावियकेरलिकुरुलभंगु ^{११}	विरहिणितिलंगिनीसाससंगु ।	
सज्जइरिरणावियसुक्कंसु ^{१२}	^{१३} कण्णाडिकणिरकण्णावत्तंसु ^{१४}	१०
कुंतलिकुंतलभरपत्तखलणु	मरहट्टिथोरथणवट्टवलणु ^{१५} ।	

को अक्षय तृतीयाके दिन विवाह लग्न स्थापित किया गया । (तदनंतर) वे लोग जग (समस्त पौरजन) की आशाओको पूर्ण करनेवाले अपने-अपने घरोंको गये । उन पाचोका ही मानपर्वत बढ गया, और तत्क्षण उन सबके घरोंमे लोगोके आवागमन इत्यादिसे संयुक्त विवाहश्री अव-तीर्ण हो गयी ॥१४॥

[१५]

पांचो ही घरोंमे पांच-परमेष्ठियोंके (टि०) पांचप्रकारके धवल व श्रेष्ठ मंगल गाये जाने लगे । पांचो ही घरोंमे पांच अंगोसे युक्त बधाईके तूरोका वाद्य सुनाई देने लगा । पांचों ही घरोंमे पंचमरागकी धुन आलाप करता हुआ, स्वरभेदोंसे युक्त मधुर वीणावादन होने लगा । पांचो ही घरोंमे घनुषको लिए हुए रतिसका निधान पंचवाण अर्थात् कामदेव विचरण करने लगा । पाचो ही घरोंमे उज्ज्वल वर्णके रत्नोंकी रंगावली (रंगोली) दी जाने लगी, तथा पांचो ही घरोंमे लोगोके मनको आकृष्ट करनेवाले सुंदर पल्लवोंके तोरण बांधे जाने लगे । इसप्रकार जब वहाँ विवाह सामग्री हो रही थी, इतनेमें विलास करता हुआ वसंत आ पहुँचा । विद्यावर मानिनियोंका मानमर्दन करनेवाला सुहावना मलयपवन चलने लगा । केरलियोंकी कुटिल केशरचनाको सरल बनाता हुआ, विरहिणी तैलमियोंके निश्वास उत्पन्न करता हुआ, सहायिके सूखे वासोंको रुपावनाता हुआ, कर्णाटियोंके तालपत्र निर्मित कणवत्सको कणकणाता हुआ, कुतलियोंके कुतलभारको स्खलित करता (बिखराता) हुआ, मराठिनियोंके स्थूल स्तनवृत्तका

३४ क पिप आवासहि । ३५ क ड वट्टिय । ३६ व सी ।

[१५] १ क घ ड घरिहि । २ क ड लु । ३ ख ग हि । ४ क घ ड इ । ५ क घ ड वणु ।
६ ख हि । ७ ग रइरसुं । ८ क घ ड विरयइ, ख विरइय । ९ क ख ग ड हिं । १० क घ ड वणु । ११ ख ग कुरुलभगु । १२ क ड विज्जइरि; ख ग सज्जइरि । १३ घ कणाडि । १४ घ कणावत्तंसु । १५ क ड थणभार, घ थणचार

तावियडिवियडचुंविनियंयुं ^{१६}	उदीवियरइरंधीविडंयुं ^{१७} ।
अंकोलिरपरिहणपडिविहाड	पयडियमालविणिदरीरुभाड ।
मडरियसहयारकसाइयंतु	वेइलफुल्लं पाडले मिलंतु ।
१५ घत्ता—१ कांमहो दीसइ रत्तु	वियसइ ^{१८} फुल्लं पलासहो वंकुडड ।
कडहंतहो ^{१९} कीवइ ^{२०}	विरहिणि जीवइ ^{२१} रुहिरलिचु हृत्थंकुडड ॥१५॥
	[१६]
ताम तहि ^{२२} काले उज्जाणकीलणमणो	चलिउ रायाणुमग्गोणं नायरज्जो ।
मंदंमंदारमयरंदनंङणवणं ^{२३}	कुंदं-करवंदं-मचकुंदं चंदणघणं ।
तरलदलताल-चललवल्लि-रुयलोसुहं	दक्ख-पडमक्ख-रुइक्खखोणीरुहं ।
विल्ल-वेइल्ल-चिरिहिल्ल-सल्लइवरं	अंबजंबीर-जंबु-कयंबुवरं ।
५ करणकणवीर-करमर-करीरायणं	नाग-नारंग-नग्गोहनीलंवरं ।
कुमुमरयपयारपिजरियधरणीयलं	निक्खनहं चंचुकणडल्ल-खंडियफलं ।
भमियभमरउलसंलइयंपकयसरं	मत्तकलयंठिकलयंठमेल्लियसरं ।
रुक्खरुक्खम्मि कापयरुसियभासिरी	रइवराणत्तं अवइणमाहवसिरी ।

मर्दन करनेवाला, तपती तटकी तरुणियोंके विकट अर्थात् विस्तीर्ण नितम्बोंको चूमनेवाला, और रतिशील आन्ध्र युवतियोंकी कामपीड़ाको उदीप्त करनेवाला, हवाके झोकोसे परिधानके उड़नेसे मालविनियोंके अतिमुंदर ऊरुभागको ईपत् प्रकट करनेवाला, वीर लगे हुए सहकारवृक्षोंको कपायला (रस-युक्त) बनाता हुआ, तथा विचकिल्लके फूलोंको पाटल पुष्पोंसे मिलाता हुआ वसत आ गया । फूले हुए पलाशकी लाल-लाल बोडियाँ ऐसी खिलने लगी मानो कर्त्तर विरहिणियोंके प्राणोंको निकालता हुआ कामके हायका रुधिरलिप्त, धाका अंगुग ही हो ॥१५॥

[१६]

उस समय उद्यान क्रीडाकी इच्छासे नागरजन राजमार्गम नल पड़े । उग नदनवतमे मंदारकी मद मकरंद फैल रही थी, और वह कुद, करवद, (करोंदा ?) मुचकुद तथा चंदन वृक्षोंसे सघन था । वहाँ तरल पत्तीवाले ताल, चंचल लवली और मुंदर कदली तथा द्राक्षा, पचाक्ष एवं रुद्राक्षके वृक्ष थे । वेल, विचकिल्ल, चिरिहिल्ल, तथा मुंदर मल्लकी और आम, जवीर (नीबू), जधू, तथा उत्तम कदव थे । कोमल कर्नर, करमर, करीर (कर्गेल ?), राजन (सं राजादनी), नाग, नारंगी, व न्यग्रोधके वृक्षोंमे धवर नीठा (हारंग) भी रहा था । कुमुमरजके प्ररुर (समूह) से वहाँका भूमिभाग विगलवर्ण हो गया था । प्रकटत नागे नख व चंचुक्षोंमे वहाँके फल खंडित थे । घूमने हुए भ्रमगुल्लोंमे वंरुन-मरोरर आर्याशय ना, और मत्त कलकंठियोंके मधुर कंठमे स्वर छूट रहा था । रतिपतिहो आजागे युवा-युवतमे कर्नर-वृक्षकी योंभासे भाम्बर माधवत्री (वनन-शोभा) अवतीर्ण हुई । प्रप्रेत वृक्ष रति और भाम-

१६. कट कुचियमि । १७. म म रग्गो । १८. म म रग्ग । १९. व व गट । २०. म म । २१. कट कट । २२. क म रग्ग । २३. क म रग्ग ।

[१६] १. म म रग्ग । २. म म रग्ग । ३. व व गट । ४. म म रग्ग । ५. म म रग्ग । ६. म म रग्ग । ७. कट कट । ८. म म रग्ग । ९. म म रग्ग । १०. म म रग्ग । ११. म म रग्ग । १२. म म रग्ग । १३. म म रग्ग । १४. म म रग्ग । १५. म म रग्ग । १६. म म रग्ग । १७. म म रग्ग । १८. म म रग्ग । १९. म म रग्ग । २०. म म रग्ग । २१. म म रग्ग । २२. म म रग्ग । २३. म म रग्ग ।

रुक्खरुक्खन्मि सविलासमुच्चभासियं^{१३} हसिय-रइकाम-मिहुणं समावासियं ।
 जंबुसामी वि कुमरेहिं सहुं लीलए कामिणीमज्जे कामु व्व तहिं^{१३} कीलए । १०
 घन्ता—डोल्लहरिं^{१४} व लग्गी कंठहं^{१५} लग्गी वल्लहसुहं चुं वणुं^{१६} करइं^{१७} ।
 थणरमणचिडं विणि का वि नियं विणि निहुअणकेलिहिं^{१८} अणहरइ ॥१६॥

[१७]

क वि कामिणि अणुणइं कंतु केम परिहासापेसल भणइ एम ।
 कुरओ^{१९} सि न वल्लह जाणिओ सि साणंदु जं नं आलिगिओ सि ।
 निरवेक्खुं वयणमइराहं जं जि केसररुक्खो सि न होसि तं जि ।
 सब्ब कलिओ सि असोयरुक्ख लइ पायपहारे समइं सुक्ख ।
 विवरीयवयण क वि पणयकुद्धं^{२०} नियकज्जलुद्धुत्तेण मुद्र । १
 तउ मुहहो जणियसयवत्तभंति आवंति निहालिहिं^{२१} भमरपंति ।
 इय भणिय जं जि सदवक्कभग्गं परियत्तवि दइयहो कंठि लग्ग ।
 क वि भणिय मुद्धे अच्चिहिं^{२२} चिराइ नीलुपलसंकइ भमरु धाइ^{२३} ।
 इय मिसिण नंयण झंपणु करंतु चुं वइ नववहुवहं^{२४} वयणु कंतु ।
 तिलएण करमि तउ तिलउ वाले^{२५} नियमालुं^{२६} निवेशि वि यिहं^{२७} माले । १०

का उपहास करनेवाले (मुंदर) मिथुनोके सम + आवास अर्थात् सहवाससे समुद्भासित हो गया ।
 जंबुस्वामी भी अन्य कुमारोके साथ लीलापूर्वक कामिनियोके बीच कामदेवके समान क्रीड़ा करने
 लगे । डोल्लेके समान लटककर कंठसे लगी हुई स्तनो व रमणो-(के भार) से कदर्थित कोई
 सुंदरी वल्लभका मुखचुम्बन करते हुए सुरत क्रीड़ाका अनुहरण करने लगी ॥१६॥

कोई कामिनी अपने कांतको इसप्रकार मनाने लगी, और परिहासपूर्वक ऐसे मधुर
 वचन बोली—हे वल्लभ मैंने जाना नहीं था कि तुम कुरत (श्लेष-कुरुवक वृक्ष) हो जो
 कि मुखसे आलिगित होनेपर भी प्रसन्न नहीं हुए (विरोधाभास); (विरोध परिहार) अथवा
 तुम-वह (कुरुवक वृक्ष) भी नहीं हो, क्योंकि तुम तो वदन-मदिराके प्रति भी निरपेक्ष हो
 (उसे केवल देखते ही हो, आलिगन-चुंबन द्वारा पीते नहीं), अतः तुम केशर-(तिलक)वृक्ष
 (के समान) हो (जो सुंदरी नवयुवतीके कटाक्ष मात्रसे ही प्रफुल्लित हो उठता है, उसके
 आलिगन-चुंबनको अपेक्षा नहीं रखता) । अब मैंने सत्यतः तुम्हें जान लिया कि तुम तो ऐसे
 अशोकवृक्ष (के समान) हो जो मूर्ख पादप्रहारको प्राप्त करके शांत (प्रसन्न-प्रफुल्लित) होता
 है । कोई मुग्धा अपने (प्रणय) कार्यके लोभी धूर्तसे प्रणयक्रुद्ध होकर मुँह फेर लेती है; (तब धूर्त
 कहता है) तुम्हारे मुखसे शतपत्र (कमल) की भ्रांति करके झपटती हुई भ्रमर पंथिको तो
 देखो । ऐसा कहनेसे भग्न-मान होकर वह तुरंत दयिता (प्रेमी) के कंठसे लग जाती है । कोई

१२. ख ग सविलासु० । १३. ख ग तह । १४. क ख ग ड डोलं । १५. ख ग हं । १६. क घ ङ मुहिं
 चुं । ख ग चुं वण । १७. क इं । १८. क मिहुअणं ।

[१७] १. क णइं । २. ख ग कुहं । ३. क ख ग ङ ज ण्ण । ४. ख ग निरवक्ख । ५. ख ग हिं ।
 ६. ग णणइं । ७. प्रतियो मे 'णिअ' । ८. ख ग लहिं । ९. क सदवक्खं । १०. ख ग अच्चिहिं ।
 ११. क धाइं । १२. क घ ङ वहुवहिं । १३. प्रतियोमें 'मालिं' । १४. घं तालुं । १५. क ङ हिं, ख
 ग घं हिं ।

- परिच्छलवि^{१६} कबोलहिं^{१७} हितु नहर
आवाणाष्ट क वि पिक्खेवि स-रुड
पिय पेक्खु पेक्खु कि भणहिं^{१९} मज्जे
क वि पियगहियाहरे^{२१} वहइ वयणु
१५ पाणोसरंत मइरं^{२३} विहाइं
मथनाहितिल्लं^{२४} विरएवि वयणं
क वि पिप्रणं^{२५} भणिय लइ एउं^{२६} संतुं^{२७}
उज्जाणे तम्मि जंबूकुमारु
२० अटमसियउ हंसहिं^{३३} गमणु तुज्जु
पडिगाहिउ कमलहिं^{३४} चलणल्लहिसुं^{३५}
सिक्खिउ वेरिल्लहिं^{३६} भूचकुडत्तु
आपीलइ^{१०} दंतहिं^{१८} महुरु अहरु ।
महुघडे पडिबिचिय निथयुरुड ।
तप्पणदेवय अवडण्णं^{१९} मज्जे ।
छिजंतरोसुं^{२३} पसरंतमयणु ।
फलिहमउ अवाणयचसवें^{२४} नाइं^{२५} ।
किउ चंदसरिसु मुहुं^{२६} दोहनयणं^{२७} ।
महिलाकिउ सयलु वि कूडमंतु ।
आलावइ क वि बडुंतुं^{३३} मारु ।
कलयंठिहिं^{३४} कोमललविउं^{३५} तुज्जु ।
तरुपल्लवेहिं^{३६} करयल्लविलासु ।
सीसत्तमाउ सउवुं^{३६} चि पवत्तुं^{३७} ।

धत्ता—दावतहो तं षणु रंजियपियमणु वोल्लुं^{३८} कुमारहो कलु कलइ ।

पयडियवहुभावहि वंकालावहिं कामिणि का वि परिच्छलइ^{३९} ॥१७॥

कहता है—मुग्धे । तेरी आंखें ऐसी सुंदर हैं कि नीलोत्पलकी शंका करके भ्रमर झपट रहे हैं, इस बहानेसे नेत्रोको झांपकर वह नववधूका मुख चूम लेता है । कोई यह कहता हुआ कि हे बाला, अपने तिलकसे तुझे तिलक लगाऊंगा, अपना मस्तक प्रियाके मस्तकपर रखकर, उसे छलकर कपोलोपर नखचिह्न बनाता हुआ काताके अघरोको दांतोसे काट लेता है । कोई कामिनी आपानक (मधुशाला) में रखे हुए मधुघटमें प्रतिविम्बित अपने रूपको देखकर कहती है, प्रिय देखो ! देखो ! भार्या क्या कहती हो ? (ऐसा पूछनेपर) वह बतलाती है—मद्यमें तर्पण देवता (?) उतर आयी है । कोई प्रियसे काटे हुए अधरयुक्त मुखको धारण कर रही है, जिसका रोष अय हो रहा है, और मदन वढ रहा है । (हाथोमेसे) चूती हुई अथवा पी जाती हुई मदिरासे युक्त हाथ ऐसे शोभायमान हो रहे हैं मानो (मदिरा) पान करनेके स्फटिकमय चशक (प्याले) ही हो । किसीने कहा—हे दीर्घनयना तूने (निष्कलंक) मुखपर कस्तूरीका तिलक लगाकर उसे चंद्रमाके समान (सकलंक नयो) कर दिया ? किसी स्त्रीके प्रिय ने कहा—लो यह सारा (प्रपंच) महिलाकृत कूट मंत्र है । उस उद्यानमें (कामिनीयोके) कामको बढाते हुए जंबूकुमार किसी कामिनीको कहने लगे—हंसोने तुझसे गमनका अभ्यास किया, कलकंठीने कोमल आलाप करना जाना, कमलोने चरणोसे नाचना सीखा, तरुपल्लवोने तुम्हारी हृथेलियोका विलास सीखा, तथा वेलोने तुम्हारी भौंहोसे वाकापन सीखा । इसप्रकार ये सब तुम्हारे शिष्य भावको प्राप्त हुए हैं ।

उस धनको दिखलाते हुए अपने प्रियका मनोरंजन करती हुई कोई कामिनी कुमारके

१६. क व ड छल्लवि । १७. क व ड आवी । १८. ख ग हि । १९. क व ड हि । २०. क व ड णण; व इत्त । २१. ख ग साहर । २२. क व ड जिज्जतं, ख ग सिज्जतं । २३. क व ड महरा । २४. क व ग वसज । २५. क व गाड, ख ग नाइ । २६. प्रतियोमें भवणाहिं । २७. ख ग महु । २८. क व ड णयणि, व नयणि, ख ग नयणु । २९. क व ड पियेण । ३०. क व ड एहु । ३१. क व ड म, सखु । ३२. क व ड वट्टु । ३३. क व ड हि, ख ग हंसुहिं । ३४. ख ग ल्लिय । ३५. क व ड चरणं; व वलणं । ३६. मत्तु, ट मव्व ३७. ख ग पवत्तु, व पजत्तु । ३८. क व ड वोल्लु, व वुल्लु । ३९. क व ड परिसयलइ, ख ग व ड पिक्खलइ ।

नरुचंता मोरा सुद्धि जोइ
दीसइ सरि कारंडाण पंति
सरु कोइलाप्र^१ कोमलु जि वहइ^२
एयं च पियालवणं त्रियाण
सारंगं गय सारंगि दच्छि^३
पिय पेक्खु^४ इंद्रगोवयविर्रेणु
जले कंकु व हंसो^५ चैय मंदु
सुउ विलवइ सुंदरि कवण वाह
माहे सरु सिसरें ददु^६ जाणु

[१८]

तोरा नरुचंतु न दोसु कोइ^१ ।
जा तउ^२ रिउ धरिणिहु^३ कवणु भंति ।
जं मयणु चडाविप्र^४ चावे^५ वहइ^६ ।
दुल्लहउ नवर दूहवज्जणाण ।
ता नच्चउ वायहु^७ पडहु गच्छि^८ ।
लइ मग्गि दुदु तो कामवेणु ।
तुहु^९ सो च्चिय कंकु जलम्मि मंदु ।
संठवि न परायउ कल्लु^{१०} नाह ।
मरइ जि तिदडे जसु निच्चणाणु^{११} ।

५

मधुर बोलको सुन लेती है, और अनेक प्रकारकी वक्रोक्तियों द्वारा विविध (शृंगारादि) भावों-को प्रगट करती हुई इसप्रकार छलना करती है ॥ १७ ॥

[१९]

स्वामीने कहा—मुग्धे, नाचते हुए मयूरोको देखो ! मुंदरीने (बलेपार्थ मोरा-मेरा ग्रहण करके वक्रोक्ति की—तोरा अर्थात् तेरे नाचनेमें कोई दोष नहीं है । स्वामीने कहा—सरोवरमें कारंड पक्षियोंकी पंक्ति दिखाई दे रही है; सुंदरीने वक्रोक्ति की—अरे क्या (रंडा-विषवा) विषवाओकी पंक्ति है, तो वह निश्चयसे तुम्हारी शत्रु-गृहिणियोंकी है । स्वामीने कहा—कोकिलाका कोमलस्वर प्रवृत्त हो रहा है, सुंदरीने छलोक्तिकी—अरे यह पूछते हो कि वह कोकिलाके स्वर-के समान कोमल कौन-सा शर है, जो मार डालता है ? वही जिसको मदन घनुषकी टंकारपूर्वक चलाकर मारता है । स्वामीने कहा—अरे इस प्रियालवृक्षोके वन (उद्यान) को जानो (देखो) ! सुंदरीने वक्रोक्ति की—अरे प्रियाओंका आलाप दुर्भंगजनोंके लिए दुर्लभ है । स्वामीने कहा—चतुर हरिणी हरिणके पास चली गयी; सुंदरीने छलोक्ति की—दक्ष सारंगी (वाद्य) सारंग (वाद्य) के स्वरमें मिल गयी तो फिर नाचो और पटह बजाओ तो जाने । स्वामीने कहा—प्रिये इस विरेणु अर्थात् रजरहित निर्मल इंद्रगोप (खद्योत) को देखो, तो सुंदरीने व्यंग्योक्तिकी—यदि इंद्रगोपदविरेणु, अर्थात् यदि स्पष्टतः इंद्रकी गायके चरणोंकी धूल देख रहे हो तो फिर वह कामधेनु है, (इससे) दूध मांगो । स्वामीने कहा—जलमें कंक (वक) पक्षी हंसके समान मंदगतिसे चल रहा है, सुंदरीने व्यंग्य किया—तू ही बड़ा जल(क्रीडा) में मंद कंक है । स्वामीने कहा—सुंदरी यह शुक ऐसा विलाप कर रहा है, इसे क्या पीड़ा है ? सुंदरीने वक्रोक्ति की—हे नाथ यदि सुत (पुत्र) रो रहा है, तो क्या बात है, उसे वैयं दीजिये, यह कोई पराया कार्य नहीं है । स्वामीने कहा—माघ मासमें (कमल) सरोवर गिशिरसे दग्ध हो गया, ऐसा जानो; तो सुंदरीने व्यंग्य किया—यदि कोई माहेश्वर अर्थात् महेश्वरका भवत तुषारपात-से दग्ध हो गया (अर्थात् मर गया), तो वह त्रिदंडी तो निश्चय मरेगा, जिसका नित्य (त्रिसन्ध्या)

[१८] १ क इ । २. क व ताउ । ३. क ड णिहु, ख धरणेहु, ग णेहि, घ धरणिहि । ४ क ड लाड । ५ क हवइ, ड हवइ । ६ क ड विय, घ एवि । ७. ख ग चाए । ८. क ड गहइ । ९ क ड च्छि । १०. क ड हि, घ हि । ११ क ड पिवि । १२ ड अ हसो । १३ क ड तुहु । १४. क ख ग ड कज्ज । १५. क ड ददु । १६. ख ग निच्चणाणु, घ ण्हाणु ।

- १० सुद्धिहि^{१७} कारण कं तावसाण^{१८} का सुद्धि कंतं कंता-वसाण^{१८} ।
 कैरिस तुहुं वंकी तणुयदेह^{१९} ह^{२०} नाह न सा हरिणकदेह^{२१} ।
 दोहउ—गोरी सुद्धि^{२२} न सामली^{२३} तंवाहरेण सुकंति ।
 तंवा वसह^{२४} हरेण पुणु गोरी रमिय न भंति ॥११॥
 १५ घत्ता—जइ साहवि^{२५} सकइ अहव न सकइ^{२६} मयणु वि तं, सिंगाररसु ।
 दूरंतरे आरिसु कइ^{२७} अम्हारिसु^{२८} कह^{२९} परियाणइ^{३०} विसयकसु^{३१} ॥१८॥

[१९]

- इय तहिं वणे माणिय कामवेप्रं उ^३पणणइ^३ मिहुणह^३ सुरयखेप्रं^३ ।
 पासेयसित्त मंडणे फुसंति वोलीणए^५ लणवासरे वसंति ।
 खरकिरणतरणिताविथधरम्मि जलकीलहिं^६ सव्व वि गय सरम्मि ।
 सनियंसणु भूसणु तडि तिपहिं^६ मुच्चंतु^७ नियवि चिंत्तिड पिपहिं^८ ।
 ५ खणु अच्छहु तडे विथडाइं ताम रमणाइ सुदिट्ठइं^९ करहुं^{१०} जाम ।

स्नान होता है। स्वामी ने कहा—तापसोके लिए जल ही शुद्धिका कारण होता है; तो सुंदरीने फिर व्यंग्य किया—काताके वशवर्ती बेचारे रागीजनोकी जलस्नान मात्रसे क्या शुद्धि? स्वामीने कहा—तुम्हारी पतली देह कैसी बाकी है? तो सुंदरीने छलोकितसे कहा—अरे नाथ वह मे नहीं हूँ, बांकी तो वह चंद्रकला है। स्वामी ने कहा—हे मुग्धे जाताम्र अधरोंको धारण करनेसे केवल गौरवर्ण नायिका ही सुकाता, अर्थात् सुष्ठुरमणीय नहीं होती, बल्कि उससे सांवली सुंदरी अधिक सुरमणीय होती है; तो सुंदरीने व्यंग्य किया—अरे! तबा अर्थात् गो, के साथ हर (महादेव) ने रमण नहीं किया, तंवाका रमण किया वृषभ अर्थात् महादेवके नादीने, और महादेवने रमण किया गौरी (पार्वती) से, इसमे कोई भ्रांति नहीं। उस शृंगाररसका यदि (स्वयं) मदन ही वर्णन कर सके तो कर सके; अथवा वह भी उसका वर्णन नहीं कर सकता; फिर हम जैसा मंदबुद्धि कवि तो दूर ही रहे; क्योंकि वह शृंगार (काम-भोगादि) की विधियोंको क्या जाने ? ॥ १८ ॥

[१९]

इस तरह वहाँ उस वनमे कामदेवको माननेवाले अर्थात् कामशास्त्रके अनुसार संभोग क्रीडा करनेवाले मिथुनोंको घुरतखेद (थकान) उत्पन्न हुआ और प्रस्वेदसे सिक्त होनेपर उसे वस्त्रसे पोछा । वसतोत्सवका दिन व्यतीत होनेपर जबकि पर्वत प्रखर किरणोवाले सूर्यसे तप्त हो गया था, सभी जलक्रीडाके लिए सरोवरपर गये । वस्त्रोसहित भूषणोको प्रियाओके-द्वारा तटपर छोड़े जाते हुए देखकर उनके प्रियजनोने सोचा—अरे! क्षणभर तब तक (प्रिया) तटपर खड़ी रहे, जब तक कि उसके विस्तीर्ण रमणोको अच्छी तरह देखा हुआ कर लूँ ।

- १७ क ख ग ङ हि । १८. क ङ णु । १९. क ङ तणुअं । २०. क हउ । २१. क घ ट र्ह ।
 २२. ख ग घ मुद्ध । २३ क ङ सामलिय । २४ क ङ हि । २५. क व ट साहिवि । २६ ख ग घं ।
 २७. क ङ कय । २८ क सिमु, । २९. क किह; ङ किह । ३० क घ ङ णड । ३१. क ट मणुं ।

[१९] १. क ङ इ । २. क घ ङ णणइ । ३. क ङ णहि । ४. क ट णइ । ५ क ङ हि ।
 ६. घ ठिपहि । ७ ङ मुच्चत । ८ ङ हि । ९. ख ग इ । १०. प्रतियोमे 'करहु' ।

तरुणियणु विसई^{११} धोलियवरंगु
 क वि सलिलझलकहि^{१३} निययकुंतु
 चरमण^{१४} तरइ कवि पियहो^{१५} पुरउ
 काहि^{१६} वि भमरेण^{१७} तरंतियाहि^{१८}
 क वि डिल्लनियंसण^{१९} गहिरनीरे^{२०}
 थावंति^{२१} संति हल्लिरवरंग^{२२}
 एकेण नवर हत्येण तरइ
 उठभूसिउ^{२३} काहे वि तगु विहाइ^{२४}
 उज्जाण का वि रइखेयभग्ग
 नहरारुणु^{२५} तहे^{२६} थणवट्टु भाइ
 दरलहसिउ^{२७} चोरु कवि गुञ्जु वइइ
 रोमावलि तिवलिहि^{२८} कहे^{२९} वि बसइ^{३०}

^{३१}थणसिहरखलियलहरीतरंगु ।
 अहिसिचइ^{३२} नयणहिं^{३३} हत्यु दिनु ।
 सुमरावइ णं^{३४} विचरीयसुरउ ।
 न उ जाणिउ^{३५} कमलु^{३६} न वयणु ताहिं^{३७} ।
 तलवायहे^{३८} हलुयत्तणु^{३९} सरीरे । १०
 उरसोल्लिण^{४०} धणपेल्लियतरंग^{४१} ।
 वीएण पडंतु कडिल्लु धरइ ।
 तारुणकणु^{४२} अंकुरिउ नाइ^{४३} ।
 जलमञ्जे रमइ^{४४} पियखंधे लग्ग ।
 अंकुसिउ कामकरिकुंमु नाइ । १५
 णं मयणावासतवंगु सहइ^{४५} ।
 णं कालभुर्यगिणि^{४६} तरुण डसइ^{४७} ।

तरुणियाँ जलमें प्रवेश करने लगीं, तो जलतरंगे उनके नितंबोंको पार करके, स्तन शिखरोंपर आकर (उन्हें पार न कर पानेसे) स्खलित हुईं । कोई जलमें अपने कात (की छवि) को झलकते हुए देखकर, नेत्रोंपर हाथ रखकर अभिपेक करने लगी । कोई चंचल रमणोवाली प्रिया, प्रियके सामने इस प्रकार तैरने लगी, मानो विपरीत सुरतका स्मरण दिला रही हो । एक भ्रमर न तो किसी तैरती हुई सुंदरीके मुखको ही पहचान सका, और न कमलको (अर्थात् तैरती हुई सुंदरीके मुख. व कमलमें कोई विवेक नहीं कर सका) । कोई शिथिलवसना गंभीर जलमें तलस्पर्शी गतिसे शरीरमें हलकापन आनेसे, अपने कपनशील नितंबप्रदेशको स्थिर करती हुई, अपने उरस्थलमें छिपे हुए (स्तनरूपी) घनसे तरंगोंको प्रेरित करती हुई, केवल एक हाथसे तैरती हुई, दूसरेसे गिरते हुए कटिवस्त्रको संभाल रही थी । किसीका भूपा (वस्त्राभूषण-विलेपनादि) रहित शरीर ऐसा शोभायमान हो रहा था, मानो तारुण्यरूपी वृक्षका नवीन अंकुर ही उदित हुआ हो । उद्यानमें रतिक्रीड़ाके आयाससे थकी हुई कोई कामिनी प्रियके कंधेसे लगकर जलमें रमण कर रही थी तथा नखक्षतसे अरुण हुआ उसका वरतुल-स्तन ऐसा भासित हो रहा था मानो मदन-हृस्तिके कुंभस्थलपर अंकुश मारा गया हो । कोई ईषत् खिसके हुए वस्त्र-से (दोखनेवाले) गुह्यागको ऐसा धारण कर रही थी, मानो मदनके आवासका तवंग (छज्जा ?) शोभायमान हो रहा हो । किसीकी त्रिवलीपर रोमावलि ऐसी बसती थी, मानो तरुणको डंसने-

११. क ड ई । १२. ख ग घ वलियं । १३. घ वकाहि । १४. क अहं । १५. ख ग णिहि । १६. ख ग चंचलरव, क ड रवण । १७. क ड हं; घ चलण, ख ग हं । १८. प्रतिभोमें 'ण' । १९. क काहं, क काह । २०. ख ग समं । २१. ख ग भरंतियाहे । २२. क ड उं । २३. ख ग घ वयणु न कमलु । २४. ख ग ताहि । २५. क डटिल्लं, ख ग डिल्लिं । २६. ख ग गहियं । २७. क ड ईहिं, घ यंहि, ड ईहिं । २८. क ड अत्तणु । २९. ख ग घ वावति । ३०. घ हल्लियं । ३१. क घ ड सेल्लिण । ३२. क घ ड यणं । ३३. घ उट्टसियउ । ३४. घ डं । ३५. घ तारुणं । ३६. क ड गाइं, घ नाइं । ३७. क घ ड डं । ३८. क ड णहिं, ख ग रारुणु । ३९. क ड तहि, घ तहिं । ४०. क ड सिय । ४१. क डं । ४२. क ड घ लिहिं । ४३. क घ ड काहि । ४४. क कालु भुर्यं ।

- जललोलुलावियपरिहणाहै^{४५} पिउ मवइ रमणु^{४६} दिट्टिणु^{४७} धणाहै^{४८} ।
 केण चि विडेण दूरंतराउ वुडुविणु खेडें धरवि^{४९} पाउ ।
 २० बोलिज्जमाण पुकरइ दासि धाहावइ कुट्टणि थुक पासि ।
 यत्ता—करचरणपहारहिं^{५०} थणपठभारहिं^{५१} नहरचवेडहिं^{५२} जज्जरिउ ।
 तं सरवरपाणिउ^{५३} जुवइहि माणिउ^{५४} सुहयमणूसहो अणुहरिउ ॥१६॥

[२०]

- जलकाल करेवि कमलायराउ नीसरियइ^{५५} मिहुणइ^{५६} सरवरराउ ।
 छुडु छुडु जि सइच्छणु^{५७} कीलियाइ^{५८} छुडु छुडु पोत्तइ^{५९} निप्पीलियाइ^{६०} ।
 छुडु छुडु जि नियच्छइ^{६१} परिहणाइ^{६२} छुडु छुडु लाइयडें विलेवणाइ^{६३} ।
 ५ छुडु छुडु जंपाणइ^{६४} सज्जियाइ^{६५} छुडु छुडु गमतूरइ^{६६} वज्जियाइ^{६७} ।
 पल्लाणियाइ^{६८} छुडु वाहणाइ^{६९} निव नियडइ^{७०} डुकइ^{७१} साहणाइ^{७२} ।
 छुडु छुडु मंडलवइ वद्धपट्टु^{७३} नंदणवणाउ छुडु पुरे पयट्टु^{७४} ।
 तहिं अवसरि पडिमयगल्लमाल्थि सेणियमहरायहो पट्टहत्थि^{७५} ।
 नामेण विसमसंगामसूरु कुंभयलुञ्जाइयचंदसूरु ।
 दंतगगुलणहयविसकरेणु मयजलरेल्लावियधरणिरेणु ।
 १० निट्ठविय मेट्टु पयडियदुवालि चलकणणडडपियच्छप्पयालि ।

वाली कालीनागिनी ही हो । कोई प्रिय, जलकी कल्लोलोसे जिसके वस्त्र इधर-उधर कर दिये गये थे, ऐसी अपनी धन्याके रमणभागको दृष्टिसे माप रहा था । किसी विटके द्वारा दूरसे ही डुबकी लगाकर क्रीडापूर्वक पैर पकड़कर डुबायो जाती हुई दासी पुकार मचाने लगी, तब पास ही खड़ी हुई कुट्टनी जोरसे चिल्ला पड़ी (जिससे उसकी पुकार किसीको सुनाई न दे) । कर और चरणोके प्रहारो, स्तनोके तटो, तथा नखोकी चपेटोसे जर्जरित वह सरोवरका जल युवतियोके-द्वारा ऐसा माना गया, माना उसने किसी सुभग मनुष्यका अनुसरण किया हो ॥ १६ ॥

[२०]

मिथुन कमलसरोवरसे (जल) क्रीडा करके निकल पड़े । पुन-पुन. यथेच्छ क्रीडा को गयी, फिर वस्त्र निचोड़े गये, परिधान पहने गये और विलेपन लगाये गये । फिर पालकियाँ सजाई गयी और चलनेके वाजे बजाये गये । बाहनोपर पलान लगाये गये और सारा लशकर राजाके पास जुट गया । फिर शीघ्र ही पट्टवद्ध-मडलाधीश नदनवनसे पुरीकी ओर प्रवृत्त हुआ । उसी समय महाराज श्रेणिकका, शत्रु गजोको उठाकर फेंक देने वाला 'विपमसग्रामसूर' नामक पट्ट हाथी अपने कुभस्थलसे चंद्र और सूर्यको उचाटता हुआ, अपने दांतोके अग्रभाग (की हूल) से दिशागजोको आहत करता हुआ, मँठको मारकर अपने कानोके झपाटेसे पट्टपदी (भ्रमरो) को

४५. ख ग व ल्लावियपरि, क व णाहि, ड णाहि । ४६ क ड रवणु । ४७ क ड दिट्टिय, स ग दिट्टेड ।
 ४८. क णि, ख ग थं, घ ड णि । ४९. क घ ड धरवि । ५०. क घ ड णाणिउ । ५१. क घ ड ण ।
 [२०] १. ख ग इ । २. क घ ड च्छणु; स ग सड । ३. स ग व ड । ४. क ग च्छणु, स ग
 र्वइ, घ र्वइ । ५. क ड पिणु । ६. ख ग डड । ७. क स घ ड पट्ट । ८. प्रतियोगे 'पयट्टु' । ९. ग
 कुंभइलु ।

सुदंडसुंडकयसलिलविट्टि पयभारकडक्कियकुम्मपिट्टि ।

षत्ता—दुदररिउवलहरु णं नवजलहरु^१ गरुवगज्जिरवभरियदरि ।

जणमारणसीलउ वइवसलीलउ^२ सो संयत्तउ तेत्थु^३ करि ॥२०॥

[२१]

कहिं पितेण हरिथणा विसालसाल-सल्लई-तमालमाल-सुंगताल-जाइजाल-नायवल्लि-
मल्लिलिं^४ व^५ -जंजुलुं^६ वि-उंवरं^७ व-सङ्कयं^८ -पकपिगमाहुलिंग-दालिमालि-चंदणह-रुंदं^९ -
कुंदं^{१०} -मंदमार-सिदुवार-देवदारु^{११} -चारुचारु^{१२} चूरिया^{१३} ।

कहिं पि डोहिऊण वीहदीहिया^{१४} -दुरुच्छलंतमच्छपुच्छविच्छुरंत^{१५} वारिलोलमाण^{१६} -
संवरंतचंचरीयचुंविएहिं^{१७} सुदंडंतोडिएहिं^{१८} वेल्लिजालजोडिएहिं^{१९} भूमिभायसूडिएहिं^{२०} ५
वंकएहिं^{२१} पंकएहिं^{२२} कदमेल्लकुललतल्लपूरिया^{२३} ।

कहिं पि मगालमगभग्गआसवार-चम्मजट्टिघायधुम्ममाण^{२४} -नीसरंतवाहथट्ट-
तिक्खनमखखुण्ण^{२५} -खोणिमंडलाउ उट्टिएण रेणुणा निरुद्धचक्खुथक्कं^{२६} पिरंग-
कामिणीकरं करेण धारिऊण धामिरेण कामुण कट्टणी^{२७} विलुट्टणी^{२८} विलोट्टिया ।

झड़पता हुआ नगरीके द्वारपर प्रगट हुआ । मूंड ऊँचा करके जलकी फुहारें छोड़ते हुए उसने अपने पदभारसे (पृथ्वीको अपने ऊपर धारण करनेवाले) कूर्मकी पीठको कड़कड़ा दिया । दुर्दुर्ष शत्रुकोके बलको हरण करनेवाला, नये मेघके समान अपने गर्जनरवसे कंदराओंको भरता हुआ व लोगोंको मारनेमें प्रवृत्त वह हाथी वैवस्वत (यम) के समान मृत्युलीला करता हुआ वहाँ आ गया ॥ २० ॥

[२१]

कही उस हाथीने विशाल साल और सल्लकी व तमाल वृक्षोंको पकितयाँ, उत्तुंग ताल, परस्पर गुँथकर जालके समान वनी हुई नागलता, मल्लि, निंब, जंबूवृक्षोका कुंज, उंबर, आम्र व सुंदर कदंब, पके हुए पिंगलवर्ण मातुलिंग, दाड़िमकी पकितयाँ, हरे चंदनवृक्ष, विशाल कुंद, मंदमार, सिदुवार, देवदारु तथा सुंदर चिरीजीके वृक्ष चूर-चूर कर डाले । कही वड़ी दीर्घिकाओंमें घुसकर, ईषत् उछलते हुए मच्छोंकी पूँछोसे छिटकते हुए जलसे क्रीड़ा करते हुए, संवरणशील चंचरीकोसे चुबित व अपने ही शुंडादंडसे तोड़े हुए, लता जालसे संयुक्त, व भंजन करके भूमिभागपर डाले हुए वाके पंकजोसे छोटी नदी (अथवा नाले) के कदमयुक्त तलको पूर दिया । (ऐसी अवस्थामे) कही मार्गमें पड़नेवाले व जिनके सवार भाग गये थे और जो चर्मयष्टि अर्थात् चावुकके आघातसे चक्कर खा रहे थे, ऐसे घोड़ोके समूहोके निकलनेसे उनके तीक्ष्ण खुरोसे खुदे हुए पृथ्वीमंडलसे उठनेवाले धूलसें आँखें अवरुद्ध हो जानेके कारण थर-थर कांपती हुई कामिनीके हाथको हाथसे पकड़कर किसी गर्बोले कामुकने झूठ बोलनेवाली कुट्टनीको

१० ख ग घ गरुयं । ११. क ड वयवसं । १२. क ड तृत्थ, घ तित्तु ।

[२१] १. क ड मल्लिलिं^४ व । २ ख ग सकयव । ३. क ड तुंद । ४. घ कंद । ५. घ दार । ६. क ड चार । ७ ख वूलिया । ८ ख ग दीहिं । ९. क ड विच्छरंत । १०. क घ ड लोलोलमाण । ११ क ड एहि । १२ क व ड कदमल्ल । १३ क ड हम्ममाण । १४ घ वुव । १५. क ड कुट्टिणी । १६ ख ग मे विलुं नही ।

१० कहिं पि संचरंतहस्थियारफारनट्टवंठ^{१७} तिक्खनक्खखुण्णखोणिं^{१८} कौवकोडि-
पट्टणेण^{१९} दोभियंगहस्थिणीपमुक्काचिक्कराडिं^{२०} चंचलुबलंततट्टरांठिं^{२१} पट्टिवाहरं^{२२}
अलंभिरी विसट्टवत्थवल्लियानरिंदसंदणेण^{२३} उट्टिं न पारए तरट्टि खोट्टियां^{२४} ।

किं च^{२५}—तओ पेल्लियं झत्ति जाणेण जाणं गइंवेणं^{२६} अण्णं^{२७} गइंदं सदाणं^{२८} ।
तुरंगेणं^{२९} मग्गम्मि तुंगं तुरंगं सुयंगं सुयंगेण वेसासु रंगं ।
१५ पई पत्तिणा संदणो संदणेणं पिण्णं पििया जंपिया कंदणेणं ।
त्रियारणं त्रियाणेण छत्तेण छत्तं अथाभं^{३०} वल्लिट्ठेण पत्तेण पत्तं ।
पलायंतसंतेणं^{३१} दंडेण दंडं धएणं धयगां कयं खंड-खंडं ।

घत्ता—सहुं^{३२} राए तट्टव दिसिहिं पणट्टव सबलु ससाहणु नयरजणु ।

पर एकु जि थक्कउ मिल्लिक्किं^{३३} हक्कउ जंबूसामि अक्खुहियमणु ॥२१॥

[२२]

तो नवर नाएण मिल्लियनिनाएण ।
पडिभगरुक्खेण जणदिण्णट्टक्खेण ।

भो झूठला दिया । कही बड़े-बड़े हथियारोका संचरण देख धूर्त नष्ट हुआ, और तीक्ष्ण खुरोसे पृथ्वी खुदी । कही भालेकी नोकके बाघातसे पीड़ितदेह हथिनीकी चीत्कारसे त्रस्त होकर चंचलतापूर्वक जाती हुई, व (धूर्तके) प्रत्युत्तरको न पा सकनेवाली प्रगल्भ दासी जिसके वस्त्र (भाग-दौड़मे) फट गये थे, धक्का दिये जानेसे (गिरकर) राजमार्गसे उठनेमें भी समर्थ न हो सकी ।

और भो—तब झट-पट यानसे यान भिड़ गया, व हाथीसे दूसरा मदमत्त हाथी । मार्ग-से तुरंगसे ऊंचा (बलिष्ठ) तुरंग, वेदयाओमें आसक्त जारसे जार, सेवकसे स्वामी, रथसे रथ और भयपूर्वक क्रंदन करती हुई प्रिया अपने प्रियतमसे भिड़ गयी । वितानसे वितान, छत्रसे छत्र, बलवान्से दुर्बल, व पदातिसे पदाति भिड़ गये; तथा भागते हुआके दडसे दंड, और ध्वजसे ध्वजान्न खंड-खंड कर दिये गये । राजा समेत पौरजन सारे साधनो व सैन्य सहित त्रस्त होकर दिवाओमें भाग गये । परंतु एक अकेला जदूस्वामी हाँका मारकर (अर्थात् उस दुष्ट हाथीको आह्वान करके) अक्षुब्ध (शांत) भावसे वहाँ खड़ा रहा ॥२१॥

[२२]

तब दूक्षोको तोड़नेवाले, लोगोको दुःख देनेवाले, जलको कीचड़ कर देनेवाले, वीरोको

१७ प्रतिथोमे 'णट्ट' । १८. ख ग खोणिम । १९. क ड दोभियंग । २० क ड 'व्वलत, घ ल्ललत ।
२१ क ड 'गुट्ट, घ 'गुठ । २२. क ड यट्टिमां, ख ग पट्टियां, घ पट्टियां । २३ क ड उट्टिऊण
पारपत्तरट्टिखोट्टिया, ख ग उट्टिपुण्ण पारए । २४ क ड ववचित् । २५ ख ग गयदेण । २६ घ अन्न ।
२७ क ड गइदस्सदाण, ख ग गयद स । २८ ख ग गाण । २९ क स । ३० क घ ड सतेहि । ३१. र
ग सहु । ३२ ख ग मेल्लिय, घ मिल्लिय ।

कहविथनीरेण ^१	क्रियदूरवीरेण ।	
संगामडमरेण	गुंजंतभमरेण ।	
दाणंभुसंगेण	चूरियमुंभेण ^२ ।	५
दुव्वारवारस्स	जंजूळमारस्स ।	
थिरथोरकरघाड	पुणु मुक्कु ^३ सकसाड ।	
तं नियवि तेणावि	जिणवइसुएणावि ।	
विकमविसुद्धेण	रणरंगलुद्धेण ।	
करिवरहु ^४ रुद्धेण ^५	डसियाहरोद्धेण ।	१०
आरत्तनेत्तेण	भूमंगवत्तेण ।	
सलवट्टिभालेण	नं पलयकालेण ।	
त्तिणसमु गणतेण	बंधं जणतेण ।	
करु धरिउ परिकलिवि	इत्थेण आवलिवि ।	
आयडिडओ ^६ जं जि	ओसरइ ^७ करि तं जि ।	१५
निक्खिल्लकयगत्तु	सकइ न तिलमेत्तु ^८ ।	
कुंअइय ^९ धुयकंभु ^{१०}	विहडियसिराबंधु ।	
कडुरडियरववथणु	निडुरियनियनयणु ।	
मयमुक्कांडयलु	^{११} पसरंतभयवियलु ^{१२} ।	
अप्पाणु घल्लंतु ^{१३}	चिक्कार मेल्लंतु ^{१४} ।	२०
रुलुघुलइ रसमसइ ^{१५}	अवतसइ ^{१६} कसमसइ ^{१७} ।	

दूर हटा देनेवाले, संग्राममें भयंकर, मदजलसे युक्त होनेसे भ्रमरोसे गुंजायमान, तथा भुजंग (शेषनाग ?) को भी चूर-चूर कर देनेवाले उस हाथीने बड़ा भारी निनाद छोड़कर, जिसका वार (प्रहार) अत्यन्त दुर्निवार था, ऐसे जंबूस्वामीपर अपने बलिष्ठ सूंढसे कषाय सहित अर्थात् क्रोधपूर्वक, आघात किया। यह देखकर उस जिनमतीके पुत्रने भी, जो विशुद्ध विक्रमी एवं रण-रंगका लोभी था, उस हाथीसे रुष्ट होकर, अघरोष्ठ काटकर, आरक्त नेत्र करके, भीहे टेढ़ी करके, मस्तकपर सलवटें डालकर, प्रलयकालके समान बनकर उसे तूणके समान मानते हुए, नियंत्रण करनेके प्रयासमें हाथोंसे ही चारों ओरसे लपेटकर उसके सूंढको पकड़ लिया, व जैसे ही खीचा, तो हाथी पीछे हटने लगा। परंतु उसका सारा शरीर निष्क्रिय हो चुका था, और वह तिलभर भी चल नहीं सका। उसका कांपता हुआ कंधा कुंचित हो गया, व शिराबंध विघटित हो गया (अर्थात् शरीरकी नस-नस टूटने लगी)। मुखसे उसने बड़ा करुण निनाद किया; उसके नेत्र डरे-डरे हो गये; व गंडस्थल मदमुक्त हो गया, बढ़ते हुए भयसे वह अत्यन्त विकल हो गया। वह अपने शरीरको गिराता हुआ-सा चीत्कार छोड़ने लगा, गलगलाने लगा,

[२२] १. क कहमिय^१ । २. क ड भुंभेण । ३. ख ग वेमुक्क, घ पम्मुक्क । ४. ख ग वरह; घ वरह^५ । ५. ख ग रुद्धेण । ६. क ड करि । ७. ग ह्रिउ । ८. क ड रिउ । ९. क ड मत्तु, घ मित्तु । १०. क ख ग ड कुंअइय^९ । ११. क ड धुयकंभु । १२. घ पसरतु । १३. क ड विहलु । १४. ख ग मे । १५. ख ग र् । १६. क सइं । १७. घ भसइ ।

नौससइ गडयडइ महिवट्टि किर पडइ ।
 सत्तेण^८ ता मुक्कु वसि होवि^{१९} पुणु थक्कु^{१९} ।
 जो नहु सनरिहु पडिमिलिड जणविहु ।
 २५ वत्ता—वण्णइ^{३०} मगहाहिउ पइ करि साहिउ अण्णहो^{४१} छज्जइ एउ कसु ।
 जणणिप्र^{३२} लप्पणउ^{३३} तुहु पर-धण्णउ^{३३} असरिसु^{३४} जसु जसु वीररसु ॥२५॥

इय जंबूसामिचरिण सिंगारवीरे महाकव्णे महाकइदेवयत्तसुयवीरविरइण जंबूसामिउप्पत्ती-
 कुमारविजउ^{३५} नाम^{३६} चउत्थो संधी समत्तो^{३७} ॥ संधि—४ ॥

रसमसाने लगा, पीछेको चलने लगा, कसमसाने लगा, निश्वास छोड़ने व गडगड़ाने लगा, और पृथ्वीतलपर गिर पड़ा । तब जंबूस्वामीने भी शांत होकर उसे छोड़ दिया । फिर वह हाथी वशवर्ती होकर खड़ा हो गया । उधर राजा सहित जो जनसमूह भाग गया था, वह वापिस एकत्र हो गया । (तब) मगधराज जंबूस्वामीकी इसप्रकार स्तुति करने लगे—तूने जो हाथीको वशमें कर लिया, वह अन्य किसको जोभा देता है, अर्थात् अन्य कौन कर सकता है ? मैंसे उत्पन्न तू ही एक परम-धन्य है, जिसका वीर-रसात्मक यग (अर्थात् वीरताका यग) (लोकमें) सर्वथा असदृश (अद्वितीय) है ॥२२॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित, जंबूस्वामीचरित्र नामक इम श्रृंगार-वीररसात्मक
 महाकाव्यमें जंबूस्वामी-उत्पत्ति तथा कुमारकी (हस्ति) विजय नामक यह चतुर्थं सधि ममास ॥४॥

१८ ख ग नचेण । १९ र ग पुण एक्कु, व पुणु हाक्कु । २० क ट^०, व वन्न^० । २१ क ट^०, व
 वन्नहो । २२. क ट^० णिय, र व^० णिउ । २३. क घ ट^० उ । २४ क ट^० णिम । २५ व ट^० पुणु ।
 २६ क ट^० चउत्थो इमा नघो, घ चउत्थो उमा नघो ।

संधि—५

[१]

संते सयंमुएवे एक्को य कइत्ति^१ विण्णि^२ पुणु भणिया ।

जायम्मि पुपफयंते निण्णि तथा देवयत्तम्मि ॥ १ ॥

दिवसेहिं^३ इहं^४ कवित्तं निलए निलयम्मि दूरमावण्णं^५ ।

संपइ पुणो नियत्तं जाए कइवल्लहे वीरे ॥२॥

घालु करिणिगसु खंचवि^६ रयणहिं^७ अंचवि^८ अद्धासणे वडमारिडं । ५

नयरुच्छाहरमावले पुणु नियराउले^९ नरनाहं पइमारिडं^{१०} ।

वस्तु—ताम राएं द्विण्णु^{११} अस्थानु

सिंहासणु^{१२} विहि मि ठिउ एक्कु पासि कामिणिजणावलि^{१३} ।

पज्जलियमणिमण्डसिर^{१४} पुणु निविट्ट मंडलियमंडलि ।

पुणु सामंत महंत थिय सेणिड^{१५} इयराउत्त^{१६} । १०

भडथड थक्क त्रिणोयकर नरनाणाविहथुत्त ॥

केरिसं तं राइणो अत्थाणं^{१७}—जं तं कसवट्टयनिडवडियकणयधडिय-माणिकजडियदं-
डियाचउकविणिवद्ध^{१८} रयणत्रिणिम्मिय -^{१९} त्रियाणतलि^{२०} संनिवेशियसोहमाणसिंहासणं ।

[१]

स्वयंभूदेवके होनेपर एक ही कवि था, पुष्पदंतके होनेपर दो हो गये और देवदत्तके होनेपर तीन। यहाँ बहुत दिनोंसे यह काव्य घर-घरमेंसे दूर चला गया था, अब कविवल्लभ वीरेके होनेपर पुनः लौट आया।

राजाने अपनी नूतन (तरुण) हस्तिनीकी चालको रोककर, रत्नोंसे अर्चा करके बालक जंबूस्वामीको अर्द्धासनपर बैठाया, और फिर (नागरिकोके) उत्साहरूपी लक्ष्मीसे आकुल अर्थात् उत्साहसे परिपूर्ण नगरमें, तदनंतर अपने राजकुल (राजप्रासाद) में प्रवेश कराया। तब राजाने सभा लगायी और वे दोनों सिंहासनपर बैठे। एक पार्श्वमें कामिनियोकी पंक्ति खड़ी हुई, फिर रत्नोंकी दीप्तिसे प्रज्वलित मणिमुकुटोंको सिरपर धारण करनेवाले मांडलीकोकी मंडली बैठी, और फिर बड़े-बड़े सामंत व अमात्य बैठे, तथा फिर अन्य श्रेणियो (व्यापारी, स्वर्णकार, चित्रकार आदि लोगोके संघ) के मुखिया बैठे, फिर भटोके समूह और फिर मनो-विनोद करनेवाले लोग तथा अंतमें नाना प्रकारके चतुर लोग बैठे।

राजाका वह सभामंडप कैसा था ? वहाँ कसौटीपर कसे हुए खरे सोनेसे गठे हुए, माणिकयोसे जड़े हुए एवं चार दंडिकाओसे युक्त रत्नमयो वितानके नीचे रखा हुआ सिंहासन

[१] १ क ड कईय । २ ख ग घ विन्नि । ३ क ड इय । ४ क ड वण्ण, ख ग पन्न । ५ क घ ङ खचिवि । ६ क ड णिंहि । ७ क घ ड अचिवि । ८ ख ग घ सारियड । ९ क ड णिउ-
रावलि । १० ख ग पयसारियड, घ सारियड । ११ घ दिन्नु । १२ क घ मिधां । १३ क घ ङ उलि । १४ क वर । १५ घ उ । १६ क ड रावत्त । १७ ड णो । १८ ग विणिवद्ध । १९ ख ग वियणिं । २० ख ग घ तल । २१ क ख ग ड सण्णिं ।

जं तं सिंहासनपरिसंठियमहाराथाहिरायपायत्थवण^{२३}-फलिहफलएण चलचमर-
 १५ धारिचिणसिणोमुहकंतिजित्त^{२३} दासत्तणपत्तनक्खत्तसामिणा इव^{२४} पडिछित्तनरिंद-
 कमकमलं । जं तं नरिंदकमकमलपणमणमिलंतं^{२५} भूवालमवल्लिमाणिकसंकंतं^{२६} नह-
 निउरुंवपडिचिब्रल्लेण तिउवपयावमसंदंतेहिं^{२७} राथाणपहिं मुत्तियसयमिब^{२८} पयहु-
 त्तमंगिं^{२९} बुद्धंतारायसासणं^{३०} । जं तं^{३१} रायसासणसमीहमाणसयलदेसभासासंवलय-
 सत्थत्थविचित्तकणकणंतं^{३२} कंकणदाहिणकराहिट्टियकणयदंडपुरट्टिय^{३३} महपाडि-
 २० हारं^{३४} । जं तं^{३५} पडिहारय नामं^{३६} पत्थावार्णंतर-^{३७} समोसारणाडलसुपसत्थइत्थ-
 थियपरिभमिर^{३८} इंडप्पयंडं^{३९} सहासंक्रियतरलतरचलंतदिट्ठिं^{४०} सत्थाणमुवविसंतं^{४१}-
 सामंतचक्रं । जं तं सामंतचक्रसेणावइपाइकपसुहपरिग्गहवसीक्रियमंडलवइसपेसिय-
 दूरमंडलागयरायवारिएहिं^{४२} ढोइज्जमाणपाहुडगलंतमुत्ताहलकरंत्रियभूमिभायं । जं
 २५ तं भूमिभायसम्मज्जणकुंकुमकंपूरकत्थूरियाभोयविक्खरियकुसुमभयवंदमत्तगुमुगु-
 मियं^{४३} भमरईं^{४४} ऋरसद्धानुकारियवीणाविलासं । जं तं^{४५} वीणाविलास-गिज्जंतगेय-

शोभायमान था । और वह सिंहासन उसके ऊपर बैठे हुए महाराजाधिराजके पैर रखनेके स्फटिकमय फलक (पादपीठ) में चंचल चमरोको धारण करनेवाली विलासिनियोंकी मुख-कातिसे विजित होकर मानो दासभावको प्राप्त हुए नक्षत्रोके स्वामी (चंद्रमा) के समान नरेंद्रके चरणकमलोके प्रतिबिंबसे युक्त था । और वह सभामंडप नरेंद्रके चरणकमलोको प्रणाम करनेके लिए एकत्र हुए भूपालोके मुकुटमणियोसे सक्रांत होते हुए नखसमूहके प्रतिबिंबोके छलसे, उसके तीव्रप्रतापको सहन न करनेवाले राजाओके उत्तमाग (मस्तक) पर सैकड़ो मौक्तिकोके समान प्रगट होकर मानो राजाके शासनको भलीभाँति समझा रहा था । और वह सभामंडप राजाज्ञाकी प्रतीक्षा करनेवाले, सकलदेश भाषाओसे युक्त शास्त्रार्थके समान विचित्र कणकणध्वनि करते हुए ककणको धारण किये हुए, दाहिने हाथमे स्वर्णदंडको लिये हुए द्वारपर अविष्टित महा-प्रतिहारसे युक्त था । और वह सभामंडप उस महाप्रतिहारके द्वारा नाम-प्रस्ताव (अभ्यागत परिचय) के अनंतर राजाके सामने एकत्र हुए सभासदोको दूर करनेके लिए आकुल उसके प्रगस्त हाथोमे स्थित, धूमते हुए प्रचंड दंडके शब्दसे आशंकित, चंचलतर धूमती हुई दृष्टियोवाले, व अपने-अपने स्थानोपर बैठते हुए सामंतवृंदसे युक्त था । और वह सभामंडप सामंतचक्र, सेनापति, पदाति प्रमुख साधन संपत्तिसे वशीकृत मंडलपत्तियो द्वारा प्रेषित दूरमंडलोसे आनेवाले राजकीय नाइयों द्वारा उपस्थित किये जाते हुए भेटोसे गिरते हुए मुक्ताफलों व मणिरत्नोसे व्याप्त भूमिभाग-वाला हो रहा था । और वह सभामंडप उस भूमिभागके समाजंनसे कुकुम, कर्पूर व कस्तूरीकी आमोदसे व कुमुमोकी विकीर्ण मकरंदसे आकृष्ट हुए गुम्-गुम् गुंजार करते हुए मत्त भीरोके झकार शब्दका अनुकरण करनेवाले वीणाविलाससे युक्त था । और वह सभामंडप वीणाविलास-

२२. क व ड 'पायट्टवण' । २३ क ड दोसत्तण, घ दामित्तण । २४. ख ग पडिछिट्टं । २५ क ट भूपालं । २६ ख ग संवकतं । २७ क ड संमहंतं हिं । २८ क घ ट मुत्तियमयं; ख मुत्तियमयं । २९. क घ ड मंग । ३० घ दुक्कतरायो । ३१. क घ ड से 'राय' पद नहीं । ३२. घ 'कणवर्णतं । ३३ क ड 'पुरिट्टिय । ३४ ख ग घ 'पडिहार । ३५ क ख घ ट 'पणाम । ३६ ख ग 'ताग्गाउल', घ 'मरणाउल' । ३७ घ 'परिभमिय । ३८ क ट दडपयड; ख ग दडपयडं । ३९ क ट 'वल्लदिट्ठि । ४०. ख ग 'भुवविपण । ४१ ख गुमगुमिय । ४२ घ 'विलासं ।

वज्रंतवज्रसमवायरइयपेक्खणय-नञ्चिरविलासिणीसञ्चविय-^३ महकइनिवद्धनाडयर-
संतं । जं तं रंसंतकामिणोचरणनेउरेहिं पढमाणमंगलपाढएहिं महुरक्खरं गायंत-
गायणेहिं^४ नियवावसर - अणवरयपविसंतं^५ - जोक्कारमुहरजोहेहिं^६ सुहपुण्ण^७ -
कणजणनिवहं ।

यत्ता—पुहईसरु कणयच्छवि सुहिपंकयरवि जंनुकुमाराहिंट्टिउ^८ । ३०
अच्छइ विविहविणोयहिं पयडियभोयहिं जावत्थाणे परिट्टिउ ॥१॥

[२]

वस्तु—तामं चउदिसु कयसमुज्जोउ

कणकणिरंकिंकिणिमुहलु निवसमीवल्लोएहिं दीसइ ।

अवरुपरु विभियमणहिं अवयरंतु गयणाउ दीसइ ।

धुत्तिवरंघयमालाललिउ मारुयवेयवहुत्तु ।

दिव्वविमाणु सलक्खणउ^९ रायत्थाणं^{१०} पहत्तु ॥१॥ ५

तहिं फुरियाहरणविराइयउ विज्जाहरु एक्क पराइयउ ।

जयकारिवि नरवइ नविवि सिरु वोल्लणहं^{११} लगु पुणुं होवि^{१२} थिरु ।

इह अत्थि खेयरालंकियउ गिरिसहससिंणु नामंकियउ ।

सहित गाये जाते हुए गीतो, बजते हुए बाजोके समुदायसे रचित प्रेक्षणक (दृश्य नाटक व नृत्य आदि) में नाचती हुई विलासिनीके-द्वारा दिखाये जाते हुए महाकवि-निबद्ध (रचित) नाटकके कोलाहलसे पूर्ण था । और वह सभामंडप गानेवाली कामिनियोके झुनझुनाते हुए चरणनूपुरो से, पाठ करते हुए मंगलपाठकोसे, मधुराक्षरोसे गाये जाते हुए गायनोसे, एवं अपने-अपने अवसरपर प्रवेश करते समय जय-जयकार करनेमे मुखर योद्धाओके स्वरसे सुखसे पूर्ण हो गये हैं (भर गये हैं) कान जिनके, ऐसे जन-समूहसे युक्त था । इसप्रकार जब वह राजा सुवर्णके समान वर्णवाले एवं सुहृज्जन रूपी पंकजोके लिए सूर्यके समान जवूकुमारके साथ विविध प्रकारके विनोद व प्रदर्शन किये जाते हुए गंध, वर्ण व शब्दादि विषयोके साथ सभामंडपमे बैठा था—॥१॥

[२]

—तभी राजाके पासके लोगो-द्वारा अतिविस्मित मनसे, एक दूसरेको आकाशसे उतरता हुआ एक दिव्य विमान दिखाया गया जो चारो दिशाओको प्रकाशित कर रहा था, कण-कण करती हुई किंकिणियोसे मुखर था; एवं फहराती हुई ध्वजमालाओसे सुंदर, मास्तसे भी अधिक वेगवाला तथा लक्ष्णोसे युक्त था । ऐसा वह विमान (शीघ्र ही) राजसभामे प्राप्त हुआ । उसमे-से कातिमान आभरणोसे सुशोभित एक विद्याधर निकला । जय-जयकार करके, नृपतिको शिर नवाकर स्थिर होकर वह बोलने लगा—यही (इसी भरतक्षेत्रमे) खेवरोसे अलंकृत सहस्रशृंग नामका एक पर्वत है । मैं गगनगति नामका विद्याधर वहाँ प्रीतिपूर्वक रहता

४३ क ड महाकइ । ४४ ख ग णेहि । ४५. ख ग यणवरयपविसत । ४६. क सुहरजो । ४७ घ पुहपुण्ण । ४८. क हिट्टिउं ।

[२] १ क ड ताव । २ क ड कणकणिणं । ३ क दुं, ख ग धुत्तिवरं । ४ क घ णउ । ५ त्थाणु । ६ क ड वोळ । ७ घ मणु । ८ क ड होइ ।

	हउं वसमि तिल्यु संजायरइ	विज्जाहरु नामें गयणगइ ।
१०	अज्जेणणं दिणि जं लक्खियउ तं कहमि देव कारणसहिउ ^२ दाहिणपहं नयणाणंदयरि तहिं निवइ भियंक्कु नएण सहुं तहिं ^१ नंदणि जाय विलासवइ ^{१०}	आलोइणिविज्जणं ^{१०} अक्खियउ ^१ । उत्तालु जइ वि किर पंथि थिउ । मलयाचलम्मि केरलनयरि । मालइलय ^३ परिणिय वहिणि ^{१५} महुं ^{१५} । सिगारु अणंगु जाहं ^{१८} थवइ ।
१५	सिक्खियगइसहयरु हंसगणु अंगच्छवि जाहं ^{११} पसाहणउं ^३ अलयावलि भालुम्मीलणउं ^{३३} न मुणइ ^{२५} रत्ताहररंगगणुं ^{२५} कणंत्तयत्तनयणं ^{२७} जि धवला	विहवहो कारणु परिवारजणु । भोयायरु ^{२१} घुसिणविलेवणउं ^{२२} । नीलुप्पलमंडणु कोलणउं ^{२४} । जा छोइइ सुद्ध वि दंत पुणु । सिरभारु ^{२८} पुप्फमालां ^{३०} विमला ।
२०	बोल्लंतिहिं कोमल जाहि गिरां ^{३०} वयणुल्लउ निरुवमु ^{३३} मणहरउ	वीणावायणउं ^{३१} विणोयपरां ^{३१} । ससिहरु ^{३८} तहं ^{३५} निवट्टणखप्परउं ^{३५} ।

हूँ । आम्के दिन जो मेरें लक्ष्यमे आया, तथा आलोकिनी विद्यासे मुझे जो कुछ ज्ञात हुआ, उसको, यद्यपि मैं बहुत उतावला हूँ, और बीच यात्रामे ही खड़ा हूँ, (तथापि) कारण सहित कहता हूँ । दक्षिणापथमे मलयाचलमे नेत्रोके लिए आनंदप्रद केरलपुरी नामकी नगरी है । वहाँ मृगाक नामका राजा न्यायपूर्वक रहता है । उसने मेरी मालतीलता नामक बहनसे परिणय किया । उसको विलासमती नामकी पुत्री हुई, जिसके श्रृंगारका कारीगर स्वय अंतंग ही है । उसका सहचारी हंससमूह (उसका अनुकरण करनेके कारण) गमन क्रियामे कुशल हो गया है, और परिवार-जन अर्थात् सेवकोंके लिए वह वैभवका कारण है, तथा जिसकी शारीरिक क्रांति स्वयं ऐसी है कि चंदनविलेपनादि प्रसाधनोका प्रयोग केवल उन प्रसाधनोका आदर करनेके लिए ही किया जाता है (उसके शारीरिक सौंदर्यकी वृद्धिके लिए नहीं) । उसके भालपर खुली हुई अलकावलो ऐसी लगती है, मानो नीलकमलरचित अलकार वहाँ झोडा करने आया हो, और जो अपने रक्षित अवरोके गहरे रंगके प्रतिविक्रको न समझ सकनेके कारण अपने स्वच्छ दांतोको बार-बार छीलतो है । उसके नेत्र कानोके सिरे तक पहुँचे हुए हैं, तथा धवल पुष्पमाला (टिं मुकुट) उसके शिरपर भार मात्र है । बोलते समय उसको कोमल वाणो वीणावादनको भी उत्कृष्टतासे मात करनेवाली है । उसका मुख ऐसा निरुपम व मनोहारी है कि चंद्रमा उसके समक्ष दमशानपर पड़ी हुई उल्टो खोपड़ी अथवा उल्टे ठीकरेके समान प्रतीत होता

१ क ड णड । १०. ख घ ड आलोयणि; क ड विज्जणं । ११ क णउ । १२ घ महिउ । १३ क ड मालयं, घ मालयलड । १४ ख ग ण । १५. क र ग महुं । १६. क ग घ ड तं । १७ क ट मं । १८. क घ जाहि, ड जाहि । १९ घ जाहि । २०. घ णउ । २१. न ग टं । २२ क घ ट णउ । २३ प्रतिथोमे णउ । २४ घ ड णउ । २५. क ड णउ । २६. क ड णुणु । २७ र ग णणं; घ कणतं । २८ क ड भार । २९ र ग घ मुडं । ३० क ड मग । ३१ क घ ट णउ । ३२. न ग घ विणोउ परा । ३३ र ग घ वम । ३४ क घ ड पर, र हर । ३५ क ड नो, घ नं । ३६ क विवडणं, घ ड णिवडणं ।

घत्ता—महरिलिनाणुवएसें कयआएसें तेण मियकें देवउ^{३०} ।
तं^{३१} पयपरिपालियधर नरपरमेसर कण्णरयणुं^{३२} परिणेवउ ॥२॥

[३]

वस्तु—असमसाहसुं हंस दीवन्मि

विज्जाहरु रयणसिहु करइ रज्जु संगरि अचण्णिउ^३ ।
करितुरंगं^३ रह-सुहड-थड^४ अपमाणवलविसमदप्पउ ।
सामभेयउवयाणयहि मग्गिय तेण कुमरि ।
पुणु पारंभियं दंडकिय जाणुं पयट्टुं मारि ॥१॥

५

मगंतहो कण्णं न दिण्णं जाम
चलपासिउ पसरिउ वल्लु रउड
जिणभवण-सवणो-संवट्टणाइं
नीसेसइं^{११} देसइं नासियाइं
सुहधामइं गामइं लूडियाइं^{१४}
संपण्णइं धण्णइं भारियाइं
असराळइं^{१९} वाडइं^{२०} खुण्णियाइं^{२३}
तरुतीरइं^{२२} नीरइं^{२३} फोडियाइं

केरलपुरि वेडिय तेण ताम ।
मज्जायसुक्कु नावइ समुह ।
लाट्टियइं^{११} मियकहो पट्टणाइं ।
वहुधणइं जणइं^{१२} निव्वासियाइं^{१३} ।
आरामइं रामइं^{१४} सूडियाइं ।
रसवंतइं^{१५} छेत्तइं^{१६} चारियाइं^{१८} ।
कयनीडइं^{२२} वीडइं^{२३} खुण्णियाइं^{२३} ।
भडथट्टुइं^{२४} कोट्टुइं^{२५} मोडियाइं ।

१०

है। तो, हे प्रजापालक-वराके समान धीर नरेश्वर ! महर्षिके ज्ञानोपदेश व आदेगानुशार मृगाकके द्वारा वह कन्या-रत्न आपको परिणयके लिए दिया जाना है ॥ २ ॥

[३]

हंसद्वीपमे अतुल्य साहसवाला, व संग्राममें अपराजेय, रत्नशेखर नामका खेचर राज्य करता है। वह अपने हाथी, घोड़े, रथ, और सुभटसमूहके अप्रमाण बलका अत्यंत अभिमानी है। उसने साम, भेद व दामसे उस कुमारीको मांगा, और तत्पश्चात् दंडक्रिया (युद्ध) प्रारंभ कर दी, जिससे मृत्यु ही प्रवृत्त होती है। जब मांगनेपर भी उसे कन्या नहीं दी गयी तो उसने केरलपुरीको घेर लिया। चारो पाश्र्वोंमें रौद्र सेना इसप्रकार फैल गयी मानो समुद्र मर्यादा मुक्त हो गया हो। मृगाकके जिनमंदिरो व श्रमणोके संघट्टन अर्थात् बाहुल्यसे युक्त नगर लूट लिये गये, समस्त प्रदेश बर्बाद कर दिये गये, एवं बहुत धनवान लोगोंको निर्वासित कर दिया गया। सुखके धाम गाँव भी लूट लिये गये, रमणीक आरामोंका विनाश कर दिया गया, पके हुए धान्यको भरकर ले जाया गया, एवं हरे-भरे खेतोको चरा दिया। अधिकांश वाड़ो (सीमाबंधों) को खोद डाला गया, तथा विस्तीर्ण घोंसलोंमें रहनेवाले पक्षियोंको भी भयभीत कर दिया गया। वृक्षस्थित तटोवाले जलाशयोको फोड़ डाला गया, एवं अनेक भटसमूहोंसे

३७. घ देवउ । ३८ क घ ङ पडं पालियधर । ३९ घ कण्णं ।

[३] १. घ अह सुसाहसु । २. क ङ अवण्णिलं, ग अव । ३. ख ग घ 'तुरय । ४. क ङ भड । ५. घ आर । ६. ख ग जाइ, घ जाइ । ७. ख 'डडइ, घ 'ट्टुइं । ८. घ 'स । ९. घ 'मुक्क । १०. क रावण, ख ग घ रवण । ११ क 'इ । १२ ख ग 'जणइ घ', घ 'वणइ जणइ । १३. घ निव्वासियाइं । १४. ख ग लूटिं । १५ क ङ सीमइ । १६. क ख ग ङ 'तइ । १७ घ रवे' । १८ ङ 'याइ । १९ क ख ग ङ 'लइ । २०. क घ ङ मालइ । २१. घ खुण्णिं । २२ ख ग 'इ । २३ क ख ङ खुण्णिं, घ खुण्णिं ।

वृत्ता—कल्लइ^{२२} रह-गयवाहणु परिमिय-साहणु रणे मियंक्कु झिञ्जेसइ^{२३} ।
 १५ खत्तिंयकुलकमनिम्मलु^{२४} परिंरिक्खयल्लु वयणीयहे^{२५} जुञ्जेसइ^{२६} ॥३॥

[४]

वस्तु—जइ वि^१ परवल्लु पलयजमसरिसु
 अप्पमाणु साहणु जइ वि^२ जइ वि^३ सव्वु संगरे मरिज्जल ।
 धीरत्तणु परिचण्वि^४ लोयनिट्टु किम कल्लु किज्जइ ।
 परिथोडणु^५ अप्पणु^६ बहुणु^७ गोहत्तणु संव्वासु ।
 ५ अरिसंकेडे मणुसइय जसु^८ वल्लि किज्जउ हउं तासु ॥१॥
 इय विज्जावयणहिं^९ सल्लियत्त हउं तेत्थुं ज्जत्तिं^{१०} संचल्लियत्त^{११} ।
 गयणंगणे जंतहो जणघणत्तं^{१२} अत्थाणु नियच्छेवि तउ तणत्तं ।
 हुत्तं^{१३} वइयरसुमरणु^{१४} चित्तं महुं^{१५} पासंगिउ अक्खिउ देव लहुं^{१६} ।
 सविसेसु कहंतहो समत्त न वि लइ जामिं^{१७} सत्तुधरे होमि पवि ।
 १० इय भणिवि विमाणुआलियत्त तं जंबुक्कुमारो वालियत्तं^{१८} ।
 थिरुं^{१९} थाहि मित्तं सामंतसहुं^{२०} साहेज्जउ चित्तइ जाम पहु ।
 तो वल्लि विहसंतु खयरु भणइ^{२१} चंदहो करफंसणु को कुणइ^{२२} ।

युक्त दुर्गोको ध्वंस कर दिया गया । अतः कलके दिन रथ, हाथी, व अन्य वाहन आदि परिमित साधनवाला मृगाक राजा अपनी निर्मल क्षत्रियकुल-परंपरा व पौरुषका लोकनिदासे रक्षण करनेके लिए रणमे जूझेगा और क्षयको प्राप्त होगा ॥ ३ ॥

[४]

‘यद्यपि शत्रुबल प्रलय करनेवाले यमराजके समान है, यद्यपि वह अग्रमाण साधनवाला है, और यद्यपि सबको संग्राममें मर जाना है, फिर भी धीरताको छोड़कर लोकनिष्ठ कार्य कैसे किया जाये ? सुभटत्व और अग्नि अपने आपमे थोड़े होते हुए भी बहुत हैं । शत्रुसंकटमे भी जिसका मानुष्य (पौरुष) स्थिर रहे, मैं उसको बलि जातो हूँ, (आलोकितो) विद्याके इन वचनोसे विधकर मैं झटपट वहाँसे चल पड़ा । गगनागनमे जाते हुए घने लोपोसे युक्त तुम्हारी सभाको देखकर मेरे मनमे इस वृत्तांतका स्मरण आ गया और प्रासंगिक वातांको सक्षेपमें मैंने देवको (आपको) निवेदन कर दिया । विस्तारसे कहनेका समय नहीं है । मैं जाता हूँ, और शत्रुलुपी पर्वतके विनाशके लिए वज्र वज्रंगा । ऐसा कहकर जब उसने विमानको ऊपर उठाया तो जंबूकुमारने उसे (यह कहते हुए) वापिस लौटाया कि मित्र जरा ठहरो, जब तक राजा अपने सामंतोके साथ करणीय साहाय्यका विचार कर ले । इसपर हँसता हुआ तेचर

२४. ख ग जुञ्जे, घ कुञ्जे, ङ जुञ्जे । २५. क ड पडिं । २६ क ड बहिणीवउ, ख ग बहो । २७. ग ग झुञ्जे ।

[४] १ ख ग जय वि । २. घ चयवि । ३ क घ ङ इ, ग ग पणोऽए । ४ क घ ट ङ । ५ व सव्वत्स । ६. क घ ङ हउं वल्लि किज्जउ । ७. क ग ह र तासु, घ तसु । ८ क ग र ट णिं । ९. ख ग व तित्तु । १० क मत्ति । ११ क यत्त । १२ घ यण । १३ क ट हुय । १४ क ट वटण । १५. ख ग व तित्तु । १६ क ड लहो, ग ग लहुं । १७ क ड वणि, घ णिं । १८. क घ ग ट । १९. ख ग थिर । २० क इ, घ तणइ । २१ क घ ट, ग ग णण ।

फुड्डु^{२२} लोयाहाणउं इयगिरण
 सो थाउ^{२३} जेत्थु थिउ वडरिगहु
 भूगोयर तुम्हडें^{२४} किर भणउं^{२५}
 पडिभणउं^{२६} कुमार म किं पि भणु
 समरंगणु जेम समाणियइ^{२७}
 समियंकु जेम तुहु^{२८} लच्छिफलु
 सविलाससंलक्षणहंसगइ

जोयणसयचिज्जु^{२३} सपु सिंग्र ।
 इह^{२४} ठायहो^{२५} जोयणसउदिउडु^{२६} ।
 अज्जु जि जाएवउ कहिं^{२७} तणउं ।
 तुहु^{२८} नेहि तेत्थु मई^{२९} एक्कु जणु ।
 अणुयलु संपेसिउ^{३०} जाणियइ^{३१} ।
 अणुहुजहि^{३२} निच्चलु निहयखलु ।
 परिणइ^{३३} नरनाहु विलासवइ^{३४} ।

घत्ता—मणे विज्जाहरु कंपिउ पुणु वि पयंपिउ जो समाणु रिउ कालहो । २०

सो मई नीयहो एकहो जइ वि सुसकहो केम सज्जु तुह वालहो ॥१॥

[५]

वस्तु—को^१ दिवायरगामणु पडिखलड

जममहिससिगुक्खणइ^२ कवणु गरुडमुहकुहरे पडसइ^३ ।

को क्रूरगहु निग्गहइ को जलते सव्वासे पडसइ ।

को वा सेसमहाफणहिं^४ फणमणिं^५ मंड-हरेइ ।

को कपंतुंउं^६ जलु जलनिहिं^७ भुण्हिं^८ तरेइ^९ ॥१॥

५

बोला—चाँदकी किरणोंको कौन छू सकता है ? तुम्हारी इस बातसे यह लोकाश्रयान (लोकोक्ति) हो प्रकट होता है—सौ योजनपर वैद्य और शिरपर साँप (सोसे साँपो, विसे वेज्जो) । वह वहाँ स्थित है, जहाँ उस शत्रुका गढ है, और यहाँसे डेढ़सौ योजन दूर है । तुम लोग भूगोचरी हो, तुमसे क्या कहा जाये ? आज ही तुम लोग कहाँ तक जा सकते हो ? तब कुमार फिर बोला—यह सब कुछ मत कहो, तुम मुझ अकेले ही व्यक्तिको वहाँ ले चलो, जिससे यह युद्ध समाप्त किया जा सके, सहायक सैन्य भेजा हुआ समझा जा सके; तू उस दुष्टको मारकर मृगांक राजा सहित निश्चल रूपसे राजलक्ष्मीका भोग कर सके, और राजा श्रेणिक विलासगोल, सुलक्षणवा व हंसगामिनी विलासमतीका परिणय कर ले । यह सुनकर विद्याधर मनमे काँप गया—जो शत्रु यमराजके समान है, वह, मेरे द्वारा अकेले ले जाये गये तुझ बालकके द्वारा कैसे साधा जायेगा ॥ ४ ॥

[५]

सूर्यकी गतिको कौन अवरुद्ध कर सकता है ? यमराजके भैसेके सीगोंको कौन उखाड़ सकता है ? गरुडके मुखकुहरेमें कौन प्रवेश कर सकता है ? क्रूरग्रहका कौन निग्रह कर सकता है ? और जलते हुए अग्निमे कौन प्रवेश कर सकता है ? शेष-महाफणि (शेष नाग) के फणपर स्थित मणिको दलात् अपहरण कौन कर सकता है और कल्पात् अर्थात् प्रलयकालके समय ऊपर उठती हुई भयंकर लहरोसे युक्त जलवाले जलनिघिको भुजाओसे कौन पार कर सकता है ?

२२ ख ग फुड्डु । २३. क घ ङ सइ, ख ग संय । २४ ख ग थाउं । २५ क ड इय । २६. क ख ग ड था । २७. क घ ङ दिव्हू । २८ क घ ङ उं । २९. घ कहु । ३० क घ ङ ईं । ३१ ख ग मइ । ३२. क णियण, ङ सम्मा । ३३ क ङ बालु पममिउ । ३४ क ख ग घ यइं । ३५. ख ग तुह । ३६ ख ग जहिं । ३७ क ङ मई ।

[५] १ क को वि । २ क घ ङ णइं । ३. ख ग पयं । ४. क ङ सेमिं । ५ क ङ फणिं ।

६ क घ ङ डतु । ७ ख ग णिहिं, घ णिहिं । ८ क घ ङ भुयहिं । ९. क ग ईं ।

	तत्रो जंपियं राइणा ^१ हासिरेणं	समं खेयरेणं सहाभासिरेणं ^{११} ।
	किमेण थोल्लेण एक्को वि थालो	समत्थो समत्थस्स कालस्स कालो ।
	फुरंतप्पयावत्स सूरस्स सूरु	इमो खे विडप्पस्स कूरस्स कूरु ।
	इमो सम्गथक्कस्स सकस्स सको	इमो पक्खिरायस्स ^{१२} चक्कस्स ^{१३} चक्को ^{१४} ।
१०	इमेणं करत्ताडिओ सोसि सेसो	फणामंडलाओ मणिं थुंच एसो ।
	इमस्स प्पयावेण संडञ्जमाणो	सिही सीयलो होइ भूईनिहाणो ^{१५} ।
	विक्कखो सखग्गम्मि प्पयम्मि थाले ^{१६}	पक्कचेइ मिच्चुं अपूरम्मि काले ^{१७} ।
	सुणेऊग तं खेयरो रायवाणि	कुमारं समारोवए दिट्ठवाणि ^{१८} ।
	नरिट्ठस्स वालो पप्पुं पडिण्णो ^{१९}	समासीसदाणो विमाणं चडिण्णो ^{२०} ।
१५	जवेणं समुदाइयं थोमभाए ^{२०}	खणद्धेण दिट्ठीए दिट्ठं सहाए ।

घत्ता—तक्खणे वाहुविसाले चिनुत्ताले तं अत्थाणु विसज्जिउ ।

केरलनयरिपपसहो^{२१} द्दिक्खणदेसहो निवेण पथाणए^{२२} सज्जिउ^{२३} ॥५॥

[६]

वस्तु—सरसनरवइ-सवलसामंत-

सेणावइ-साहणिय-तंतवाल्दलनिविडभइथड^१ ।

आइड्डकड्डियधग्हि^३ तुरिउ^३ जाउ सामग्गिवावड ।

इसपर हँसते हुए राजाने (अपनी प्रभासे) सभाको भास्वर करनेवाले उस खेचरसे कहा— यह सब बोलनेसे क्या ? यह अकेला ही बालक समर्थ यमके लिए भी यम होनेमें समर्थ है । सूर्यके लिए भी (सूर्यके तेजको अपने तेजसे पराभूत करनेवाला) सूर्य है, और आकाशमें क्रूर राहूके लिए भी क्रूर है ! यह स्वर्गत्य शक्रका भी शक्र, और पखिराज (गरुड) के समूहके लिए भी (सुदर्शन) चक्रके समान है । यह जीवके गिरपर हाथसे ताड़न करनेवाला है, और उसके फणामंडलसे मणिको छुड़ा लेनेवाला है । इसके प्रतापमें दाब होकर अग्नि भी शीतल होकर भस्मराजि मात्र रह जाता है, और इस बालकके खड्ग ग्रहण करनेपर शत्रु अपना समय पूरा होनेसे पहले ही मृत्युको प्राप्त होता है । राजाको इस वाणीको मुनकर खेचर कुमारको दिव्ययानमे चढ़ाने लगा, तो बालक राजाके पैरोंमें पड़कर, राजा द्वारा आजीर्वाद देनेके साथ ही विमानमें चढ गया । क्षणार्द्धमें ही सभाके लोगोंने प्रसन्नतापूर्वक विमानको वेगसे व्योमभाग (नभोमार्ग) मे भागते हुए देखा । उसी समय विनाल भुजाओवाले उस राजाने उतावले चित्तसे उस सभाको विसजित कर दिया और दक्षिण देगमें केरलनगरी प्रदेशकी और प्रयाण करनेकी तैयारी की ॥ ५ ॥

[६]

तत्र नरपति वीर भावसे सेना, सामंत सेनापतियो, निज सेनापतियो, राष्ट्रपालोके वल, घने भटसमूह, तथा आदेश किये हुए प्रतीहारोसे कार्य-रत हो गया । रथ जोते जाने लगे, गर्जो

१० ग रायणा । ११ क ड महा । १२ क ड पखि । १३ क ड वक्कस्स, व वक्क । १४ क ड वंको, व वक्को । १५. क ड णियाणे । १६. क ड ग ड वाओ । १७. क ड ग ड कालो । १८. र ग ग देवि पाणं, व देवि पाणि । १९ व ञो । २० क ड हाए । २१ क ड केरलि, र ग नयर । २२ क व ड णं । २३ ड उ ।

[६] १ र ग वय । २ र ग णिवड । ३. क ड आइड्ड । ४. व तुरिय ।

रहं जुष्पति गुडंति गय पल्लाणियं ह्यथट्ट ।

करह-वल्ह-रुहारियहि संवाहिय करकट्ट ॥१॥

५

तो महारायदारम्मि सरलालियं भरियदरिचिवरतूरं^{१०} समुफालियं ।
 पहय पडुपडह पडिरडियदडिडंयं करडतडतडण-तडिवडण-फुरियंवरं ।
 धुमुधुमुक्कं^{१०} धुमुधुमियमडलवरं सालकंसालसलसलिय-सुललियसरं^{११} ।
 डकडमडक^{१०} डमडमियडमरुडभडं यंट-जययंट^{१३} डंकाररहसियभडं ।
 डक^{१०} त्रं त्रं हुडुकावलीनाड्यं^{१४} रंजगुंजंत-संदिण्णसमघाड्यं^{१५} । १०
^{१६} थगगदुग-थगगदुग-थगगदुगे सज्जियं किरिरिकिरि-तट्टकिरि-किरि-किरि किरि^{१७} वज्जियं ।
^{१८} तखिखितखि-तखिख-तखितत्तासुंदरं तदिदिखुदि-खुंदखुद खुंद भाभासुरं ।
 थिरिरि^{१९} कटतट्टकट थिरिरि^{१९} कटनाडियं किरिरि तटखुंद^{२०} तटकिरि-रि-तडताडियं^{२१} ।
 पहय-समहत्थं^{२२} सुपसत्थवित्थारियं मंगलं नंदिघोसं मणोहारियं ।
 तूरसहेण चलियं^{२३} महाकलयलं रायराएण सह चाउरंगं वलं । १५
 घत्ता—उट्टियरयजललोलउ नहयलवोलउ तं^{२४} नरवडवडु चलिउउ^{२५} ।

निवमणे रयणरमाउलु करिमयराउलु णं समुदु उच्छल्लिउ ॥६॥

को हीदा लगाकर सजाया जाने लगा, एवं अश्वसमूहपर पलान लगाया जाने लगा । ऊँटों, बैलों व कहारों-द्वारा ले जाने योग्य वस्तुएँ ले जायी जाने लगी । तब महाराजाके द्वारपर ललित स्वरवाला, समस्त दरि-विवर प्रदेशोंको भरनेवाला तूर वजाया गया । पटु-पटह वजाये गये, व दडिडंवर उससे प्रतिध्वनित हो उठा । करडकी तड-तडसे आकाश विद्युत्पतनके समान हिलने लगा । श्रेष्ठ मडल धुमधुमुक्क धुमधुमुक्क करने लगा, और विशाल कंसाल सुललित स्वरसे सल-सलाने लगा । डक्का डमडक्क, व डमरु डमडमका स्वर करने लगा और यंटो व जयघंटोंकी टंकारसे भट उत्तेजित हो उठे । डक्का झं झं, व हुडुक्का नामक वाजोका समूह नाद करने लगा, और आघात करनेसे रंज नामक वाद्य गुंजन करने लगा । थगगदुग, थगगदुग आदि थग-दुग ध्वनियोंका साज सजाया गया और किरिरि-किरि-तट्टकिरि करते हुए किरिरि नामक वाद्य वजाया गया । तक्खा नामक वाद्य तखिखि-तखि-तखिख इत्यादि ध्वनियाँ करने लगे और खुंद नामक वाद्य तदिदि खुदि खुद खुद खुंद आदि उच्च स्वर करते हुए बजे । थरिरि-कट-तट्ट-कट करते हुए थरिरि नाचने लगा, और तटखुंद नामक वाद्य किरिरि-किरिरि करते हुए ताड़न करके वजाया गया । हलके हाथोंसे सुप्रघास्त एवं मनोहारी मंगलकारक नंदिघोषका विस्तार किया गया; इस प्रकार तूरोके शब्दसे बडा भारी कलकल करते हुए चतुरंग सैन्य राजाधिराजके साथ चल पड़ा । उठे हुए चंचल धूलरूपी जलसे आकाशका उल्लंघन करता हुआ उस नरपतिको सैन्य ऐसा चल पड़ा मानो नृपके मनमे रत्नों व रमा (लक्ष्मी) से युक्त तथा हस्तिरूपी मगरोंसे आकुल समुद्र ही उल्ल पडा हो ॥६॥

१ क ड णाँह । २ ख ग ललय । ३ क घ ड भरियदरं । ४ क ड तडवडिण । ५ क ड फुडिं । ६ ख ग ध धुमुधुमुक्कं । ७ ख ग सलं । ८ क ख ग व डक । ९ ख ग वड । १० ख ग डक्क । ११ क ड थय । १२ व थगगदुगदुगे थगगगदुगे । १३ ख ग घ किरि । १४ ख ग तखे खे खि तखे तखि तखे तामुरं त खुदे त खुदे तं खुदे खुदि भासुरं । १५ व थरिरि । १६ ख ग घ कट-खुंद । १७ व तटतां । १८ क ड सुमं । १९ क घ ड वलिणं । २० ख ग तें, व ति । २१ व चलिउउ ।

[७]

वस्तु—समयकरिचडकुंभसिंदूर^१—पूरेण^२ पवणाहएण रत्तकिरणु मज्झण^३ भावइ ।अत्थंत्त^४ संज्ञाविरहु चकवायमिहुणाण दावइ ॥हरितुरखुण^५ खमुग्गण^६ धूलीरण विहाइ^७ ।

५

भडपहरणछिजंतकर रवि संकिल्लइ नाइ^८ ॥१॥

खंधारु वहइ परवलजइल्लु

रहकरितुरंगभडसंकडिल्लु

गयगंडगालियमयकइमिल्लु

धुवंतंविंधधयसुरडरिल्लु

१० पालिद्धयालिविहुणियकरिल्लु^९सामंतकुमाररुस^{१०} हयहरिल्लु

डोहियजलवाहिणिजलतरिल्लु

कच्छडयदिण^{११} कामिणिकडिल्लु^{१२}

रहचकमुक्कचिकारतट्टु

उड्डीणरेणुपसरणमइल्लु ।

उच्चिभयसिहिसाहुलसयजडिल्लु ।

हयफेणचिलिच्चिलदुग्गमिल्लु ।

तंडवियछत्तपड^{१३} पंडुरिल्लु^{१४} ।

मंडलियमउडमणिगणगरिल्लु ।

खेल्लंतपत्तिपयथरहरिल्लु^{१५} ।सिरि^{१६} जूडवद्ध-थोरियवरिल्लु ।पयचपणकयचिचिखलतडिल्लु^{१७} ।पाडवि^{१८} कंठालु^{१९} वइल्लु नइ ।

[७]

मदसहित गजसमूहके कुंभस्थलोसे पवनसे आहत होकर उडते हुए सिंदूरके पूरसे सूर्य मध्याह्नकालमे ही ऐसा लाल-लाल किरणोंवाला दीखने लगा, जैसा कि संव्यातमे अस्तंगत होता हुआ चक्रवाक मिथुनोको विरह उत्पन्न करता है, तथा घोड़ेके खुरोसे खोदे हुए आकाशको उडनेवाले धूलकणोंसे ऐसा लगने लगा मानो भटोंके वास्त्रप्रहारसे अपने किरणोंरूपी हाथ काटे जानेसे संकलेश पा रहा हो । शत्रुसैन्यको जीतनेवाला स्कंधावार उडते हुए रेणुके प्रसारसे मैला हो रहा था, तथा रथो, हाथियो, घोडों व भटोंसे संकुल एवं उठाये हुए सिकडो मयूरध्वजोसे मानो जडा हुआ था । वहाँ गजोके गंडस्थलोंसे गलित मदसे कीचड हो रहा था और घोडोके फेनसे मार्ग दुर्गम हो रहा था । फहराती हुई ध्वजा-पताकाओसे देव भी डर रहे थे । तने हुए छत्रपटोसे वह (स्कंधावार) पांडुरवर्ण हो रहा था, व वासमे लगी हुई कपडेकी छोटी-छोटी झडियोंसे वह करीलके वृक्षोंको कंपायमान कर रहा था, और मांडलीकोके मुकुटमणिसमूहसे महान् गौरव संपन्न था । सामंतकुमारोके कशो (चावुको) से आहत होते हुए अश्वो और खेलती हुई पदाति सेनासे उस प्रदेशको धरधराते हुए उस सेनाने एक जलवाहिनीका अवगाहन करके उसके जलको पार किया । उस प्रदेशके लोग अपने सिरपर जटाजूट बांधे और गोलाईसे शिरोवस्त्र लपेटे हुए थे, वहाँकी कामिनिधों कटिवस्त्रमे कछोटालगाये हुए थी, एवं लोगोके पदचापसे उस नदीका तटवर्ती प्रदेश कीचड़मय हो रहा था । कहीं

[७] १. घ कुंभि सिं । २. र ह । ३. र म ण्णणे; घ ण्णि । ४. क स ट अच्छंत । ५. घ लुव्व । ६. ख ग घ समु । ७. क ई । ८. नाइ । ९. क ट उट्टोर । १०. क पय । ११. र ग घ पंठ । १२. क ड पालड । १३. क कुस । १४. र ग घ ट नोल्लत । १५. ख धरह । १६. क ट निर । १७. क ड तडिय; ख ग काल । १८. र म ण्ण करिल्लु । १९. र म ग व चिणिल । २०. क ट पाणिव ।

२१. पत्तिगेणे कगाल ।

श्रीएण वलहें दामिएण
 उल्ललिय वइल्लु^{३३} विवंधणीप्र^{३४}
 करु परप्र झडपिर फरयचेट्टु^{३५}
 कंसारवोञ्जनिवडणघणाई
 दोत्तडिहि^{३२} धरंतहो^{३३} गउ झडन्ति
 विट्मुल्लु वइल्लु^{३४} हो मुक्कराडु^{३५}
 कल्लालहो फोडिउ मज्जपट्टु^{३६}
 संकुइउ^{३७} नामु हत्थे^{३८} धरंतु
 कल्होडवइल्ले^{३९} जायरेल्लु
 कुट्टणियइ^{४०} वुच्चइ हत्थिरोहु
 रे कुसलु कवणु करि धारिउण
 घत्ता—अगणिय निसिदिणु^{४१} नरवइ कहिं मि न विरमइ कारणु तउ वि महल्लउ^{४२} ।
 दुद्धरवइरिमहाहउ^{४३} महिलपराहउ वालु गयउ एक्कल्लउ^{४४} ॥७॥

रथके चक्केसे छोड़ी हुई चीत्कारसे त्रस्त होकर काठी (गोण) को गिराकर वैल भाग गया, दूसरे वशमे किये हुए (अभ्यस्त) वैलपर गोस्वामीने पुनः बोझ लादा। रसोई पकानेवाली अर्थात् दूसरोका खाना बनाकर गुजारा करनेवाली एक विवंधनी अर्थात् असहायस्त्रीने (तेज हाकनेके लिए) वैलको पीटते हुए पंदाति (भृत्यसैनिक) को (यह कहकर) रोका—अरे ! अपने इस फलकके समान चेट्टा करनेवाले (अर्थात् भड़कीले) वैलको झटपट दूर हटाओ, बरना यह ढीठ, बालकको भी कुम्हड़ेके समान दे पटकेगा। कंसैरोके बोझे गिर जानेसे उनके बहुत घने (अधिक) भाजन रण-रण करके फूट गये। रोकते-रोकते भी एक तेलीका शकट दुष्ट नदीमें चला गया, और तड़ाकसे टूट गया। (हो =) अरे लोगो ! मेरा वैल कहीं भुला गया, हाथ में लुट गया, इसप्रकार एक किरात चीख-चीखकर पुकार मचाने लगा। एक कल्लालका मद्यपात्र फोड़ डाला गया, इसपर एक भाट (भट्ट) सुराको वूंद-वूंद करके छटने अर्थात् एकत्र करने लगा। संकुचित नाकको हाथसे पकड़ता हुआ, सिर धुनकर एवं नाकसे टुकार करता हुआ (रातमे) जागनेवाला एक प्रतिहार बोला—दुष्ट वैलके द्वारा (तेलवाहक वैलोंकी) जोड़ीको लात मार देनेसे तेल नष्ट हो गया। एक महावत एक कुट्टनीसे बोला, हट जाओ, मार्गाविरोध मत करो ! (किसीने कहा) अरे राजकुलके हाथीको बांधकर और घोड़ेको पीटकर अब तुम्हारी क्या कुशल है? रात (को रात) व दिन (को दिन) नहीं गिनते हुए, राजा कहीं भी विराम नहीं लेता था, और इसका कारण भी बहुत बड़ा था कि दुद्धर वैरोसे महान् युद्ध होना था, अपनी (होने वाली) महिलाका पराभव हो रहा था, और बालक अकेला ही (लड़ने) चला गया था॥७॥

२२ ख ग परिं । २३ प्रतियोमे ल्ल । २४ क ड णोइ, घ णोइ । २५ ख ग णोउ । २६ घ चेट्टु ।
 २७ क घ उं डु व । २८ घ विट्टु । २९ क ड यइ । ३० ख ग इ । ३१ ख भाणियाइ । ३२ क घ ड
 दोत्तडिहि, ग दोत्तडिहि । ३३ ख ग धरं । ३४ क ड कं । ३५ प्रतियोमे ल्ल । ३६ क ड मुक्कु ।
 ३७ क गुं । ३८ क मज्जु ; ग थट्टु । ३९ क ड लडइ । ४० क घ ड यउ । ४१ ग भट्टु । ४२ क ड इय ।
 ४३ ख ग हत्थे । ४४ व ड इ । ४५ क ल्ले । ४६ क कडडं, ख ग कट्टुणिं, घ कट्टुणिण । ४७ क रोट्टुं ।
 ४८ क घ ड अइमं कियमणु णरवइ भणइ महल्लउ । ४९ क ड दुद्धरि वं । ५० क ड एक्के, व इक्क ।

[८]

वस्तु—एम पइसइ निघइ खंधारु

गिरिनिञ्जु दुग्गमसिहरु सरलवंसपव्हि अहिद्धिउ ।

पुव्वावरोवहि धरवि धरपमाणदंडु व परिद्धिउ ॥

गिरिनिञ्जरकंदरविसम तरुवरनियरवरिद्ध ।

५ रववहिरियवणयरभमिरि विञ्जमहाडइ दिद्ध ॥१॥

कहि मि—अहिमारखर खइर-धवधम्मणा कंठिवोरीघणा^{१०} ।वंसिञ्जंसी^{११} तिरिगिच्छि-अंजणवणा^{१२} रोहिणी-रावणा ।विल्ल^{१३} चिरहिल्ल^{१४} अंकोल्लतरु-धायई मल्लि-भल्लायई ।घोटि^{१५} टिवरु-निघण-फणसमहुरुक्खया हिगुणी-मोक्खया ।१० सिरिसु^{१६} सेवणि^{१७} सेहालिया^{१८} सिंसमी^{१९} सज्ज-गुंजा-समी ।कडहु-किरिमाल-करहाड^{२०} कणियारिया कुडय-गणियारिया^{२१} ।कउह-वड^{२२} ढउह-सकरीर-करवंदिया मार-महु-सिंदिया ।निव-कोसंब^{२३} जंबुइणि-निवुवरा^{२४} सग्गलगां वरा ।कहि मि गिरिकडणि^{२५} गज्जंतकरिकाणणा कुद्धपंचाणणा ।

[८]

इसप्रकार नृपतिका स्कंधावार सीधे बासोकी मेखलाबोसे भरे हुए एव दुर्गम शिखरो-
वाले विध्यपर्वतमे प्रविष्ट हुआ, जो पूर्व और अपर (पश्चिम) उदधिको धारण करके घराके
प्रमाणदडके समान स्थित था । इसके उपरांत पहाडी झरनो, विपम कदराओ और सुंदर वृक्षोके
उत्तम कुंजो तथा अपने शोरसे बहरा कर देनेवाले वनचरोके भ्रमणसे युक्त विध्य महाअटवी
दिखाई दी । कही अहिमार, कठोर खदिर (खैर), धव, धम्मण और घने कंटीली बेरीके वृक्ष
थे । कही बास, झसी (झाड ?) तिरिगिच्छ और अजण तथा रोहिणी (गुल्म विशेष) व
रावण (औषधि विशेष) आदिके बडे-बडे वन थे । कही वेल, चिरिहिल्ल, अकोल्ल, धातकी
और मल्लि तथा भल्लातकीके वृक्ष थे । कहीपर मुख्यतया घोटी, टिवर, निघन, फणस व
हिगुणीके बडे-बडे वृक्ष थे ! कही सिरोप, सेवणि, शेफालिका, सिंसम (जीवम-शिशपा), सर्ज,
गुंजा और गमी (छोकार) के वृक्ष थे । कही कटभू (कटहल ?), किरिमाल, शिफाकद
(मैनफल) और कणिकार (कनैर) व कुटज और गणिकारके तरु थे । कही ककुभ (चंपा ?)
वट, ढउह (ढौह ?) करील, करवंदी (करौदा) मार व महुआ और सिंदीके वृक्ष थे । कही
निव, कोशाम्र, जंबूकिनी (वेतस-वेत), नीवू व उंबर (उटुवर) के सुंदर वृक्ष मानो स्वर्गको
छू रहे थे । कही पर्वतमेखलापर हाथी व क्रुद्ध सिंह गर्जन कर रहे थे । कही दड (शस्त्र) से

[८] १ क ड ञ्ज । २ क ड ङुड । ३ क घ ड धरिवि । ४ क ड धरहि माणदडु । ५ क ट वि,
ख नावइ । ६ ख ग वणयरे । ७ ख ग घ भमिय । ८ क ख ग ड मे सर्वत्र 'कहि मि' । ९ क ड खवर
१० घ कटि० । ११ क ड वंसिञ्जस । १२ ख ग घ वरा । १३ क ड विल्लि । १४ क घ ड चिरि ।
१५ ख ग घ घोटि । १६ ख ग घ स । १७ क ख ग ड सेवणि । १८ क ड मेया, ख ग मोहां ।
१९ क ड सिंसमी । २० ख ग कडहार, घ करहार । २१ ख ग गण । २२ ख ग वड । २३ क ड
जंबुइणि उवरा, ख ग जंबुइणि निववुरा । २४ घ कडणि ।

कहिं मि हयदंडवग्घेहि ^{२५} गुंजारिया	गवय विहारिया ^{२६} ।	१५
कहिं मि धुरुधुरियकोलउलदातुक्खया	कंदया सुक्खया ।	
कहिं मि हुंकरियदिढमहिससिगाहया	रुक्ख भूमि ^{२७} गया ।	
कहिं मि मेल्लंतु वुकार दीहरसरा	धाविया वाणरा ।	
कहिं मि घुग्घुइयघूयडसया ^{२८} रोसिया	वायसा वासिया ।	
कहिं मि ^{२९} भल्लुक्किफेकारहकारिया	जंघुया ^{३०} धारिया ।	२०
कहिं मि पञ्जरियखलखलियजलवाहला	कसणत्तणुनाहला ^{३१} ।	
कहिं मि ^{३२} महिपडियत्तरुपणसंछन्नया ^{३३}	संठिया पन्नया ^{३४} ।	
कहिं मि ^{३५} फणियुक्कफुकारविससामला	जलिय दावानला ^{३६} ।	
अवि य—		
दीसंति जत्थ ^{३७} पल्लोवणाइ	^{३८} कंटयतरुविसमइ झरिचणाइ ^{३९} ।	
वि-सरिसवरदारविणिम्मियाइ	वग्गुरगलजालोलंबियाइ ।	२५
सुकंतमयामिस-स-स-घराइ	उक्कत्तियचित्तयलवघराइ ।	
जहिं ^{४०} भिल्लुक्कसिर ^{४१} तणुकराल	निल्लोमकुंच-गुरुदाडियाल ।	
सलहिज्जइ ^{४२} जहिं भिल्लेहिं ^{४३} नामु	मंडलि उवविट्ठहिं ^{४४} जंघथामु ।	
क वि पल्लि चइइ हलभूमिलील ^{४५}	संपच्चमाणगोधूमनील ^{४६} ॥	

आहत व्याघ्रो (को चिघाड़)से वह अटवी गुंजारित हो रही थी, और कही नील गाय विदीर्ण कर डाली गयी थी। कही धुरधुराते हुए बनैले सूअरोके दाढोसे उखाड़े हुए कंद सूख रहे थे। कही हुंकार करते हुए बलवान् महिपोके सींगोसे आहत हुए वृक्ष गिर गये थे। कही दीर्घ-स्वरसे व्वकार छोड़ते हुए वानर दौड़ रहे थे। कही घूग्घु-घूग्घु करते हुए सैकड़ो घूयडोके स्वरसे रष्ट हुए वायस काव-काव कर रहे थे। कही श्रृगालियोके फेत्कारसे आह्वान किये गये जंवूक पकड़े जा रहे थे। कही खल-खल करके झरते हुए जलके छोटे-छोटे प्रवाह थे, और कही काले शरीरवाले म्लेच्छ थे। कही पृथ्वीपर गिरे हुए पत्तोसे ढके हुए सर्प पड़े थे, और कही नागोके छोड़े हुए फूत्कारोसे विषके समान श्याम वर्णके दावानल जल रहे थे।

और भी—वहाँ चोरोके निवासके योग्य ऐसे घने अरण्य दिखाई देते थे जिनमे विषम काटेदार वृक्ष और झाड़ियोके जगल थे। वहाँ पारधियोके घोरोके द्वार बिल्कुल एकसमानरूपसे बने थे, और उनपर पणुओको पकड़नेके जाल और मडली फंसानेके काटे व जाल लटके हुए थे। उन सबके अपने-अपने घोरोमे मृगोका मांस सूख रहा था, तथा काटे हुए चीतोके शव पड़े हुए थे। और भी वहाँ मुंडे हुए शिर व भयानक शरीर तथा लोमरहित कूर्च कितु बड़ी भारी दाढ़ी वाले भील थे, तथा मडलीमे बैठे हुए भीलो-द्वारा वहाँ जघाबल (दौड़ने व युद्ध करनेकी शक्ति) की श्लाघा (सराहना) की जाती थी। कही कोई छोटा गाव हलभूमि (कृषि क्षेत्र) की लीला धारण कर रहा था, और पकते हुए गेहुओसे नीला (हरा) हो रहा था।

२५. ख ग घ हयदडिं । २६. क ड गयवि विं । २७. क ड भूमि । २८. ख ग घुधुरियघूवडं; घ धुरुधुरियघूयडसरा; क ड सरा । २९. क ड भल्लुक्किं । ३०. ख ग आ । ३१. घ नाहणा । ३२. घ तणुक्क । ३३. क ड ण्णया । ३४. क ख ग ल पण्णया । ३५. ख ग पुक्कारं । ३६. क ड ण्णला । ३७. क ड जे । ३८. घ कठयं । ३९. ख ग झहं ४०. क ड जहिं । ४१. क ल्हक्खसिरं, ल हल्लुक्कसिरं । ४२. घ ज्जहिं । ४३. ख ग ण । ४४. क ड ह्ठिं । ४५. क ड हलिं । ४६. क णाल ।

- ३० पुणु केरिसी विञ्जाडई—
 भारहरणभूमि व सरहभोस^{५०} हरि-अज्जुण-नवल-सिहंङ्गिदीस ।
 गुरु-आस्वथाम-कलिगचार^{५८} गयगज्जिर-ससर-महीससार ।
 लंकानथरी व सरावणीय चंदणहिं चार कलहावणीय ।
 सपलास-सकंचण-अक्खथड^{५१} सविहीसण-कइकुलफलरसड^{५०} ।
- ३५ कंचाङ्गि व ठिय कसणकाय सद्दूलविहारिणि-मुक्कनाय ।
 तिणयणतणु व दासवणछंद गिरिसुय-जड-कंदल-खंडवंद ।
- घत्ता—बोलवि चणु परिसकइ कहिं मि^{५१} न थकइ जहिं छइएलु^{५२} जणु निवसइ^{५३} ।
 रासुयारंमुच्छाहिउ मगहनराहिउ विञ्जएसु तं पइसइ^{५४} ॥८॥

और फिर वह विध्याटवी कैसी थी ?—वह (महा) भारत रणभूमिके समान भयंकर थी; भारत रणभूमि चीत्कार करते हुए रथोसे भयानक थी, अटवी शरभो (अष्टापदो)से, भारत युद्धमे कृष्ण, अर्जुन, नकुल और शिखंडी थे, अटवीमे सिंह, अर्जुन वृक्ष, नेवले और मयूर थे; भारत रणभूमि गुरु (द्रोणाचार्य), अस्वत्थामा और कलिगराजके सचरण (परिभ्रमण) से युक्त थी, अटवी बड़े-बड़े पीपलके वृक्षो, हरी-हरी लताओ एवं चार (चिरांजी) वृक्षोसे; भारत रणभूमि गजोके गर्जन, तथा बाणधारी राजाओसे समृद्ध थी, और अटवी गजोके गर्जन, सरोवर, तथा महिषोसे । और भी—वह अटवी लंकानगरीके समान थी, लंकानगरी रावणसे सनाथ थी, और चंद्रनखाके आचरणके कारण वहाँ कलह हुआ था, और विध्याटवी रावण (फलविशेष) वृक्षो, चंदनवृक्षो, चारवृक्षो एवं कलभो (बालहस्तियो) से युक्त थी । लंकानगरी पलाश (राक्षस), काचन (सुवर्ण) और अक्ष (रावणका पुत्र) सहित होनेसे गविष्ठ थी, एवं विभीषण तथा रसिक कवियोसे परिपूर्ण थी; विध्याटवी पलाश, कंचन (मदनवृक्ष), चक्षु-विभीषतक (बहेड़ा) के वृक्षोसे गविष्ठ, तथा नाना प्रकारकी विभीषिकाओ एवं वानरो व खूब रसभरे फलोसे समृद्ध थीं । वह अटवी कात्यायनी (चामुडा) के समान थी; कात्यायनी कृष्ण-शरीरवाली है, तथा शार्दूल (शरभ)पर विहार करती हुई फेत्कार छोडती रहती है, विध्याटवी काले कौओं, शरभोके विहार व नाना वन्यपशुओके नादसे युक्त थी । वह अटवी महादेवके समान थी, महादेवने गौरीके अभिप्राय (छद) से नाना प्रकारका रौर नृत्य किया, तथा वे गिरिसुता (पार्वती), जटाओ एवं कपालपर खंडचंद्र (चद्रकला) से युक्त हैं, और विध्याटवी दासवनोसे आच्छादित थी, एवं पर्वतो, शुको, नानाप्रकारकी मूलो, विशेष अकुरों एवं खंडकंदो (कदविशेष) से युक्त थी । वनको लाघकर, राजा आगे बढ़ गया, व कही भी रुका नहीं । इसप्रकार मग्धाधिपने बड़े-आरंभ (कार्य) के उरसाहसे उस विध्वप्रदेशमे प्रवेश किया जहाँ छेले लोग (विदग्ध-जन, ज्ञानीपुरुष) रहते थे ॥८॥

४७ कं लीस । ४८ क ड कलिअगवार, घं धार । ४९ क डं भट्ट । ५०. क र न डं र्मट्ट । ५१ स ग कहि मि । ५२. क ड छयल्लु । ५३. कं सइ । ५४ ख ग पयं ।

[९]

वस्तु—जेत्थ^१ पेट्टणसरिस-वरगाम^२गामार वि नायरिय^३ नायरा वि बहुविविहभोइय^४ ।भोइया वि धम्ममाणुगय^५ धम्मिणो वि जिणसमयजोइय^६ ॥महिसीवद्धसणेह^७ जहिं^८ कमलायर-गयसाल ।परिरक्खियगोहेण रमहिं^९ गोवाल व^{१०} गोवाल ॥१॥जत्थ केयारवरसालिफलबंधयं^{१०} ^१नियडतरुगलियमहुकुसुमसमगंधयं ।जत्थ सरवरइं न कयावि ओहट्टइं^{१२} मंदमयरंदवियसंतकंदोहइं^{१३} ।जत्थ भमरोलि कोरेहिं^{१४} समहिट्टिया नीलमरगयपवालहेहिं^{१५} णं कंठिया ।

छेत्तछोक्काररवपामरीसल्लिया पहिय-कणइल्ल-मिग पड वि नड चल्लिया ।

थोरथणभारसंरुद्धसुवडालिया भरइ जलपाणु पहियाण^{१६} पावालिया । १०^{१६}वियडकडिर्वियखिन्नाप्रा^{१७} थक्किज्जए नीलनेसणयगोवीप गाविज्जए^{१८} ।जम्मि देसम्मि जणवेसहासियसुरं पट्टणं वसइ नामेण नम्माडरं^{१९} ।

[६]

जहाँके ग्राम नगरो जैसे थे, और ग्रामीण नागरिकों जैसे, तथा नागरिक बहुविध भोगोंसे युक्त थे । भोगोंसे युक्त होकर भी वे धर्मानुगत (धर्मपालक) थे, और धर्मानुगत होकर जिनधर्मसे योजित (युक्त) थे । जहाँके गोपाल (ग्वाले) गोपालों (भूमि अथवा प्रजापालक राजा) के समान रमण करते थे; राजा लोग महिषी (महादेवी) के प्रति स्नेहासक्त होते हैं, लक्ष्मीके निधान होते हैं, तथा हस्तिशालाओंके स्वामी होते हैं, और गोधन (पशुधन, पृथ्वो-धन व जनधन) का रक्षण करते हुए आनंद मनाते हैं, उसीप्रकार वहाँके ग्वाले महिषियोंसे स्नेह करते थे और कमल सरोवरोंरूपी गजशाला (गवयशाला-गोशाला) से युक्त थे (क्योंकि उनकी भैंस तालाबोंमें ही प्रसन्न रहती हैं), तथा अपने गोधन (पशुधन) की रक्षा करते हुए रमण करते थे । जहाँ श्रेष्ठ शालि (धान) के खेत फूले हुए थे, जो पासके वृक्षोंसे गिरे हुए मधु (मधूक-महुआ) के फूलोंको गंधसे सुगंधित थे । जहाँके सरोवर कभी सूखते नहीं थे, और जो मंदमकरंदसे युक्त विकसित होते हुए नीलकमल समूहोंसे पूर्ण थे । जहाँ गुकोंसे समाधिष्ठित अमरपंक्ति मरकत व प्रवाल (मूगा) मणियोंसे जड़ी हुई नीलमणिके समान शोभायमान होती थी । जहाँ खेतोंमें कृषक-वधुओंके छोवकार रव (पक्षियोंको डरानेके लिए की जानेवाली ध्वनि) से बिचकर, पथिक, शूक और मूग एक पग भी आगे नहीं बढ़ते थे । जहाँ स्थूल स्तनोंके भार (उभार) से संछद्म-भृकुटि (दृष्टिपथ) वाली प्र-पालिका (प्याऊ वाली) पथिकोंके जलपात्रोंको भरती थी । जहाँ अपने कटितलकी विशालतासे क्लान्त हुई नीले वस्त्रोंवाली गोपी-द्वारा गीत गाये जाते थे । जहाँके लोगोंका वेश अर्थात् पहनावा

[९] १ क जित्यु; घ ङ जित्यु । २. ख ग पट्टणु सरिसु वहुं । ३. ख ग णाहं । ४. घ ङ इया । ५. ख ग गया । ६ क घ ङ सिणेह । ७. ख ग जिह । ८. ङ हि । ९ ख ग वि । १०. घ रंधयं । ११. क ङ णिवडं । १२ क ङ ट्टइ, ख ग घ ट्टय । १३ क उहेहि । १४ ख ग भुयं; घ तुयं । १५. ख ग याणु । १६. क ङ वियडिं । १७. क घ ग खिण्णाए, व खिन्नाह । १८ क घ ङ गाइं । १९. क ङ णामां ।

- मिलियवहुदेसिजणमंडलीसोहियं चारुनेवत्थरममाणं^{१०} निसुसोहियं ।
 जत्थ पयडंतनचनेहपियलाडिया जिणइ^{२२} गिरितणयसोहग्गु^{३३} कुलवाडिया ।
 १५ जत्थ पुरवासिलोएण वहुवुद्धिणा धम्मकामत्थसेवासु मणसुद्धिणा ।
 घत्ता—वेसायउ कयं^{२४} थक्कउ सिट्टुरवंकउ गटिहिं^{२५} भरिउ सखारउ ।
 उच्छु व मेत्तवि^{२६} परवसु कोमलुं^{२७} वडुरसु सेविज्जइ कंतारउ ॥९॥
 [१०]

- वस्तु—सुहृद-संदण-तुरय-करिसारु
 कंपाचिय सधर-थरं अडोहिय गहिरनइजलु ।
 तं नयरु वामरुं करिवि सिमिरु जाइ जा किर जसुज्जलु ।
 दिणमणिकिरणुत्तावियहं^३ वणकरिघडहं^४ मणिट्टु ।
 ५ जंबुलुंबितोरवियजलं तां रेवानइ दिट्टं ॥१॥
 मज्जमाणलयगलमयसंगिणि णं मयतरलतरंगतरंगिणि ।
 विमलनीरवोलियतरुसाही गरुयखयाणखणंतपवार्हा ।
 पुलिणट्टाणनिवेसियकच्छी चुयमहुकुसुमुद्वाइयमच्छी ।

देवताओका भो उपहास करनेवाला था, वहाँ नर्मपुर नामका पट्टण था, जो बहुत देशों-की मिली-जुली जनमंडलीसे अवरुद्ध (भरा हुआ) था, तथा मनोहर वस्त्रोंको पहने हुए क्रीडाशील शिशुओंसे सुशोभित था। जहाँकी सदैव अभिनव स्नेहको प्रगट करनेवाले प्रियतमकी लाडली (प्यारी) कुलवालीकाएं गिरितनया (पार्वती)के सौभाग्यको भी जीतती थी; व जहाँके बहुत बुद्धिमान तथा मनःशुद्धिपूर्वक धर्म, अर्थ व कामकी सेवा करनेवाले पुरवासी लोंगोंके-द्वारा निष्ठुर ललयुक्त, हृदयसे कुटिलभाव पूर्ण तथा आद्यंत खारे (अर्थात् दुःखद) और पराधीन व मूल्य देकर प्राप्त होनेवाले वेव्यारत (वेव्यारमण) को कठोर, बक्र, व गाठोसे भरे हुए तथा खारे व दूसरोंके आधीन इक्षुके समान त्याग कर, आद्यंत सुकोमल (स्नेहयुक्त) तथा बहुत रसवाले (अर्थात् अत्यंत सुखद) काता (स्वपत्नी)रतका सेवन किया जाता था ॥९॥

[१०]

सुभट, स्पंदन तुरग व श्रेष्ठ हाथियोंसे घरा-सहित धराधर (पर्वत) को कंपायमान करते हुए गहरी नदीके जलको अवगाहन कर, उस नगरको वाये करके जिस राजाका उज्ज्वल यश-प्राप्त सैन्यशिविर चला जा रहा था, उस राजाने सूर्यकी किरणोंसे तप्त, वनगजोंके समूहको बहुत प्रिय, और जंबूफलोंके (गिरते हुए) गुच्छोंसे हिलते हुए जलवाली रेवानदीको देखा। मज्जन करते हुए भदगजोंसे युक्त वह नदी मानो तरलमद अर्थात् सुरारूपी तरंगीवाली तरंगिणी थी। अपने निर्मल जलसे वह वृद्धों और वाटों (पगडंडियों) का उल्लंघन करनेवाले एवं बड़े-बड़े खदान खोद देनेवाले प्रवाहसे युक्त थी। वह रेतीले तटप्रदेशरूपी कच्छा (कटि-

२०. क ड चारुणवत्थरं । २१ कं लासिया । २२ स ग व इ । २३. क ड मोहण । २४. क ट मं 'कम' नही । २५ स ग व हुं । २६ क ग व ड मेत्तवि । २७ स ग ल ।
 [१०] १. क ड 'वह' । २. वं 'उं' । ३. क ट 'किरण' । ४ क ट 'गट्ट' । ५ स ग व 'जम्' ।
 ६ स ग व तो । ७ स ग विट्टु । ८. स ग 'वखडवगणलंतप', घं 'उल्लं' ।

पडिंकोलफुलसयभमरी^१
कीलिरसवरनियंविणिचहरी^{११}
सा उत्तरिनि महाजलवाहिणि
जो फुरंतजिणभवणरवणणउ^{१२}
रायागमणु मुणिवि णं रहसिउ^{१३}
नचचइ वव नचचंतमऊरहि
पणवइ वव फलनामियडालहि
णहावइ^{१४} जिणपडिमहिं सुरणहवियहि^{१०}
सो गिरि नियन्नि नवेवि जिणचलणइ^{११}
तहिं आवासु निवेण लइज्जइ
रायंतोडरवासु पइणणउ^{१२}
तक्खणे रुद्ध-नत्तसंचारहिं^{१३}
^३भत्तमयंग-नियंघणचेट्टहिं^{३१}

गंधिधिर^१-रुणुंरुटियभमरी ।
^{१२}थडुथोरथणफोडियलहरी ।
कुलुलगिरिं^{१३} नियइ निववाहिणि । १०
^{१४}वंदनभत्तिमिलियसुरछणणउ^१ ।
फुल्लकयंउदुमहि उदुसिउ ।
गज्जइ वव सुरदुंदुहितूरहिं ।
उपिडइ^१ व कुरंगसिसुफालहि ।
कुलकुलइ व कोइलकुललवियहिं । १५
पुणु थोचइ^२ लवेवि नइवलणइ^३
सेणावडपमुहहिं^४ सूइज्जइ^५ ।
अग्गणं सोहवारु^६ संदिणणउ^७ ।
संदण उज्जोत्तिय^८ जोत्तारहिं ।
सरलरुक्ख पडिगाहिय मेट्टहिं । २०

वस्त्र) पहने हुए थी, तथा महुएके गिरे हुए कुसुमोके लिए लपकती हुई मछलियोंसे युक्त थी। उसमे गिरे हुए सैकड़ो अंकोल पुष्प मानो सैकड़ो स्त्रीभ्रमर थे, जिनकी गंधसे अत्यंत आसक्त हुए भीरे उनपर मधुर गुंजार कर रहे थे। क्रोड़ा करती हुई गबर सुंदरियोसे वह ईष्य मर्दित हो रही थी, और उनके कठोर व स्थूल स्तनोसे उसकी लहरे टूक-टूक हो रही थी। उस महाजलवाहिनीको उत्तरकर नृपसेनाने कुरलपर्वतको देखा, जो (अपने उन्नत शिखरोसे) चमकते हुए जिनभवनोसे रमणीक था, और वंदन-भक्तिसे एकत्र हुए देवोसे आच्छादित था, (अथवा जहाँ वंदनाकी भक्तिसे देवकन्याएँ एकत्र थी)। राजाके आगमनको जान, मानो हर्षित होकर वह फूले हुए कदंबद्रुमोसे रोमांचित हो गया; नाचते हुए मयूरोसे वह मानो नाचने लगा, और देवदुंदुभियोके तूरसे मानो (हर्षपूर्वक) गर्जन करने लगा; फलों (के भार) से झुकाये हुए डालोसे मानो प्रणाम करने लगा, और कुरंग शिशुओके उछल-कूद करनेके रूपमें, मानो उसने नृपतिको (अर्घ) अर्पण किया, देवों-द्वारा अभिषेक कराया जाती हुई जिनप्रतिमाओके रूपमे मानो उसने नृपतिका ही अभिषेक कराया, और कोकिलसमूहके आलापसे मानो आनंदसे कुलकुला उठा। उस पर्वतको देखकर, जिनचरणोको नमन करके, और फिर नदीके और थोड़े-से मोड़ोको लांघकर नृपने पड़ाव डाला, तथा सेनापति प्रमुख लोगोसे इसकी सूचना की गयी। राजाका अंत-पुरनिवास विस्तीर्ण किया गया, व उसके आगे सिंहद्वार दिया गया। तत्क्षण पदातियोके सचरणको अवरुद्ध करते हुए, योवताओं (रथवानों) ने रथोके जोत उतार दिये। मत्तमातंगोको वांघनेमे सचेष्ट महावतोने सरलवृक्षोको ले लिया। गलेमे वेले डालकर वांघो

१. क व ड संमरी । १० ख ग गवद्विर०; घ गंधं । ११. घ वहरी । १२ क ड थट्टं; ख वट्टं नं घट्टधोरवणं । १३ क ड कुरलं । १४ क णणउं, व नउ । १५. क ड हृतिं । १६. क ड णणउ; ग कणणउ, घ णउ । १७ क व ड हुरिमिउ । १८ क ड उप्फलड, ख ग उप्पिं । १९ क वइ व, ड वइ व ख ग वहाइ व, घ न्हाड व । २०. घ सुरहं । २१. ड णइ । २२ प्रतियोमे ड । २३. क ड णइ । २४, क ड हहिं, ख ग हाहिं । २५ ख सुविं, ग मुचिं । २६. क ड णउं, ख ग पयणणउ । २७. क ड सिहं । २८ क ड णउ, घ णउ । २९. क ड उजां । ३०. घ मत्तगइदनिववणु । ३१. क वेट्टहिं ।

दिण्वल्लिगल^{३३} खोडीसंगम^{३३} संचारिय मंदुरहिं^{३४} सुरंगम ।
 गुडरदसावासकयमहु नियठाणहिं ठिउ रायपरिग्गहु ।
 घत्ता—तहिं रेवानइ कण्ण^{३५} तरुसंछण्ण^{३५} कुरुलगिरिदहो^{३६} नियडव ।
 सेणियरायहो^{३७} वल्लु कय-सममहियल्लु^{३८} इय आवासिउ वियडव ॥१०॥

[११]

वस्तु—सीहवारहो पुरउपरि ठविउ
 सविलासकामिणिललिउ पिंडवासु सहुं पण्णसाळहिं^१ ।
 पुणु त्रिविहकेण्यभरिउ हट्टमग्गु किउ कोट्टवालहिं ॥
 नडविडडोवहिं^२ विट्टलिउ^३ पइसवि^४ रंधणे हट्टु ।
 ५ दवमहिं^५ गहहचवियहिं^६ संज्जा वंदइ भट्टु ॥१॥
 आर्या—गलनिहितकुसुममालरचंदनसंचरितः सनिःश्रावः ।
 भट्टः प्रविशति हृष्टो गुणगणिकां^७ हट्टकुट्टिन्याः ॥१॥
 आवासिउ मगहनरिट्टु तेत्थु कह वट्टइ जंबूसामि जेत्थु ।
 गयणगइसमाणुं विमाणवंतु निविसेण जि केरलनयरि पत्तु ।
 १० ता पट्टणवाहिरि कयवमालु संगामतूरभरियंतरालु ।

हुई गधियोंके संगमके लिए घुडसालोमे घोड़ोका संचार कराया गया । कपडेके तंबुओका आश्रय लेकर राजाका सारा परिग्रह (सैन्य) अपने-अपने स्थानोपर स्थित हो गया । वहाँ रेवा नदीके किनारे, वृक्षोंके सायेमे, कुरुल गिरिराजके निकट श्रेणिक राजाका सैन्य भूमिको समान करके विस्तारसे बस गया ॥१०॥

[११]

सिंहद्वारके आगे सेनाके लिए पण्यशालाओं (दुकानो) से युक्त एवं विलासपूर्ण कामि-
 नियोंसे ललित आवास बनाया गया, फिर कोटपालोके द्वारा विविधप्रकारके क्रय (कीनने-योग्य)
 पदार्थोंसे भरा हुआ हाटमार्ग (बाजार) बनाया गया । नदो, विटो व डोमोने रसोइयोमें प्रवेश
 कर उन्हे बिटाल दिया (अशुद्ध कर दिया), और भ्रष्ट ब्राह्मण गधोके द्वारा चत्राये गये
 दमसे संध्यावंदन करने लगा । गलेमे पुष्पोंकी माला डाले (मस्तकपर) चंदनका लेप किये
 हुए एवं पसीना चूते हुए एक भ्रष्ट (ब्राह्मण) गुणोंकी गणिका (अर्थात् गुणोंको लूटनेवाली)
 बाजारू कुट्टनी (के डेरे) से हर्षित होकर प्रवेश करने लगा ।

इसप्रकार वहाँ मगधराजने पड़ाव डाल लिया । उधर जहाँ जंबूस्वामी थे, वहाँकी कथा
 इसप्रकार हुई—गगनगतिके साथ विमानमे बैठकर निमिषमात्रमें वह केरल नगरीको प्राप्त हुआ ।
 वहाँ पत्तनके बाहर संग्रामतूरोके द्वारा किया हुआ कोलाहल दिगंतोको भर रहा था । फहराते

३२. ख ग घ दिन्नं, कड वेत्ति । ३३ क ड लोले । ३४. क रंहि । ३५. घ ञ्जइ । ३६. क ग ट
 कुरलं, ख ग गिरिदहो । ३७. ख ग घ ल सेणियमहरायहो । ३८. ड ढ थलु ।

[११] १. घ पत्तं । २. क घ ड भडडोमहिं । ३. क ट विट्टिलउ, ख ग घ विट्टिलउ । ४. क घ
 क सिवि । ५. क रंहि । ६. क गहं हि चं; ख ग चच्चिं । ७. ख ग गुणगणिका । ८. घ संमाण ।

धुञ्जंतमहाधयधवलचिंधु

गञ्जंतमत्तमायंगफार

तिक्वुक्वधयपहरणसुहडवंतु

तं नियवि कुमारै तक्खणेण

पृहु^१ दीसइ^२ काई सकोउहल्लु

पृहु^१ सो जो मगइ वरकुमारि

पृहु^१ सो जो विसरिसजमपयाउ

पृहु^३ सो जसु रणजयकयपयज्जु^४

सहु^५ सेणे^६ सुरहु^७ मि हिययसूलु^८

बोल्हइ कुमारु पेक्खहु^{१०} पमाणु

यत्ता—ताम विमाणु विलंविउ महियले लंविउ जंतुकुमारुत्तिण्णइ^२ ।

पुणु पइसइ आसंकहो कज्जि मियंकहो रिउखंधारु पइण्णइ^३ ॥११॥

[१२]

वस्तु—नियडनहयले^१ चलइ सविमाणु

विज्जाहरु गयणगइ जंतुसामि महिवट्टे चलइ ।

रणरहसरंजियमणहो^२ जसु चलंत^३ महिवोडु हल्लइ^४ ॥

हुए महाध्वजो तथा धवल पताकाओसे वहाँ ऐसा दृश्य उपस्थित हो रहा था, मानो प्रलय-समुद्र ही उन्मार्ग अर्थात् (अपनी मर्यादा छोड़कर) आकाशमें जा लगा हो। मत्तमातंग भारी गर्जन कर रहे थे, और श्रेष्ठ तुरंगमोंके समूह हिनहिना रहे थे, तथा म्यानसे निकाले हुए तीक्ष्ण शस्त्रोंको धारण करनेवाले सुभटोंके द्वारा छोड़ी हुई हुंकारोंसे वह कृतांतको भी भयभीत कर रहा था। यह सब देखकर कुमारने तत्क्षण ही विस्मित मन होकर कहा—कौतूहलवर्द्धक यह सब क्या दीख रहा है ? तो खेचरने कहा, यही तो हमारा काँटा है, यही वह है जो उस श्रेष्ठ कुमारीको मांगता है, जो अपने बलसे सूर्यको भी स्तंभित कर देता है, जो यमके समान अद्वितीय प्रतापवाला है, जिसने मृगांकराजाको संतप्त किया है, और जिसको रणमें जय करनेकी प्रतिज्ञा करके तू इस वैरीके शिररूपी पर्वतके लिए वज्र बनकर आया है। अपनी सेनाके साथ यह देवताओंके लिए भी हृदयका बूल बना हुआ है, यही (वह) विद्याधर रत्नचूल (रत्न-शेखर) है। इसपर कुमारने कहा, मैं इसका (सैन्य) प्रमाण देखना चाहता हूँ, अतः विमान-को स्कंधावारके सन्मुख खींच लीजिये। तब गगनगति विद्याधरने विमानको रोककर, पृथ्वीसे मिलाया, जंबूकुमार उसमें-से उतरा, व मृगांकके कार्यसे, शत्रुके उस फैले हुए स्कंधावारमें आशंकापूर्वक प्रवेश किया ॥११॥

[१२]

नभस्तलके निकट विमानसहित गगनगति चल रहा था, और पृथ्वीपर जंबूस्वामी चल रहे थे। रणकी उरकंठासे भरे हुए मनसे उसके चलते हुए पृथ्वीतल हिल उठा। अनार्य जाति-

१. क ख ग ड इउ । १०. क ङ ङ । ११. क ड इहु । १२. क ड संतवियउ । १३. कु घ ङ इहु । १४. क ङ रणकयजयपयज्जु, ख ग पयज्ज घ पइज्जु । १५. प्रतियोमि 'तुहु' । १६. ख ग वज्ज । १७. क ड सण्णं, घ सिन्नि । १८. घ 'हि' । १९. क ड हियइ । २०. प्रतियोमि हु । २१. ख ग व 'हि' । २२. क घ ड ण्णत्तं । २३. घ 'त्तं' ।

[१२] १. ख ग घ नियडु नहं । २. व 'रगियम' । ३. क घ ड पयभरण । ४. क ड धरवोडु डोल्हइ ।

	देसल्लहसि संवाधियउ ^१	वणि ववहार बहुत्तु ।
५	पेक्खंतउ दीसइ जणहि ^२	राउलवारि पहुत्तु ॥ १ ॥
	तं भणितं कुमारें नयपसत्थु	पडिहार कणयमयदंडहत्थु ।
	कह निययत्तरिदहो सारभूउ	पट्टविउ मिथंके आउ दूउ ।
	‘तो गं पिं दंडधारें समत्त’ ^३	अत्थारणे ^४ निवेइय निवहो ^५ वत्त ।
	परमेसर रक्खणसुहडसारि	अच्छइ मिथं कपहुद्व ^६ वारि ।
१०	लहुं ^७ पइसउ ^८ इय आपसिएण	पइसारिउ जंबुकुमारु तेण ।
	आवंतउ रयणसिहेण दिट्ठु	सव्वहं ^९ मि ^{१०} चमक्खउ मणे पेइदुत्तु ।
	नहमणिफुरंतपयदिण्णविक्खु	तणुतेयतविष-अरिदुण्णिणिक्खु ^{११} ।
	पीवरचामीयरथंभजंजु ^{१२}	थिरदिट्ठिं ^{१३} विलंबियवइरिसंयु ।
	करजुवलु उभासियकमलकंबु ^{१४}	केसरिकिसोर चकलनियंजु ^{१५} ।
१५	दिडसुललियनेसिय दिव्ववत्थु ^{१६}	मणिफुरियत्थुरियवंधणपसत्थु ^{१७} ।
	हारच्छवि ^{१८} पयडइ छइयवच्छु ^{१९}	‘संगामसूरकरि-द्ववणदच्छु ^{२०} ।
	दीहरकरिकरसमबाहुदंडु	मणिकुंडलमंडियचारुण्डु ।

के उस देशके व्यवहारमे कुशल वह वणिक् (पुत्र) लोगके देखते-देखते राजकुलके द्वारपर पहुँचा हुआ दिखाई दिया । (वहाँ पहुँचकर) कुमारने पुनर्णमयदंड हाथमे लिये हुए, और व्यवहार-कुशल प्रतिहारको कहा—अपने नरेद्रको यह महत्त्वपूर्ण बात कहो कि मृगाकका भेजा हुआ दूत आया है । तब सभामंडपमे जाकर दंडधरने राजाको समस्त वार्ता निवेदित की—‘हे श्रेष्ठ सुभट्टोके पालक परमेश्वर, मृगांक राजाका दूत द्वारपर विद्यमान है ।’ शीघ्र प्रवेश कराओ, ऐसा आदेश पाकर, उसने जंबूकुमारको प्रवेश कराया । रत्नशेखरने उसे आते हुए देखा, और सबके मनमें एक चमत्कार उत्पन्न ही गया । उसके नखमणियोसे प्रकाशित चरणोमे जिनकी दृष्टि लगी थी, ऐसे शत्रुओके लिए तेजसे तप्त उसका शरीर अत्यंत दुष्प्रेक्ष्य था । वह पुष्टमुवर्णस्तंभके समान जाँघोवाला था, और उसकी स्थिर (निश्चल) दृष्टिसे त्रैरियोका सघ तिरस्कृत हो रहा था । उसके करयुगलमे कमल और गंख (के चिह्न) उद्भासित हो रहे थे, और उसके नितंब तरुणसिद्धके समान चक्राकार थे । वह मुदूढ, बहुत सुंदर तथा प्रशस्त एव दिव्यवस्त्रोकी पहने हुए था, जिनके वंधन मणियोकी कात्तिसे व्याप्त हो रहे थे । उसका वस्त्रोसे आच्छादित वक्षस्थल, जो संग्रामसूर हाथियोका दमन करनेमे दक्ष था, हारकी कात्तिसे प्रकट हो रहा था । हाथीके दीर्घ सूँडके समान उसके बाहुदंड थे, और मुंदर कपोल

१. ख ग घ तवट्ठिं । २. क ल ग ड दिट्ठु । ३. क ड ज ज पि । ४. क ड ददवारं, घ वारिण । ५. क तु । ६. क ड मे अत्थारणे । ७. वत्त के पूर्व ‘तो भणित कुमारें नयपसत्त’ यह अर्थ पंक्ति-अधिक है । ८. ड पिण्हो । ९. ख ग घ दूट । १०. घ लड । ११. ख ग मड । १२. क ख ग ड ह । १३. क ड वि । १४. ड डुविं । १५. क ड वंभजंजु । १६. ख ग थिरदिट्ठु । १७. घ करजुवत्थु । १८. क घ ड किसोरे । १९. क ड वत्त । २०. क ड नमत्त, ख ग नमत्तु । २१. ख ग घ पहपच्छु । २२. ख ग सुहं । २३. घ दमणदच्छ ।

तं विरफुरियाहर^२ पीणखंधु^३ सियकुसुमुभासियकेसवंधु ।
 चित्तिलइ रयणसिहेण यम^४ दूयत्तणु आयहो^५ घडइ केम ।
 ण्हु वालु न माणुसु अण्णु^{३१} कोइ रेहा वि एहू दूवहो^{३२} न होइ । २०.
 नउ नवइ न वइसइ खाहिमाणु लइ सुणमि^{३३} ताम^{३४} आयहो^{३५} पमाणु ।
 मण्णते^{३६} इय विज्जाहरेण देवाविउ आसणु मइवरेण^{३७} ।
 वइसरेवि कुमारं न किउ खेउ रयणसिहुं^{३८} पुवुअइ सावलेउ ।
 घत्ता-जइ जाणहि^{३९} परमत्थे^{४०} भणमि हियत्थे^{४१} अणययारु म पवत्तहि^{४२} ।
 ४३ दप्पु विलुं पिवि^{४३} वुज्झहि^{४४} समरे म जुज्झहि^{४५} अज्ज वि गयण^{४६} नियत्तहि^{४७} ॥१२॥१२५

[१३]

वस्तु— माय-वप्पहि^१ दिण्ण जा कण्ण
 निन्नासियदुन्नयहो^२ वइरिबीरविइवियछायहो ।
 सरणाइयपविपंजरहो^३ सेणियस्स महारायरायहो ॥
 तहि^४ कारणि असगाहु किउ जो सो अज्ज वि मेल्लि ।
 जाणंत वि मा मुहि^५ छुवहि^६ हालाहलविसवेल्लि ॥ १ ॥ ५

मणिकुंडलेसे मंडित थे । उसके अघर ताबेके समान-लालिमासे प्रकाशित थे, और कंधे बहुत ऊंचे, एवं केशबंध श्वेत कुमुमोसे उद्भासित । (उसे देखकर) रत्नशेखर सोचने लगा— 'इसका दूतपना कैसे घटित (संभव) हो सकता है ? यह बालक मनुष्य नहीं, कोई अन्य ही है । दूतकी इसमें कोई रेखा तक नहीं है । न तो यह नमस्कार करता है, और न स्वाभिमान-के कारण (अपने आप बिना कहे) बैठता ही है । तो फिर अब इसकी बात सुन लेता हूँ'; इसप्रकार मानते हुए उस मतिमान विद्याधरने उसे आसन दिलवाया । बैठकर कुमारने जरा भी कालक्षेप नहीं किया, और वह रत्नशेखरसे अभिमानपूर्वक ऐसा कहने लगा—'यदि तू समझे, तो मैं परमार्थसे तेरे हितकी बात कहता हूँ कि अनाचारका प्रवर्तन मत कर ! दर्पका लोप (त्याग) करके इस बातको समझ ! युद्धमें मत जूझ, और अभी भी गये (चले) हुए (अनौचित्यके) मार्गसे वापिस लौट जा ! ॥१२॥

[१३]

मैं वापने जिस कन्याको दुर्नीतिका नाश करनेवाले, बेरी-बीरोकी कांतिको नष्ट करनेवाले, शरणागतो (की रक्षा) के लिए वज्रपंजर एवं महाराजाओंके राजा अर्थात् महाराजाविराज श्रेणिकके लिए दे दी, उसके लिए तूने जो असद् आग्रह किया है, उसे अब भी छोड़ दे । जानते हुए भी हालाहल विषकी बेल मुँहमें मत डाल !

२८ ख ग घ हंहर । २९ क ड एव । ३०. घं हि । ३१. घ अणु । ३२ ख ग घ हूयहो । ३३. घ मुं । ३४. क ताइ, ड ताव । ३५. क ड एयहु । ३६. घ मवत्ति । ३७. क ड मयं । ३८. क घ लं सिहु । ३९. क ड इ, घ हिं । ४०. क; वत्थे ड वत्थे । ४१. क र्थे । ४२. घं त्तिहि । ४३. क ड दप्पुअइपवि; ख ग दप्पुविलिपिनि । ४४ क ख ग हिं । ४५. क ड हिं । ४६ घ इ । ४७ ख ग निवत्तयहि, घ त्तिहि ।

[१३] १. क खं हि । २ क ड गिण्णां दुण्णं, ख ग निण्णां दुण्णं । ३ क ड वियपयपजं, घ सरणागयं । ४ क ड तह, घ तहि । ५ क ड मुहि । ६ क घ ड छुहहि ।

अक-सियंक-सककंपावणु
 अलियंरुपदपियं-मइमोहणु
 तुब्धु न दोसु दइवकिउ^{१०} धावइ
 जिह जिह^{१२} दंडकरंविउ जंपइ
 १० थड्डकंडु-सिरजालु पलित्तड
 दड्डाहर गुंजुजल्लोयणु
 पेक्खेवि पहु सरोसु सन्नमहि^{१७}
 अहो अहो दूय दूय साहसगिर
 अणहो^{२१} जीह एह^{२६} कहो वग्ग^{१३}
 १५ भणइ^{२३} कुमारु एहु रइलुद्धउ
 रोसं भरिउ^{२६} हियत्थु वि न सुणइ^{२७}
 रोसु अ दोसु मणुसु नडावइ^{२८}
 पहिल्लउ गलइ बुद्धि रूसंतइ^{३०}
 पढमविवेउ पावरसु रंजइ^{३१}

हा सुउ सीयहे^{१०} कारणे रावणु ।
 कवणु अणत्थु पत्तु दुज्जेहणु ।
 अणउ^१ करंतु महावइ पावइ ।
 तिह तिह^{१३} खेयरु रोसहि^{१४} कंपइ^{१५} ।
 चंडगंडपासेयपसित्तड ।
 फुरदुरंतनासउडभयावणु^{१६} ।
 तुत्तु वओहर मंतिहिं ताम हिं^{१८} ।
 जं पइ^{१९} चविउ दंडगन्धिउ^{२०} किर ।
 खयरविसरिसनरेसहो अग्ग^{२१} ।
 वसनमहणणव^{२२} तुम्हहिं^{२३} छुद्धउ ।
 कज्जाकज्जु वलाबलु न सुणइ ।
 अयसु^{२५} समुच्चयवंसेचडावइ^{२६} ।
 पच्छइ संयसलिल्लवसंतइ^{३०} ।
 पच्छइ पुणु लोयणइं न वज्जइ^{३०} ।

‘अहो ! अर्क (सूर्य), मृगांक (चंद्र) और शक्र (इंद्र) को (अपने भय से) कंपाने-वाला रावण सीताके कारण मरा । मतिको नष्ट करनेवाले झूठे दर्पसे दूषित दुर्योधन कैसे अनर्थ को प्राप्त हुआ । तेरा कोई दोष नहीं है, तू दैवका मारा भागा-भागा फिरता है । इसप्रकारकी अनोति करनेवाला महान् आपत्तिको प्राप्त होता है ।’ जैसे-जैसे जंबूकुमार ऐसे दडगभित (दर्पपूर्ण व अभिमानोत्तेजक) वाक्य बोलता, वैसे-वैसे खेचर अधिकाधिक रोपसे कांपता । (क्रोधके आवेगसे) उसका कंठ स्तब्ध हो गया, शिरा-जाल प्रदीप्त हो उठा, और विशाल कपोल प्रस्वेदसे सिक्त हो गये । ओठोंको काटते हुए, गुंजाके समान उज्ज्वल (चमकीले) लोचन, तथा फड़कते हुए नासापुटसे भयानक, ऐसे अपने स्वामीको रुष्ट हुए देखकर, तभी सन्नामवारी मंत्रियोंने दूतसे कहा—अहो ! अतिसाहसपूर्ण वाणी बोलनेवाले दूत ! तूने जो कहा वह निश्चयसे शक्तिके अभिमानसे पूर्ण एवं नाशका कारण है । क्या किसी दूसरेकी जिह्वा है, जिससे तू प्रलयकालीन सूर्यके समान प्रचंड तेजस्वी इस राजाके आगे ऐसा बोल रहा है ? इसपर कुमारने कहा—रतिके लोभी इस राजाको तुम लोगोने संकटके महासागरमे डाल दिया है । रोपसे भरा होनेसे यह अपने हितार्थको भी सुनता नहीं, और न कार्य-अकार्य व बलाबलको ही समझता है । रोप व द्वेष मनुष्यको नाना नाच नचाते हैं, एव अति उच्च (महान्) वंशमें भी अपयज्ञ लगाते हैं । रुष्ट होनेवालेकी बुद्धि पहले ही भ्रष्ट हो जाती है, पीछे पत्तोनेके जलविदुओंकी धारा (संतति) विगलित होती है । पहले तो पाप-रस विवेकको रंग देता है (दूषित कर देता है), पीछे नेत्रोंको भी नहीं छोड़ता (उन्हें भी क्रोधके आवेगसे लाल कर देता है) ।

७. घं हिं । ८ ख दलियं । ९. क डं दपिउ । १०. घ दडउ । ११. घं उ । १२. घ जिह जिह, क ख जिहं जिह । १३. घ तिहं तिहं । १४. क ड रोसिहिं । १५ क इं । १६ क डं णामिउडं । १७ क ड सण्णा । १८ क घ डं हिं । १९. क ख घ ग ड पइ । २०. ख ग दडं । २१ व अणहो । २२ क ड एम । २३ घ इं । २४. घं नवि । २५. ख ग हिं । २६ ख घं नरिउ । २७ क मणुउ, घ ड सुणइं । २८ ख ग वइ । २९ ड अजणु । ३० क घ इं । ३१ क डं ।

पहिलड कालसपु मणु डंकइ ^{३१}	पच्छइ अहरविणु ना संकइ ^{३१} ।	२०
पहिलड फुरणु अकत्तिहि ^{३१} धावइ ^{३१}	पच्छइ पुणु नासउडिहि ^{३२} पावइ ^{३१} ।	
रोसमहाभरु धीरहि ^{३३} दम्मइ ^{३४}	इयरु ^{३५} पुणु वि ^{३५} रोसेण निहम्मइ ^{३५} ।	
जित्तु जि एण वि कुमइ न लज्जइ	केम महंतविरोहे गज्जइ ।	
पभणइ ^{३७} रयणचूलु ^{३८} अवमाणहि ^{३९}	दूउ होवि घोळणहं न जाणहि ^{३९} ।	
चार वार अन्हइ ^{४०} अवगणणहि ^{४१}	चार वार सेणित्त ^{४२} निववण्णहि ^{४३} ।	२५
महु भएण पुरे पइसिवि थकहो	वार वार जउ ठवहि मियंकहो ।	
कहहि ^{४४} तासु जइ रणे अट्ठिमइ	तेरउ दूउ ^{४५} गमागसु लुइइ ।	
विज्जाहरहि ^{४६} अन्ह रणे आयहि	कवणु गहणु भूगोयररायहि ।	
भणइ वालु रहुवइ भूगोयर	रावणु किं न आसि विज्जाहर ।	
जइ आयासे ^{४७} गमणु हुउ कायहो	तो किं सो जि ^{४८} थाणु गुणभावहो ^{४९} ।	३०
विरुवउ ^{५०} वुत्तु मियंकु असकउ	तउ भएण किं नियपुरि थकउ ।	

घत्ता—विद्धंसियकरिकाणणु जं पंचाणणु निवसइ सिंहरिखयालहि^{५०} ।

पयइ^{५१} एह तहो लक्खहि^{५२} अह पुणु अक्खहि^{५३} किं वोहंतु^{५४} सियालहि^{५५} ॥१३॥

पहले तो यह (क्रोधरूपी) काला साँप मनको डंस लेता है, पीछे निःशंकरूपसे अधर-विबको भी (क्रोधके आवेशसे व्यक्ति ओठोंको काटने लगता है) । प्रथम तो अपकीर्तिका स्फुरण होता है, पीछे नासापुटोंका फड़कना । रोषके महान् आवेगका धीरपुरुषों-द्वारा दमन किया जाता है, किंतु इतर (अधीर) व्यक्ति स्वयं रोषसे मारा जाता है । इस (क्रोध) से विजित होकर भी यह कुमति (दुर्वृद्धि खेचर) लज्जित नहीं होता, प्रत्युत कैसे महान् वैरसे गरजता है । (यह सुनकर) रत्नचूल कहने लगा—दूत होकर बोलना भी नहीं जानता, और हमारा अपमान करता है । बार-बार हमारी अवगणना (निंदा) करता है, और श्रेणिक राजाकी प्रशंसा; तथा मेरे भयसे नगरमें भीतर घुसकर बैठे हुए मृगांके विजयकी स्थापना । रे दूत ! उससे कहो कि यदि रणमें आकर भिड़े, तो तेरा यह आना-जाना छूट जाये ! हम विद्याधर राजा जहाँ युद्धमें आये हो, वहाँ भूगोचरी राजाओंकी हमसे क्या स्पर्धा ? इसपर बालकने कहा—क्या रघुपति भूगोचरी और रावण विद्याधर नहीं थे ? यदि कौवे (काक, पक्षमें काय = शरीर) का आकाशमें गमन हो गया, क्या इसीसे वह गुणोंका पात्र बन गया ? और यह वृत्तांत भी विरूप अर्थात् झूठा है कि मृगांक अशक्य (असमर्थ) है । वह क्या तेरे भयसे अपनी नगरीमें स्थित है ? हस्तिंसमूहरूपी काननको विध्वस्त करनेवाला जो सिंह गिरिकंदरामें (जाकर) रहता है, यह तो उसकी प्रकृति ही देखी जाती है; कही कहो ! वह क्या सियालोसे डरकर ऐसा करता है ? ॥१३॥

३२. क घ ङ डहो । ३३. ख ग वी, घ वीरिहि । ३४. क ग घ डं । ३५. ड वि पुणु । ३६. क घ ङ इ । ३७. घ ङ इ । ३८. क चूल । ३९. प्रतियोमे णिहि । ४०. घ अन्हइ । ४१. क ख ग ङ णहि, घ णिहि । ४२. व उ । ४३. क ङ णित्त वण्णहि; ख ग णिहि, घ णिहि । ४४. ख ग कहइ । ४५. क ड दूय । ४६. क घ ङ स । ४७. क घ ड जि, ख ज्जे, ग जे । ४८. क घ ङ गुणु । ४९. ख ग यउ । ५०. ड खयालहि । ५१. क ङ डं । ५२. प्रतियोमें हि । ५३. क ख ग डं हि । ५४. क घ डं ति ।

[१४]

वस्तु — हृत्थतलहयकुंभिकुंभयल	
उक्खित्तमोत्ति य नियवि नहरक्खुत्त ^१ सोहहो कमतहो ।	
अहिलसहि ^२ तं हरि हणवि ^३ अचसबंधु तुहुं तहो कयंतहो ॥	
सो हउं ^४ दूउ न जो कहमि जायवि धोल्लु निरत्थु ।	
५ तउ वद्धिहयदुण्णयदुमहो ^५	फलदक्खवणसमत्थु ॥ १ ॥
तो महित्तलपंतविज्जाहरिदेण	उक्खित्तहत्थेण ण वणकरिदेण ।
नवनि सियपहरणफडाडोयनाएण ^६	पंचमुहसुंजारसण्णिहनिनाएण ^७ ।
लइ लेहु लेहु त्ति आणत्तभिच्चेण ^८	उद्धंतसंतेण संगरद्वच्चेण ।
ता उट्ठिया दुद्धदपिद्धवल्लद्ध ^९	हणु हणु भणंताण खयरारण सहसट्ठ ।
१० उग्गिण्णकरवालसंथाणथकोहिं ^{१०}	नामंतकातेहिं ^{११} भामंतचकोहिं ^{१२} ।
धणुगुणनिवेशंत ^{१३} ऋद्धहंतवाणेहिं ^{१४}	हंतुं समारद्ध अमुणियपमाणेहिं ।
तो दिट्ठ दट्ठोद्धरुद्धारिभावेण ^{१५}	उद्धं कमतंतेण जंबुकुमारंण ।
करिं धरिय असिट्ठहियसंदिण्णरणीह ^{१६}	उद्धदुहियकालस्स ^{१७} लवलवि य ण जीह ।
^{१८} इय जुव्वमाणेण हयपेयखडेण	पाडेइ विज्जाहरा भीमगयण ^{१९} ।

[१४]

अपने हाथके पंजेसे आहत हाथीके कुमस्थलसे उखाड़े हुए (गज) मुक्ताओंको, जाते हुए सिंहके नखोसे गिरे हुए देखकर, (उसका पीछा करके) तू उस सिंहको मारना चाहता है, तो तू अवश्य ही उस यमराजका वंधु है (अर्थात् तू बहुत गौरव यमपुरी जाना चाहता है) । मैं वह दूत नहीं हूँ, जो जाकर निरर्थक बात कहूँ । मैं तेरे बड़े हुए दुर्नीतिरूपी द्रुमका फल तुझे यही दिखानेमें समर्थ हूँ । तब पृथ्वीपर ठोकर मारते हुए, बनेले हाथीके समान हाथ (पक्षमें मूंड) उठाये हुए, नागके फणाटोपके समान नये शान दिये हुए शस्त्रको लिये हुए, सिंहगर्जनके समान निनाद करके उठते हुए, उस-संग्राम दैत्यके द्वारा अपने भृत्योंको यह आज्ञा दी जाने पर कि ले लो ! ले लो (पकड़ो ! पकड़ो !) । बलमें प्रवान (श्रेष्ठ बलशाली) अष्टसहस्र दृष्ट व रक्षिष्ठ (गर्वीले) खेचर मारो मारो कहते हुए उठे । तलवारोंको निकालकर और वाग् करनेकी स्थितिमें आकर, भालोको झुकाते हुए और चक्रोंको घुमाने हुए, धनुषपर डोगी चढ़ाते हुए एवं वाणोंको निकालते हुए, ऐसे अज्ञात प्रमाण (सहस्रो) भटोने उगे मारनेका उपक्रम किया । तो यह देखकर जंबुकुमारने शत्रुओंके ऊपर बड़े भारी क्रोध भावमें ओष्ठ काटते हुए व ऊरुको उछलते हुए, अपने हाथमें वह कटारी धारण की जिसमें सुद्धोकी रेखाएँ पड़ी हुई थी, और जो मानो भूखसे दुःखी यमराजकी लपलपाती हुई जिह्वा ही थी । इसप्रकार युद्ध करने हुए मारें गये

[१४] १. टं कुंभयड । २. प्रतिघोमे ण्णत्तु । ३. व मत्ति । ४. न ग र्णिति । ५. क उ णि । ६. क र ग ट ह उ । ७. क ट वट्ठि व, व सुत्तय । ८. क ट क उ । ९. टं क उ र्णोम । १०. क प ग णुजारि ; व नत्तिहं । ११. क ट आनत्ति । १२. न ग लद्ध । १३. व उग्गिण । १४. टं व र्णि । १५. क ट णामत्ति । १६. क ट भामनि । १७. व र ग ट व गुत्त । १८. व ट क उ त्ति । १९. क र ग ट भारिण । २०. न ग नर । २१. क ट गा दिण्ण रणि । २२. न ग त्त् । २३. ग म्म क र्ण वंत्ति नही ।

तहिं काले संपत्तु गयणगङ्ग सत्रिमाणु तेणपिओ लइउं^{२४} वरचम्म^{२५} सकिवाणु^{२६} । १५
 इह चडहिं^{२७} नउ चडमि किं एत्थुं^{२८} चडिएहि संगामकालम्मि कोणंतदडिएहिं ।
 नासंतपट्टीप्र सिग्घं न धावेवि^{२९} अह^{३०} जुञ्जमाणम्मि एत्थेव पावेवि^{३१} ।
 विज्जाहरा खग्गसल्लिम्मि चुडंत अण्णे^{३२} पुणो पेक्खुं^{३३} हरिणुं^{३४} व उडंत ।
 इय भणिवि एक्कंभे^{३५} रिउसेण्णे उत्थरइ सो कवणु किर खयरु जो दिट्ठि तहो धरइ ।
 परपहरवंचंतु नियवायमेल्लंतु सझडप्पदिद्वचम्मवट्टीप्र^{३६} पेल्लंतु । २०
 अवहत्थ-समहत्थ-द्वडकालवट्टेहिं^{३७} करिठाणसंठाण-कुम्मासणट्टेहिं ।
 पंचाणालोय-मिगकडगपाएहिं^{३८} सवियाससंकोयअवसारघाएहिं ।

प्रेतखंडरूपी भयानक गदासे वह कुमार विद्याधरोको मार-मारकर गिराने लगा । इतनेमे गगन-गति भी विमान-सहित वहाँ आ गया, और कुमारने उसके द्वारा अर्पित किये हुए उत्तम ढाल व तलवारको ले लिया । गगनगतिने कहा— यहाँ विमानमे चढ़ जाओ; (कुमारने कहा) नहीं, मैं नहीं चढ़ूँगा । युद्धके समय इसमें चढ़कर (आत्मरक्षाके लिए) डरसे कोनेमे जानेसे क्या लाभ ? भागते हुआके पीछे त्वरापूर्वक न दौड़कर, परंतु युद्ध करते हुए, यही प्राप्त करके (सामना करके) इन (अनेक) विद्याधरोंको मेरे खड्गकी धारारूपी जलमे डूबते हुए तथा अन्य (अनेकों) विद्याधरों (के कटे हुए शिरो) को (आकाशमे) हरिणके समान उड़ते हुए देखो । इसप्रकार कहकर जंबूकुमार शत्रुसेनाके एक अंगपर टूट पड़ा । फिर ऐसा कौन खेचर था, जो उसकी दृष्टिको सह सके (अर्थात् उसके आगे ठहर सके) । वह जंबूकुमार शत्रुके प्रहारसे अपनेको बचाता हुआ, अपना घात (प्रहार) शत्रुओपर छोड़ता हुआ, झडपपूर्वक शत्रुसेनाको सुदृढ़ चर्मपृष्ठ (ढाल) से (पीछेको) दबाता हुआ, अतिशय शक्तिशाली काल-पृष्ठ (घनुष) के समान हाथोंको मारनेके लिए ऊँचा करके, हस्तिदंतवेधके समान गर्दन काटने-वाली खड्गरूपी नासिका (सूंड) से अधोमुख होकर; वैठकर; तथा कूर्मासनके द्वारा (शत्रुओंके) रथ-हाथी व घोड़ोंके कर-चरणोंका घात करते हुए; एवं सिंहावलोकनके समान आगेके शत्रुओपर पादाघात करके शत्रुओंका संहार; तथा मृगके समान पैरोंके आगे करके शत्रु भूमिमे घुसकर क्रम-क्रमसे अग्रिम शत्रुओंका विनाश; फलक (शस्त्रविशेष) को वामपार्श्व मे, व खड्गको पीछे छिपाकर शत्रुको यह दिखलाते हुए कि यह असावधान हो गया है, (ऐसा सोचकर) मारनेके लिए आगे आये हुए शत्रुको मारना; और शत्रुओंके द्वारा अघात किये जाने-पर बाणमे फलक लगाकर शत्रुओंको मारना; एवं अकस्मात् पीछे हटकर फिर (सहसा आगे बढ़कर) शत्रुओंको मारना, इत्यादि अनेक प्रकारके कुमारके दाव-वंचोसे वह विद्याधर सैन्य

२४. क ड लयज । २५. क ड चम्म । २६. ख ग सकिमाणु । २७. क व । २८. ख ग एत्थ, घ एण ।
 २९. क घ ड वेमि । ३०. घ जह । ३१. घ अने । ३२. ख ग घ पेक्ख । ३३. घ ण । ३४. प्रतियोमे
 'एक्कणु' । ३५. क वट्टीए, घ ड वट्टीए । ३६. ख ग घ वट्टेहिं, ड वट्टेहिं । ३७. ड पाणेहिं ।

घत्ता—तं बिज्जाहरसाहणु ववगयवाहणु एकहो वासु विसट्टइ^{३८} ।
वीररसंक्रियअंगहो तरुणपयंगहो तिमिरु जेम नहि किट्टइ^{३९} ॥१४॥

इय जंबूसामिचरिप् स्रिगारवीरे महाकव्वे^{४०} महाकइडेवयत्तसुयवीररिद्रुप
सेणियदिसाविजड नाम^{४१} पंचमो संधी समत्तो^{४२} ॥ संधिः ५ ॥

अपने समस्त बाहन नष्ट हो जानेसे, उस अकेले (जंबूकुमार) से ही इसप्रकार छिन्न-भिन्न होने लगा, जिसप्रकार वीररससे युक्त अंगो अर्थात् अत्यंत तेजस्वी किरणो-वाले सूर्यमे आकाशमे तिमिर फट जाता है ॥१४॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित 'जंबूसामीचरित्र' नामक इस शृंगार-वीररसात्मक महाकाव्यमे श्रेणिकका दिशाविजय नामक यह पंचम संधि समाप्त ॥ संधि ५ ॥

३८. एव गं ट्टो । ३९ क फट्टः ट पट्टः । ४० क ट देवम । ४१ क ग ट पचमो नामा । ४२ ग पचमो संधी पच्छिओ मम्मतो ।

देत दरिद्रं परवसणहुम्मणं सरसकव्वसव्वस्सं ।
 कइवीरसरिसपुरिसं धरणि धरंती कयथास्सि ॥
 हत्थे चाओ चरणपणमणं साहुसीलाण संसे १ ।
 सबावाणी वयणकमलए वच्छे ३ सच्छापवित्ती ४ ॥
 कण्णाणयं ५ सुयसुयंगहणं विक्रमो द्रोल्याणं ।
 वीरन्सेसो सहजपरियरो संपया कज्जमण्णं ६ ।
 केरलनिवे ७ धरिप्र विजयंतरिप्र विहिवलहि १० जुञ्जमइ ११ फिट्टइ १ ।
 जंवूसामि तहि हुउ १२ समरु जहि रयणसिहहो रणे अत्तिभट्टइ १३ ॥ १ ॥

राजलमज्जे समरकोलाहलु निमुणेवि वाहिरि १ सन्नज्जइ वलु ।
 उव्वेचिरु २ उम्मगो ३ धावइ कहि १० पारकउ १० खोज्जु १० न पावइ । १०
 कोइ २० भणोइ कोइ २१ प्रउ २४ वट्टइ कहि २२ संचरहु धरायलु फट्टइ १ ।
 एक्खु मियंकु असकउ विग्गहे २६ पणिगव २७ को वि लग्गु २८ पारग्गहे २९ ।

. दरिद्रको दान देनेवाले, दूसरोंकी विपत्तिमें दु खी, और सरस-काव्यको हो अपना सर्वस्व समझनेवाले कवि वीरके समान पुरुषको धारण करते हुई, हे वरित्री ! तू कृतार्थ है ॥१॥ हाथमें चाप (धनुष), सावुशील पुरुषोके चरणोंको धारिः प्रणाम, वदनकमलमें सच्चो वाणी, हृदयमें स्वच्छ प्रवृत्ति, कानोमें इस सुने हुए श्रुतका ग्रहण, तथा बाहुलताओंमें विक्रम, वीरपुरुष (इलेप-वीरकवि) का यह सहज-स्वाभाविक परिकर (साधन सामग्री) है, परंतु इस समय तो कार्य ही दूसरा है (अर्थात् अब तो वीर कविको युद्धका वर्णन मात्र करना है) । केरल नरेशके द्वारा धारण किये हुए आश्रय-प्रदेग (केरल-नगरी) को छोड़कर (उसके वाहर) विधाताके बलसे युद्धमें मीत भी (भयसे) पलायन कर रही थी (?) अब जहाँ युद्ध हो रहा था, वही जवूस्व.मी रणमें रत्नखेखरसे भिड़ गये ।

राजकुलमें समर कोलाहल सुनकर वाहर (भी) सैन्य सन्नद्ध होने लगा । कोई उद्विग्न होकर उन्मार्गसे भागा, परंतु शत्रुका कहीं कोई चिह्न भी न पा सका । कोई कहने लगा, यह क्या हो रहा है ? कहीं चले—कहाँ भागे, धरातल तो फटा जा रहा है । अकेला मृगांक तो युद्ध करनेमें असमर्थ है, प्रायः (यह) कोई अज्ञात व्यवित ही युद्धमें लगा हुआ है । प्रचंड सैन्यने

[१] १ क सेसे, ख ग ड सीसो । २ क ड सव्वा । ३. क ख ग वच्छि । ४. ख ग सत्था । ५. क कप्पा । ६ क ख ग सुअ सुं, ड सुअ सुअ । ७. ख ग गणं । ८ क घ ड मं । ९ क ड गिव १० घ विहिं, क वलहि । ११ ख ग डं । १२. क हुअ । १३. व ट्टइ । १४. क ख ग ड सण्णं । १५ घ उव्विं । १६ क ड ओमगहि । १७ ड कहि । १८. घ परं । १९. क ड उज्ज । २० क घ ड को वि । २१. क घ ड इउ । २२ क कहि । २३. ख ग फुं । २४ क हिं । २५. क घ ड लग्गु को वि । २६. क ड पारिग्गहि; घ पारिग्गहि; ।

वेद्विउ सिमिह्र थलेण रउइ	जंबूदीउ व खारसमुहें ।
अण्णे ^{१०} वुत्तु न वइरि न विग्गहु	भेयभिण्णु हुउ रायपरिग्गहु ।
१५ कइइ को वि कासु वि संतत्तउ ^८	कालु व ^{११} वालु को वि ^{१२} संपत्तउ ।
तेण-त्थाणु असेसु सरायउ	वइइ ^३ रणे असिघायहि ^१ घायउ ।

वत्ता—तो मणि विप्फुरियहिं^१ पइसेवि पुरियहिं^२ हेरियहिं^३ मियंकोहो अक्खिउ
तहिं^४ खणे^५ तेत्तडण सत्तुहुं^६ कडए वित्तु नवर जं लक्खिउ^७ ॥ १ ॥

[२]

देव देव पक्को महाइओ	कुमरु को वि रिउसेण ^१ आइओ ।
सेणिएण कि पेसिओ इमो	सयणु ^३ तुम्ह कि वा न जाणिमो ।
तेण पक्खिउ संचडवि ^४ तेरेए	वइरिसेणु करवालकेरेए ।
गलपमाणुं जललोलपोलियं	भुयणभारभुयदंदि ^५ तोलियं ।
५ गइयंपहरुहिरोहचियं	पडियमुंउ-भइहंडनचियं ^६ ।
"छिन्नखयरकरचरणमंडियं	रत्तपोत्तधररामरंदि ^७ ।
तुरिउ तुरिउ सन्नहि ^८ धावहो	जुज्जमज्जे एवहिं ^९ जि पावहो ।

(अपने राजाके) शिविरको इस तरह घेर लिया, जैसे जंबूद्वीप लवणोदधिसे घिरा है। तब किसी दूसरेने कहा—न कही शत्रु है, और न युद्ध, राजाको सेनामे ही फूट पड़ गयी है। कोई सतप्त होकर किसीसे कहता है, कालके समान कोई बालक आ गया है, और उस (अकेले) के द्वारा राजा सहित सारी समा रणमे उसकी तलवारके आघातोसे धायल हुई है। तब मनमे अत्यंत प्रसन्न होकर पुरीमे प्रवेश करके गुप्तचरोंने मृगाकसे वह अज्ञेय वृत्तात कहा जो उन्होंने उस अवसरपर शत्रुकी छावनीमे देखा था ॥ १ ॥

[२]

हे देव ! हे राजन ! कोई एक महद्धिक कुमार शत्रु-सैन्यमे आया है। क्या इसे श्रेणिकने भेजा है ? अथवा तुम्हारा कोई स्वजन है, यह हम नहीं जानते। उसने तुम्हारे पक्षमे चढाई करके शत्रु सैन्यको अपनी तलवार (की धारा) के जलकरे लहरोमे गले तक डुबो दिया है, और भुवनके समस्त भारको अपने भुजदंडमें तौल लिया है (अर्थात् समस्त भुवनको मागो अपनी भुजाओमे उठा लिया है), 'सहाय प्रहारजन्य रक्तके प्रवाहसे उसे लीप दिया है, भटोके गिरे हुए मुडो व रंडोसे नचा दिया है, खेचरोके कटे हुए हाथो व पैरोसे संबद्ध कर दिया है; एवं (सीमाग्न-सूचक) रक्तवत्त्रोको धारण करनेवाली (शत्रु) नारियोको विधवा बना दिया है। अत्यंत शीघ्रतापूर्वक संनद्ध होकर वेगपूर्वक गमन कीजिए, और युद्धके मध्य अभी उससे

२७ घ अंति । २८. क ड सलत्तउ । २९ रा ग घ को वि वालु । ३० ख ग वइइ । ३१ ख ग थउ । ३२. ड तहि ।

[२] १ ख ग व^१ सेनि । २. क ड आयउ । ३ ख ग ण । ४ क ड या । ५. क घ ड णि वि । ६ क घ ड णमाण । ७ क ड भुयणभारभरभुयहि, भारभरभुयहि । ८ क ड गअ । ९ घ तुड न । १०. क ड छिण्ण । ११. घ मंडिय १२. क ख ग क सण्ण । १३ घ हि ।

तं सुणेवि रणरसियसूरया पद्मयवि विहसंगामतूरया ।
 घत्ता—रहकरितुरयभडु रणरंगपडु^{१४} तुट्टंतकवथगुणनद्ध^{१५} ।
 कलयलकलियवलु^{१६} धयचिधचलु चउरंगु सेणु सज्जद्ध^{१७} ॥ २ ॥ १०
 [३]

का वि कंत संदेसइ वंतहो चूडुल्लयहो हत्थि मणिकंतहो ।
 कोडु^१ न मणमि एक्कु जि भल्लउ अरि करिदंतघडिउ वलउल्लउ ।
 अक्खइ का वि कंत भत्तारहो कयक्किणियहो न सोह इह हारहो ।
 आणहि^२ तिक्खखग्गपहनिम्मल सइ^३ हयकुंभिकुंभसुत्ताहल ।
 वोल्लइ का वि कण्ण^४ गयखेवहो^५ अवसरु अल्लु^६ सामिरिण्णयेहो^७ । ५
 होइ न होइ एण भडभीसे पडुरिणमोयणु एकें सीसे ।
 तो वरि हउं मि जामि इउ कारेवि^८ नररूवेण खग्गफरु धारेवि^९ ।
 जंपइ का वि कंत म सहिज्जहो^{१०} विट्ठण परवले^{११} पडमु^{१२} भिडिज्जहो^{१३} ।
 घत्ता—वोल्लइ को वि भडु महु कंतं धडु पेक्खिज्जहि रणे सल्लंतउ^{१४} ।
 अगलियखग्गफरु करिलुणियकरु रिउदंतिदंतं^{१५} शुल्लंतउ ॥ ३ ॥ १०

जा मिलिए । यह सुनकर शूरवीर संग्रामके रसिक हो उठे और विविध प्रकारके युद्धके बाजे बजाये गये । युद्धकालमें पट्ट रथ, हाथी व घुड़सवार योद्धाओंने अति पीरुषके उद्वेगसे उत्पन्न अतिशय रोमाचके कारण टूटती हुई कवचकी डोरियोंको बांध लिया, सारी सेनामें कोलाहल मच गया और ध्वजा-पताकाएं फहराने लगीं; इसप्रकार चतुरंग सैन्य संनद्ध हो गया ॥२॥

[३]

कोई काता अपने पतिको सदेश देने लगी—अपने हाथमें सुंदर मणियोंसे घटित चूड़ेके लिए मुखे कोई कौतुक नहीं, बल्कि मेरे लिए तो एकमात्र वही चूड़ा भला, जो शत्रुके हाथीके दातोसे बना हुआ हो । दूसरी कोई प्रिया अपने भत्तारको बोली—मूल्यसे खरीदे हुए हारकी यहाँ कोई शोभा नहीं है; तीक्ष्ण खड्गकी प्रभाके समान निर्मल गजमुवताओको तुम स्वयं (शत्रुके) हाथीके कुंभस्थलको आहत (विदीर्ण) करके लाओ । कोई कन्या कहने लगी—स्वामीके भूतकालके ऋणको काटने (चुकाने) का आज ही अवसर है; भटसे भयंकर इस संग्राममें एक शिरसे स्वामीका ऋणमोचन हो या न हो, तो फिर मैं भी इस कार्यके लिए पुरुष-वेष बनाकर, तलवार व ढाल लेकर (रणमें) चलूंगी । और कोई काता बोली—तुम लोगोको (दूसरोको) आज्ञा नहीं देनी चाहिए, बल्कि शत्रुसैन्यको देखते ही सबसे पहले (स्वयं) भिड़ जाना चाहिए । कोई भट बोला—हे कांते ! तू युद्धमें मेरे घड़को बाणों-द्वारा बीधा जानेपर भी, हाथसे खड्ग व ढालको न गिराकर, शत्रुके हाथीके सूंडको काटकर, उसके दातोमें झूलते हुए देखना ॥३॥

१४. क ड णडु । १५. ख ग णडु । १६. ख ग घ णडु । १७ क ख ग ड सण्ण ।

[३] १ क ख ग ड कोड । २. घ ण्हि । ३. क ख ग ड सइ । ४. क घ ड कंत । ५. क ख ग ड खेयहो । ६ क ड अज्ज । ७ ख ग सामिरण । ८. ख ग कारवि । ९. ख ग धारमि । १०. क ग ण्हि, घ ण्हि । ११ क ड विट्ठइ परवलु, घ विट्ठइ परवलि । १२ क ड म । १३ ज्जहि, ड ण्हि । १४. क ड विखल्लतउ, घ सिल्ल । १५. ख ग दंत ।

[४]

नीसरिड सेण्णु^१ पयडंतखोह
संसोहियरोहियसमरखेतु
राउलहो^२ मच्चं जुञ्जइ सुधीर^३
एत्तहि^४ लग्गइ^५ क्रियकलयलाइ^६
५ कंवाहय-चलहय-संदणाइ^७
मणकोविय-चोइय^८ भायघडाइ^९
सुहसाहिय-त्राहिय-हयथडाइ^{१०}
दप्पहरण-पहरण-थिरकराइ^{११}
गुणगाहिय-काहिय-धणुहराइ^{१२}

१०

घत्ता—उट्टिउ ताम रउ मइलंतघउ^{१३} विहिचलह^{१४} भार असहंतिप्र ।

निभरखिन्नियप्र^{१५} निच्चिणियप्र नीसासु व मुक्क^{१६} धरित्तिप्र^{१७} ॥४॥

[५]

अह सुहडकोवडञ्जंतियाह^१

उच्छलइ व धूसुगारु ताह^२ ।

[४]

संभ्रम (शोभ) प्रकट करता हुआ सैन्य निकल पड़ा, और भट कोट व अट्टालिकाओंपर (सतर्कतासे) प्रवृत्त हो गये। अच्छी तरह शोधा हुआ समरक्षेत्र घेर लिया गया, ऐसा देखकर बन्धु अपने सैन्यसहित (उसकी ओर) दौड़ पड़ा। उधर राजकुलके अंदर वह श्रेष्ठ धीर-वीर जंबूकुमार खेचरोके साथ युद्ध कर रहा था, और इधर दोनों विद्याधरोकी सेनाएं कलकल (कोलाहल) करती हुई आपसमें लग गयी। चावुकसे आहत हुए चंचल घोड़ोंवाले रथ अनेक सुरवधुओंके नेत्रोंको आनंद देने लगे। मनाक् (थोड़ा) कुपित करके गजसमूहको प्रेरित किया गया। जिनके मुखपटोको उचाटकर हटा दिया गया था, वेसे अच्छी तरह साधे हुए घोड़ोंके समूह चलाये गये। रणके रंगीले भटोके समूह वर्गमें बंट गये। दर्पेका नाश करनेवाले आयुधोंको अपने स्थिर हाथोंमें लिये हुए, म्यानसे निकाले हुए तलवारोंको घुमाते हुए, तथा सुगाढ अर्थात् सुदृढ़ एवं खीची हुई प्रत्यंघासे युक्त घनुषोंको धारण करनेवाले योद्धा परस्पर एक दूसरेपर बाण छोड़ने लगे। तब ध्वजाओंको मलिन करता हुआ ऐसा रज उठा, मानो दोनों सेनाओंका भार सहन न कर सकनेवाली धरित्रोने अत्यंत खेदलिप्त होकर बड़ा निःश्वास छोड़ा हो ॥४॥

[५]

अथवा सुभटोके कोप-[अग्नि] से दग्ध होते हुए मानो उसका धूमोदगार ही ऊपरको

[४] १. व सित्तु । २. क ड कोट्टाल । ३. क ड त । ४. क ड पेक्खवि । ५. क ड घायउ । ६. क ड सयलु ; ख ग सयलु खतु । ७. व लहं । ८. क ड सुवीर । ९. ड सहु । १०. क ड धीर । ११. ख ग हे । १२. ख ग इ । १३. ख ग णाय । १४. क ड चोविय । १५. ड घडाइ । १६. ख ग तटाइ । १७. क ड दप्पहरण । १८. ड हराइ । १९. ख ग मइलंतघउ । २०. क ख ग ड बलहि । २१. क ख ग ड विणि । २२. ख ग मुक्क । २३. ख ग धर ।

[५] कंयाहि, डंयाहं । २. क ड ताहं ।

पयच्छडिवि^३ अप्पाणउ^४ तडेइ
 मज्झइ व महागयमयजलेण
 अंधारियाई निम्मलथलाई^५
 पर अप्पु न वुञ्जतेहिं^६ तेहिं
 हत्थिहे^७ गलगज्जि निसामिऊण
 हयहिसप्र^८ जाणिवि आसवारु
 केणावि कलिउ रहु घरहरंतु
 हकंतहो कासु वि को वि घडइ^९
 अकुलीणु अवस मत्थप्र चडेई^१ ।
 नचइ च चमरचलमरुछलेण^२ ।
 संरुद्धचक्खु वेण्णि वि वलाई^३ ।
 जुञ्जिउ णं जडमइ जोइएहिं^४ ।
 भड्डु हणइ किवारणं धाविऊण ।
 को वि मुयइ चक्खु नवनिस्सियधारु ।
 धाणुके विद्धउ थरहरंतु^५ ।
 वज्जासणि उव सिरि लउडि^६ पडइ ।
 घत्ता—सुहडरुहिरपएण करिवरभएण हयफेणपवाहहिं नामिउ^७ ।
 परमइलणु पवलु देविणु कवलु^८ दुञ्जणु व रेणु उवसामिउ^९ ॥ ५ ॥

[६]

रुहिराणत्तु रणमहि^१ चहई^२ संछिन्नमूलु^३ रउ नहे सहई ।
 अंगारसेसवइसाणरहो पडमुट्टिउ धूमु व भमई^४ तहो ।

उछल रहा हो । चरणों (अर्थात् भूमि)को छोड़कर वह धूल अपनेको विस्तीर्ण कर रहा था, क्योंकि (शक्तिसे न दवाया हुआ) अकुलीन व्यक्ति और पृथ्वीमे लीन(शांत) नहीं हुआ धूल अवश्य मस्तकपर चढ़ता है । वह युद्धभूमि मानो महागजोंके मदजलसे मज्जन (स्नान) करने लगी, और चंचल चमरोसे प्रसृत मस्तके छलसे मानो नाचने लगी । निर्मल स्थलप्रदेश अधकारपूर्ण हो गये । दोनों सेनाओंके नेत्र धूलसे अवरुद्ध हो गये । उन्होंने अपने और परायेको न दृष्टते हुए इसप्रकार युद्ध किया जिसप्रकार कोई जड़मति (भूर्ख) जुगनुओसे (?) भिड जाये । हाथीके (द्वारा किये हुए) गलगर्जनको सुनकर किसी मटने दौड़कर वार किया; घोड़ेके हीसनेसे सवारको जानकर किसी योद्धाने पैनी की हुई धारवाले चक्रको छोड़ा । किसी धनुर्घरने घरघराहट करते हुए रथको जान लिया, और उसे (बाणोसे) ऐसा बीध दिया कि वह थर्रा उठा । किसीको हांक लगाते हुए कोई योद्धा किसी अन्यसे ही जा भिड़ा, और उसके धारपर वज्रदंडके समान लकुटि(लाठी) का प्रहार हुआ । सुभटोंके रुधिररूपी पयसे, हाथियोंके मदसे, और घोड़ोंके फेनके प्रवाहसे नमाया हुआ (अर्थात् गोला करके शांत किया हुआ) धूल, दूसरेको मैला (कलंकित) करनेवाला प्रबल श्वास (पर्याप्त सामग्री) देकर किसी दुर्जनके समान उपशांत हो गया ॥५॥

[६]

रणभूमिने रुधिरजन्य अरुणत्व अर्थात् लालिमाको धारण किया, और मूल-संछिन्न (पृथ्वीसे बिलकुल अलग कटा हुआ) रज आकाशमें ऐसा शोभायमान हुआ मानो पूर्णतया अंगाररूप हुए (निर्धूम) वैश्वानरका प्रारंभमें उठा हुआ धूम्र भ्रमण करता हो । रजका

३ क ऊ छंडिवि । ४ क ऊ णउं । ५ ख ग वि । ६ ख ग वलेण (?) । ७ ख ग वलाई या छलाई (?) । ८ क हिं; घ ऊ हिं, ख ग हत्थेहे । ९ क घ ऊ हिसिय ख ग हिसइ । १०. ख ग धरं । ११. क ईं । १२ क ड लवडि । १३. क ऊ लं । १४ क णु । १५ क मितं ।

[६] १. ख ग रणि । २. ख ग हवई । ३. क घ ड सछिण्णं । ४. ड तं ।

दूरयरोसारिय रथपसरे ^५	परिकलिप्र ^६ परोप्परु अप्प-परे ^७ ।
संवाहिय संदण भयरहिया	पञ्चारयंत पहरहि ^८ रहिया ।
५ थिरथक्क पडिच्छइ ह्त्थिह्त्थ	धावतिहि ^९ पडिगयघडहि झडा ।
वाहंति हणंति वाह कुमरा	खणखणखणंतकरवालकरा ।
विंधंति ^{१०} जोह जलहरसरिसा	^{११} वावल्लभल्ल कण्णियवरिसा ।
फारक्क परोप्परु ओवडिया ^{१२}	कौंताचह कौंतकरहि ^{१३} भिडिया ।

धत्ता—खंडियकयसिरउ रथभरथिरउ द्दहाहरु^{१४} रणु सरसन्वणु^{१५} ।

१० यं^{१६} नहखयचियउ निहुरहियउ कण्णाडविलासिणिजोन्वणु ॥ ६ ॥

[७]

रणं ^१ निविडभडथट्टसंचट्टसूरं	महाकल्लयलाराववज्जंततूरं ।
रणं सरिय-हुंकरिय-धाणुक्कचंडं	सटंकारकोवंडउडुंतकंडं ।
रणं घडिय-खडखडिय-तिक्खासिधार्	झडप्पंत-अंपंत-फारक्कफारं ।

प्रसार दूरतर अपसृत हो जानेपर, परस्पर अपने परायेको पहचानकर, (शत्रुपक्षके) रथियोको प्रहारोसे आह्वान करते हुए, निर्भय होकर रथ चलाये गये। एक ओरकी हस्तिसेना स्थिरतापूर्वक स्थित रहकर, दौड़कर आते हुए शत्रुगजोसे झड़पकी प्रतीक्षा कर रही थी। खणखण करते हुए करवाल हाथोंमे लेकर, राजकुमार -(अपने)- अश्वोको चला रहे, व (शत्रुसेनाके अश्वोको) मार रहे थे। योद्धा लोग जलधरोके समान बल्लम, भालों व बाणोंकी वर्षा करते हुए (परस्परको) वीध रहे थे। फारक्क (घस्य) को धारण करनेवाले एक दूसरेपर टूट पड़े, और कुंतवाले कुंत धारण करनेवाले प्रतिपक्षियोसे भिड़ पड़े। (योद्धाओंके) कटे हुए शिर, स्थिर (शांत) रज-भार (धूलि-विस्तार), (योद्धाओं-द्वारा क्रोधसे) दृष्ट-अघर और (योद्धाओंको लगे हुए) सचा-ब्रणों तथा आकाशमे पक्षियोंके समूहसे युक्त एवं निष्ठुर-हृदय(योद्धाओं)वाला वह युद्ध(स्थल)ऐसी कर्णाट-विलासिनोके यौवनके समान हो रहा या (सुरतक्रीडोपरंत) जिसके शिरपरके केश बिखरे हों, जिसका रजभार (रजस्राव अथवा रतभार अर्थात् सुरतक्रीडाका आविग) शांत हो गया हो, एवं रतियुद्ध (अथवा प्रणय-कलह) मे जिसके अघर काट लिये गये हों, और उनपर अभी भी सरस-ब्रण (ताजे घाव) विद्यमान हो, तथा जिसके कठोर स्तन नखलतसे युक्त हो ॥६॥

[७]

वह संग्राम संघर्षगूर महान् वीरोके समूहों और वजते हुए तुरोसे वडे भारी कोलाहलसे युक्त था। उच्चस्वरसे हुंकार छोड़नेवाले शत्रुघंरोसे वह बड़ा प्रचंड हो रहा था, और वहाँ टंकार करते हुए शत्रुघोसे वाण उड़ रहे थे। वह युद्ध आपसमे मिलकर खड़खडाती हुई तीक्ष्ण असिधाराओसे युक्त था, और वहाँ झपटे जाते हुए वड़े-वड़े फारक्क (घस्य) टूट रहे थे।

५. क ड रथपसरो । ६ क ड लिय । ७. क ड परो । ८. क ड रहि । ९. ट तिहि । १०. र ग निद्वति । ११. क ड प्रतियोमे वावल्ल वरिसा के पूर्व विहिवल्लिह परोप्परु नामरिना इनती अर्दपति अधिक है, ख प्रति मे भी यह पाठ है, परन्तु पीछे किसीके द्वारा लिन दिया गया है, और मुद् भी नहीं है । १२ क ड उव्व । १३. क करहि । १४ क दिटा । १५ र ग सह । १६ क न्है ।

[७] १ ख ग निवडं ।

रणं कुंतकोडीहुलिजंतजोहं विकृतं-परिचत्तं-तणुतागसोहं ।
 रणं पहरपव्वरिय-रुहिरप्पवाहं रणं लुणियमुहनालिवियलंतवाहं । ५
 रणं दंतित्तग्गभिज्जंतगतं रणं रत्तकणसित्तकयरत्तत्तं ।
 रणं मासवसगाससंचरियगिद्धं रणं सिरपरिक्खंत-हिंडंतसिद्धं ।
 भडो को वि रहसुवभडो रहि सखग्गो गिरिदे मइदो व्व उक्कमवि लग्गो ।
 भडो को वि दंतग्गो दाऊण पायं महाकुंभिकुंभत्थले देइ वायं ।
 भडो को वि जसलंपडो निग्गयंतो वल्लग्गो मयग्गो गुणक्क कमंतो । १०
 भडो को वि निज्जंतु नो जाइ सग्गो पयपेइ गिळ्वाणनारीण मग्गो ।
 न तां जामि ओसारि दूरे विमाणं रणे जा न भग्गं विवक्खस्स माणं ।
 घत्ता—मारिय सारिनरु भडु कौत्तकरु तणुभिन्नदंत अमुणंतउ ।
 करिणो मणि गणइ करिणो हणइ रणरक्खसु छलित धणुत्तउ ॥७॥

[८]

भडु को वि विसूरइ दलियसत्तु वहुपहरविहंडिल भूमिपत्तु ।

वह समर भालोंकी नोकपोर हूले जाते हुए योद्धाओं एवं शूरोके द्वारा परित्यक्त तनुवाणों (रक्षाकवचो) से शोभायमान था । वह संग्राम प्रहारोंसे झरते हुए सधिरके प्रवाह तथा काटी हुई मुखनाड़ियोंसे निकलती हुई वाष्पसे युक्त था; और वह युद्ध हाथियोंके दांतोंके अग्रभाग (नोक) से भेदे जाते हुए शरीरों, तथा रक्तकणोंसे सिंचकर रक्तवर्ण हुए छत्रोंसे भरा था । और वह समर मास व चर्बीके ग्रासके लिए संचार करते हुए गूदों, व (शबोंकी) कपाल परीक्षाके लिए भ्रमण करते हुए सिद्धों (औषधों) से व्याप्त था । कोई वेगमे उद्भट अर्थात् अत्यंत वेगवान् (फुर्तीला) योद्धा खड्ग लिये हुए उछलकर इसप्रकार रथपर जा चढता था, जिसप्रकार मृगेन्द्र कूदकर पर्वतराजपर जा चढ़े । किसी भटने दांतोंकी नोकपोर पैर देकर किसी महागजके कुंभस्थलपर आघात किया; कोई यज्ञके लोभसे (मैदानमें) निकलता हुआ योद्धा, प्रत्यंचाको टंकारता हुआ एक श्रेष्ठ खच्चरसे जा लगा । कोई भट स्वर्गमे ले जाया जानेपर, मार्गमें गीर्वाण नारियोंसे इसप्रकार कहकर नहीं जाता था—मे तबतक नहीं जाऊंगा जबतक रणमे शत्रुका मान भंग नहीं हो जाता; इसलिए (मुझे लेनेके लिए लाये हुए) अपने विमानको दूर हटाओ । कोई योद्धा गजपर्याणपर बैठे हुए सारि-नर (महावत ?) को मारकर हाथमें कुंत लिये हुए दांतोंसे विलक्षण (हस्ति) शरीरपर ध्यान न देते हुए, अपने मनमे (हाथी-को भी) हथिनी समझते हुए हाथीको मारकर एक धनुर्धारी रणराक्षस (युद्धपिशाच, प्रचंड योद्धा) को भी बंधना दे देता है ॥७॥

[८]

कोई भट शत्रुका दमन करके (स्वयं भी) प्रहारोंसे आहत होकर भूमिपर गिरता

२ क रणे । ३ क चिक्कंत, ख ग विकंतार । ४ क परिपत्तु, ख ग व परिवत्त; ड परिचत्तु । ५ ख ग लुलियं । ६ ख ग व दंतगि । ७ क ड हिडति । ८ क ड सुमडे । ९ क व ड मिवलग्गो । १० व देवि । ११ ड म्गो । १२ क व ड मयग्गो । १३ क व ड गुणक्क । १४ ड मग्गो । १५ क ख ग ड तो । १६ क भड । १७ क ड मिण्णं । १८ व अणुं । १९ क व ड ड, घ मणइ । २० क व ड णा । २१ क व ड इ । २२ व स । २३ घ ड धुणतड ।

हा महु वि हणतहो को विसेसु	जं बइरि न जायउ वंससेसु ।
नीसेणं नामिरिणु किर तिसुसु	महु सुवई नरणनिहाप्र मुकुं ।
रिउथायहिं पहु-किंकर-विहण	सुच्छंगय वेणिण वि भूमियत्त ।
५ . पम्भानिलेगं उम्मुच्छसाणु	पहु पेम्भस्ववि नण्णई सुहनिहाणु ।
तोडंगुं नियंतई दुह्यरेणं	वारिज्जइ गिट्ठ न किंकरेण ।
सिह विण्णउं समरिन वो वि सक्कु	सानियपसायारिणु संसु थक्कु ।
अंनावलि नियलहिं लद्धवंधु	डारियनणु निवडइ भडकवंधु ।
सिह सामिहं सहुं हियण विण्णु	सयसंहं पलासहं पलु पडणुं ।
१० जीविउ सुररमणिहुं महिहं वण्णुं	पाइक्कसरिसु को होइ अणु ।

धत्ता— करिकरकलियगलुं पयदलियनलु उर-सिर-सरोरसवचूरिउं ।

न मुणई पिउ कवणु सममरणनणु रणे सुहडकलत्तु विन्वरिउ ॥८॥

हुआ इमदरह सोच करता है—अहो ! मेरे भी (शत्रुओंको) मारनेका क्या वैशिष्ट्य जबकि वेरी बंध गोप नहीं हुआ। अपने धिरसे (अर्थात् गिर देकर) कोई भट स्वामीके ऋणसे निर्मुक्त (निर्मुक्त) होकर मरण-निद्रासे सेवितं होकर (निद्रित्त) सोता है। शत्रुके आघातसे स्वामी सेवकसे अलग हो गया और नूच्छित होकर दोनों ही भूमिपर गिर पड़े। पंखेकी हवासे उम्मुच्छित होने हुए स्वामीको देखकर एक सेवक ऐसा मानता है मानो उसे मुक्तका खजाना मिल गया हो। उसको आंतोंको तोड़ता हुआ गूढ भी इसप्रकारके दुःखमें लीन सेवकके द्वारा हटाया नहीं जाता कि दुःखमें धिर भी दिया तो भी स्वामीकी कृपाका ऋण गोप ही रह गया। जिसके पेटकी आँतें तक भी सांकन्ते जकड़ी गयी हैं, इनप्रकार विदोषं शरीर होकर किसी भटका बंधव (घड़) गिर पड़ा। (जिसने) हृदयके साथ-साथ अपना धिर भी स्वामीके लिए समर्पित कर दिया, और मांस सी-सी टुकड़े करके मांसभोजियों अर्थात् राजसोंके लिए दे दिया, जीवन मुररनणियाँके लिए, तथा पृथिवीके लिए अपना वर्ण अर्थात् यज्ञ-गाथा प्रदान कर दी, ऐसे पदातिके समान अन्य कौन हो सकता है ? गर्दन (स्वयंके द्वारा मारे गये) हाथोंके मूँडमें फंसी हुई, पैर हाथोंके पांव तले कुचले हुए, उरस्थल, गिर व संपूर्ण शरीर चूर-चूर किया हुआ—ऐसी स्थिति देखकर (प्रियतमके) माथमें मरनेकी भावनासे आयी हुई मुग्धप्रिया पहचान नहीं पायी कि प्रिय कौन है ? और शोक करती हुई बैठ रही ॥८॥

[८] १. व नीसेण । २. ल ग प्र मुणइ । ३. व मुकु । ४. ल ग गहि । ५. क ड वल्लि व, व किल्लि व । ६. क ड रत्तामिणियेण । ७. क ड ड पेक्किवि । ८. ल ग मरुड; व मरुई । ९. क ड व । १०. ल ग तड । ११. क ड परे । १२. व डं । १३. क ड सो । १४. व सेसवक्क । १५. व धरियं । १६. क ग हिं व ड हिं । १७. ल ग उहु । १८. क ल ग क हंडं । १९. क ड न्ह । २०. व पण्णु । २१. ल ग निहिं । २२. क ड व हिं । २३. क ड व वणु । २४. ल ग गणिकरलु । २५. क ड वन्धूरिउ । २६. ल ग व डं ।

[६]

उहयबलई^१ निचमरु जुञ्जतई^२
 उहयबलई^३ आवडियसूरई^४
 उहयबलई^५ भोडियधयछत्तई^६
 उहयबलई^७ पहरणनिचिभणणई^८
 वेण्णि वि वार-वार संघट्टई^९
 वार-वार जज्जरियमथंगई^{१०}
 वार-वार कपियत्तणुसाणई^{११}
 वार-वार रुहिरोहतरंतई^{१२}
 वार-वार आमिसवसगासई^{१३}

उहयबलई^१ संगरसमसत्तई^२ ।
 उहयबलई^३ भीसदियतूरई^४ ।
 उहयबलई^५ अबलवियसत्तई^६ ।
 रणदेवयहे^७ वे वि वलि दिण्णई^८ ।
 वार-वार कायरनर फट्टई^९ ।
 वार-वार तोरवियतुरंगई^{१०} ।
 वार-वार दुक्कंतविमाणई^{११} ।
 वार-वार मुच्छिरई भरंतई^{१२} ।
 वार-वार रसघवियपलासई^{१३} ।

घत्ता—वार-वार झरिहै^{११} लोहियसरिहै^{१२} १३ हयकरडिकरंकसिलायडे । १०
 वार-वार बलहि^{१४} पयडियछलहि^{१५} पक्खालिय पहुपरिहवपडे ॥६॥

[१०]

एरिसम्मि दुद्धरम्मि भोसणे रणे
 सुहडसंड-बाहुदंडमुंडंभंडिरे

गरुथनाय-दिण्णघाय-तुट्टपहरणे ।
 लुणियदं-क-जणियसंक-वाहुहिंडिरे^३ ।

[६]

दोनों सेनाएं घमासान रूपसे जूझ रही थीं। दोनों सेनाएं युद्धमें समान बलवाली थीं। दोनों सेनाओमें बुरबीर परस्परकी ओर बढ़ रहे थे। दोनों सेनाएं तुरोंके रवसे भयानक हो रही थी; एवं दोनों सेनाओंके योद्धा परस्परके ध्वज व छत्रोंको भग्न कर रहे थे; तथा पौरुषका अवलंबन लिये हुए थे। दोनों पक्ष आयुधोसे विदीर्ण हो रहे थे, और दोनों ही रणदेवताके लिए बलि चढ़ रहे थे। दोनों सैन्य बार-बार परस्पर संघट्टन कर रहे थे, व कायर लोग बार-बार फूट रहे थे, अर्थात् तितर-बितर होकर भाग रहे थे। बार-बार हस्ती जर्जर हो रहे थे, व घोड़े उत्तेजित। बार-बार शरीर-त्राण (रक्षाकवच) काटे जा रहे थे, एवं (मृत वीरोंको स्वर्ग ले जानेके लिए देवोंके)विमान उपस्थित हो रहे थे। बार-बार रुधिरके प्रवाहमें तैरते हुए लोग मरते समय भूकंचित हो रहे थे। बार-बार राक्षस आमिष एवं वसाको निगल रहे, तथा रक्त पी-पीकर प्रसन्न हो रहे थे। पुन-पुनः झरती हुई लोहित-सरिताके घोड़ों व हाथियोंके अस्थिनिर्मित शिलातटों पर सेनाओंके द्वारा अनेक प्रकारका चातुर्य प्रकट करते हुए, अपने स्वामीका पराभवपट घोषा जा रहा था ॥६॥

[१०]

इसप्रकारके उस दुद्धर व भोषण रणमें जहाँ कि बड़े भारी नादके साथ किये हुए आघातोसे शस्त्र टूट गये थे, और जहाँ कि सुभट-समूहके (कटे हुए) बाहुदंड व तुड बिल्हे हुए

[९] १. उभय^१ । २ क संतद, घ संतद, छ सगरसमंतद । ३. ख क बलय । ४ घ आवडिय, ड आवडिय । ५. क ख ग नीस । ६ क घ ड सत्यद । ७. छद । ८ क ड यधि; घ र्यहि । ९ क ड फुट्टई । १० क ड मईगद । ११. क वरहि घ झरिहि, ज्जरहि । १२. घ सरिहि । १३. ख ग करडे । १४. क ड बलहि । १५. ड छलहि । विशेष—इस कडवकमें क ख ग और ड इन चारो प्रतियोगे अधिककर बहुवचनके ई में अतमें होनेवाले गन्ध 'इ' से अत होते हैं। जैसे जुञ्जतद > तद, सूरई > सूरद, बलई > बलद इत्यादि ।

[१०] १. घ दित्त । २ क ड तुड । ३. क ड हुडिरे, ख ग वाहुडिरे ।

	खंडसुंडवेययंडं-चंडभिभले	करधरंत-नीसरंत-अंतचुंभळे ^६ ।
	रुहिरपंकस्तुतचकं-थक्कसंदणे	पत्तमोहं-पडियजोह-कडविमहणे ।
५	करि वं घडिय वे वि भिडिय-वद्धमूल	दुद्धदवणगयणगमण-रयणचूल ।
	वे वि खयर विज्जपवर-लच्छिलकख	इयगयंद णं मयंद खगानकख ।
	सुप्पमाणवरविमाण-नियडआय	वे वि वोर मेरुधीर दिण्णवाय ^७ ।
	जमनिहेण मणिसिहेण घाड दिण्णु ^८	वइरियाणु वंचमाणु खग्गु छिण्णु ^९ ।
	रिउ निरत्थु ^{१०} सुण्णहत्थु ^{११} नियविताम	जउ ^{१२} मुणेइ ^{१३} आहणेइ पुणु वि जाम ।
१०	खग्गखंडु चयवि ^{१४} चंडु ^{१५} पाविलण	थिरकरेण मोग्गरेण भामिळण ।
	पहड तासु मणिसिहासु सिग्गजाणु	धयसडंतु खडहडंतु गउ विमाणु ।
	नहे.ठिएण मणिसिहेण वच्छे मिण्णु ^{१६}	निसियघारु असिपहारु अरिहे ^{१७} दिण्णु ^{१८} ।

घत्ता—घाए^{१९} गयणगइ हुउ वियलमइ^{२०} कोलालोहालियवेहउ ।

सहइ विमाणवरे संज्ञावसरे अत्थइरिसिहरे^{२१} रवि जेहउ^{२२} ॥१०॥

ये, तथा जहाँ योद्धाओकी कटी हुई जांघ व बाहू शका (भय) उत्पन्न करते हुए घूम रहे थे, और जहाँ सूड कटा हुआ कोई हाथी प्रचंडतासे विह्वल एवं भयानक हो रहा था, तथा अपने सूंडको निकली हुई आंतोका खेहर बनाये हुए था, और जहाँ कि रुधिर-पंकमें चक्का फस जाने से रथ ठहर गये थे, तथा मूर्च्छित होकर पड़े हुए योद्धाओका मर्दन हो रहा था; ऐसे उस महा संग्राममें वे दोनों ही विद्याधर, दुष्टोका दमन करनेवाला गगनगति और (दूसरा) रत्नचूल (रत्नशेखर), मिलकर हाथियोंके समान वद्धमूल होकर अर्थात् जमकर भिड़ गये । वे दोनों ही प्रवर विद्याओके धारक थे, और (विजय)लक्ष्मीपर इसप्रकार अपना लक्ष्य दिये हुए थे जिसप्रकार नखोल्पी खड्गसे युक्त वह मृगेन्द्र जिसने गजेंद्रको मार डाला है । फिर सुप्रमाण (सुनिमित्त) उत्तम विमानोसे निकट आकर दोनों ही मेरुके समान धीर-वीर परस्पर आघात करने लगे । यमके समान रत्नशेखरने (गगनगतिपर) प्रहार किया और शत्रुको वंचना देते हुए उसका खड्ग खंडित कर डाला । इसप्रकार शत्रुको अस्त्ररहित खाली हाथ देखकर, अपनी जय मानते हुए जब तक कि वह पुनः आघात करे, तब तक गगनगतिने उस खड्गके टुकड़ेको छोड़कर, एक प्रचंड मुद्गर पाकर, उसे स्थिर हाथोंसे धुमाकर रत्नशेखरके शीघ्रयान-पर प्रहार कर दिया, तो ध्वजको गिराता हुआ वह विमान खड़-खड़ करता हुआ नष्ट हो गया । तब नभस्थित मणिशेखरने पैनी की हुई धारवाले तलवारसे शत्रुके वक्षस्थलको चीरता हुआ प्रहार किया । आघातोसे गगनगति विकलमति अर्थात् विह्वल, और लोह-सुहान शरीर हो गया, तथा संध्याके समय अपने विमानमें बैठा हुआ वह ऐसा शोभायमान हुआ जैसा अस्ताचल पर सूर्य ॥१०॥

४ क वेपयडं । ५ ख ग रमले । ६ क खुम्भचक्क । ७ घ घत्ता । ८ ड करिउ । ९ क घ ट दुद्धदमणं । १० घ चू । ११ क डंत्थ । १२. घ सुणं । १३ क जइ । १४ क घ ड मं । १५. क ट चइवि । १६ क चड । १७ क घ हि, ड हि । १८ क घाए । १९ क ड विमलं, घ गड । २० क ड अत्थवरिं । २१ घ उं ।

[११]

सक्तिवाणु रयणसिहु^१ वणिगत्तु^२ गयणंगाउ रणभूमि पत्तु ।
 एत्थतरे पाइहि^३ पहु निएवि^४ पडिगाहिउ नियसेणे^५ नएवि ।
 करि हुकु^६ सपहरणु^७ सरिउ गुडिउ^८ विजाहरवइ लहु तेत्थु चडिउ ।
 तहि^९ काले मियके^{१०} मुक्खोहु पुच्छिज्जइ नियकरिखंघरोहु^{११} ।
 इय कवणु गयणे जुञ्जिय-सलेव आरोहु भणइ^{१२} विण्णवमि^{१३} देव । ५
 प्रहु हयविमाणु जो भूमि आउ सो सत्तु रयणसिहु^{१४} खयरराउ ।
 वीयउ पुणु अवसर^{१५} मुणिय-त्तु गयणगइ तुम्ह मेहुणेउ^{१६} पत्तु ।
 दीसइ विमाणु^{१७} मुच्छावसंगु^{१८} नित्तिसपहारविचारियंगु^{१९} ।
 घत्ता—संभावियसयणु निसुणिवि^{२०} वयणु आरोहनरेण संसाहिउ^{२१} ।
 उम्मुहलोयणेण^{२२} विभियसेणेण^{२३} सविसेसु मियंके चाहिउ ॥११॥ १०

[१२]

परियाणवि^१ फुडु नेहट्टिएण गयणगइ पसंसिउ पत्थिवेण ।
 इयरेण^२ सरिसु किर^३ को य^४ वंधु को बिहुरमहाभरे देइ खंधु ।

[११]

रत्नशेखर धायलशरीर (ब्रणितगात्र) होकर अपने कृपाणसहित, आकाशसे भूमि-पर आ गया। इसके अनंतर पदातियोने अपने स्वामीको देखकर अपनी सेनामे ले जाकर स्वागत किया। वहाँ स्मरण करनेसे कवच व शस्त्रोंसे युक्त हाथी उपस्थित हुआ, और विद्याधरपति (रत्नशेखर) शीघ्र उसपर चढ़ गया। उस समय मृगांक राजाने अपने क्षोभरहित महावतसे पूछा—आकाशसे दर्पपूर्वक युद्ध करके आनेवाला यह कौन है? तब सवार (महावत) ने कहा—देव! विज्ञापन करता हूँ कि यह जो हत-विमान होकर भूमिपर आया है, वही तो हमारा शत्रु खेचरराज रत्नशेखर है; और वह दूसरा अवसर तथा वृत्तांत जानकर तुम्हारा साला गगनगति आया है। वह निर्दय प्रहारोसे विदीर्णशरीर होकर विमानमें मूर्च्छित पड़ा हुआ दिखाई देता है। महावतने जो कहा, उसे सुनकर और स्वजन (गगनगति) को जानकर आकाशकी ओर आले उठायें हुए मृगाकने विगेषरूपसे (उसके लिए शुभ) कामना की ॥११॥

[१२]

इस बातको जानकर (गाढ)स्नेहवश राजा मृगांकने गगनगतिकी इसप्रकार प्रगंसा की—इसके समान दूसरा कौन मेरा वंधु है? महान् आपत्तिमे कौन कंधा (सहारा) देता है, घनी

[११] १. व^०सिहु । २. क ख ग ड^०सत्तु । ३. क घ पायहि, ङ पायहि । ४. ङ णएवि । ५. घ^०सिन्ने । ६. ड हुकु । ७. क^०रण । ८. क ङ यारि, घ सारि । ९. ङ उडिउ । १०. ग ङ तहि । ११. ङ मयके । १२. व^०खडरोहु । १३. ख ग घ ङ^०इ । १४. व विण^० । १५. ख ग^०सिहु । १६. व^०सर । १७. ख ग घ^०णउ । १८. क ङ^०णु । १९. क ख ग ङ^०यसंगु । २०. क ङ^०अगु । २१. क ख ग घ^०णिय । २२. ख ग घ ङ^०सा । २३. क ङ जम्मुह^०, ख ग ज मुह^० । २४. क ङ^०मणिगा ।

[१२] १. क घ ङ^०णिवि । २. ख ग इयएण । ३. क किय । ४. क के य; ख ग घ कवणु ।

फलहीणु वि^१ वरतरु छायाबहुलु^२ मं^३ बिडु^४ कज्जरियव^५ होइ सहलु ।
 हियएण सरिसु^६ जसु नरिय मित्तु^७ तहो रज्जु रज्जुबंधणनिमित्तु ।
 सुदिपहरदुक्खु^८ असहंसएण चोइ^९ गइदु^{१०} केरलनिवेण^{११} ।
 वलु-वलु^{१२} इकारिच रयणचूलु रे रे बड्डारिच^{१३} कलहमूलु ।
 थामेण जेण लंघिउ^{१४} समुद्धु विद्धसु हेसि इंसिउ रउद्धु ।
 आसंचवि^{१५} मइ^{१६} मगहि^{१७} कुमारि लइ पहरु सेण तउ करमि मारि ।
 अठिमट्टु^{१८} खयरु कडुवयणविद्धु^{१९} चोइय^{२०} मयंगु धुण्वतच्चिधु ।
 १० वत्ता-तवखणे^{२१} ओवडिय^{२२} पेक्खिवि मिडिय रहकरितुरंग संकिण्णइ^{२३} ।
 निम्मलु^{२४} छलु धरिवि^{२५} रणु परिहरिवि ओसरियइ^{२६} विणिण वि सेणइ^{२७} ॥१२॥

[१३]

तओ करि विणिण वि^१ मेल्लियधाव^२ परिट्टिय^३ राय-चडावियिचाव ।
 बलुद्धरैकेसरिविक्कमसार रसडिडय-कडिडय-संगरभार ।
 रणंगणसंगविलासियवच्छ छणिणुसमाणवराणणदच्छ ।

छायासे युक्त उत्तम वृक्ष फलहीन होने पर भी क्या कार्यार्थी विटके लिए सफल नहीं होता ? जिसका अपने हृदयके जैसा मित्र नहीं है, उसके लिए राज्य केवल एक रज्जु बाधनेका ही निमित्त है । सुहृदके ऊपर किये हुए प्रहारके दुःखको नहीं सहते हुए केरलनृपने अपने गजेंद्रको प्रेरित किया; और वापिस आओ ! वापिस आओ ! कहकर रत्नचूलको आह्वान किया । अरे ! अरे ! तूने बड़ा कलहका कारण बढ़ा रखा है । जिस स्थानसे समुद्र पार किया उस स्थानपर तूने देशको विध्वंस करके अपना रौद्ररूप दिखलाया । तू अव्यवसाय करके (अर्थात् बलपूर्वक) मुझसे राजकुमारीको मांगता है, ले ! मेरा प्रहार ले ! इससे मैं तेरी मृत्यु कर डालता हूँ । ऐसे कटुवचनोसे बिचकर ध्वजा उड़ाते हुए अपने मार्तंगको प्रेरित कर वह खेचर (रत्नखेचर) (मृगांक राजासे) भिड़ गया । उस समय उन दोनोंको एक दूसरे पर झपटकर भिड़े हुए देखकर, रथ हाथी और तुरंगोंसे संकीर्ण दोनों सेनाएं निर्मल चातुरी करके युद्ध छोड़कर अलग-अलग हट गयी ॥१२॥

[१३]

तब उन दोनों राजाओंने हाथीपर स्थित होकर चाप चढाये हुए (एक दूसरे पर) धावा बोल दिया । वे दोनों ही प्रचंड बलको धारण करनेवाले केशरीके समान विक्रममे श्रेष्ठ, युद्धके रसिक व अनेक संग्रामोंके भारको खीच लेनेवाले थे । उनके वक्षस्थल रणांगन (युद्धभूमि) के साथ विलास करनेवाले थे, और उनके सुंदर मुखोंका तेज पूर्णचंद्रमाके समान था । उन्होंने डोरीकी

५. ख ग जे । ६. क घ ङ बहलु । ७. क घ ऊ त । ८. क विड । ९. ख ग घ ङ विउ । १०. ख ग घ ङ वर ।
 ११. क ङ चोविउ । १२. क ङ गयदु । १३. क घ ङ केरण । १४. क च लु च लु । १५. घ ङ विउ । १६.
 क ङ य । १७. क ङ विवि, ङ ङ विवि । १८. क मइ । १९. ख ग ग हि । २०. क ङ आमिट्टु । २१. ख ग
 वयणु । २२. घ चोइउ । २३. क घ त खणे । २४. घ ओवडिया; ङ उचडिया । २५. क ङ ण्णइ,
 घ ङ इ । २६. क ङ ल । २७. ख ग घरवि । २८. ख ग यइ । २९. घ तिस्रइ ।

[१३] १. क ङ मि । २. क मेल्लियइ । ३. ख घरट्टिय, ग घएट्टिय । ४. क बलुद्धर ।

टणक्कियदोर-निवेशियकंड
 डसत्ति नियाहर निट्टुरचित्त
 तण^१ व्व गणंति^२ परोप्परु कुद्ध
 धसक्किय घायहिं^३ विणिण^४ वि सेण^५ ।
 न जाणहुं^६ संसणु थक्क^७ वरच्छि
 घत्ता—खंड-खंडु^८ गयइ^९ पहरणसयइ^{१०}
 दोहिं^{११} मि समवलइ^{१२}

डरावियवइरि^१ हणंति^२ पयंड ।
 तमारिकरेहिं^३ पसेयपसित्त ।
 धराधरधीर-जयासयलुद्ध !
 नहंगणि देव वि दूरि पवण्ण ।
 छिवेइ न एकु वि मज्झणु लच्छि ।
 धय-विघ^४ कवय-सीसकइ^५ ।
 पर-केवलइ^६ नीसंगइ^७ अंगइ^८ थकइ^९ ॥१३॥ १०

[१४]

खयरें^१ जिणिवि न सक्किड जामहिं^२
 घणु वाज्जलि धूलि दावानलु^३
 विज्जावलेण तिमिरु लप्पायउ
 नहु गडयडइ धरणितलु फट्टइ^४
 करणु देवि सत्यइ^५ समचाइउ^६
 एम विर्यंभिवि^७ भडसदुल्ले^८

मायाजुज्जु पसारिउ तामहिं^१ ।
 गज्जइ पलयजलहिं^२ पसरियजलु ।
 तिन्वतएण भुवणु संताविउ ।
 कुम्भकडाहु जेणु निन्वट्टइ^३ ।
 धरिउ मियंकु राउ करि वाइउ^४ ।
 वद्धु मियंकु^५ राउ मणिचूले^६ ।

टंकार की, व उसपर बाण चढ़ाया एवं वैरियोंको डराकर (वाणोसे) प्रचंड मार करने लगे । दोनों ही निष्ठुर चित्त होकर अपने अधरोंको (क्रोधसे) काट रहे थे, व सूर्यकी किरणोसे पसीनेसे सिंच गये थे । परस्पर क्रुद्ध हुए वे दोनों एक दूसरेको तुणके समान गिन रहे थे, तथा धराधर अर्थात् पृथ्वीको धारण करनेवाले पर्वतके समान वीर एवं विजयाभिप्राय(अर्थात् विजय प्राप्ति)के लोभी थे । उनके आघात-प्रत्याघातोसे दोनों सेनाएं भयभीत हो गयी, और गगनांगनमें देव भी दूर हट गये । न जाने इनमें-से कौन विजयी होगा, इसप्रकारके संशयमें पड़ी हुई सुंदर आँखोंवाली विजयलक्ष्मी दोनोंके मध्यमें-से किसी एकको भी नहीं छू रही थी । सैकड़ों आयुध, ध्वजा-पताकाएँ, कवच और शिरस्त्राण खंड-खंड हो गये । दोनों ही समान रूपसे वल्लशाली, विलकुल अकेले-अकेले अपने-अपने शरीरके प्रति विलकुल निःसंग भावसे युद्धमे डटे रहे ॥१३॥

[१४]

जब खेचर जीत नहीं सका तो उसने माया-युद्धका प्रसार कर दिया । बादल, आंधी, धूल और दावानल (सब एक साथ) जलके प्रसारयुक्त प्रलयजलधिके समान गर्जन करने लगे । रत्नशेखरने विद्याबलसे अंधकार उत्पन्न कर दिया, और तीव्र आताप (दाह) से सारे भुवनको संतप्त कर डाला । आकाश गड़गड़ाने लगा और धरणीतल फटने लगा, जिससे (पृथ्वीको धारण करनेवाले) कूर्मका पीठरूपी कड़ाह उलटने लगा । पैतरा देकर उसने वलवान् मृगांक राजाको तो पकड़ लिया, और उसके हाथीको घायल कर दिया । इसप्रकार उत्कट साहसके द्वारा उस भटशार्दूल रत्नशेखरने मृगांक राजाको बांध लिया । फिर उसको उठाकर

१. क ड वैरि । २. क ख उ त । ३. क ड त । ४. क ड त । ५. ख ग वेण । ६. क ड विसण्ण ।
 ७. क ड हु, ख ग हो । ८. क ड थक्क । ९. क ड हु । १०. क ड चिडु । ११. क ड वकइ । १२. क ख ड वोहि । १३. क पखेवलइ । १४. ख इ ।

[१४] १. क ड । २. ख ग व हि । ३. क ड णलु । ४. ख ग घ जलहिं । ५. क ख ड तिन्ववण्ण । ६. ख ग कु । ७. क ख लणाइ । ८. क ड ट्टइ । ९. क घ ड म । १०. क घ ड वाइउ । ११. क ख ग ड घायउ । १२. ख ग भिय । १३. ख ग लइ । १४. ख म ।

- घञ्जि^{१५} नियकरिवरि^{१६} च्चाइवि
 कडयहो वाहिरि इय रणु बट्टइ
 अवमंतरि^{२२} पुणु जंबुकुमारं
 १० जे अन्विभट्ट^{२४} महावहिनियडहो^{२५}
 जुञ्जमाण ते दिसिहि^{२६} भमाडिय
 चलणलुलंत-अंतगुप्फाविय^{२८}
 रहिरि^{३०} कुसुंभण सच्च वि राइय^{३१}
 रणवसुमइसेज्जहि^{३२} सोवाविय
 १५ यत्ता—पडिभइअसिवसेण^{३५} खडियाकसेण^{३६} रणमहिकडित्त^{३७}-विस्थिण्णउ^{३०}।
 अंकनिरंतरओ सकलंतरओ वीरेहिं सामिरिणु दिण्णउ^{३८} ॥१४॥

इय जंबूसामिचरिणु सिंगारवीरे महाकब्बे महाकड्वेवयत्तसुयवीरिवरिणु उहय-
 बलसंगामो^{३९} नाम^{४०} छट्टो संघी समत्तो^{४०} ॥ संघिः ६ ॥

(अपने) हाथीपर डाल लिया, और अपने भुजबलकी श्लाघा करके तुरंत (वहासे) चल पड़ा। छावनीके बाहर इसप्रकार युद्ध हो रहा था, फिर भी सुभटोंका चित्त (अपनी-अपनी) विजयकी आशा नहीं तोड़ (छोड़) रहा था। और उधर छावनीके भीतर स्थिर-भुजबलशाली व खड्ग और फलक (डाल) को धारण करनेवाले उस कुमारके द्वारा उस महा(योद्धा-सुभटके सन्निकट जो अष्टसहस्र विद्याघर आकर भिड़े, वे सबके सब युद्ध करते हुए पैनी तलवारके आघातसे आहत करके दिशाओमें घुमा दिये गये (अर्थात् चारों ओर भगा दिये गये व तित्तर-बित्तर कर दिये गये)। उनके पैर काट लिये जानेसे (बाहर निकली हुई) आंतोंके गुल्फ बन गये, और विद्याघर सैनिक बसा एवं नसोंके कर्म्ममे निमग्न कर दिये गये। सभी रुधिरके रंगसे रंग दिये गये, तथा खेचरोंके कबंघ(घड)रूपी भृत्य नचा दिये गये। वे रणभूमिकी शय्यापर सुला दिये गये, एवं भटोकी सैकड़ों सीमंतिनियां खला दी गयी। जिसप्रकार हारते जानेसे जूएके फलक-पर निरंतर बढ़ती हुई ऋणसूचक संख्याओंको सव्याज चुकाकर खडियासे मिटा दिया जाता है, उसीप्रकार रणभूमिरूपी फलकके समान विशाल (महात्) और निरंतर अंकोंवाले अर्थात् सतत बढ़ते हुए स्वामीके ऋणको वीरोने सव्याज चुकाकर शत्रुभटोकी (उनको मार-मारकर छोनी हुई) तलवाररूपी खडियासे घिस दिया (अर्थात् मिटा दिया) ॥१४॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा चिरचित्त 'जंबूस्वामीचरित्र' नामक इस श्रंगार-वीर-रसालम्बक महाकाव्यमें दोनों सेनाओंका संग्राम नामक यह पद्य संघि समाप्त ॥ संघि ६ ॥

१५. घ घत्तिउ। १६ क ड पुणु करिवर। १७. घ भुयं। १८ ख ग तं पेविषववि। १९. र ग ल ड्ह।
 २०. र ग घ चित्त। २१. ख पिट्टइ। २२. ख ग अन्विभं। २३ र ग व फर। २४. प्रतियोमं 'महावह'।
 २५. क णिविडहि; ख ग नियडहे; ड णिविडहु। २६ क हि। २७. क ड पहारहि। २८. क घ ड
 पुप्पाविय। २९. घ इय। ३०. क ड रहिहं। ३१. क ड राविय। ३२. क ड वसुमइ मेज्जहि, र
 सेज्जहे, घ सिज्जहि। ३३. ख ग सीमत्तिण। ३४. क ड पडिभइ अमिवसण, घ असिवसिण। ३५. क ग
 ड कसिण। ३६. क रणमडिं; ग रणमज्जिं। ३७ क ख ड विच्छिं, घ विच्छिन्नउ। ३८. घ दिन्नउ।
 ३९. र ग वल-समागमो। ४०. क व ड छट्टा इमा संघी ॥ मवि. ६ ॥

[१]

चिरकङ्कवामयमुहाणं रुद्रभंगरसणाणं^१
 सुयणाणं^२ मय वि कयं^३ अल्लयकसरकउकव्वं^४ ॥ १ ॥
 अत्थाणुरुवभावो^५ हियंए पडिफुरइ जस्स वरकङ्गो^६ ।
 अत्थं फुड्ढं^७ गिरइ निरा^८-ललियक्खरनेम्मिएहिं^९ तस्स नमो^{१०} ॥ २ ॥
 भावो तारो^{११} दूर^{१२} अत्थस्स वि लडहमंडणं^{१३} दूरे । ५
 पयडेवि कहाकहणे^{१४} अण्णं चिय का वि सा भंगो^{१५} ॥ ३ ॥
 इयं^{१६} पाडिय खयरवळे निमुणियं^{१७} सयले दीसइ न को वि थिरसत्तडं^{१८} ।
 असिदाढप्रं^{१९} धरेवि^{२०} जगु संघरेवि खयकालु व वालु नियत्तडं^{२१} ॥ ४ ॥
 वोळवि^{२२} खंधारु न जाइ जाम निज्जीणउ वलु रणे दिट्ठ ताम ।

[१]

जिनके मुख प्राचीन कवियोंके काव्यामृतसे अतिशय भरे होनेसे, उनकी रसनाओंका रुचि भंग हो गया है, ऐसे सज्जनोंके (स्वादको बदलनेके) लिए मेरे द्वारा भी आर्द्रक (आदी)के फूलकी कलीके समान भिन्न व चटपटे स्वादसे युक्त यह काव्य रचा गया ॥ १ ॥ जिस श्रेष्ठ कविके हृदयमें अर्थानुरूप भाव प्रतिस्फुरित होता है, और जिसकी नितांत ललिताक्षरोंसे परिमित (निर्मित) वाणीसे अर्थ स्फुट होता है (अर्थात् स्पष्टतासे प्रकट होता है), उसके लिए नमस्कार है ॥ २ ॥ (काव्यमें) अति ऊँचा भाव (स्थापित करना) बहुत दूर (दुष्कर) होता है; अर्थका सुंदर (व सुकोमल और चतुर) मंडन और भी दूर (दुष्करतर) होता है; इन दोनोंको प्रकट कर (अर्थात् अति ऊँचा भाव और अर्थका सुंदर कोमलकांतपदावलीसे मंडन करके) कया कहनेकी वह कोई अन्य ही (अद्भुत) विधा है ॥ ३ ॥

इसप्रकार खेचर सैन्यको मारकर गिरा दिया गया, यह सुनकर सब विद्याधरोंमेंसे वहाँ कोई भी स्थिर-सत्त्व अर्थात् धैर्यको स्थिर रख सकनेवाला दिखाई नहीं दिया। अपनी तलवाररूपी दाढमे पकड़कर, (विद्याधर) लोगोंको मारकर, प्रलयकालके समान वह बालक वापिस लौटा ॥ ४ ॥ जबतक जंबूकुमार स्कंधाधारको पार करके जा भी

[१] १. क ङ चिरकवि; क ख ग ङ कव्यामयमुहेण; घ कव्वममेयं। २ क रडभंग; घ रडभंगं वि सरसणाणं। ३. क ङ सुदणेण, ख ग सुएणेण। ४. क ख ग ङ कए। ५. घ अल्लयसकरजियं कव्वं। ६. ख ग ङ अत्थाणं। ७ क ख ग ङ वीरकङ्गणा, घ वइकङ्गणा। ८. घ पि। ९. घ मे 'निरा' नहीं। १०. घ ललियक्खरोहिं नेम्मिए। ११. क ख ग ङ भणो। १२. क ख ग ङ ता, घ तारे। १३. क ख ग ङ दूरयर; घ में 'दूर' नहीं। १४ घ 'वण्णणं'। १५ क ङ में इस पंक्तिके उपरांत एक अधिक पंक्ति इस प्रकार है—इययरे चले णिज्जण सयले दीसइ न को वि थिर थिर मत्त। १६ क ङ अणाविय सा भंगो। १७. क घ ङ में 'इय' नहीं। १८ ख ग झुणे; घ झुणि। १९. क ङ कोइ। २० क ङ 'मत्तड'। २१ क ङ 'वाडइ, घ 'दाडइ'। २२ क ङ धरवि। २३. ख ग घ विहं। २४. ख ग वालु वि ।

- १० ^{२५}रुहिरनइसोत्ते छत्तइ^{२५} तरंति
^{२७}सं-तिचिचिचभूयइ^{२८} रमंति
 सिव-घार^{३१}-गिद्ध-वायस^{३२} भमंति
 कथइ^{३३} भहु पडिउ पसारिचंगु
 तं नियवि^{३४} गाढठियलउडिहत्थु
- १५ भहु को वि पडिउ दिट्ठीकरालु
 कर^{३८} कहिं मि^{३९} भडहो मणिवलयवंतु
 तं सेवइ^{४०} डाइणि नरवसाइ^{४३}
 फाडियकुंभत्थल^{४६} दिण्णसंक्^{४७}
 कथइ^{४८} विहत्थपल्लानसार^{४९}
- २० खंडियधुर-संदण-मोडियक्ख
 घत्ता—चितइ चरमतणु किउ केण रणु
 सइइ भयावणउ^{५४} वहरसघणउ^{५५} णं वइवसभोयणमंदिरु ॥ १ ॥
- मत्थिक्कमास-^{३६}वसवह झरंति^{३७} ।
 डाइणि^{३८}-वेयालसयइ^{३९} कर्मति ।
 मच्छियसंधायइ^{४०} छमछमंति ।
 मुग्गरपहारहउ^{४३} अकयवंगु ।
 आसण्णु न हुक्कइकायसत्थु ।
 जाणइ^{४६} जियंतु वीहइ सियालु ।
 चञ्चंतिह^{४९} भग्गु डसंति^{५०} दंतु ।
 भल्लंकिमुहाणलसम^{५३}-रसाइ^{५४} ।
 कपियकर दीसहिं करिकरंक ।
 पल्लहत्थ^{५७} तुरंगम सासवार ।
 निव्वट्ठिय दीसहिं^{५९} हेइ^{६०} लक्ख ।

नही पाया, तबतक उसने रणमें विजित हुए सैन्यको देखा । वहाँ रुधिर नदीके स्रोतमे छत्र तैर रहे थे, तथा मथित हुए मांस और बसाके प्रवाह (झरने) झर रहे थे । भूत-पिशाच संतृप्तचित्त होकर आनंद मना रहे थे, और सैकड़ो डाकिनियां व वैताल उछल-कूद मचा रहे थे । शृगाली, चील, गिद्ध और वायस(कौवे) मंडरा रहे थे, व मक्खियोंके झुंडके झुंड भिन-भिना रहे थे । कहीं कोई भट अपने शरीरको पसारे पड़ा था, जिसके अवयव मुद्गरके प्रहारसे आहत होनेपर भी विकृत नहीं हुए थे । उसके सुदृढ़ लकुटियुक्त हाथको देखकर काकसमूह पासमें नहीं आता था । कोई भट आँखोको भयानकतासे फाड़े हुए पड़ा था, उसे जीवित समझकर सियार भयभीत हो रहा था । कहीं किसी भटके मणिवलय-युवत हाथको काटकर चबाती हुई शृगालीके दात ही टूट गये थे । वहाँ कोई डाकिनो मनुष्योंको बसा तथा शृगालीके मुखानलके समान लाल-लाल रसाओ (रक्तवाहक घमनियो)को से रही (अर्थात् खा रही) थी । कहींपर विदीर्ण कुंभस्थलोसे ञका (भय) उत्पन्न करनेवाले तथा सूँड़ कटे हुए हाथियोंके घड़े पड़े हुए दिखाई दे रहे थे । कहींपर जिनके श्रेष्ठ पर्याण (पलान) जुदा हो गये थे, ऐसे घोड़े सवारोसहित मरे पड़े थे । कहींपर भग्न-धुरा और टूटे हुए जूएवाले लाखों रथ उलटे हुए एवं हेतित नामक वास्त्र पड़े हुए दिखाई दे रहे थे । तत्र वह चरमशरीरो (इसी जन्ममे निचघपसे मोक्ष जानेवाला) कुमार सोचने लगा—किसने ऐसा युद्ध किया है, जो हाड़ो व रंडों (घडों) के विस्तारसे युक्त होनेसे ऐसा लग रहा है, मानो यह वैवस्वत(यमराज)का हाडों व रंडोंसे वैभवशील, भयानक एवं बहुत अधिक रक्तरूपी रससे युक्त भोजनगृह ही हो ॥ १ ॥

२५ क ड नइसोनिच्छत्तइ । २६ ग वस पत्तरति । २७ क र ग ट मंतत्त । २८ क ड नूग्ग । २९ ड डायणि । ३० क ड वेयालइ तइ । ३१ स ग घाय, ट घार । ३२ क ट वाडम । ३३ र ग मघायड । ३४ क ड वि, घ ङं । ३५ क ट हूउ । ३६ क ड गाटवियं । ३७ क ड ङं । ३८ क ड कहु वि, व कहो वि । ३९ क ड तिहिं, स ग तिहिं, व तिहिं । ४० म टमति, घ ट टमति । ४१ प ति । ४२ क ड सेयइ । ४३ ग ड वमाड, घ वमाए । ४४ व ट मुहाणलं, र ग महाणलं । ४५ क ड रसाइ । ४६ स पाडियं । ४७ घ दित्तं । ४८ व ङं । ४९ र ग घ त्रित्तं । ५० घ पण्ण । ५१ स ग हिं । ५२ स ग रहे य । ५३ क घ ट हेय, क ट विच्छत्ति । ५४ घ णउ । ५५ र ग ङं ।

[२]

जंतेण रणगणमञ्जरे तेण
 बहुपहरणसम्बणवाहणाई
 एकहि^४ बले सुम्मइ^५ विजयसद्दु
 एकहि^६ बले मंगलतूरवज्जु
 एकहि^७ बले छत्तई भावियाई^{१०}
 एकहि बले चिंधई^{१२} उन्निभयाई^{१३}
 अवलोयई^{१४} विभियचित्तु जाम
 दीसइ कुमार^{१५} जयसिरिय संगु^{१६}
 सरसवसोहालियमंडलगु
 अहोअहो कुमार^{१७} पई^{१८} मुयवि^{१९} कवणु
 बरि एकु जि केसरि नहरसार^{२४}
 बरि एकु जि दिणमणि गयणपवहु^{२५}
 बरि एकु जि बडवानलु^{२९} विरूहु
 बरि एकु जि गरुहु^{३०} झडप्पसालु

दिट्ठाई^१ नवर दूरंतरेण ।
 मुयसेसई^३ वेणिण वि साहणाई ।
 अण्णेकहि^५ हा-हा-रव^६ निनदुदु ।
 अण्णेकहि रोविज्जइ संलज्जु ।
 अण्णेकहि^{११} पुणु मडलावियाई । ५
 अण्णेकहि^{११} महिहि^{१२} निसुभियाई^{१३} । ७
 सविमाणु गयणगइ आउ ताम ।
 रिउरुहिरतुसारतिडिकियंगु ।
 विज्जाहरु तो वण्णणह^{१९} लग्गु ।
 एक्केल्लउ^{२४} जि बहुखयरदवणु^{२५} । १०
 मं करिमेलावउ गज्जिफारु^{२५} ।
 मं सं^{२७} खज्जोययकीडनिवहु^{२८} ।
 मं सं^{२७} रयणायरजलसमूह ।
 मं विसहरसंघु^{३१} महाफणुलु^{३२} ।

[२]

जाते हुए उसने समरांगणमें दूरसे ही बहुत प्रहारीसे घायल हुए वाहनो(हाथी, घोड़े आदि)वाली दोनो मृतप्रायः (मृतशेष, मृतकशेष) सेनाओको देखा, (और देखा कि) एक सेनामें विजय (सूचक) शब्द सुनाई पड़ रहे थे, दूसरी ओर हाहाकारका निनाद हो रहा था; एक सेनामें मंगलतूर्य बज रहा था, दूसरी ओर लज्जापूर्वक रोया जा रहा था; एक सेनामें छत्र लगाये जा रहे थे, दूसरी ओर संवलित किये जा रहे थे; एक सेनामें ध्वजचिह्न उड़ रहे थे, व दूसरी ओर पृथ्वीपर गिरे हुए थे; जब तक कि वह विस्मितचित्तसे यह सब देख ही रहा था, तब तक विमानसहित गगनगति आ गया। विजयश्री-समवेत जंबूकुमार रिपुओके रुधिरकर्णोंके छींटोंसे युक्त दिखाई दे रहा था। तब सर्षप (सरसो)के समान नील शोभावाले तलवारसे युक्त वह विद्याधर (इसप्रकार) कुमारके वर्णन (स्तुति) में लग गया—धन्य हो कुमार! तुम धन्य हो! तुम्हें छोडकर दूसरा कौन अकेला ही अनेक खेचरोका दमन करनेवाला है? नखोंके पराक्रमसे युक्त एक केशरी ही श्रेष्ठ है, महान् गर्जन करनेवाला हाथियोका मेला (झुंड) नहीं। गगनमें प्रवहमान एक दिनमणि (सूर्य) ही श्रेष्ठ है, खद्योतक कीड़ोका बहुत बड़ा समूह नहीं। बड़ा हुआ एक बडवानल ही श्रेष्ठ है, रत्नाकर(सागर)का अतिशय जलसमूह नहीं।

[२] १ क दिट्ठइ । २ ख ग वारं । ३ क सिसइ, ड मुयं । ४ घ हिं । ५. ख घ डं ।
 ६. घ अन्निकहिं । ७. क ड रउ । ८ क ड णिणदुदु । ९ क ड वज्ज । १० घ मामिं । ११. ख ग घ
 वकहिं । १२. क ख ग ई । १३ ड थाइ । १४. ख ग घ हिं । १५ क घ ड लोयइ, ख ग लोवइ ।
 १६. ख ग सिरिपसगु । १७. क ड तिरिवकं । १८. ख ग सरसवं । १९ ख ग णह; घ वज्जणह । २०. क
 पइ । २१ क ड मुइवि । २२. क घ ड एकं । २३. घ वरखयरं, क घ ड दमणु । २४. क णहहं ।
 २५. ग पारं । २६ क ड पहु, ग प्पवहु । २७. क ख ग घ म । २८. क घ ड खज्जोवयं, ग
 खज्जोइयं । २९ क ड णलु । ३०. क ड डं । ३१ क ड विसहइं । ३२ क ड फडालु ।

१५ घत्ता—अट्टसहसपरहं^{३३} विज्जाहरहं एकल्लएण पइ^{३४} रणे पहय ।
अम्हइ^{३५} काउरिस^{३६} इय वलसरिस एवडावत्थहे^{३७} पुणु गय ॥२॥

[३]

तउ द्वावालावपयट्टं^{३८} समरु रिउसरहं^{३९} नियच्छविं^{४०} पहरडमरु ।
हेरियहिं^{४१} मियंकहो कहिउजाम सन्नहविं^{४२} सो वि नीसरिउ ताम ।
इय जुज्जियाइं^{४३} सेण्णइं^{४४} सुयाइं^{४५} खिण्णइं^{४६} भिण्णइं^{४७} छिण्णइं^{४८} लुयाइं^{४९} ।
अन्निमट्टइं^{५०} मइं^{५१} रणे मणिसिहासु चूरिउ विमाणु भोगरणं^{५२} तासु ।
५ तेण वि असिघाए^{५३} वच्छु भिण्णु^{५४} जुज्जंतक हुवुं^{५५} सुच्छाप्रं^{५६} दिण्णु ।
आलग्गु^{५७} मियंकु वि^{५८} तज्जिऊण मायाजुज्जेण परज्जिऊणं^{५९} ।
वंदिग्गहे लइउं^{६०} महानुभाव ग्रहु दीसइ रिउवले विज्जउसाउ ।
अम्हाण सेणिं^{६१} पुणु भग्गासोह नायकं^{६२} विणु कि करहिं^{६३} जोह ।
अचभंतरे पइं^{६४} जुज्जंतियाहुं^{६५} इय वाहिरि रणवित्तु जाउ ।
१० इहं^{६६} कालहो थिर-पडिचन्नचित्तं^{६७} पइं^{६८} सुयविं^{६९} अम्ह के हियपरित्त ।

झपट मारनेवाला एक गरुड ही श्रेष्ठ है, महाफणाटोपवाला विपधरसमूह नहीं। तुमने अष्ट सहस्र विद्याधरोको रणमें अकेले ही मार डाला। हम लोग कापुरुष हैं, हमारा ऐसा ही बल है जिससे ऐसी अवस्था (पराजय)को प्राप्त हुए (अथवा हम लोग कापुरुष हैं, जो एतद्सदृश बलवाच होते हुए भी ऐसी अवस्थाको प्राप्त हुए) ॥२॥

[३]

दूतरूपमें तुम्हारे आलाप(कहा-सुनी)से युद्ध प्रारंभ हुआ देख, और रिपुसभामें प्रहारका डंका बजते हुए देखकर जब गुप्तचरोने मृगांकको यह बतलाया, तो वह भी संनद्ध होकर निकला। अथानंतर लड़कर सेनाएँ मरी, शोकग्रस्त हुईं, छिन्न-भिन्न हुईं और काटी गयी। मैंने रणमें रत्नशेखरसे भिड़कर मुद्गरसे उसका विमान तोड़ डाला। उसने भी तलवारके आघातसे मेरा वक्षस्थल विदीर्ण कर दिया और युद्ध करते-करते ही मुझे मूर्च्छित कर दिया। मृगांक भी उसकी भर्त्सना करके उससे भिड़ गया। माया-युद्धसे (उसको) पराजित करके (यह रत्नशेखर) उस महानुभावको बंदीगृहमें ले गया। यह शत्रु सेनामें विजयका उत्साह दिखाई दे रहा है, और डघर हमारी (सेनाकी) भक्ति घोभाहीन दिखाई देती है। नायकके बिना योद्धा क्या करें? तुम्हारे (छावनी के) भीतर युद्ध करते समय, (छावनीके) बाहर रणमें इसप्रकारका वृत्तांत घटित हुआ। इस अवसरके लिए, हे धीर व हितवरायण

३३ इ पइह । ३४ म पए । ३५ क ट इ । ३६ क ट कापु । ३७ घ वरयरो ।

[३] १ म ग व द्वावालाव, २ म पयट्टं । २. क घ ट मण । ३. म ग घ चिच्छवि । ४. म ग घ पउह । ५. म ग वरिह । ६. क ट मण, म ग मण्णहिंवि । ७. घ तट । ८. घ ट ट्टइ । ९. क म ग ट मट । १०. घ मुगं । ११. क घाए । १२. म ग वच्छि मिं; घ वच्छे छिण्णु । १३. म ग म गट्ट । १४. घ इ । १५. क इ मियकह । १६. क पग्गि । १७. क ट लयउ । १८. म ग मण, घ मणि । १९. घ नाउरिक्क । २०. क ग घ ट हिं । २१. क म ग ट पट । २२. म ग निमाउ, घ निमाउ । २३. क ट टय । २४. क ट पडिचण्णं । २५. इ पट । २६. क ट मुयि ।

जाणिजइ एवहि^{२७} भुवणसार^{२८} सुहृदत्तण अवसर तव कुमार ।
गुरुआसए^{२९} आणिड^{३०} कहवि^{३१} कज्जु लइ सहलमणोरह^{३२} होहु सज्जु^{३३} ।

घत्ता—लाइय कसर^{३३} डरु गण मुडि^{३४} भरु सो धवल-धुरंधर उद्धरि ।
कज्ज विणासियए अम्हइ^{३५} नियए^{३६} जं जाणहि^{३७} तं वंधव^{३८} करि ॥३॥

[४]

मालागाहो—नहकुलिसदलियमायंगतुंगकुंभयलगलियकीलाललित्तमुत्ताहलोह
विप्पुरियकविलकेसरकलाघोलंतकंधरुहेसा ।
रंजंति ताम^३ सीहा जाम^३ न सरहं पलयति ॥१॥
नियघरिणिवासहरसंठिएहि^५ कोरंति भडयणुल्लावा ।
ते नवर के वि विरला जे सुहिकज्जं समप्पति ॥२॥
परकज्जभारधुरंधरणगरुयनिहसणकिणंकदिदखंधा ।
दो तिण्णि जए पुरिसा अहवा एको तुमं चैव ॥३॥

५

हृदयवाले कुमार ! तुम्हें छोड़कर (अब) हम लोगोंके हृदयका आश्रय और कौन है ? लोकके सारभूत (लोकमें श्रेष्ठ) हे कुमार ! अब यह समझिए कि यही तुम्हारे सुभटत्व(को प्रगट करने)का अवसर है । बड़ी आशासे कार्य(प्रयोजन) वतलाकर तुम यहाँ लाये गये हो, तो हे सफल मनोरथ (कुमार) ! अब तैयार हो जाओ । अधम बेल डर लेकर (अर्थात् डरकर) भारको भग्न करके (अर्थात् कार्य नष्ट करके) भाग गया । हे धुरंधर नरवृषभ ! (अब) तुम्हीं उसका उद्धार करो, और कार्य विनष्ट हुआ देखकर, हे बांधव ! जैसा समझो वैसा करो ॥ ३ ॥

[४]

नखरूपी वज्रसे विदीर्ण किये हुए मदमाते हाथियोंके उत्तुंग कुंभस्थलोसे गलित रुधिर-लित्त मुक्ताफलसमूहसे विस्फुरायमान कपिल-केशर-कलाप जिनके स्कंधप्रदेशपर लहरता है ऐसे सिंह तभी तक दहाड़ते हैं जबतक कि शरभको नहीं देखते ॥१॥ अपनी-गृहिणीके वासगृहमें बैठे हुए लोगोंके द्वारा बहुत भटजनोचित संभाषण (कथन) किये जाते हैं (अर्थात् पत्नीके सामने सभी लोग अपनी बहादुरीका बड़ा बखान करते रहते हैं) परंतु ऐसे लोग निश्चयसे अति विरले होते हैं जो सुहृदके कार्यको संपन्न करते हैं ॥२॥ दूसरेके कार्यभारके धुरे अर्थात् जूएको धारण करनेसे उसके गुरुतर धर्षणसे जिनके बलिष्ठ कंधे किणयुवत (चिन्हांकित) हो गये हैं, ऐसे लोग जगतमें

:२७ क ड एमहि; गं हि । २८. व भुवणं । २९ क व आसदं, ड आसद । ३०. ख ग घ ङ ञं ।
३१. ग कहिवि । ३२ क ङ हुंतु अं; ख घ होतु अं । ३३ ख ग घ ङ र । ३४. ख ग मुडिउ ।
:३५ क इ । ३६ घ इ । ३७ ख ग घ हि । ३८ क वघ्न ।

[४] १. ख ग तुंगं । २. क ङ ताव । ३. क ङ जाव । ४ ख ग नियघरणीं, ग संठियहि;
ड संठियहि । ५. ख ग धुरधवल्लाणं, क घ ङ गरुअं ।

- ताम तं खैयरालाव कहियंवरं
 रोसतुलियासिहत्थो तयो बोलए^६
 १० कवणु सुरदं विदंतेहिं हिंढोए^७
 को कमवेण सांहेण सहुं कोए^८
 नाहिंपकयदुलं हरिहिं^९ को तोडए
 को भियंकं धरेउण वंदिग्गहे
 गज्जमाणे^{१०} कुमारन्मि केरलवलं
 १५ जुञ्जभावेण रावेण^{११} हुक्कारियं
 पहरपुहुं^{१२} विहडफडं धावियं
 जंबुसामो सुणेउण वित्तंत्तरं^१ ।
 कालकवलन्मि परिकलित्त को बोलए^२ ।
 जमतुलाजडे अप्पाणु को बोलए ।
 विसहलं को वि नियवयणि^३ निप्पोए ।
 वसहंसिगं थियक्खत्स को मोडए ।
 केम निविसं^४ पि जीवेइ महू विग्गहे ।
 गयणगइणां^५ भमाडेइ चोरंवलं ।
 धरियं^६ पहुपरिहवेणं खरंत्वारियं ।
 जत्य जंबुडमारो तहिं पावियं^७ ।
 सणिग्गणांताम छंढो ॥

धत्ता—जं संसिय जियउ^{१०} सुयउ व थियउ^{११} तं नियवि कुमारहोविउ^{१२} ।
 विजयासहं नियउ आसासियउ बलु नावइ पच्छुजीविउ^{१३} ॥४॥

[५]

पणु वि बले चलिए^१ ससिधवलपसरियजसे ।

दो ही तीन हैं, अथवा अकेला तू ही है ॥३॥ इसप्रकार खेचरके कहे हुए कथांतर (वृत्तांत) को चुनकर जंबूस्वामी रोपपूर्वक हाथमें तलवार उठाये हुए बोला—कालके प्राप्त (मुख) में आनेपर कौन जा सकता है ? देवताओंके हाथी (ऐरावत) के दांतोंसे कौन झूल सकता है ? यमके तुलादंडमें अपनेको कौन तौल सकता है ? आक्रमण करते हुए सिंहके साथ कौन झोड़ा कर सकता है ? विपफलको अपने मुंहमें कौन चबा सकता है ? हरिके नाभिकमलको कौन तोड़ सकता है ? अथवा (त्रिनेत्र-महादेव)के वृषभके सींगको कौन भंग कर सकता है ? (और) भृगांको दंदीगृहमें रखकर मुझसे युद्ध करके निमेष मात्र भी कौन जी सकता है ? कुमारके इसप्रकार गर्जना करने पर गगनगतिने (अपनी) सेनामें चोराचल (युद्ध भूचक झंडा) धुमाया और स्वामीके परामर्शसे वेर्जन सेनाके लिए धावपर नमक छिड़कनेके समान तिलमिला-हट उत्पन्न करते हुए युद्धाशयको प्रकट करनेवाले स्वर्से सेनाको ललकारा, तथा प्रहारांसि विदीर्ण हुआ सारा सैन्य शीघ्र दौड़कर जहाँ जंबूस्वामी थे, वहाँ प्राप्त हुआ । जो सैन्य केवल जीवित (श्वासोच्छ्वास) मात्र शेष हुआ मरे जैसा पड़ा था, वह कुमारको देखकर उड़ीपित (उत्साहित) हो गया, और स्वयंकी विजयासासे आश्चर्य होकर नानो पुनरुज्जीवित हो उठा ॥ ४ ॥

[५]

चंद्रमाके सनान धवल एवं विस्तीर्ण यद्य चाले सैन्यके पुनः चल पड़नेपर उस संग्राम

६. घ ड चित्त । ७. ख ग बोलए । ८. छ डोलए, ग घ कुलए । ९. क ड लीं; ख ग तो । १०. घ निए वं । ११. क ख हं हिं । १२. क ड थियउं; ख ग जेजं, घ निमिसं । १३. क ड भाण । १४. ख ग गय्या । १५. ख ग राएग । १६. क ख ग घ धरिय । १७. घ हुंहुत । १८. क ड अं । १९. ख ग नं छंढ नाम नहीं । २०. क ड भुवउट्टियउ, ख ग हुं वि लिं; घ भुवउ व थिं । २१. क ड होमियउ । २२. क ड ज्जोवियउ ।

[५] १. क ड थ ।

समररसभरिय-भडफुरिय-वण-वस-रसे ।
 करडि-करडयल^३-परिवडिय^३-दर-मयजले ।
 गयणवह-पहय-फरहरिय-धुय-धयवडे^४ ।
 चलणभरदलण^५-दमदमिय-रणमहियले^५ ।
 निविड^६कडयडिय^६-भडमउड-उर-सिर-नले ।
 गुडि^७ करि-पवरि^{१०} थिरि चडिउ पहरणसुओ^{११} ।
 समरु परियरवि^{१२} थिउ नवरि^{१३} जिणवइ सुओ ।
 नियवि वलु पवलु खयविसम-वइवसनिहो ।
 वलिउ^{१४} खयरवइ तउ भिडिउ रणे मणिसहो^{१५} ।
 उहयवलमिलणपडिखुहियजलयरवल^{१६} ।
 समय-तडफिडवि^{१७} झलझलइ जलनिहिजलं ।
 तुरय-करि-सुदड-रह^{१८}-फुरियरुइपहरणं ।
 गिलइ तिहुवणु व कलयलेण^{१९} पुणरवि रणं ।

चत्ता—सुमारियपहुफलइ^{२०} फियकुलछलइ^{२१} कलिकालकयंतमरट्टइ^{२२} । १५
 धुत्तिवरधयचडइ^{२३} जयलंपडइ^{२३} पुणु उहयवलइ^{२३} अत्तिभट्टइ^{२३} ॥५॥

(स्थल)में जहाँ कि वीर रससे भरे हुए भटोंके फूटे हुए व्रणोंसे वसा एवं रस अर्थात् लोह वह रहे थे, और जहाँ कि हाथियोंके गंडस्थलोंसे थोड़ा-थोड़ा मद चूर रहा था, एवं आकाश-पथ-(गामी)अर्थात् वायुसे आहत होकर चंचल ध्वजपट फहरा रहे थे, और जहाँ कि चरणोंके भारसे दलित हुई रणभूमि दम-दमा उठी थी, तथा जहाँ (घायल) भटोंके आपसमें टकराते हुए मुकुट, सिर व उरस्थल और पैर कड़कड़ा रहे थे, वहाँ बर्म एवं कवच युक्त श्रेष्ठ हाथीपर चढ़कर, हाथोमे शस्त्र धारण करके युद्ध (स्थल)का पूरा चक्कर लगाकर जिनमतीका पुत्र (जंबूस्वामी) (एक स्थान पर) खड़ा हो गया । (युद्धके लिए उद्यत) प्रबल सेनाको देखकर, प्रलयकर रौद्ररूप वैवस्वत (यमराज)के समान मयानक वह खेचरपति रत्नशेखर वापिस लौटा और रणमें भिड़ गया । दोनों सेनाओंके मिलने (भिड़ने)से जलचर समूह क्षुब्ध हो उठा और जलनिधिका जल अपने मर्यादा तटका उल्लंघन करके झलझला उठा । तुरग, हस्ति, सुभट, रथ और चमचमाते हुए कांतिमान शस्त्रोंसे कलकल (कोलाहल) युक्त होता हुआ वह युद्ध पुनः त्रिभुवनको लोलने लगा । प्रयुक्त फलों अर्थात् कृपापूर्वक किये गये उपकारों-का स्मरण करके अपनी कुल परंपरागत चतुराई (युद्ध कौशल)को प्रकट करते हुए, कलिकाल एवं कृतांतके समान गर्वील तथा जयलंपट (विजयलिप्सु) वे दोनों सैन्य पुनः भिड़ गये ॥५॥

२. क घ ङ यर । ३. ख ग पडि । ४. ख ग घ चले । ५. क ख ग घ ङ चरण । ६. घं थले । ७. ख ग निवड । ८. ख पडिय । ९. क ड य । १०. ख ग र । ११. क ङ भुवो; ग बुवो । १२. क ङ यरिवि । १३. घ र । १४. ख ग च । १५. क ड मण । १६. ख ग घ चले । १७. क ङ तडिफिडिवि; घ तडि । १८. घ रड । १९. क ड यलिय । २०. क इ । २१. ख ग घ ठिय; घ छलइ । २२. क ङ कियत । २३. ख ग पुणुचमय; क वलइ ।

[६]

तओ य संजायं महादंडजुज्झं । जुज्झंतपत्ति कौतंग-खग्ग-^१वावल्ल-भल्ल-सवल्ल-
^२मुसुंदिविणिहम्ममाण अण्णोण्णं^३ । अण्णोण्णं^४दंसणारुद्धं^५ नित्ठविथमिदुसुण्णा-
 सणमिलंतमत्तमायंगं^६ । मायंगदंतसंधट्टनिहसणुडंतं^७ हुयवहपुल्लिगपिंगलियसुर-
 वहुविमाणं । सुरवहुविमाणसंछण्णं गयणदूरूपयंतपडिलग्गकोडिखडक्खियवीर-
 ५ करवालं । वीरकरवालफालिज्जमाणं^८ कुंजर-तुरंग-सुहडंग-गरुयकल्लोवाहपञ्जरिय-
 कोलालं^९ । कोलालवाहिणीवेयपवहाविथनिज्जंतकंचाडणी^{१०} -विसालं^{११} -करयल-
 कवालकुट्टलग्गं^{१२} -धावमाणजालामुहकरालवेयाळं । वेयाळविरसमुकट्टहाससंत-
 ट्ठभीसं^{१३} -भज्जंतगयघडाचरणचप्पोसरिय-^{१४} सेण्णकोलाहलपूरियदियंतं । दियं-
 तपसरंतासवारतरलत्तरवारितासणासंतं^{१५} कायरदंसणुच्छहियवरसुहडं^{१६} । वर-
 १० सुहडदत्थपरिभमिरलउडिदंडप्पहारचूरिज्जमाणनरवरकोडि-^{१७} कडुकडकारसद-
 जूरंतकावालिथसमूहं । कावालिथसमूहकरकत्तिथाकप्पणकडक्खियसुरसुंदरी-
 संरक्खिय-उच्चंतनयणोल्लियसामंतकुमरं । सामंतकुमरपुञ्जसंमाणदाणपरिपूरिय-

[६]

तब वहाँ महान् सैन्य-युद्ध हुआ । जूझते हुए पदाति कुंत, खड्ग, वावल्ल (वल्लम ?)
 भाले, सवल्ल, और मुसुंदि नामक शस्त्रोंसे एक दूसरेको मारने लगे । एक दूसरेको देख-देखकर
 रुष्ट हुए, एवं (शत्रु-पक्षके) महावतोंको मारकर रिक्तहीदेवाल मत्तमातंग परस्पर भिड़
 गये । हाथियोंके दांतोंकी टक्करसे उठते हुए अग्निके स्फुलिंगोंसे सुरवधुओंके विमान पिंगल
 वर्ण हो गये । सुरवधुओंके विमानोंसे आच्छादित गगनमें दूर जाते हुए विमानोंसे नोक टकराकर
 वीरोंके करवाल खड़खड़ा उठे । वीरोंके करवालसे विदीर्ण किये जाते हुए हाथी, घोड़े और
 सुभटोंके शरीरसे बड़ा भारी कल्लोल करता हुआ रवतका झरना बह निकला । रवतवाहिनीके
 वेगसे प्रवाहित होकर ले जायी जाती हुई कात्यायनी-देवीके विशाल करतल-स्थित कपाल
 कोष्ठ(खोपड़ी)से लगकर एक भयानक अग्निमुख वैताल दौड़ पड़ा । वैतालके छोड़े हुए
 कठोर व उत्कट अट्टहाससे संत्रस्त होकर भागते हुए भयानक हाथियोंके समूहसे पैरोंसे कुचले
 जानेसे बचते हुए सैन्यके कोलाहलसे दिगंत भर गये । दिगंतमें फैलते हुए अश्ववारोंके चंचल
 तलवारोंके त्राससे भागते हुए कायरोंको देखनेके लिए श्रेष्ठ सुभट उत्साहित हो उठे । श्रेष्ठ सुभटों
 के हाथोंमें घूमते हुए लकुटिदंडके प्रहारसे चूर-चूर होते हुए नर-कपालोंसे बड़ा कटुक डकार
 शब्द उत्पन्न होनेसे कापालिकोंका समूह झूरने लगा । और कापालिक समूहके हाथोंकी कैची
 द्वारा (अपने केशादि) काटे जानेसे कटाक्षयुक्त सुरसुंदरियों-द्वारा संरक्षित (मृत) सामंतकुमार
 (मानो स्नेहभरे) नेत्रोंको लूँचा करके सुरसुंदरियोंकी ओर देखने लगे । सामंतकुमारोंके
 पूर्व दिये हुए सम्मान व दानसे भरपूर, लटकते हुए केशोंवाले और कलौटेपर हाथ देकर स्वामी-

[६] १. ख ग खगि । २. क घ ङ मुर्मडिं । ३. व अलोस । ४. ड दंमणालु । ५. व सुवा-
 सणमिं ; क संतमायंगं । ६. क ङ हुयवहं ; ख ग हुयवहुं । ७. घ संछन् । ८. व फालिक्कमाण । ९. क ड
 गखं । १०. घ पसरिय कीं । ११. क कंचाडणी । १२. ख ग विवाल । १३. ख ग कवालकुठं ; ड
 कवालपुट्टं । १४. क घ ङ भीरु । १५. व सिन् । १६. क ख ग घ ङ कायरं । १७. ख ग वरसुहडमरवं
 १८. क ड करक्कडकारं, ख ग घ कडुकं ।

लंबंतचूल^१ - परिहच्छकच्छ^२ पहुपंगणवगिरदूहभडविहडंतभेडसंधायं । भेड-
संधायविहडणपरितुद्धअलद्धसम्माणदाणनिम्माणियभिडंतमिच्चसच्चियनिसग्ग -
चारहडिय^३ - विसेसठकुरनिवेशियहियय-सल्लं ।

१५

गाथा—चिक्किचिक्किखल्लचहुट्टकथक्के^{२३} भरम्मि रे धणिय ।

अवमाणियं पि धवलं विहडियकसरेसु जा निहसि ॥ १ ॥

कसरेसु कवरेसु य^{२४} पालणपडिलगवग्गगहवडणो^{२५}

अमुणियभरनिग्वाहे^{२६} धवलो हियए वि वीसरिओ ॥ २ ॥

धवलेण तेण त्रिसमे धुयकंधरडंतकसरमुक्कभरो ।

२०

लीलाण^{२७} कडिडओ^{२८} तह जह^{२९} फुट्टइ^{३०} कुसामिणो हिययं ॥ ३ ॥

अध्वगणिय^{३१} न मणणइ^{३२} पहुणो घणकसरपालणपरस्स ।

जो धरइ धुरं विहुरे नमो नमो तस्स धवलस्स ॥ ४ ॥

कसरेण समं जुप्पंतपण धवलेण जोइयं पासं ।

गरुयभरकड्डणाए^{३३} होसइ मे पडिहरो एसो ॥ ५ ॥

२५

कसरेक्कचक्कथक्के^{३४} भरेण^{३५} धन्नलेण^{३६} झूरियं^{३७} हियए ।

हा किं न खंडिअणं जुत्तोहं दोहि मि दिसाहिं^{३८} ॥ ६ ॥

के प्रांगुणमें बड़ी-बड़ी बातें मारनेवाले कायरोंका समूह भाग पड़ा; और कायरसमूहके भागने से परितुष्ट हुए, पहले सम्मान व दान प्राप्त नहीं करनेवाले, तथा अपमानित होकर भी डटकर युद्ध करते हुए भृत्योंके द्वारा अपना विशेष नैसर्गिक शौर्य प्रमाणित किया जाने पर उनके ठाकुरोंके हृदयमें (पश्चात्ताप रूपी) शल्य उत्पन्न होने लगा ।

चिक-चिक-चिकने कीचड़में चक्का फंस जानेसे भारसे भरी हुई गाड़ीके रुक जानेपर श्रेष्ठ वृषभका अपमान करके, रे धनिक जबतक तू अधम वैलों पर अनुराग करता है—॥ ॥ (तबतक) अधम और कवरे वैलोंके प्रतिपालनमें लगा हुआ (तुस जैसे) गृहपतिका (परिचारक)वर्ग श्रेष्ठ वृषभ (धवल) के द्वारा भार निर्वाह करने (को क्षमता) को न जानता हुआ, उसे हृदयसे भी भुला देता है ॥२॥ परतु आपत्तिके समय अधम वैलके द्वारा चोत्कार करके कंधेको गिराकर भारमुक्त हो जाने पर उसी धवलके द्वारा लीलामात्रमें (क्षणभरमें) इसतरह भार खींच लिया जाता है, जिससे कि-पृथ्वीपति (कु-स्वामी) का हृदय खिल उठता है ॥३॥ जो धवल विलकुल अधम वैलोंको पालनेवाले प्रभुके-अपमानको नहीं मानता (अर्थात् अपने पूर्वकृत अपमानको ध्यानमें नहीं रखता, और संकटमें घुराको धारण करता है, उसे पुनः-पुनः नमस्कार ॥४॥ अधम वैलके साथ जोड़े जाते हुए धवलने अपने पाशर्वको देखा, और सोचा कि-भारी बोझको खींचनेमें यह अधम वैल वास्तवमें मेरा प्रतिभार (अतिरिक्त बोझ) मात्र होगा ॥५॥ भारसे अधम वैल वाला एक चक्का रुक जाने पर धवल अपने हृदयमें इसप्रकार झूने लगा— हाय ! मैं ही खंडित करके दोनो दिशाओ (पाशर्वों) में क्यो नहीं जोत दिया गया ? ॥६॥

१९. ध^१ धूलि । २०. क परिहृत्य^२, ख ग पविं । २१. ध पहुपंगणं । २२. क ड चारहडि । २३. क^३ थट्टे । २४. क ड आ । २५. ख ग हिंगवहवडणो । २६. क घ ड गिग्वाहो । २७. क घ ड डं । २८. ख ग क कट्टिओ । २९. ख ग जह, व जह । ३०. ख ग फुट्टइ, ड पुट्टइ । ३१. ध गणिय । ३२. ख ग घ मणणं । ३३. क ड कट्टणाए । ३४. क ड^४ यक्को । ३५. ख ग घ भरम्मि । ३६. क धवलमि, ड धवलम्मि । ३७. ध जू । ३८. ख ग घ ए ।

जेण भरघरणखुरखयमगे वि समुदसंकिमा^३ चहई ।
 धवलेण समं समसीसियाए कसरो धुव^० मरई ॥ ७ ॥
 ३० दोहउ—ससहर^१ हरिणद्वारे जइ सीहसिलिबु धरंतु ।
 तो जीवंतहो^२ तुह मलणु^३ दुक्कर राहु करंतु ॥ ८ ॥
 घत्ता—तो तहि^४ अरविमडु^५ पेक्खिवि नियडु मणिसिहु वाले^६ पचारिउ ।
 चुकड^७ तहि^८ जि खणे अस्थाणरणे एवहि^९ कहि^{१०} जाहि^{११} अमारिउ ॥६॥

[७]

रे रे रणु मेहेवि मई^१ समाणु
 जं अट्टसहसपहरणकराह^२
 पडिगाहिउ संगरु एत्थु^३ एवि
 नद्दाइह^४ दिण्णु उरे खगघाउ
 ५ हेवाइउ इय सुहडत्तणेण
 जइ अत्थि अंगि तउ जुज्झगवु
 तुब्बु वि मज्जु वि संगामु होउ^६
 अणुमण्णवि^७ बोल्लइ खयरराउ

जं नहु^१ लडु तं तउ पमाणु ।
 माराविय वरविज्जाहराह^२ ।
 निक्खत्तइ^३ नीयइ वलइ^४ वे वि ।
 वंदिग्गहे लडुउ मिग्गु^५ राउ ।
 चारहडि^६ न मण्णमि^७ एत्तडेण ।
 तो अच्छउ सेण्णु^८ नियंतु सवु ।
 अल्लु वि मा मरउ वराउ लोउ ।
 कि वलवलेण इह महु पयाउ ।

जिस धवलके द्वारा भार धारण (वहन) करनेके हेतु खुरसे आहत मार्गमें भी समुद्र (होने) की शंका धारण की जाती है, वैसे धवलकी स्पर्धा करनेसे अधम (गरी) बेल निश्चयसे मरता है ॥७॥ रे शशधर ! यदि तू हरिणके स्थानमें सिंहशिकुको धारण कर लेता तो उस (सिंह-शावक) के जीते हुए राहुके लिए तेरा मर्दन करना (ग्रस लेना) दुष्कर होता ॥८॥

तब वहीं पातमें विकट(विशाल)वक्षस्थल वाले मणिशेखरको देखकर बालकने व्यंग्य किया—वहाँ, उससमय समास्थलके युद्धमें तू चूक गया (बच गया), अब बिना भारा हुआ (अर्थात् मृत्युसे बचकर) कहाँ जायगा ? ॥६॥

[७]

अरे रे ! तू जो मेरे साथ युद्ध छोड़कर भाग गया, वही तो तेरा (वीरताका) प्रमाण मिल गया । तूने अष्टसहस्र शस्त्रधारी श्रेष्ठ विद्याधरोंको तो मरवा डाला, और यहाँ आकर दूसरोंको लड़ाकर दोनों सेनाओंको क्षत्रियहीनताको प्राप्त करा दिया; गगनगतिके उरस्थल पर खड्गसे प्रहार किया, और मृगाक राजाको बंदीगृहमें ले गया; इस बंहादुरीसे तू बड़ा गर्वित है । पर इतनेसे मैं तेरी शूरता नहीं मानता ! यदि तेरे शरीरमें युद्धका गर्व है तो सारी सेना देखती बैठी रहे, तेरा-मेरा संग्राम हो, और बेचारे ये साधारण(सैनिक)लोग अब(व्यर्थ)न मरें । इसका अनुमोदन करके खेचरराज बोला—सैन्य शक्तितसे क्या ? और बहुत प्रलाप करनेसे

३९. ख ग संकमा । ४०. क ल धुअं । ४१. क ड हं । ४२. क ड मलण तहु; ख तहो मं; ग युद्ध-मं, व तुं मलण । ४३. घ तहि । ४४. ख ग उवरविडु, ड रउवि । ४५. क ट वाले; ख ग वालि । ४६. ख ग ड वुकउ । ४७. ड तहि । ४८. क हि । ४९. ख ग कहि । ५०. ख ग घ जाहि ।

[७] १. क ड मइ । २. क लडु; ड णडु । ३. ख घ हराह । ४. क घ एव । ५. र ड तड; ग नक्कत्तइ । ६. ख ग इ । ७. क ड इहि । ८. ख ग क । ९. क ड देवा । १०. क वार । ११. घ मणमि । १२. ख ग सवु, व सिवु । १३. ख ग होइ । १४. घ मन्निवि ।

कि बलबलेण मणुसइय मञ्जु कि बलबलेण साहमि असञ्जु^{१५} ।
 मइ कुविप्र^{१६} समरे देव वि असार तुहु^{१७} कवणु गहणु पुणु किर कुमार । १०
 घत्ता—तो पेसणकारहि^{१८} कट्टियधारहि^{१९} अणणोणनइरविणबद्धइ^{२०} ।
 दुक्खनिवारियइ^{२१} उसारियइ^{२२} उहयबलइ^{२३} सन्नद्धइ^{२४} ॥ ७ ॥

[८]

सरवंतइ^१ तोणहि^२ धारियाइ^३ ३ धणुचडियगुणइ^३ उत्तारियाइ^३ ।
 पडियारहि^४ खग्गइ^५ पोइयाइ^६ सेल्लइ^७ सेल्लहरि हिरोचियाइ^८ ।
 तिक्खंळुससाहिय वरगइंद^९ दिदवगोसारिय तुरयविद ।
 किउ कलयलु तूरइ^{१०} आहयाइ^{११} महि-नयणइ^{१२} णं फुट्टिवि गयाइ^{१३} ।
 दूरट्टियाइ^{१४} जोयहि^{१५} घणाइ^{१६} लिहियाइ^{१७} व वेण्णि वि^{१८} साहणाइ^{१९} । ४
 उत्तरिय वे वि पेत्थिय गइंद^{२०} विहि^{२१} गिरिहि^{२२} थक्क णं वे^{२३} मइंद ।
 टंकारिउ धणु खयरं झडत्ति गिरिसिगि पडिय णं तडि तडत्ति ।
 अण्णालिउ बालेणावि^{२४} चाउ बहिरंतु भुवणु^{२५} पसरिउ^{२६} निनाउ^{२७} ।
 संभरियमहणपीडायरंण आरडिउ नाइ^{२८} रथणायरेण ।

क्या ? यहाँ मेरा ऐसा प्रताप है कि मैं मनुष्यगति(लोक)में असाध्य साधन कर सकता हूँ । मेरे कुपित होनेपर युद्धमे देव भी तुच्छ हो जाते है, फिर तेरी तो गिनती ही क्या ? तू तो अभी कुमार ही है । (इसके)अनंतर आज्ञाकारी प्रतीहारोंके द्वारा परस्पर वैरबद्ध दोनों संनद्ध सेनाओंको बड़ी कठिनाईसे युद्धसे निवारण करके दूर-दूर हटा दिया गया ॥७॥

[८]

बाणोंको तूणीरोमें रख दिया गया, घनुषोंपर चढे हुए गुण(प्रत्यंचा)उतार दिये गये, खड्गोंको म्यानोंमे पिरो दिया गया, और कुंत(बल्ले)भालाधरोमे रख दिये गये । तीक्ष्ण अंकुशोसे श्रेष्ठ गजेद्र साधे गये, और सुदृढ़ लगामसे(खीचकर)घोड़े हटा दिये गये । (इन सबसे) वहाँ ऐसा कोलाहल किया गया और तूर बजाये गये, मानो पृथ्वी और आकाश फूट गये हो । दूरपर स्थित दोनों घनी(विशाल)सेनाएँ चित्रलिखित सरोखी(युद्ध)देखने लगी । दोनो ही (जंबूकुमार एवं रत्नशेखर) श्रेष्ठ हाथियोपर चढ़कर, उन्हें प्रेरित करते हुए ऐसे शोभायमान हुए, मानो दो पर्वतोंपर दो सिंह स्थित हों । खेचरने झट घनुषको टंकारा, मानो गिरिश्रुगपर तड़से बिजली गिर पड़ी हो । बालकने भी चापको हाथसे आस्फालित किया, उससे सारे लोकको बहरा करता हुआ (ऐसा) निनाद प्रसृत हुआ, मानो अपने मंथनका

१५ क लंज्जु । १६ क ड कुइय । १७. क ड तुहु, घ तुह । १८. ख ग र्हि । १९. ख ग वइरिविणि, घ अलोत्त । २० क ख ग दुक्खु निवा; ड निवारियइ । २१. क उंसारियइ । २२ ख ग सेण्णइ । २३. क ख ग ड सण्ण ।

[८] १. ख ग वत्तहि । २. प्रतियोमे इ । ३. क लं चडियं गुण; घ वडियइ गुण । ४. क ड र्हि, ख ग र्हि । ५. ख ग इ । ६. ड याइ । ७. क हि, घ इ; ड हि । ८. ख ग सेल्लहरं, घ हरहो रोवियाइ । ९. क ल गयवरिद । १०. ख ग घ याइ । ११. ड मि । १२. ड गयद । १३ क व ल विहि । १४. ख ग दो । १५ ख ग बालेणावि । १६. ख ग घ भुवणु । १७ व रिय । १८. क ख घ ल णिणाउ । १९ घ णाउ ।

- १० तें^{२०} सहे भडहें^{२१} पडंति पाण लंवंति ढलक्खिय सुरविमाण ।
 कंपंति दवक्खिय सुरचंद .. उट्टंति झलक्खिय जलहिमंद ।
 तुट्टंति कडक्खिय^{२२} सिहुरिसिहुर फुट्टंति भवलहर जाय चिहुर^{२३} ।
 घत्ता—गाढवि करेण^{२४} धणु^{२५} वंकेवि तणु खयरें सपत्त^{२६} गुणे^{२७} सजिय ।
 किविणेण व^{२८} जिएण अविवेइएण^{२९} रणे मग्गण वीस विसजिय ॥ ८ ॥

[९]

- तं नियवि कुमारे वाणसंडु वीसहिं^१ मिं सरहिं^२ किउ खंड^३-खंडु ।
 बाणावलि खवरे पुणु वि सुक असइ व^४ सप्पुरिसहो नियडं^५ ढुक ।
 लोहमय^६-विक्ख-विधगणसहाव धम्मचचुर्य^७-परमारणसहाव ।
 नारायहिं^८ वालें नहे पडण^९ गरुडेण सप्पपंति एव छिणण^{१०} ।
 ५ गुणे^{११} संधेवि पेल्लिवे^{१२} दिढकरेण अग्गेयवाणु विज्जाहरेण ।
 धाविउ^{१३} डहंतु^{१४} वेणिण वि वलाइ^{१५} धूमाउलजालहिं सामलाइ^{१६} ।

स्मरण करनेसे पीड़ित हुए रत्नाकरने ही करण चोत्कार किया हो । उस शब्दसे भटोके प्राण गिरने(छूटने) लगे, और देवताओंके विमान (स्वर्गसे) ढूलककर (आकाशमे) लटकने लगे । सूर्य व चंद्र द्रुतगतिसे काने लगे, और मंद(शांत)जलधि झूलसकर ऊपर उठने लगे । पर्वतोंके गिखर कड़ककर टूटने लगे, और प्रासाद विघटित (विस्लिष्ट)होकर फूटने लगे । जिसप्रकार किसी अविचेकी कृपण जीवके द्वारा घनको हाथसे खूब दृढतासे पकड़कर, गुणोसे सज्जित अर्थात् खूब गुणवान् ऐसे वीसियों भिक्षार्थियोंको भी मुंह बाका करके(विना कुछ दिये, अपने घरसे)विदा कर दिया जाता है, उसीप्रकार उस अविचेकी खेचने अपने हाथसे घनुपको दृढतासे पकड़कर व शरीरको थोडा झुकाकर, पत्रयुक्त वाणोंको प्रत्यंचापर चढाकर रणमे वीस वाण छोड़े ॥८॥

[९]

उस वाणसमूहको देखकर कुमारने वीस ही वाणोसे उसे खंड-खंड कर दिया । खेचरने पुनः वाणावलि छोड़ी, वह जवूस्वामीके निकट उसीप्रकार गयी, जिसप्रकार कोई असती (कुलटा)स्त्री किसी सत्पुरुषके पास जाये । जिसप्रकार किसी लोभमय(लोभी) और तीक्ष्णतासे (तीखे वचनोके द्वारा दूसरोको) वीघनेके स्वभाववाले तथा धर्मसे च्युत व्यक्तिका दूसरोको मारना स्वभाव ही होता है, उसीप्रकार उस लोभमय, तीक्ष्णतासे शरीरको वीघनेके स्वभाववाली, धनुपसे च्युत तथा शत्रुको मारनेके स्वभाववाली उस बाणावलिको घालकने । आकाशमे छोड़े हुए अपने वाणोसे उसीप्रकार छिन्न-भिन्न कर दिया, जिसप्रकार गरुड़ सप-यंक्तिको कर देता है । तदनंतर प्रत्यंचापर संधान करके समर्थ भुजावाले उस विद्याधरने आग्नेय बाण छोडा । वह बाण अपनी धूम्राकुल-श्यामल ज्वालाओंसे दोनों सेनाओंको

२०. ख त । २१. ख ग ह । २२. क ड विजय । २३. क ख ग ड विहर । २४. क ल णु । २५. ड णु ।

२६. ख ग घ ड गुपत्त । २७. क ड गुण । २८. क ग वि । २९. ख ग अविवेण ।

[९] १ क ख ग ल ह, घ ह । २ ख ग हि । ३ व ड खडु । ४ क ड सहे णि, ५ क सप्पु-रिस न नि । ६ ग मड । ७ क धम्मह चुव, ख धम्मह चु, ग प्रम्मह चु । ८ क थिहि । ९. व ण । १०. क घ ड गुण । १० ख ग घ मेल्लिवि । ११. क ड घाडज । १२. क ड । १३. ग ड ।

तहिँ काले गयणगइणा सुहाई
तो मुक्कु^{१४} कुमारे वारुणस्थु
उन्नइव^{१५} गयणे पच्छइयसूर
वरिसणह^{१६} लम्गु^{१७} गुरुधारजालु
नउ थक्कु^{१८} ताम बहुसलिलवहणु
बोलाविउ पुणु वाले विवक्खु
घत्ता—अरुहयाससुएण करिकरमुएण^{२३}
अरिह^{२४} धरंताह^{२५} पहरंताह^{२६} आरोह-विधु^{२७}-धणु पाडिउ ॥ ६ ॥

दिण्णह^१ 'वालहो दिव्वाउहाई ।
तहो सरहो पहावे मेहसत्थु ।
तडयडियविज्जु^{१७} नच्चियसऊर^{१८} ।
आणंदिउददुदुर-रववमालु ।
गउ खयहो^{२३} असेसु वि^{२४} जाम डहणु ।
जइ सत्ति सरासणु रक्खु रक्खु ।
तोमरघाएण निवाडिउ^{२७} ।

१०

[१०]

तो विज्जाहर
खंडियकर^२-धणु
चक्कु धरेविणु
मेल्लइ जामहिँ
कण्णिणयवाण^३
मज्झप्र^४ खंडिउ
अद्धउ करयले

दिढदट्टाहर ।
जोइय-पहरणु ।
थाणु रएविणु^३ ।
वाले तामहिँ ।
हय-रिउपाणे ।
अद्धु विहंडिउ ।
भामवि^५ नहयले ।

५

जलाता हुआ दौड़ा । उसी समय गगनगतिने बालकको गुप्त व दिव्यशस्त्र प्रदान किये । तब कुमारने वारुणास्त्र छोड़ा । उस शरके प्रभावसे एक बड़ा मेघसार्थ(समूह) आकाशमें उन्नत हुआ, जिसने सूर्यको आच्छादित कर लिया, विद्युत् कड़कने लगा, और मयूर नाचने लगा । बहुत भारी जलधारासमूह बरसने लगा और, आनंदित दुर्दुरोका (टर-टर)रव व्याप्त हो गया । प्रचुर पानीको बहन करनेवाला वह मेघसमूह(वर्षा करनेसे) तबतक नहीं रुका, जबतक कि अग्नि पूर्णरूपसे शांत नहीं हो गया । तब बालकने पुनः शत्रुको आह्वान किया—यदि शक्ति है तो अपने शरासन(धनुष)को बचाओ ! अरुहदासके उस पुत्रने, जो हाथीके सूंडके समान भुजाओवाला था, शत्रुके पकड़ते-पकड़ते और (उनकी रक्षाके लिए जंबूस्वामीपर) प्रहार करते-करते भी, उसके महावत, (ध्वज-)चिह्न एवं धनुषको तोमरके आधातसे भूमिपर गिरा दिया ॥९॥

[१०]

तब विद्याधरने दृढ़तासे अधरोंको काटकर, अपने हाथके टूटे हुए धनुषदंड और शस्त्रको देखकर, चक्र हाथमें लेकर, आसन जमाकर (अर्थात् निशाना साबकर) उसे जैसे ही छोड़ा, वैसे ही बालकने शत्रुका प्राणहरण करनेवाले कणिका नामक वाणसे चक्रको वीचसे खंडित कर आवेको तो टुकड़े-टुकड़े कर दिया, और आवेको हथेलीपर रख, नभस्तलमें घुमाकर

१४ ख गं ड। १५. ख मुक्कु। १६ क ड उण्णं, ख गं उण्णय। १७. क ड तडियं, ग तडियडियं। १८. ख ग, नच्चिरं। १९ ख ड णह। २० ख ग लम्ग। २१. क ड थक्क। २२. क ड असेसहो। २३. क ड भुवेण। २४ क ड रिउ। २५. क घ ड हिँ। २६. क ड तहो, वं ताहो। २७. क ड पर पहरंतहो, ग ताहं, घ पहरताहो। २८ क ड चिघ।

[१०] १. व दहं। २. व पर। ३. क ड ण्णिणु। ४ घ कन्नियं। ५ क ड मज्झुए; व णं। ६ क घ ड भामिवि।

	मुकु कुमारहो ^७	वइरि-निवारहो ।
	मंड धरंतहो	पहरु करंतहो ।
१०	निवडिड करिवरे	वज्जु ^८ व गिरिवरे ।
	घाय-समाहड	धुलइ महागड ।
	विरसु रडंतड	नियवि ^{१०} पडंतड ।
	पेल्लिवि ^{११} गयवरु	कौताडहकर ।
	खयरुद्धाविड ^{१२}	वेएं पाविड ।
१५	कौतुक्खेविड	बालहु ^{१३} डेविड ।
	ताम कुमारें	विक्रमसारें ।
	धरिड समर्थें	दाहिणहत्थे ।
	जं अचछोडिड	अहिसुहुं पाडिड ।
	कौत-विलग्गड	थाणहो भग्गड ।
२०	विहडप्फहु ^{१४} अरि	करिखंधोवरि ^{१५} ।
	कडिड ^{१६} विसहइ	थाहर ^{१७} न लहइ ।

घत्ता—कुमारे कमु रयवि नियकरि चयवि अरिकुंभिकुंभे^{१८} उड्ढेविणु ।

हरिणा नहखइड हरिणु^{१९} व लहउ^{२०} रिड^{२१} पहरण-रणु लड्ढेविणु^{२२} ॥१०॥

[११]

धरेवि मंड भुअथामगरिल्लें
उच्चायवि^{२३} गयसारिहें^{२४} घल्लिड

वड्ढउ चप्पेवि^{२५} खयरु वरिल्ले^{२६} ।
छोडेवि वंध मियंकु पमेल्लिड ।

छोड दिया । कुमारके द्वारा वैरोका निवारण करनेके लिए अत्यंत बलपूर्वक प्रहार करनेपर वह चक्र (शत्रुके)हाथीपर ऐसा गिरा, जैसे पर्वतपर वज्र । प्रहारसे आहत होकर वह महागज चक्कर खाने लगा । दाहण चीत्कार करके गिरते हुए देखकर, उस हाथीको-(अंकुश-से) प्रेरित कर, कोत नामक आयुध हाथमे लेकर खेचर दौड़ा, और वेगसे बालकके पास पहुँचा । विद्याघरने कोत फेंका, वह बालकको लाघता हुआ चला गया । तब विक्रममे श्रेष्ठ उस कुमारने अपने समर्थ (बलिष्ठ) दाहिने हाथसे उसे पकड़ लिया, और (एकाएक) छोडकर उसे अपने सामने पटक दिया । भालेसहित वह विद्याघर अपने स्थानसे भग्न(भ्रष्ट) हो गया । भयसे विह्वल शत्रु हाथीके कंधीपर खीचा हुआ ऐसा लगता था, मानो उसे (अन्यत्र) कही (शरण-) स्थान नही मिलता । तब कुमारने कूदकर, अपने हाथीको छोडकर, शत्रुके हाथीके कंधेपर उड्-कर (छलाग लगाकर), शस्त्र-युद्ध छोडकर, सिहके नखीसे खचित (पजोमे आये हुए) हरिणके समान शत्रुको पकड़ लिया ॥१०॥

[११]

अत्यंत बलपूर्वक महान् भुजबलशाली उस कुमारने खेचरको चापकर (दयाकर) वस्त्रसे बाध लिया, और उचकाकर (अपने) हाथीके हीदेमे डाल दिया । मृगांके वधन छुडाकर

७ घ कुमारो । ८ ख र । ९ ख वज्ज, घ विज्जु । १० क ङि । ११. स ग व ३ । १२ स ग ३ विव, घ द्वाइड । १३ ख घ ३ हो, ग ह । १४. क ० फड । १५ स ग कघो । १६ क ट कडिड । १७. क ड ठ । १८. क ड कुभ । १९ क ण । २० क ड लयड । २१ क ड पहरणु छडे, व छडे ।

[११] १. क ड चप्परि । २ ल्ले । ३ स ग उडा, घ डवि । ४. स घ ३ रिहि; ग ३ रिहि ।

तं पेक्खेवि किय-नियड-विमाणहि ^१	मेळिय कुसुमविट्ठि गिळ्वाणहिं ।	
जय-जय-सद्धु कुमारहो घोसिउ	नच्चइ नारउ नहे परितोसिउ ।	
गयणगइहे ^२ आणंदु पवडिउड	मिलियउ केरलसेणु ^३ रसडिउड ।	५
तूरई हयई गहिरु गाइजइ	वंदिहे ^४ वत्थु कणय-धणु दिजइ ।	
भग्ग-मडफत्त ^५ हुउ खेयरजणु	हेट्टासुहु अवलंबिय-पहरणु ।	
गयणगइ ^६ तहिं ^७ काले नवविणु ^८	सरह-सुगाढालिगणु देविणु ।	
वइयरु सव्वु ^९ मियंकहो सीसइ ^{१०}	जीविउ तुम्ह एहु जो दोसइ ।	
मई ^{११} कहिय ^{१२} वित्तु निएसिउ ^{१३}	अळु जि सेणिएण संपेसिउ ।	१०
पुरि न पइट्ट तुहु ^{१४} मि ^{१५} नउ डिउउ	दूउ होवि ^{१६} रिउसहहि ^{१७} पइउउ ।	
तहि हु ^{१८} समरे सपहरण ^{१९} धाइय	अट्टसहस खयरहे ^{२०} विणिवाइय ।	
अन्भंतरि रिउसेणु ^{२१} हणंतहो	तुह रणु हुउ एयहो ^{२२} अमुणंतहो ।	
एमहि ^{२३} पई ^{२४} जि दिट्टु जुज्जंतउ	एहु ^{२५} सो वरकुमारु खयरंतउ ।	
पत्ता—सुणिवि पसन्नमइ ^{२६} केरलनिवइ कह पुणु वि पुणु वि वड्डारइ ।		१५
पयडियवहुपणउ ^{२७} जिणवइतणउ ^{२८} नियपुरिहि ^{२९} मञ्जे पइसारइ ^{३०} ॥११॥		

उसे मुक्त किया। ऐसा देखकर अपने विमानोंको निकट करके देवोंने पुष्पवृष्टि की और कुमार-के जय-जयकार शब्दका घोष किया। परितुष्ट हुए नारद आकाशमें नाचने लगे। गगनगतिको अत्यंत आनंद बढ़ा, और केरल सैन्य स्नेह व प्रीतिपूर्वक मिला। (विजय) तूर वजाये गये, गंभीर गान किया जाने लगा, और वंदियोंको वस्त्र, धान्य व धन दिया जाने लगा। खेचरजन (रत्न-शेखरके सैनिक) भग्नमान हो, शस्त्रोंका अवलंबन लेकर अधोमुख होकर बैठ रहे। तब गगनगतिने प्रणाम करके और उत्कांठा व आवेगपूर्वक गाढ आलिंगन करके मृगांकको सब वृत्तांत कहा— तुम्हे जीवन देनेवाला यह जो (कुमार) दिखाई देता है, मेरे कहे वृत्तांतको निदिष्ट करके श्रेणिकने आज ही इसे यहाँ भेजा है। यह नगरमें भी प्रविष्ट नहीं हुआ, और न तेरे द्वारा देखा ही गया। दूत होकर शत्रुकी सभामें प्रविष्ट हो गया। वहाँ हुए युद्धमें आठ हजार खेचर आक्रमणके लिए शस्त्रोंसहित दौड़े, और मारे गये। भीतर रिपुसैन्यको मारते हुए, इसके नहीं जानते हुए ही यहाँ तुम्हारा युद्ध हुआ। अभी तुमने जिसे युद्ध करते देखा, यह वही, खेचरोके लिए कालस्वरूप श्रेष्ठ कुमार है। (यह सब) सुनकर मनमें प्रसन्न होकर केरल नृप कैसे-कैसे पुनः-पुनः बधाई देने लगा, और बहुत प्रणय प्रगट करके जिनमतिके पुत्रको अपनी पुरीके मध्य प्रवेश कराया ॥११॥

५. ख ग णहे । ६. घ सुरयणु । ७. क ङ ओसिउ । ८. क घ ङ गइहि; गयहे । ९. घ षेवु । १०. प्रतियोमें हु । ११. क ङ प्परु । १२. क ङ गइय । १३. क ङ तहि । १४. क घ ङ प्पिणु । १५. क सव्व । १६. क ङ । १७. क ङ मइ । १८. ख ग यड, घ यइ । १९. ख ग व निवे । २०. क ङ तुहु । २१. क घ ङ वि । २२. क ख ग ङ होइ । २३. ग घ ङ हि । २४. क घ ङ हुइ । २५. क ङ सुपह । २६. क खयरह, घ खयरइ । २७. घ षेसिनु । २८. क ङ एहु । २९. क ङ हि; घ एवहे । ३०. क ङ पड । ३१. क ङ सु । ३२. क ख ग ङ पसण । ३३. घ ङ पणउं । ३४. क घ ङ तणउं । ३५. क ङ पुरिहि; ख ग पुरेहि । ३६. क ङ सारइ ।

[१२]

- मणिमोत्तियमंडणजणियमोह^१
 घर घरे कपूर्वामोत्रमिष्णु^२
 रंगावलिचिद्रमचुष्णएहि^३
 वञ्चंति^४ रथणमालाघणाई^५
- ५ सियपुष्णकलसु^६ फलपत्तारिद्ध^७
 दोसइ कुमारु पीणत्थणीहिं^८
 हले हले परं^९ मण्णमिं^{१०} चंद्रमुहिय
 जा सरणागय^{११} सासणसमत्थे
 वरइत्तहो वलि किज्जमिं^{१२} सुधीरु
- १० उच्छाहें इय राउल^{१३} पइट्ट
 तो जंबुकुमारं कलहमुल्लु
 अहो खेयरवइ को इत्थं^{१४} गन्वु
 खत्तियहो परम एक्कु जि सुकम्म
 लज्जिज्जइ अवसारेण लोइ
- दूरसाविय^१ पट्टणे हट्टसोह ।
 सिरिखंडवहलरसछडच दिष्णु^२ ।
 पूरिउ चउक्कु मणिवण्णएहिं^३ ।
 सुरतरुनवकिसलयतोरणाई^४ ।
 वहि-दुव्व-कुसुम-अक्खयसमिद्धु^५ ।
 साहरणहिं नयरनियंविणीहिं^६ ।
 धण्णिय^७ विळासवइ रायटुहिय ।
 लंगेसइ सेणियरायहत्थे ।
 जसु धरि परिसु एकल्लवीरु ।
 दिष्णासणेसु^८ सव्व वि^९ षडट्ट ।
 मेल्लेवि सम्माणिवं^{१०} रथणचूलु ।
 जं जुञ्चिउ तं खंतव्वु सव्वु ।
 जं समरे न भज्जइ एहु धम्म^{११} ।
 विजयाजउ दइयायत्तु^{१२} होइ ।

[१२]

पत्तनमें मणिमौक्तिकोकी सजावटसे उत्पन्न क्लिरणोसि हाट-शोभादिखायी गयी। घर-घरमें कपूर्वकी आमोद प्रस्फुरित हुई, और श्रोखंडके घने रससे छटाएँ दी गयी। विद्रुमके चूर्ण तथा मणिवर्णोसि चौक पूरकर रंगोली बनायी गयी। प्रचुर रत्नमालाओं और कल्पवृक्षोंके नये किसलयोंके तोरण वांचे गये। धवल व पूर्ण कलश जो फलो व पत्रोंसे ऋद्धिसंपन्न, एवं दधि, दूर्वा, पुष्पों और अक्षतोंसे समृद्ध थे, उन्हें लिये हुए उन्नत स्तनोंवाली तथा आभरणयुक्त नगरकी मुंदरियोने कुमारको देखा (स्वागत किया)। (किसीने अपनी सखीसे कहा) — सखी ! हे सखी ! मैं मानती हूँ कि चंद्रमाके समान मुखवाली राजकन्या विलासवती वन्य है, जो शरणागतके लिए आसन (अर्थात् शरण व निर्वाहसाधन आदि सब कुछ) देनेमें नमर्थ श्रेणिक राजाका पाणिग्रहण करेगी। ऐसे वरके लिए बलिहारी है, जिसके घरमें ऐसा घोर-साहसी अद्वितीय वीर पुरुष (जंबूस्वामी) विद्यमान है। इसप्रकार उत्साहपूर्वक मव राजकुलमें प्रविष्ट हुए, और दिये हुए आसनोंपर बैठे। तब जंबूकुमारने कलहके कारणभूत रत्नचूलको (वंदीगृहसे) छोड़कर, उसका सम्मान किया, (और कहा) — अहो खेचरपति ! यहाँ (इस संसारमें) गर्व किस बातका ? जो आपके साथ युद्ध किया उस सबको क्षमा करें। धर्मियका एक ही परम सुकर्म यह है कि युद्धमें भी अपने इस (क्षात्र)धर्मको नष्ट न होने दे, क्योंकि पीछे हटनेसे लोकमें लज्जित होना पड़ता है; विजय और अजय(पराजय) तो देवाधीन होनी है।

[१२] १. क र ग इ सोह । २. क व ह दरि । ३. च म् । ४. व कुम् । ५. क वत् । ६. व मणिवत् । ७. क ड त । ८. व शराई । ९. ग किमलड । १०. क ड कम्म । ११. क रिद्ध । १२. क ड ममि । १३. ह यर । १४. व मत्तमि । १५. व घत्तिय । १६. क ट गट । १७. क व ल । १८. क ट रावलि । १९. क ट मव्वडं । २०. व ट डं । २१. व इत्तु । २२. घ धमु । २३. र ग पत्तु, व धत्तु ।

लइ जाहि सपरियणु करहि रज्जु रयणसिहु भणइ^{२४} सहगमणु^{२५} सज्जु । १४
 सह^{२६} पइ^{२७} जि^{२८} जसुज्जल जामि ताम मगहाहिउ नियमि^{२९} कुमार जाम ।
 घत्ता—सज्जनजणियरस^{३०} कइवयदिवस^{३१} बोलेविणु सुहि-साहार^{३२} ।
 वरविमाणट्टिण उकंठिणण गमु सज्जिउ जंबुकुमार^{३३} ॥१३॥

[१३]

विज्जाहररयणसिहसमाणइ^१ चलियइ^२ पंचसयाइ^३ विमाणइ^४ ।
 चलिउ^५ मियंकु सभज्ज^६ सक्कणउ^७ गयणगइ वि चलयउ^८ भाणुणउ^९ ।
 सयल वि नहि सविमाण पधाइय नम्मय-कुरुलसिहरि^{१०} संपाइय ।
 खंधावारु नियवि सुपमाणइ^{११} लविधाइ^{१२} अत्थाणे विमाणइ^{१३} ।
 उत्तरेवि जयकारिउ राणउ^{१४} मउडवद्धनरनाहपहाणउ^{१५} । ४
 जंबूसामि नियवि मगहेसे आलिगिउ भुएहि^{१६} संतोसे^{१७} ।
 सिरु^{१८} चुवेवि जंघहि^{१९} वइसारिउ^{२०} सुहु^{२१} जोयतें साहुकारिउ ।
 सवु वि गयणगइ^{२२} जं चाहिउ रणविचंतु नरिदहो साहिउ ।
 एहु मियंकु देव उवलक्खहि^{२३} कण्णारयणु^{२४} एउ तं लक्खहि^{२५} ।
 ग्रहु सो विज्जाहरवइ आयउ^{२६} नामें रयणचूउ विक्खायउ । १०
 ताम नराहिवेण परियाणिय^{२७} कयसंभासण पुणु सम्माणिय ।

तो- लीजिए, अपने परिजनोसहित जाइए और राज्य कीजिए ! इसपर साथमें चलनेको प्रस्तुत रत्नशेखर कहने लगा—हे धवल-यशस्वी-कुमार ! मैं भी तुम्हारे साथ ही जाऊँगा और मगधराज श्रेणिकके दर्शन करूँगा । सज्जनोके हृदयमें प्रेमरस उत्पन्न कर और कतिपय दिवस कृतज्ञ सुहृत्के साथ व्यतीत कर, सुंदर विमानमें बैठकर, जंबुकुमार गमनके लिए उद्यत हुआ ॥१२॥

[१३]

विद्याधर रत्नशेखरके साथ पांच सौ विमान चले । मृगांक अपनी भार्या व कन्या सहित चला । गगनगति भी उन्नत-मान होकर चला । सभी विमानोंसहित आकाशमें दौड़ने लगे और नर्मदाके निकट कुरुल पर्वतपर आये । वहाँ सुप्रमाण स्कंधावार देखकर, समास्थलमें विमान लटकाये गये । (सवने) उतरकर मुकुटबद्ध-राजाओके प्रधान राजा (श्रेणिक)का जय-जयकार किया । जंबूस्वामीको देखकर मगधेशने संतोषपूर्वक भुजाओसे आलिगन किया, शिर चूमकर अपनी जांधोपर (गोदीमें) बैठाया, और उसका मुख देखते हुए साधुवाद दिया । गगनगतिने भी जैसा उसने चाहा, वैसा युद्धका समस्त वृत्तांत राजाको कहा—हे देव ! इन मृगांकको देखिए, और यह वह कन्यारत्न है, इसे भी देखिए ! यह वह विद्याधरपति आया है, जो रत्नशेखर नामसे विख्यात है । तब नराधिपने सबको जानकर संभाषण करके,

२४. घ लं ड । २५. ख ग घं गमण । २६. क ग सह । २७. ख ग पइ । २८. व मि । २९. क डं वि । ३०. क डं रसा । ३१. क ड कयवयदिवमा ।

[१३] १. ख ग घं समाणह । २. क लं य । ३. ख ग घं ज्जु । ४. घं नउ । ५. क ख ग ल चलिउ । ६. क णउ । ७. क ड कुरुल । ८. क णउ । ९. प्रतियोमें सिं । १०. ख ग चिरि । ११. क लं हि । १२. ख ग रिउं । १३. व मुहुं । १४. घं गडड । १५. क ख ग वं वल्लहि । १६. घ कन्ना । १७. क ख ग लक्खहि । १८. क ड आडउ । १९. व णिउं ।

सुहसुहुत्ते जणनयणाणंदणि
 खयर-मिथं क विरोहविषज्जिय
 पेसिउ गयणगइ वि सत्थाणउं^{२१}
 १५ निय-पुरि पत्तउ जाम पईसइ
 नाम सुहम्मसामि विहरंतउ
 पविरलकयलोएण महीसैं
 घत्ता—निवइ-नियउ-चरहिं संथुउ नरहिं तउ^{३७} जंबुकुमारें उत्तमुं^{३८}।
 हयतमुं^{३९} तणु चरमु गणहरुं^{३०} परमु सिरि-वीरजिणदहो^{३१} पंचमु ॥१३॥

इय जंबूसामिचरिपु सिंगारवीरे महाकब्बे महाकइदेवयत्तसुयवीरवीरहए रयणसिहलसंगामो
 नाम^{३२} सत्तमो संधी समचो^{३२} ॥ संधि-७ ॥

फिर संमान किया । शुभसुहुत्तमें सब लोगोंके नेत्रोंको आनंद देनेवाली मृगांककी पुत्रीको राजाने विवाह लिया । परस्पर शत्रुभावरहित विद्याघर(रत्नचूल) और मृगांक राजा, इन दोनोंको किंकर(सेवक)बनाकर विसर्जित(विदा) कर दिया । गगनगति भी स्वस्थानको भेज दिया गया, और स्वयं नरपति प्रयाण करके, अपने नगरको पहुंचकर, जब (भीतर)प्रवेश करने लगा, उसी समय उपवनमे महामुनि दिखाई दिये । उनका नाम सुधर्मस्वामी था, और वे पांच सौ शिष्योंके साथ विहार करते हुए वहाँ पधारे थे । लोगोंके कर्म हो जानेपर, राजाने (मुनिको) गिरसः प्रणाम कर भक्तिपूर्वक बंदना की । (अज्ञान)अंधकारका नाश करनेवाले, चरमशरीरो, तथा श्री महावीर जिनेन्द्रके पांचवें अंतिम व उत्तम गुणधरकी राजाके निकटवर्ती अनुचरोने स्तुति की और फिर जंबुकुमारने ॥१३॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित जंबूस्वामीचरिय नामक इय अंगार-
 वीरसात्मक महाकाव्यमें 'रत्नशेखर संग्राम' नामक सप्तम संधि समाप्त ॥ संधि-७ ॥

२०. ख ग णदिणि । २१. क णउ । २२. क घ ट अप्पणु । २३. ग ग घ हेड । २४. ग ग णि ।
 २५. ख ग मह प; घ मजुत्त । २६. क ड य । २७. क ग ग णु । २८. क घ ट णयणम् । २९. क घ ट
 मोहिय । ३०. क ह र । ३१. क घ ट जिणि; ग ग दहं । ३२. क घ ट मनमा दमा गंधो ॥ गणि. ७ ॥

संघि—८

[१]

आरिसकहाप्र अहिचं महुकीला^१ करि-नरिदपत्थाणं^२ ।
 संगामो वित्तमिणं^३ जं दिद्धं तं खमंतु महुं गुरुणो^४ ॥१॥
 कव्वंरसरसमिद्धं^५ चित्तंताणं कइण सव्वं पिं ।
 वित्तमहवा न वित्तं सच्चरिए घडइ जुत्तमुत्तं जं^६ ॥२॥
 मा वण्णउं^७ असमत्थो धारेउं सव्वकव्वरसपूरं ।
 नियसत्तिरुव्वं^८ संगहियरसकणो ट्ठाउं^९ तुण्हिक्को^{१०} ॥३॥
 कव्वरस इमस्स मए विरइय-वण्णंत्सं^{११} रससमुइस्स ।
 गंतूण पारमहियं थावउं^{१२} अत्थं महासंतो ॥४॥
 सालंकारं कव्वं काउं पढिउं च जुञ्जिउं तह य ।
 अहिणेउं^{१३} च पवोत्तुं^{१४} वीरं मुत्तुणं^{१५} को तरइ ॥५॥
 [घत्ता]—भत्तिप्रं^{१६} अरुहयाससुएण जोडियमुएणं^{१७} पणवेपिणु हरिसियगत्तं ।
 निम्मलनाणचउक्कधरु गणहरुं^{१८} पवरुं^{१९} पुच्छिज्जइ उत्तमसत्ते ॥१॥

[१]

आर्पप्रोक्त कथासे अधिक मैंने वसंतक्रोड़ा, हाथी(का उपद्रव), नरेंद्रके प्रस्थान व संग्रामका, यह सब जो वृत्त कहा, उसके लिए गुरुजन मुझे क्षमा करें ॥१॥ चितनशील कवियोंके द्वारा काव्यके अंग व रसोसे समृद्ध चाहे वह घटित हुआ हो या न घटित हुआ हो, जो कुछ युक्ति-युक्त कहा जाता है, वह सब सच्चारित्रमें घटित अर्थात् संभावित होता है ॥ २ ॥ समस्त काव्यरसके पूरको धारण करनेमें असमर्थ लोग स्वयं (काव्यगत विषयोंका) वर्णन न करे, अपनी शक्तिके अनुरूप रसकणोका संग्रह करके अर्थात् काव्योके अध्ययनका ही रस लेकर, मौन ही रहे ॥३॥ मेरे द्वारा रचे हुए नाना वर्णों व रसोके समृद्ध इस काव्यके पार जानेके लिए महासंत जन (सहृदय लोग) इसमें (अभिधावक्तिके प्रतीयमान अर्थको अपेक्षा, लक्षणा व व्यंजना शक्तियोके आश्रयसे) अधिक अर्थ (विशेषार्थ)की स्थापना करें ॥४॥ अलंकार-सहित काव्य रचने, पढ़ने, जानने तथा अभिनय और प्रयोग करनेमें वीर (कवि)को छोड़कर और कौन पार पा सकता है ॥५॥

वरहृदासके उत्तम आत्मा पुत्रने भक्ति-भावसे हाथ जोड़कर, प्रणाम करके प्रसन्न गात्र हो, निर्मल ज्ञानचतुष्क (मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय)के धारक उन गणधरप्रवरसे पूछा—॥१॥

[१]

१. क 'कोलाळ । २. ख ग करिदप' । ३. व चित्तमणि । ४. ख ग महु, व मम । ५. क ड गुणिणो, व गुणिणे । ६. घ मे इस पूर्ण पक्तिके स्थानमे यह पंक्ति है—'सिसेयु सिद्ध तंतं ताणं कवीण सव्वं पिं कहियकम' । ७. क ड कव्व सरसपमिद । ८. व चित्तमहवा ण चित्तं । ९. ख ग जुत्तमजुत्तं । १०. क घ ड उं । ११. क ड 'त्तव, ग 'रुव, घ 'रुय । १२. घ ड ठाउ । १३. ख ग 'क्के, व तुण्हिक्को । १४. घ वत्तं । १५. व ड वो' । १६. ख ग 'णेत्तुं । १७. घ पउत्तुं । १८. व मो' । १९. क ड 'य । २०. व 'भुइणा । २१. क 'व हर । २२. घ पउर ।

[२]

खंडयं—पहु तउ दंसणकारणं लहिवि^१ वियप्यइ मे यणं ।
 सहु^२ तुम्हेहिं ससुच्च^३ चिरभवि कहि मि परिच्चयं^४ ॥

५ तं निसुणेवि वयसीलसमुदे विदुम इव^५ फुरियाहरमुदें ।
 दर दरसियकुंदुज्जलदते अमियपवाहु व गिरण सवते ।
 चिरभवकारणु सुमरावंतें जंबूसामि भणिउ^६ भयवंतें ।
 कहमि कुमार तुज्जु आयण्णहिं^७ मणसंकपु एहु फुडु मण्णहिं^८ ।
 भव्वहो नियडीहुयभवछेयहो सन्वु जिं^९ फुरइ चित्ति सधिवेयहो ।
 एत्थु जि मगहादेसि असंकिउ नामें गामु वडुढमाणंकिउ ।
 तहिं^{१०} भवयत्तनामदेवोत्तरं^{११} दिव्यवरतणय वेण्णि दीहरकर ।
 १० परममहावयचरणु^{१२} चरेपिणु हुय सुर तइयण सगो मरेपिणु ।
 पुव्वविदेहि जाय तत्थहो जुय वज्जयंत-महपत्तमनिवइ-सुय
 सायरससि-सियकुमर-वियक्खण घोरु वीर तउ चरिवि सलक्खण^{१३} ।
 घत्ता—वेण्णि वि धंभोत्तरि अमर सक्कसिरीधर जलकंतविमाणणु^{१४} सुत्थिय ।
 आउसु जेत्थु सुहायरइं दससायरइं^{१५} मुंजंत सोक्ख-विविहाइं^{१६} थिय ॥२॥

[२]

‘प्रभु आपके दर्शनोका हेतु प्राप्त कर मेरे मनमे ऐसा विकल्प हुआ है कि आपके साथ कही पूर्वभवमे विशिष्ट (प्रगाढ) परिचय रहा ।’ इस बातको सुनकर व्रत और बीलके समुद्र, विद्रुमके समान स्फुरायमान अवरमुद्राके धारक, कुंदपुष्पके समान उज्ज्वल दांतोको ईपत् दिखलाते हुए, और वाणीसे अमृतका प्रवाह-सा बहाते हुए, तथा पूर्वभवके कारण (संबंध)को स्मरण कराते हुए उन भगवान्(मुनि)ने जंबूस्वामीको कहा—‘हे कुमार, मैं तुम्हे कहता हूँ, सुनो! यह तुम्हारा मनोभाव है, ऐसा स्पष्टतासे समझो । क्योंकि जिस भव्यजीवका भवच्छेद (मोक्ष) निकट हो गया है, ऐसे विवेकवान्के चित्तमे सब कुछ स्पष्ट भासित होता है । यही इसी मगधदेशमे वर्द्धमान नामका एक भय-भीतिरहित गाँव था, वहाँ एक भवदत्त और दूसरा महाव्रत चारित्र (मुनि-धर्म)का पालन कर वे मरकर तीसरे स्वर्गमे देव हुए । वहाँसे च्युत होकर पूर्वविदेहमे वज्जदत्त और महापद्म नामक राजाओके सागरचंद्र और शिवकुमार नामक (शुभ)लक्षणोसे युक्त एव विचक्षण पुत्र हुए । वहाँ घोर पराक्रमपूर्वक तप करके वे दोनों ही ब्रह्मोत्तर स्वर्गके जलकात नामक विमानमे इंद्रकी लक्ष्मीके धारक देव हुए; और दस सागरकी सुखकर आयु पाकर, विविध सुखोका भोग करते हुए वहाँ रहे ॥२॥

[२] १. क ड लहु वि, ख ग लहुइ । २. क महु; ड महु । ३ व कहि । ४ क ड परिच्चयं ।
 ५ क ड इह, घ रइ । ६ घ दरिसियं । ७. घ उ । ८ क रस ग तुज्जु । ९ प्रतियोमे ण्णहिं ।
 १०. क ड हिं, ख ग मत्ताहिं । ११. घ वि । १२ क तहिं । १३. क घ ड भवणामवत्तं । १४ ख ग
 चरण । १५ क ड वल्लणु । १६. घ णइ । १७. क ड रइ । १८ क हाइ, ख ग हइ; घ हइ;
 ड हाउ ।

[३]

खंडयं—तहिं वेणिण वि परोप्पर चिरभवनेहनिठभरं ।
वसिऊणं तओ चुया इह भरहे पुणो हुया ॥

अह एत्थु जि वरमगहाविसए	सुररमणिसासवासियदिसए ।	
जिणमंदिरमंडियधरणिगियले	इंदीवररयकयसुरहिले ।	
संवाहणु ^३ नामु अत्थि ^४ नयरु	नायरविलासहासियखयरु ^५ ।	५
सावयसंकिण्णवणु ^६ व द्वियउ	पायलु व नायाहिद्वियउ ।	
रहुकुलु व सलक्खणरामधरु ^७	अण्णाणुवएसु व नट्टपरु ।	
वहुवाणिउं मयरहरु व सहइ	जहिं हट्टमग्गु भारहु कहइ ^८ ।	
वावरइ दोणु पसरंतसरु	पत्थु वि संचरइ करेण करु ।	
भुयतुलतोळियकंसावरिउं ^९	पयडइ व कहिं ^{१०} मि केसवचरिउ ।	१०
वहुसंथउ जणियपयक्खलणु ^{११}	कत्थइ ^{१२} थिउ णं जडचट्टणु ।	
जणु कहिं ^{१३} मि सवासणु ववरइ	रक्खससमवायहो अणुहरइ ।	

[३]

वहाँ दोनों ही परस्पर पूर्वभव-जन्य स्नेहसे भरपूर होकर रहे । वहाँसे च्युत होकर पुनः इसी भारतमें हुए । अब यही इस सुंदर मगध देशमें, जहाँ सुररमणियोंके आश्वाससे दिशाएँ सुगंधित है, जहाँका भूमंडल जिनमंदिरोंसे मंडित है, और जहाँका जल इंदीवरोके पराग-रजसे सुरभित है, ऐसा संवाहन नामका नगर है, जहाँके नागरिकोंका विलास खेचरोके विलासका उपहास करता है । श्रावकोसे संकीर्ण होनेसे वह श्वापदोंसे संकीर्ण बनके समान स्थित है, और नागोंसे अधिष्ठित पातालके समान नागवृक्षों अथवा न्याय-नीतिसे अधिष्ठित है । लक्ष्मणसहित राम तथा सुलक्षण रानियोंको धारण करनेवाले रघुकुलके समान वह नगर सुलक्षण वृक्षोंसहित आरामों तथा सुलक्षणा सुदरियोंका धारक है । जिसप्रकार अज्ञानोपदेशसे परमार्थ नष्ट हो जाता है, उसीप्रकार उस नगरके शत्रु नष्ट हो गये हैं । बहुत वनियों (व्यापारियों)से युक्त होनेसे वह बहुत अधिक पानीवाले मकरगृह (सागर)के समान शोभा पाता है । वहाँका हाटमार्ग (बाजार) मानो भारत कथाको कहता है । भारत-युद्धमें वाणोंका प्रसार करते हुए गुरुद्रोण (युद्ध) व्यापृत थे, वहाँके हाटमार्गमें खूब शब्द करता हुआ द्रोण नामक माप व्यापृत अर्थात् व्यवहृत होता है । कहीं पर वह केशवके चरित्रको प्रगट करता है, जिसमें केशवने अपनी भुजाओरूपी तुलामे कंस-जैसे प्रधान (शत्रु) को तोला अर्थात् विजित किया था; वहाँ हाथोंसे तौलनेवाली तुलामे काँसेकी बनी श्रेष्ठ वस्तुएँ तौली जाती हैं । कहीं बहुत-से व्यापारियोंके साथ व्यापारमें गिरावट (या रुकावट) जानकर इसप्रकार ठहरे हुए हैं, जैसे कि मूर्ख शिष्य पाठमें स्वल्प जानकर खड़े हो जाते हैं । कहीं दासनों (वरतनों)का व्यापार करनेवाले लोग,

[३] १. ङ चिरं, ख ग नेहानिं । २. क ड भरहेण पुं, ख ग भारहे पुं; घ भरहे पुणु ते हुय । ३. क ड गाम अं, घ अत्थि नाम नं । ४. क पायरविसालं । ५. ग सावइ; क ड संकिण्णवणु; ख ग घ संकिण्णु वणु । ६. ख ग घ सलक्खणु रामं । ७. ख ग घ वाणिउं । ८. क ड सहइ । ९. क भुअं; ख ग घ तुलतोळिउ कंसां, ड भुअतुलतोळियकंसाचरिउ । १०. घ कहिं । ११. क ङ जाणियपयक्खलणु । १२. घ ईं । १३. घ कहिं ।

जहि अक्खरसंगहि^{१५} सहहि^{१५} कइ देटहि^{१६} जूवार^{१७} न्विचित्तमइ ।
 जिणहरहि^{१८} सदपण-पुज्जनया^{१९} दीसंति मुणिइ वि तहिं जि सया ।
 १५ घत्ता—तं पुरु^{२०} सुपइडियनिवइ^{२१} जिणचरणमइ परियालइ समरे वलुद्धर^{२२} ।
 कुवलयपरिवडिइयहरिसु^{२३} छणससिसरिसु महिवीडभारधारिययुरु^{२४} ॥३॥

[- ४]

[खंडयं]—तहो सुहलखणभायणा^१ गुरुदेववचनकथमणा^२ ।
 सिगारासयसिपिणी^३ पढमकलत्तं रुपिणी^४ ।
 भवयत्तु जेहु जो विहि मि चिरु^५ सुरे सायरचंदु पुणो वि सुर ।
 सो जाउ पुत्तु जणजाणियहे^६ नरनाहे रुपिणीराणियहे^७ ।
 ५ सउहम्मनामु विज्जापवरु नीसेससथविण्णाणधरु^८ ।
 सज्जणमणनयणाणदयरु^९ लाइयपडिचक्खकुमारडरु ।
 एकहि^{१०} दिणे सुप्पइहु^{११} निवइ सकलत्तु सनंदणु सुद्धमइ ।
 गउ वंदणभत्ति^{१२} भवतरणु सिरिवीरजिणंदसमोसरणु^{१३} ।

शव-अशनका व्यवहार (प्रयोग) करनेवाले (शव-भोजी) राक्षस समूहका अनुकरण करते हैं। कही अक्षरोंका संग्रह अर्थात् काव्य पदोंकी रचना करते हुए कवि ऐसे बोधायमान होते हैं, जैसे द्यूतगृहोंमें पासोंके रसमें तल्लीन विचित्रबुद्धिवाले जुआड़ी। वहाँके जिनगृहोंमें सद + अप्रण अर्थात् सदाचारका पालन करनेवाले तथा पूज्य-वचन बोलनेवाले मुनींद्र सदैव दिखाई देते हैं। जिनचरणोंका भक्त, समरमें उद्धत बलशाली, कमलौ (कुमुदों)को पूर्णतः प्रफुल्लित करनेवाले पूर्णचंद्रमाके समान पृथ्वीमंडलके हर्षको बढ़ानेवाला, एवं पृथ्वीके भारकी धुराको धारण करनेवाला सुप्रतिष्ठ नामका राजा उस नगरका पालन करता है ॥३॥

[४]

उसकी शुभलक्षणोंकी भाजन, गुरु व देवताके अर्चनमें मर्न लगानेवाली तथा शृंगारके आशयकी शिल्पिनी अर्थात् शृंगारके मर्मको समझनेमें दक्ष, ऐसी रुक्मिणी नामकी प्रधान रानी है। पूर्वभवमें जो ज्येष्ठ (आता) भवदत्त था, फिर देव, फिर सागरदत्त और पुनः देव हुआ था, वह राजाकी जनमान्या रुक्मिणी रानीका पुत्र हुआ। उसका नाम सौधर्म रखा गया। वह विद्याओंकी जाननेमें श्रेष्ठ और समस्त शास्त्रों व विज्ञान(कलाओं)का धारक, तथा सज्जनोंके मन और नयनोंकी आनंद देनेवाला, एवं शत्रुपक्षके राजकुमारोंको डर उत्पन्न करनेवाला हुआ। एक दिन वह शुद्धमति सुप्रतिष्ठ राजा अपनी पत्नी और पुत्रके साथ वंदना करनेकी भक्तिसे संसारसे पार उतारनेवाले वीरजिनेंद्रके समोच्चरणमें गया और उन परमेष्ठोंकी दिव्यध्वनि सुनकर

१४ क ड 'सगय । १५ ख ग ड 'हि । १६ ख ग घ टिटिहि । १७ घ जूवार । १८ क ड 'रहि ।
 १९ क ख ग 'रया, घ पूरय । २०. घ पुरि । २१ क ड 'डियणि । २२ क वल', ड 'डइ ।
 २३ 'क 'परिवडय' । २४. क ख ग ड 'घर ।

[४] १ क ड 'भायणं । २ क ड 'मण । ३. ख ग 'सपिणी । ४. क ख ग ड 'कलत्ता' ।
 ५ क ड 'भवयत्तु । ६ क वले, घ विर । ७ ख ग सुर । ८ ख ग जायउ । ९. क घ 'यहे, ड 'यहो ।
 १०. ख ग घ 'यहे, ड 'यहो । ११ क ड 'णाम, घ 'नाम । १२. घ 'विण्णाणं, ग 'घर । १३. घ 'णदणहो ।
 १४. ड 'हि । १५ ख ग 'इहु । १६ क घ ड 'हत्तिप । १७. क घ ड 'जिणंद', क ड 'समवतरणु ।

निसुणेवि परमेद्धिहि ^१ दिव्यद्युणि	पवञ्ज लेवि हुड परमसुणि ।	
गणहर ^२ चउत्थु तवतवियत्तणु	सिद्धिवहुनिवेशियविमलमणु ।	१०
पेक्खेवि जणेरु निवसिरिचइ ^३	सउहम्मकुमारु वि पवइड ।	
गणहर पंचसु नासियदुहहो	अविणट्ठथाणु सासयसुहहो ।	
सा हउ ^२ रिसिसंघविराइयउ	विहरंतुज्जाणि पराइयउ ^२ ।	

घत्ता—जो भवएउ विहि मि लहुड पुणु अमरु हुड पुणु सिवकुमारु सुरवरु पुणु ।
 विज्जुमालि^३ -गिग्वाणु^२ हुउ^२ चउ-देवि-जुउ जलकते विमाणे महागुणु ॥४॥ १५

[५]

खंडयं—सगगचविउ मणोहरे जायउ एत्थु जि पुरवरु ।
 सो तुह^१ जियसकंणो अरुहयासचणिनंदणो ॥१॥

जं तं तउ चिरु देविचउळं	ळम्मासावहि-पिययमसुकं ।	
चिरुभवनेहनिवद्धं आयं	सायरदत्ताईणं जायं ।	
दुहियचउळं विज्जाविमलं	चरणोहासियं-कोमलकमलं ।	५
करपल्लवजियरत्तासोयं ^३	भमरपीयसुहसासामोयं ^१ ।	
मणिमयकुंडलमंडियगंडं	कामघणुद्धरअगिमकंडं ।	

प्रव्रज्या लेकर महामुनि हो गया । उन तपसे तपाये हुए तनवाले चतुर्थ गणधरने सिद्धिबधमें अपने विमल मनको लगाया । इसप्रकार अपने जनकको राजलक्ष्मीका त्यागी होते देख सौधर्म कुमार भी प्रव्रजित हो गया । उन दुःखका नाश करनेवाले और शाश्वतसुखके पद (मोक्ष)को प्राप्त वीरजिनेंद्रका वह पांचवाँ गणधर ही मैं हूँ, और मुनिसंघके साथ विहार करते-करते इस उद्यानमें आ पहुँचा हूँ । दोनो भाइयोंमें छोटा जो भवदेव हुआ था, फिर देव, फिर शिवकुमार और फिर उत्तम देव हुआ, वह विद्युन्माली नामका महागुणवान् देव जलकांत विमानमें चार देवियोसे युक्त हुआ ॥४॥

[५]

वही तू स्वर्गसे च्युत होकर इस मनोहर सुंदर व श्रेष्ठ नगरमें अरहदास वणिक्का इंद्रको भी जीतनेवाला पुत्र हुआ है । पूर्वमें वे जो तुम्हारी, चार देवियाँ थीं, वे प्रियतमके स्वर्गसे च्युत होनेकी छह मासकी अवधिसे उपरांत पूर्वभवके स्नेहसे बंधी हुई (स्वर्गसे) आकर सागरदत्तादिको उत्पन्न हुई है । वे चारों पुत्रियाँ विद्याओंमें विमल अर्थात् विद्याओंके विमलज्ञानसे युक्त, अपने चरणोकी शोभासे कोमल कमलको तिरस्कृत करनेवाली, तथा अपने कर-पल्लवोंसे रक्ताशोकको भी जीतनेवाली हैं, और उनके मुखस्वासका आमोद भ्रमरों-द्वारा पीया जाता है, अर्थात् भ्रमर उनके मुखोंको कमल एवं उनके मुखके स्वासको-कमलगंध समझकर उनपर मंडरते रहते हैं । मणिमय कुंडलोसे उनका कपोलप्रदेज मंडित है, और वे काम-घनुद्धरके अग्रिम (श्रेष्ठ)वाण ही

१८. घ ङ ०दिहि । १९ क ङ गहणर । २०. व तवसिरिवइड । २१. ख ग हउ । २२. क ड इहाइयउ ।
 २३. ख ग विज्जं । २४. क ड ०ण; ख ग ०ण । २५. क ड चुउ ।

[५] १ क ङ तुह । २ क ड चलोणं । ३ ख ग ०सोए । ४. ख ग ०मोए ।

१० दिग्गं^५ तुच्छं ताप्रं^६ तं सत्त्वं दसमप्रं^७ वासरे परिणयेज्जं^८ ।
 इय कल्लेण कुमार पविचं^९ परिचप्रं^{१०} पडिल्लं^{११} ते चित्तं ।
 अम्हे^{१२} लोयाणं^{१३} दियदेहं परयाणहिं^{१४} जन्मंतरनेहं ।
 निसुणेवि सुणिवयणं सुहकम्मो सविसेसं सुभरिय नियजम्मो ।
 पुणु पुणु जइचलणेसु^{१५} भत्तो जंपइ^{१६} जंबूसामि सुसत्तो ।
 घत्ता—मोक्खमहापहे गमु रयमि परिणु चयमि निज्जिण्णं^{१७} महु वृत्त किज्जद ।
 चिरु भवे जिह मणु^{१८} संवरिउ^{१९} वइयंवरिय सुहु^{२०} मोक्खदिक्ख पहु^{२१} दिज्जजाइ॥

[६]

खंडयं—इय सोऊणं मलहरो^२ बोल्लइ वयणं^३ गणहरो ।
 ता वरूचसु सनिहेलणं^४ पुच्छसु पियमायाजणं^५ ॥१॥

५ भणइ ताम मेल्लियमणुज्जभवो अरुह्यासजिणवइत्तणुज्जभवो ।
 मायवप्पु इह अल्लु भणियओ^६ एत्तिओ^७ जं तेहिं^८ जणियओ^९ ।
 ५ कहि मि काले जं पुणु न भावियं दुलहु^{१०} जम्मकोडिहिं^{११} न पावियं^{१२} ।
 धम्मरयणु तं तउ पसाण्णं^{१३} लहु सीलु तह विणु^{१४} कसाण्णं^{१५} ।

हैं। (तुम्हारे) तातने उन सबको तुझे दे दिया है, अर्थात् तुम्हारे लिए उनका वाग्दान कर लिया है, वसवें दिन उनसे तुम्हारा परिणय होगा। इस कारण (पूर्वभव संबंध) से, हे कुमार! तुम्हें रा पवित्र चित्त मेरे परिचयमें लग गया। हम-लोग लोगोंके शरीरमें आनंद उत्पन्न करने-वाले पूर्वजन्मके स्नेहको जानते हैं। मुनिके वचनोंको सुनकर विशेषरूपसे अपने पूर्वजन्मका स्मरण कर पुनः पुनः यतिके चरणोंमें भक्ति दशति हुए, शुभकर्मोंवाले सुसत्त्व (पवित्रात्मा) जंबू-स्वामी कहने लगे—हे प्रभु! मैं मोक्ष-महापथमें गमन करूँगा और परिजनोको छोड़ूँगा। मैं संसारसे उदासीन हो गया हूँ, मेरे ऊपर दया कीजिए, और पूर्वभवमें जिसप्रकार (मेरे) मनको संबृत् अर्थात् संवरयुक्त बनाया था, उसीप्रकारकी शुभ (श्रेयस्कर) दिगंबरी-मोक्ष-दीक्षा दीजिए ॥५॥

[६]

यह सुनकर वे (कर्म) मलनाशक गणघर बोले—‘तो फिर अपने घर जाओ और माता-पिताजनोसे पूछो।’ तब मनोद्भव अर्थात् कामवासनाको त्यागनेवाला बरहदास और जिन-भतीका तनुज बोला—आज जिन्हे यहाँ मई-बाप कहा जाता है, वह इतने (से) ही कि उनके द्वारा जन्म दिया जाता है। कोटि-कोटि जन्म पाकर भी जो वृद्धंभ घन पहले कभी नहीं मिला था, और जिसका पहले कभी अभ्यास नहीं किया था, वह धर्मरत्न तथा कपायरहित शील

५. ख ग दित्त । ६. घ तए । ७. क ष रु दसमे । ८. ख ग व्व । ९. क ख ग घ परिचय, ल पडिचय । १०. क घ ल अम्हा । ११. क ल जय । १२. ख ग डं । १३. घ तद. ह ण्याउं । १४. प्रतिवोमें ‘मण’ । १५. क ख ग संवरिय, घ द नंवरिय । १६. क द मोक्खु दिवइ महु ।

[६] १ क घ मण । २ ख ग वइयं । ३ क ल सहणिहं, ख ग सुहणिहं । ४. क व द पिउं । ५. ग यउ । ६. ख ग डं । ७. ख ग यउ; घ द यउं । ८ क घ द जम्मकोडि-कोडिहि (घ न) पावियं । ९ ख ग यण । १०. क विण ।

मायवप्पु तुहँ^{११} तुहँ जि वंधवो^{१२} तुहँ^{१३} जि मित्तु तारियमहामवो^{१४}
 तुहँ^{१३} जि देव गुरु तुहँ^{१३} जि सामिओ^{११} पई जि पडसु महु सोहु नामिओ^{१६} ।
 विज्जमाणकणयमयचामरं दावियं सुहं माणुसामरं ।
 करि पसाउ लड पुव्वचारिणं देहि दिक्खं^{१७} किं बहु-विचारिणं^{१८} । १०
 घत्ता—निच्छउ तहो वोरहो^{१९} सुणेवि वयणई सुणेवि सउहम्ममहासुणि भासइ ।
 मायवप्पु पुच्छंताहँ^{२०} तउ लिताहँ^{२१} भणु पुत्त काई किर नासई^{२२} ॥६॥

[७]

खंडयं—चरमसरीरहो ते मणं म करउ किं पि वियप्पणं ।

आउच्छेपिणु परिचरणं सेवसु वच्छ तवोवणं ॥६॥

गुरुभासिउ आपसु लहेपिणु चलगजुयल्ले भन्तिप्र^३ पणवेपिणु ।
 गयउ कुमार पत्तु नियमंदिउ दाणार्णवियवंदिणवंदिउ ।
 जणणि-जणेहं पयहं^४ सिरु नादिवि करकमलंजलि सीसे चडाविवि । ५
 संसारिणिअवत्थ पुणु धोल्लइ चचरदीउ व माणुसु डोल्लइ ।
 अहिजीहाफुरणुं व जीविउ चलु गिरिणइपूरु व ओहट्टइ वल्लु ।
 लच्छिविलासु गंडपट्टमालणु विसयसोक्खु पामा-नहचालणु ।

तुम्हारे ही प्रसादसे प्राप्त हुआ । तू ही मेरा माँ-बाप है, और तू ही मेरा बांधव, तथा तू ही महासंसार(समुद्र)से पार उतारनेवाला मित्र । तू ही देव है, गुरु है, और तू ही स्वामी । तूने ही सर्वप्रथम मेरा मोह उपशांत किया था, और जहाँ स्वर्णमय चंवरोंसे व्यजन डुलाया जाता है, ऐसे मनुष्य और देवसुखोंको दिलाया था । (अतः) कृपा कीजिए और पूर्व (जन्मों) से ही (मोक्षमार्ग) चलनेवाले (मुझ)को दीक्षा दीजिए ! बहुत विचार करनेसे क्या ?

उस धीरका निदक्य जानकर और उसके वचनोंको सुनकर सौधर्म मुनि कहने लगे—
 रे वलस कहो तो ! माँ-बापको पूछकर, फिर तप लेनेसे क्या हानि होती है ? ॥६॥

[७]

रे वलस ! तुझ चरमशरीरीको अपने मनमें कोई विकल्प लानेकी आवश्यकता नहीं है, अतः परिजनोंसे पूछकर तपोवनका सेवन करना । गुरुके कहे हुए आदेशको लेकर, उनके चरण-युगलको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके, कुमार गया, और दानसे बंदीवृंदको आनंदित करनेवाले अपने घरको पहुँचा, एवं जननी और जनकके पैरोंको सिर नमाकर, करकमलोंकी अंजलिको शिर-पर चढाकर, वह बोला—‘यह संसारी अवस्था ऐसी है, जिसमें मनुष्यका (चंचल) मन चौरस्तेके दोपकके समान (साधारण विषयोंमें यहाँ-वहाँ) डोलता है । जीवित(आयुष्य) संपके जिह्वा-स्फुरणके समान चंचल है, और वल गिरिनदीके पूरके समान (निरंतर) ह्रासको प्राप्त होता रहता है । लक्ष्मीका विलास गंडमाला(रोग)के जैसा है, और विषयमुख नखोंसे खाज-

११. क ख ग तुहँ । १२. क हँ उ । १३. क हँ तुहँ । १४. क भओ । १५. क उ, घ उ । १६. क ह पासिओ, व उ । १७. ख ग देवत । १८. ह विचा । १९. क ह वो । २०. क उ तह । २१. क ह तउ त लँतह । २२. ख ग उ ।

[७] १ घ विणु । २. ख ग जुजलु । ३. क ह य । ४. क व ह जणे । ५. क ह हि, घ हि । ६. क ह दोवउ । ७. फुरणु ।

- १० इय कनेण अज्ज पव्वज्जामि
अप्यणुं खामिउं जग्गु जि न्यमावमि
सुयवयणाउ माय सुच्छंगय
न्यरपवणाहयकेलि व कंपिय
पुत्त पुत्त महुं जं पइं^१ पयडिउ
पुत्त पुत्त तुहं^२ मंडणु निलयहो^३
- सहं तुम्हहिं^४ खंनच्छु विरत्तमि ।
रायविरोहं वे वि उवसावमि ।
कहं व कहं व उम्मुच्छियं न वि सुय ।
मज्जलनयण-गगिर-गिर जंपिय ।
महिहरसिहरिं^५ वज्जुं^६ णं निवडिउ ।
तउ छेतेण जाइ कुलु विलयहो ।
- १५ यत्ता—पुत्तु जि गोत्तहो आसत्तु संताणधरुं गुहभारममुद्धियकंधरुं^७ ।
पुत्तु जि आवडवत्तरिहिं^८ कुलस्यकरिहिं^९ विद्धंसणवंधुरसिद्धुं ॥७॥

[८]

खंडयं—इयं संभारे जं पियं निसुणेवि जणणी जंपियं ।

चउवहदुक्खनियामिणा भणियं जंघुसामिणा ॥१॥

- ५ प्रहुं लोयायानं विसुद्धकम्मि
किर वंसुज्जालड जो म पुत्तु
जाएण न कंदिहिं वडिरे जण
दाणेण अहव तिल्लियरणेण
- को चवड च्विउ जं तुम्हि अम्मि ।
गुणिगणणिं पढसु आधारजुत्तु ।
नंदंति न सज्जण मइं सुहेण ।
सुकवित्तं अह जिणकित्तणेण ।

नुजलानेके समान है । इस कारणसे मैं आज ही प्रव्रज्या लूंगा । अपने आत्माको मैंने (सबके प्रति) धर्मा(भाव)से युक्त कर लिया है, और लोकसे भी मैं (अपने प्रति) समा(भाव) चाहता हूँ, एवं राग और विगेष(द्वेष) दोनोंको उपघात करता हूँ । पुत्रके इन वचनोसे मैं मूर्च्छित हो गया, और किसी-किसी तरह उन्मूर्च्छित हुई, मरी नहीं (अर्थात् किसी-किसी तरह मरनेसे बची) । वह तीव्र पवनने आहत कदलीके समान कांपने लगी, एवं सजलनेत्र होकर ऐसी गद्-गद् वाणी बोली—हे पुत्र ! तुम्हारे वचन (कुल)कल्याणके विरुद्ध और विनकारणीय हैं । हे पुत्र ! तूने जो कहा वह मेरे लिए पर्वतनिखरपर बज्रपातके समान है । हे पुत्र ! तू ही धरकी गोमा है, तेरे तप छेनेसे कुलका विनाश हो जायगा । पुत्र ही कुलका आधावृक्ष है, संतानोंका धारक है, और कुटुंबके नुदभागको कंधोपर उठानेवाला है । पुत्र ही कुलका क्षय करनेवाली आपत्ति-बल्लरीको विध्वंस करनेवाला श्रेष्ठ हस्ति है ॥७॥

[८]

इस संभारमें जो प्रिय है, जननीके वैभवं कथनको नूनकर चारों गतियोंके दुःखका नियमन करनेवाले जंघुसामिने कहा—‘हे शुद्धशील माँ ! यह जो लोकाचार तुमने बतलाया, वह दूसरा कौन कह सकता है ? निश्चयने पुत्र वही है, जो वंशको उज्ज्वल करे, तथा जो गुणियोंको गणनामें प्रथम हो, और आचारयुक्त हो । जिसके जन्म लेनेसे वैरी क्रोध नहीं करते, और सज्जन सदा मुग्धसे आनंद नहीं मनाते; जिसके दानसे अथवा रणको जीतनेसे; नुकवित्तसे

८. क इं हं । ९. क इं उ, व अप्यणुं । १०. क इं न्वमियउ; व खमियउ । ११. क इं पइ । १२. क इं सिद्धिं । १३. इ वज्ज । १४. इ तुहुं । १५. कं यहुं । १६. न्व गं भारसमुं, वं भसुद्धियं । १७. क इं रिद्धो; वं रिद्धिं । १८. क इं करिहो; वं करिहिं । १९. गं विधुरं ।

[८] १. क इं उह । २. न्व गं जो । ३. ख गं पुणं, वं गणेण । ४. घ सइं । ५. क इं नुकवित्तं ।

जसहंसु भुवणपंजर^१ न संतु
किं तेष पयापरिपूरणेण
दुःखसगभुत्तु कुलकंदखणणु
तो वरि तं करमि विवेयकम्म
सामणणहो^२ सञ्चु^३ न धरणिवल्लप्र
तं करमि न विगगहराइ पुणो वि
इंदियवावारा न जेत्यु फुरइ
जहि^४ मिल्लिउ विलीयइ कालदन्नु
जहि^५ खयहो पवच्चइ कलिकयंतु^६
कहियइ^७ इय कहिवि निरंतराई
संवाहियाप्र^८ मायप्र^९ पवुत्तु^{१०}

वर्भडे न धावइ अइकमंतु ।
नियजणणीज्जोत्तवणलूरणेण^१ ।
अत्यत्थिउ मारइ जणणि-जणणु ।
जिणकेवलीहिं जं आसि गम्मु । १०
कुलनामुक्कीरमि चंदफलप्र^२ ।
डंकेइ न जहि^३ मणमंक्कुणो वि ।
अत्थोयलंसु न विचार करइ ।
अत्थवणु^४ जाइ आयासु सन्नु ।
तउ चरमि निरंजणु होमि संतु । १५
सविसेसई^५ नियजमंतराई ।
पडिवज्जिउ सयलु वि पुत्त जुत्तु^६ ।

धत्ता—निच्छउ परिआणिवि नंदणहो सिवसुहसणहो पिधरे सिक्खनिवेशिय^{३३} ।

सायरपमुहुम्माहियहो वइवाहियहो नियपुरिस वेणिण संपेसिय ॥ ८ ॥

अथवा जिनभगवान्का कीर्त्तन करनेसे जिसका यश-हंस इस संसाररूप पिंजड़ेमें न समाता हुआ, इसका अतिक्रमण करके संपूर्ण ब्रह्मांडमें तीव्रगतिसे नहीं जाता; उस मात्र उदरपोषण करनेवाले अथवा प्रजापूरण (संतति वृद्धि) करनेवाले, निज-जननीके जीवनको काटने(लूटने)वाले पुत्रसे क्या जो दुर्ब्यसनीसे भक्षित(वशवर्त्ती) होकर कुलके मूल(धर्म)को ही खोद डालता है, एवं अर्थपरायण होकर माँ-बापको भी मार डालता है ।' तो अच्छा है कि मैं वह परित्यागकर्म (संसारत्याग) करूँ जो जिनकेवलियो-द्वारा गम्य रहा है । सामान्य व्यक्तिके लिए जैसा साध्य नहीं है, उसप्रकारसे मैं चंद्रमंडलपर अपने कुलके नामको उकेरूँगा । मैं वह कहूँगा जिससे पुनः विग्रह-गति (संसारमें आवागमन) न हो, और जिससे यह मनरूपी मत्कुण पुनः डंक न मारे (अर्थात् विषयोंकी तृष्णासे अभिभूत न करे) । जहाँ इद्रिय व्यापार प्रगट ही नहीं होता है, अर्थको (उपलब्धि या अनुपलब्धि) जहाँ विकार उत्पन्न नहीं करती, जहाँ मिलने (पहुँचने)से कालद्रव्य विलीन हो जाता है (अर्थात् जहाँ जन्म-जरा व मृत्यु नहीं होते), जहाँ समस्त आकाश अस्तंगत हो जाता है, और जहाँ कलिकृतांत क्षय हो जाता है, मैं ऐसा तप करूँगा, और निरंजन(कर्मरूपी कालिमासे रहित)-संत होऊँगा । यह कहनेके अनंतर उसने विशेषतासे (विस्तारपूर्वक) अपने निरंतर (पाँच) जन्मांतर्दोको कहा । तब बोधको प्राप्त हुई मैंने कहा—पुत्र । तूने जो कुछ प्रतिपादन किया, सब युक्त है । त्रिसुखमें मन लगे हुए पुत्र-का निश्चय जानकर पिताने विवाहके लिए उमाहे हुए (उत्साहित) सागरदत्त प्रमुख वणिगोंके पास शिक्षा(समाचार) देकर अपने दो पुरुष भेजे ॥८॥

१. क ड भुवणु, ख ग भुयणु, घ भुयणु । ७. ख ग नियजणणे । ८ व ११हो । ९. क मज्जु । १० व ११फलड । ११ व जहि । १२. ड जहि । १३ क ड अर्थ । १४. क ड जहि । १५. क ड १क्रियतु । १६. ख ग यंड । १७ ख ग सइ । १८ प्रतियोमे ०याड । १९ क व ड डं । २०. क ड पउत्तु । २१. क ड जुत्तु । २२ ख ग सिखाइ विनि ; व सिक्खवि विनि ।

[६]

खंडयं—ता तहिं^१ मंडवे थकयं दिट्ट^२ सेट्टिचउकयं ।तोरणदारपराइया तेहिं^३ मि ते वि विहाइया॥

- तो अचमुत्थाणु करेवि तहु
तंशोल्लुं विलेवणुं सज्जियउ
५ वोल्लणहँ^४ लग्गु विहि एकु नरु
अघडियउ घडावइ दिण्णदिहिं^५
दइवहो^६ कि करइ सुपुरिसमइ
वोल्लंतहो तहो संवरियमणुं^७
सत्त्वत्थं^८ वि लयं^९-विप्फारयाइँ
१० कलवेणु-वीणसमलंकियाइँ
कामिणिसंचारइँ धारियाइँ
लिहिओ^{१०} इव संठिउ^{११} वंधुजणु
आहासइ पुणरवि^{१२} सो ज्जि नरु
नियचित्तु सिद्धिवहुवहिं^{१३} धरिउ
- आसणु दहिं^४ कुसुमकखयहिं^५ सहुँ ।
आयारजीग्गु सन्नु वि क्रियउ ।
वरताएँ^६ पेसियं^७ तुम्ह घरु ।
विहडावइ सुघडिउ दुट्टविहिं^८ ।
असमत्तकज्ज जहिं^९ अवरगइ ।
अणिमिसदिट्टिण्णं^{१०} मुँहुं^{११} नियइ जणु ।
वज्जंतइँ तूरइँ वारियाइँ ।
नीसइँ गोयाइँ^{१२} मि क्रियाइँ ।
रुद्धइँ^{१३} नेउरझंकारियाइँ ।
अवरु वि सव्वो वि निहियसज्जणु ।
अवल्लोयहु कण्णहुं^{१४} अण्णुं^{१५} वरु ।
परिणयणु कुमारें परिहरिउ ।

[६]

तब (इन दोनो पुरुषोंने वहाँ जाकर) मंडपमे बैठे हुए चारों श्रेष्ठियोको देखा, और तोरण द्वार पार करते ही वे दोनो भी उन श्रेष्ठियोके द्वारा देखे गये । फिर उनके लिए अभ्युत्थान करके दधि, कुसुम व अक्षत आदिसे मंगलोपचार करके आसन दिया, तावूल, कुंकुम व चंदन आदि विलेपन सामग्री आगे करके जो-जो कुछ आचार-व्यवहार योग्य है, सभी किया गया । तदनंतर दोनोमे-से एक व्यक्तित्व बोलने लगा—'वरके तातने तुम्हारे घर भेजा है । (हुः) साहसी और दुष्ट-विधि अघटितको तो घटाता है, और सुघटितको विघटित कर देता है । सत्पुरुषकी बुद्धि इस देवका क्या करे, जहाँ असंपन्न कार्यमें कोई और ही गति हो जाती है ? उसके बोलते हुए सब लोग अपना मन थामकर निर्निमेष दृष्टिसे उसका मुँह देखने लगे । सर्वत्र विस्फार अर्थात् उच्चलयसे बजते हुए तुर रोक दिये गये । मधुर वेणु और वीणासे समवेत सभी गान बंद कर दिये गये । कामिनियोका संचार रोक दिया गया, और नूपुरोकी झंकार अवरुद्ध कर दी गयी । वंधुजन तथा और जिन्होंने भी कानोसे सुना, सभी चित्रलिखितके समान (स्तंभित) हो गये । पुनः वही व्यक्ति कहने लगा—कन्याओके लिए अन्य वर देखिए । अपने चित्तको (अतिशयरूपसे) सिद्धिवधुमे लगानेवाले कुमारने विवाहको त्याग दिया है ।

[९] १ ख ग ड तहि । २. ख ग घ दिट्टु । ३. ख ग तेहि । ४ ख ग तहि । ५ क ड यहि । ६ क ड तवोल । ७ क ड वण । ८ क ड बोलणह । ९ क ताए । १० क ड ए । ११ ख ग घ दिव । १२ घ दइह । १३ ख ग यहो । १४ ख ग जह । १५ क ग मणु । १६ क ख ग ड अणमित । १७ ख ग सहु, घ सुहु । १८ ख ग विलइ । १९. क ख ग ड इ । २० क ड इ । २१ ख ग लिहियउ । २२ घ सत्तिउ । २३ ख ग पुणु । २४ घ कवहो । २५ घ अवरु । २६ क ड वहुवहि, ख ग वहुवइ, घ वहुयहि ।

तुम्हारे^{२०} सहुँ अम्हारे^{२१} परमरइ जं करहु पत्यु तं देहु मइ । १५
 वत्ता—पिउ-मायरि-बंधव-जणहिँ दुक्खियमणहिँ बुद्धाविउ कह व न^{२२} बुद्धइ ।
 सच्च अल्लु जि तवचरणु वइरायमणु लितउ कुमार किम रुद्धइ ॥ ६ ॥

[१०]

खंडयं—सुणेवि वयोहरजंपियं^१ करवत्तेण व^२ कप्पियं^३ ।

विसकवलेण व घुम्मियं सव्वार्णं हिययं ठियं ॥

हेट्टासुहुँ संठिउ सयणविटु	वज्जासणिसूडिउ णं गिरिडु ।
णं गरुडद्वडप्पिउ फणिसमूहु	हरिदारियसिरु णं हत्थिजुहु ।
खरपरसुँ हयउं विडयोँ व्व रुक्खु	बुच्चइ कण्णापियरहिँ ^४ सदुक्खु । ५
वरु जंजुसामि मेल्लिवि वरिडु	तइलोके कवणु तहो सरिसु दिट्टु ।
चिरु दिग्गिणयाउ कण्णाउ जाउ	अण्णहोँ कहोँ एवहोँ ^५ देहु ताउ ।
अह ताउ जि ^६ पुच्छहुँ ^३ वालिघाउ	नवसिरसकुसुमसोमालियाउ ।
इय भणेवि वयोहरुँ ^७ करे धरेवि	माइहरन्धंत्तरे पइसरेवि ।
कण्णाण कहिउ कारणु समण्णु	वरइत्तु तुम्ह ^८ लइ नियहु अण्णु ^९ । १०
निसुणेवि कज्जंतरु जित्तसिरिपुँ ^{१०}	दिज्जइ पच्चुत्तर पउमसिरिपुँ ^{११} ।
निम्मलगुणगोत्तविसालियाहँ	पह ^{१२} एक्कु जि किर कुलवालियाहँ ।

तुम्हारे साथ हमारी परम प्रीति है, इस प्रसंगमें जो किया जाये वैसी मति दीजिए ! दुःखित-मन माता-पिता और बांधवजनोके द्वारा समझाये जाने पर भी वह कैसे भी नहीं समझता । वैराग्य-मन कुमारको आज ही सचमुच तप लेनेसे कैसे रोका जाये ? ॥२॥

[१०]

उस सदेशवाहकके कहेको सुनकर सभीका हृदय करोंतसे चीरे हुए जैसा तथा विष खा लेनेसे घूमता हुआ (चकराता हुआ) जैसा हो गया । स्वजनवृद्ध इसप्रकार अधोमुख होकर बैठ रहे जैसे अतिकठोर वज्रायुधसे तोड़ा हुआ पर्वतराज, जैसे गरुडसे झपेटा हुआ फणिसमूह, सिंहके द्वारा शिर-विदीर्ण किया हुआ हाथियोंका झुंड, और तीक्ष्ण परशुसे कटी हुई माखाओवाला (ठूठ) वृक्ष हो जाता है । कन्याओके पिता दुःखपूर्वक कहने लगे—'जंवूस्वामी-जैसे श्रेष्ठवरको छोड़कर तीनों लोकोंमें उसके समान और कौन देखा गया है ? जो कन्याएँ बहुत पहलेसे ही (उसे) दे दी गयी थी, उन्हें अब किस दूसरेको दें ? अब उन्हीं नवीन सिरीपपुष्पके समान सुकुमार बालिकाओंसे पूछा जाये'—ऐसा कहकर सदेशवाहकको हाथ पकड़कर और मातृगृहमें भीतर प्रवेश कराकर कन्याओंको सब कारण(समाचार) बतलाया, (और पूछा) अच्छा, अब तुम लोगोके लिए दूसरा वर देखें ? (विवाह)कार्यमें व्यवधानकी यह बात सुनकर, लक्ष्मीकी शोभाको जीतने-वाली पद्मश्रीने प्रत्युत्तर दिया—निर्मलगुणों और महान् गौत्रवाली कुलकन्याओंका निश्चयसे एक

२७. क छ ई । २८ क छ ई, व हिँ । २९ घ नउ ।

[१०] १. ख ग घ वओ । २ क छ य । ३ ख ग कपिय । ४. क ख ग क फल्लय; घ पवस ।
 ५. ख ग खइउ । ६. ख ग घ उ । ७. घ कज्जा । ८. क ड लोए । ९. घ अन्न । १०. ख ग कहे, घ कहि ।
 ११. क एमहि, घ एवहि, ड एमहि । १२. घ वि । १३. क ड पु । १४. ख ग नवकुसमसरिस; घ
 सिरसि । १५. ख ग घ वओ । १६. घ डु । १७. घ तुम्हि । १८. व निरि । १९. क ख ग व पई ।

एकु जि जणेरि जगि एकु ताउ एको जि^{२०} देउ^{२१} जिणु वीयरउ ।
 गुरु एकु जि भण्णइ^{२२} परमसाहु सुहि एकु जि जसु तउ-धम्मसाहु ।
 १५ परिणयणु अम्ह न करंतु कंतु जइ परतउ लेइ विराथवंतु ।
 घत्ता—अह^{२३} पुणु जइ^{२४} विवाहु घडइ^{२५} दिट्ठिहे^{२६} चडइ^{२७} अचमग्लु बोळ्ळु न जाणहु^{२८} ।
 तो तरलच्छिविलासवसु^{२९} रइलद्धरसु जम्मावहि वल्लहु माणहु^{३०} ॥१०॥

[११]

खंडयं—इयवयणं हिययच्छियं इयराहिं मिं समत्थियं^२ ।कयपरिणयणे वयधणं^३ दूरे तस्स तवोवणं^४ ॥१॥

गरुयउं कज्जु जइविं लज्जिज्जइ लज्ज मुएवि तो वि वोल्लिज्जइ ।
 अच्छउ ताम कामसंजीवणि कोमलञ्जुणि जुवाणमणदीवणि ।
 ५ रइनाडयविलाससंसिक्खणु वंकउ-तिक्खकडक्खनिरिक्खणुं ।
 सरसु सरलवोहुलयालिंगणु गाढत्तणे पीडियथोरत्थणु ।
 दंसणे जि दरसियसिगारहो रइविहलंधलदिट्ठिकुमारहो ।
 पेक्खेसहुं^५ चलणेसु रमंतो गुरुमणत्थले खिन्नं^६ भमंतो^७ ।

ही पति होता है, लोकमे एक ही जननी होती है, एक ही तात, और एक ही देव—नीतराग जिन । एक ही परम साधुको गुरु-कहा जाता है, और एक ही सुहृत्, जिससे तप व धर्मका लाभ हो । यदि प्रियतम हम लोगोका परिणय नहीं करके, वैरागी होकर परम-तप (दियंबरीदीक्षा) लेते है (तो लें), परंतु फिर भी यदि (किसी तरह) विवाह घटित हो जाय, और हम लोग उसकी दृष्टिमे चढ जायें, तो मे बहुत आगे बढ़कर तो बोलना नहीं जानती, (लेकिन फिरभी) चंचलनेत्रोके विलासके वश हुए, और रतिमे रस लेनेवाले उसको हम लोग आजन्म अपना प्राणवल्लभ माने (अर्थात् चंचल नेत्रोके कटाक्ष और रतिरसमे डूबकर वह आजन्म हमलोगोका प्राणप्रिय होकर रहेगा) ॥१०॥

[११]

इस मनोवाञ्छित वचनका दूसरी कुमारियोने भी समर्थन किया—(कि) परिणय कर लेने-पर उसके लिए व्रतप्रधान तपोवन तो दूर ही है । यद्यपि यह बडा भारी लज्जनीय कार्य है, तथापि लज्जा छोडकर कहना पडता है—‘तो फिर जबानोके मनको उद्दीपित करनेवाली कामकी सजीवनी कोमल-ध्वनि, रतिनाटक और विलासकी शिक्षा, बाँके तीक्ष्ण कटाक्षोसे देखना, प्रेमरससे पूर्ण होकर सुंदर बाहुलताओसे आलिंगन और स्थूल स्तनोसे प्रगाढतासे मर्दन हो । हमलोगोके दर्शनमात्रसे ही दक्षितशृंगार अर्थात् उद्दीप्त-काम कुमारकी रति-विह्वल दृष्टिको हमलोग अपने चरणोमे रमण करती और विशाल रमणस्थलपर खिन्न होकर भ्रमण करती

२० क घ ड वि । २१ ख ग देव वि । २२ क ड ङ्ह; घ भन्नइ । २३ ख ग सतु । २४ क ड जइ पुणु ।
 २५ ख ग ङ्ह । २६ क ड ङ्हि; घ ङ्हि । २७ ख ग घ ङ्ह । २८. ख ग ङ्हो, २९ क लइ ।
 [११] १. क घ ड पि । २ ख सभिं । ३ प्रतियोमं षण । ४ ख ग तवो । ५ क घ ड वउ ।
 ६ ख ग जयवि । ७ ख ग तिरं । ८ क ड त्तण । ९ ड ण । १० घ दरसियं । ११ क ड ङ्हु ।
 १२ क ख ग ड खिण्ण । १३ क ड भवती ।

रोमावलिपपसि^{१४} विहङ्गफड
 नाहीविबे थक न पयदृइ
 हुय निफंद चडवि^{१५} घणथणयड^{१७}
 तरलतरंगमयणमयसंगिणि
 पेक्खेवड विलासरंजियमणु
 माणिणिमाणुवसावण^{१९}-कंखिरु
 पणमणमिलियमउलिपयलगाड
 इय निसुणिवि सव्वहि^{२२} परिभाविड
 घत्ता—कण्ह^{२३} चडह^{२४} वि हत्थ^{२५} धरि परिणयणु करि सुहिनयणह^{२६} जणहि^{२७} महारइ^{२८}
 एकु जि वासरु कझि पुणु वयविमल्लगुणु तवचरणु^{२९} लेतु को वारइ^{३०} ॥११॥

[१२]

खंडयं—तो बालेण न वज्जियं वयणमिणं पडिवज्जियं ।
 ज्ञत्ति विराय-विज्जियं गहिरं^१ तूरं वज्जियं^१ ॥
 पत्ते विवाहमुत्ते मणोहरे उण्णामड^२ निवद्धु कंफणु^३ करे ।

हुई देखेगी । रोमावलि प्रदेशपर विह्वल होकर, विषम त्रिवली तरंगोपर झपट मारते हुए नामिबिबपर ठहरकर उसका प्रवर्तन इसप्रकार रुक जायेगा, जिसप्रकार कीचड़में फँसा हुआ दुर्बल पशु; और घने स्तनतटोपर चढ़कर वह ऐसी निषंद हो जायेगी, जैसे जलदर्शनका लंपट कोई प्यासा (जलको देखकर) । तरल तरंगोवाली (अर्थात् चंचल प्रेक्षणीसे युक्त) व मदन-मदकी संगिनी, हमलोगोके दीर्घनेत्रोरूपी तरंगिणीको वह अभिलाषापूर्वक देखेगा । (और भी हमलोगोके द्वारा) वह विलासमे अनुरक्त मनवाला और हम प्रणयिनियोके प्रणयसे पादप्रहारसे युक्त शरीरवाला-अर्थात् प्रणयवश हमलोगोके चरणोंको चूमते हुए; तथा मानिनियोके मानको उपशांत करनेकी आकांक्षासे मधुर कंदर्पालाप करते हुए, व (दीर्घ) निःश्वास लेते हुए; और प्रणाम करनेके लिए उसका मुकुट अपने चरणोंसे इसप्रकार लगा हुआ मानो वह तूपुरोके अग्र-भागसे बांधकर चिपका दिया गया हो, इस रूपमे देखा जायगा। यह सुनकर ममीने विचार किया, और मिलकर कुमारको इन व्यवस्थाओमे स्थापित किया (अर्थात् बाँधा) कि केवल एक दिनके लिए चारो कन्याओके पाणिग्रहण करके सुहृज्जनोके नयनोके लिए महद् प्रीति उत्पन्न कीजिए । फिर कल ही विमल व्रतों और शुद्ध गुणोंवाले तपस्चरणको लेते हुए (तुम्हे) कौन रोकेगा ॥११॥

[१२-]

तब बालकने अस्वीकार नहीं किया, और इस वचनको मान लिया । शीघ्र ही विराग-विवाजितं अर्थात् किसी भी प्रकार रस-भंगरहित गभीर तूर वज उठा । शुभ विवाह मूहूर्त

१४ क ड स । १५ क ड विसम, ख ग विसमें । १६ ख ग चडवि । १७. क ड तड । १८. घ दसणि जलल । १९ क घ ड सामण । २०. क ड महुरामम्मणलावणु, ख ग लावण । २१ क घ ड कयकव । २२. ख ग घ ह । २३. क ड कण जु, घ कसह । २४ क घ ड ह, ख ग ह । २५. क घ ड हत्थु । २६ ख ग सुहिनयं, क ड णयणहु । २७. क घ ड हि । २८ क ड रड । २९. क ड तट । ३० क ड ह ।

[१२] १. क ड तूर विवज्जियं । २. ख ग घ उता । ३. क ण ।

- सिरि^१ सियकुसुममडडु जियससहर गंधुद्वं^२त^३-महुरसर-महुयर^४ ।
 ५ सेयसुहुम^५-नववत्थनियंमणु चंदणलित्तरथणमंडियतणु ।
 चडहुं^६ मि कणगहं^७ जंबुकुमारं किउ चिवाहु वणिगोत्तायारं ।
 सायरदत्तु करंवि^८ धुरे तारण^९ कणचयारि^{१०} कपहि^{११} जलधारय^{१२} ।
 बहुकरयंगहं^{१३} गोत्तपवित्तहो दिज्जइ दाइज्जउ वरइत्तहो^{१४} ।
 १० डाहुत्तारं^{१५} चारु चामीयर मोत्तिउ तारु सुत्तिसंभउ^{१६} वरु ।
 दित्तिफुरंतु रयणु जाइल्लउ वइरायरउ वज्जु कंतिल्लउ ।
 त्रेलिउ कंचिवालु धहुमोल्लउ अमरु वि^{१७}जं काई मि^{१८} भल्लउ ।
 दिण्णउ^{१९} दासिउ चीर नि अकं दीवउ मंचउ सहुं पल्लंके ।
 वत्ता—मंडवि मिलियल्लोयपवरं^{२०} आणंदयरे परिणयणु कज्जु निव्वत्तिउ ।
 जोयहो आइउ णं वरहो नववहुवरहो मज्झण्णहो^{२१} सूरु पवत्तिउ^{२२} ॥१३॥

[१३]

खंडयं—खरतरधम्मपसित्तप्रे चंदणपंकविल्लिए ।
 कामिणिकंकणकलरवे गंधुवभासियजललवे ॥

आने पर ऊर्णामय कंकण हाथमे बाँधा गया । शिरपर अपनी घोभासे चंद्रमाको जीतनेवाला तथा अपनी गंधसे आकृष्ट भ्रमरोंके गुंजारसे युक्त श्वेत(कमल)पुष्पोका मुकुट बाँधा गया । बबल, सूक्ष्म और नये वस्त्रोंको पहने, तथा चंदनसे लिप्त और रत्नोंसे भंडित-देह कुमारने चारों कन्याओंसे वणिक्कुलके आचारके अनुसार विवाह कर लिया । सागरदत्तको प्रमुख करके चारों कन्याओंके लिए (कन्यादानके निमित्त) स्वच्छ जलधारा की जानेपर वधुओंके पाणिग्रहणके उपरांत उस पवित्र कुलवाले वरके लिए बहुत-सा दायज (देहेज) भी दिया गया । तापसे तपाया हुआ श्रेष्ठ सोना, नूतितमें उत्पन्न होनेवाले बड़े-बड़े सुंदर मोती, दीप्तिसे स्फुरायमान श्रेष्ठ (जात्य) रत्न, वज्रकी खानसे निकाला हुआ कांतिमान वज्ररत्न एवं बहुमूल्य कांची देश निमित्त वस्त्र तथा अन्य भी जो जो कुछ वस्तुएँ हैं, सभी दी गयी । दासियाँ भी दी गयी, और सुंदर सुंदर वस्त्र; विज्ञेपप्रकारके आसन एवं दीपक और मंच पलंग सहित दिये गये । आनंददायक मंडपमें प्रवर अर्थात् वरिष्ठ लोगोंके एकत्र हो जानेपर परिणयका कार्य संपन्न किया गया, और मानो श्रेष्ठ नव-वधुओं तथा वरको देखनेके लिए आया हुआ मूर्य मध्याह्नमे प्रवृत्त हुआ ॥१२॥

[१३]

(अब जिस समय कि)—तीव्रतम घाम (घूप) से पसीनेसे तर, तथा चंदनका सूत्र गाढ़ा लेप की हुई कामिनियोंके कपोलोंपर जल लव अर्थात् स्वेदविंदु चमक रहे थे, और उनके कंकणोंका

४. क सिर । ५. व हुंत् । ६. क ड वर । ७. क ख ड मुहम । ८. प्रतिगोमें हु । ९. क ड हु ।
 १०. ख करवे, ग वरिडे । ११. क तारड, ख ग तामए, ड तामइ । १२. ख ग घ कणाववि ।
 १३. क घ ड कि । १४. क ड वारड । १५. क ख ग संगहो, व संगहि । १६. व यत्तहो । १७. ख ग
 उज्जमु डाहु । १८. क ड संभव । १९. ख ग जाय । २०. क ख ग ट जं काउ मि, क काई मि जं जं ।
 २१. घ दिघउ । २२. लोए २३. व न्हो । २४. ग पवित्तउ ।

[१३] १. घ खरवर ।

तिणमयकायमाणसंठियजणं
 कुसुमवाससुरहियसीयलघणे
 कोबुण्हवियसलिलसरे सरतडे
 कद्दमलोलविलोलियवद्धुरे
 महिं सिंजूहडोहियपंकिलजले
 तेहण काले कुमार विसुद्ध
 जं नाडयवित्थरु व रसिल्लउ
 पिमुणल्लोयहिययं व सकूरउ
 वरतरुणोवयणु व लवणुग्गउ
 वासहरं पिव सहइ सखट्टउ
 सुपुरिसधणु व सुपत्तहिं थक्कउ
 घन्ता—नाणाविहभक्खहिं^१ पयरुं मुहमहुरयरुं मुंजविं^२ नियाणखणं दुक्कउ^३ ।
 लइयरसेहिं^४ मिं^५ परिहरिउ कवडहिं^६ भरिउणं धुत्तिहिं^७ पेम्मघवक्कउ^८ ॥१३॥ १५

मधुर कलरव हो रहा था; और जबकि लोग तृणमय कायमानों अर्थात् आसनोपर बैठ गये थे, तथा जलसे तर- किये हुए व वारिकणोको चुआते हुए चँवरोके खूब शीतल प्रमंजन (पवन)का सेवन किया जा रहा था; और जबकि ईषत् उष्ण जलवाले सरोवरके तटपर गिला- तट अग्निके समान तप रहे थे; ददुरं कद्दम-क्रीड़ा करके प्रसन्न हो रहे थे, भीरे इंदीवरोके पीछे छिप रहे थे; महिपोके यूथोके अवगाहन करनेसे (सरोवरोका) जल पंकिल हो रहा था, तथा पवु-मंडली वृक्षोकी छायामे बैठे थी; वैसे समयमे कुमार वधुश्री और वांघवोके साथ विबुद्ध भोजन करने लगा। वह भोजन श्रृंगारादि रसोसे युक्त नाटकके विस्तारके समान नानाप्रकारके अम्ल-मधुर इत्यादि रसोसे युक्त था; और क् ख् ग् आदि व्यंजनोंसे युक्त व्याकरणके समान नाना व्यंजनों अर्थात् विविध पकवानोसे शोभायमान था। दुर्जन लोगोके सकूर अर्थात् क्रूरतापूर्ण हृदयके समान वह भोजन कूर नामक श्रेष्ठ चावलोसे युक्त था, और सज्जन लोगोके स्नेहपूर्ण मनके समान घृतादि स्नेह-पदार्थोसे परिपूर्ण था। सुंदर तरुणियोके लावण्ययुक्त वदन (मुख)के समान वह लवणयुक्त था; और संपूर्णरूपसे उदगत अर्थात् पूरी तरह उदित हुए प्रातःकालीन सूर्यमंडलके समान समुग्ग अर्थात् मूँगके व्यंजनोंसे युक्त था। खाटोसे युक्त वासगृहके समान वह भोजन सुंदर खट्टे पदार्थो(अचार-चटनी आदि)से युक्त था। बहुत-से बाटो अर्थात् मार्गोसे युक्त महानगरके समान वह बहुत-सी बाटो अर्थात् कटोरियोसे युक्त (कटोरियोमे सजा हुआ) था। सत्पुरुषके सुपात्र अर्थात् सद्व्यक्तियोंमे नियोजित घनके समान वह भोजन सुपात्रो अर्थात् सुंदर वरतनोमे रखा हुआ था, और सतर्क अर्थात् तर्कशास्त्रके ज्ञानसे शोभायमान पंडितोके समान सतक्र अर्थात् तक्र(मट्टा) सहित होनेसे अच्छा लग रहा था। इसतरह रस लेनेवालोके द्वारा नानाप्रकारके भोजनोंका समूह जो मुखको मधुर

२ क ड चुअ । ३ ख जणं । ४ क कि उण्हं, ड कि बुण्हं । ५ खं डुद्धुरे । ६ क ड महिं ।
 ७. ख ग विसिट्टउ । ८ ख ग रणु । ९ ख वंजणहिं रसिल्लउ, ग व वजणं । १०. ग वव । ११ क नुं ।
 १२ ख नयर । १३ प्रतियोमं च्चहिं । १४. कं डं । १५. ख ग मुं । १६. ख ग डं मक्कहिं ।
 १७ क हिययरु । १८ क व ड मुंजवि । १९ व डं । २०. क ख ग डं हिं । २१ क ड व; ख ग व् ।
 २२ गं ड्हिं । २३ ख ग वं हिं । २४ क वव ।

[१४]

खंडयं—जलगंडूषकविषोहणं पुणु तंवल-विलेवणं ।

लइयं धरियदरुणहयं तो जायं अवरणहयं ॥१॥

३	ताव हि ^३ बहुचक्रसंजुत्तउ	गउ वरइत्तु ^३ निययधरु पत्तउ ।
	अहलु वं ^३ तुट्टुं शुलुकियपवणहो	दीसइ जंतु तवणु अत्थवणहो ।
५	सेवियकमलकोसमहुमत्तउ	निवडइ गलियनियंसु ^३ व रत्तउ ॥१॥
	लग्गु सिलायडरमणं-विराइहं ^३	पेक्खेवि अत्थसिहरं ^३ वणराइहं ^३
	ईसाइवि ^३ पच्छिमदिसपत्तिगं ^३	किउ आयंवरु सुहु ^३ असहंतिगं ^३ ।
	तेउ हुयासि ^३ ताउ विरहीयणं	राउ वि विण्णु ^३ तरुणसिहुणहं ^३ मणे
	मयणे पयाउ रविहि ^३ अपंतहो	अइ चाउ जि कारणु अत्थंतहो ^३
१०	लइउ सव्णु तुम्हहि ^३ चिर-महणे	अंतोधणसुद्धिहं ^३ रविगहणं ।
	पुणु मंथणमपण सुद्धिसुद्धं	धरिउ दीउ गं सुरहं ^३ समुद्धे ।

करनेवाला और 'कवड' अर्थात् पुरवोंमे भरा हुआ था, खाया जाकर अंतमें बहुत-सा उच्छिष्ट उसीप्रकार छोड़ दिया गया, जिसप्रकार किसी घूर्त्तस्त्रीका कपटभरा उद्दीप्त प्रेम उसे भोगकर छोड़ दिया जाता है ॥१३॥

[१४]

जलगंडूषके द्वारा मुखशोधन किया गया और विलेपन (कुंकुम-चंदनादिके पिष्ट चूर्ण) लिये गये। इतनेमें थोड़ा गरम अपराह्नकाल हो गया। तब तक चारों बंधुओंके साथ वर गया, और अपने घर आ पहुँचा। (गरम) हवासे झुलसा हुआ, और (आकाशरूपी वृक्षसे) मानो निरर्थक ही टूटा हुआ सूर्यरूपी फल अस्ताचलको जाता हुआ देखा गया; मानो वह (दिनभर) कमलसरोवरोसे अपने किरणोरूपी हाथोसे कमलकोपोका सेवन करके मधुसे मत्त (रक्तवर्ण) होकर सुरापानसे मत्त हुए किसी रागी पुरुषके समान अपने वस्त्रोको (सूर्यअंशके किरणोंको) फेंककर गिर रहा हो। अस्ताचलके शिखरपर शिलातटरूपी रमण (नितंब)से विराजमान वनराजीसे (अपने प्रियतम सूर्यको) लगे हुए देखकर उसकी पश्चिम दिशारूपी पत्नीने ईर्ष्या करके, इसे सहन न करते हुए क्रोधसे मानो साध्य-अरुणिमाके व्याजसे अपना मुख ताबेके समान लाल-लाल कर लिया। उस सूर्यने अपना तेज अग्निमें, ताप विरहीजनोमें, और राग (लालिमा-अनुरागके रूपमें) तरुण मिथुनोके मनमें दे दिया; और प्रताप रातभरके लिए कामदेवको अपित कर दिया, (इसप्रकार) उसका यह अतिशय त्याग ही उसके अस्त होनेका कारण हुआ। मेरे भीतरही घनका पता लगानेके लिए सूर्यको लेकर तुम लोगोके द्वारा बहुत प्राचीनकालमें ही मंथन करके मेरा सब कुछ ले लिया गया था, अतः अब पुनः मंथनके भयसे पृथ्वीरूपी मुद्रासे मुद्रित

[१४] १ ख ग घ लइयउ । २. घ ँहयं । ३ क ड तागहि, घ तामहि । ४. क ऊ यत्तु । ५ ख ग घ अ । ६ क ख ग ड तुट्टु । ७ ख ग वि । ८ ख ग घ रवण । ९. क घ ड ईहि । १०. क ड यवि । ११. घ दिसि । १२. क घ ड मुहुं । १३. ख ग सं । १४ घ दिनु । १५. क ल णहुं, ख ग णहु, घ णहो । १६ क हि । १७ ख ग अच्छं । १८. ख हि । १९ क ड वणुसुद्धिहि, घ सुद्धिहि । २०. क ख ग हुं, घ हुं ।

परिपक्व नहरकखहो निवडिउ २१ अस्थंगयरविपिययमकामप्र ^{२३}	फलु व दिवायरमंडलु विहडिउ । वासरलच्छिप्र ^{२३} संझारामप्र ^{२२} ।	
रत्तंवरजुवलउ ^४ नेसेविणु	कुंकुमपंके पियलि करेविणु ^{२५} ।	
खणु अच्छेवि दुक्खसंसंखिउ	अप्यउ चोरमहण्णवि घखिउ ।	१५
तमे पसरते ^{२६} तडिहि ^{२७} विम्भुल्लउ	कंदइ चक्कवायमिहुणुल्लउ ।	
पंकयसरइ ^{२८} अलिहिं ^{२९} णं छइयइ ^{२९}	काणणाइ ^{३०} णं ^{३१} कोइलछइयइ ।	
नच्चिरमोरपिच्छसंछन्नइ ^{३२}	णं पववयसिहराई पववइ ^{३२} ।	
दिम्भुहाइ ^{३३} कस्थूरिप्र ^{३४} कलियइ	निवघराई गयवरघडललियइ ^{३५} ।	
घत्ता— ^{३६} धम्महपोडियविडजणहो धवगयधणहो ^{३७}	विरहग्गिफुलिग व छड्डिय ^{३७} ।	२०
^{३८} नीलीरसे णं ^{३९} बोलियप्र ^{३९} जगि कवलियप्र ^{४०}	जोइंगण ^{४१} गयणे समुड्डिय ^{४२} ॥११॥	

[१५]

खंडयं—अहिसारीहि^१ निसागमे दूयडियाणं गमागमे ।

लइयं कसणनियंसणं मरगयवडियविहूसणं ॥१॥

तिमिरकुंभिकुंभत्यलभेयउ^३दीवियाउ भल्लिउ हेमेयउ^४ ।

(अर्थात् मर्यादित) समुद्रने मानो देवताओके सूर्यरूपी दीपकको घर लिया (अर्थात् अपने गर्भमें छिपा लिया)। आकाशवृक्षसे गिरे हुए पके फलके समान दिवाकरमंडल (एकाएक) विघटित हो गया। अस्ताचलको गये हुए सूर्यरूपी प्रियतमकी कामनासे दिवसखी लक्ष्मीने संघ्यारामा (नायिका)के रूपमें लालवस्त्रोका (आत्माहृतिसूचक) जोड़ा धारण करके, तथा कुंकुमके गाढ़े द्रवसे टीका करके, क्षणभर ठहरकर (प्रियतमके विरहरूपी) दु.खसे अत्यंत पीड़ित होकर अपने आपको महासमुद्रमें डाल दिया। अंधकारके प्रसारसे (अलग-अलग) तटोपर भूला हुआ चकवोंका जोड़ा क्रदन करने लगा। पंकज सरोवर मानो भ्रमरोसे छा दिये गये और उद्यान कोकिलोसे ढक दिये गये। पर्वतोंके शिखर ऐसे हो गये मानो नाचे हुए मोरोके पंखोसे आच्छादित हो गये हों। दिशामुख मानो कस्तूरीसे पोत दिये गये, और राजाओके प्रासाद उत्तम गजसमूहके समान ललित लगने लगे। (यह ललितक नामक छंद है)। मन्मथसे पीड़ित, धनहीन विटजनोंके द्वारा छोड़े हुए विरहानिनके स्फुल्लगोके समान अपनी नीलिमासे सारे जगत्को व्याप्त करते हुए, तथा नीलके रंगको भी अतिक्रमण करते हुए जुगत्तुं आकाशमें उड़ने लगे ॥१४॥

[१५]

रात्रिका आगमन होनेपर दूतियोका गमनागमन होने लगा। अभिसारिकाओने काले वस्त्र पहने और मरकतमणियोसे गढे हुए आभूषण धारण किये। अंधकाररूपी हस्तिके कुंभस्थलको विदीर्ण करनेवाली सुवर्णनिमित्त सुंदर दीपिकाओरूपी बरछियाँ जलायी गयी (पक्षमे चमकायी-

२१. ख ग अर्थंगउ रविं । २२ क ड मइ । २३ क ड लच्छिय । २४ क ड जुअं ; घ जुयं । २५. क ड प्पिणु । २६ क ड रंत । २७ ख ग ड हिं । २८. क ड सरहु, घ सरिहिं । २९. ड यइ । ३०. ग णाह । ३१ ख ग कोयलं ; घ लवियइं । ३२. क ख ग ड ण्णडं । ३३. ग ड दिण्णु । ३४. क ड रिय । ३५ क घ ड गयघडहिं व ललिं । ३६ क ख ग ड धम्महं । ३७. क ड पुलिग व ताडिय । ३८ क ड रतेण, ख ग रसन । ३९ घ यइ । ४०. व ड यइ । ४१. ख ग जोयं । ४२. क ड हिया ।

[१५] १ ख ग रोहि । २ क ड हूअं, घ याहं । ३. क ड कुंभरथलिं, घ कुंभरथलुं । ४ ख ग मल्लीय । ५. ख ग हेमोयउ ।

	जालियां गयवइहिययहि सहुं	उइउं नहंगणे मयलंछणु लहु ।
५	भमिप्रं तमंधयारे वरअच्छिप्रं	त्रिण्णउं दीवउ पं नहलच्छिप्रं ।
	जोण्हारसेण भुवणुं किउ सुद्धउं ^७	खीरमइण्णवन्मि ^{१३} णं छुद्धउ ।
	किं गयणाउ अभियलवविहइहि	किं कप्पूरपूरकण निवइहि ।
	किं सिरिखंडवहलरससीयर ^३	मयरद्धयवंधवससहरकर ।
	जाल-गवक्खइ ^{१६} पसरियलालउं ^{११}	गोरसभंतिप्रं लिहइ ^{१६} विडालउ ।
१०	सुद्धउमुहियं लेइ ^{१६} कर-वावड ^{११}	मोत्तिहारमणोहरलंबड ^{३०} ।
	गोट्टि निविट्ट गोवि न चियाणइ ^{११}	दहिउ भणिवि ^{३३} मंधइ मंथाणइ ^{३३} ।
	मालिणीउ न्थियडाउ निवासप्र ^{३६}	उच्चिणंति मालइकुसुमासप्र ^{३६} ।
	गेण्हइ ^{३१} समरि ^{३१} पडिउ बोरीहलुं ^{३१}	मण्णेविणुं ^{३६} करिसिरमुत्ताहलु ।
	पुरउ वि थक्क वइरिरोसियं ^{३३} पडु	हंसु व काउ न याणइ ^{३०} वूयडु ^{३१} ।
१५	चत्ता—परिसे ^{३३} कहरवन्दिणए सियचंदिणए	नववहुचउक्कसिद्धउं ^{३३} ।
	वरपल्लकंपंचसहिप्रं परिशणकहिप्रं वासहरं	कुमार पइइउं ^{३६} ॥१५॥

गयी)। गत-पतिकाओके द्वारा अपने हृदयो अर्थात् उरस्थलो(स्तनो)पर कवुकी (पहने जाने)के साथ-साथ गगनांगनमे मृगलाछन शीघ्र उदित हुआ; (जो ऐसा भोभायमान हुआ) मानो घना अंधकार फैल जानेपर बराक्षी (सुंदर नेत्रोवाली) नभलक्ष्मोने दीपक जलाया हो। ज्योत्स्नाके रस अर्थात् चाँदनीके प्रसारसे भुवन ऐसा शुद्ध अर्थात् धवल कर दिया गया मानो उसे क्षीरोदधि-मे डाल दिया गया हो। मकरध्वजके बाँधव चद्रमाकी किरणे ऐसी हो गयी मानो आकाशसे अमृतविंदु ही विघटित होकर गिर रहे हो; अथवा कर्पूरके पूरसे कण गिर रहे हो, अथवा श्रीखंड-के प्रचुर रस-शीकर (फुहारे) ही पड़ रहे हों। लार फैलाता हुआ एक मार्जार धरोके झरोखोको गोरसकी भ्रांतिसे चाटने लगा। मोतियोंके मनोहर व लंबे हारके समान उन चद्रकिरणोको कोई मुखमुखी अपने व्याकुल हाथोसे पकड़ने लगी। गोथानमे बैठी हुई गोपी जान नहीं सकी (कि इस मथानीमे कुछ नहीं लगा है), अतः (इस मथानीमे) दही है, ऐसा कहकर (खाली) मथानी को ही मथने लगी। मालिनियाँ आवासके निकटसे मालती कुसुमकी आशासे चुनने लगी। कोई शबरी (भूमिपर) गिरे हुए बेरके फलको हाथीके शिरका मुक्ताफज (गजमुक्ता) समझकर उठाने लगी। अपने बैरी(कौवे)से रुष्ट किया हुआ चतुर घूक (उल्लू) अपने सामने ही स्थित, (परतु अतिशय चाँदनीके प्रभावसे) हसके समान (दीखनेवाले) कौवेको पहचान नहीं पाया। ऐसी कुमुदीको प्रसन्न (विकसित) करनेवाली धवल ज्योत्स्नामे चारो नववधुओके साथ कुमार परिजनोके द्वारा बताया हुए, पाँच सुंदर पलंगोसे युक्त वासगृहमे प्रविष्ट हुआ ॥१५॥

६. ख ग लयउ । ७. क ड य । ८. क ड तमंधयारवरं, ख ग घ तमंधयारवरअच्छिप्र । ९. व रं । १०. घ मे इम पवितका पूर्वपाद इस प्रकार—जोण्हारसेण कियउ जणु सुद्धउ । ११. ख ग घ भुवणु । १२. व न्नवन्मि । १३. क ड सीयलु । १४. ख ग वखय । १५. ग जालउ । १६. ख ग ए । १७. क ड मुद्धउ । १८. क ड तो वि । १९. क ड वावउ । २०. क लवउं, ख ग व लपड । २१. ख ग विगां । २२. ख ग इ । २३. ख ग घ क णइ । २४. क घ ड सइ । २५. घ धिहइ । २६. क घ ड सवरि । २७. ख ग वेरी । २८. घ मनें । २९. घ वहररोसिय । ३०. क घ ड इ । ३१. घ वूवडु । ३२. क घ ड स । ३३. ड डुउ । ३४. ख ग पयं ।

[१६]

खंडयं—खणु अच्छेवि कथायरा नियनिलयसु सहयरा ।

पट्टवेवि पुणु निविडप्र^२ दिण्णप्र^३ दारकवाडप्र^३ ॥१॥

पंच वि तूलिसमिद्धहिं^१ पंचहिं^१
 छिन्नच्छाहुं^४ पईवड किज्जई^५
 पड्डलसमु वेइल्लु निवज्जई^६
 पयडइ^७ का वि वहुयं भत्तारहो^८
 नाहीर्मडलु का वि वियासई^९
 का वि नियंसणासारं भल्लउ
 कन्नखंतरु कहेइ क वि कवणे^{१०}
 कुडिलालोएं भडहउ^{११} वंकइ
 अवर वि वरजुवाणवीवियमणु
 वीणावाज्जसमाणु^{१२} वि रायइ^{१३}
 अवरइ^{१४} समडं^{१५} अवर^{१६} क वि जंपइ सुण्णउ^{१७} सिक्कारती^{१८} कंपइ^{१९} ।

आसीणइं पच्छाइयमंचहिं^१ ।
 करे तंबोल वि सम्माणिज्जई^२ ।
 सुमहरु^३ कप्पूरायरु^४ डच्चइ । ५
 थणहरु मिसिण गुत्तगुणहारहो ।
 विरयणं संवरणेण पयासई^६ ।
 दावइ मसिणोरुव^७ जुवजुल्लउ^८ ।
 मउलियनयणकण्णकंडुवणं^९ ।
 क वि दंतहिं निययाहरु डंकइ । १०
 सालंकारु पडइ वच्छायणु ।
 वहुयं^{११} का वि हिंदोलउ गायइ^{१२} ।
 सुण्णउ^{१३} सिक्कारती^{१४} कंपइ^{१५} ।

[१६]

कुछ देर उठकर आदर किये हुए (अर्थात् आदर करके) अपने सब सहचरो(मित्रों)को अपने-अपने घरोंको पठाकर (फिर) द्वारके कपाटोंको निविड अर्थात्—निश्चिद्रूपसे बंद कर दिये जानेपर वे पाँचो वर-वधू रुईके गद्देदार एवं चादरोसे आच्छादित पाँच मंचोंपर आसीन हो गये । प्रदीपोंकी शोभा (ज्योति) मद करे दी गयी (अथवा श्लेषमे जंबूस्वामी एवं वधुओंके देदीप्यमान मुखोंरूपी दीपकोंके तेजसे तैलदीपकोंका तेज फीका पड़ गया) । हाथमें आदरपूर्वक तांबूल ग्रहण किये गये । गुलाबके पुष्पके साथ विचकिल्लका फूल वाँचा गया (विशेषार्थके लिए देखिये परिशिष्ट) । सुगंधित कपूर व अगर जलाया गया । कोई वधू हारकी छिपी हुई लड़कों वतानेके वहानेसे भत्तारके लिए अपने वक्षस्थलको प्रकट करने लगी । कोई अपने नाभिमंडलको खोलती हुई विवाहसे की हुई अपनी विरचना (पत्ररचना आदि रूप सजावट)को प्रकट करने लगी । कोई वस्त्रोंको खिसकाकर अपने भले (आकर्षक) और मसृण ऊरुगुगालको दिखलाने लगी । कोई आँखें बंद करके कान खुजलानेके कपट (वहाने)से अपनी कुण्डिको बतलाने लगी । कोई कुटिलतासे अर्थात् कटाक्षसे देखती हुई भ्रौहोको वांका करने लगी, और दाँतोसे अपने अधरोको काटने लगी । कोई दूसरी वधू सुंदर युवकके मनको उद्दीप्त करनेवाले वात्स्यायन अर्थात् कामसूत्रको अलंकारपूर्वक(अर्थात् भ्रूंगाार-भावसे भरकर) पढ़ने लगी । और कोई वधू वीणावाद्यके साथ रागपूर्वक हिंदोला गाने लगी । कोई किसी दूसरीके साथ बोलने लगी और धन्यभाव से सीत्कार

[१६] १ घ पट्टाविवि । २ क ड णिविडयं, ख ग नियडइं । ३ क ड दिण्णं; ख डं; ग यं; घ दिन्नइं । ४ क ड डयं; ख ग डं । ५ ख डं हि । ६ मंचहि । ७ क ख ग ड दिण्णं । ८ ख ग व डं । ९ ख ग सामां । १० क ज्जई । ११ क ड सुमुट्टरं । १२ ख ग कत्थं । १३ घ वहुयं का वि । १४ क ड पयां । १५ क ड वरिं । १६ क संडं । १७ व वयं । १८ व जुवं । १९ क कविणं । २० व कन्नं । २१ ख ग भउं, ड हउ । २२ प्रतियोमं वज्जुसमाणु । २३ ख ग यए, क व यंडं । २४ ख ग व । २५ क घ डं । २६ क घ डं । २७ ख ग घ ड । २८ क रं । २९ व मुण्णउ । ३० ख ग सिकां । ३१ क ग डं ।

१५ घत्ता—अवर वि केरलपुरिगमणु निवपरिणयणु वरइत्ते^{३२} जित्तु रणु^{३३} भासइ^{३४} ।
जुज्झिय विज्जाहरभडउ हासुम्भडउ सिंगारु सवीरु पयासइ^{३५} ॥१६॥

इय जंबूसामिचरिउ^३ सिंगारवीरे महाकव्ये महाकइदेवदत्तसुयवीरविरइए^{३६}
विवाहूच्छवो नाम^{३७} अट्टमो संघो समत्तो^{३८} ॥ संधि—८ ॥

छोड़ती हुई कांपने लगी । कोई वरके केरलपुरीको गमन, राजाके विवाह एवं वरके द्वारा जोते हुए युद्धका वर्णन करने लगी; और इसप्रकार विद्याधरभटोके साथ किये हुए युद्धवर्णनके द्वारा, उदभट हास्यके साथ वीररसपूर्वक श्रुंगाररसको प्रकट करने लगी ॥१५॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित, जंबूस्वामी चरित्र नामक इस शृंगार-वीररसात्मक महाकाव्यमें विवाहोत्सव नामक अष्टम संधि समाप्त ॥संधि—८॥

३२. क घ ड 'इत्तु' । ३३. घ रणि । ३४. क 'इ' । ३५. क 'सइ' । ३६. क ड से इस प्रकार—'वीरे महाकइदेवदत्तसुयवीरविरइए महाकव्ये विवाहु' । ३७. क ड अट्टमा इमा सथो, घ अट्टमो परिच्छेमो समत्तो ॥ संधि—८ ॥

[१]

तुम्हेहि वीरकव्वं सुयणेहिं परिक्खिउण षेत्तव्वं ।

कसतावथेयसुद्धं कणयं नेहेण मा किणहं ॥१॥

चिरकव्वतुलातुलियं बुद्धीकसवट्टए कसेउणं ।

रसदिच्चं पयच्छिन्नं गिण्हहं कव्वं सुवण्णं मे ॥२॥

मयरद्धयनच्चु नडंतिउं जंजुकमारें भेल्लियउं ।

वहुवाउं ताउ णं दिट्ठउ कट्टमयउ वाउल्लियउं ॥३॥

रइचिउं तु तं नयणहिं जोयइं^१

हा हा^२ महिलामोहनिवद्धउ

बुचइ अहरु^३ अमियमहुवासउ

को रसु उट्टचम्मं^४ खज्जंतण्णं^५

मुत्तदुवारु पूइगंधिल्लउ

पुणु चि नाणदिट्ठिण्णं अवलोयइं^१ ।

मयणकालसप्पहिं जगु खद्धउ^२ ।

अवरु जि नाउ^३ ठविउ वयणासउ ।

चिच्चिल्लालामले पिज्जंतण्णं^४ ।

रमणु नाउ^५ किउ विडहिं महल्लउ ।

५

१०

[१]

वीर (कवि) द्वारा रचित काव्य आप सज्जनोके द्वारा परीक्षा करके ही ग्रहण किया जाना चाहिए। कसौटी, ताप और छेनी से शुद्ध जानकर ही सोना खरीदिए, उसके स्नेह मात्रसे नहीं ॥१॥ रसोसे शुद्ध किये होनेसे खूब दीप्तिमान एवं व्यवसायमे सुनिर्धारित (शुद्ध)सुवर्णके समान काव्यरसोसे देदीप्यमान, एवं सुपरीक्षित-विविध-शब्दसमूहसे (दोषरहित रूपसे) सुनिर्धारित तथा चिरप्रसिद्ध काव्यरूपी तुलापर तौले हुए मेरे इस काव्यरूपी सुवर्णको बुद्धिरूपी कसौटीपर कसकर ग्रहण कोजिए ॥२॥ मकरध्वजका नाच नाचती हुई उन वधुओंको जंबू-कुमारने अपने संपर्कमें लायो हुई काष्ठकी पुतलियोंके समान देखा ॥३॥

(उनके) उस रति(प्रेम)प्रपंचको वह अपने नेत्रोसे देखता, फिर ज्ञाननेत्रोसे अवलोकन(चिंतन) करता। अहो खेद ! स्त्रीके मोहमें जकड़ा हुआ यह जगत् मदनरूपी काले साँपके द्वारा खाया जाता है। (स्त्रीके) अवरको अमृत व मधुका वास कहा जाता है, उसका दूसरा नाम वदनासव (अथवा आध्यात्मिक दृष्टिसे, 'व्रतनाशक') भी रखा गया है। (पर) ओष्ठधर्मको काटनेमें और परित्याज्य लार-मलको पीनेमें कौन-सा रस है ? जो मूत्रका द्वार है, और प्लुतिगंधसे युक्त है, उसे विटजनोने 'रमण' जैसा महत् नाम दे दिया है। स्त्रीका

[१] १. क व ड ह । २ वं दिन्नं । ३ ख ग छिन्नं, क ड छिण्णं । ४ व गिण्हं । ५ वं णं ।
 ६ क ड णद्धु णडतियउं । ७ क ड भिं ; व भं । ८ ख ग व थाउ । ९. क ड वाव । १०. व डं ।
 ११. क ग ड थडं । १२. क ड मिहिलं । १३ क उं । १४. क व ड अमयं । १५. क ड णाउं, व नाउं ।
 १६ क वं मिम, व वं म्म । १७ क व ड तं डं । १८. ख ग चिच्चिल्लं, क ड लालामणि । १९ क ड माणु, व नाउ ।

पच्छलु तियह^{३०} जेण लज्जिज्जइ राइहि^{२१} सो जि नियंबु भणिज्जइ ।
 एरिस^{२८} -तियमय^{३३} -पोमालखंधप्र अप्पल नाणवंतु को वंधप्र ।
 वरथुसरुड^{२५} चएवि^{२६} जेहिच्छप्र^{२७} - बुद्धिवियप्पु पवत्तप्र^{२९} मिच्छप्र
 १५ भाउ जि पढमु तियत्तणु पावइ पच्छप्र वहि तियदवहो^{२८} धावइ
 सम्मन्नाणिण^{२५} एउ विवेयइ भाउ जि महिल अयाणु न चेयइ
 दवसरुवविसय^{२६} भुंजंतउ अच्छइ जिउ संसारे भमंतउ ।
 धत्ता—उवयागउ^{२९} भावसरुवे^{३०} भुंजइ कम्मसासणु विणु
 संसाराभावहो^{३३} कारणु भाउ जि छड्डिय^{३३} परदविणु^{३५} ॥१॥

[२]

दिदचित्तु^{३०} कुमारु नियंतियाप्र^{३३} मुहकंतिजित्तससिकंतियाप्र^{३३} ।
 दीहरनीसासु ससंतियाप्र^{३३} थोव^{३३} सखिलक्खु इंसंतियाप्र ।
 पंकयसिरीप्र^{३३} आलत्तियाउ परिवाडिप्र^{३३} ताउ सवत्तियाउ^{३३} ।
 वरइत्तहो का वि अबन्वभंगि संकिल्लि-हेल्लि-विक्कभमु वरंगि ।
 ५ कि मयणवाण संदहो वहंति पच्चुप्फिडेवि सयखंडु^{३३} जंति ॥

पृष्ठभाग ऐसा है जिससे लज्जा उत्पन्न होनी चाहिए, किंतु रागियोंके द्वारा उसे ही नितंब (श्लेषार्थ—पर्वतके मध्यवर्ती ढालू प्रदेशसे तुलनीय) कहा जाता है। ऐसे (जुगुप्सनीय)—त्रिक- (अधर, रमण व नितव)-मय (स्त्रीरूपी)पुद्गलस्कांभमे कौन ज्ञानवान् अपनेको बाँधता है? वस्तुके (सत्य)स्वरूपको छोड़कर स्वेच्छया हमारा बुद्धिविकल्प मिथ्यात्वमे प्रवृत्त हो जाता है। पहले हमारा भाव (चित्त) स्त्रीत्व (स्त्रियाकाक्षा)को प्राप्त करता है, और फिर वही बाह्य जगतमे द्रव्य स्त्रीत्व (भौतिक स्त्रीशरीर)के लिए दौड़ता है; सम्यक्ज्ञानी इसप्रकारका विवेचन करता है; किंतु हमारा भाव(मन) ही स्त्रीरूप होता है, इस बातको अज्ञानी नहीं समझता। द्रव्यात्मक(भौतिक) विषयोको भोगते हुए यह जीव ससारमे भ्रमण करता हुआ रहता है। ज्ञानी इस परिस्थितिको उदयागत भावो(कर्मों)के अनुसार (नवीन)कर्मासुवके विना, परद्रव्य (में आसक्ति)को छोड़कर भोगता है, और यही भाव (विवेक) संसाराभाव अर्थात् मोक्षका कारण है ॥१॥

[२]

कुमारको इसप्रकार दृढचित्त देखकर अपने मुखकी कात्तसे चद्रमाकी गोमाको जीतनेवाली, दीर्घनि, श्वास छोडती हुई, और कुछ लज्जापूर्वक हँसती हुई पद्मश्रीने परिपाटीसे (क्रमशः) अपनी उन सपत्नियोंको कहा—हे सुंदरी ! संकुचित की हुई भुजाओसे पागलपन सरीखी वरकी कोई अपूर्व ही भंगिमा है। क्या कहीं पढको भी मदनके वाण लगते हैं? प्रत्युत वापस आकर सैकडो

२०. क ड हिं । २१ ख ग रायहें, ड हिं । २२ क घ ड ङि । २३. क ड भड, व भड ।
 २४. क ख ग ड सल्लवहो । २५ क वय वि, ख ग ड चयवि । २६ घ जहिं । २७ ध तंड । २८ स ग
 तिए । २९ क ड णाणिउ, ख ग णिउ । ३० ख ग घ मरुय । ३१ ख ग घ उज । ३२ क
 संसारी । ३३ क ड छ । ३४. क ड हविणु ।

[२] १. क ग ड दिहुं । २. क ड याउ । ३ क ड याड । ४. ख ग णिउ । ५. ख ग विं ।
 ६. क खड ।

किं करइ अंधु नच्छुच्छवेण
 अविवेयहो एयहो गाहु लग्गु
 धरे संपय^१ एरिस^२ कासु लोप्र
 इय तुम्हइ^३ रुवजियच्छराउ
 साहीणु^४ चयवि^५ सुहु^६ लेइ दिक्ख
 तवचरणहो फलु संदेहि लग्गु
 घत्ता—आणंदरूउ मणजोयहो
 विणु मोक्खे सोक्खघवक्खउ पच्चक्खु जि पावेइ नरु ॥२॥

कि कण्णहीणु^७ गेयारवेण ।
 तवचरणकिलेसे^८ महइ^९ सुग्गु ।
 दुक्करु देवाह^{१०} मि^{११} वहिणि होइ ।
 संपज्जइ सव्वु निरंतराउ ।
 वरे रद्धउ^{१२} नालिउ^{१३} भमइ^{१४} भिक्ख । १०
 पच्चक्खु कासु सग्गापवग्गु ।
 जइ^{१५} तो रमणिजोउ पवरु ।

[३]

हले एक्कु कदाणउ^१ कहमि वरि
 भत्तारु तुम्ह जाणमि जडहो
 निसुणंति ताउ चिभियमणउ
 तिह कहइ पउमसिरि दुल्ललिउ
 तहो गेहिणि धरवाचारया^२

जइ रोसु न भण्णहिं^३ महु उवरि^४ ।
 अणुहरइ जि हालियधणहउहो ।
 आयणणइ^५ जिह^६ जिणवइतणउ ।
 धणहउ नामेण आसि हलिउ^७ ।
 सुउ एक्कु जणवि पंचत्तु ग्या^८ । ५

टुकडे हो जाते हैं । नृत्योत्सवसे कोई अंधा क्या करे ? और कोई बहुरा गीत-रवसे क्या करे ? इस अविवेकीको ग्रह (भूत) लग गया है, तपश्चरणके बलेवासे यह स्वर्ग चाहता है । हे बहन ! इस लोकमें ऐसी संपत्ति किसके घरमें है, जो देवोके लिए भी मिलनी दुष्कर है । यहाँ रूपमे अप्सराओंको भी जीतनेवाली तुमलोग तथा (अन्य) सब कुछ निर्वाचरूपसे प्राप्य है । स्वाधीन सुखको छोड़कर दीक्षा लेना ऐसा है, जैसे किसीके घरमे कमलनाल पके हुए हो, और वह (उन्हे छोड़कर) भिक्षाके लिए भ्रमण करे । तपश्चरणका फल तो सदेहमय है । स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) किसने देखे हैं ? यदि मनोयोग (अर्थात् चित्तवृत्तियोंका निरोध व ध्यानसमाधि)का स्वरूप आनंदमय है, तो उससे श्रेष्ठ तो रमणीयोग है, जिससे पुरुष मोक्षके बिना ही प्रत्यक्ष सुखकी अनुभूति पा लेता है ॥२॥

[३]

हे सुंदर सखी ! यदि मेरे ऊपर रोप न माने तो एक कथानक कहती हूँ । मैं समझती हूँ कि तुम लोगोका यह भर्तार मूर्ख धनदत्त नामक हालीका अनुकरण कर रहा है । वे सब विस्मित मनसे सुनने लगी, और जिसतरह जिनमतीका पुत्र—जबूस्वामी सुने (अर्थात् उसीको लक्ष्य करके) उसप्रकार पद्यश्री कहने लगी—धनदत्त नामका एक दुर्विदग्ध (मूर्ख) हाली था । उसकी घरके सारे काम-काज करनेवाली पत्नी एक पुत्रको जन्म देकर पंचत्वको प्राप्त हो

७ व कणं । ८ क तववरणं । ९ क ड ङ । १० क ड ङ । ११ क डं सु । १२ ख ग ङु ।
 १३ ख ग वि । १४ क ड ङ । १५ क ड ङु । १६ ख ग सो । १७ क ड चडवि । १८. ख ग सहु ।
 १९ क ड रखइ । २०. ड डे । २१ व ङ । २२ ख ग जय ।

[३] १ क व ड ङणउ । २ व मत्तहिं । ३. घ मज्जुवरि । ४ ख ग घ णणइं । ५. ख ग घ जिहं । ६ क ङ । ७. ख ग रय । ८ ख ग गय ।

- सो पुत्तु पवडिहयथोरकर^१
 बुड्डत्तणे^१ विहिणा वाहियउ^२
 तरुणउ^३ तरंउ दु मयजोडियउ^४
 उन्निवु^५ धेरु पियपिल्लणउ
 १० अह अद्धरत्ति^६ सा तासु पिया
 अणुणंतहो बोल्लइ विरसु^७ सरु
 वट्टइ तउ तणउ समत्थु^८ धरे
 ते एयहो च्चलणइ अणुसरवि^९
 यत्ता—विणिवायहि^{१०} पुत्तु महारा जे नंदण होसंति पिय ।
 १५ बुड्डत्तणे ताह^{११} पसाएं भुंजेसहुं निक्कट-सिय ॥३॥

[४]

- पामरु भणइ^१ कंति लज्जिइ^२
 विणयवंतु घरभारधुरंधरु
 बोल्लइ धरिणि कयग्गह^३ पुणु पुणु
 हल्लु वाहंतु पसरं एहु अचछप्र
 पियरे केम पुत्त मारिज्जइ^४ ।
 वल्लिउ विसेसं मारंतहो^५ डरु ।
 मंतु कहेमि एक्कु जो वड्डुणु ।
 नियहल्लु नववड्डल्लु करि पचछप्र ।

गयी । वह पुत्र दीर्घ व स्थूल (बलिष्ठ) भुजाओंवाला और पिताके आरम्भ भार - अर्थात् समस्त कृषि-उद्योगका अच्छीप्रकार निर्वाह करनेवाला हुआ । बुढापेमे विधिसे प्रेरित होकर धनवत्तने एक दूसरी स्त्रीको व्याहृ लिया । वह तरुण, प्रगल्भ और (काम-)मदसे भरी हुई स्त्री सौभाग्य(सौदर्य)रूपी दुर्वातसे भग्न अर्थात् मर्यादा च्युत हो गयी, और वह वृद्ध किसान प्रियाकी कामप्रेरणासे उद्विग्न एवं व्याकुल होता हुआ गाँवके लोगोंके लिए एक खिलौना बन गया । पश्चात् एक दिन उसकी वह प्रिया अर्द्धरात्रिके समय रुष्ट होकर सुँह फेरकर पड रही । अनुनय करनेपर कठोर स्वरमे बोली—मेरे शरीरसे मत लगाओ, अपने हाथको दूर करो, घरमे तुम्हारा समर्थ पुत्र विद्यमान है । मेरे उदरसे जो पुत्र होगे वे सब इसके चरणोका अनुसरण करके (अनुगामी बनकर), इसका भृत्यपना(दासत्व) करके जीयेगे । (अत) है प्रिय ! इस पुत्रको मार डालो, हमारे जो पुत्र होंगे, बुढापेमे उनके प्रसादसे निष्कटक लक्ष्मीको भोगेंगे ॥३॥

[४]

तव किसानने कहा—काले ! यह बडी लज्जाकी बात है, पिताके द्वारा पुत्रको कैसे मारा जाये ? वह विनयवान् है, गृहभारको धुराकी धारण करनेवाला है, और विशेषरूपसे बलवान् है, इसलिए उसे मारनेमे डर भी है । गृहिणी आग्रह करके पुनः पुनः कहने लगी—एक मंत्र (उपाय) वतलाती हूँ, जो बहुत गुणकारी (हितसाधक) है । प्रातःकाल जब यह हल बहा रहा

९ क व ड पवडिहउ । १० स ग भारभर । ११ स ग वड्ड । १२ व ट चाहि । १३ ड णउ ।
 १४ ख ग तर दुम्मयं । १५. क स ड-उब्बंनु. ग उक्खवु । १६ क ड धेर । १७. स ग मेलणउ, घ
 खिल्लणउ । १८. ड रत्ते । १९. क ड स । २० घ लणु । २१ क त्थ । २२ क स ग ड उयरे ।
 २३. क ड रवो । २४ क स ग घ यहि । २५ क ड ताह, ख ग ताह ।

[४] १ ख ग घ इ । २ ख ग ज्जइ । ३. क ज्जइ । ४. घ तह । ५ क ग्गह ।

तो उद्धतवलहई सारहि^१
 पडिभउ नथि नथि अवजसु जण^२
 सन्नु वि नियडवरम्मि^३ पसुत्ते
 पसरि गयम्मि पुट्टि^४ गउ पामरु^५
 पुरउ दिट्ट सुउ^६ लंगलवंतउ^७
 वारिउ पुत्तु^८ काई^९ किर भुज्जउ^{१०}
 नंणु भणइ^{११} ताय^{१२} उम्मूलमि
 बुचइ धणहडेण वढ गच्छहि^{१३}
 तणए^{१४} वुत्तु पइ^{१५} जि सई^{१६} सिद्धउ
 पुत्तु^{१७} पमाणु^{१८} पत्तु^{१९} मई^{२०} धायहि^{२१}
 तं निसुणवि विमुक्क^{२२} डीहरसरु

फोडिवि हलमुहेण^१ पुणु मारहि^२ ।
 पडिवज्जेवि^३ वेणिण वि तुट्टई^४ मणे ।
 इय^५ संकेउ निसामिउ पुत्तं ।
 दुइमविस^६—तिक्खं कुडहलहर^७ ।
 पक्कउ सालिछेत्तु वाहंतउ ।
 अत्यछेउ मा करि गिरितुल्लउ ।
 अहिणवसालि एत्थु पुणु रुवमि ।
 सिद्धउ चयवि^{१०} असिद्धउ वंछहि^{११} ।
 रयणिहि^{१२} जं जंपंत उट्टिद्धउ ।
 महिलहि^{१३} अण्ण पुत्तं^{१४} उप्पायहि ।
 सुउ अवहंडेवि रोचइ पामरु ।

घत्ता—पिउ ह्वालियधणहडतुल्लउ वंछइ^१ किच्छे तउ करिवि^२ ।
 सदेहगउ^३ सुरनारिउ^४ आयउ^५ तुम्हई^६ परिहरिवि ॥४॥

हो, तब अपने नये वैलवाले हलको इसके पीछे कर लेना । फिर उस उद्धत वलसे इसपर (सौगोंका) प्रहार करना (कराना), फिर हलमुखसे विदीर्ण करके मार डालना । इसमें न तो (पुत्रसे) प्रतीकारका भय है, और न लोकोमे अपयश । ऐसा निश्चय करके दोनों मनमें संतुष्ट हुए । यह सारा संकेत(वातालाप) पासके घरमे सोये हुए पुत्रने मुन लिया । प्रातःकाल पुत्रके चले जानेपर हाली भी दुर्दम्य वृषभ और तीखे फलवाले हलको लेकर उसके पीछे-पीछे गया । सामने ही उसने हल लिये हुए अपने पुत्रको पके हुए धानके खेतमें हल चलाते हुए देखा । उसने पुत्रको (ऐसा करनेसे) रोका—अरे क्या (मति-)भ्रष्ट हो गया है ? यह पर्वतके समान महान् अर्थछेद (धन-नाश) मत कर ! तब पुत्र कहने लगा—तात इसका उन्मूलन कदौंगा, और फिर बिलकुल नया धान यहाँ रोपूंगा । धनदत्तने कहा—अरे मूर्ख चला जा, सिद्ध(प्राप्त)को छोड़कर असिद्धको इच्छा करता है । (तब फिर) पुत्रने कहा—‘रात्रिमें बातचीत करते हुए (तुमने पत्नीसे) जो कहा, उससे स्वयं तुमने ही यह सिखाया । प्रमाणको प्राप्त अर्थान् मुझ जवान पुत्रको मारकर तू स्त्रीसे अन्य पुत्र उत्पन्न करेगा ।’ यह मुनकर दीर्घ निःश्वास छोड़कर, वह पामर पुत्रको आलिंगन करके रोने लगा । प्रियतम धनदत्त हालीके समान है, (क्योंकि) यह (स्वयं देविधो-जैसी साक्षात् उपलब्ध) तुम सबको छोड़कर, बहुत कष्टसे तप करके ऐसी सुर-नारियोकी वाछा करता है, जिनकी प्राप्तिमें पूर्ण सदेह है ॥४॥

६ क घ ड उतद्धवलहई, ख ग उद्धतवलहहि । ७. क हि । ८. क हलु । ९. क हि । १०. ख ग जिणए । ११ क ख ग ह ड । १२. ग नियडि । १३. ग डउ । १४. क व ड पुत्ति । १५. क पसर । १६ क ग ग व उट्टम, क ड विमु । १७. क ड हलकर । १८. ख ग सुउ । १९ क मंगल । २०. क घ ड पुत्त । २१ क विमु । २२ ड ड । २३. व ताम । २४. क हि । २५. क ख ग ड चडवि । २६ क ड पउ; घ नउ । २७ ख ग व ड णिहि । २८ व पत्तु । २९. क ड णि । ३०. क व ड पुत्तु । ३१. क ख ग व हि । ३२ क व ड लहि । ३३. क ड पुत्तु । ३४ क ड मुक्क । ३५. ख ग ड । ३६. क ड करवि । ३७ ड सदेह । ३८ क रिउ । ३९ क ड आइउ । ४०. व तुम्हई ।

[५]

- अकखाणावसाणे चित्तइ वरु
 मुक्खत्तणुं अवहेरिं करंतहं^६
 भणइं कुमारु मुद्दसुहिं निसुणहिं^७
 जामि न खयहो एण रइ लोहे
 ५ विंज्जमहीहरे एक्कु महाकरि
 मुउ पाउसपूरेण वहतउ
^{१६} गरुवपवाहपडिउ गउ सायरे
 जलनिहिमब्बे गिलिउ करि मीणे
 अतरालि थिउ जोथइं जामहिं^{३०}
 १० थोवउ परिभमेविं^{३२} गयणच्चुउ^{३३}
^{२५} अप्पाणउ जं दिणणउ^{२५} काए^{२६}
 घत्ता—तहं^{३६} तुम्ह सोक्खु^{३१} चक्खंतउ^{३०} विसयासनु सज्जुं^{३२} मयणे^{३२} ।
 संसारमहण्णवे निवडेवि खयहो न वच्चमि भिगनयणे ॥३॥

[५]

इस आस्थानके समाप्त होनेपर वर सोचने लगा—कैसे इसने मुझे पामर बना दिया ? तो फिर मैं भी अपनी प्रियाओको (मेरे ऊपर लगाये हुए) मूर्खता(के आरोप)का अपहरण करनेवाला कुछ तो भी कहूँ। (ऐसा विचारकर) कुमार बोला—हे भूषणमुखी सुनो ! एक दूसरा कथानक तुम अभीतक नहीं जानती। विषयभोगरूपी आमिषके मोहमें पड़कर मास लोभी कौवेके समान, इस रति लोभसे मैं विनाशको प्राप्त नहीं होऊँगा। विध्यपर्वतपर एक बड़ा हाथी आयुष्यके अतमे नर्मदा नदीको प्राप्त कर वपकि पुरसे बहता हुआ मर गया, और एक कौवेके द्वारा खाया जाता हुआ, भारी-प्रवाहमें पड़कर भयानक मच्छ, कच्छप और मगरके आकर समुद्रमें चला गया। जलनिधिके बीच हाथी मछलियो-द्वारा निगल लिटा गया। वह दुःखी कौवा भी आकाशमें उड़ने लगा। आकाशके अतरालमें स्थित होकर जब उसने देखा तो कहीं कोई गाँव, न कोई स्थान और न कोई वृक्ष (ऐसा कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा)। वह कौवा थोड़ा-सा परिभ्रमण करके आकाशसे च्युत होकर काँव-काँव-काँव करता हुआ, गिरकर मर गया। जिसप्रकार उस बेचारे कौवेने मास भोजनके वश होकर अपने (प्राणों) को दे दिया, उसी प्रकार हे भूगनयने, मैं भी तुम लोगके सुखका आस्वाद लेता हुआ विषयासक्त हो, काम-देवके बशीभूत होकर, इस ससाररूपी महासागरमें पड़कर विनाशको प्राप्त नहीं होऊँगा ॥५॥

[५] १. कं घ ड इ । २ कं उं । ३ घ हउ । ४ न ग भो । ५ ख ग हेर । ६ उं तहो । ७. क हउं कं, ड हउ कंतहो । ८ घ ड । ९ क ड मुद्धिं, ख ग मूडे मूडे, घ मुडुं । १०. क घ टं पहिं । ११ ख ग अज्ज मि, घ अज्ज वि । १२ प्रतियोमं हिं । १३ क पाउं । १४ ख ग पावमि । १५ क ड गिं, ख ग निं । १६ ख ग गरुयं, घ गयहं । १७. ख ग उरे, ड वरि । १८ क ड वापमो वि । १९ ख ग गं डिउ । २० क घ ड हिं । २१ क ड गयं, ख ग तरं । २२ घ मंड । २३. ख ग गयणुच्चउ । २४ ख ग डिउ । २५ क घ ड अप्पउ जेम ण जाणिउ । २६ ख ग काड । २७ क ड वं । २८. ख ग तिह; घ तिह । २९ ख ग वल । ३० कं तउ । ३१ क मज्जु । ३२ ख ग णं ।

[६]

अह कहइ कहाणउ^१ कणयसिरि
सिहराउ पडिउ^२ सयदलिउ मुउ
विज्जाहरु अह अवरेककु^३ जणु
नियपियप्र समाणु एम चवइ
तहिं^४ मरइ कह व जइ^५ किर खयरु
लइ मरमि पत्थु इय बुद्धि थिया
खेयरु वि^६ सहाये नाह तुहु^७
देवाह^८ मि^९ सग्गे किमटमहिउ
अप्पाणउ^{१०} घल्लवि^{११} चुण्णु किउ

कइ एककु वसइ कइलासगिरि ।
मणिकगयमउडघरु^१ खयरु हुउ ।
तं^२ पेक्खिवि हुउ विभइयमणु ।
जहिं कइ मुउ विज्जाहरु हवइ ।
तो^३ अवस होइ गिज्जाणवरु^४ ।
रोवंति^५ निवारइ तासु पिया ।
संपज्जइ^६ चित्तिउ तिसयसुहु ।
अवगणिवि तं कंतप्र^७ कहिउ^८ ।
रत्ताणणु वाणरु होवि थिउ ।

घत्ता—सार्हाणइ^१ सोक्खइ^२ मेल्लेवि अहिउ मुणंतु नट्टु खयरु । १०
तिह^३ आयउ तुम्हइ^४ निच्छइ दइवं छलिउ विणट्टु वरु^५ ॥६॥

[७]

आयणिवि^१ जंबूसामि चवइ
कामाउरु सेवियरइघसणु

विज्झम्मि एककु कइ^२ जूहवइ ।
असहियपडिमक्कडयडरसणु ।

[६]

इसके अनंतर कनकमाला कथानक कहने लगी—कैलासपर्वतपर एक कपि रहता था । वह शिखरसे गिरा और खंड-खंड होकर मर गया, तथा (मरकर) मणि व स्वर्णमय मुकुटधारी विद्याधर हुआ । कोई एक दूसरा विद्याधर उसे देखकर मनमे बड़ा विस्मित हुआ, और अपनी पत्नीके साथ ऐसा वार्तालाप करने लगा—जहाँ कपि मरकर विद्याधर होता है, तो यदि किसी तरह कोई खेचर मरे तो वह अवश्य उत्तम गीर्वाण(देव) होगा । तो लो, अब मैं ही यहाँ मर जाता हूँ, ऐसी उसकी (दृढ़)बुद्धि हो गयी। रोती हुई उसकी प्रिया उसे रोकने लगी—हे नाथ, खेचर स्वभाव(रूप)से भी तुम्हे मनोवाञ्छित विषयसुख प्राप्त होता है । देवोके लिए ही स्वर्गमे कौन-सा अतिशय मुख है ? कांताके कहे हुएकी अवहेलना करके उस खेचरने अपने-को गिराकर चूर्ण कर लिया और लाल भूँहवाला वानर होकर रह गया । स्वाधीन सुखोको छोड़कर, अधिककी कामना करनेवाला खेचर (जिसतरह) नष्ट हुआ, उसीतरह (प्राप्त हुई) तुम लोगोको यह नहीं चाहता । (अतः) यह वर देवसे ठगा जाकर विनष्ट हो रहा है ॥६॥

[७]

यह सुनकर जंबू स्वामी कहने लगे—विध्यमे एक यूथपति वदर रहता था । वह बड़ा कामातुर था, सदैव रतिव्यसनका सेवन करता था, और दूसरे वानरयूथकी आवाज भी सहन

[६] १ क घ ङंणउ । २ क डंवि । ३ क ड मणि-कडयं । ४. क ड रिक । ५. ग तो । ६. ख ग तहि । ७ क ड जे । ८ ग तउ । ९. ग गिज्जाणु । १०. ड रोमति । ११. क ड जि । १२. ख ग व तुहुं । १३. क डंजउ । १४ क डंहु वि, ख गं हु वि । १५ क डंइ । १६. कंउं । १७ क घ ङंणउ । १८ क घ ङु पल्लिवि । १९ डंणइ । २०. क डंइ । २१. ख ग तिहं, घ तह । २२. क डं । २३. घ नस ।

[७] १ ख आठं, वंन्निवि । २ घ कवि ।

- वाणरिय पुत्तु जं किर जणइ
 अह एक कयावि सगळभ हुया
 सुउ जाउ ताहि पिगलनयणु
 पुच्छिय जणेरी कहिं महु जणणु
 तो भणइ कुइउ धुयमुयजुवलु
 निउ तेत्थु परोप्परकुद्धमण
 नहदंतपहारहिं वणियतगु
 हुउ पुट्टिहि इयरु वि असहमणु
 अइतिसिउ सलिलसणिणहुं नियइ
 लंबम्मि चहुट्टु तामं वियलु
 बीओ वि हत्थु तेत्थु जिं निहिउ
 जाणंतु वि मूडु विणट्टमइ
- परिहरइ धूव^३ नंदणु हणइ ।
 तं छड्डिविं अण्णहिं वणे पसुयां ।
 परिवड्डिउ दाढावलिचयणु ।
 सुय^१ अच्छउ पुत्तंकरखणणु ।
 कहिं^२ अम्मि कहमि तहो^१ पावफलु ।
 उद्धाइय^३ वाणर वे वि जण ।
 नासइ जरवाणर^४ मुयवि रणु ।
 छड्डाविउ^५ ताम जाम गहणु ।
 करु छुहेवि जाम^६ पाणिउ पियइ ।
 अहिलसिविं^७ जडेण पुणो वि जलु ।
 लाएवि जाणु वयणु वि निहिउ ।
 लेवम्मि खुत्तु^८ मुउ जेम कइ ।
- १० वत्ता—तह^९ विसयसुहेसु तिसायउ^{३०} होइवि^{३१} हउं मि^{३२} न जामि खउ ।
 अहिसंकडे अनडे पडंतहो महुलवलेहणे^{३३} आस कउ^{३३} ॥७॥

न करनेवाला था । वानरी जो सतान जनती थी, पुत्रीको छोड़कर पुत्रको मार डालता था । पश्चात् किसी समय एक वानरी सगर्भा हुई । उस वनको छोड़कर उसने अन्य वनमें प्रसूति की । उसे पिगलनेत्र और खूब बड़ी द्रष्टृपंक्तिसे-युक्त मुखवाला पुत्र हुआ । उसने जननीसे पूछा—मेरा पिता कहाँ है ? (माने कहा) —हे पुत्र ! वह पुत्ररूपी अंकुरका उन्मूलन करनेवाला (पिता, जहाँ है, वही) रहे, अर्थात् उस पुत्रघातक पितासे तुझे क्या लेना देना है ? तब अपने भुजयुगलको फटकार कर, कुपित होकर वह बोला—माँ बतलाओ (कि वह कहाँ है ?) । उसे उसके पापका फल बतलाऊँगा । माँ उसे वहाँ ले गयी । परस्पर क्रुद्ध होकर दोनों वानर (एक-दूसरेपर) झपटे । नखी और दाँतोंके प्रहारसे घायल शरीर होकर वृद्धा वदर रण छोड़कर भाग निकला । दूसरा भी असहिष्णु होकर उसके पीछे हो गया, यहाँतक कि उससे वन छुड़वा दिया । अत्यंत प्यासे हुए उसने अपने सामने जलके समान कुछ (द्रव पदार्थ) देखा । और जब (एक) हाथ डालकर उस पानी(जैसे पदार्थ) को पीने लगा तो उस लेप (चिपचिपा पदार्थ—गिलाजीत)में चिपककर व्याकुल हो गया । फिर भी उस मूर्खने जलकी अभिलाषा करके दूसरा हाथ भी उसीमें डाल दिया, तथा घुटने लगाकर मुख भी डाल दिया । जिस-प्रकार जानते हुए भी वह हतवृद्धि मूर्ख वानर लेपमें चिपककर मरा, उसी प्रकार विषयमुखोका प्यासा होकर मैं भी, किंचिन्मात्र मधुको चाटनेमें आसक्त होकर सर्पोंमें संकीर्णकूपमें पडकर विनाशको प्राप्त नहीं होऊँगा (दिखिए परिशिष्ट मधुविदुदृष्टात) ॥ ७ ॥

३. ख ग धूय । ४ ख ग डू । ५ क ड छड्डिवि । ६ क ड ण्हि, व अनहिं । ७. क ड णा ।
 ८ घ तामु । ९ क ड पिगलु । १० ख ग कह । ११ ख ग सुअ । १२ क घ टं । १३. ख ग घ
 जुयलु । १४ ख ग कहिं । १५. क त । १६. क ड विय । १७. क उ मुज्वि । १८ क घ टं हिं ।
 १९. क ड छडा । २० क घ ड सलिलु सम्मुहु । २१ क ट ए, घ इ । २२ ख ग घ ड । २३. घ ड
 जाम । २४ व लसिउ । २५ ख ग घ वि । २६ क दि, व ट वि । २७ क मुव । २८. क उ पत्तु ।
 २९ क तिहिं, घ तह, ड तिह । ३० ख ग घ निनाउयउ । ३१ घ हांगवि । ३२ ख ग घ वि ।
 ३३ ख ग आसतउ, घ आमकउ, ड आमकओ ।

[८]

विणयसिरोप्र^१ कहाणउ^२ सीसइ^३
 कम्मि पुरम्मि दरिइ^४ ताडिउ
 दिणि दिणि वणे कवाडहो धावइ
 भुत्तसेसु^५ दिवसेसु पवन्नउ^६
 महिलसहाए^७ रहसे चड्डिउ
 अह रविगहणे कयावि विहाणइ^८
 पूरिएहि^९ मणिरयणसुवण्णहि^{१०}
 मत्तिल्लप्र^{११} आएण असारे
 जाणाविउ^{१२} लोयाण समग्गा
 चित्तेवि तम्मि^{१३} लुद्धु निउ^{१४} भल्लउ
 सो संपुणु करेवि पवत्तइ^{१५}
 अह छणदिणि^{१६} महिलाप्र^{१७} कहिज्जइ
 संखिणि खणइ^{१८} कलसु जहि^{१९} धरियउ

संखिणिनिहि वरइत्तहो^१ दीसइ^२ ।
 संखिणि नाम को वि कवाडिउ ।
 भोयणमत्तु^३ किलेसे पावइ ।
 रुवउ^४ एकु रोक्कु संपन्नउ^५ ।
 कलसे^६ लुहेवि धरायले गड्डिउ । ५
 चलियइ^७ तित्थे चयवि^८ नियथाणइ^९ ।
 अवलोइउ संखिणिनिहि^{१०} अण्णहि^{११} ।
 खडहडंतरुवयसंचारे ।
 अन्हइ^{१२} गिण्हाविज्जहु^{१३} लग्गा ।
 एक्केकउ मणिरयणु गरिज्जउ । १०
 प्हाप्रवि^{१४} तित्थे निययघरु पत्तइ^{१५} ।
 रुवउ^{१६} अज्जु नाह विलसिज्जइ ।
 दिट्ठउ ताम कणयमणिभरियउ^{१७} ।

[८]

(तब) विनयश्रीने यह कथानक कहा, और वर(जंबूस्वामी)को एक संखिणी नामक कवाडीका दृष्टत दिखलाया। किसी नगरमे दारिद्र्यसे पीड़ित संखिणी नामका कवाड़ी रहता था। वह प्रतिदिन वनमें लकड़ी आदि इकट्ठा करनेको जाता और भोजन-भर भी वड़े क्लेशसे पाता था। कुछ दिनोमे खानेसे वचा-त्रचाकर उसके पास एक रुपया रोकड़ (जमा) हो गया। पत्नीके सहयोगसे बहुत उल्लंठापूर्वक एक कलशमे रखकर उस रुपयेको (कही वनमे) धरातलमें गाड़ दिया। अथानंतर किसी समय सूर्यग्रहणके अवसरपर प्रात कालके समय (कुछ लोग) अपने निवास स्थानको छोडकर तीर्थयात्राको चले; और मणि, रत्न व सुवर्णसे भरपूर उन लोगोंने संखिणीकी उस निधिको देखा; तथा कुछ खड़-खड़ करते हुए उस अल्प मूल्यवान् रुपयेके संचरणसे ऐसी मंत्रणा को—इस रुपयेके द्वारा लोगोंको ऐसा जनाया (वत्ला) जा रहा है कि (तीर्थयात्रा के) अपने (इस) मार्गसे जानेवाले लोग हमे (मुझे) कुछ ग्रहण करावें; अर्थात् इस घडेमे एक-एक सिक्का डालकर इसे पूरा कर दे। ऐसा सोचकर वे सब लोग एक-एक श्रेष्ठ सुंदर मणिरत्न उस घडेमें डालकर, उसे फिर वापस जमीनमे गाड़कर पुनः अपनी-अपनी यात्रापर प्रवृत्त हो गये, और तीर्थस्नान करके अपने घर आ गये। पदचात् किसी समय उत्सवके दिन (कवाड़ीकी) स्त्रीने कहा—नाथ ! आज उस रुपयेसे आनन्द मनाया जाये। तब संखिणीने उस स्थानको खोदा जहाँ कलश रखा था, तो उसे सुवर्ण और मणियोसे भरा

[८] १ क ड 'सिरीय। २ क व ड 'णउ। ३. क 'इ। ४ क ड 'यत्तहो। ५ क ड वरहें।
 ६ ख ग भोयणु मित्तु। ७ क ड भुत्तु; ख ग 'सेस। ८ क ड 'णउ, ख ग 'णउ। ९. ख ग व ल्यउ।
 १०. प्रतियोमे 'कलसे'। ११ प्रतियोमे 'गिहाणइ'। १२ ख व चडवि। १३ क 'णइ, ड 'णइ, च
 'निहि'। १४. क व ड 'णिहि'। १५ क व ड 'ज्जइ'। १६ प्रतियोमे 'जाणाविवि'। १७ घ गिण्हाविज्जइ।
 १८ क ड मति, घ तम्मि। १९ क ड गिर, घ निर। २०. क ड 'यवि, व न्हाडवि। २१ क डवि'।
 २२ क व ल 'लाइ'। २३ प्रतियोमे 'खणइ'। २४. क ड 'कणयमय'।

१५ मगहसु रहसे^{२२} कहिउ^{२३} पिप्रु^{२०} पेक्खहि^{२८} मई^{२९} सम पुण्णवंतु^{२९} को लक्खहि^{३०} ।
 अज्जवि^{३१} सिद्धिनएण निहाणे रयमि उवाउ अवरु मइनाणे^{३२} ।
 कि पि न लेमि करेमि न खोयणु^{३३} होसइ कवाडेण वि^{३४} भोयणु ।
 अह कलसेसु लुहेवि एक्केउ^{३५} बहु दधिणासप्र गड्ढेवि मुक्कउ^{३६} ।
 अण्णहि^{३७} पठवे पुणु वि पहे विट्ठइ^{३८} पूरहु केम हियप्र^{३९} न पइइइ^{३९} ।
 निहिहिं^{४०} रयणु एक्केउ लइयउ सुण्णउ^{४०} करेवि सव्णु परिचइयउ ।
 २० अवरहि^{४१} समप्र जाम उग्वाडइ^{४२} रिउउ नियवि करहिं सिरु ताडइ^{४३} ।
 अच्छउ^{४३} रयणसमूहु सरूउ^{४४} सो वि विणहु मूलि जो रूउउ^{४४} ।
 यत्ता—साहीणलच्छि नउ भुंजइ^{४५} महइ^{४६} समगलु सगदिहिं ।
 सखिणिहिं^{४७} जेम वरइत्तहो करे लग्गोसइ सुण्णनिहिं^{४८} ॥८॥

[६]

बोझइ कुमार रइसुहहो भामि भमरो न्व वरच्छि न खयहो जामि ।
 सयवत्तम्भतरे गंधलुहु अलि न कलइ दिवसत्थवणु सुहु ।
 रयणीसंगमे संकुइइ कमलु नीसरिवि न सक्कु विचणु भसलु ।

देखा । उसने उत्कंठासे उत्कंठित होकर कहा—प्रिये, देखो । मेरे जैसा पुण्यवान् और कौन दिखाई देता है ? सिद्धिनय(दैवयोग) से अर्जित खजानेके द्वारा मैं अपने बुद्धिबलसे (प्रभूत धनार्जन करनेका) एक अन्य उपाय रचता हूँ । इस निधमे-से न तो कुछ लूंगा और न इसे खो-दूंगा, अपना भोजन तो कवाडोपनसे भी चलता रहेगा । फिर एक-एक मणिको एक-एक कलशमे रखकर अत्यधिक धनकी आगासे गाडकर छोड़ दिया । (उन्ही) अन्य यात्रियोने (किसी दूसरे) पर्वपर मार्गमे फिर उस निधिको देखा, और (घडेमे एक ही रत्न देखकर) यह निधि कैसे पूरी हो, यह बात उन लोगोके हृदयमे अर्थात् समझमे नही आयी । (अंततः उन लोगोने खोज-खोज-कर) उस निधमे-से एक-एक करके सब रत्न ले लिये और सब घडोको खाली करके (वही) छोड़ दिया । जब (पुन) सखिणीने पत्नीके साथ उस निधिको उवाड़ा तो (सब घडोको) रिक्त देखकर हाथोसे सिर पीटने लगा ।—वह सुंदर रत्नसमूह तो दूर ही रहे, जो मूलमे एक रयया था, वह भी विनष्ट हो गया । स्वाधीन लक्ष्मीको तो भोगता नही, और श्रेष्ठ स्वर्गमुपकी आकांक्षा करता है, ऐसे इस वरके लिए उस सखिणीके समान गून्य निधि (पाली घटे) हो हाथ लगेगी ॥ ८ ॥

[९]

कुमार बोला—हे भुंदर आँखोवाली भामिनी ! रति (रमण, क्रीडा)-मुपके कारण मैं भ्रमरके समान विनाशको प्राप्त नही होऊँगा । जतपत्रके भीतर गया हुआ गंवका लोभो मूय भीरा दिवसके अस्त होनेको नही जान पाता । रात्रिके मंगम(प्रदोषकाल)पर कमल गकुनित

२५ क ट मरहसेण कहियउ । २६ घ र्हमि । २७ क ट पिय । २८ क िं; स ग िं । २९ क ट पुण्णिं; व पुत्तं । ३० स ग िं । ३१ क ट अज्जु वि । ३२ क घ ट ाणे, स ग मंणो । ३३ घ मोहणु । ३४ क ड य । ३५ क ष कउ । ३६ क ट िं । ३७ क म ग ट । ३८ क ट िं । ३९ स ग घ िं । ४० क ट िं घ मुप्रउ । ४१ क घ ट िं । ४२ क िं । ४३ घ िं । ४४ क ष उ । ४५ क स ग िं । ४६ क ट । ४७ न ग िं । ४८ क ट िं, घ मुप ।

इय विसयसोकखु अचयंतु संतु
 तो कहइ रूवसिरि कवलिखप्यु
 काल्मि कम्मि महिजणियसत्तु
 पावससिरि-संतरयंबरीय^२
 धणपडल्लण्णतारयविहाड^३
 वरिसइ घणोहु अच्छिन्नधारु^४
 गिरिकडणि सिलायडे^५ मंदमंदु
 आलावणिवज्जहो अपुहरंतु
 पडणुच्छलंतजलु धरणि^६ चहइ
 घत्ता—निसिदिवससत्त धाराहरु^७ वरिभइ पूरियधरणियल्लु^८ ।
 संचारु न लडभइ सलिले हुउ आदण्णउ^९ जगु सयलु ॥६॥

पलयहो न पबच्चमि पडु^१ मंतु ।
 परिसथोहें गउ खयहो सपु ।
 सिहिवल्लु वासारत्तु पत्तु ।
 हेड्डामुह^२-लंविपओहरीय^३ ।
 उल्लसियकामु^४ जरथेरि नाइ ।
 तरुवरदल्लघट्टणतारतारु ।
 हलकिट्टल्लेत्तमालेसु संतु ।
 सरि-सर^५-निवाण-वरि-दह^६ भरंतु ।
 फलिहमयलिंगजडिले व सहइ^७ ।
 वरिभइ पूरियधरणियल्लु^८ ।
 संचारु न लडभइ सलिले हुउ आदण्णउ^९ जगु सयलु ॥६॥

[१०]

फुट्टतलायपालिवहनिगगय^१^२नइउण्णाहल्लगगजलयर गय ।

हो जाता है, भौरा उसमे-से निकल नही पाता, व उसीमें मर जाता है । इसीप्रकार विषय-सुख-का त्याग न करके मैं विनाशके मार्गपर नही चलूंगा, यही मेरा मतव्य है । इसपर रूपथी बोली—ऐसे ही पराक्रम(आत्माभिमान)से एक सर्प अपने-आपको कालकवलित करके विनाश-को प्राप्त हुआ । किसी समय पृथ्वीमें अनेक सत्त्वोको उत्पन्न करनेवाला शिखि-वल्लभ वर्षाऋतु प्राप्त हुआ । अंबरमे रज गात हो गया, पयोधर(मेघ) अधोमुख होकर आकाशमे लटक गये, मेघपटलसे तारकगुण आच्छादित हो गये, और काच(घासविशेष) खूब फूल उठे; इसप्रकार वह पावसलक्ष्मी ऐसी जराजीर्ण वृद्धाके समान प्रतीत हुई, जिसका रजोवर गांत हो गया है, अर्थात् ऋतुमती न होनेसे जो रजोवस्त्र धारण नही करती; जिसके पयोधर(स्तन) अधोमुख होकर लटक गये हैं; जिसके अक्षि-तारक (आँखोकी पुतलियाँ) घने अक्षि-पटल (मोतियाविद)से आच्छन्न(आवृत) हो गये हैं, और जिसका काच अर्थात् खाँसी रोग (स्वास) अत्यधिक बढ़ गया है । उत्तम वृक्षोके पत्रोसे सघट्टन करता हुआ वारिद-समूह गिरिभेखला और शिलातटोपर मद-मद, एवं हल चलायी हुई क्षेत्र-मालाओमे खूब घना, अतः आलापिनी(वीणा)के वादनके स्वरका अनुहरण करता हुआ, और नदी, तडाग, गड्ढो, दर्रे व दहोंको भरता हुआ अविच्छिन्न धारासे बरसने लगा । वर्षा गिरनेसे उच्छलते हुए जलको धारण करती हुई पृथ्वी ऐसी शोभायमान हो रही थी, मानो स्फटिकमय लिंगोसे जड़ दी गयी हो । सात रात-दिनो तक मेघ निरंतर बरसता रहा, और उसने धरातलको जलसे पूर दिया । पानोके कारण संचरण (मार्ग) मिलना भी कठिन हो गया, और सारा जग व्याकुल हो गया ॥ ६ ॥

[१०]

तालाबोकी पाल(मेढ) फूट गयी, और उससे जलका प्रवाह वह निकलो । नदीकी वाढ़में

[१] १ घण्टा । २ घड वलीय । ३ कड मुहु । ४ कड पयो । ५ कड । ६ ख ग कास । ७ क घ ड ह । ८ क ख घ ड अच्छिण्ण । ९ घ तरवर ; द दलघणत्तारुणतारु, क दलवट्टणतारतारु । १० क ड वड, ख ग व यड । ११ क सरि । १२ ख ग दर । १३ ख ग ण । १४ ख ग व । १५ घ धर । १६ क ड वलु । १७ क घ ड णणड ।

[१०] १ ख ग पंहनि । २ क ड णय, ख ग नय ।

- थिपर-जुण^३-तण^३-कुडिलीण^३
 सलसलंति मुखवडं सविडवडं
 नीडनिवासिपहिं अच्छिजइ
 ५ गिरिकुहरेसु थकु वणयरगणु
 मंदी जाइ जलोहिं नियत्तिप
 नियआहारु चरंतें सरहें
 कुंडलियंगु तडियउद्वरफणु
 खहु भुयंगमेण कहिं लुकमिं
 १० पुव्वविट्टनउलदरि सरंतें
 उचइ सामिमाल मइ^१ मारहिं^१
 एम भणेवि करेवि^३ मुहुं^३ वुणउ^३
 अहिणा भणिल^३ काइ^३ विवरेरउ
 करकेटिउ कहेइ^३ तुहुं कुलपहु
 १५ इय जयकारु रहसकिउ मण्णहिं^३
- कंदिरिडिभइ^१ तवणविहीणइ^१ ।
 निव्ववसायइ^१ रोड^१-कुडवइ^१ ।
 वार वार पक्खिहिं^१ मुच्छिजइ ।
 तल्लूवेलि करइ पीडियतणु ।
 पविरलजलसंचार^३-पवत्तिप^३ ।
 दिट्टउ कालसपु मइजरडे^३ ।
 ललणललंतु^३ जगु जि भक्खणमणु ।
 केण उवापं आयहो चुकमि ।
 जय-जय सह करेवि तुरंतें ।
 खुइजंतुजोणिहिं^२ उत्तारहिं^२ ।
 असुपवाहु सुयंतं^२ रुणउ^२ ।
 चरिउ तुहारउ^२ जण अच्छेरउ ।
 पइ^३ खडउ^३ पावेसमि सिवपहु^३ ।
 रोविउ जं पि तं पि आयण्णहिं^३ ।

पडकर जलचर वह गये । खाद्य पदार्थोंके न मिलनेसे क्रंदन करते हुए बच्चे गलती हुई जीर्णतृण-निमित्त कुटियोमे लीन हो गये । कुटुंबीजन भूखसे व्याकुल होकर सलबलाने लगे और व्यवसाय-हीनताके कारण हैरान हो गये । पक्षी अपने नीडोंमें ही निवास करते रह गये, और वार-वार मूच्छित होने लगे । वनचर-समुदाय गिरिकदराओमे स्थित हो गया, और पीडित शरीर होकर तडफडाने लगा । जलके प्रवाहमे-से निवृत्त होकर(बचकर), उथले जलमे संचरण प्रवृत्तिसे धीरे-धीरे चलते हुए एक मतिवृद्ध (प्रीढमति) करकेटिने स्वयके आहारके लिए विचरण करते समय एक काला सर्प देखा, जो शरीरको कुडलित किये हुए अर्थात् कुंडली मारे हुए, विस्तीर्ण फणको ऊपर उठाये हुए, मानो सारे जगको भक्षण करनेके मन(इच्छा)से अपनी जीमोको लपलपा रहा था । अब मैं भुजंगमेसे खाया गया, कहाँ लूकूँ और किस उपायसे इससे बचूँ ? (ऐसा सोचकर) पहले देखी हुई एक नकुल गुफाका स्मरण करके उस करकेटिने तुरत जय-जय शब्द करके कहा—हे स्वामिश्रेष्ठ । मुझे मार डालिए और क्षुद्र जंतु योनिसे उद्धार कर दीजिए । ऐसा कहकर, उद्विग्न मुख करके अश्रुप्रवाह छोडता हुआ रोने लगा । सपने कहा—तुम्हारा चरित्र लोगोमे बडा विपरीत और आश्चर्य-कारक है, इसका क्या कारण है ? करकेटा कहने लगा—तू हमारा कुलदेवता है, तुम्हारे-द्वारा खाया जाकर मैं शिवपथको पाऊँगा, इस कारण तो हर्षसे जय-जयकार की ऐसा मानिए, और जो रोया, उसका कारण भी

३. घं न । ४. क काडिं । ५. ख ग ड ङिभइ । ६. क घ ङ तवणिं । ७. क घ ङ इ । ८. वं वइ ।
 ९. क घ यइ । १०. क रोड । ११. क ङ वइ । १२. क ङ पंखिहिं । १३. क घ ङ रिं । १४. ख ग
 पविं, ङ पवत्तिय । १५. घ मइ । १६. घ ललइ । १७. ख ग कहिं । १८. ख ग मइ । १९. कं हिं ।
 २०. क घ ङ जोणिहिं । २१. क घ रं हिं । २२. क करवि । २३. क घ ङ मुहुं । २४. ख ग ङ वुं,
 घ वुजंतं । २५. घ मुवत्ति । २६. घ उं । २७. क घ ङ उं । २८. क ङ काइ । २९. क ङ रउ ।
 ३०. घ भयेइ । ३१. ख ग पइ । ३२. क घ उं । ३३. क पहुं, सुहुं । ३४. क ङ हिं, घ मत्तहिं ।
 ३५. क ख ग ण्णहिं ।

महु कुडंबु संताणगरिज्जउ मइ^{३१} पक्केग जि विणु एकज्जउ ।
 केम हवेसइ त्ति दय किज्जउ तो^{३०} वरि तं पि देव^{३२} भक्खिज्जउ ।
 बुत्तु कुडंबु कहहि^{३१} जहि^{३१} अच्छप्र चलिप्र चलिउ सो वि तहो पच्छप्र ।
 निउ गिरिदरिहि^{३०} भडारा लक्खहि^{३१} गोत्तु महारउ^{३२} पइसिवि भक्खहि^{३३} ।
 तुट्टु पइइ^{३४} दिट्टु मुहत्तंवे खद्धउ फाडिवि नउलकयवे । २०
 अहिलसत्तु अहि अहिउ^{३४} जि लक्खइ इट्टु^{३१} नियइ वडिपहरु न पेक्खइ ।
 पत्ता—^{३५} इच्छंतहो अहिउ असिद्धउ सिद्धविणासु वि “पियहो किह^{३६} ।
 सिवमाहवधुत्तविलोहिउ^{३७} रायपुरोहिउ मुट्टु^{३८} जिह ॥१०॥

[११]

तं निसुणेवि कुमारे बुच्चइ विसु साहीणु किं न लहु मुच्चइ ।
 रयणिहि^{३९} नयरे सियालु पइइउ सुउ बलह रच्छामुहे दिट्टु^{४०} ।
 भक्खतेण दंत-वणे^{४१} काणिउं रयणिविंरामपमाणु न जाणिउं ।
 हुप्र^{४२} पहाप्र^{४३} वस-आमिसमुज्जिउं जणसंचारवमाले बुच्चिउं ।
 भयकंपिनु नोसरिवि न सक्कउं चितियमंतु पडेविणु^{४४} थक्कउं । ५

सुन लोजिए ! मेरा कुटुंब बहुत संतानोंवाला है । मुझ एकके बिना अकेले (निराश्रय) होकर उसका कैसे क्या होगा ? इसलिए हे देव ! दया कीजिए, और उसको भी खा लीजिए ! सर्पने कहा—जुम्हारा कुटुंब कहाँ रहता है, यह बताओ ! करकंटेके चलनेपर वह सर्प भी उसके पीछे-पीछे चला । गिरिकदरामे ले जाकर करकंटेने कहा—भट्टारक, यह देखिये हमारा कुल ! भीतर प्रवेश करके इसे खा लीजिए ! प्रसन्न होकर वह(सर्प) प्रविष्ट हुआ, वहाँ लाल मुँहवाले नकुल समूहने उसे देखा, और फाड़कर खा लिया । अभिलापाके वशीभूत हुआ सर्प अधिककी ओर ही लक्ष्य करता है; अतः अपने इष्ट(दुग्ध)को तो देख लेता है किंतु प्रतिप्रहारको नहीं देखता । और अधिक अनुपलब्ध(सुखों)की इच्छा करनेवाले प्रियतमके उपलब्ध सुखोंका भी विनाश उसीतरह हो जायेगा, जिसप्रकार शिव और माधव धूर्तों-द्वारा ललचाया हुआ राजपुरोहित ठगा गया ॥१०॥

[११]

इस कथाको सुनकर कुमारने कहा—अपने आधीन विपक्षी (भी) क्या तुरत त्याग नहीं दिया जाता ? रात्रिमे एक शृगाल नगरमे प्रविष्ट हुआ और (उसने) रास्तेके मुँहपर ही एक मरा हुआ बैल देखा । (उसे) खाते-खाते उसके दाँत व मुख छिद गये और वह रात्रिके अंत होनेको अवधिको भी नहीं जान सका । प्रभात होनेपर वृषभके माससे मोहित वह शृगाल लोभके संचारके कोलाहलसे सचेत हुआ । भयसे कांपता हुआ वह (नगरसे) निकल भी नहीं

३६ ख ग मइ । ३७ ख ग घ वरि देव ते (व त) पि । ३८ ख घ ँहि । ३९ ख ग जिहि । ४० क इ हि । ४१ क ँहि । ४२ क रउं । ४३ क ख ग हि । ४४ क इ पयट्टु । ४५ क उं । ४६ क घ इ इट्टु । ४७ ख ग मे पूरी पक्ति इस प्रकार—लोहें जाइ खउ अहि वि विणासु वि पियहो किह । ४८ क ह । ४९ क इ धुत्तु । ५० क इ मुट्टु, ख ग मुट्टु ।

[११] १ क उं । २. प्रतिमोमे ँणिहि । ३ क उं, इ दिट्टिउ । ४. क व ड वण, ग वणु । ५ क उं । ६ क इ हुय, ख ग हुउ । ७. क इ इं । ८ क हामिम । ९ क उं, ख ग घ ड इ । १०. घ ँपिणु ।

- अण्ड मुयउ करिवि दरिसावमि किर वणु पुणु वि निसागमि पावमि ।
 दीसई दिव्वि मिंलिय पुरलोएं एके नरेण पवडिहियरोएं ।
 ओसहंथु लुउ पुच्छ -सकणउ जीवेसमि अपुच्छ विणु कण्णहि ।
 चितइ जंयुउ अज वि धण्णउ ।
 १० वोझइ अवरु एकु कामुयजणु एकवार जइ लुहमि पुण्णहि ।
 पाहणु लेवि दंत किर चूरइ गेण्हमि दंतु करमि वसि पियमणु ।
 खंडियपुच्छ -कण्ण मण्णिय तिणु जाणिवि जंयुउ हियइ विसूरइ ।
 चितवि मुकु धाउ जव-पाणे दुकरु जीवियास दंतहि विणु ।
 मारिउ ताम जाण कयनाएं लइउ कंठे हरिसरिसें साणे ।
 १५ इय विसयंधु मूढु जो अच्छइ खद्धउ मिलिचि सुणहसमवाएं ।
 घत्ता— गय अद्धरत्ति बोहंतहे तो वि कुमारु न भवे रमइ ।
 तहि काले चोरु विज्जुवरु चोरेवइ पुरे परिभमइ ॥११॥

[१२]

विरइयगाढगंठिपरिहणसलु
 निविडंनिवद्धजुडसिरपरियरु

क्रियआयत्तलुरियविहुकडियलु ।
 अयरुग्गारधूवेसुरहियमरु ।

सका और यह मंत्र सोचकर निश्चल होकर पड़ रहा—अपनेको मरा हुआ दिखला देता हूँ, पुनः रात आनेपर वनको चला जाऊंगा। दिनमें नगरके लोगोंने मिलकर देखा। एक मनुष्यने जिसका रोग बढा हुआ था, औषधिके लिए उसकी पूँछ व कान काट लिये। जबक सोचने लगा—अभी भी घन्थ (भाय) हैं; यदि एक बार पुण्यसे छूट जाऊँ तो बिना पूँछ और कानोके ही जी लूँगा। एक दूसरा कामी पुरुष बोला—इसका दाँत ले लेता हूँ, (उससे) प्रियाका मन वशमे करूँगा। और पत्थर लेकर सचमुच ही उसके दाँत तोड़ डाले। (यह) जानकर शृगाल अपने हृदयमें खेद करने लगा—पूँछ व कानके काटे जानेको तो मैंने तृणके समान समझा, परंतु दाँतोके बिना तो जीनेकी आशा दुर्कर ही है। ऐसा सोचकर (लोगोसे) छूटते ही जब वह अपने प्राण लेकर भागा, तो सिंहके समान स्वानने उसे गलेसे पकड़ लिया, और जानसे मार डाला, तथा शोर मचाते हुए कुत्तोके समुदायने मिलकर खा डाला। इसप्रकार जो मूढ विषयाघ होकर रहता है, वह अवश्य विनाशको प्राप्त होगा, इसमें क्या आति है ? (इसप्रकार) कथा-वार्ता करते-करते आधीरात बीत गयी, तो भी कुमार ससारमें आसक्त नहीं हुआ। उसीसमय विज्जुवरु नामका चोर चोरी करनेके लिए नगरीमें भ्रमण कर रहा था ॥११॥

[१२]

सुदृढ गाँठसे अपने परिधानमें शलाका (डंडा) लगाये हुए, और पृथुल (विशाल) कटितलपर छुरीको स्वाधीन किये हुए अर्थात् लटकारे हुए, शिरके चारो ओर घना जटाजूट बाधे हुए, अग्ररुके

११. घ सं । १२ क ड असं । १३ क घ ड पुच्छु । १४. घ छ ण्णउ । १५ ख ग वणउ, घ ड सं ।
 १६ घ च्छ । १७. क ड वि । १८. ख ग जवू । १९ ग हियय । २० र ग घ खडिउं, पुच्छु ।
 २१. क घ ड तण्ण । २२ ख ग हिं । २३ क ड चितिवि । २४ क ख ग ल ग रत्तु । २५ क ड तंठ,
 ख ग तंठो । २६ ख घ ल इ । २७ ख ग तंहे । २८ घ चोरिज्जइ । २९ ख ग इ ।

[१२] १. र ग निवडं । २ ख ग घ धूय । ३. व पसरियं ।

सियतंत्रोलवत्तवीडियधर
 कामिणिकामलयहे^४ मेल्लिवि घर
 वेसउ जत्थ विहूसियरुवउ
 खणविट्टो वि पुरिसु पिउ सिट्टउ
 नउलुउमउ ताउ किर गणियउ^५
 वम्महदीवियाउ^६ अविउत्तउ^७
 लगिरसाइणिसत्थसरिच्छउ^८
 मेरुमहीहरमहिपडिउविउ^९
 नरुवइनीइसमाणिविहोयउ
 अहरे राउ मयणु^{१०} वि जहि^{११} वट्टइ

फेरियपत्तिवालदाहिणकरु ।
 वेसाघाडउ नियइ निरंतरु ।
 नरु मण्णाति^४ विरुउ विरुवउ ।
 पणयारुडु न जम्म^५ वि दिट्टुउ ।
 तो वि सुयंगदंतनहवणियउ ।
 तो वि सिणेह संगपरिउत्तउ^६ ।
^७ कामुयरत्ताकरिसणदच्छउ ।
 सेवियवहुकिपुरिसनियउ ।
 दूरुडिअणत्थसंजोयउ ।
 पुरिसविसेससंगि न पयट्टइ ।

५

१०

उद्गार व धूपसे पवनको सुगंधित करते हुए, श्वेत तावूल(पका पान)पत्रका बोड़ा चवाते हुए दाहिने हाथसे तलवार घुमाता हुआ, कामलता नामक कामिनोके लिए घर छोड़कर निरंतर वेश्याघाटको देखा (जाया) करता था, जहाँपर वेश्याएँ खूब सजे हुए रूपवाले मनुष्यको भी रूपसे रहित अर्थात् धनहीन होनेसे विरूप (कुरूप) मानती हैं। क्षण-भरके लिए देखा हुआ (धनवान्) पुरुष जहाँ अतिवल्लभ कहा जाता है, और जीवन-भर प्रणयासक्त रहनेवाले पुरुषको (भी निर्धन हो जानेपर) ऐसा कहा जाता है कि इसे जन्म-भर कभी देखा ही नहो। जो नकुल सतान होकर भी भुजंगो(सर्पों)के दंत-नखोसे व्रणित (घायल) होती है (यह विरोधाभास है); अर्थात् वे न-कुल—हीन कुलमें उत्पन्न होती है, और भुजंगो अर्थात् कामीजनोके दाँतो व नखोसे उनके अगोपर व्रण लगा दिये जाते हैं(विरोध परिहार)। (काममोगसे) कभी भी तृप्त न होनेवालो कामदेवकी दीपिकाएँ होते हुए भी वे स्नेहसंगसे परित्यक्त होती हैं (विरोधाभास), अर्थात् कामवासनाका उद्दीपन करनेवाली होनेपर भी किसीसे सच्चा स्नेह (प्रेम) नहीं करती (विरोध परिहार)। रक्त चूसनेमें दक्ष व लगी हुई शाकिनियोके समूहके समान वे कामुक व्यक्तियोंका रक्त (शक्ति व धन) चूसनेमें दक्ष होती हैं। वे मेरुपर्वतकी समभूमिके प्रतिबिंबके समान होती हैं। मेरुपर्वतकी समभूमि किंपुरुषादि देवोसे सेवित होती है, वेश्याओके नितंब किंपुरुषो अर्थात् क्षुद्र मनुष्योसे सेवन किये जाते हैं। वे राजनौतिके समान ऐश्वर्यसंपन्न होती हैं, और अनर्थ संयोगोको दूरसे ही छोड़ देती हैं। राजाकी नीति ऐश्वर्यवृद्धि करनेकी तथा राजा और प्रजाको हानि करनेवाले कारणोंको दूरसे ही छोड़नेकी होती है; उसीप्रकार वेश्याएँ ऐश्वर्य और ऐश्वर्यज्ञानोको तो चाहती हैं, और अर्थहानिके संयोगों अर्थात् जिन लोगोसे कोई अर्थलाभ होनेवाला नहो, ऐसे धनहीन लोगोके सपर्कको दूरसे ही त्याग देती हैं। जिनके अधरोमें राग(प्रेमरस) भी विद्यमान है और मदन(कामदेव) भी, तथापि वह पुरुष-विशेषके साथ प्रवृत्त नही होता (यह विरोधाभास है); (विरोधपरिहार) जहाँ ओठो व अधम(अहरे) पुरुषोंमें राग होता है, और जो नीच मदन(काम)से युक्त है, अथवा जिनके ओठोमें नीच पुरुषोके प्रति राग

४ ड लयहो। ५ घ मसति। ६ ख ग जम्म। ७ ग दिट्टिउ। ८ घ यउ। ९. क घ ड 'दंतखय'।

१० प्रतिगोमे वम्मह^१। ११ क ख ग ड 'मत्तउ'। १२ क ड सणेह^१। १३ ख ग 'भायणिसत्थ'।

१४ ख ग कामुअ^१। १५ घ 'धिविउ'। १६ ख ग पमाणु। १७ ख ग जहुं, घ जहु; ङ जहि ।

परकोऊहलत्थु^{२०} विरइज्जणं कडिपरिहाणु न लज्जण^{२१} किज्जण।
 सरलत्तणु वाहुल्यहि^{२०} सिद्धव परवंचणअ^{२१} हियाण^{२२} न विट्ठ।
 १५ रुदरवेसविरयण^{२३} न सरुबड कामुयमण^{२४} सायडहणभूवड^{२५}।
 जं मिट्ठंतु न सद्धहे^{२६} इहु गुण तरुण^{२७} चित्तरंजण^{२८} पीडइ^{२९} पुणु।
 मंडण^{३०} वण्णावेक्ख^{३१} न विडजण^{३२} गडरउ रवण^{३३} न माणुसे निद्धणे।
 घत्ता—आयरण सुइरु^{३४} आलिगिभि^{३५} सरसु^{३६} पुरिसु महसुचु जिह।
 रिच्चेवत्र निउणउ^{३७} खुइउ खुइउ^{३८} संचुं वति तिह^{३९} ॥१२॥

[१३]

का वि वेस नवद्विणु गणंती
 ईसामिसण निरोहवि^३ बारइ

हियवणमणुससंगु अगणंती^०।
 मंदिरि अवरु सधणु पइसारइ।

व काम रहता है, वहाँ पुरुष-विशेष अर्थात् उत्तम-पुरुषमे उसका प्रवृत्त न होना स्वाभाविक है। और जहाँ दूमरको कौतूहल (औत्सुक्य) उत्पन्न करनेके लिए ही कटिवेशकी विरचना (सजावट) की जाती है, लज्जाये नहीं। और सारल्य उनकी वाहुल्यताओमे तो कह दिया गया है, परंतु उनके परवंचक हृदयमे किसीने नहीं देखा अर्थात् उनके हृदयकी कुटिलतापर किसीने लक्ष्य नहीं दिया। और जिनमे कामीजनोके मनको आकर्षण करनेवाली रुचिर(सुदर) वेशरचना तो होती है, परंतु स्वाभाविक रूप (नैसर्गिक सौंदर्य) नहीं होता। और उनमे जो मोठापन है, तो यह गुण श्रद्धाके लिए, अर्थात् श्रद्धाके कारण नहीं; क्योंकि वह तरुणाईमे तो चित्तका अनुरजन करता है, परंतु पीछे पीड़ा देता है। अपने शारीरिक मडनमे तो उन्हे सब वर्णों(रंगों)की अपेक्षा (चिन्ता) रहती है, परन्तु विट्जनोके सबधमे उन्हे किसी वर्ण—जातिकी कोई अपेक्षा नहीं रहती। और उनका गौरव (गुरुता, गुरुभाव) उनके रमण(भोग करनेवाला धनी व्यक्ति अथवा नितब-प्रदेश)मे होता है, निर्धन मनुष्यमे नहीं। जिसप्रकारसे किसी छत्तेसे उडायी हुई निपुण मधुमक्खियाँ मधुके उस सरस(मधुयुक्त) छत्तेको रिक्त करनेके लिए आदरपूर्वक खूब देर-तक चूमती अर्थात् चूम लेती हैं, उसीप्रकारसे ये क्षुद्र(दुष्टाभिप्राय) व निपुण वेद्याएँ किसी सरस (स-काम, स-धन) व्यक्तिको रिक्त (धन-हीन) करनेके लिए आदर(अनुराग)-पूर्वक चिरकाल तक आलिगन करके चूवन करती है (अर्थात् पूर्णतः चूस लेती है) ॥१२॥

[१३]

कोई वेद्या किसी नये-नये धनिकको गिनती (आदर देती) हुई किसी हृतधन अर्थात् धनहीन मनुष्यके संसर्गकी अवगणना(अवहेलना) करती हुई ईर्ष्याके दहानेसे (कि तुझे यहाँ देखकर उस धनिकको ईर्ष्या होगी) उसका गृहप्रवेश निषिद्ध करके, उसे हटा देती है, और घरमे

१८. ख ग रलत्थु। १९ क ड हि; घ इ। २० ख ग लपहो। २१ क ड वचण, घ वचणु।
 २२ क घ ड हियाए, ख ग हियए। २३ क घ ड वणु। २४ ख ग कामुअ। २५ क ख ग ड साट्टयण, क घ ग ड भूयउ। २६ ख ग सइहे। २७ ख ग व ण। २८ क ड चित्तु। २९ ख ग ए। ३० व ण। ३१ घ वण। ३२ व यणि। ३३ क रउ वणि; गग गउर वणं। ३४ ग सुयस। ३५ ड धिभि। ३६ ग स। ३७ ख ग णेउणउ, घ णउ। ३८ ख ग ए। ३९ घ निउ।

[१३] १ ख घ ग वणु। २ क ख ग ड अमुं; घ अयं। ३. क घ ड हिवि।

काए वि जूरतीए^४ वियपिउ^५
 कूडव दम्मु निएचि विमत्ति^६
 भग्गभाडिबिडु^७ दिट्ठउ काय वि
 पच्छ^८ जं धणु लद्धु चउग्गुणु
 धणु वि ढिण्णु निरपेक्ख विर्यंभइ
 इय पेक्खंतु चोरु किर गच्छइ
 गाढालिंगणचप्पियथणयडु
 दसनकोडिपीडियविवाहरु
 सेयसलिललवल्लियकपोलउ^९
 गामासन्नवणु^{१०} व ह्यवच्छउ^{११}
 कम्मवियारु व रुवियबंध

बंधयकामुपणं जो अप्पिउ ।
 किज्जइ काई कज्जे निव्वत्ति^५ ।
 लयउ कडच्छ^८ चोड^९ धाएवि^{१०} । ५
 नियसोहमाखोरु निक्खइ पुणु ।
 डोउ न लहमि^{१२} को वि उवल्लभइ ।
 मिहुणह^{१३} निहुवणु^{१४} कहिं मि^{१५} नियच्छइ ।
 कामट्ठण चारुचुंवनपडु ।
 नञ्चावियभूमंगमणोहरु । १०
 अद्धक्खरखलंतकलोरोलउ ।
 रायउलं व करणपरिहच्छउ^{११} ।
 रिद्धकिसाणु^{१०} व अप्पियबंध ।

दूसरे धनीको प्रवेश कराती है। किसी मतिहीन (किंकर्तव्यविमूढ़) गणिकाने, धूर्त कामुकके द्वारा अपित झूठे द्रमको देखकर खेद करते हुए सोचा कि अब कार्य समाप्त हो चुकनेपर क्या किया जा सकता है? किसीने अपना भाड़ा लेकर भागे हुए बिटको देखा तो दौड़कर उसको कछोटे व चोटीसे पकड़ लिया। पीछे जो चौगुना धन मिला, उसे अपनी श्रृंगारपिटारीमें डाल लिया। (अत्याश्रितके कारण) धन दो जानेपर भी कोई वेश्या (यह निर्धन है, ऐसा सोचकर) उसके प्रति निरपेक्ष रहती है (उसे स्वीकार नहीं करती), और किसी अन्य(धनी)के प्रति बड़ा अनुराग दिखलाती है, (ऐसा देखकर) मुझे अपनी भेट नहीं मिली, इस प्रकार कोई किसी गणिकाको उलाहना देता (फिरता) है। विद्युच्चोर यह सब देखता हुआ चला जा रहा था, तो कहीं उसने मिथुनके सुरत (व्यापार) को देखा। कहीं गाढ आलिंगनके द्वारा स्तनोके अग्र-भागोको आक्रांत करके कामस्थानोके सुंदर चुंबनमे पटुता दिखाई जा रही थी। कहीं दांतोके अग्रभागसे विबाधरोका पीड़न, भ्रूमगिमाका मनोहररूपसे नर्तन, स्वेदसलिल कणोसे सुंदर कपोल और आधे अक्षर स्खलित होते हुए (प्रणयक्षणोकी) वात्ताका कलकल हो रहा था। कहीं स्त्री-पुरुषोके जोड़े ग्रामके निकटवर्ती वनके समान हो रहे थे—ग्रामका निकटवर्ती वन हतवृक्ष होता है, अर्थात् उसके वृक्ष काट भी लिये जाते हैं, व नानाप्रकारसे आहत भी होते हैं, उसीप्रकार स्त्री-पुरुष युगल भी परस्परके वक्षस्थलोको आहत कर रहे थे; और भो वे स्त्रीपुरुषोके जोड़े राजकुलके समान करण दक्ष थे—राजकुल न्यायालय, मंत्री, सेना, दुर्ग आदि अनेक करणो—साधनोसे परिपूर्ण होता है, मिथुन कामक्रीडाके समस्त साधनो (व आसनो) में परिपूर्ण (व दक्ष) थे। ज्ञानादरणादिरूप अथवा प्रकृति-स्थिति आदिरूप अनेक प्रकारके कर्म-विकारकृत बंधनके समान, वे जोड़े अनेक प्रकारके रतिबंध रच रहे थे। समृद्ध किसानके समान उन्होंने अपने कंधे

४. क ड^० तियइं । ५. क ड^० विअं । ६. क ड^० वंचइं । ७. क^० चिउ । ८. क ड^० लइउ । ९. क ड^० च्छहि ।
 १०. क ड^० ए । ११. क ड^० घायवि, घ घाविवि । १२. पं० मे 'लहइ' । १३. क ड^० णहुं, ख ग घ^० णहु ।
 १४. क ड^० अणु । १५. क ड^० कहिं मि, ख ग कहिं वि । १६. क कामट्ठणं । १७. क^० वल्लियकवो ।
 १८. क ड^० गामासणं । १९. क ख ग वत्थउ । २०. क ख ग हत्थउ । २१. क ड^० रिद्धि ।

१४ अर्थयवहु व जायनहरवणु^{२२} मेल्लियसरु णं धाणुक्कियरणु ।
 फारकु व कड्डियकरवालउ^{२३} नडपुलिणं पि व रेयविसालउ ।
 दाणववलु व^{२४} समुग्गयमुकउ वणवियलंगु व मुच्छहे लुक्कउ^{२५} ।
 धत्ता—इय मिहुणइ सयणासीणइ नयणदलइ^{२६} मउलंताइ^{२७} ।
 निव्वत्तियरयभरखिन्नइ^{२८} निदइ^{२९} नियइ^{३०} घुलंताइ^{३१} ॥१३॥

[१४]

धवलहरपंतिछायप्र^३ चलंतु हिंडिरतलारकलयलु^४ कलंतु ।
 निहुअं जि मुणिय पाहरियसासु^५ संपत्त अरुहयासहो निवासु ।
 आसरेवि थक्कु कयचोरवित्ति जंबूकुमारवासहरभित्ति ।
 चित्तइ चोरत्तणु कवणु मञ्जु जइ हरमि न इउ धणु जं असञ्जु ।
 ५ तं सुउ वर-वहुव^६ कहावसेसु परियाणित्^७ कारणु निरवसेसु ।
 तावेत्तहिं जंबूकुमारजणणि परिसुसइ डञ्जमाणे व^८ धरणि ।

अर्पण कर रखे थे; समृद्ध किसान सहारेके लिए (दूमरे वधुओको) कंधा अपित करता है, युगलोने परस्पर आलिंगनमे अपने कंधे अपित कर रखे थे । युगल किसी अंधेकी बधूके समान थे—अंधा व्यक्ति अपनी बधूको यत्र-तत्र अनुचित स्थानोमे नख-व्रण लगा देता है; उसीप्रकार युगल भी विवेक किये बिना परस्परको अनुचित स्थानोमे नख-व्रण लगा रहे थे, और इसप्रकार स्वर छोड़ रहे थे, मानो धनुर्धरोका युद्ध हो, जिसमे वाण छोडे जाते हैं । फारवक धारण करनेवालोके समान वे करवाल (तलवार, युगलपक्षमें हाथोसे वाल) खीच रहे थे । नदीके पुलिन(तट)के समान वे अत्यधिक रेत (बालू, युगल पक्षमे रेतस्-रज, वीर्य) से युक्त थे, अथवा नदीके रेत एवं जलके आगार तटके समान, युगल रेतस्रुकी जलके आगार थे । युगल दानव सैन्यके समान थे—दानव सैन्यमे शुक्र अर्थात् शुक्राचार्य उत्पन्न हुए थे, और युगल समुत्पन्न शुक्र अर्थात् (रति क्रीडामे) अत्यंत वीर्यवान् थे, तथा व्रणोसे विकलांग अर्थात् घायल होकर मूर्च्छित हो रहे थे । इसप्रकार विद्युच्चरने गयनोपर आसीन मिथुनोको, जिनके नेत्र मुकुलित हो रहे थे, संपन्न किये हुए रतके आयाससे थककर निद्रामे घुलते (डूबते) हुए देखा ॥१३॥

[१४]

प्रासाद पक्त्तिकी छाया(ओट)मे चलते हुए, घूमते हुए नगर रक्षकोके द्वारा किये जाते हुए कोलाहल व पहरेदारोके ज्वासको मौन हुआ जानकर, वह अरहदासके घर प्राप्त हुआ, और जंबूकुमारके वासगृहकी भित्तिका आश्रय लेकर चोरवृत्तिसे अर्थात् छिपकर वहाँ खड़ा हो गया, एव सोचने लगा—यदि इस असाध्य(दुर्लभ)धनका अपहरण न कइ तो मेरा चोरपना ही क्या ? इसके अनंतर (वही खडे-खडे) उसने वर-वधुओके उस अवशेष कथालापको सुना और नि शेष कारण (वृत्तांत) को जान लिया । तवतक इधर जंबूकुमारकी माता जलती

२२. ख ग नहरवणु । २३. र ग कड्डिय । २४. ख ग दाणु व वलु व । २५. व उ । २६. क ड लइ ।
 २७. ड ताइ । २८. क ड खिणणइ । २९. क घ ड इ ।

[१४] १. क छासइ । २. क ड हिंडियतलार । ३. क कयतु, र ग कयतु । ४. क ड अउ; ग वच । ५. ख ग वाहि । ६. क ड वहुय । ७. ग विमेसु । ८. क ड णिच । ९. ग ग वि ।

सिवएवि जेम दुह्वियलपाण^{१०}
 घर पंगणु मेल्लइ^{११} चार-चार^{१२}
 पत्तहिं^{१३} कुमार किर दढपइल्लु^{१४}
 किं अज्ज वि सुउ तवचरणवुद्धि
 किं अज्ज वि मण्णइं^{१५} भोक्खवासु
 किं अज्ज वि अप्पल महइ सिद्धु
 यत्ता—इय^{१६} चिंताचक्कवडावियण^{१७}

जिणवइण कुइसंलीणउ^{१८} दिट्ठु चोरु अदवकियण^{१९} ॥१४॥

[१५]

बोलावियउ तिमिरि कि वंछइ^१
 तक्कर भणइं^२ माण^३ मा बीहहिं^४
 हउं नामेण चोरु विज्जुचरु
 करमि अकम्मु सिद्धजणदूसिउ
 तेरउ एक नवर न निहेलणु
 ताम कुमारहो मायए^५ घुवइं

माणुसु कवणु एउ रे अच्छइं^६
 सहलु होउ जं हियवइ ईहहिं^७
 हिंढमि नयरु निसिहिं^८ नोसं चरु ।
 मंदिरु तं न जं न मईं मूसिउं^९
 चोरमि अज्जु तं पि पेरिउं^{१०} मणु ।
 गेणहहिं^{११} दविणु पुत्त जं रुवइं^{१२} ।

१०

५

हुई भूमिके समान (दीर्घ और उष्ण) द्वास ले रही थी। श्रीनेमिकुमार (२२वें जैन तीर्थंकर) के घर छोड़ते समय जिसप्रकार गिवदेवी दुःखसे विकलहृदय हुई थी, उसी प्रकार विकलात्म होकर बार-बार घर-आँगनको छोड़ती (जाती-जाती) थी, फिर पुत्रके वासगृहका द्वार देखती कि क्या कुमार अभी भी दूढ़प्रतिज्ञ है, अथवा वधूचतुष्क्री (काम)विद्याके वशमें हो गया? क्या अभी भी पुत्रका मन तपश्चरणमें ही लगा है, अथवा उसे वधुओंके मुखरागका (कुछ) लोभ हुआ है (अर्थात् वधुओंमें आसक्ति हुई है)? क्या अभी भी वह मोक्षवासको ही (श्रेष्ठ) मानता है, अथवा क्या उसके कंठमें प्रियाओंका बाहुरूपी पाण पड़ गया है? क्या अभी भी अपनेको सिद्ध बनाना चाहता है, अथवा तीक्ष्ण कटाक्ष शरीरसे विध गया? इस प्रकार चिंता-चक्रपर चढाई हुई उद्भ्रात चित्त व विस्मित जिनमतीने विना डरे हुए, भित्तिसे लगकर छिपे हुए चोरको देखा ॥१४॥

[१५]

(जिनमतीने) उसे पुकारा—अरे! अधेरेमें यह कौन आदमी है! और क्या चाहता है? तस्करने कहा—माँ डरो मत, तू जो हृदयसे चाहती है, वह बात सफल हो। मैं विद्युच्चर नामका चोर हूँ, रात्रियोमें नगरका भ्रमण करनेवाला निशाचर हूँ, तथा शिष्टजनों-द्वारा दूषित अपकर्म करता हूँ। ऐसा कोई घर नहीं है, जिसे मैंने लूटा नहीं। एक तेरा ही घर नहीं लूटा। इसमें भी आज चोरी करूँ, इस प्रकार मेरा मन प्रेरित हुआ। तब कुमारको माँ

१०. गं पाणि। ११. ख ग वुच्चं, ङ मुचं। १२. क वारं, ख तारहार, ग चार; घ तारहार। १३. क ङ जोयड। १४. रल ग घ सुअ, ख ग दार। १५. ख ग हिं। १६. क ङ ज्ज। १७. क ङ याउ; ख ग माहु। १८. ख ग क्क। १९. घ विज्ज। २०. क ङ उं; घ मण्णं। २१. घ चिंताचक्कि चडां; ख ग चडावियणं। २२. ख ग वमणं। २३. ख ग सइलीणउ, व सइलीणउ। २४. ख ग अदव; घ यइं।

[१५] १. क हिं; घ इ हिं। २. क घ ङ इं। ३. ख ग माय। ४. क हिं। ५. ख ग व हिं। ६. घ उं। ७. घ पेसिउ। ८. क इं। ९. क ङ हिं; घ गिण्हिं।

- निसुणेवि वोळिज्जइ कुंसुमाले तउ धणु पेक्खमि सरिसु पलाले ।
 चोरिय चित्ते^१ एत्थु न पयइइ चिंतासल्लु अवरु महु वट्टइ ।
 वार-वार जं निल्लु पईसहि^२ मंदिराउ पुणु पंगणि दीसहि^३ ।
 १६ दारकवाड पुणु वि जं लक्खहि^४ कारणु क्वणु माणु तं अक्खहि^५ ।
 सीसइ तामु^६ सगगिरवयणणु वइयरु अंसु तलोल्लियनयणणु ।
 एक्कु जि पुत्तु पुत्त अन्हारउ वंधव-पियरमणोहरगारउ ।
 अज्जु^७ जि परिणावियउ विवत्थणु^८ लेसइ दिक्ख^९ विहाणणु सत्थणु^{१०} ।
 घत्ता—इय पुत्तविओयकुट्टारं फालेवि खंडु खंडु कियउ^{११} ।
 १५ अंगारपुंजे संदिणणउ^{१२} लवणु व सयसक्करु हियउ ॥१५॥
- [- १६]
- निसुणेविणु^१ तं चयणं पवरो वयणं पडिजंपइ विज्जुचरो ।
 करुणारसरंजियसुद्धमणो पडिवन्ने-पवडिइय नेहधणो^३ ।
 सुणियं^४ व मए र्हसुडभवियं बहुवाहिं वरेणु समं लवियं ।
 न पवत्तइ^५ केम वि पुत्तु^६ तउ बहुवोल्लं-महल्ल-नए-ण-जउ^७ ।
 ५ अवरेक्क पयासमि माणु^८ मइ विहडैइ न अज्ज वि कज्जगइ ।

बोली—पुत्र तुझे जो रुचे वह द्रव्य ले ले । यह सुनकर चोरने कहा—मे तेरा धन पुआलके समान समझता हूँ । यहाँ मेरे चित्तमे चोरीकी भावना ही प्रवृत्त नहीं हो रही है । मुझे तो दूसरा ही चिंताशल्य उत्पन्न हुआ है । तू बार-बार घरमें प्रवेग करती है, घरसे फिर प्राणमने दिखाई देती है, फिर द्वार कपाटोको देखती है; तो हे माँ ! इसका क्या कारण है ? सो बताओ ! गद्गद वचनों और अश्रुजलसे आद्रनेत्रोसे वह उसको वृत्तात कहने लगी—हे पुत्र ! हमारा एक ही पुत्र है, जो बांधवों और माता-पिता सबके लिए सुखदायक है । माज ही व्यवस्था (विधि)पूर्वक उसका परिणय कराया गया है; और बिहान (प्रभात) होते ही वह शास्य-विधिके अनुसार (दिगंबरी)दीक्षा ले लेगा । इस पुत्रवियोगके कुठारने हृदयको फाडकर खंड-खंड कर दिया है, और अंगारमे डाले हुए लवणके समान शतशः विदीर्ण कर दिया है ॥१५॥

[१६]

विद्युच्चर करुणारससे रजित शुद्ध मन और स्नेह प्राप्त करनेसे वदित-स्नेह होकर ये प्रतिवचन बोला—मैंने वधुओके द्वारा चरके साथ किया हुआ समस्त उत्कंठाजनक वातलाप सुन ही लिया है । तुम्हारा पुत्र किसी भी तरह ससारमे प्रवृत्त नहीं होगा, यह वधुओके बड़े-बड़े बोलोके न्यायसे जीता नहीं जा सकता । हे माता ! एक ओर युक्ति प्रकट भरता हूँ, जिससे (संभवतः) अभी भी कार्यकी गति (अर्थात् अभीप्सित कार्य) विघटित न हो । हे अम्मा !

१०. ख ग चित्तं । ११ क ग घ 'ड', 'हि' । १२ क ड 'इ' । १३ क न ट 'हि' । १८. ख ग गणि; घ सगगरं, वयणइ (सभी प्रतिबोध) १५ क घ ट 'णड' । १६ ग अज्ज । १७. क विज्जयः; ग ग विवत्थइ, ङ विडत्थइ । १८ क विहाण पमत्थइ । १९ क घ 'उ' । २० क घ 'णउ' ।

[१६] १ क ट 'णिणु' । २ क स ग ट 'वण' । ३ क ट 'वणो' । ४. क ट 'अं' । ५ ग ग वइयर । ६. ख ग 'याहि'; घ 'वाहि' । ७ घ 'त्तइ' । ८ ख ग पुत्त । ९ क न ग ट 'नयण अज्जयां, घ ल्लनएण जुओ । १० घ माय ।

महँ^{११} एत्थु पवेसहि^{१२} अम्मि^{१३} जइ तिह^{१४} बोल्लमि वडडइ^{१५} जेम^{१६} रइ ।
 सुहँ^{१७} -सत्थइ बुब्भम्मि^{१८} आरिसइ^{१९} परचित्तइ^{२०} जाणमि जारिसइ ।
 जणकम्मण-अभण-मोहणयं^{२१} भुवणस्स^{२२} वि खोहण^{२३} -जोहणयं ।
 नयणंजणजायरभंजणयं सुहसुत्तपवोहणरंजणयं ।
 विहडंतमहादिहिजोडणयं पियमाणुससंगमतोडणयं । १०

घत्ता—वहुवयणकमलरसलंपडु भमरु कुमारु न जइ करमि ।
 आएण समाणु^{२४} विहाणण^{२५} तो तवचरणु^{२६} हउं मिं सरमि ॥१६॥

[१७]

तो कुमारमायरीण^{२७} पुत्तदुक्खकायरीण ।
 चोरचौरसासियाण^{२८} सुद्धमुद्धभासियाण ।
 ढिल्लवाहुकंकणाण^{२९} छित्तदारडंकणाण ।
 सुणहनासु उच्चरेवि पिल्लिया कवाड वे वि ।
 नंदणो मुणेवि माय कारणेण केण आय । ४
 आनमंसियं पयाइ^{३०} पुच्छइ त्ति अम्मि काइ ।
 एरिसम्मि जं सुसुत्ति^{३१} आगयासि मञ्जरत्ति^{३२} ।
 अक्खए कुमार बुब्भु गन्धसंठियस्स तुब्भु ।

यदि तू मुझे यहाँ (भीतर) प्रवेश करा दे तो मैं ऐसा बोलूँगा जिससे उसकी संसारमे रति बड़े । मैं ऐसे श्रुतिशास्त्रोको जानता हूँ, जिनसे लोगोंको जैसी चित्तवृत्तियाँ है, उन्हे जान लेता हूँ, और जो लोगोका वशीकरण, स्तभन व मोहन करनेवाले, व सारे भुवनको भी विक्षुब्ध कर देनेवाले एवं लड़ा देनेवाले है; तथा ऐसा नेत्रांजन भी जानता हूँ, जो जामूतोको सुला देनेवाला एवं मुखसे सोये हुआओको जागरणका आनंद देनेवाला, तथा विघटित होती हुई (छूटती हुई) महा-धृति (महान् प्रीति-सुख) को भी जोड़नेवाला, और प्रियजनोके संगमको तोड़नेवाला है । अतः यदि मैं कुमारको वधुओके मुखकमलरूपी मधुका लंपट भ्रमर न बना सकूँ; (अर्थात् कुमारको वधुओके प्रति अत्यंत आसक्त न कर सकूँ) तो विहान होते ही मैं भी इसके साथ तपस्चरणका अनुसरण कलूँगा ॥१३॥

[१७]

तत्र पुत्र दु खसे कातर कुमारको माताने उस चौर वीर(भ्राता)के सरल व निश्छल वचनोसे कहेको सुनकर, ढोले बाहु कंकणोसे (गन्ध करते हुए) द्वार कपाटोको छूकर वधुका नामोच्चारण करके दोनो किवाड़ोको ढकेल दिया । किसी कारणसे माँको आयी जानकर पुत्रने माँके पैरोको नमस्कार करके पूछा—माँ क्या बात है, जो इसप्रकार सोनेके समय अर्द्धरात्रिको ही तू आ गयी? माँने कहा—कुमार समझो(सुनो)—जब तू गर्भमें ही था तो मेरा एक कनिष्ठ भाई जो तभीसे

११ क ड मह । १२ ख ग सहि । १३ क ड अति । १४ घ तिह । १५ ख ग वट्टइ । १६ क ड जेण ।
 १७ सुह । १८ घ बोल्लमि । १९ क ड सई । २० क परि । २१ क ड लो । २२ ख ग भुयं ।
 २३ क ड मो । २४ क ड ण । २५ क घ ड णइ । २६ क ड तउ । २७ क ड हउ, ख ग वि ।

[१७] १ क ड रीय । २ ख ग वुत्तु । ३ क वीह । ४ क याइ, ल याइ । ५ क सुद्धमुद्ध ।
 ६ क घ ड णाडं । ७ क ड छित्तवारं, ख छिण्णं । ८ घ सुहं । ९ क ड ता णमसिओ, घ ता नमसिउं ।
 १० क ड ई । ११ ख ग त्ति । १२ ख ग मञ्जे ।

- १० मे कणिह् भाइ एकु मंडलंतरस्मि थक्कु ।
 वच्छरेसु आउ अउज्जु जाणिउण तुच्छं कल्लु ।
 दंसणाणुरायवद्ध दुल्लहेइगोहिसद्धं ।
 नेच्छए निसाविरामु अच्छए दुवारे मासु ।
 बोल्लए कुमारु बूहि आगुरु ल्हू व ऊहि ।
 किं विलंबए सुधम्मि आवउ समाणि अम्मि ।
- १५ घत्ता—पुत्ताणुमइए उवलद्धए अर्भतरथियाए थिरए ।
 जिणवइए भाइ हकारिउ निविडनेहकोमलगिए ॥१७॥

[१८]

- तं सुणिवि सरोरि धरंतु समु परियत्तवि तं थिररुक्कमुं ।
 पयडियकिराडमयवेसपहु आजानुल्लंपरिहाणपहु ।
 वंकुडियकच्छं-कयडिल्लकडि कणंतंलुलावियकेसलडि ।
 पुट्टीनिहित्तकयधमरु उग्गंठियविसरिसकुं चधरु ।
- ५ आवत्तमंगपंगुरियतणु सिद्धिहाहरोट्टंतुरवयणु ।
 डोहंतवाहुलयल्लियकरु चासहरि पइट्टं विज्जुचरु ।

देशातरमे रहता था, वह आज तेरा विवाह कार्य जानकर अनेक वर्षोंपर तुम्हारे दर्शनके अनुरागसे बंधा हुआ, एवं ऐसी दुर्लभ अभिलपित गोष्ठीकी श्रद्धा(अभिलाषा)से यहाँ आया है, और द्वारपर ठहरा है, परंतु वह रात्रिमे विराम(रुकना) नहीं चाहता । तब कुमार बोला—मां ! वे बहुत बड़े अर्थात् पितृस्थानीय है, और मैं लघु अर्थात् पुत्र स्थानीय हूँ, यह सोचो ! (अतः) स्वधर्म(स्वकर्तव्य)मे देर क्यों ? वे ससम्मान आवे (अर्थात् सम्मानपूर्वक उन्हें ले आओ) । (यह सामानिक छद्म है) । पुत्रकी अनुमति मिलनेपर भीतर ही खड़ी हुईं जिनमतीने स्थिर एवं अत्यंत स्नेहपूर्ण कोमलवाणीसे भाई(विद्युच्चर)को हाँक लगायी ॥१७॥

[१८]

यह सुनकर अपने थकावट-भरे शरीरका वह पुराना वेप बदलकर उसने अपना ऐसा रूप प्रकट किया—किरातोके समान मृगछालाका पट्ट(दल या फुर्तीला) वेप, आजानुवीधं परिधान वस्त्र, बाँका उरोवचन, कमरमे कटिवस्त्र (बोती) बांधे हुए, कर्णांत तक लहराती हुईं केसलटाएँ, पीठपर डाला हुआ केससमूह, खुली हुईं विसदृश (असमान या अद्भूत) कूर्चोंको धारण किये, सपूर्ण शरीरको उत्तमागपर्यंत आच्छादित किये, त्रिधिल अशरीरठ व दतुर (दाँत दिलाई देता हुआ) मुख तथा डोलते हुए बाहु और सुंदर कर धारण किये हुए वह विद्युच्चर

१३. घ तुच्छु । १४. ग गोहं । १५. ड आवत्तल्लकुलज्जहि । १६. ए ग कं । १७. क ड विलव पत्तु धम्मि । १८. क ड यम्मि । १९. ख ग अन्नतरमि माएरिए । २०. क ड ववए । २१. ए ग निवडं ।
 [१८] १. क ड मूं । २. क ड रं । ३. घ त्तिवि । ४. क ड र्वं । ५. क ड कच्छु । ६. ए ग घ डिल्लकडि । ७. घ कन्नतं । ८. घ सिद्धं । ९. ख ग वड्डमह । १०. घ कुंजु । ११. क ड आवत्त-मंगं । १२. ख ग वत्त र वं । १३. ख ग पवं ।

तं नियवि कुमार समुद्रियउ द्रपणमियसिरु^{१४} समहिद्वियउ ।
^{१५}अणोण्णालिगणरसभरिया ^{१६}चिहिं पीढहिं^{१७} वेण्णि चि वइसरिया ।
 पुच्छिज्जइ कुसलु पंथसमिउ^{१८} बहुदिवस माम^{१९} कहि कहिं^{२०} भमिउ^{२१} ।
 घत्ता—विज्जुचरिं कुसलु कहिज्जइ निमुणि कुमार कालु^{२२} गमिउ । १०
 वाणिज्जकज्जि दिहचित्ते जं जं मंडलु मइ^{२३} भमिउ^{२४} ॥१८॥

[१६]

दक्षिणाए दिसाए समुद्रं धरेऊण मलयाचलं सिंघलं केरलं तोसलं कोसलं लंजिया-
 तंजिया-मंडलं चोडदेसं । असेसं सिरीपव्वयं गंगवाडीसमं पडि-इविडंथं^{२५} चोणं^{२६}-
 सकण्णाडं^{२७} कंचोपुरं कुंतलं । सज्झगिरि-रट्टमहरट्टं^{२८} चइदवभ-वइरायरं भदरंगं
 वराडं च तावीयडं नम्मयाडं^{२९} । सविज्जं-पभासं^{३०} पइट्ठाणं^{३१} आहीर-चेउल्लं संजाण-
 भरुयच्छ-कच्छेल्ल सोपारयं कोकणं । नागरं^{३२} सिंधुतीरं कावेरीतडं कडहतं^{३३} वइरि- ५
 किक्किं^{३४} तोयावली दीवयं पारसं हंस-छोहारदीवं^{३५} लुंडु मम्मणं^{३६} । पच्छिमेणं
 थलीमंडलं^{३७} बालभं सोमसोरट्ट-कच्छं^{३८} महं भिल्लमालं^{३९} विसालं च सोवण्णदोणी-

वासगृहमे प्रविष्ट हुआ । उसको देखकर कुमार थोड़ा नत-शिर होकर (प्रणाम करते हुए)-उठ खड़ा हुआ और बहुत अधिक प्रसन्न हुआ । परस्पर स्नेहपूर्वक आलिंगन करके दोनों दो पीठोंपर बैठ गये । पथश्रात मामासे (कुमारने) कुशल समाचार एवं यह पूछा कि हे मामा ! कहां ! इतने दिनोतक कहां भ्रमण किया ? विद्युच्चरने कुशल कहा—(और बोला) हे कुमार मुनो ! वाणिज्यकार्यसे सृष्ट कित्तेसे मैने जैसे काल गमाया और जिस-जिस देशका भ्रमण किया ॥१८॥

[१९]

दक्षिण दिशामे समुद्रको धरकर मलयाचल, सिंहल, केरल, तोसल, (महा)कौगल, लंजिया व तजिया प्रदेश, चोडदेश, श्रीपवंत, गंगवाडी और उसके साथ पांड्य, द्रविड, आंध्र देश एवं चीनका भ्रमण किया । फिर कर्नाटक, कांचीपुर, कोतल, सह्याद्रि, महाराष्ट्रदेश और विदर्भ तथा वज्राकर और भद्ररंगमे घूमा । फिर वरार, ताप्तीतट, नर्मदातट, विध्य, प्रभासतीर्थ, पैठण, आमीर, चेउल्लदेश, जहाजोका स्थान (वंदरगाह) भरुकक्ष (भड़ौच), कक्ष, सोपारक (सूरत), कोकण, नागर देश, सिंधु तट, कावेरी तट, कडहत (?), वइर देश (?) किक्किंथा, तोयावली द्वीप, पारस देग, हंस द्वीप जहाँके लोग दूसरोको लूटनेवाले(लुंठ) और अव्यक्त वचन बोलनेवाले हैं, उन द्वीपोका भ्रमण किया । पविचमसे स्थलीमंडल (राजस्थान), बालभ (वल्लभी?), सोमनाथ, सौराष्ट्र तथा महान् भिल्लमाल (भीनमाल) जिसकी रचना एक विनाल सुवर्णद्वोणी

१४. क ड 'पणविहि सिह । १५ घ अन्नन्ना' । १६ क विहि ए द्विहि, ख ग ड विहि पीं, च विहि पीं ।
 १७. घं मिउ । १८ ख ग कहि, व कहिं । १९ क काल । २० क ड मइ । २१ ख घ डं, ड भरिड ।

[१९] क ख ग ड दिवि । २. क ख गडं चोणं । ३. घ सकण्णाड । ४. ख ग रिडुं, घ मरहट्ट । ५. ख ग व पाडं । ६. प्रतियोमं प्रयासं । ७. ख ग घ पयं । ८. क ग व ड वं ।
 ९. ख ग नारंगं । १०. क ड करहत, ख ग करहत । ११. क ड किक्किं, ख ग किक्किं । १२. क ड लुड वकण, घ लुट्ट व मड भकणं । १३. क ड थनीं । १४. ख ग मसभिल्लं, व मर भिल्लं ।

सगं। अञ्जुय^{१५} लाउडेसं^{१६} च मेवाड-चित्तउड^{१७} मालव य तलहारियं।
 पागियत्तं^{१८} अवंती^{१९} नहा तावलिती^{२०} भडं दुग्गमं। उत्तरेण य सायंभरी^{२१} गुज्जर-
 १० ताग खस-वच्चरं^{२२} टक्कं-करहाडं^{२३}-कसमीर-हम्मीर-कीरं^{२४} तुरुक्कं^{२५} तहाताइयं।
 वज्जरं सिधु-सरस्वत^{२६} मेच्छदेशं^{२७} मकिफाण-लोलहर-पुट्टाहरं^{२८} बालुयासायरं^{२९}
 उत्थिरज्ज अवलं^{३०} ममासाइयं^{३१}। एकत्रयकणं^{३२}-वावरण-हयवयण-गोवयण-
 करिवयण-हरिवयण-वाणरमुहं^{३३}। पुञ्जभायम्मि गाउडं^{३४} कुक्कं^{३५} कणउज्जं^{३६} स-
 १५ राडं^{३७} वरंटीसिरी गज्जदेसं वरं। गोल्ल-वंगंग कोंगं कलिगं महाउत्थियार्णं च
 जालंधरं। गंग-जउणं मरुवायरं कामरुवं^{३८}-डहाला-पयगं^{३९}-वणघट्टं^{४०}-वाणारसी-
 वटहरं^{४१} मत्तगोयावरीभीमगंगोवाहिं^{४२} जोहणारं^{४३} सुहं।
 घत्ता—विहणवि^{४४} मिरु विभियचित्तं बुवडं मामं^{४५} न वणियववरु।
 पवक्खु दउडं^{४६} डय मत्तिणं^{४७} अवस होमिं^{४८} तुहं^{४९} वीरनरुं^{५०} ॥१६॥
 ह्य जंजूसा मिचरिणं सिगारवीरं महाकव्ये महाकहदेवयत्तुयवीरविरडणं वहु-वरकराणयं नाम
 नवमा संघी समत्तो ॥ सधिः ९ ॥

के समान है; फिर अजुंद (आजूपर्वत), लाटदेश, मेवाड, चित्तीड, मालव तथा तलहारको देखा।
 फिर पारियात्र, अवंती तथा भटोके लिए दुग्गमं ताभ्रलिप्तोको देखा। उत्तरदिशासे श्राकभरी
 [साभर-अजमेर], गुज्जरा, खमदेश, वरंरदेश, टक्कप्रदेश, करहाट, काश्मीर, हम्मीर, कीर देश,
 तुरुक्क (तुरुक्क-नुकी), तथा ताजिक, वज्जर देश, सिधु व सरस्वतीका तट, म्लेच्छ देश,
 केवकाण देश सहित लीहपुर एवं अन्य (स्थानों)को द्रुता हुआ बालुकासागर, स्त्रीराज्य व अज्जकी
 पहुँचकर प्रेमतत्पर वचन बोलनेवाली एक म्लेच्छ जातिके देश, एवं अद्वयमुख, गोमुख, हरि-
 मुख, व्याघ्रमुख और वानरमुख इन देशोमे गया। पूर्वभागमे गौडदेश, कुक्क(जागल),
 कन्नौज, राड, वरेंद्रथी, और सुदर श्रीमध्यदेशको देखा। फिर गोल्लदेश, वग, अंग, कुर्ग,
 कलिग, और महान् उडियो (उडोसा निवासियों)के जालंधर (?), गगा, यमुना, सोदयके आकर
 कामरुव, डहाला (डाहल-जवलपुर) प्रयाग, चुनार, वाणारसी, वडहर, सप्तगोदावरी, भीम,
 गंगोदधि (गंगासागर) तथा शुम(सुदर)घोघनद्वीपकी यात्रा की।

(यह सब सुनकर) सिर हिलाकर विस्मित चित्तसे कुमार बोला—मामा। तुम वणिक्वर
 नहीं हो। इसप्रकारकी शत्रितसे तुम प्रत्यक्ष दैत्य हो, और अवश्यमेव एक बड़े वीरपुख हो।
 इसप्रकार महाकवि देवदत्ते पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित जंजूस्वामीचरित्र नामक इस शृंगार-
 वीर-रसात्मक महाकाव्यमे वजूवर आख्यान नामक नवम संघी समाप्त ॥ संधि ९ ॥

१५. कर ग घ अञ्जुय। १६ ख ग डालं। १७ क ड वड। १८ ख ग यत्तू। १९ ख ग
 यवती। २० ख ग नामयती, घ तामं। २१ क ड गुज्जरा तार ख सवच्चर, ख गुत्तरता
 खसं वच्चर, ग गुत्तरता खस वच्चर। २२ क तुक्क। २३ घ हार। २४ क ड ग ड तुक्क।
 २५ क ड वज्जर। २६ क ड पुट्टाहरं। २७ क ड पच्छिरज्ज, ख ग घ अतज्ज। २८ ख ग इणण।
 २९ क ड पक्कवयं। ३० ख ग मुहा। ३१ क ड गडड, घ मडड। ३२. क ग ड कुर। ३३ ख
 ग कणउज्ज, घ कन्नं। ३४. क ड भराह, ख ग राड। ३५ क ड कानं। ३६. क ड पयाग। ३७ ख
 ग वणेषट्टं, घ वन व घट्टं। ३८. क ड चहुं। ३९ क ड सीत्तगोयावरीसीमं। ४० ख ग घ लोहं
 ४१ क घ ड णिवि। ४२ कर ग घ मामु। ४३ क ड दइयड, ड दयड। ४४ क ड सत्तियणं। ४५ घ
 होहि। ४६ क ड तुह, ख ग तुह। ४७ क घ ड वीरं। ४८ क घ ड णवमा इमा संघी।

[१]

विह्वेण^१ रायनियडत्तणेण कलहेण जत्थ कन्वगुणे ।

कन्वस्स तत्थ^२ कइणा वीरेण जलंजली दिग्णा^३ ॥१॥

जत्थ गुडाईण जहा महुरत्ते^४ भिण्ण-भिण्णमुवलंभो^५ ।

निव्वडइ तत्थ गरुवं^६ रसंतरं वीरवाणीणं ॥२॥

^७पडिपुच्छियकुसलकयायेण मायामायेण विज्जुचरेण ।

^८संदिण्णसुयणमणरणणं^९ वोल्लाविडं^{१०} अरुहयासतणडं ॥३॥

अहो विमलचारं^{११} जंजुकुमार

मारावयार-भुवणेकसार ।

सारंगचंगचलदीहनयण

नयणाहिरामछणइंदवयण ।

वयणामयपीणियसुयणकण्ण

कण्णाइसाइ^{१३} चायप्पवण्णं^{१४} ।

^{१५}वण्णाखिलधन्नलियसिहरिसिगं^{१६}

सिंगारकमलयरंदभिग ।

भिगालिसरिसवणनीलवाल

वालककिरणतणुतेयमाल ।

मालंकिंयंग-किन्तिलयकंद

^{१७}कंदंविद्यपडिभडरमणिविंद ।

[१]

जहाँ ऐश्वर्यसे, राजाके (निरंतर) नैकट्यसे अथवा कलहसे काव्यगुण उत्पन्न होता है, वहाँ, उस काव्यके लिए वीर कविने जलाजलि दे दी है ॥१॥ गुडादिकसे जहाँ (व जिसप्रकार) भिन्न-भिन्न माधुर्यकी उपलब्धि होती है, उसीप्रकार वहाँ वीर कविकी वाणीमें उत्कृष्ट रस-भिद्यता निष्पन्न होती है ॥२॥ कुशल समाचारपृच्छा आदिके द्वारा आदर प्राप्त छत्र मामा विद्युच्चर, स्वजनोके मनमें उद्वेग उत्पन्न करनेवाले अरुहदासपुत्रसे इसप्रकार बोला—॥३॥

हे शुद्धाचरण जंजूकुमार ! तुम कामदेवके अवतार हो, और लोकके एकमात्र श्रेष्ठधन हो । तुम्हारे नेत्र हरिणके समान सुंदर, चंचल व दीर्घ हैं, और मुख पूर्णचंद्रमाके समान नेत्रोको आनंद देनेवाला है । अपने वचनामृतसे तुम सज्जनोके कानोंको प्रीणित(तृप्त) करनेवाले हो, और तुमने महाराज कर्णको भी मात करनेवाले त्यागको अंगीकार किया है । तुम्हारे गौरवर्णसे संपूर्ण गिरिशिखर धवल हो रहे हैं । शृंगाररूपी कमलको मकरंदके लिए तुम भ्रमर हो (अर्थात् कामदेवके शृंगारकमलका समस्त मकरंद तुम्हींने पी लिया है, अतः भुवनमें तुम्हीं सुंदरतम हो) । तुम्हारे बाल भृंगावलिके समान अत्यंत काले हैं । बालसूर्यकी किरणोके समान तुम्हारा शरीर तेजसे वेष्टित (व्याप्त) है । तुम्हारा अंग-अंग लक्ष्मी (सौंदर्यलक्ष्मी एवं विजय-लक्ष्मी)से विभूषित है, और कीर्तिलताके तो तुम मूल अंकुर ही हो । शत्रुभटोंकी रमणियोंको

[१] १. क ड 'एण । २. क व ड तस्स । ३. घ दिन्ना । ४. क 'रत्तेण । ५. ख ग 'लंभे । ६. क व ड 'य । ७. क व ड परि । ८. क ड 'यएण । ९. ख ग 'सुअणं । १०. क व 'णडं । ११. ख ग 'विडं । १२. क 'चार । १३. क ड कण्णाई भाई, ख ग 'इ चाइ । १४. ख ग चाइ; घ 'वन्न । १५. क ड वण्णा-विडं । १६. क ख ग ड 'सिहरं । १७. क ड कंदलवियं ।

- वंदिणपढंत^१-जयथोत्तसंग^२ संगामुप्पाइयवइरिभंग^३ ।
 भंगागयकेरलवलवियास आसाइयजयसिरिसोक्खवास ।
 १५ वत्ता—तुह^{२१} सुंदर परमविवेड तुह^{२२} जाणहि^{२३} दुल्लहु संसारसुह^{२३} ।
 लायणणलच्छि^{२४}-आरोयतणु पई^{२५} मेळ्ळवि अण्णहो^{२६} कासु भणु ॥१॥

[२]

- भोयणसत्ति न भोयणु एकहो भोज्जु न भोजसत्ति अण्णेक्कहो ।
 कामुच्छाहु न कामिणी एकहो रमणि न रमणसत्ति अण्णेक्कहो ।
 दाणववत्ति न धणु पर एकहो दविणु न दाणवसणु अण्णेक्कहो ।
 जसु पुणु उदय-पक्खं संपज्जइ^५ सो किम छलइ अप्पु पावज्जइ ।
 ५ भग्गविहीणालसियहं सिद्धउ^७ भिक्खनिमित्तु लिंगु उद्विडउ ।
 सिद्धपु काइ^९ एण परिभावहि सुक्किल्लेसि^{१०} अप्पु म तावहि^{११} ।
 तव नामेण कम्मु किर कायहो कारणे^{१२} कासु^{१३} कवणु^{१४} फलु आयहो^{१५} ।
 सुद्ध अवद्ध^{१६} जीउ निद्विडउ तणुमणवयणचेहअप्पिडउ ।

(उनके वीर पतियोको स्वर्ग भेजकर) रुलानेवाले हो, और वंदीजनो-द्वारा पढे जाते हुए जय-स्तोत्रके साथ संग्राममे वैरियोका भंग अर्थात् विनाश उत्पन्न कर देते हो । पराजित होकर आये हुए केरल सैन्यको तुम्ही प्रफुल्लित करनेवाले हो और तुमने सुखको निवासरूप जयलदमीको प्राप्त कर लिया है । तुम सुंदर हो, और तुममे परम विवेक भी है, तथा तुम (स्वयं) जानते हो कि यह संसार-सुख अत्यंत दुर्लभ है । (ऐसी) लावण्यलक्ष्मी और नीरोग(स्वस्थ)शरीर तुम्हे छोड़कर बताओ और किसके पास है ? ॥१॥

[२]

एकके पास भोजन करनेकी शक्ति है तो भोजन नहीं, दूसरेके पास भोजन है, तो खानेकी शक्ति नहीं । एकको कामोत्साह है तो कामिनी नहीं; दूसरेको रमणी है तो रमण शक्ति नहीं । एकको दान प्रवृत्ति है तो धन नहीं; दूसरेको द्रव्य है तो दानका व्यसन (आसक्ति-रुचि) नहीं । जिसे दोनों पक्ष (भोग भी व भोग शक्ति भी) संप्राप्य हैं, वह प्रब्रज्या-द्वारा अपने आपको प्राप्त सुखोसे क्यों वंचित करेगा ? लिंग(साधुवेष)का प्रतिपादन भिक्षाके निमित्तसे किया गया है, जो भाग्यविहीन आलसियोके लिए अत्युत्तम है । इससे क्या सिद्ध होगा ? यह विचार करो, और गृहक (निरर्थक) (काय)श्लेगसे अपनेको मत तपाओ । तप नामको वस्तु शरीरका एक कर्म है, इसे किस कारणसे करना चाहिए, और इसका क्या फल होगा ? जीवको शुद्ध व अवद्ध (निर्गुण-अकर्ता) तथा तन-मन और वचनकी चैष्टाओंमे अस्पृष्ट रहनेवाला कहा गया है ।

१८ ख ग पढति । १९ क मनासु । २० ख वइरभग । २१. क ट तुह । २२ क न^२हि । २३ क म ग सुह । २४ व लायण । २५ क ट पइ । २६ व अन्नहु ।

[२] १ व अने । २ ग घ ग^२पविनि । ३ क ट उवह^२ । ४ मभो प्रनियोम^२पाणु^२ । ५ म ग व^२ज्जइ । ६ ख ग छलउ अप्पु, व छलउज्जइ । ७. क ट^२यिनि । ८. ट निद्विडउ । ९ क ट मड । १०. क ट ख ग^२लेसे । ११ ख ग भा^२ । १२ क ट^२णु । १३ क ट कज्ज । १४ क ट^२ण । १५ क ट आवहो । १६ क ट सुद्ध अवद्ध, ख ग सुद्ध अमुद्ध । १७. क ट ग ट^२मणु^२ ।

तासु विसेसु को वि सविसेसे^{१८} किज्जइ^{२०} काई न^{२०} कायकिलेसे ।
 वन्ता—तणुकम्मु न जीवदन्वु^{२१} सरइ न विचार^{२२} वियणु तासु करइ । १०
 जाणिवि कुमारु डय^{२३} कज्जु निउ तं किज्जइ जं स-सरीरहिउ ॥२॥

[३]

आगम्भरणपज्जंतु एहु न वि जीउ न जीवहो कज्जु देहु ।
 अहमिय^१ वियणु इह^२ मोहु भणिउ^३ पडिफुरड^४ भूयसमवायजणिउ^५ ।
 गुड-धायइ-जलजोएण जेम महुसत्ति^६ न अण्णहो^७ कज्जु तेम ।
 पुग्गलकिउ अह संभूउ कम्मु पुग्गलु जि न अण्णहो^८ तणउ^९ धम्मु ।
 सो चेय जीउ पडिहाइ जं जि दृप्पणमुहविद्यु व भाति^{१०} तं जि । ५
 जीवहो परिणामासंभवेण सिद्धउ परलोयाभाउ तेण ।
 परलोयाभावे न सग्गु मोक्खु न नियत्थु^{११} मुयवि^{१२} संसारसोक्खु ।
 तं निसुणेवि ईसिहसंतएण इन्द्रियवावार^{१३} चयंतएण^{१४} ।

आत्माके लिए इस अतिविशेष कायकलेशके द्वारा कुछ भी विशेष(हित) नहीं किया जाता अथवा उस आत्मामें इस अतिविशिष्ट कायकलेशके द्वारा कोई भी विशेषता उत्पन्न नहीं की जाती । शरीरका कर्म जीवद्रव्यका अनुसरण नहीं करता और न उसमें कोई विकार-विकल्प ही उत्पन्न करता है । इस(सिद्धांत)के अनुसार अपने कार्य(कर्तव्य)को जानकर ऐसा करो जो अपने शरीरको हितकारी हो ॥२॥

[३]

यह शरीर गर्भसे लेकर मरणपर्यंत रहता है, और यह देह न तो स्वयं जीव है, और न जीवका कार्य ही है, मैं (देहसे अतिरिक्त अमूर्त-आन्वत व चैतन्यस्वरूप स्वतंत्र आत्मा) हूँ, इसप्रकारके विकल्पको (चार्वाक् दृष्टिसे) मोह कहा गया है । वास्तवमें यह देह भूतसमवाय (पचमहाभूत—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश)से उत्पन्न होकर स्फुरायमान (प्रगट) होता है । जिसप्रकार गुड, घातकी और जलके योगसे मधुगवित (मादक गवित) उत्पन्न हो जाती है, वह किसी अन्य (अव्यक्त-अमूर्त) कारणका कार्य नहीं है, उसीप्रकार कर्म भी पुद्गल-निर्मित है, और उसीसे उत्पन्न हुआ है, वह स्वयं भी पुद्गल ही है, किसी अन्य वस्तुका धर्म (स्वभाव) नहीं है । जो कुछ प्रतिभासित होता है, वही जीव है (उसके अतिरिक्त जीव नामकी कोई स्वतंत्र-अमूर्त वस्तु नहीं है) और वह दर्पणमें मुखके प्रतिबिंबके समान (एक स्वतंत्र वस्तुके रूपमें) भासित होता है । जीवमें किसीप्रकारका अध्यवसायरूप परिणमन असंभव होनेसे परलोक-का अभाव सिद्ध होता है, और परलोकका अभाव होनेसे स्वर्ग व मोक्ष नहीं रहते । अतः संसारसौख्यको छोड़कर अपना कोई अर्थ (हित, लाभ) नहीं हो सकता । -यह मुनकर थोड़ा

१८ क^१सेसे । १९ ग^२इं । २० क ड एण, घ काउ न । २१ क जीउ । २२ क ड^३र । २३ व इउ ।

[३] १. क ड^४तिय, ग^५णिय । २. क ड इहु । ३. क ड^६उं । ४. क व ड परिं । ५. प्रतिभोमें
 उ । ६. क घ ड^७इ । ७. क पहुं । ८. घ अन्नहो । ९. क ड भणउं, व^{१०}उं । १०. क व ड भनि, ग^{११}हति ।
 ११. क ड वि अरु, घ णिअरु । १२. क ड मुइवि । १३. ग व^{१४}वार । १४. ग व ड रन्तं ।

- १० धम्मदिसिहरधरणीरुहेण वोल्लिज्जइ जिणवइ, तणुरुहेण ।
 घत्ता—इय सव्वु वि सुउ पमेयविससु मिच्छापनंचवंचियसुससु ।
 तत्तत्थु साहुजण-उवहसिउ पई सुयवि माम को साहसिउ ॥३॥

[५]

- सवियप्पहो नाणहो साहारणु भूयई^१ अंतरंगु जइ कारणु ।
 तो न काई समपरिणइ सुत्तहो पडरंगेण रंगु जिम^२ सुत्तहो ।
 अह सहयारिनिमित्तु निरुविउ^३ अण्णु जि अंतरंगु पई सूइउ ।
 कज्जहो कारणु नवर सलक्खणु मिउपिंडो^४ व्व-घडहो अविलक्खणु ।
 ५ सव्वउ अंतरंगु आयण्णहि^५ नाणहो कारणु नाणु जि मण्णहि^६ ।

हंसते हुए, जो इंद्रियोंके व्यापार(प्रवृत्तियाँ, प्रवृत्तिमार्ग)को त्याग रहा था, और जो धर्मरूपी पर्वतके शिखरका (उन्नत) वृक्ष था, ऐसे जिनमतीके पुत्रने कहना प्राप्रभ किया—

यह समस्त श्रुत (सिद्धात व तर्क) प्रमेयविषय है, अर्थात् बहुत कठिन प्रमेयोको लिये हुए है, मिथ्याप्रपचसे रहित व- ठीकप्रकारसे सतुलन-युवत है; तथा यह सारा तत्त्वार्थ साधु-अर्थात् शोभन है, और साधारणजन-अर्थात् अविचक्षण लोगोंके द्वारा (कठिन होनेसे) उसका उपहास किया जाता है, परंतु साधुजनोके लिए उभयशिव-अर्थात् दोनो लोकोमे कल्याणकारी है। हे-मामा ! ऐसी बात आपको छोडकर और तो कौन कह सकता है; (यह इसका स्तुतिपरक अर्थ है। श्लेषमे निंदापरक अर्थ इसप्रकार है—) अथवा आपका यह सारा सिद्धात प्रमेयविरुद्ध है, मिथ्यात्वके प्रपंच द्वारा साधारणलोगोको धोखा देनेवाला है, एव सज्जनोके द्वारा उपहास करने योग्य है; तत्रभवान्(तत्तत्त्व-तत्त्वत्यः) आपको छोडकर हे मामा ! ऐसा (कहनेवाला) और कौन साहसी है ॥३॥

[४]

(पंचेन्द्रियों एव मनसे उत्पन्न) सविकल्पक ज्ञानका सामान्य (उपादान) कारण यदि पंच-भूत ही हैं, तो फिर सभी जीवोके मूर्त्तकारणसे उत्पन्न मूर्त्तज्ञानकी परिणति (प्रवृत्ति) एक जैसी क्यों नहीं होती, जिसप्रकार किसी पटके प्रत्येक सूत्रका रंग संपूर्ण पटके रंगके अनुसार ही होता है। इन(भूतो)को आपने ज्ञानका सहकारी-निमित्त निरूपित किया है, और इन्हीको अतरंग (उपादान) कारण भी सूचित किया है। (किसी भी) कार्यका कारण केवल स्वजातीय लक्षण-वाला होता है, जिसप्रकार घटरूप कार्यका कारण उससे (द्रव्यत) अविलक्षण मूर्तिवड-ही होता है। अतः (आपके सिद्धातके अनुसार) अचेतन पृथिव्यादि भूतोसे उत्पन्न अचेतन धारीरादिकके समान ज्ञान भी अचेतन ही होना चाहिये (परंतु ऐसी वास्तविकता नहीं है, क्योंकि ज्ञान एक चेतन तत्त्व है, और ज्ञप्ति-ज्ञानना यह चेतनकी ही क्रिया है)। इसलिए सच्चा अंतरंग कारण सुनिधे। ज्ञान(रूप चेतन तत्त्व)का कारण ज्ञान(आत्मक चेतनशक्ति-आत्मा)को ही मानिये।

१५ क-धम्मदिसि । १६ क-उ तत्तत्थु । १७ घ-उ ।

[४] १ ग भूयइं । २ क-उ णय । ३ क-उ जिह- । ४ क-उ-यउ, ग-इउ । ५ क-उ मउ ।
 ६ क-उ सवि, घ-अवियक्खणु । ७ प्रतिभोमे ण्णहि । ८ क-उ हि, व-महि ।

वद्ध जीव मोहु पई^१ सूइउ^{१०} दृष्णो वयणाभासु निरुचिउ ।
 अविचारिउ सिद्धंतु तुहारउ विहउष्ट्र पेक्खु नएण असारउ ।
 दृष्णो वयणु^{११} ताम न^{१२} पईसइ^{१३} वयणु मुएवि वयणु कहि दीसइ^{१४} ।
 दृष्णतेयमिलिउ नच्छेरउ^{१५} १५ नायणु तेउ होइ विवरेरउ ।
 चक्खु निरुद्ध^{१६} पुरउ न पलोयइ^{१७} वयणसरुउ चलेवि अवलोयइ^{१८} । १०
 नाणु वि कम्मसत्तिसंवलियउ^{१९} जायइ मिच्छादंसणे मिलियउ^{२०} ।
 मोहवसेण वत्थु अवगणणइ^{२१} दृष्णो सुहु^{२२} तुम्हारिसु मणणइ^{२३} ।
 वट्टइ सव्वु^{२४} भंति तुट्टइ जिह^{२५} सुद्धसरुउ^{२६} वियाणहि^{२७} कुह^{२८} तिह^{२९} ।
 वत्ता—सुहभावे असुहु न परिचयइ^{३०} सुद्धे^{३१} नएण^{३२} विण्णिण वि खयइ^{३३} ।
 मणुयत्तु लहेवि जो सो अमइ तिस्सियवलहु जिम^{३४} भवे भमइ^{३५} ॥१॥ १५

'जीव वंघा है', ऐसे विचारको (साह्यदर्शनके अनुसार) आपने मोह कहा है, और दर्पणमे वदनाभासके समान (मिथ्या) निरूपित किया है। आपका यह सिद्धांत अविचारित व असार है, और देखिये ! यह नयो(युक्तियो)से खंडित हो जाता है। (मूर्त्तस्वरूप) दर्पणमें (मूर्त्तिमान्) मुख तो प्रवेश करता नहीं, और (स्वशरीरस्थ) मुखको छोडकर मुख दिखाई ही कैसे दे सकता है ? (तब फिर दर्पणमे मुख कैसे दिखाई देता है ? इसका समाधान यह है कि) दर्पणके तेजसे मिलकर नेत्रोका तेज विपरीत हो जाता है (अर्थात् मूलतः दर्पणाभिमुख होते हुए भी लौटकर स्वशरीराभिमुख हो जाता है) इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि दर्पणके तेजसे प्रतिहत होकर चक्षुओके (तेजकी गति) निरुद्ध हो जानेसे वह दर्पणमे स्थित मुखके शुद्ध स्वरूपको नहीं देखता, बल्कि लौटकर (अपने शरीरमे स्थित) वदनके स्वरूपको ही देखता है (विशेषचर्चके लिए देखिये परिशिष्ट)। उसीप्रकार ज्ञान भी कर्मशक्तिसे संवलित (मिश्रित) होकर मिथ्यादर्शनसे मिल जाता है, और इसप्रकार मोहके वगसे अथवा अविबेकके कारण जो वस्तुस्वरूप (अर्थात् यह कि शुद्धदर्पणका स्वरूप तो मुखरहित ही है, और मुख वास्तवमे दर्पणमे नहीं, अपने शरीरमे ही है) की अवहेलना करते है, ऐसे तुम सरोखे लोग ही दर्पणमे मुखका होना मान लेते है। जो साध्य हो, जिससे भ्राति नष्ट हो जाय, और जिस तरह तुम अपने शुद्ध स्वरूपको जान सको, वैसा करो।

मनुष्यत्व प्राप्त करके जो व्यक्ति शुभभावके द्वारा अशुभ(भावो)का त्याग नहीं करता, तथा शुद्धनय(शुद्ध आत्मस्वरूपके ध्यान व चिंतन)के द्वारा(शुभ व अशुभ)दोनोंका ही क्षय नहीं करता, वह अमति(कुमति या मतिहीन) तेलीके वैलके समान संसारचक्रमे भ्रमण करता रहता है। (विशेषके लिए देखिये परिशिष्ट) ॥४॥

१ ग पड । १०. ग सूविउ, घ सूयउ । ११ क ड ण ताम । १२ क इ । १३ ख ग ण । १४ व नयणु । १५. क घ ड वि । १६. क ड वड । १७ क ड यड । १८. ड मलि । १९ घ ञ ड । २० क घ ड महु । २१ क ख ग ड मज्झु । २२ घ ह । २३ व सिद्ध । २४ ख घ णहि । २५ ग घ कर । २६. क यड । २७ प्रतियोमे 'सुद्धेण' । २८ क एण । २९. ख घ ड ड, ग ण । ३०. क ड जिह । ३१. क घ ड इ ।

[५]

अह एधंतनएण अवद्धउ	अच्छउ परप्र जीउ सुविसुद्धउ ।
पुगलकम्मं न विचारिज्जइ	तेण वि तणुहं न काइं मि किज्जइ ।
अप्पु स मोहु भणितं पइं पोगगलु	करहि कम्म सुंजहिं कम्महो फलु ।
सुकलु दुक्खु जं पयडु जि माणहि	धम्माहम्मविणहुं तं जाणहिं ।
५ धम्मं सग्गु मोक्खु आवज्जहिं ^{१०}	पावें नरयदुक्खु अवहुंजहिं ^{११} ।
धम्माहम्मं ^{१२} केम समभावहिं ^{१३}	जाणमि कालकूटु जइ चावहिं ^{१४} ।
दुक्खें धम्मरसायणु पिज्जइ	किंविमु ^{१५} विमु ^{१६} लील ^{१७} कवलज्जइ ^{१८} ।
करहि ^{१९} न धम्मु दिसविं ^{२०} परु डंभहिं	तुम्हहं ^{२१} जेहा घरे घरे लभहिं ।
अप्पणुं ^{२२} करइ परहो तह सीसइ ^{२३}	पविरलु एकु ^{२४} कहि मि ^{२५} सो दीसइ ।
१० पावकम्मं को नाम न ईसरुं ^{२६}	को उज्जाउ न तह ^{२७} अगेसरु ।
सो जि समोहु एहु संसारिउ	चउगइ भमइ कम्मफलखारिउ ।

[५]

(एक ओर तो) एकांत नय (साख्यमत)से (आपने कहा कि) जोव अवद्ध है और (सर्वत्र) पूर्णतः विगुद्ध रहता है। पुद्गल कर्मसे वह विकृत नहीं होता, और उसके द्वारा इम नरीके लिए कुछ क्रिया भी नहीं की जाती। (दूसरी ओर चाविक मतका आश्रय लेकर) आपने बताया कि आत्मा पुद्गल(स्वरूप) ही है, यह सब (आपका) मोह है। (तो ठीक है) कर्म कीजिये और कर्मके फलको भोगिये। जो मुख व दुःख (विलकुल) प्रगट है, उसे (तो) मानिये, और उसे (क्रमशः) धर्म व अधर्मका चिह्न समझिये। धर्मसे लोग स्वर्ग व मोक्ष प्राप्त करते हैं, और पापसे नरक दुःख भोगते हैं। धर्म और अधर्म समान कैसे हो सकते हैं? इसे तो मैं ऐसा मानता हूँ जैसा कालकूट विपको दातोसे चवाना। (लोगोंके द्वारा) धर्मरूपी रसायन तो बड़े दुःखमें पीया जाना है और पापरूपी विपको लीला(क्रीडा)पूर्वक निगल लिया जाता है। स्वयं धर्म नहीं दर्शनेवाले, और पापोपदेश देकर दूसरोंको बंचना करनेवाले आप सरीखे लोग धर्म-धर्म मिलते हैं। परंतु जो स्वयं करे, और दूसरोंको भी बंधी ही शिक्षा दे, ऐसा कोई विरला ही नहीं-कही दिग्गट देता है, पापकर्म करनेमें कौन ईश्वर(नमर्थ), उपाध्याय (उपदेश) और अपमर(मेता) नहीं बत जाया। जो आत्मा मोहयुक्त है, उसीको समारी कहा जाता है, और वह अपने कर्मकर्ममें नर्दान (पीड़ित) होता हुआ चारो गतिधोमें भ्रमण करता है।

[५] १ न घट वम्मणं । २ कंज्जउ । ३ कंज्जि घं हि । ४ कम्मं । ५ पोगगलु । ६ स ग मडं । ७ क ग हिं । ८ कंज्जि । ९ क घ ट हिं । १० कंज्जि । ११ क ट उ मं । १२ कंज्जि । १३ न हं म् । १४ क घ ट हिं । १५ क वावटि, ग हि, उ नामणि । १६ क ग ट हिं । १७ ग विण, व ने व्ज्जि नहीं । १८ क घ ट हिं । १९ कंज्जि । २० क ग ट हिं । २१ क ग ट हिं । २२ क अणु, घ ट अणु । २३ कंज्जि । २४ क ग ट हिं । २५ क ग ट हिं । २६ क घ ट तहो ।

घत्ता—अहमिय मई जा ता कम्मरई बोझिजइ जीवहो वंधगई ।
इय रूवाभावि^{३०} विसुद्धु ठिउ सो मोकवु^{३१} निरंजणु^{३२} संतु सिउ ॥५॥

[६]

पथडमि निययाई^१ निरंतराई^२
भवएउ नाम हउं वहुउ आसि
सग्गाउ चयवि^३ हुउ कुमर^४ सार
तवचरणविसेसे हयतमालि
तव^५ वहिणिह^६ सुउ पुणु गरुयमाणु^७
भवे भवे तवचरणावलियाई^८
चिलिसावणे माणुससोक्खे सुद्धु
तो भणइ^९ विज्जुचरु कम्मकीउ
घत्ता—^{१०}चिरजम्मकम्मपरिणडपु^{११} तुहु संपत्तु कह व जइ^{१२} सग्गसुहु^{१३} ।
भवे भवे हियइच्छियलाहु^{१४} कउ आयणिण कहाणउ^{१५} कहमितउ^{१६} ॥६॥ १०

‘यह मै’ (या मेरा), इसप्रकारकी मति जबतक रहती है तभीतक जीवको कर्मोंमें रति (आसक्ति) रहती है, और उसीको जीवकी बंधगति कहा जाता है—अर्थात् इस कर्मरतिके कारण ही जीवको कर्मबंध होता है, व चतुर्गतियोंमें भ्रमण करना पड़ता है। इसप्रकारके रूपके अभाव अर्थात् ऐसे विकल्प (मै, मेरा)के सर्वथा अभावसे बुभानुभ कर्मोपार्जनसे रहित होनेसे जो जीव शुद्धावस्थामें स्थित हो जाता है, वह आत्मा ही स्वयं मोक्ष, निरंजन, शांत एवं शिव (कहलाता) है ॥५॥

[६]

हे मामा ! मैं अपने निरंतर कई जन्मातरोको वतलाता हूँ, उनको सुनिये ! (पहले)मै भवदेव नामका वटुक था। तपश्चरण करके सुखराशि संपन्न देव हुआ। स्वर्गसे च्युत होकर मै चक्रवर्तीका पुत्र गिवकुमार नामका श्रेष्ठ राजकुमार हुआ। विगेण तपश्चरण द्वारा (अज्ञान) अंधकार समूहका नाश करके मै विद्युन्माली नामका देव हुआ। फिर तुम्हारी बहनका विशेष सन्मान-भाजन पुत्र जंवूस्वामो हुआ। मैंने तपश्चरणसे प्राप्त किये हुए मनुष्य व देव संबन्धी सुखोको भोगा है। इस जुगुप्सोत्पादक मनुष्यगति संबन्धी सुखमें मुरध(मोहित)होकर, (वताओ कि) मै कैसे इसीतरह (संसार)पंक्रमे पड़ा रहूँ ? तव विद्युच्चर बोला—मै तो ऐसा मानता हूँ कि ससारी जीव कर्मक्रीत अर्थात् कर्मोंका दास है। पूर्वजन्मकी कर्मपरिणतिसे यदि किसीतरह तुझे स्वर्ग सुख प्राप्त हो गया, तो फिर भव-भवमें हृदयेच्छित लाभ कहाँसि होगा। तुम्हें एक कथानक कहता हूँ, वह सुनो ॥६॥

१७ क ग ड मइ । २८ क रई । २९. क ड रइ । ३०. ख घ भाउ, ग भाव । ३१ क व ड मोकवु; ख ग मोकव । ३२ घ जण ।

[६] १ क याइ । २. व ञि । ३. ड राइ । ४ ख ग सुर । ५ क ड चइवि, घ चवि । ६. क घ ड र । ७ क वइहि । ८. घ तउ । ९ क ड वहिणि सुओ, घ णिहि सु । १० क घ ड माण । ११. क घ ड जण । १२ क याड । १३. क ड किह । १४ ख ग एवहि, घ एवहि । १५ क घ ड ड । १६ घ मणमि । १७ क घ ड चिर जम्मि, ख ग चिर । १८ क ड णडम, घ णडल । १९ ख ग जड । २० ख ग सुहु । २१ क ख ग ड्छिय । २२ क घ ड णउ । २३ घ तउ ।

[७]

केण वि-भम्महेण सकञ्जञ्चुकु
सच्छन्दचरणे हुउ बलविसद्धु^६
ते^७ महुरुं सरंतु वहंतु वाह
इय सुत्तु सरंतु सग्गसोकखु
५ पडिकहइ कइणउ^८ तो कुमारु
एक्कलउ मणे वाणिज्जतिट्टु
चोरेहिं सुसिउ^९ कंपिरसरीरु^{१०}
सुइणंतरि तं सरु नियइ जाम
जीहाइ^{११} लिहइ उंसाजलाइ
१० घत्ता—इय माम सग्गसुहु जो सरइ अहिलासछेउ तहो किम करइ ।
एउ माणुससोकखु विणावणउ^{१२} अविचारिउ परकोड्ढावणउ^{१३} ॥७॥

खसपीडिउ अडविहिं^{१४} उट्टे^{१५} मुक्कु^{१६} ।
वहु ट्ठिणहिं^{१७} कहि मिं^{१८} महु तेण खदधु ।
कि चरउ म चरउ करीरसाह ।
को करइ मूढु इह^{१९} सग्ग-मोकखु ।
वणिउत्तु वृहइ कु वि तिट्ठमारु^{२०}
आरणे^{२१} सीयसरसल्लिउ विट्टु ।
तिसपीडिउ^{२२} सुत्तु सरंतु नीरु ।
जलु पियवि विउज्झइ तिसिउ ताम ।
तिस फिट्टइ आयहो^{२३} तेहिं^{२४} काइ ।

[८]

अह चवइ चोरु विडपुरिसगमणि

वणि एककु थेरु तहो तरुणि रमणि ।

[७]

किसी घुमक्कइने अपने कार्यसे च्युत(भ्रष्ट) एव खस (खारिश्) व्याघ्रसे पीडित ऊँटको अटवीमे छोड दिया । स्वच्छंद चरनेसे वह पर्याप्त बलशाली हो गया । बहुत दिनोंपर उसने कही मधु खाया । उस मधुका स्मरण करता हुआ एव भूखकी वाधाको वहन करता हुआ वह ऊँट करीलकी शाखाओको कभी चरता था, कभी नहीं भी चरता था । यही बात भोगे हुए स्वर्गसुख स्मरण करनेकी है । (वरना) यहाँ स्वर्ग-मोक्ष किस भूटको मिलता है ? तब कुमार भी उसके उत्तरमे यह कथानक कहने लगा—कोई वणिकपुत्र भारी (असीम) तृष्णाको धारण करता था । अकेले ही मणि-व्यापारकी तृष्णासे जाते हुए अरण्यमे उसने शीतल सरोवर-जलको देखा । (वहाँ) वह चोरो-द्वारा लूट लिया गया और (भयसे) अंग-अंग कांपता हुआ, एवं तृषासे पीडित हुआ, जलका स्मरण करता हुआ सो गया । स्वप्नमे जब उसने उस सरोवरको देखा तो (स्वप्नमे ही) जल पीकर (वास्तवमे) प्यासा ही जाग उठा, और जिह्वामे ओस विंदुओंको ही चाटने लगा । भला उनसे उसकी तृष्णा कैसे मिटे ? इसप्रकार हे मामा ! जो स्वर्गसुखका स्मरण करता है, वह अपनी अभिलाषाका छेदन कैसे करे ? यह मानुषिक सुख बडा विनौना, और विचारहीन (अर्थात् विवेक भावसे रहित) है, एवं इसरोको (व्यर्थ) कौतुक उत्पन्न करनेवाला है ॥७॥

[८]

अब चोर कहने लगा—एक वृद्ध वणिक था, और उसकी जार पुरुषोसे गमन करने-

[७] १ क ड विहिं । २ क ख उट्टु । ३ ड मुक्क । ४ क घ ड विमुहु । ५ स ग णि ।
६ क ड काहिं, ग कह मि । ७ स ग ते । ८ क ड र । ९ स ग घ भुत्त । १० क ड सग्गु । ११ क घ
ड णउ । १२ क तिट्टु । १३ घ ञे । १४ क स ग ड पोय । १५ घ उ । १६ क ट कणिण, घ कपिय ।
१७ क तेम । १८ घ ड इ । १९ घ णि । २०. घ ड तेहि । २१ प्रतिथोमे वणउ । २२ घ ट णउ ।

भम्मुट्टि नाम चट्टे समाण
 वचचंतहो तहो थोए वि काले
 वहुकवडभरिउ धुत्ताण धुत्तु-
 सुहलकखणलक्खिउ^१ चारु देहु
 तुहु^२ भाइ भज्ज तउ-भाइजाय
 गच्छइ सकंतु इय धुत्तनडिउ
 कइवयदिणेसु लोए सलज्जु^३
 कलु पडइ नियंत्रिणि जेम सुणइ^४
 चोरियउ चित्तु धुत्तेण ताहि^५
 लइ^६ करहि मंतु एम वि मयच्छि^७
 भणु एम एत्थु^८ देउले^९ सकंतु
 जं सुप्पइ तुम्हह^{१०} कहवि पवर
 इय सुणवि दिणेवि परूढराउ^{११}

नीसरिय लेवि मणिगणनिहाण ।
 नरु एक्कु मिलिउ देसंतराले ।
 भम्मुट्टि चट्टु पहि तेण वुत्तु ।
 पइ^२ पेक्खिउ वि वडिहउ मज्झु नेहु । ५
 जम्मे वि न मेल्लमि तुम्ह पाय ।
 पडियणणइ वडिहयनेहजडिउ ।
 उवलक्खिउ वि तं परयारकज्जु ।
 वम्महसंदीवणु गेउ झुणइ^३ ।
 वोल्लइ हउ^४ जोग्ग^५ तुमम्मि नाहि^६ । १०
 इह गामतलारहो^७ पासि गच्छि ।
 सोवेसमि हउ^८ गुरुपंथसंतु ।
 तो निसिहि^९ होइ कल्लाणु नवर ।
 संकेउ तलारहो कहवि^{१०} आउ ।

घत्ता—ता देउले सुहरजियमणइ रयणिहि सुत्तइ^{११} तिण्णि वि^{१२} जणइ । १५

भम्मुट्टि सयणे एक्कहि^{१३} सपिउ वीयम्मि धुत्तु जग्गंतु थिउ ॥८॥

वाली एक तरुणी रमणी थी । वह ब्रह्ममुट्टि नामके एक चटके साथ मणिसमूह आदि खजाने को लेकर निकल गई । चलते-चलते ब्रह्ममुट्टिको थोड़े काल पश्चात् कही देवोंके मार्गमें एक पुरुष मिला, जो बहुत कपटसे भरा हुआ और धूर्तोंका भी धूर्त था । रास्तेमें उसने ब्रह्ममुट्टि चटके कहा—शुभ लक्षणसे युक्त सुंदर शरीरवाले तुमको देखकर मुझे बड़ा स्नेह बढ़ गया है । तू मेरा भाई है, और तेरी भार्या मेरी भ्रातृजाया (भौजाई) है । आजन्म तुम लोगोंके पैर (चरण-सेवा) नहीं छोड़ूंगा । इसप्रकार अत्यधिक स्नेहसे जड़ा हुआ वह ब्रह्ममुट्टि बदलेमे उसकी स्तुति करता हुआ उस धूर्तसे ठगा हुआ अपनी कांताके साथ चलता रहा । कतिपय दिनोंमे लोकमे निश्च उस परदार-कार्य (परस्त्री रमण) को देखकर वह मधुरतासे इसप्रकार गाने लगा जिससे वह सुंदरी सुन ले, और कामोद्दीपन करनेवाले गीत आलापने लगा । धूर्तने उसका चित्त चुरा लिया । वह बोली—मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ । धूर्तने कहा—हे मृगाक्षी लो ! यह मंत्र (उपाय) करो ! इस ग्रामके ग्रामरक्षकके पास जाओ, और ऐसा कहो—यहाँ इस देवालयमें लंबे पथसे श्रांत हुई मैं अपने कांतके साथ सोऊँगी । यदि किसीतरह तुममे-से प्रवर (अर्थात् पुरुष) सो गया, तो रातमें निश्चयसे कल्याण हो जायगा । यह सुनकर रागारूढहुई वह (धूर्तके द्वारा दिये हुए) उस संकेतको दिनमे ही नगररक्षकसे कह आयी । तब देवक्रुलमे मुखसे प्रसन्न मनसे वे तीनों जन रात्रिमे सो गये । एक गयनपेर प्रियाके साथ ब्रह्ममुट्टि (सो गया) और दूसरे पर धूर्त जागता हुआ पड़ रहा ॥८॥

[८] १. क ह लक्खिउ । २. ख ग पइ । ३. ख ग वडिउ । ४. क ख ग तुहु । ५. ख ग भाउ-
 जाउ; व भाउजाय । ६. ख ग पडियण पवडिय, घ पडियण चडिउ नेह । ७. क ख ग ड कय । ८. ख
 ग ज्ज । ९. क ख ग घ ड । १०. क घ ड इ । ११. क ख ग व ताहि । १२. व हउ । १३. क ल जोगु ।
 १४. क णाहि, ख ग व नाहे । १५. ख ग लउ । १६. ख ग व मयच्छि । १७. प्रतियोमं गामि ।
 १८. क इत्थु, घ ड इत्थु । १९. क ड देवलि । २०. क ह हउ । २१. क ह । २२. क ह हि, ख ग ह ।
 २३. क ए लउ । २४. व ड कहिवि । २५. ख ग इ । २६. क घ ड मि । २७. ख ग हे; व हि ।

[९]

तओ अद्धरत्ते दिसामुक्कसहा
जमाइइदूयाणुरुवा पयंडा^१
समाणं तलारेण वग्गंतभिच्चा
पमेल्लेवि चट्टं पसुत्तं पि जाया
५ सुणेऊग भडहक्किंयं कयवमालो
दिणे चैय कहियं इमे दो वि अम्हे
तओ न्दिट्ठु भम्मुद्धि लइओ वराओ
तियं लेवि धुत्तो वि तहवरत्तो
वत्ता—तो वोल्लइ दुत्तर नियवि नइ सो धुत्तु कयडक्कियनेहमइ^२ ।
१० वत्थाइवत्थु ता वहमि सई^३ उत्तारमि पुणु वाहुडवि^४ पई ॥९॥

[१०]

इय निसुणेवि अप्पिउ ताणं सव्वु
तं लेवि तरवि^५ उत्तरिउं धुत्तु
मई सुयवि^६ विवत्थं तडम्मि दास

भूसणुं सकडिल्लु सुवणुं^७ दव्वु ।
परतीरु जि वोल्लवि^८ जंतु वुत्तु ।
रे किल्लु चलिउ वंचिवि ह्यास ।

[९]

तव अर्द्धरात्रिमें जबकि सब सो रहे थे, और दिशाएँ शब्दरहित हो गयी थी, उस समय डिंडिम निनाद करते हुए, यमसे आदिष्ट दूतोंके समान प्रचंड, महाचूर्ण(मूर्दांगलचूर्ण)से पांडुरवर्ण बने हुए, एवं लकुटि दंडोंको लिये हुए, खूंखार गव्द करते हुए, भयानक दैत्यो जैसे भूत्योको नगर-रक्षकके साथ आते हुए देखकर वह स्त्री सोते हुए चटको छोड़कर न सोते हुए घूर्त्तके गयन पर आ गई । भटोके हुंकारसे उदन्न कोलाहलको सुनकर घूर्त्तने कोटपालसे कहा—दिनमे ही कह दिया था कि ये दो तो हम (पति-पत्नी) हैं, तीसरेको नहीं जानते, तुम लोग खोज लो । तब (उन लोगोने) ब्रह्ममुष्टिको देखकर बेचारेको पकड़ लिया और बहुत मार-पीटकर वाँचकर ले गये । घूर्त्त भी उसके वनमे आसक्त हुआ, स्त्रीको लेकर, भागकर समुद्रकी तटवर्ती एक नदीके तीरपर पहुँचा । तब वह घूर्त्त उस दुस्तर नदीको देखकर कपट-स्नेहमति करके बोला—तो अब एक बार वस्त्रादि वस्तुओंको लेकर जाता हूँ, पुनः चलकर (आकर) तुम्हे भी पार उतार दूँगा ॥९॥

[१०]

यह मुनकर उसने अपने आभूषण, कटिमेखला, सुवर्ण, द्रव्य आदि सब कुछ उसको अर्पित कर दिया । उस सबको लेकर घूर्त्त तीरकर पार उतर गया, और दूसरे तीरको अतिक्रमण करके जाने लगा, तो वह बोली—अरे दुराग्रय दास ! मुझे तटपर विवस्त्र(नग्न) छोड-

[९] १ क ड णिगहा । २ ख ग घ ङा । ३ क वुण्णं । ४ ख ग वयं । ५ य ग सेय ।

६ ख ग कयनेहमइ । ७ क ड वत्थइयवत्तु । ८ क सई । ९ क व ड ङिवि ।

[१०] १ घ ताडं । २ क ड णं । ३ क ड णं । ४ ग घ तरवि । ५ क ट रड, ख ग रिवि । ६ ख ग वोल्लवि । ७ क ड वुत्त । ८ क ड सुइ वि, व मुएवि । ९ ख ग त्थु ।

पचुत्तरु हृत्थु^{१०} बलंतएण
 परिणित^{१२} वि मुक्कु भत्तारु सारु
 किं भक्खणमण मज्जु वि मयच्छि
 गइ तस्मि असइ थिय^{१६} तीरे जाम
 जंतुउ^{१८} जलउ थले नियवि मच्छु
 जले बुद्धु^{२१} मोणु एत्तह^{२२} दवत्ति
 उहयासावंचिउ^{२३} हुउ विलक्खु
 बुच्चइ निच्चुद्धिय^{२६} रे सियाल
 तो^{२७} तेण भणित^{२८} हउ^{२९} परकुवुद्धि
 एक्कत्थ मुक्कु पइ पावकम्म
 कल्लाणकारि तउ वुद्धि लग्ग
 घत्ता—इय असइ कहाणउ^{३३} अवगमहि^{३५} सुरसोक्खकळे मा मणु दमहि^{३८} । १५
 अणुहुंजि मणुयफलु दुलहुं^{३१} तुहुं सायत्तु चयंतहं कवणु सुहु ॥१०॥

कर, व ठगकर कहाँ चला । उसने गीघ्न चलते हुए, एवं हाथ हिलाते हुए, प्रत्युत्तर दिया—
 (एक जगह तो) परिणय किये हुए भर्तारको छोड़ा, अन्यत्र अपने जारको मरवा डाला, हे
 मृगाक्षी ! क्या (अब) मुझे भी खानेका मन है ? ले, भट्टारिके ! मैं जा रहा हूँ, तू यहीं रह !
 उसके चले जानेपर जब वह असती तीरपर खड़ी थी, तभी मांसका टुकड़ा लिये हुए एक श्रृगाल
 वहाँ आया । जलसे स्थलपर आये हुए एक मच्छको देखकर, मांसके टुकड़ेको छोड़कर,
 उस मच्छको पकड़नेकी दृष्टतासे दौड़ा । मच्छ (तुरंत) जलमें डूब गया, और इधर वह मांसका
 टुकड़ा झटसे एक रथेन (वाज) द्वारा उठा लिया गया । दोनो आशाओसे वंचित होकर श्रृगाल
 वड़ा लज्जित और उदास हो गया । वह कुलटा उसे लक्ष्य करके हँसी और बोली—अरे निवुंदि
 क्याल ! रे मूर्ख ! स्वाधीन (वस्तु) को छोड़कर क्या लाभ हुआ ? तो उसने कहा—मैं तो अवश्य
 परम दुवुंदि हूँ; पर, अरे पापकर्म करनेवाली दुराचारिणी ! ऐसी (तेरे जैसी) परम सुवुद्धि
 कहाँ मिले कि एक जगह तो तूने भर्तारको छोड़ा, और फिर (दूसरी जगह) जारको भी मरवा
 डाला । अरे निर्लज्ज कल्याणकारिणी ! तेरी ऐसी सद्वुद्धि तुझे खूब लगी है (अर्थात् तेरी परम
 दुवुद्धिका अच्छा फल तुझे मिला है) । नग्न अवस्थामे (खड़े हुए) भी बोलते हुए कुछ तो लज्जा
 कर ! इस असती कथानकको समझो । देव सुखोंके लिए मनका दमन मत करो । दुर्लभ मनुष्य
 फल (शारीरिक त्रिषय-भोग) को भोगो । स्वाधीन(सुख)को छोड़नेवालोंको कौन-सा सुख
 मिलता है ? ॥१०॥

१०. क ड हृत्थु । ११ क घ ड तहि । १२ क घ ड णित । १३ क ड त्व, ख ग घ अत्त । १४. ख ग
 लए । १५ क ड रिय । १६ ख ग घ थिए । १७ ख ग ताउ । १८ ख ग अ । १९ क घ ड मेल्लिखि ।
 २०. क ड धायउ, घ धाविउ । २१ क घ ड बुद्धु । २२. क ड हिं, घ हिं । २३ क ड खड । २४ क ड
 उहयासा । २५. क ड अडणए, व अडयणइ । २६ क ड णिवुं ; र ग निवुं । २७ क ड ता । २८ खं
 ग उं । २९ क ख ग ड हय । ३०. क ड लं तेरी इह सुं, घ एही लं परमुं । ३१. क ड भत्तारु मरां ।
 ३२ प्रतियोमं ण्मि । ३३. क ड लज्जि । ३४ ख ग त । ३५ ख ग लग्ग । ३६. क घ ड णउ । ३७. क
 घ हिं । ३८. क घ ड हिं । ३९. क हुं ।

[११]

- जंबूसामि कहाणउ^१ साहइ
गउ परतीरे^२ पुहइषणतुल्लउ
चडिचि पोइ लंघइ सायरजलु
जा वेलावलु पावमि तहि^३ पुणु
५ हरि-करि किणचि भंडु नाणाविहु^४
अह हत्थाउ गलिउ वरनिहहो
धाहावइ तरियहु^५ दीहरगिरु
निवडिउ^६ एत्थु रयणु^७ अवलोयहो
सायररे नहु वहतहो पोयहो
१० घत्ता—इय मणुयजम्मु माणिकसमु रइसुहनिदावसजायभम्मु^८
संसारसमुहि^९ हरावियउ जोयंतु केम पुणु लहमि हउं ॥११॥

[१२]

- विब्जुच्चरु^१ भणइ दिट्ठप्पहारि^२
सरघाएं मारिउ हत्थि तेण
विब्जन्मि भिल्लु कोयंडघारि^३
एत्तह^४ सो वट्टु सुयंगमेण ।

[११]

(अथानतर) जंबूस्वामी कथानक कहने लगे—कोई बनिया अहाज लेकर दूसरे तीरपर गया। वहाँ उसने पृथ्वीके (समस्त) धनके तुल्य एकमात्र अति बहुमूल्य रत्न खरीदा। पीतमे चढ़कर जब वह सागरको लांघ रहा था तो अपने मनमे इसप्रकार इष्टार्थ सिद्धिकी वाते सोचने लगा—जैसे ही मैं वेलाकूल(समुद्रतट)पर पहुँचूँगा, वही इस महागुणवान् माणिक्यको बेच दूँगा, और फिर हाथी, घोड़े व नानाप्रकारके भाड खरीदकर राजाके समान सपदासहित घरको जाऊँगा! थोड़ी नौद आनेपर वह रत्न उसके हाथसे गिरकर समुद्रके मध्यमे जा पडा। वणिक् दीर्घ स्वरसे तैरनेवालोको चिल्लाया—अरे! अरे! जहाजको रोकिये। यही रत्न गिर गया, उसे देखिये, और उसे लाकर मुझे उपस्थित कीजिये। देखिये! पीतके चलते हुए, सागरमे नष्ट हुआ माणिक्य (भला) कहाँ मिले? यह मनुष्यजन्म माणिक्यके समान है। रतिमुखरूपी निद्राके वशसे भ्रममे पडकर, ससार समुद्रमे हराकर, खोजनेपर भी मैं (इस मनुष्यजन्मरूपी माणिक्यको) फिर कैसे पाऊँगा? ॥११॥

[१२]

(तब) विब्जुच्चर कहने लगा—विध्यपर्वतमे दृढप्रहारी नामका एक घनुर्धर भील रहता था। उसने बाणके आघातसे एक हाथीको मार डाला। इधर वह स्वयं भुजंगमसे ढँस लिया

[११] १ क घ ङ उ । २ क घ ङ उ । ३ क ङ । ४. र ग म सुहइ । ५ क घ ट मणि । ६. व तहो । ७. क विहु । ८ क ड तर । ९ क ड वुत्तु । १० क र ग ट रं ए । ११. क ट अण्णे-सवि पुणु महु । १२ क ट ममुउ । १३ क ड संमारि ।

[१२] १. क ड इ दिठं, र ग घ पभणइ दिट्ठपहारि । २. क घ ट कोवउं । ३ क ट एनहि, घ हि ।

धनुषाएं^४ मारिउ विसहरो वि
करि-भिल्ल-सपुं-धनु धरणिपडिय
छम्मासु हत्थि नरु एकु मासु
तावच्छउ फेडमि दुद्धुमुक्ख^५
करडंतहो तहो दिडनद्धु^६ तुडिउ
मुउ जंनुउ जेम^७ मुणंतु अहिउ^८
घत्ता—तो भणइ^९ कुमार माम सुणहि^{१०} अक्खाणउ^{११} अज्जु वि नउ सुणहि^{१२} ।
कवाडिउ^{१३} को वि कहि मि^{१४} वसइ^{१५} इंधणु आहरिवि अन्नु^{१६} गसइ^{१७} ॥ १२ ॥ १०

[१३]

वणे एकदिवसे सज्जियकुठार^१
उणहालइ^२ खररविकिरणतत्तु
सुइणंतरे^३ पेच्छइ रायलील
अप्पाणु कलइ महिवइसमाणु
करि-तुरय-जोहसामग्गिसारु
गड सीसे चडाविउ^४ कट्टभारु ।
भरु मेल्लिवि तरुतले निदपत्तु ।
वरकामणीहिं सहुं^५ कामकील ।
सिंहासणे^६ चमरहिं विज्जिमाणुं ।
रायउलु^७ रद्धपडिहारदारु । ५

गया । धनुषके प्रहारसे उसने विपधरको भी मार डाला, और वह भील भी विपभुवत (विप-व्याप्त) होकर मर गया । पृथ्वीपर पड़े हुए हाथी, भील, सर्प और धनुष एक घूमते हुए शृगालके चित्तमे चढ गये । हाथी छह मास, मनुष्य एक मास, और यह सर्प एक दिनका प्रास होगा । तो ठीक, ये सब तवतक रहे, आज तो मैं इस दुष्ट भूखको धनुषके दोनो ओर बँधे हुए सूखे बंधन (तांतकी गाँठ)को खाकर मिटा लेता हूँ । उसके चवानेसे वह दृढ़ गाँठ टूट गया, और धनुषके शिरेसे उसका तालु व कपाल फूट गया । जिसप्रकार अधिकसे और अधिक लाभको चाहनेवाला जवूक मर गया, तू भी उसीतरह नष्ट होगा, इसप्रकार मेने यह परमार्थ कह दिया । तत्र कुमार बोला—हे मामा ! एक आख्यान सुनो, जिसे तुम अवतक भी नहीं जानते । कहीं कोई कवाड़ी रहता था, और इंधन लाकर (उसे बेचकर) अन्न खाता था ॥ १२ ॥

[१३]

एक दिन वह अपने कुल्हाड़ेसे सज्जित होकर वनमे गया, और शिरपर काष्ठका भार चढा लिया । ग्रीष्ममे प्रखर रविकिरणोसे संतप्त होकर भारको छोड़कर (शिरसे उतारकर), वृक्षके नीचे निद्राको प्राप्त हुआ । स्वप्नमे उसने राजलीला देखी, और सुंदर कामिनियोंके साथ काम-क्रीड़ा । अपने आपको राजाके समान समझा, जो सिंहासनपर विराजमान था, जिसके ऊपर चमरोसे बीजना किया जा रहा था; जिसका राजकुल करि-तुरग एवं योद्धाओ इत्यादिकी समस्त सामग्रीसे सार-युक्त अर्थात् समृद्ध था, और जिसका द्वार प्रतीहारसे अवरुद्ध (संरक्षित)

४. क ड धार्याहि । ५. क ड मिलल । ६. क ड विसु । ७. क ड सप । ८. क ड सियालहु । ९. क ड संक । १०. क ड भुक्खु । ११. ख ग पर । १२. क ख ग ड वद । १३. क मुक्खु, ख ग मुक्खु । १४. क ड णु । १५. क ड य । १६. ख ग सुहेण छुडिउ । १७. क संहि । १८. घ तिहा । १९. क ड ड । २०. ख ग मु, व मुणहिं । २१. क ड णउ । २२. क ड हिं, घ मुणहिं । २३. क ड कहिमि को वि । २४. क ड । २५. प्रतिपामे 'आणु' ।

[१३] १ घ कुठारु । २ घ विवि । ३ ख ग घ उन्हा । ४ क ड मुय । ५. क सहु । ६. क ड सिधा । ७. ख ग विज्जु । ८. ख ग रहु तं नियवि सारु, ग प्रतिमें दूसरा पाठ भी = चिह्न लगा कर लिखा गया है ।

अह आगयाप्र^१ लुहसोसियाप्र^२ उट्टाविउ महिलप्र^३ रोसियाप्र ।
 अंतरिउ रञ्जु पर दिट्ट^४ पत्ति मसिकसगवण्ण णं कालरत्ति
 सुकंग-पयडसिरसंधिजाल^५ उद्धुसियरुक्खखरविसमवाल ।
 असहंतु विरसु तं तीणु बुत्तु सा पिट्टिवि^६ धाडिय^७ पुणु वि सुत्तुः
 १० तो नियइ^८ सुदणु अडइह^९ सबाहु मलमल्लिणवहंतं -पसेयवाहु ।
 ईधणभरपीडियउत्तमंगु ता उट्टिउ^{१०} हुक्खञ्जुलुक्किंयंगु ।
 घत्ता—जइ सुदणे रञ्जु संपत्तु तहो पुणु पुणु वि तं पि संभवइ कहो ।
 इय माणुसजम्भहो जइ ल्हसिउ तो अच्छमि नरयदुक्खगसिउ ॥ १३ ॥

[१४]

तक्करु कहइ^१ निसुणि बहुचेडउ^२ पाउसे कम्भे^३ नयरे नडवेडउ^४ ।
 नञ्जु निसिहि^५ गयउ निवपासइ^६ सुकउ रक्खणु निय-आवासप्र^७ ।
 वोडु नाम नञ्जु ठिउ जरजुणउ^८ तरुसकडआरामासणउ^९ ।
 ता पुराउ आहरणहिं लंछिय सासुयाप्र^{१०} क वि [वहु निम्भच्छिय^{११} ।
 ५ आविउ^{१२} रुक्खे ताइ^{१३} संथाविउ मरणोवाय^{१४} -पासु गले लाविउ^{१५} ।

था । अथानतर क्षुभासे शोषित एव रष्ट्र हुई उसकी स्त्रीने आकर उसे उठा दिया । राज्य (दृष्टिसे) ओझल हो गया, और स्याही जैसे काले वर्णवाली एवं काल-रात्रि जैसी पत्नी दिखाई दी । उसके अंग सूख रहे थे, शिराएँ और सधिसमूह प्रकट हो रहे थे, एव बाल रोमांचित (खड़े हुए), रूखे, कठोर तथा असमान थे । उसके कठोर वचनको सहन न करते हुए (कवाडीने) उसे पीटकर निकाल दिया, और फिरसे सो गया । तो उसने स्वप्नमे देखा कि अटवीमे उसके आँसू बह रहे हैं, मलसे मलिन अतिशय प्रस्वेदका स्रोत बह रहा है, और उसका उत्तमाग (शिर) ईधनके भारसे पीड़ित (दबा हुआ) है । तब दुःखसे झुलसते हुए शरीरसे बह उठ खडा हुआ । यदि स्वप्नमे उसको राज्य मिल गया तो वह भी पुन-पुन. मिलना कैसे सम्भव है ? इसी-प्रकार यदि मे इस मनुष्यजन्मसे गिर गया, तो नरकदु खोमे श्रित होकर रहना होगा ॥ १३ ॥

[१४]

तब तस्कर कहने लगा—सुनो ! बहुत-से चेटोसे युक्त नटोका एक वेडा(दल) वर्षा ऋतुमें (आजीविकाके) कार्यसे नगरमे आया, और रातमे नाचनेके लिए राजाके पास गया । अपने आवासमें रक्षाके लिए उन्होंने एक रक्षक छोड दिया । वोड नामका एक जरा जोर्ण (अतिवृद्ध) नट वृक्षोसे, सकीर्ण आरामके पास बैठ गया । तो उसी समय आभरणोसे लाडित (युक्त) कोई वहु सासकी निर्भर्त्सना पाकर, नगरसे आकर उसी वृक्षके नीचे ठहरी, और मरनेके उपाय स्वल्प

१. क घ ड^१ । १०. क घ^२ याड । ११. र ग विट्टि । १२. र ग^३ सिरिनिधि^३ । १३. क ड पिट्टिवि ।
 १४. ख ग^४ उ । १५. क^५ इ । १६. क घ ड^६ इहि । १७. घ^७ वहंतु । १८. क र ग दुक्कु ।

[१४] १. घ भणइ । २. क ड^३ वेडउ । ३. क घ ड^४ कम्मि । ४. र ग घ नर । ५. र ग घ ड^५ हि ।
 ६. क घ ड^६ सड । ७. ख ग नियड । ८. क ड^७ सड । ९. ख ग नर । १०. क घ ड^८ णाउ, र ग
 ११. क घ ड^९ याइ । १२. क ड^{१०} णिउ । १३. क घ ड^{११} आडवि । १४. र ग तावे, घ ताए ।
 १५. घ सत्था । १६. क ड^{१२} पाय । १७. घ ड लायउ, र ग लायय ।

चित्तइ वोड्ड मुयह^{१८} १९ महु जायउ
 मरहु न जाणइ^{२०} सई उवएसमि
 पुच्छिय^{२१} भणइ^{२२} भाय उदेसहि^{२३}
 पासगाहु तो नडिण कडिज्जइ^{२४}
 तहि सई चडवि^{२५} पडेण निवद्धउ
 सुंदरि^{२६} मुरउ एम^{२७} डालिज्जइ^{२८}
 इय तहो दक्खालंतहो वेणं
 निवडिउ^{२९} पासगंठि गलि गाडिउ
 तो तिय पेक्खवि^{३०} वोड्डु^{३१} मरंतउ
 घत्ता—इय कञ्जु असिद्धउ^{३२} अहिलसई^{३३} परिणामे न जाणइ^{३४} तासु गइ^{३५}
 जो सो नडवोडहो अणुहरइ^{३६} नियवुद्धिण सोक्खचत्तु मरइ^{३७} ॥१४॥

कंचणलाहु वड्डहो आयउ ।
 मुइयहि पुणु^{३८} आहरणइ^{३९} लेसमि^{४०} ।
 सुहमिच्चुणु^{४१} मई^{४२} जमउरि^{४३} पेसहि^{४४} ।
 आणवि मुरउ रुक्खतलि दिज्जइ^{४५} ।
 साहहि पासु पुणु वि गले वद्धउ । १०
 गाढबंधपासेण मरिज्जइ^{४६} ।
 मदलु^{४७} ढलित दइयसंजोएं ।
 चडफडंतु जमदूयहि^{४८} काडिउ^{४९} ।
 नद्विय सभय करेवि अवरत्तउ^{५०} ।
 १५
 परिणामे न जाणइ^{५१} तासु गइ^{५२} ।
 नियवुद्धिण सोक्खचत्तु मरइ^{५३} ॥१४॥

[१५]

वोड्डइ जंबूकुमारु न जाणसि
 लोयवालु^{५४} तहि^{५५} रज्जयुरंधर^{५६}
 विग्गहं लग्ग पंच संवच्छर

पुरि नामेण अत्थि वाणारसि^{५७} ।
 सत्तु जिणेवइ गउ देसंतउ ।
 पच्छण तासु महिसि णं अच्छर ।

पाशको गलेमे लगाया । वोड सोचने लगा—इसके मरनेसे मुझे (यही) वंटे-वैटे ही स्वर्णलाभ हो गया । यह मरना नहीं जानती, अतः मैं स्वयं इसको शिक्षा देता हूँ, मरजाने पर आभरण ले लूँगा । पूछी जानेपर उसने कहा—भाई मुझे सुखमृत्युसे यमपुरी भेज दो । तो नटने पागका फदा बनाया और वृक्षके नीचे मुरज लाकर रखा । फिर वहाँ उसके ऊपर स्वयं चढ़कर एक वस्त्रसे शाखासे बाँधकर फिर पाशको गलेमे बाँध लिया । और बोला—हे सुदरी ! मुरजको इसतरह लूटका देना चाहिये, और दृढ पाशबंधसे मरना चाहिये । इसप्रकार वेगसे उसको दिखलाते हुए, दैवसंयोगसे मर्दल लूटक गया । सुदृढ पाशबंधी गलेमे पड़ गई और वह तड़फड़ाता हुआ यमदूतोके द्वारा खीच लिया गया । स्त्री वोडको मरते देखकर अनुताप करके भयभीत होकर भाग गयी । इसप्रकार जो असिद्ध कार्यकी अभिलाषा करता है, और परिणाममे उसकी गति नहीं जानते हुए, उस वोड नामक नटका अनुसरण करता है, वह अपनी ही बुद्धिसे सुखरहित होकर (अर्थात् दुःखपूर्वक) मरता है ॥१४॥

[१५]

तब जंबू कुमारने कहा—तुम नहीं जानते । वाराणसी नामकी एक नगरी है । वहाँका राज्यकी घुराको धारण करनेवाला लोकपाल नामका राजा शत्रुको जीतनेके लिए देशांतरको गया । युद्धमे पाँच वर्ष लग गये । पीछे उसकी अप्सरा जैसी विभ्रमा नामकी महादेवी जिसे

१८ क ड भुअहि, खं हि । १९ ख ग मुहु । २० क व ड णड । २१ ख ग णड ले, व रण लएसमि ।
 २२. क ड पु । २३ क घ ड भणिउ । २४ क घ णसहि । २५. क व ड णमिच्चुइ । २६. क मड, घ मए ।
 २७ घ णपुरि । २८ क ख ग घ णि । २९ क ख ग ड कहि । ३० क णड । ३१ क ख ड चडिउ ।
 ३२ क ड एम मु । ३३ ख ग ट्टालि । ३४ क ड मदलु । ३५ घ निवि । ३६. क ड थंड । ३७ क
 णं । ३८ क व ड पेक्खवि । ३९ क ड वोड । ४० क ड त्तउ । ४१ क ड णडं । ४२ क व गड ।

[१५] १. क ड वारा । २ क ड बाल । ३ क ड तहि । ४. ख ग रज्जु ।

- विट्भम नाम निलग्र जा सुकी नरजोए^५ त्रिणु मयणञ्जुलुकी^६ ।
 ५ चडेवि तवंगे अलञ्जिर डोल्लिय एकग्र जरदासिए^७ सहुं बोल्लिय ।
 हले दोहुणहसास^८ अवलोयहि^९ सुसिउ अहरु कंपंतउ जोयहि^{१०} ।
 पेक्खहि^{११} हियवउ कज्जविभुल्लउ^{१२} रयजलसित्तु^{१३} जंघजुवुल्लउ^{१४} ।
 आणि जुवाणु को वि गलि लावहि^{१५} संदीवउ चम्महु^{१६} उल्हावहि^{१७} ।
 वेसिणि भणइ^{१८} चविउ किं दीणप्र^{१९} काइ असञ्जु^{२०} मइ मि^{२१} साहीणप्र^{२२} ।

१० घत्ता—इय रहसकञ्जु दोहि मि तियहु^{२३} धवलहरउवरि वोल्लंतियहु^{२४} ।

रच्छाइ जंतु जणजाणियहे^{२५} दिट्ठीवहे^{२६} निवडिउ राणियहे^{२७} ।

[१६]

- वि थडयडवच्छु^१ सुकुमारभुओ चंगाहिहाणु सुण्णारसुओ^२ ।
 सालत्तयनहमणिपयकमलु उप्पुञ्चियनिद्धजंघजुयलु^३ ।
 घोलंतचूल-सोहणपडड^४ पच्छललंवाविचिकच्छडड ।
 विप्पुरियलुरियआयत्तकडि कण्णंतस्सित्तंतालदलधडि^५ ।
 ५ नवकुसुमसंच^६ गन्धिभणु^७ पव्वर खंधंते लुलाविचिकेसभरु ।

घर छोड दिया था, पुरुष सयोगके बिना कामवासनासे जल उठी, और प्रासादपर चढ़कर निर्लज्ज भावसे डोलने लगी, तथा एक बूढी दासीसे बोली—सखी ! मेरे दीर्घ व उष्ण स्वासो को देखो, और कांपते हुए सूखे अशरोको देखो । और भी कार्यको भूले हुए अर्थात् कृत्याकृत्य विवेककून्य, मेरे इस (सूने) हृदयको देखो । मेरी दोनों जांघे रज-जलसे सिंच गई हैं । किसी जवानको लाकर गले लगाओ, और संदीप्त मदनको बुझाओ । तब वह कुलटा दासी कहने लगी—इस प्रकार दीनतासे क्यों कहती हो ? मेरे स्वाधीन आपके आधीन) रहते हुए (आपके लिए) क्या असाध्य है ? प्रासादके ऊपर दोनों स्त्रियोंके इस गुप्तकार्यकी चर्चा करते समय जन-मान्य(प्रख्यात) रानीके दृष्टिपथमे मार्गसे आता हुआ—॥१५॥

[१६]

—अतिविस्तीर्ण वक्षस्थल और सुकुमार भुजाबोवाला चग नामका सुनार पुत्र पडा, जिसके चरण कमलोंकी नखमणियोमे आलवतक(अलता) लगा हुआ था । उसकी जवाएँ स्निग्ध और मसृण थी, व केश लहरा रहे थे । व ह एक सुंदर पट धारण किये हुएथा, पीछे लम्बा लटकता हुआ कछोट्टा पहने था, और उसकी कमरमे एक चमकती हुई छुरिका लगी थी । अपने कानोमे वह तालपत्र निर्मित कुडल पहने था । नये पुष्पोके संचय(गुच्छे अथवा माला)से सजाया हुआ

५ ख ग जोए । ६ ख ग ल्लुवकी । ७ क ड दासिय । ८ क ल सासु, घ ंहसास । ९ व यंहि ।
 १०. क ंहि, ख ग जोवहि । ११ ख ग ंहि । १२. ख ग घ रइजलु भिन्न । १३ ख ग घ जंयलु । १४. ख
 ग ंहि, घ लायहि । १५ ख ग वम्हहु । १६. क ंवहि । १७. क ल ंइ, घ भणिउ । १८ क घ ड ंइ ।
 १९. ग ल्जु । २० क ड मइमि, ख ग मइ वि । २१. क घ ल ंणइ । २२ क ड ंयहु, घ ंयहो ।
 २३. क ख ग ड ंयहो । २४ क ड ंपहि ।

[१६] १: क घ ड ंवच्छ । २ घ सुवार । ३. क ल ंजमलु । ४ सोसणं, ख ग घ ड णेसणं ।

५ ख ग पच्छड । ६ ख ग घ कन्नतं । ७. ख ग वालं । ८ ख ग कुसमं । ९. क ड ंण ।

संचपियवड्डुलकुंचधरु
 सो नियवि कहिउ सण्णतियए^{१२}
 आणिवज्ज कि पि म खेउ करु
 संकेयवि^{१३} छुडु छुडु आणियउ^{१४}
 छुडु छुडु महएवि रायभरिय^{१५}
 वत्ता—ता^{१६} परियणलोयसहायसहुं धयचिघछत्तपच्छइयनहुं ।
 वरतुरयथट्टसंवाहियउ संपत्तु राउ उम्माहियउ ॥१६॥

[१७]

पसरियथाणंतरी मग्गु रुद्धु
 अह आउ राउ महएविगेहु
 थोवंतरि समग्गु निरोहसमणु
 उत्तालियाग्गु भयजणियभंगु
 निच्चं चिय माणुसपोसुं तासु
 छम्मास जाम तहिं वसइ चंगु
 देविग्गु पच्छाहरे चंगु छुद्धु ।
 बहुवरिसहं रुढनवल्लनेहु ।
 जाणविं पच्छाहरे रायगमणु ।
 घल्लिउ पुरीसकूवम्मि चंगु ।
 पेसइं जिह होइ न जीवनासु ।
 दुग्गंधविट्टुं हुउ पंडुरंगु ।

उसका केशपाश कंधोके नीचे तक लहरा रहा था । वह अच्छी तरहसे चांपी हुई बड़ी-बड़ी मूँछे धारण किये हुए था, उसकी दाढ़ी खूब सुंदरतासे सँवारी हुई थी, और हाथ बहुत मनो-हर थे । उसको देखकर इशारा करते हुए रानीने कहा—यह जवान हृदयको भाता है, इसको लाओ । जरा भी विलव मत करो । दूती वहाँ गई, जहाँ वह श्रेष्ठ सुभग था । तदनंतर उसको संकेत करके ले आई । फिर दृष्टिसे पहचान हुई (आँखोंसे आँख मिली) और फिर झट-पट रागभरी महादेवीने उसे अपनी शैयापर बैठाया । तभी श्रेष्ठ अश्वोंके समूहपर सवार अपने परिजन लोगों व सहायकोंके साथ, ध्वजा, छत्र और पताकाओसे आकाशको आच्छादित करता हुआ वड़े उमाह(उत्साह)से युक्त राजा आ गया ॥१६॥

[१७]

(उस समय) राजपरिवारके स्थानांतर तक फैल जानेपर अर्थात् राजमहलके विलकुल निकट आनेपर मार्ग अवरुद्ध हो गया और महादेवीने चंगको पीछेके घरमे डाल दिया । तब तक इधर बहुत वर्षोंसे अभिनव-वर्द्धित स्नेहसे भरा हुआ राजा महादेवीके निवासको आया । थोड़ी देर बाद श्रम निवारणके लिए पीछेके घरमे राजाका आगमन जानकर उतावली और भयसे पराभूत रानीने चंगको पुरीषकूपमे डाल दिया, और नित्यप्रति उसके लिए मनुष्य(शरीर) के पोषण भरके लिए इतना भोजन देती रही, जिससे उसका जीवनाश अर्थात् मरण न हो । जब छह मास तक चंग वहाँ रहा, (तो) उसका शरीर दुर्गंधसे आविष्ट और पांडुरवर्ण हो

१० क ड उप्फेडियं, घ उप्फेरियं । ११. क कामं । १२. ख ग यइं, घ सन्नंतियइं । १३ क ड ण । १४. क ड सा । १५ व एवि । १६. घ ड यउं । १७. प्रतियोमे यउं । १८. प्रतियोमे भरिउ । १९. ख ग ञ्जहे, घ ञ्जए । २० क घ ड सरिउ, ख ग वइसारियउ । २१ घ परिमियं । २२. क ड धयछत्तचिंघं ; ए ग नहुं ।

[१७] १ ख ग घ तंरु । २ ख ग य । ३. क सइं, ख ग सहु, ड सउ । ४ क घ ड जाणिवि । ५. क ड याइं । ६. ख ग तोस । ७ क ड पो । ८. क ड तहि । ९ क ड दुग्गंधु विट्टु ।

- अह^{१०} कम्मकरेहिं विहच्छभूउ^{१०} सोहिञ्जड नीरे असुइकूउ ।
^{११}विट्ठंतरंधदरिण अगाहे निवडइ अमेहु गंगापवाहे ।
 चंगो वि विणिगगउ वाहमिलिउ सुरसरिहे^{१२} तीरे लोएहिं कलिउ ।
 १० पुच्छिउ तुहुं होसि न होसि चंगु पंडुरिउ काई^{१३} दुगंधु अंगु ।
 अक्खड हउं रुवासत्तिएहिं पायालसग्गि^{१४} पन्नयत्तिएहिं^{१५} ।
 निउ द्विवसेहिं^{१६} घरु सुमरंतु सुणिवि धल्लिउ रोसेण विवणु^{१७} कुणिवि^{१८} ।
 घरु^{१९} जाण्वि द्दवहिं सुरहिएहिं^{२०} जलसेयहिं^{२१} तेल्लहिं^{२२} सुरहिएहिं ।
 बहुवासरेहिं^{२३} संजाउ^{२४} चंगु ^{२५}चामीयरवण्णउ पुणु नरंवु^{२६} ।
 १५ कालम्मि कम्म भूओ वि राउ गउ द्विवसेहिं देविहिं विरहु जाउ ।
 पुणुरुत्तु^{२७} दिट्ठ वाहरिउ^{२८} चंगु ^{२९}बोल्लइ वि^{३०} सहिप्र^{३१} दुहकंपिरंगु ।
 सुहयत्तणफलु अणुहविउ^{३२} जं जि ^{३३}अज्ज वि^{३४} तणुगंधु न समइ^{३५} तं जि ।
 पुणेहिं^{३६} छुट्टु जइ एकवार तो पुणु वि जाइ कि वार-वार ।
 वत्ता—तिच्चं च-नरयगड अणुहवेवि मणुयत्तु लद्धु जइ भवि^{३७} भमेवि ।

२०

रइसुहलवकारणि मूढमणु को माम ^{३८}पडइ पुणु नरइ^{३९} जणु ॥१७॥

गया । इसके बाद जब कर्मकरो (मेहतरौ)के द्वारा उस वीभत्स हुए अशुचि कृपका जलसे शोधन किया जाने लगा तब विष्टाके भीतर अध(गुप्त)द्वारसे वह अमेध गगाके प्रवाहमे पड़ा । चंग भी उस (अशुचि)प्रवाहके साथ मिला हुआ निकल गया । सुरसरिके तीरपर लोगोने उसे पहचाना, और पूछा—हो न हो तू चंग है, तुम्हारा शरीर दुर्गंध युक्त और पाडुरवर्ण कैसे हो गया ? उसने कहा—मैं (मेरे) रूपमे आसक्त नागसुंदरियो-द्वारा पाताल लोकमे ले जाया गया । बहुत दिनोपर मुझे घरका स्मरण करते जानकर उन्होने रोपसे मुझे विवर्ण (कुरूप) करके छोड़ दिया । घर जाकर देवताओंके द्वारा लाये गये अर्थात् दिव्य द्रव्यो, सुरभित जल सेचन व सुरभित तेलोके—(प्रयोग-)द्वारा वह चंग बहुत दिनों बाद पुनः कंचन-वर्ण और अभिनव अंग अर्थात् नवीन तारुण्य एवं सौंदर्यसे भरपूर अगोवाला हो गया । किसी समय पुनः राजा गया, और कुछ दिन वीतनेपर रानीको पुनः विरह उत्पन्न हुआ । पुनः वैसेके वैसे सुंदर चंगको देखकर उसे बुलाया, तो दु.खसे कापते हुए गात्रसे चंग उसकी सखीसे यू बोला— मैंने सुभगत्व (सुंदरता)का जो फल अनुभव किया (उससे) आज भी शरीरकी वह दुर्गंध पूर्णतः नही मिटी । पुण्योसे यदि कोई एक वार (संकटसे) छूट गया, तो क्या वह वार-वार (संकटमे पड़ने) जाता है ? तिर्यंच और नरकगतिका अनुभव करके यदि भवभ्रमण करके मनुष्यत्व प्राप्त हुआ तो, हे मामा ! रचमात्र रतिसुखके लिए कौन मूढमति पुरुष पुनः नरकमे पड़े ॥ १७ ॥

१० क ड करहिं वो । ११ क विट्ठलं, ग वट्ट, घ विच्छिन्नं । १२ क घ ड हिं । १३ क काइ । १४ ख ग सग्गि । १५ क ख ग ड पन्नयं । १६ क घ ड संहिं । १७ क च्चु । १८ क कुणवि । १९ क ड धरि । २० ड एहिं । २१ क हिं । २२ क तहु वासं । २३ ख ग यं । २४ ख ग वणु पुण्णवंगु; घ वनु पुणुं । २५ व पुणं । २६ क ड वाहरउ । २७ क ड बोलाइ वि । २८. प्रतियोमं यं । २९ क ड भविउ । ३० क ड अज्जु वि । ३१. घ ड । ३२ ख ग हिं, घ पुत्तेहिं । ३३. क ड भुवि । ३४. क ड णरइ पुणु पडइ ।

[१८]

१तो नवर-नयमगपडिवोहदित्तेण
 अणवरथपसरंतरोमंचसत्तेण
 कुरुविसयनाथरपुररायउत्तेण
 पोमाइओ जंबुसामीमहाभवु
 तुहुं परमगुणखाणि तुहुं धम्मतरुकंदु
 इय थुणिवि पुणु कहिउ तं तकरायारु
 एत्थंतरे गयणमयरहरे पवहंति
 संघट्टविहडंतकट्टागयाफुट्ट
 निवुडु १३ सियवडु वे ससिलंछगो गलिउं ३
 एत्तहिं १४ तथाहारु रुइतारु तारोहु
 घत्ता—वंधुक्कमुमसंकासछवि उययाचले १६ छजइ उयउं १७ रवि ।
 विज्जुचरविमुक्कहो भवघरहो १८ अड्डिउं १९ भायणु व रायभरहो २० ॥१८॥

[१८]

तो फिर शूद्र नीतिमार्गसे प्रतिबोधको प्राप्त, निःसार संसारसे वैराग्य(विरक्त)-
 चित्त, अनवरत प्रसरणशील रोमांच-समूहसे युक्त, आसन्न भव्य और (संसारके माया-मोहके)
 प्रपंचसे रहित तथा क्रुद्धेशमें नागरपुर (हस्तिनागपुर) के विद्युच्चर नामके उस राजपुत्रने
 युक्तिप्रयोग-द्वारा (अर्थात् युक्तिपूर्वक) महाभव्य जंबूस्वामीकी, जिन्होंने मतिज्ञान व श्रुतज्ञान-
 पूर्वक छह द्रव्योंको जान लिया था, इसप्रकार स्तुति की—तू परमगुणोंकी खान है, धर्मवृक्षका
 मूल है; और हम-जैसे व्यक्तियोहूकी कुमुदबनोके लिए तू ही चंद्रमा है। इसप्रकार स्तुति
 करके उसने अपना वह तस्कराचार (चोरवृत्ति) और वासगृहमें प्रवेश संबंधी निःशेष वृत्त
 कहा। इसके अनंतर गगनरूपी मकरगृहमें प्रवहमान रात्रिरूपी नाव सूर्यरूपी दोस्तटिका-
 के कारण अवस्थितिको प्राप्त न कर पाती हुई संघर्षमें विघटित होकर फूट गयी और उधर
 जिसका किरणसंततिरूपी रज्जुबंध टूट गया है, ऐसे (रात्रिरूपी नौकाके) डूबते हुए श्वेतपट
 (पाल)के समान चंद्रमा भी गलित हो गया (डूब गया)। (इसप्रकार मानो रात्रिरूपी नावके
 खंड-खंड होकर टूटनेसे) शकुनजन(पक्षी समूह)रूपी वणिक्बंध क्रंदन करने लगा, और इधर
 उसका आधारभूत सुंदर व विशाल तारासमूहरूपी माणिक्यसमूह भी डूबता हुआ दिखाई देने
 लगा। बंधूक पुष्पके समान छविवाला सूर्य उदयाचलपर उदित होकर ऐसा शोभायमान हुआ,
 मानो संसाररूपी गृहसे मुक्त विद्युच्चरका राग(मोह, घट पक्षमें लालरंग)से भरा हुआ भाजन
 ही उडकर सूर्यके रूपमें आकाशमें जा लगा हो ॥१८॥

[१८] १. प्रतियोगे इय पवित्ते पूर्वं चरित्तं आये अठारह कथानकोके नाम इय प्रकार दिये गये
 हैं—हालिय-वायस-वेयर-कइ-सखिणि-भमर-विसहर-सियाल-संडु-वणि-असइ-रयण-जंबुय (घ कोल्यु) कव्वाडिय-
 नबो-चगो—एतानि कथानकानि षोडश, राजपुरोहितो मधुलेहलवनं च इति कथानकद्वयमध्याहार्यं, क ड में
 'अह कूप सिव-माधवधूर्त्तंति कथानकमध्याहार्यं', २. क ख ग ङ आसण्णं । ३. ख ग च्चरे नाम । ४. ख ग
 घ सुडं । ५. ख ग कयरव । ६. ख ग भणिवि । ७. क घ ङ उ । ८. ख ग पयसार । ९. ख घ हूर ।
 १०. क ड च्चिहि, घ च्चिहि । ११. घ अहरति । १२. क ड दिहट्टु । १३. ख ग सियवडु, ड सिडवडु व् ।
 १४. क उं । १५. घ हिं । १६. क छ उययाचलि, घ यलि । १७. क घ ल उइउ । १८. क ग घ ड
 वरहो । १९. ख ग य । २०. ख ग हूरहो ।

[१६]

	ताम घरपंगणे	धुसिणचंदणघणे	पडहपड्डु लालिचं ।
	करड-करडंतयं	टिविल-टंटंतयं ।	तूरमप्फालिचं ।
	झल्लरीपामयं	मदलुदामयं ^३	तखियतडिकाहलं ।
	डकडमडक्कियं	रंजगुंजंकियं	संखकोलाहलं ।
५	सुणिवि खय-रइसुहं	जिणवईत्तणुरुहं	तुरय-करिसंगओ ।
	नेहसंबाहिओ	रायरायाहिओ	सेणिओ आगओ ^४ ।
	तेण मणिजुत्तयं	कडय-कडिसुत्तयं	सेहरं सिरहियं ।
	समवसिय वत्थेणं	अप्पणो हत्थेणं	भूसणं परिहियं ।
	गाढ-नरजाणए	डुक्क जंपाणए	पुत्तुदुहकणविया ।
१०	वहुड मेललतिणा	सिद्धिवहुडरत्तिणा	मायपिउ पणविया ।
	चड्ढिवि संचल्लिओ	बंधुजणं सल्लिओ ।	लग्गओ मगए ।
	खुहिय जणनायरो ^{११}	धाविओ ^{१२} सायरो	संठिओ अगए ।
	धुयधयाडंबरं	छत्तछन्नंबरं ^{१३}	पासजणनंदणी ।
	वहलरहसंठिया ^{१४}	निवइयलऊरिया ^{१५}	वट्टए संदणी ।

[१६]

तव घने केजर और चंदनसे सुगंधित घर-आगनमें पट्ट पट्ट ललितस्वरसे बजाया गया । करडवाद्य करड-करड ध्वनि करने लगा, टिविल-वाद्य ट ट करने लगा, तूरका आस्फालन किया गया, उद्दाम मर्दल सहित झल्लरी रमण कराने लगे (अर्थात् मनोरंजन करने लगे), काहल-वाद्य विद्युत्के समान तड-तड, एवं डकका डमडक-डमडक करके बजने लगा । रंज नामक वाद्यने गूँज उत्पन्न कर दी और शंखोने कोलाहल । जिनमतीके पुत्रके रत्तिमुख (अर्थात् स्त्री आदि विषयसुखको भोगनेकी आकांक्षा) को नष्ट हुआ जानकर, स्नेहसे संवाहित अर्थात् संचालित व प्रेरित होकर घोड़े, हाथी समेत राजाविराज श्रेणिक आया । उसने जंबू-स्वामीको मणिमय कड़ा और कटिसूत्र एव शिरपर शोखर (मुकुट) पहनाये, और स्वयं अपने हाथसे उसे वस्त्र पहनाये और आभूषण धारण कराये । तब मनुष्यो-द्वारा ले जाये जानेवाले सुदृढ जपानकयान(पालकी)के उपस्थित किये जानेपर, वधुओको छोडकर सिद्धिवधूमे अनु-रक्त हुए जंबूस्वामीने पुत्रके (वियोग)दुःखसे क्रन्दन करते हुए माता-पिताको प्रणाम किया, और पालकीपर चढकर चल पड़ा । (इसपर) वधुजनकी हृदय (दुःखसे) विध गये, और वे मार्गसे लग गये, अर्थात् मार्गमे खडे हो गये । नागरजन ध्रुव हो गये, व सागरचंद्र (दुःखसे विह्वल होकर) दौड़ पड़ा, और मार्गमे आगे आकर खडा हो गया । ध्वजा पत्ताकाएँ फहराने लगी, अन्नर छत्रोसे छा गया, और राजमार्ग दोनो ओर खडे हुए लोगोको आनंद देनेवाले

[१९] १. क ड पड्डु । २ क ड ति, स ग ल्ल । ३. स ग घ मदलुदामियं । ४ स ग गड । ५ क आयओ । ६. क ड वत्थय । ७ स ग ञे । ८ क ट रत्तियाए । ९ ड णए । १० क र ग ञणु । ११ क ड यरे, स ग घ जणु । १२ घ थाड । १३ क र ग ड छत्तछण्ण । १४. क ट संठिया, घ वड्ढिया । १५ क ड वड्ढिया, घ वड्ढिया ।

एम नंदगवर्णं फुल्लफलदलवर्णं वंदिथुल्लंतओ^{१४} ।
 रुक्खसंपणयं^{१०} मुणिगणाइणयं^{११} आसमं पत्तओ ।
 घत्ता—मणुयामरसिरसेवियरयइं पणविवि सुहम्ममुणिगुरुपयइं ।
 विण्णविउं^{१२} कडक्खियसिद्धिवहु किल्लउ पव्वज्जपसाउ पट्टु ॥१९॥

[२०]

दिण्णाणुग्गह गुरुणा सारे
 सीसहो कुसुममालं जं मैल्लिय
 रयणफुरंतुं मडडु जं छोडिउ
 जं सिरं कारिउ वालुप्पाडणु
 हारुच्चिउ तिरहुं रेहइं गल्लु
 मुक्कउ मणिचामीयरकंकगु
 उत्तारिवि^{११} घल्लंति न मुद्धिउ
 छोडिवि खित्त-सपरियरं^{१२} सत्थी

किज्जइ दिक्खग्गहणु कुमारे ।
 वम्महवाणपंति तं^{१०} पेल्लिय ।
 तं कंदप्पदप्पु णं मोडिउ ।
 तं किउं मयरच्चिच्चिद्धाडणु ।
 को आयरइ विच्चमुत्ताहल्लु ।
 विहरंते^{१०} नरजम्महो कं-क्कणु ।
 तणु-मणं^{१२} त्रयणगुत्तित्तउं^{१३} मुद्धिउ ।
 मुच्चइ लोहिणि-बंधसमत्थी ।

५

बहुत-से रथोमे संस्थित राजसेनासे भरपूर हो गया । इस प्रकार बंदीजनों-द्वारा स्तुति किया जाता हुआ कुमार, नंदनवनमें फूलों, फलों एवं पत्रोंसे सघन वृक्षोंसे संपन्न तथा मुनिगणोंसे आकीर्ण (भरे हुए) आश्रमको प्राप्त हुआ । मनुष्यों व देवोंके शिर जिनकी (चरण) रजको लेते हैं, ऐसे मुनि सौधर्म नामक गुरुके चरणोंको प्रणाम करके उसने विज्ञापना की—हे सिद्धिबधूको कटाक्ष (लक्ष्य) करनेवाले प्रभु (मेरे ऊपर) प्रव्रज्या(-दान)रूपी प्रसाद कीजिए ॥१९॥

[२०]

श्रेष्ठ गुरुका अनुग्रह पाकर जंबूकुमारने दीक्षा ग्रहण की । सिरसे जो कुसुममालाको त्यागा, तो मानो कंदर्पकी बाणपंक्तिको ही फेंक दिया । रत्नोंसे चमकता हुआ मुकुट छोड़ा, तो मानो कंदर्पके दर्पको ही भग्न कर दिया । शिरपर-से बालोंको उखाड़ा तो मानो मकरध्वजका निष्कासन कर दिया । हार त्याग देनेपर (सम्प्रदर्शन-ज्ञान-चारित्र्य रूप त्रिरत्नके समान) तीन रेखाओंसे-युक्त उसका गला स्वयमेव सुंदर लगने लगा, तो फिर वृत्तमुन्नत अर्थात् आचरणसे रहित (= बुद्धाचरणके विपरीत), अतएव निष्फल, ऐसा हार धारण करनेरूप निरर्थक आचरण कौन करे ? मणिसुवर्णमय-कंकणको छोड़ा तो मानो उसने नरजन्म (अर्थात् संसारमें मनुष्यरूपमे जन्म) के लिए जलकण छोड़ दिये, अर्थात् जलांजलि दे दो । मुद्रिकाओंको तो उसने अवश्य उतारकर डाल दिया, परंतु वह तन, मन और वचन इस गुप्तित्रयसे मुद्रित हो गया । स्त्रियो सहित अपने क्षेत्र व परिकरको छोड़कर उसने (संसार या कर्म)बंधनमे समर्थ लोभरूपी लौह-श्रुखलाको त्याग दिया । उसने (बाह्य)परिधानवस्त्रको तो त्याग दिया,

१६ क घ ङ युच्चं । १७ वं चय । १८ ख ग विणिं ।

[२०] १ क ख ङ ह । २ ख ग कुसमं । ३ क लण । ४ ख ग फुरत । ५ ख ग नं । ६. ख ग किय । ७ ख ग हं । ८ क डं । ९ क चित्तं । १० क ड विरयत्तं । ११ क ड रवि । १२ क ड मणु । १३ ग भुत्तं । १४. ख ग थरि ।

जं परिहाणघत्थुं^१ परिसेसिउं^२ वत्थुसरुवे चित्तु तं पेसिउ ।
 १० पाणि जि पत्तु पविच्चु विसुद्धउ भिक्खामभमणभोवज्जुं^३ अविहद्धउ ।
 आसउ वासु निरासु पदिण्णउं^४ संथरुं^५ धरणिपीडुं^६ विस्थिण्णउं^७ ।
 घत्ता—इय बाहिरत्थपरिहारुं^८ किउ तं अंतरसुद्धिहे^९ हेउं^{१०} थिउं^{११} ।
 नीसंगवित्तिइंदियदवणुं^{१२} निम्मूलहिं^{१३} कम्मं^{१४} भंति कवणु ॥२०॥

[२१]

एत्तहे^१ वि पडिच्छियवयभरेण पव्वज्जं^२ लइय विज्जुच्चरेण ।
 अपणहिं^३ दिणे सुयणाणंदणासुं संताण सहोयरनंदणासुं ।
 जिणसेणहो अपिपवि ललियवाहु हुउ अरुहयासुं^४ निग्गंथसाहु ।
 जिणवइयप्र सुप्पहअज्जियासुं तवचरणुं^५ लइउं^६ पासम्मि तासुं ।
 ५ पउमसिरिपमुह वहुआउं^७ जाउ पव्वज्जिउं^८ अजिजउ जाउ ताउ ।
 कइदिणेहिं^९ सुहम्महो गणहरासु उप्पण्णउं^{१०} केवलनाणु तासु ।
 केवलिसहसंठिउं^{११} सुद्धगामि तउ चरइ महासुणिजंबुसामि ।
 अणसणु पहिलारउ कम्मउहणु नियमियदिणेषु आहारचयणुं^{१२} ।

पर वह वस्तुस्वरूप(के ज्ञानके रूप) में उसके चित्तमें प्रविष्ट हो गया। हाथ ही उसके पवित्र एवं विशुद्ध पात्र बने, और भिक्षाभ्रमण ही उसका अविहद्ध (निरतिचार) भोजन। निर्जन आश्रय (गृह, कुटीर) जो दूसरेका दिया हुआ हो, वह उसका आश्रय स्थान हुआ, और विस्तीर्ण पृथिवी-पृष्ठ ही उसका संस्तरण (बिछोना) बना। इसप्रकार किया हुआ बाह्यार्थोंका जो परिहार है, वह आभ्यंतर शुद्धिका हेतु होता है। निःसंगवृत्ति और इंद्रियोका दमन करनेवाला व्यक्ति कर्म-को निर्मूल करता है, इसमें क्या आति है! ॥२०॥

[२१]

इधर ब्रतोंको स्वीकार करके विद्युच्चरने भी प्रव्रज्या ले ली। दूसरे दिन अपने वशजोको, अपने सहोदरके पुत्र जिनसेनको, जो कि स्वजनो (व सज्जनो) को आनंद देनेवाला था, अपित करके, सुंदर भुजाओवाला अरुहदास भी निर्ग्रथ साधु हो गया। जिनमतिने भी सुप्रभा आर्थिकाके पास तपश्चरण ले लिया। पद्मश्रो प्रमुख जो बहुर्यं थी, वे भी प्रव्रजित होकर आर्थिकाएँ हो गयी। कुछ दिनोंमें सौधर्म गणधरको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। केवलोके साथ रहते हुए शुद्धावारी जंबूस्वामी इसप्रकार तप करने लगे। सर्वप्रथम कर्मोंको दहन करनेवाला

१५. ख ग वत्थु । १६. ख ग सविं । १७. ख ग भिक्खामवणं, कं भोजु, डं भोज्ज । १८. क घ डं ण्णउ ।
 १९. घ सत्पह । २०. क डं वोहु । २१. क ख ग ड विच्छिं, व ण्णउ । २२. ग हार । २३. क ख ग
 डं हि, घ हि । २४. ख ग होउ, घ देउ । २५. क थिह । २६. ख ग घं दमणु । २७. क घ टं लहि ।
 २८. क ड कम्मु ।

[२१] १. क डं हि, घ हि । २. क ड पावज्ज । ३. क घ टं हि । ४. ख ग सयणां, घ
 ण्यणां । ५. ख ग सहोयर नंदं । ६. ख ग यास । ७. क डं याहि । ८. क घ ट लयउ । ९. क ड
 ताहि । १०. घ याउ । ११. क ड पाव । १२. क ड कइदिणहिं । १३. घ नउ, ड ण्णउ । १४. ख ग घ
 उहसंठिय । १५. ख ग गहणु ।

अणुद्विद्वयभिक्ष^{१६} फलाणुमे^{१७} संजमज्ञाणागमसुद्धिहे^{१८} ।
 घत्ता—अवमोयर एकगासु पढमु दिणि दिणि एकोत्तरकयलकमु । १०
 वत्तीस जाम पुणरवि सरइ एक्केउ जा एक्कु जि हवइ^{१९} ॥२१॥

[२२]

इय तवेण मुणिमग्गे^{२०} वलगाइ^{२१}
 तइयउ नवर वित्तिपरिसंखउ
 बहुसंकप्पचित्तअवहारणु
 आसानाम नरहो^{२२} दुक्खायरु
 तउ चउत्थु^{२३} रसचाउ चरिउजइ
 पंचमु पुणु वित्तिसिज्जासणु
 जंतुपीडविरहिउ^{२४} वयविद्धिहि
 छट्टउ^{२५} कायकिलेसु महातउ
 जो किर होइ जहिच्छहो^{२६} दूसहु

दंसणनाणसमाहिहि^{२७} जग्गाइ ।
 एक्कपमुहवरनियमियभिक्षउ ।
 आसापासविणासणं कारणु ।
 परमनिरासवित्ति सुहसायरु ।
 दिट्ठपंचेदियदप्पु हरिज्जइ । ५
 सुण्णागारुज्जाणनिवासणु ।
 कारणु ज्ञाणजुयलनवसिद्धिहि^{२८} ।
 जायइ^{२९} जेण परीसहभयजउ ।
 मुणिणा सो सोदट्ठु^{३०} परीसहु^{३१} ।

अनगन (नामक तप) है, जिसमें नियमित दिनों(अष्टमी चतुर्दशी आदि)में आहार त्याग किया जाता है, अपने उद्देश्यसे न बनायी हुई दोक्षा ली जाती है, एवं जिसका फल अनुमान प्रत्यक्ष है कि वह संयम, ध्यान व ज्ञान-शुद्धिका हेतु होता है ।

अवमोदर्यमें पहले दिन एक ग्रास, और फिर प्रतिदिन क्रमशः एक-एक अधिक करते हुए जब वत्तीस हो जावे, तो फिर एक-एक करके ग्रासोंको घटाया जाता है, जबतक कि पुनः एक ग्रास हो जावे ॥२१॥

[२२]

इसप्रकारके तपसे मुनि मार्गमें लगे हुए वे जंबूस्वामी दर्शन, ज्ञान और समाविसे जागते थे । इसके अनंतर तीसरे वृत्ति-परिसंख्यान नामक तपमें एक(दो) आदि घरो(की संख्या)को निश्चित करके भिक्षा की जाती है । यह (तप) बहु-संकल्पी चित्तका निरोध करनेवाला और आशा-पाशके विनाशका कारण है । 'आशा' यह नाम ही मनुष्यके दुःखोंका आकर है, और निराशा वृत्ति अर्थात् सर्वथा निष्काम भावना मुखका सागर है । चौथा रसत्याग(नामक)तप किया जाता है, जिससे प्रबल पंचेंद्रियोंके दर्पका अपहरण होता है । पांचवां विविक्त-शय्यासन (नामक) तप शून्यघर उद्यान आदिमें निवास करना है । जन्तु पीड़ासे रहित होनेसे यह तप व्रतोंकी वृद्धि एवं ध्यान-युगल(धर्म व शुक्ल)रूपी पर्वतकी सिद्धि (आरोहण) का कारण है । छठा काय-क्लेश नामक महातप है, जिससे परोपहोके भयका विजय हो जाता है । स्वेच्छाचारोके लिए

१६ क 'विक्खय दिट्ठं', ख ग 'वेक्खय दिट्ठिं', घ 'दिट्ठियं' । १७. घ 'मोउ' । १८. घ 'सिद्धिहेउ' । १९ घ हरइ ।

[२२] १ ख 'मग्ग, ग 'लग्ग' । २. क ख ग घ 'गइ' । ३. ख ग 'हिहि' । ४. क क 'विणासउ । ५. ख ग 'ह' । ६. ख ग सहयायर । ७. ख ग चउयउ । ८ घ मुत्ता' । ९. ख ग 'पीडविरहियउ । १० प्रतियोगे 'वयविद्धिहि कारणु ज्ञाणजुयल नवसिद्धिहि' । ११. ख छट्टउ । १२ ख ग व 'इ' । १३. क क जडच्छहि, ख ग जड' । १४ ख ग 'व' । १५ क 'सहु' ।

१० नियमविसेसैं जो सई किजइ^१ कायकिलेसु एम^२ सो गिजइ^३ ।
 यत्ता—इय छप्यारु बाहिरउ तउ बहिरत्तु वि आयहो भणिउ^४ कउ^५ ।
 बहिदन्वावेक्खहो तणउ^६ गुणु अणु वि जं परपच्चकु पुणु ॥२२॥

[२३]

अब्भंतरु पमायपरिहरणउ^१ पायच्छित्तु चरणु भवतरणउ^२ ।
 पुज्जरिहि^३ जं आयरु^४ किजइ^५ नयपालणु तं विणउ भणिजइ^६ ।
 तणुचेदुअ^७ अहवा देविणु धणु विज्जावच्चु भणिउ^८ तमनासणु^९ ।
 नाणव्भासे^{१०} अल्लसु जं सुचइ^{११} निम्मल्लु तं सञ्जाउ पवुचइ^{१२} ।
 ५ अप्पणत्तु संकपु^{१३} न मण्णइ^{१४} तं बोसग्गु महातउ भण्णइ^{१५} ।
 परसंकपवित्तविणियत्तणु अप्पाण^{१६} जि अप्परुवियमणु^{१७} ।
 सम्मण्णाणवोहिसंसिड्डउ^{१८} तं परमत्थञ्जाणु^{१९} निदिद्विउ^{२०} ।
 छन्विहु नाणविसुद्धिहि^{२१} दीसइ^{२२} अब्भंतरउ तेण तउ सीसइ^{२३} ।
 एम महातउ गणहरसण्णहु^{२४} जंबूसामि चरइ वारहविहु^{२५} ।

जो दुःसह होता है, मुनिके द्वारा वह परोषह सहन किया जाना चाहिए। नियम विशेषसे जो स्वयं किया जाता है (जैसे खड्गासनमे रहना, शीत, उष्ण व वर्षाको सहन करना आदि) उसीकी कायवलेषा(तप) कहा जाता है। इस तरह यह छहप्रकारका बाह्य तप है। इसका बाह्यत्व किस कारणसे कहा गया? क्योंकि इसकी गुणवत्ता बाह्यद्रव्यो(के त्यागादि)की अपेक्षासे है, और दूसरे यह पर-प्रत्यक्ष (दूसरे लोकोको दिखाई देनेवाला) भी है ॥२२॥

[२३]

प्रमादका अपहरण करनेवाला प्रायश्चित्त नामका आभ्यंतर आचार(तप) संसारसे पार उत्तरनेवाला है। पूजाहूनतोंका जो आदर किया जाता है, उस नीतिपालनको 'वितय' कहा जाता है। शरीर-चेष्टासे (शरीरसे सेवा करके), अथवा घन देकर जो वैयावृत्य किया जाता है, वह (मोहरूपी)अंधकारका नाश करनेवाला कहा गया है। ज्ञानके अभ्यासमे जो आलस्यको छोड़ा जाता है, अर्थात् आलस्य छोड़कर जो ज्ञानाभ्यास किया जाता है, उसे निर्मल स्वाध्याय कहा जाता है। जो (वेहादिकमे) अपनत्वका सकल्प नहीं करना है, उसे व्युत्सर्ग (नामक) महातप कहते हैं। मनकी उस अवस्थाको जबकि वह परद्रव्य सर्वधो सकल्पसे अपने-को लौटाकर आत्मामे ही आत्म-रूप होकर, सम्पक्मान व (आत्म)बोधिसे संश्लिष्ट हो जाता है, उसे परमार्थ ध्यान निर्दिष्ट किया गया है। यह छहप्रकारका तप ज्ञानकी विशुद्धिसे जाना जाता है, इसीसे इसे आभ्यंतर-तप कहा जाता है। इस प्रकार (सीधमें)गणवरके समान (अथवा समीप रहते हुए) ही जंबूस्वामी वारहप्रकारका महातप करते लगे।

१६. क ख ग इ । १७. ख ग सोहिज्जइ, घ साहिज्जइ । १८ क च ङ उ । १९. क घ उं । २०. ए ग बहु । २१. ख ग ङ उ ।

[२३] १. प्रतियो मे णउ । २ ख ग णउ । ३ ख ग व रिहि । ४ घ आयउ ज । ५ क इ । ६. ख ग घ इ । ७. क ङ उं । ८ क इ तमु णां । ९ क च ङ ञ्मायु, ख ग ञ्मास । १०. क घ संकेउ, ग मे दोनो पाठ है । ११. क ख ग ङ उं, घ भयइ । १२. ख ग च णो, ङ णि । १३. ख ग घ सम्मण्णाण । १४ क इ परमत्तु । १५. क घ ङ दिहि, ख ग ङेहि । १६. क इ । १७ क इ, घ संसिहु । १८. क विहु ।

घत्ता—अट्टारहवरिसह^{१९} कालुं गड माहहो सियसत्तमि पसरै तड । १०
विउलइरिसिहर^{२१} विसुद्धगुणि^{२२} निव्वाणु^{२३} पत्तु सोहम्म^{२४} सुणि ॥२३॥

[२४]

तत्थेव विवसि पहरद्वमाणि
पडिअंकासोणहो निम्ममासु
गय खयहो विलीणडं मोहसेसु
अत्थवणपवत्तिअ अंतराड
उण्णणडं केवलु पुणुं निरंधु
'करयजजलं व' नोसेसु दंनु
देवागसु जायड नहुं^{२०} कंमंतु
भन्नयणचित्तचूरियकुकु
विउलइरिसिहरि कम्मद्वचत्तु
सल्लेहणमरणे^{१९} जणण-मायु
वहुवड^{१७} चयारि चंपापुरम्मि
भासेक्कु करवि^{१९} सण्णासु^{२०} तम्मि

आऊरियजोए^१ सुकझाणि ।
जंबूकुमार^२-सुणिपुंगमासु^३ ।
दंसणनाणावरणु वि असेसु ।
परियाणिडं जीवे जीवभाउ^४ ।
अवलोयड तिहुयणुं एकखंधु । ५
पच्चक्खु जि लोयालोय सव्वु ।
परिमियसहायसहुं^{१९} परिकमंतु^{२२} ।
अट्टारहवरिसह^{१३} जाम थक्कु ।
सिद्धालय^{२३}—सासयसोक्खपत्तु^{२४} ।
वंभोत्तरि इंद-पडिंद जाय । १०
^{१६}जिणवासुपुज्जचेईहरम्मि ।
अहम्मिंद जाय वंभोत्तरम्मि ।

अठारह वर्षका समय बीतनेपर, माघकी श्वेत(शुक्ल)सप्तमीको प्रातः विपुलगिरिके शिखरपर विशुद्ध गुणोवाले सौभर्म मुनि निर्वाणको प्राप्त हुए ॥२३॥

[२४]

वही, उसी दिन अर्द्धप्रहर प्रमाण दिन व्यतीत हो जानेपर शुक्लध्यानमें, परिपूर्ण योगसे पर्यकासनसे स्थित, निर्मम मुनिपुंगव जंबूकुमारका शेष (बचा हुआ) मोह (मोहनीय कर्म) धय हो गया; दर्शन व ज्ञानावरण कर्म भी अशेषरूपसे विलीन हो गये, और अंतराय कर्म भी अस्तंगत हो गया । जीवने जीवके (शुद्ध)स्वभावको जान लिया । निरंध्र अर्थात् संपूर्ण लोकमें अखंडरूपसे व्याप्त कंबलज्ञान उत्पन्न हो गया, जिससे तीनों लोकोंको एक स्बंधके समान स्पष्ट देख लिया; अखिल द्रव्योको करतल-स्थित जलके समान जान लिया और लोकालोक सभी प्रत्यक्ष हो गये । आकाशका अतिक्रमण करते हुए अर्थात् आकाशमार्गसे, परिमित सहायकोके साथ परिक्रमा करते हुए देवताओंका आगमन हुआ । (इस प्रकार) अठारह वर्षों तक भव्यजनोंके चित्तका कुतर्क (मिथ्यात्व) दूर करते रहकर, (अंतमे) विपुलगिरिके शिखरपर अष्टकर्मोंको त्याग कर मोक्षके शाश्वत सुखको पा लिया । संलेखनापूर्वक मरण करके पिता-माता ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें इंद्र व प्रतींद्र हुए । चारों बहए चंपापुरमें वासुपूज्यजिनके चैत्यघरमें, एक मासका संन्यास करके (मरणोपरांत)

१९. क ड वरिसड, ख ग संह, घ सइ । २०. ख ग काल । २१ क घ ड विउलइरिहि सिं ख ग विउलइरि सिं । २२ ख ग गुणे । २३ ख ग ण । २४. ख ग म्म ।

[२४] १ ख ग घ आऊरिए । २. क ड कुमार । ३ क घ ड वासु । ४. क घ ड उ । ५. क घ ड । ६. क ड घणु । ७ क ड वणु । ८ क घ ड जलु व (व व्व) । ९. क ड त । १०. क ड णहि, घ नहि । ११ -घ सहाए । १२. प्रतियोमे 'परिभम्म' । १३. क ड सड, ख ग संह, घ सइ । १४ क घ ड लड । १५ घ सोविल । १६. ख ग मरणे । १७. क घ ड यड । १८ क ड जिणवास । १९. घ करवि । २० क स ।

घत्ता—अह सवणसंघसंजुउ^१ पवरु एयारसंगधरु^२ विज्जुचरु।
विहरंतु तवेण विराइयउ पुरि तामलित्ति^३ संपाइयउ^४ ॥२४॥

[२५]

- नयराउ नियडे रिसिसंघे थके अत्यवणहो^१ हुकणं सूरचके^२ ।
अह आया^३ ताम कंकालघारि कंचायणि^४ नामे भद्रमारी^५ ।
आहासइ सविणय^६ द्विवसपंच महु जत्त हवेसइ सप्पवंच ।
आमंतिय भूयावलि रउह उवसग्गु करेसइ तुम्ह खुड ।
५ इय कज्जे अण्णहि^१ 'कहि मि^२ ताम पुरि मेल्लिचि गच्छहु जत्त जाम ।
गय एम कहेवि तो जइवरेण मुणि भणिय एम चिज्जुवरेण ।
लड^३ जाहु पमेल्लहु पद यत्ति तो तेहि चविउ^४ परिगलउ^५ रत्ति ।
वीहंतह^६ को किर धम्मलाहु^७ उवसग्गसहणु^८ साहण साहु^९ ।
इय वयणु^{१०} 'द्विडवि^{११} सव्वे वि^{१२} अवक^{१३} निक्कंपिर नियमु करेवि थक ।
१० घत्ता—संजायरयणि मसिकसिणपह^१ अंधारियइसदिसि^२ कूरगह ।
गयणंगणु-महि एकहि^३ मिलइ खयकालसरिसु^४ तमु जणु^५ गिलइ^६ ॥२५॥

ब्रह्मोत्तर-स्वर्गमें अर्हामद्र हुई। इसके अनंतर ग्यारह अंगोंके धारी, एवं तपसे मुग्धोभित श्रेष्ठ विद्युच्चर महामुनि विहार करते हुए अपने श्रमणसंघ सहित ताम्रलिप्ति नामक नगरीमें आये ॥२४॥

[२५]

ऋषिसंघके नगरके निकट ही ठहर जानेपर एवं सूर्यमंडलके अस्तंगमनके लिए प्रवृत्त होनेपर कंकालको धारण करनेवाली भद्रमारी नामकी कात्यायनी देवी वहाँ आयी, और विनयपूर्वक बोली—'पाँच दिनों तक पूर्ण विस्तारके साथ यहाँ मेरी यात्रा होगी। उसमें रौद्र भूतसमुदाय आमंत्रित है, वह तुम्हें धुद्र (असह्य) उपसर्ग करेगा। इस कारण जब तक यात्रा है तब तक इस पुरीको छोड़कर अन्यत्र चले जाइए।' यह कहकर वह चली गयी, तो यतिवर विद्युच्चरने मुनियोंको इसतरह कहा—अच्छा (हो कि), आप लोग इस स्थानको छोड़कर अन्यत्र चले जावें। तो उन लोगोंने कहा—'रात्रि व्यतीत हो जावे (तब चले जावेंगे); (क्योंकि उपसर्गसे) डरनेवालोंको क्या धर्मलाभ (हो सकता) है? उपसर्ग सहना ही साधुओंके लिए साधु (कल्याणकर) है।' इस वचन (से अपने)को दृढ करके सभी वही रह गये, और मौन लेकर निष्कंपरूपसे नियम करके स्थित हो गये। रात्रि होनेपर दग्धो दिग्गमोंको अंधकारमय करनेवाले एवं स्याहीके समान कृष्णवर्णवाले क्रूरग्रह(राहु ?)के समान, तथा गगनांगन और पृथ्वी मानो एकत्र मिल रहे हो, ऐसा प्रलयकालके समान (निविड) अंधकार सारे लोकको गोलने (ग्रसने) लगा ॥२५॥

२१. घ संजु सं । २२. ख ग वर । २३. क ड तावलित्त, घ ताव । २४. ख ग संपराइयउ ।

[२५] १. क ड लय । २. ख ग सूरे चके । ३. क घ ड आय । ४. घ ङणि ५. क रह । ६. क ड सिविणउ, ख ग सिविणव । ७. ख संइ । ८. ख ग घ आव । ९. क ड हि; व अग्रहि । १०. घ क हि मि । ११. क ख ग घ जय । १२. क जइ । १३. क ड चविउ तेहि । १४. ख ग गलिउ । १५. ख ग तह । १६. क हु । १७. क ड सहण । १८. क ड दिहु वि । १९. क ड सव्वहि, घ सव्व वि । २०. ख ग थक । २१. क ड कसण । २२. क ड विसु । २३. ख ग घ ड इ । २४. क कालु । २५. ख ग घ जणु तमु । २६. क ड ।

[२६]

समुद्गाह्या^१ ताम भिउडीकराला कबालेसु^३ पसरंत कोलाळलीला ।
 समुल्लालयता महामंसखंडा^३ सधूमगिग-पम्मुक फेक्कारचंडा ।
 गले^२ बद्धककालवेयाळभूया कयाणयदुप्पिच्छवीहच्छरूया^१ ।
 थिया के वि मसियालहुवडयमाणा^० तथा मंक्कुगा के वि कुक्कुडपमाणा ।
 रिसीणं सरीराइ^८ खाडं पवत्ता^१ सहंता न तं वेयणं जोयचत्ता । ५
 पयंपंति दुक्खं सहेउं गरिइ^१ अहो तवफलं केण कत्थेव दिइ^१ ।
 अधीरा तओ के वि मुणिणो अयाणा तणु^१ कंहुयंता^१ वराया पलाणा ।
 सरे के वि कूवम्मि चीयाहुयासे^३ विवणगा पडेऊण तरु—वेल्लिपासे^१ ।
 ठिउ नवर विल्लुच्चरो जोयलीणो^१ महाघोरउवसग्गसंगे अदीणो ।
 वत्ता—सण्णासु^६ चउटिउहु संगहवि वयखग्गे^० मोहवइरि वहेवि । १०
 संठिउ आराहणसुद्धमणु एकल्लवीरु^८ इदियदमणु^१ ॥२६॥

इय जंबूसामिचरिए तिगारवीरे महाकव्जे महाकइदेवयत्तसुयवीरविरिए विज्जुच्चरअक्खणयणं
 जंबूसामिनिव्वाणमणं नाम^{२०} दममो संधी समत्तो^० ॥ संधिः १० ॥

[२६]

तब कराल भूकुटियों वाले, कपालोमे-से लोहकी धार बहाते हुए, महामांस(नरमांस)-
 खंडोंको उछालते हुए, धूम्र व अग्नि सहित प्रचंड फेक्कार छोड़ते हुए, गलेमें ककाल बाँधे हुए,
 अनेक दुष्प्रेक्ष्य और बीभत्स रूप बनाये हुए बैताल और भूत वहाँ ठठ खड़े हुए । कोई स्वाहीके
 समान काले भूत हुंकार करने लगे । कोई कुक्कुटके समान विशाल मत्कुणोंके रूपमे प्रकट हुए
 और ऋषियोंके शरीर खानेको प्रवृत्त हो गये । उस वेदनाको सहन नहीं करके कोई (मुनि) योग
 (ध्यान) छोड़कर बोले, यह दुःख तो सहनेके लिए बहुत भारी है । अरे तपका फल कब, किसने,
 कहाँ देखा है ? इससे कोई बेचारे अज्ञानी मुनिजन अघोर होकर शरीर खुजलाते हुए भाग
 निकले । कोई तालावमे, कोई कूपमें, कोई चित्ताग्निमे और कोई वृक्षों एवं लताओंके जालमे
 पडकर मर गये । केवल एक विधुच्चर (महामुनि) ही योगमे लीन हुआ, महाघोर उपसर्गके
 प्रसंगमे अदीन (निर्भय) भावसे स्थित रहा । चार प्रकारका संन्यास धारण कर, व्रतरूपी खड्गसे
 मोहशत्रुका वध कर आराधनामे शुद्धमन व इन्द्रियोंका दमन करनेवाला वह अकेला वीर वहाँ
 स्थित रहा ॥२६॥

इस प्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित जंबूसामोचरित्र नामक इस

शृंगार-वीरसंगमक महाकाव्यमें 'विधुच्चरका आख्यायन' एवं 'जंबूसामिका

निर्वाणमन' नामक यह दशम संधि समाप्त ॥ संधि १० ॥

[२६] १. डं च्चाहया । २. ख ग कपा । ३. ख ग वं मात् । ४. क ख ग ड गला । ५. क क
 हुवा । ६. क व ड मसं । ७. क व ड हुचडयमाणा । ८. ख ग वं राण । ९. ख ग व पउत्ता । १०. व
 असज्ज । ११. क ग तणु । १२. क व ड वत्ता । १३. क ख ग ड वीया ; ख ग हुवासे । १४. ख ग
 पासि ; व पेल्लि । १५. ख ग जोव । १६. व सण्णासु । १७. ख ग खग्गे । १८. क ड इवकल्लड ।
 १९. क ख ग ड वणु । २०. क व ड दसमा इमा संधी, ख ग संमत्तो । संधि १० ।

सो जयउ देवयत्तो कइत्तधामोत्ति वीरपडित्तुल्लो ।
जस्स सयासे सिद्धा सीसा सव्वत्थरायवण्णा ॥१॥
विज्जुवरहो महामुणिहो जीवहो कम्मनिवंधणं छुरियउ ।
अइदूसहे उवसग्गे तहिं वारह माणि अणुवेक्खडं फुरियउ ॥२॥

५ जिह जिह घोसवसग्गु पहावइ तिह तिह जगु अणिच्चु परिभावइ ।
गिरिनइपूरु व आउसु खुट्टइ पकफळं पि वं माणुसु तुट्टइ ।
सिय-छावणु^१ -वणु-जोवणु-मलु गलइ^२ नियंतहो^३ णं अंजलिजलु ।
बंधव-पुत्त-कळत्तइ^४ अणइ^५ पवणाहयइ^६ जंति णं पणइ^७ ।
रह-करि-तुरय-जाण-जंपाणइ^८ अहिणवधणउअयणसमाणइ^९ ।

१० चामर-छत्त-चध^१ -सिंहासणु^२ विज्जुलचवलविलासुवहासणु ।
आसि^३ निमित्तु जं जि अणुरायहो दिवसहि^४ कारणु^५ तं जि^६ विसायहो

वे (महाकवि) देवदत्त जयवत्त हो, जो कवित्वके धाम हैं, और उन वीर (३० महावीर) के प्रतिस्तुत्य है, जिनके पास सीखे हुए शिष्य सर्वत्र कीर्तिको प्राप्त हुए—वीर भगवान्के पास तप साधनामे सिद्ध हुए शिष्य केवलज्ञानमे समस्त अर्थोको व्यक्त करनेको शब्द शक्ति प्राप्त करके अंतमे सिद्ध हुए व सर्वत्र स्तुत्य हुए; महाकवि देवदत्तके पास काव्य-रचनामे सिद्ध हुए शिष्योंको कवित्वमे समस्त अर्थोको व्यक्त करने योग्य शब्दशक्ति प्राप्त हुई, तथा वे सर्वत्र प्रशंसाको प्राप्त हुए ॥१॥

विज्जुवर महामुनिके मनमें उस अत्यंत दुःसह उपसर्गमे जीवके कर्मके कारणोको छेदन करनेवाली बारह अनुप्रेक्षाएँ स्फुरित हुई ॥२॥

जैसे-जैसे वह घोर उपसर्ग अधिक समर्थ अर्थात् कठोरतर होता जाता था, वैसे-जैसे विद्युच्चर यह जगत् अनित्य है, ऐसा चिंतन करता था। गिरिनदीके पूरके समान आयुष्य संहित हो जाती है, और मनुष्य पके फलके समान (जीवन वृक्ष-से) टूट जाता है। लक्ष्मी, लावण्य, वष (शरीरका गौर, कृष्ण आदि रंग), यौवन और बल देखते-देखते अंजलिके जलके समान गलित हो जाते हैं। बंधव, पुत्र और कलत्र ये सभी जीवसे अन्य हैं, और इस तरह चले जाते हैं, जैसे पवनसे आहत होकर पत्ते (उड़ जाते हैं)। रथ, हाथी, घोड़े, यान वीर जंपानक (पालको) नये मेघ उन्नयनके समान हैं। चमर, छत्र, ध्वजा और सिंहासन विद्युत्के चंचल विलासका भी उपहास करनेवाले (अर्थात् उससे भी अधिक क्षणिक) हैं। (पहले) जो कुछ अनुरागया निर्मित

[१] १ क वण्णा, घ वन्ना । २ क घ ड हि । ३ घ वणु । ४ घ ग ट तहि ।
५. स ग घ च विह । ६ क ड वेहु । ७ व हे । ८. स गिरिनयं, ग नयूरु व । ९. क ड ।
१०. क ड य । ११ स ग म । १२ घ लामनु, च लामं । १३ स ड । १४ स घ तह, ग तह ।
१५. घ अत्तडं । १६ घ पलड । १७ क स ग ट उणयणं । १८ क ट चित्तत । १९. स ग मिवा ।
२०. स आस । २१ स ग महो, घ सहि । २२ स ग जति ।

मोहें तो वि जीउ अवगणइ^३ अजरामरु अप्पाणउ^४ मणइ^५ ।
 घत्ता—अध्रुवभावण पह मणे जायइ^६ जासु चिवज्जियकामहो ।
 दंसणानाचरित्तगुणु भायणु होइ सो जि सिवधामहो ॥१॥

[२]

मरणसमप्र जमदूयहि^१ निजइ^२ असरणु^३ जीउ केण^४ रक्खिज्जइ^५ ।
 जइ वि धरति धरियधुर माणव गरुड^६ फणिंद-देव-दिट्टदाणव^७ ।
 अक्क-मियंक-सुक्क-सकंदण^८ हरि-हर-यंभ वइरि-अकंदण^९ ।
 ११ पण्णारहं खेतिसु सुहंकर^{१०} कुलयर-चक्रवट्टि-तित्थंकर ।
 जइ पइसरइ गाढपधिपंजर^{११} गिरिकंदरे सायरं नइ^{१२} निज्जरे । ५
 हरिणु जेम सीहेण दल्लिज्जइ^{१३} तेम^{१४} जीउ काले कवल्लिज्जइ ।
 आवसु कम्म^{१५} निवद्धव जेतत जीविज्जइ मुंजंतह^{१६} तेत्त ।
 तहो कम्महो^{१७} थिरु खणु वि न थक्कइ तिहुवणे^{१८} रक्ख करे वि को सकइ ।
 घत्ता—दुत्तरे भवसायरसलिले^{१९} बुद्धंतह^{२०} जगे को साहारइ ।
 जिणसासाण-उवएसियउ दहविहु धम्मु एक्क पर तारइ ॥२॥ १०

था, वही दिन बीतनेपर विपादका कारण हो जाता है। तो भी जीव मोह (वश)से (इस सत्यकी) अवमानना करता है, और अपने आपको अजर, अमर मानता है। जिस कामत्यागीके मनमें यह अध्रुव भावना उत्पन्न होती है, वही दर्शन, ज्ञान व चरित्र गुणोंसे युक्त मानव शिवधाम (मोक्ष) का भाजन होता है ॥१॥

(२)

मरणके समय जब यमदूत जीवको ले जाते हैं; उस समय उस अवरण जीवको रक्षा कौन कर सकता है। चाहे बड़े-बड़े सग्राम धुरंधर सुभट पुरुष ही (जीवको कालसे रक्षाके लिए) धारण कर लें, चाहे, गरुड, फणीन्द्र, देव या बलिष्ठदानव; चाहे सूर्य, चंद्र, गुरुक या राक्ष; चाहे शत्रुको आक्रंदन करानेवाले हरि और हर; चाहे पंद्रह क्षेत्रोंमें कल्याणकारी कुलकर, चक्रवर्ती, या तीर्थंकर उसे धारण कर ले, चाहे वह सुदृढ़ वज्र-पंजरमें प्रवेश कर जाय, या गिरि कंदराओं, सागर, नदी अथवा निर्झरमें, तो भी जिस प्रकार हरिण सिंहके द्वारा मार डाला जाता है, उसी प्रकार जीव कालसे निगल लिया जाता है। जितना आयुष्य कर्म बांधा है, उतना ही भोगते हुए उसे जीया जाता है। उस आयुक्रमसे अधिक एक क्षण भी स्थिर अर्थात् जीवित नहीं रह सकता। तीनो लोकोंमें कौन उसकी रक्षा कर सकता है? दुस्तर भवसागर सलिलमें डूबते हुआके लिए कौन सहारा देता है? वस एकमात्र जिन-शासन-द्वारा उपदिष्ट द्वाविध धर्म ही पार उतार सकता है ॥२॥

२३. क ण्णइ, घ न्णइ । २४. क घ ड णउं । २५. क इ, घ म्णइ । २६. क ख ग ड ङ ।

[२] १. ख ग दूइहो । २. क ञ्जइ । ३. ख ग केण जीउ । ४. घ ण । ५. क ड दानव ।
 ६. ख ग मं । ७. ख ग सकक । ८. घ वक्कण । ९. ख ग वयरिं । १०. व पक्कदण । ११. घ पत्ता ।
 १२. च महकर । १३. ख नय । १४. ख ग ड तो वि । १५. घ जीवु । १६. ख ग घ कम्म । १७. क तह ।
 १८. क ड समयहो । १९. ख ग वणे । २०. ख ग सायरं । २१. ख ग तह ।

[३]

- संसारानुवेक्खे भाविज्जइ कम्मवसेण जीउ पाविज्जइ ।
 जोणि-कुलाउ-जोय^३-सय-संक्रडे चउगइमसणे विवज्जियकंकडे ।
 जम्मंतरइ^५ लेतु मेहंतउ कवणु न कवणु गोत्तु संपत्तउ ।
 वप्पु जि पुत्तु पुत्तु जायउ पिउ मित्तु जि सत्तु सत्तु बंधउ थिउ ।
 ५ माय जि महिल महेली मायारि बहिणि वि धीय धीय वि सहोयारि ।
 सामिउ^६ दासु होवि^७ उप्पज्जइ दासु वि सामिसालु संपज्जइ ।
 केत्तिउ कहमि^८ मुणहु^९ अणुमाणे जम्मइ^{१०} अप्पाणउ^{११} अप्पाणे ।
 नारउ तिरिउ तिरिउ पुणु^{१२} नारउ देउ वि^{१३} पुरिसु नरु वि^{१४} वंदारउ ।
 चत्ता—इय जाणेवि संसारगइ दंसण-नाणु जेण नाराहिउ ।
 १० अच्छइ^{१५} सो मिच्छा-छलिउ काम-कोह-भय-भूणहि^{१६} वाहिउ^{१७} ॥३॥

[४]

- जोवहो नत्थि को वि साहिज्जउ कम्मफलइ जो भंजइ विज्जउ ।
 एक्कु जि पावइ निउइ^१ महल्लउ निवउइ धोरनरउ एक्कल्लउ ।
 एक्कु जि खरधम्मणे^२ विलिज्जइ एक्कु वि वइतरणिहि^३ वोलिज्जइ ।

(३)

अनंतर वह संसारानुप्रेक्षाका चितवन करने लगा । चतुर्गति भ्रमणमे मर्षादा (टिः रहित होकर जोव कर्मवशसे सैकड़ो संकीर्ण योनियो, कुलो, आयुष्य तथा योगो (नाना संयोगो) को प्राप्त करता है । जन्मतारोको लेते और छोडते हुए इसने कौन-सा गोत्र नहीं पाया । बाप पुत्र और पुत्र पिता हो जाता है । मित्र शत्रु और शत्रु, बांधव हो जाता है । माता स्त्री और स्त्री, माता बन जाती है । बहिन पुत्री हो जाती है, और पुत्री सहोदरा । स्वामी दास होकर उत्पन्न होता है, और दास स्वामि-श्रेष्ठ हो जाता है । कितना कहे, अनुमानसे जान लीजिए, यहाँतक कि स्वयं अपनेसे आप ही उत्पन्न हो जाता है (देखिये भूमिकामे महेश्वरदत्तका कथानक) नारक तिर्यंच हो जाता है, व तिर्यंच नारकी, देव भी पुरुष हो जाता है, और पुरुष देव । इस प्रकार संसारगतिको जानकर जिसने दर्शन-ज्ञानको नहीं आराधा, वह मिथ्यात्वसे छला जाकर, काम, क्रोध व भयके भूतोसे चालित होकर रहता है, अर्थात् काम क्रोधादि कपायोके बशीभूत होकर जीवन व्यतीत करता है ॥३॥

(४)

जोवका ऐसा कोई सहायक विज्ज (ज्ञानी) या वेद्य नहीं है जो उसके कर्मफलोको काट दे । जोव अकेला ही महान् मोक्षपदको पाता है, और अकेला ही घोर नरकमे गिरता है, तथा वहाँ

[३] १ क ड^१ पेक्ख । २ क^२ ज्जइ । ३ ख ग जोणि । ४ ल ग च^३ भवणे । ५ क ड^४ रइ । ६ क गोत्त । ७ क ड वापु । ८ क ड^५ इ । ९ ख ग^६ व । १० क व ड^७ उ । ११ क ख ग ड होइ । १२ ग कहिमि । १३ व^८ हुं । १४ प्रतियोमि^९ इ । १५ क व ड^{१०} गउ । १६ क ड^{११} तह । १७ घ जि । १८ ख ग^{१२} उ । १९ क व ड^{१३} भूयहि । २० घ^{१४} उ ।

[४] १. ग च^१ ज्जइ । २. प्रतियोमि भु^२ । ३. च^३ ड । ४. ख ग ड निउ जि । ५. घ वि । ६. क^४ धम्मणे । ७. ख ग लइपजइ । ८. ख ग घ^५ णहि ।

एकु जि ताडिजइ असिबत्तहि^१
 एकु जि जले जलयरु वणे वणयरु
 एकु जि मेच्छु चंडपरिणामउ^२
 एकल्लो वि महिल एकु जि नरु
 एकु जि जोए^३ गलियविचप्पउ^४

घत्ता—एकु जि भुंजइ कम्मफलु जीवहो वीयउ^५ कवणु^६ कलिजइ^७ ।
 सत्तु मित्तु कहिं संभवइ^८ रायदोसु कसु उप्परि किजइ ॥४॥ १०

[५]

अण्णत्ताणुवेक्ख भावइ पुणु
 वज्झइ अण्णकम्मपरिणामे
 गोत्तु निबंधइ अण्णहिं खोगिहिं^१
 अण्णेण जि पिचरेण जणिजइ
 अण्णु को वि एक्कोयरु भायरु
 अण्णु कलत्तु मिलइ परिणंतहे

अण्णु सरीरु अण्णु जीवहो गुणु ।
 जणं कोकिजइ अण्णं नामे ।
 उप्पजइ अण्णण्णहिं^२ जोणिहिं ।
 अण्णइ मायइ उयरं^३ धरिजइ ।
 अण्णु मित्तु घणनेहकयायरु । ५
 अण्णु जि पुत्तु होइ कामंतहे^४ ।

अकेला ही तीक्ष्ण तापसे (पारदके समान) गलाया जाता है । अकेला ही वैतरणीमे डूबता है, अकेला ही असिपत्रोसे फाड़ा जाता है, और अकेला ही करौतसे चीरा जाता है । अकेला ही जलमें जलचर और वनमे वनचर होता है । अकेला ही पर्वत-कंदरामें अजगर होता है । अकेला ही चंड परिणामोवाला म्लेच्छ होता है । अकेला ही तीव्र एवं विषम काम (वासना) से युक्त नपुंसक होता है । अकेला ही महिला और अकेला ही पुरुष होता है । अकेला ही महीपति, और अकेला ही देव, और अकेला ही योग (ध्यान व तप) से समस्त (सासारिक) विकल्पोको त्याग कर यह जीव शुद्ध परमात्मा हो जाता है । अकेला ही कर्मफलको भोगता है, जीवका दूसरा (मित्र या बांधव) किसे गिना जाय ? (किसीका) शत्रु या मित्र होना कहाँ सम्भव है ? राग व द्वेष किसके ऊपर किया जाय ॥४॥

(५)

फिर वह अन्यत्वानुप्रेक्षाका चिंतन करने लगा । शरीर अन्य है, जीवका स्वभाव (गुण) अन्य है । परिणामोके अनुसार यह जीव अन्य (अर्थात् अपनेसे भिन्न व पुद्गलमय) कर्मपरिणामों (कर्म-प्रकृतियों) से बंधता है । लोगोमे किसी अन्य ही नामसे पुकारा जाता है । भिन्न-भिन्न पृथिव्योमे भिन्न-भिन्न गोत्र बांधता है और भिन्न-भिन्न योनियोमे उत्पन्न होता है । अन्य पितासे उत्पन्न किया जाता है, और अन्य मक़ि उदरमें धारण किया जाता है । सहोदर भाई भी कोई अन्य ही होता है, और घना स्नेह व आदर करनेवाला मित्र भी अन्य ही होता है । परिणय करते हुए (अपनेसे) भिन्न ही स्त्री मिलती है, और कामभोग करनेसे कोई

१ ख ग पत्तहिं; घ पत्तिहिं । १० ख घ त्तिहिं, ङ त्तिहिं । ११ क घ ङ मउं । १२ ख संढ । १३ घ ङ कामउं । १४ ख ग जोए । १५ क घ ङ प्पउं । १६ ख ग घ च विज्जउ । १७ क ण । १८ क ङ कहिं । १९ क वइ ।

[५] १ घ अन्नं । २ क ऊ विं, ख ग घइं । ३ क अण्णुज्जइ । ४ घ अन्नसहिं । ५ क ङ वि । ६ क घ ङ इ । ७ क ङ च उवरि, ख ग उडरि । ८ ख ग अण्ण, व अण्णु । ९ ख कामं-तह, ग कम्मतह ।

अणु होइ धणलोहें किंकर अणु जि पिसुणु होइ असुहंकर ।
 अणु अणाइ^१ अणतु^२ सचेयणु^३ सावहि^४ अणु^५ पवडियवेयणु ।
 धत्ता—अणणणाइ^६ कलेवरइ^७ लइयइ^८ मुकइ^९ भवसंधारेण ।
 १० अणु जि निरवहिजीउणु^{१०} कवणु ममत्तिभाउ^{११} तणुकारणे ॥५॥

[६]

जंगमेग संचरइ अजंगसु^१ असुइ सरारे न काइ^२ मि^३ चंगसु ।
 अंडुवियडुहडुसंधडियउ^४ सिरहि^५ निवडुउ चम्म^६ मडियउ ।
 रुहरि-मास-वस-पूयविटलडु^७ मुत्तनिहाणु पुरीसही^८ पोडुलु ।
 थवियउ तो किमि^९ कीडु^{१०} पयट्टइ^{११} दडु^{१२} मसाणे छारु पल्लट्टइ ।
 ५ सुहविवेण जेण ससि तोलहि^{१३} परिणइ तासु कबोले^{१४} निहालहि^{१५} ।
 लोयणसु कहिं गयउ कडक्खणु^{१६} कहिं वंतहिं दरहसिउ^{१७} विचक्खणु ।
 विष्फुरियाहरत्तु कहिं^{१८} वट्टइ^{१९} कोमलबोळु^{२०} काइ^{२१} न पयट्टइ^{२२} ।
 धूयविलेवणु बाहिरि थक्कइ^{२३} असुइ गंधु को फेडिवि सकइ^{२४} ।

अन्य ही पुत्ररूपमे उत्पन्न होता है । धनके लोभसे सेवक भी अन्य ही होता है, और अकल्याण-कर दुर्जन भी अन्य ही होता है । जोवका अनादि अनत सचेतन स्वरूप कुछ अन्य ही होता है, तथा सवेदन अर्थात् कर्मोंकी उद्वोरणासे युक्त सावधि (सादि-सान्त) स्वरूप कुछ अन्य ही । बार-बार भवविसर्जन अर्थात् शरीरत्याग करनेमे भिन्न-भिन्न ही शरीर लिये और छोड़े । जोवका निरवधि ज्ञान गुण भी इन सब बाह्य वस्तुओंसे अन्य ही है । अतः इस शरीरके लिए ममत्व ही क्या ? ॥५॥

(६)

चेतन(आत्मा)के सहारेसे अचेतन(शरीर)का संचरण होता है । इस अणुचि शरीरमें कुछ भी चंगा नहीं है । जाडे-टेडे हाड़ीसे यह संघटित है, शिराओसे निबद्ध है, और चर्मसे मढ़ा हुआ है । यह शरीर पूति रुधिर, मांस, व वसाकी गठरी और मूत्रका निधान व पुरीषकी पोटली है । (मरणोपरात) इसको रख दिया जाय तो यह कृमि व कीटरूप प्रवृत्त हो जाता है, और इमशानमें जलानेपर क्षार रूपमे पलट जाता है । जिस मुखविवसे चद्रमाकी तुलना की जाती है, (आगु व्यतीत होनेपर) कपोलोपर उसको परिणति देखिये ! लोचनोका कटाक्षसे देखना कहाँ गया ? दाँतोसे वह विचक्षण ईषत् हास्य अर्थात् वह मद-मद मुसकराना कहाँ गया ? ओंओंकी वह शोभा कहाँ गयी ? और कोमल वचन अथ वयो प्रवृत्त नहीं होते ? धूप (आदि) विलेपन बाहर हो रहता है; (शरीरके भीतरकी) अणुचि गधको कौन मिटा सकता है ?

१०. क अणाय, ड अणाय । ११. क अण, ख ग अणु, घ अणु । १२. क ड अवे । १३. क ड सव्वहि ।
 १४. ख ग णाइ, अ अन्नसाइ । १५. क ड ड । १६. ख ग निरवहे, क घ ड जोउ हउ । १७. घ ममिर्त्ति ।
 [६] १. क घ ड च गड । २. ख ग घ काइ मि । ३. क अट्ट । ४. च सक्कडियउ ।
 ५. क ख ग ड सिरिहि । ६. ख ग च चम्महि; घ चम्मिहि । ७. क घ ल जिडि । ८. ख ग घ पूयट्टल-
 ट्टलु । ९. ख ग सह । १०. ख ग किमि । ११. ख ग कोड, घ कडु । १२. क घ ड ट्टइ । १३. क घ
 दडु । १४. क ट्टइ । १५. क घ ड हि । १६. क ड ल । १७. क ख ग घ ड लहि । १८. ख ग
 हसिय । १९. ख ग कहि । २०. क ड लु वोळु । २१. क ड ।

घत्ता—असुहसरीरहो कारणेण केवलु सुदु अपु अवगणइ^{२२} ।
 किसि-कव्वाड^{२३}-वणिज्जफलु सेवकिलेसु सुहिल्लव मण्णइ^{२४} ॥६॥ १०

[७]

नारय-तिरिय-नरामर थावण	मुणि परिभावइ आसवभावण ।	
तणु-मण-वयण जोड जीवासड	कम्मगमणवारु सो आसड ।	
असुहजोण ^२ जीवहो सकसायहो	ळगइ निच्चिडकम्ममलु आयहो ।	
कपडे जेम कसायइ सिट्टड	जायइ वहरंगु मंजिड्डड ।	
अवलु नरिंदु जेम रिडसिमिरे ^३	मंठुजोड दीड जिह तिमिरे ^४ ।	५
जीव वि वेडिज्जइ तिह कम्मं	निवडइ दुक्खसमुहे अहम्मं ।	
अकसायहो आसडु सुहकारणु	कुगइ-कुमाणुसत्तविणिवारणु ।	
सुहकम्मणे जोड अणु संचइ ^५	तिथयरत्तु ^६ गोत्तु ^७ संपज्जइ ^८ ।	
घत्ता—मिच्छादंसणे मइलियडे ^९	कुडिलभाड जायइ सकसायहो ।	
काय-वाय-मणपंजळड ^{१०} पुण्णनिमित्तु ^{११} होइ अकसायहो ॥६॥		१०

अवृत्ति शरीरके कारणसे (अज्ञानी जीव) अनुपम व गूढ़-आत्माकी अवगणना करते हैं, एवं कृषि, कवाड़ीपन, वाणिज्यफल और सेवाके बलेशको सुखकर मानते हैं ॥६॥

(७)

अव (वह विद्युच्चर) मुनि नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगतिमें स्थापन करनेवाली आसुव भ्रात्रना माने लगा । जीवके आश्रयसे होनेवाला तन, मन व वचनका योग (क्रिया) ही जो कर्मोंके आगमनका द्वार है, वही आश्रव है । सकषाय जीवके अगुभ योगसे उसको घना कर्ममल इस तरह आकर लग जाता है, जैसे कषाय(गोंद)से द्रिष्ट कपड़ेमें मंजीठका रंग खूब गाढ़ा हो जाता है । जिस प्रकार दुर्बल राजाको शत्रुसेनाके द्वारा, एवं मंद प्रकाशवाले दीपकको अंधकारके द्वारा घेर लिया जाता है, उसी प्रकार सकषाय जीव भी कर्मोंसे वेष्टित कर लिया जाता है, और अचर्म करके जीव दुःख समुद्रमें पड़ता है । अल्पकषायवाले जीवका आसुव शुभ बंधका कारण होता है, और वह कुगति और कुमनुष्य (अघम मनुष्य जाति) योनि (में जन्म होने)का निवारण करता है । शुभक्रियाके द्वारा कर्म परमाणुओंका संचय करनेवाला जीव तीर्थकर गोत्रको प्राप्त कर लेता है । सकषाय जीवका भाव (परिणाम) मिथ्यादर्शनसे मैला होकर कुटिल हो जाता है, और प्रांजल (शुभ) काय, वाक् व मनवाले अल्पकषायी जीवका भाव पुण्य (बंध)का निमित्त होता है ॥७॥

२२ घ न्हं ! २३ क ड डु । २४. व मन्डं ।

[७] १ क ख ग ङ चाह । २. प्रतियोगे 'असुहजोड' । ३. ख ग घ 'कम्म' फुडु । ४. क घ ड 'यहि' । ५. ख ग घ वहुल । ६. ख ग 'समरे' । ७. घ जिहं । ८. ख ग तिमरे । ९. ख ग घ तिहं वेडिज्जइ । १० प्रतियोगे 'व' । ११. क सचडं, घ संघइ । १२ घ 'रत्ति' । १३ क ड जाम । १४ क घ ड विणिवयड । १५. व 'सण' । १६ ख मयं । १७. क 'इ' । १८. व 'लिड' । १९. घ पुणं ।

- [८]
 सहई परीसहु^३ परमदियंवरु
 ०. इंदियवित्तिछिहु दिहु ढक्कई
 नावारुहु जेम जलि जंतउ
 जो देविणु पछिवंधणु वारइ
 ५ अह मोहिउ मईधु^३ जइ अच्छइ
 इय कवजें अकसाउ कसायहो
 कोहहो खंति नाणु अण्णाणहो^{१०}
 अणसणु रसगिद्धिहि^{११} निद्धाडणु
 १० घत्ता—इय जो कुम्मारससु संवारियपु^{१२} न आसउ^{१३} गोवइ।
 लाइवि^{१४} दावानलु^{१५} गहण^{१६} मारुयसम्मुहु^{१७} होइवि सोवइ ॥८॥

[९]

दूरि निरत्थ मरण-जम्मण-जर
 उइउ सुहासुइफलु भुंजिजई
 पुणु अवलोयई भावण निज्जर।
 आसियकम्महो निज्जर किज्जइ।

(८)

परीषहको सहन करते हुए उस परमदिगंबर विद्युच्चर महामुनिको आसूबको रोकनेवाला सवर(भाव) उत्पन्न हुआ। इन्द्रिय-वृत्तियोंरूपी छिद्रोको दृढतासे ढँक दिया, जिससे नया कर्म प्रवेश भी नहीं कर सकता। जिस तरह कोई नावारूढ व्यक्ति जलमे जाते हुए सैकड़ो छिद्रोसे प्रवेश करते हुए जलको, छिद्रोको बंद करके रोक देता है, तो उसको तोरपर उतरनेसे कौन रोक सकता है? परन्तु यदि कोई मतिका अंधा मोहित (मूढ) होकर वैजा रहे (व छिद्रोको बंद नहीं करे), तो इसमे क्या भ्राति है कि वह डूबकर विनाशको प्राप्त होगा? इस हेतुसे कषायके लिए अकषाय, रागके लिए विरति, क्रोधके लिए क्षाति, अज्ञानके लिए ज्ञान, लोभके लिए संतोष, और मानके लिए अमान (मानहीनता, मार्दव भाव) रूपी निबंधन अर्थात् उपशमका उपाय करना चाहिए। उसी प्रकार अनश रस-लोलुपताका निष्कासन करनेवाला है, तथा प्रायश्चित्त प्रमादको दूर करने वाला है। इस प्रकार जो कूर्माकारके समान अपनेको संवृत करके आसूबोसे अपनी रक्षा नहीं करता, वह मानो वनमे आग लगाकर पवनके सन्मुख मुँह करके सोता है ॥८॥

(९)

फिर वह निर्जरा भावना करने लगा, जिससे जन्म, मरण व जरा दूरसे ही निरस्त हो जाते हैं। उदित हुए (कर्मानुसार) गुभाणुभ फळ भोगने चाहिये, और आसित (स्थित)

[८] १ क घ ढ संहिय, खंय। २ ख ग सह। ३ क ढ संमणु। ४ क घ ढ चितइ।
 ५. क ढक्कइ, ख ग ढक्कइ, घ ढंक्कइ। ६ ख पयं। ७ क ख ग ढ घां। ८ क घ ट मयवु।
 ९ क इ। १० घ अन्मां। ११ क घ ढ गिद्धिहि। १२ क ख ग ढ अणु। १३ क ढ पु। १४ स ग
 च लायंवि। १५ क ख ग ढ णलु। १६ क ढ णं। १७ क ढ मारुवसम्मुहु; घ संम्मुहुं।

[९] १. क ढ वइ। २. क उयउ। ३. क ञ्जइं।

'मोक्ष-बंधमेपहिं' ४ नियाणिय . कुसला कुसलमूल परिआणिय ।
 नरयसमुच्चभव' -नारयजीवहँ सेसहँ मिच्छादंसणकीवहँ ।
 दुह-सुहसंजणएहो' निज्जर अकुसल-अट्ट-रउदनिरंतर । ५
 जं निज्जरइ दुक्खु' मुणि अंगं कायकिलेस-परीसहसंगे ।
 अवरु वि जो सम्मत्तालोयणु' १ उचयसहाव-सुहासुहभोगणु ।
 रायरोसरहियउ' २ नीसल्लउ सुक्खु' ३ दुक्खु निज्जरियउ भल्लउ ।
 घत्ता—पक्कउ फलु तल्ले निवडियउ विट्ठे' ४ पुणु वि' ५ जेम-नउ लग्गइ ।
 कम्मु वि निज्जरसाडियउ पुणु वि न' ६ उवइ नाणे जो जग्गइ' ७ ॥६॥ १०

[१०]

पुणु लोयाणुरूचे थावइ मणु सुद्धायासे परिट्ठिउ तिहुयणु ।
 चउदहरज्जुमाणे' २ परियरियउ ३ तिहिं मि समीरण वलयहिं ४ धरियउ ।
 रज्जुव' सत्त लोउ हेट्ठिल्लउ पुदविउ' सत्त जि दुहहिं ५ गरिल्लउ ।
 पढमहिं' तीसलक्खनरयायर रयणप्पहहे' ६ आउ जहिं ७ सायर ।

अर्थात् अभी उद्यमें न आये हुए कर्मोंकी (उद्योतना-द्वारा) निर्जरा की जानी चाहिए । मोक्ष और बंधको विशेषना शोके अनुसार, उनके मूलकारण रूपसे निर्जरा भी कुशलमूल व अकुशल-मूल, ऐसी दो प्रकारकी जानी जाती है । नारकी जीवोंको नरक दुःख भोगनेसे और शेष अपुरुषार्थी (कलौष) लोगोंको दुःख-सुख भोगनेसे निरंतर आतं व रीद्र ध्यान पूर्वक जो निर्जरा होती है, वह अकुशल (मूल) है; तथा शरीरसे दुःखका बोध होते हुए भी कायवलेष करते हुए, परीषहको सहन करके जो निर्जरा की जाती है, और जो समताभावसे आलोचना है, (कर्मोंके) उद्य स्वभावानुसार (निर्द्वंद्व व निष्काम भाव से) जो शुभाशुभका भोगना है, एवं राग-द्वेषसे रहित नि शल्य भावसे जो सुख-दुःखकी निर्जरा है, वह भली (कुशलमूल) है । पका फल नीचे गिरकर जिस प्रकार पुनः डंठलमे नहीं लगता, उसी प्रकार जो कर्म निर्जरा-द्वारा दूर कर दिया गया है, वह भी उस व्यक्तिको पुनः प्राप्त नहीं होता जो ज्ञानमें अर्थात् ज्ञानाराधनामे निरंतर जागरूक (सावधान) रहता है ॥२॥

[१०]

फिर उसने लं कके स्वरूप (का चिंतन करने) मे अपने मनको लगाया । यह त्रिभुवन शुद्ध आकाशमे परिस्थित है । यह चौदह राजू प्रमाणवाला है । तीनों लोक वातवलयसे धारण क्रिये हुए है । अधोलोक सात राजू है । उसमे अत्यंत दुःखदायक सात पृथ्वियाँ है । पहलो रत्नप्रभामे तीस लाख नरक-बिल है, और एक सागर आयु है (१) । (दूसरी) शर्का प्रभामे

४ ख ग वंधु मोक्खु भे', व वध-मोक्खु भे' । ५ ख ग व' कुसलु मूलु । ६ घ व' मड । ७. क ख ग ह । ८ ग' भंजण' । ९. क दुक्ख । १०. क ड समता आलो' । ११ क ड उअर्य' ; घ च उववासहसु' । १२. क ड' दोसविरहिव । १३ ख ग सुक्ख । १४. घ पुणउ । १५ घ उयइ नाणि जो लग्गइ ।

[१०] १. ड' अणु । २ क घ ड' माण । ३. ख ग तिहि । ४. ख' इहि । ५. क घ ड रज्जुय । ६ ख ग च' विहि । ७ ख ग' हे । ८ क ख ग घ ड' म'हि । ९. घ ड' हेहि । १० क ड जहि ।

- ५ लक्ष्मण^६ पंचवीम नरय^{११} तउ सकरपह^{१०} आउसु सायर तिउ^३ ।
 बालुपह^६ लक्ष्मण^६ पण्णागह^{१६} उवहि मत्त नइयहि^{१०} मायर दह^६ ।
 पंकपहह^{१९} नर^{१०} लक्ष्मण^६ बह धूमहि^२ निणिण^३ उवहि^३ सत्तारह ।
 पंचविहीणु^६ लक्ष्मणु तमनामहि^६ वावीमोवहि आउसथामहि^३ ।
 नरयमहानमोहि^६ पंच वि थिय आउसु तिणिणतीस मायर क्रिय ।
 १० घत्ता—धनुह^६ सत्त पढममहि^६ हत्थसवातिणिण^३ वि जाय^३ तणु ।
 विउणउ^३ विउणउ^३ नारयह^६ सेसमहीसु^३ होइ^३ उच्चत्तणु ॥१०॥

[११]

- मज्झिमलोउ रज्जुपरिखंडिउ वांमममुदहि मयलु वि मंडिउ^३ ।
 जोयणलक्ष्मण मेरु मज्झंकिउ जंबूदीउ मत्ते दीवह^३ तिउ ।
 चउदिसु वेदिउ वलयाथार लवणणवेण विउणवित्थार ।
 हिमबंधनाइ तत्थ पडवय छह गंगापमुहउ नइउ चउदह ।
 ५ देवानरकुलहि सहुं तिम्मिय छत्तचयारि^३ भोयभूमी थिय ।

पत्तीस लाख नरक(-विल) हैं, और आयुष्य तीन सागर है (२) । तीसरी बालुकाप्रभामे पंद्रह लाख नरकविल और मात-सागरकी अवधि (आयु) है (३) । चौथी पकप्रभामे दस लाख नरकविल और दमसागर आयु है (४) । पाँचवी धूमप्रभामे तीन लाख नरकविल और सत्रह सागर आयु है (५) । छठी तम-प्रभामे पाँच कम एक लाख नरक-विल और आयुष्य वारईस सागर है (६); तथा सातवीं महातम-प्रभामें केवल पाँच नरकविल और आयु तेतोस सागर होती है (७) । पहली पृथ्वीमे शरीर सातधनुष व सवा तीन हाथ ऊँचा होता है । ओष सब पृथ्वियोंमे नारकियोंकी ऊँचाई दुगुनी-दुगुनी होती जाती है ॥१०॥

[११]

मध्यलोक विस्तारमे चतुर्दिक् एक राजू है, और साराका सारा द्वीप व समुद्रोसे मंडित है । सत्र द्वीपोंके बीचमे एक लाख योजन विस्तारवाला जम्बूद्वीप है, जिसके मध्यमे सुमेरुपर्वत है, जो कि दुगुने विस्तारवाले लवणोदधिसे चारों दिशाओमे बलयाकार वेष्टित है । वहाँ हिमबंतादि छह पर्वत हैं । गंगाप्रमुख चौदह नदियाँ हैं । देवकुल व उत्तरकुलके साथ निमित्त

११ क ख ग ड ङ ह, घ ङ हि । १२. क ड मकराहि । १३ म ग तउ । १४. क ड ङ ह, ख ग याइ, घ ङाहि, च ङाहे । १५ ख ग च ह । १६ क रह । १७. क ड ङ हि, ख ग घ च ङ ह । १८ क र ह । १९ क घ ड ङ हहि । २०. ख ग ड च ङ ह । २१ ख ग ङ ह; घ ङ ह । २२. क ख ग ड हि । २३. ख ग घ तिलि । २४ ख ग घ उवहि । २५. ख ग च पंचहि, घ पंचहि । २६ क ड हि, ख ग घ हो । २७. क ड आउमुं; ख ग घ वामही, च वामहो । २८ क तमोहि, ख ग तमोह । २९ ख ग हरड । ३०. क ड महिहि, ख ग पढमहे महिहि । ३१. ख ग घ तिलि । ३२ घ ङ ह । ३३ क घ ड ङ ह । ३४ घ महीहि । ३५ घ होउ ।

[११] १. क ङ । २ म ग क्रिय । ३ क ख ग ड ह । ४ म ग तिय । ५ म ग मडिउ । ६. व लवण । ७ क ड नित्य । ८. घ हउं । ९ घ देउत्तर, क ड कुलहिहि, म ग कुलहिहि । १०. क ड वेत्त ।

पुष्पावरविदेह^{११} सुपसत्थ^{१२} एकरूड थिउ कालु चउत्थउ ।
 भरहेरावएसु उवसपिणि^{१२} विहि मि पवत्तह^{१३} तह^{१४} अवसपिणि^{११} ।
 दाहिणमञ्जि हिमालय उवहिहि^{१३} विजयद्वेण गंग-सिंधुहि विहि ।
 भरहखेतु छक्खंडिउ छज्जह^{१७} आयारे रोवियधणु^{१८} नज्जह^{१९} ।
 इय दीवाउ खेत्तकमु विउणउ^{२०} धाइयखंडे^{२१} पुक्खरद्धय^{२२} तउ । १०
 वत्ता—अड्ढाइयदीवइ^{२३} धरेवि^{२४} मणुसोत्तरगिरि जाम नरालउ^{२५} ।
 पुक्खरद्ध धुरि परइ पुणु तिरिय-देव-संचारु विसालउ ॥११॥

[१२]

उवरिमुं पंचरज्जु परिमाणे सोलहसग्ग मुरयसंठाणें ।
 नव-नोविज्ज-विजयचउजुत्तउ उवरि^{२६} सव्वत्थसिद्धि पज्जत्तउ ।
 विणिण-पढमसग्गहि^{२७} विहि^{२८} सायर तइय^{२९}-चउत्थे सत्त रयणायर ।
 उवरिमेसु विहि^{३०} विहि^{३१} सग्गइ^{३२} तह^{३३} दस^{३४}-चउदस^{३५}-सोलह-अट्टारह^{३६} ।
 वीसोवहि-भावीस सुहायर^{३७} साणुत्तर^{३८}-नोवज्जहि^{३९} सायर^{४०} । ५
 वट्टइ^{४१} एक्कु चउहु उवरिज्जहि^{४२} तेतीसोवहि आउसु^{४३} सव्वहि^{४४} ।

और भी चार भोगभूमि क्षेत्र स्थित हैं। पूर्व और अपर (पश्चिम)विदेहमें कल्याणकारी व सुखकर चौथा काल सदैव एकरूप स्थित रहता है। भरत और ऐरावत दोनों क्षेत्रोमे कालके उत्सर्पिणी व अत्रसर्पिणो आरोंका प्रवर्तन होता है। हिमालयके मध्यसे दक्षिणकी ओर विजयाद्ध (पर्वत)से होकर सागरपर्यंत बहनेवाला गंगा व सिंधु इन दोनों नदियोसे भारतवर्ष छह खंडोमे विभक्त होकर विराजमान है, और आकारसे चाप चढ़ाये हुए धनुषके समान (अर्धचंद्राकार) गाना जाता है। इस क्रमसे द्वीपोसे क्षेत्रोकी संख्या दुगुनी है। फिर घातकी खंड और पुष्कराद्ध हैं। इस प्रकार अढाई द्वीपोको लेकर मानुषोत्तर पर्वत-तक मनुष्योका आवास है। पुष्कराद्धकी धुरी (मानुषोत्तर पर्वत) के परे तिर्यच और देवोंका विशाल संचार क्षेत्र है ॥११॥

[१२]

ऊपर पांच राजू परिमाण मुरजके आकारसे सोलह स्वर्ग तथा चार विमानोसे युक्त नव-ग्रैवेयक हैं। (इन सत्रके) ऊपर सर्वार्थसिद्धि (नामक स्वर्ग) कहा गया है। प्रथम दो स्वर्गोंमें दो सागर, तृतीय और चतुर्थमे सात सागर तथा ऊपरके दो स्वर्गोंमे दस, चौदह, सोलह, अट्टारह और बीस सागर आयु है। आरण और अच्युत तथा नव-ग्रैवेयकोमे क्रमश बाईस सागर व उससे एक-एक सागर बढ़ती हुई सुखाकर (सुखदायक) आयु है। ऊपरके चारो विमानोंमें एक

११ क वरहिदेहि, ख ग विदेह । १२ क घ ड ओस । १३ घ त्तहं । १४ क ख ग ल तह ।
 १५ घ ओस, ड उस । १६ क ख ग ड हिहि, घ उअहिहि । १७ क डं । १८ ख ग रोविउं ।
 १९ ग निं । २० घ ड णउं । २१ ख ग ड सडे, घ धादडसडि । २२ ख ग ढए, व ढडं ।
 २३ क ड दीवइ, क दीवहं । २४ ख ग मणं । २५ ख ग नरलउ ।

[१२] १ क ल रिम । २ क ड गेवउजु, घ गेवउज । ३ क ड धरि, घ धरि । ४ ख ग घ सग्गोहि, ड सग्गहि । ५ क ड विहि । ६ ख ग तइयइ, घ तयइ । ७ ख ग घ विहि । ८ ख ग विहें, घ विहि । ९ क ड डं, ख ग हिं । १० क घ तह । ११ च दह । १२ ख ग घ दह ।
 १३ घ र्हं । १४ ख ग घ च यरु । १५ ख ग आणुं । १६ घ उज्जहि । १७ ख ग घ वट्टइ ।
 १८ क ड वि । १९ क ड सल्लहि ।

इय कप्पेसु विसयसुक्खारह^{२०} वेमाणिय^{२१} हवंति^{२२} तह वारह^{२३} ।
 भावणदसपयार^{२३} अण्णे तहि^{२३} अट्ठभेय विवर एकत्तहि^{२४} ।
 जोइस पंचपयार पमाणिय एम निकाय चयारि^{२५} वि जाणिय^{२६} ।
 १० घत्ता—एक्कारु^{२७} लोयगु^{२८} थिड^{२९} विवरियत्तायाह^{३०} सुहावइ^{३१}
 दंसण-नाण-चरित्ततणु^{३२} अमलकलंकु सिद्ध^{३३} तं पावइ ॥१२॥ -
 [१३]

पुणु वि सुणिदु कम्म निकंतइ वोहिमहागुणु रयणु वि चित्तइ ।
 वालुयसायरन्मि ठिय भावइ हीरयकणिय^३ कवगु फिर पावइ ।
 इय संसारि^४ जोणिसंकिण्णइ थावरजंगमजीवपवणणइ ।
 विरलिदियवाहुल्लु^५ विरंभइ^६ पंचेदियतणु दुक्खहि^७ लडभइ^८ ।
 ५ तहि^९ मि^{१०} सिगि-पसु-पन्निख^{११} बहुत्तणु कह व पमाए^{१२} लहए^{१३} नरत्तणु ।
 लद्धए^{१४} माणुसत्ते^{१५} सुकुल्लुगमु^{१६} संपुण्णिदियत्तु^{१७} सुइसंगमु ।
 सव्भु वि दुल्लहु^{१८} लहवि विरयक्खणु धम्मु न पावइ जइ दसलक्खणु^{१९} ।

समान तेत्तीस सागरकी आयु है । इन कल्पोमे विषयमुख भोग सकनेमे समर्थ वारह वैमानिक देव होते हैं । दूसरे दस प्रकारके भवनवासी देव हैं, और व्यंत्तर एकत्र रूपमे आठ प्रकारके हैं । पाँच प्रकारके ज्योतिष देव कहे गये हैं । इस प्रकार देवोंके चार निकाय जाने गये हैं । (सत्रसे ऊपर) एक राजू-प्रमाण लोकाम् (सिद्धलोक) स्थित है, जो खुड़े हुए छतके आकारका गोभायमान है । दर्शन, ज्ञान व चारित्ररूपी गरीरको धारण करनेवाला अमल(कर्ममल रहित) व अकलंक सिद्ध पुरुष ही उसे प्राप्त करता है ॥१२॥

[१३]

फिर वह मुनीन्द्र कर्मोंको काटने हुए बोधिरूपी महान् गुणकारी रत्न (बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा) का चिंतन करने लगा—ब्रालुकामागरमे पड़ी हुई हीरेकी कणिकी इच्छा करनेपर उसे कौन पा सकता है ? इसी प्रकार नाना योनियोमे संकीर्ण तथा स्यावर व जगम जीवोसे भरे हुए इस ससारमे विकलेन्द्रिय जीवोंका अतिशय बाहुल्य है । पंचेन्द्रिय शरीर वड़े कष्टमे मिलता है । वहाँ पर भी सीगोंवाले एवं अन्य पशुओं तथा पक्षियोंका ही बहुत्व है । किसी तरह वड़े कष्टमे मनुष्यत्व प्राप्त होता है । मनुष्यत्व मिलनेपर (फिर किसी तरह) उच्च कुलपरपरा, इंद्रियोंकी पूर्णता, एवं श्रुति(शास्त्र)का सगम (सयोग) होता है । और इन सब दुर्लभ वस्तुओंको

२०. ख ग र्ह, व र्हि । २१. ख ग वडमाणिय । २२. व तह वारह, व वारहविह । २३. क ट अवरे त्तिहि, अन्ने त्तिहि । २४. क व ड एकत्तहि, च एक्कहि त्तिहि । २५. ख ग र । २६. क ड य । २७. व एक्कु । २८. व गे । २९. क ड टिट । ३०. व यार । ३१. क व ड । ३२. ख ग गुणु । ३३. क ड सिद्ध ।

[१३] १. क ण । २. क ड । ३. क ख ग व हीरइ । ४. ख ग व र । ५. ख ग व णग, व णइ । ६. व णइ, ख ग णगइ । ७. ख व च ल । ८. व भइ । ९. क व ट ट्ठियहि, ख ग र्हि । १०. क व ड । ११. ख ग त्तिहि । १२. क ड पण्डित्त-पसु सिगि । १३. क ए । १४. क व ट ट । १५. व ड । १६. क ड मुत्ति । १७. क ड मुकुल्लुगमु, व मुकुल्लुगमु । १८. व नानु । १९. ख ग हो । २०. क व ड वह ।

तो निरल्यु जन्मु वि संपत्तः वयणु व^१ विमलु^२ चक्खुपरिचत्तः ।
 धम्मु वि^३ लहेवि जो न तं पालइ^४ छारनिमित्तु घुसिणु सो जालइ ।
 घत्ता—इय चित्तिव्वरु रत्ति-दिणु दिढसम्मत्तवित्ति-व्य-संजमु ।
 भवे भवे सामिउ^५ परमजिणु होउ समाहिणु^६ महु मरणु^७ ॥१३॥

१०

[१४]

पुणु वि पुणु वि परिभावइ मुणिवरु^१ दसचिहधम्मह^२ आवज्जणपरु ।
 कयदोसेसु^३ रोसु वंचिज्जइ^४ उत्तमखमइ^५ धम्मु मंडिज्जइ ।
 जाइमयाइमाणपरिहरणउ^६ महववित्ति^७ धम्मआहरणउ^८ ।
 कायवायमण जोउ अवक्कउ^९ अज्जवभावे धम्मु तहि थक्कउ^{१०} ।
 पत्तपरिग्गहलोहु चयंतहो^{११} सउचायारपरहो^{१२} धम्मु वि तहो^{१३} ।
 सप्पुरिसेसु साहुसंभासणु^{१४} सच्चु^{१५} वि धम्मु^{१६} अहम्मविणासणु ।
 दुहमइदियनिद्धिनिरोहणु^{१७} संजमु नामु धम्मु^{१८} मणरोहणु ।
 कम्मकखयनिमित्तु निरवेक्खउ^{१९} तउ चिज्जंतु^{२०} करइ^{२१} पावक्खउ^{२२} ।
 सोलविहूसियाण लं विज्जइ^{२३} जोगु दाणु तं^{२४} चाउ भणिज्जइ ।

५

उपलब्ध करके भी यदि कोई बुद्धिमान् दगलक्षण धर्मको प्राप्त न कर सके तो उसका जन्म वैसे ही निरर्थक हुआ, जिस प्रकार चक्षुरहित निर्मल(सुंदर)मुख । और धर्म पाकर भी जो उसे नहीं पालता, वह मानो राखके लिए केगरको जलाता है । पूर्वोक्त प्रकारसे रातदिन सोचना चाहिए, और दृढ सम्यक्वृत्ति तथा दया व संयम रखते हुए यह भावना करनी चाहिए कि भव-भवमे परम जिन (अतिम तीर्थंकर महावीर) हमारे स्वामी (इष्टदेव) हों, व मेरा मरण समाधिपूर्वक हो ॥१३॥

[१४]

दशविध धर्मके अभ्यासमे तत्पर वह श्रेष्ठ यति पुनः पुनः चिन्तन करने लगा—दोष (अपराध) करनेवालोके प्रति रोषका त्याग करना चाहिए । उत्तम क्षमासे धर्मको अलंकृत करना चाहिए । जातिमद आदि मानका अपहरण करनेवाली मार्दववृत्ति धर्मका आभूषण है । काय, वाक् और मनका अवक्र (निष्कपट, सरल)-योग आज्ञवभावमे ही होता है, और उसीमें धर्म स्थित रहता है । पात्र आदि परिग्रहके प्रति लोभ त्यागनेवाले तथा शूद्धाचारपरायण व्यक्तिका ही शौच धर्म सच्चा होता है । सत्पुरुषोंके साथ साधु संभाषण ही सत्यधर्म है, जो अधर्मका विनाश करनेवाला है । दुर्दम इन्द्रिय-लोलुपताका निरोध करना यह संयम नामका धर्म है, जो मनका निग्रह करनेवाला है । कर्मक्षयके निमित्त निरपेक्ष (निष्काम) भावसे तप का संवय करनेवाला व्यक्ति ही पापका क्षय करता है । शीलसे विभूषित

२१ क ख ग ड वि । २२ प्रतिमोमे 'विमल' । २३ क ड में 'वि' नहीं । २४. क ख ग ड ई । २५. क ड 'हिय' । २६ घ मरणुज्जमु ।

[१४] १ क ड जयं । २. क ड दहविहयम्महो, घुं धम्मह । ३ क ड संसु । ४. क घ ड च दडि । ५ क ख ग ड लमइ । ६ कुं ज्जइ । ७. ख ग णइ, घ ड णउं । ८ क ख ग ड चित्तु । ९ क ड धम्मु आहरणउ, घ णउं, ख ग णड । १० क उ । ११ क ड पत्तु । १२ क घ ड यारु पं । १३ क तहु, ड तहु । १४ क ख सव्वु, च सच्छु । १५. क वम्म । १६ ख ग वम्म । १७ क वि ; ख ग ड किं । १८ क ख ग ह । १९. घ किं । २०. ख ग घ सो ।

- १० एहु^{२१} महारउ इय मइ मुचइ^{२२} परिवजियकिचिउ^{२३} पवुवइ ।
 नवविह-त्रंभचेरु^{२४} जो^{२५} रकखइ^{२६} चडेवि धम्मि सिववहुय^{२७} कडक्खइ^{२८} ।
 घत्ता --^{२९} दसलक्खणधम्ममाणुगउ^{३०} जीउ न जाम कम्म^{३१} निकंदइ^{३२} ।
 मिच्छादंसणविणडियउ^{३३} सुद्धचरित्ति ताम कउ नंदइ^{३४} ॥१४॥

[१५]

- अणुवेक्खाल एम भावंतहो निम्मलझाणे चित्तु थावंतहो^२ ।
 देहभिन्नु अप्पाणु गणंतहो निरवहि-सासयसोक्खु मुणंतहो^३ ।
 पत्तपरीसहदुदववसायहो विज्जुच्चरहो विसुक्कसायहो ।
 जिह जिह^४ रुहिरु पियइ भूयावलि 'तिह तिह मुणि मणणइ गय भवकलि'^५ ।
 मासु वि तडयडतु तुट्टंतउ पेक्खइ^६ कम्मोवहि खुट्टंतउ ।
 हइइ^७ कडयडंत^८ खज्जंतइ जाणइ^९ कट्टाइ व भज्जंतइ ।
 एम समाहिप्र^{१०} मरेवि सुसत्तउ^{११} गउ संवत्थसिद्धि^{१२} संपत्तउ ।

व्यक्तियोंको जो योग्य दान दिया जाता है, उसे त्यागधर्म कहा जाता है। 'यह मेरा है' इस मतिको छोड़ देना परिवर्जित-कचित्त्व अर्थात् आर्किकन्य धर्म कहलाता है। जो नव-विष ब्रह्मचर्यका रक्षण करता है, वह धर्म(रूपी पर्वतके शिखर) पर चढ़कर शिववधूको कटाक्षसे देखता है, अर्थात् मोक्षलक्ष्मीसे परिणय करता है। जन्तक जोव दशलक्षण-धर्मोका अनुगामी होकर कर्मोका उन्मूलन नहीं करता, तबतक मिथ्यादर्शनसे छला हुआ वह जीव शुद्ध चारित्र अर्थात् शुद्ध आत्मस्वभावमे लीनतामें कैसे आनवित हो ? ॥१४॥

[१५]

इस प्रकार अनुप्रेक्षाओकी भावना करते हुए, निर्मल(धर्म)ध्यानमे अपने चित्तको स्थापित करते हुए, अपने आत्माको देहसे भिन्न मानते हुए, निरवधि-निःसोम शाश्वत(मोक्ष) सुखको समझते हुए अर्थात् उसीका ध्यान करते हुए, एवं आये हुए परीषह-दु खके वशीभूत न होनेवाले तथा कषायरहित विद्युच्चर महामुनिका जैसे-जैसे भूतोका वह समुदाय रुधिर पान करता, वैसे-वैसे मुनि अपना भवकलह अर्थात् ससारमे बार-बार जन्म-मरणका झगडा, मिटा हुआ मानता। मासके तड-तड करके टूटनेको वह महामुनि कर्मोपाधिके खड-खंड होनेके समान देखता; और कड़-कड़ करके खाये जाते हुए हाडोको वह भग्न किये जाते हुए काष्ठादि पदार्थोके समान जानता। इसप्रकार वह शुद्धसत्त्व अर्थात् शुद्धात्मा मुनि (शुद्धभावोसे)

२१ क घ ड च एउ । २२ क 'इ, घ मुज्जइ । २३ क ड 'किचत्तु । २४ क घ ड णवविह वभं । २५ क जे, ड ज । २६ क 'इ । २७ र ग वहुव । २८ क ड व्हं । २९ र ग ण गइ, घ 'णु गइ । ३० क ड कम्म । ३१ घ 'दंसणि विणं, ख ग 'निवाडियउ ।

[१५] १ ख व चित्त । २ र ग वाव । ३ क देवं; क ड 'भिण्णु । ४ र ग 'मोक्क-मणंतहो । ५ घ 'परीसहं, क घ ड 'अविसायहो । ६ र ग जह जह, घ जिह जिह । ७ घ 'इ । ८. ख ग तहं, तह, व तिह तिह । ९ र ग मणइ, घ मणइ । १० क र ग ड 'नलि । ११ क घ ड पेक्खनि । १२ क ग ड 'इ, र हइय । १३ क ड 'डति । १४ र ग व ड 'इ । १५ क घ ड 'विणु सुत्तउ । १६ क स व्वट्टं ।

हृत्थपमाणु देहु जायउ तहिँ
 जत्थहो चइवि जीउ नासियरइ^{२०}
 इयकमेण आरिसे जिहँ^{२१} जाणिउ^{२२}
 घत्ता—सोयारनरहँ तहँ^{२३} पाढयहँ
 सोक्खपरंपरु^{२४} परमफलु

सायर तिण्णितीस^{१७} आउसु जहिँ ।
 एक्कभवेण लहुइ पंचमगइ ।
 जंबूसामिहो^{२३} चरिउ^{२५} समाणिउ^{२६} । १०
 चाउवण्णसंघसमदिट्ठिहिँ^{२७} ।
 मंगलु^{२९} देउ वीरु जिणु गोट्ठिहिँ ॥११॥

इय जंबूसामिचरिणु सिंगारवीरे महाकव्वे महाकइत्तेवयत्ते^{३०}—सुयवीरविरइए वारहभणुपेहाउ^{३१}
 भावणाए विउज्झारस्स^{३२} सव्वट्ठिसिद्धिगमणं नाम^{३३} एयारसमो
 संधी समत्तो^{३३} ॥संधिः ११॥

समाधिमरण करके सर्वार्थसिद्धिको प्राप्त हुआ । वहाँ उसका हस्तप्रमाण देह हुआ, और तेतीस सागरकी आयु, जहाँसे च्युत होकर जीव समस्त रति अर्थात् राग (एवं द्वेष) का नाश करके एक बार ही जन्म लेकर पंचमगति अर्थात् मोक्षको पा लेता है । इस क्रमसे आर्ष-परंपरासे जैसा जाना, वैसा जंबूस्वामी चरित्रको पूरा किया । श्रोता पुष्टियोंकी तथा पाठकोंकी और सम्यग्दृष्टियोंके चतुर्वर्ण संघकी गोष्ठिको लिए महावीर भगवान् सौख्य परंपरापूर्वक परमफल (मोक्षप्राप्ति) रूपी कल्याण प्रदान करे ॥१५॥

इस प्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित जंबूस्वामीचरित्र नामक इस शृंगार वीर रसात्मक महाकाव्यमें वारह अनुप्रेक्षाओंकी भावनासे विद्युच्चरका सर्वार्थसिद्धि-गमन नामक एकादश संधि समाप्त ॥ संधि ११ ॥

१७ ख ग घ तिचितीस । १८. क ङ हुँ । १९ ख ग जीव । २०. क रइँ । २१. ख ग जहिँ, ङ जिहँ । २२. घ ङ उँ । २३ क ग ङ सामिहिँ; ख सामिहिँ, घ सामिहो । २४ क उँ । २५. क ख ग सम्माणिउ, घ बखाणिउ, ङ णिउँ । २६ ख ग घ तहँ । २७. क वण्णहो संघहो समं, घ समदिट्ठिहँ; ङ वण्णसंघहो समं । २८ घ प्रति यहाँ समाप्त । २९ ख मंगल । ३० क प्रति यहाँ समाप्त । ३१ ङ पेक्ख । ३२ ङ सव्वत्थं । ३३ ख ग एयारसमो संधिपरिच्छेउ सम्मत्तो, ङ एयारह्मा संघो ।

प्रशस्ति

वरिसाण सयचउके सत्तरिजुत्ते जिणेदवीरस्स ।
निठ्वाणा उववण्णे विक्रमकालस्स उप्पत्ती ॥१॥
विक्रमनिवकालाओ छाहत्तरंसेससएसु वरिसाणं ।
माहस्मि सुद्धपक्खे दसस्मि दिवसस्मि संतस्मि ॥२॥
सुणियं आयरियपरंपराए वीरेण वीरनिद्धिं ।
वहुलत्थपसत्थपयं पवरमिणं चरियमुद्धरियं ॥३॥
इत्थेव दिणे मेहवणपट्टणे वड्डमाणजिणपडिमा ।
तेणावि महाकइणा वीरेण पयट्ठिया पवरा ॥४॥
बहुरायकज्ज-धम्मत्थ-कामगोट्टीविहत्तसमयस्स ।
वीरस्स चरियकरणे एक्को संवच्छरो लग्गो ॥५॥
जस्स कइ देवयत्तो जणणो सच्चरियलद्धमाहूपो ।
सुहसीलसुद्धवंसो जणणी सिरिसंतुआ भणिया ॥६॥
जस्स य पसणवयणा लहुणो सुमइ सहोयरा तिण्णिग ।
सीहल्ल लक्खणंका जसइ नामे त्ति विक्खाया ॥७॥
जाया जस्स मणिट्ठा जिणवइ पोमावइ पुणो वीया ।
लीलावइ त्ति तइया पच्छिमभज्जा जयादेवी ॥८॥
पढमकलत्तंगरुहो संताणकथत्तविडविपारोहो ।
विणयगुणमणिनिहाणो तणओ तह नेमिचंडो त्ति ॥९॥

वीर जिनेंद्रके निर्वाण प्राप्त होनेके चार सौ सत्तर (४७०) वर्ष होनेपर विक्रम काल (वि० संवत्) की उत्पत्ति हुई ॥१॥ विक्रम नृपके कालसे दस सौ छिहत्तर (१०७६) वर्ष होनेपर माघ मासमे शुक्लपक्षमे दशमीका दिन आनेपर वीर (कवि) ने वीर भगवान्के द्वारा निर्दिष्ट प्रचुर अर्थ और प्रशस्त पदोसे युक्त इस श्रेष्ठ चारित्रको आचार्य परंपरासे सुनकर उदार किया ॥२-३॥ इसी दिन मेघवनपत्तनमे उसी महाकवि वीरने वर्द्धमान-जिनकी श्रेष्ठ प्रतिमा प्रतिष्ठित की। बहुत-से राजकार्य एवं धर्म, अर्थ और कामगोष्टीमे विभनत समझवाले योग कवि-को इस चारित्रको रचनेमे एक सवत्सर लगा। शुभशील, शुद्धवंग, सच्चारित्र व लज्ज माहात्म्य को इस देवदत्त जिसके पिता थे, और जिसकी जननी श्री सनुआ कही गयी है, जिनके प्रथम-मुखवाले सद्वृद्धिमान् तीन छोटे सहोदर भाई थे, जो सीहल्ल, लक्षणक और जगई नामोंमे विख्यात थे; जिसकी पहली इष्ट भार्या जिनमती, दूसरी पद्मावती, तीसरी लोलावती और चौथी अंतिम भार्या जयादेवी हुई; और जिसकी पहली पत्नीके गर्भमे मंतानोंके लिए समृद्धिन्पी विदप-का प्ररोहरूप, विनयगुणरूपी मणिका निधान नेमिचंद्र नामक पुत्र हुआ; ऐसा यह योग कवि

सो जयड कई वीरो वीरजिणंदस्स कारियं जेण ।
 पाहाणमयं भवणं पियरुद्देसेण मेहवणे ॥१०॥
 अह जयड जसनिवासो जसनाओ पंडिओ त्ति विक्खाओ ।
 वीरजिणालयसरिसं चरियमिणं कारिय जेण ॥११॥

॥ इय जंबूस्वामिचरित्तं समत्तं ॥



जयवंत हो, जिसने अपने पिताको उद्देश्य करके अर्थात् अपने पिताकी स्मृतिमें मेघवन पट्टणमें वीरजिनेन्द्रका पाषाणमय भवन बनवाया; और यशका निवास एवं 'यश' इसी नामसे विख्यात वह पंडित जयवत हो जिसने वीरजिनालयके समान इस चारित्रको लिखवाया (अथवा रचना करनेकी प्रेरणा दी ?) ॥४-११॥

इति जंबूस्वामी चरित समाप्त ।



जम्बूसामिचरिउ संस्कृत टिप्पण

§ १ ये टिप्पण 'जम्बूसामिचरिउ' की जयपुरके जैन-शास्त्रभण्डारीसे उपलब्ध ख एवं ग प्रतियों तथा जम्बूस्वामिचरित्र-पंजिका (पं) इन तीन प्रतियोंपर-से संकलित किये गये हैं । ख एवं ग प्रतियोंमें ये टिप्पण ऊपर-नीचे, बायें-दाहिने इन चारो हाशियोंपर मूलके केवल एक शब्दके ऊपर = का चिह्न लगाकर प्रतिकी पंक्ति सहायाका उल्लेख करते हुए लिखे गये हैं, फिर वह टिप्पण चाहे उसी शब्दपर हो, शब्दांशपर हो, किसी पादांशपर हो, पूरे पादपर हो, अथवा पूर्ण पंक्तिपर । इन प्रतियोंमें मूल शब्दका उल्लेख नवचित ही टिप्पणके साथ किया गया है, जेव सर्वत्र उपयुक्त पद्धतिके अनुसार केवल = चिह्नसे ही काम चलाया गया है । पंजिकामें इसके विपरीत सर्वत्र मूल शब्द, अथवा एक साथ यथावश्यक कई शब्दोंका उल्लेख करके टिप्पण लिखे गये हैं । इस पद्धतिसे टिप्पणो व मूल दोनोंको समझनेमें अत्यधिक सहायता मिली है । तीनों प्रतियों (ख ग पं) का पूर्ण परिचय भूमिकामें 'जम्बूसामिचरिउ' की सम्पादन सामग्रीके अन्तर्गत दिया गया है ।

§ २ टिप्पणोंकी भाषा अधिकांशतः सरल-संस्कृत है, जो स्थान-स्थानपर संस्कृत व्याकरणकी दृष्टिसे शुद्ध नहीं है । संयुक्त व्यञ्जनोपे मध्यवर्ती एवं अन्त्य पंचमाक्षरों इ, ब्र, ण, न् एवं म् इन सबके स्थानपर सर्वत्र अनुस्वार () का प्रयोग किया गया है, जैसे सम्वन्ध > संबंध, अङ्ग > अंग, पञ्च > पच, दण्ड > दंड कार्यम् > कार्य इत्यादि । ऐसी कुछ अन्य विशेषताएँ भी हैं, जिससे टिप्पणोंकी भाषाको सामान्यरूपसे अपभ्रंश-संस्कृत कहा जा सकता है । टिप्पणोंकी भाषाका कुछ परिचय टिप्पणोंके पाठभेदोंसे भी प्राप्त किया जा सकता है । इस प्रकारकी भाषाका प्रयोग अनेक प्राचीन जैन-हस्तलिखित ग्रन्थोंमें हुआ है ।^१

टिप्पणोंके सम्पादन में 'मूर्तिदेवो जैन ग्रन्थमाला'के प्रवान-सम्पादकोंके निर्देशानुसार टिप्पणोंकी भाषामें निम्न दो प्रकारके परिवर्तन सम्पादकने किये हैं । एक तो जहाँ-जहाँपर मूलमें पर-सवर्ण (वर्ण का पचमाक्षर) का प्रयोग नहीं मिलता, जैसा कि उपयुक्त कुछ उदाहरणोंसे स्पष्ट है, ऐसे स्थलोपर सर्वत्र पर-सवर्ण जोड़कर शुद्ध-संस्कृतके अनुरूप बना दिया गया है; एवं दूसरे जहाँ-जहाँ पूर्ववर्ती र् के साथ संयुक्त अवस्थामें क्, ग्, ञ्, ष्, द्, ए, द्, म्, य् एवं व् का द्वित्व मिलता है, जैसे तर्क > तर्कों (१.१३) दुर्ग > दुर्ग (१.१२.६) पूर्वोपाजित > पूर्वोपाजित (२.५.६) वर्ण > अमरकतवर्ण (१.११.३) निर्दलित > निर्दलित (४.२२.५) वलीवर्द > वलीवर्द (७.६.२२) सपं. > सप्यं (३.७.१२) सममित > समपित. (९.१३.१२) गर्भो > गर्भो (४.१३.१६) मर्मदा > मर्मदाः (४.१५.११) सौवर्म > सौवर्म. (११.१२.३) कार्य > कार्य (३.१३.५) द्रोणाचार्य. > द्रोणाचार्यः (८.२.९) गीर्वाणो > गोश्वर्णो (२.३.९) पर्वत > कुश्लपर्वत (५.१०.११) इत्यादि इत्यादि, ऐसे समस्त स्थलोपर 'र्'के परवर्ती संयुक्त व्यञ्जनके द्वित्वका लोप कर दिया गया है । इनके अतिरिक्त अन्य कहीं कोई संशोधन-परिवर्तन सम्पादकने अपनी ओरसे नहीं किये हैं । जहाँ किसी ईपत् संशोधन या अर्थ स्पष्ट करनेके लिए कोई सूचना देनेकी अनिवार्यता प्रतीत हुई है, वहाँ उसे [] के भीतर लिखाकर मूलसे स्पष्टतः अलग रखा गया है । कुछ उपयोगी पाठभेद भी मिले हैं, उनका यथास्थान मूल अपभ्रंश पाठमें उपयोग कर लिया गया है, और अन्य पाठभेदोंको टिप्पणोंके पाठभेदोंमें सुरक्षित रखा गया है । टिप्पणके द्वारा सूचित अर्थ जहाँ मूलके शब्दार्थके अनुकूल नहीं हैं, ऐसे स्थलोपर परिशिष्टमें विचार किया गया है । मूल अपभ्रंश-पाठके संशोधन एवं हिन्दी

^१ दृश्यः : डॉ० बी० जे० साडेसरा-द्वारा सम्पादित Lexicographical notes on Jan Sanskrit.

अनुवादमें ये टिप्पण बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी सिद्ध हुए हैं, इस कारण समस्त टिप्पणोंको उनके मूलरूपमें यहाँ प्रकाशित किया जाता है ।

टिप्पण सन्धि-१

म० प० २ सुतराणि छंकारा— (ख पं) आदित्यजलकणालम्, (ग पं) तरणिरादित्यस्तस्य तनु शरीर तस्या लभनन्तवव ते त्रिन्दवदव जलकणास्तेषां छङ्कारास्ते जयन्ति । कथं पुनरचेतनविन्दुछङ्कारा वन्द्यन्ते ? जगद्वन्द्यतोयैकरदेवाङ्गसंपर्कत् तद्विन्दूना वन्द्यत्व जातम्, तेषामपि वन्द्यत्वमुपपद्यते । इष्टं च भगवदङ्गसंपर्कत् पुष्पगन्धोदकादीना वन्द्यत्वम्, पुष्प त्वदीयचरणात् [चं ?] नपीठयोग्य भवति, देव जगत्त्वयस्य अस्पृष्टमन्यशिरसि स्थितमप्यतस्ते को नामसाम्यमनुशास्ति खगेश्वराद्यैरित्यभिधानात्, 'तरणिल- गतेविन्दुछंकारा' इत्युपलक्षणमेतत्, तेन त्रिभुवनान्विपतिसमाश्रितत्वेन तरणिवत् त्रिभुवने सचरता निर्मल- तोयविन्दूनां भगवदीयाऽमलज्ञानादिवदप्रतिहतगतित्वमुक्तम्, (पं) [उक्तं च]

सपूर्वमण्डलशशाङ्ककलाकलाप-शुभ्राणुणास्त्रिभुवन तव लङ्घयति ।

ये सश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेक कस्तासिधारयति सचरतो वषेष्टम् ॥

—भवता० स्तोत्र श्लोक १४

म० प० ६ अण्विच्छिद्य 'कोयणो जाओ - (ग पं) अस्य व्याख्यानम् : कथं तत् ? परिकल्पितानि सहस्रसंख्यायाः परिरुह्यातानि यानि लोचनानि तैः परिकल्पितलोचनेर्दृश्यो जातः, अपरिपूर्णलोचनो जातः, सहस्र[ाणा]मपि लोचनानामक्षणलक्षणरूपावलोकने एव प्रतिबलम् धन्यावयवहृत्पावलोकने तद्व्यापाराभावात् इन्द्रियान्तरासम्भवात् च तदवलोकने दुस्त्वत्वं तस्य सजातम्, (प.) उक्तं च -

'रूवालोचणे रूवासत्तद्' तित्ति न पत्त पुरंदरनेत्तद् ।-

ब्रह्मि निवडियद् तद्दि चिय गुत्तद् दुब्बलगा इव पकि चहुट्टद् ॥'

(ग पं) जिनस्य शरीरेऽष्टोत्तरसहस्रलक्षणानि, इन्द्रशरीरे सहस्रलोचनानि सर्वावयववलोकने असमर्थानि इति नयनावलोकने दीर्घ्यं दारिद्र्यं जातम्, (पं) उक्तं च -

'अट्टोत्तरसहासलखणधर इवोऽपि सहसनयणु' इति प्रसिद्धम् ।

म० प० ७ भमिर...द्विपसकं - (ग पं) भ्रमणशोलमुज्वेगभ्रमितज्योतिश्चक्रान्तरजनी-दिवसशङ्केति यथा भवति तथा (पं) क्षणे क्षणे जनिनरात्रि-दिवसशङ्काम्, इन्द्रस्य हि सहस्रमुखविभुर्वणा कृत्वा तुल्यतोऽनवरतं करणाङ्गहाराविचिधानेन भ्रामितज्योतिश्चक्रेण दिवसे स्वस्थानच्युतेन रात्रिशङ्का क्रियते, रात्रौ स्वस्थानच्युतेन दिवसशङ्केति, अथवा क्षणे क्षणे स्वस्थानच्युते क्षेत्रान्तरगतं. रात्रिशङ्का, पुनः स्वस्थाने जायते दिवसशङ्केति, ख जोइस् > शरीरदीप्या ।

म० प० ९ झगान्क "जहस्—(ग) वगान्मी होमितः रति > रमणमुक्षम्, विपयसेवनमुप यस्माद्येन वा, अथवा रते [] नित्रमायाया सुख यस्मात् रतिमुख काम, रडसुहो—(प) रति > रमणात् विपयसेवनात् सुख यस्मात् अथौ रतिमुख काम ।

म० प० १२ गद्विषण्णं सासिडं—(ग प) गृहीतमन्यूलशरीररूपात् व्यतिरिक्त शरीररूपयुगलं येन सः, किमर्थम् ? त्रिजगदनुवासितुं सन्मार्गे प्रवर्त्तयितुम्, न हि रूपत्रयविधानव्यतिरेकेन त्रिजगदनुवासितुं शक्यते ।

म० प० १३ रेहद्—(ग पं) शोभते ।-

[१. १] १ पं वा । २. पं गतित्वमुष्णत्व (मुषत्व ?) । ३. पं ऽनवरत । ४. पं च्युते । ५. पं आगते दिवस । ६. पं रेकेण । ७. पं सासिडं ।

म० प० १४ फणिणो "कणकडणो—(ग पं) धरणेन्द्रस्य विद्युताछिद्रि ["छिद्रि]त. आयाहोद्भूतनव-
जलवर इव मस्तकचूडामणिकूर्वरित. फटाटोप फटासघातो वा^१

आदिदेवं स्तुत्वा पार्श्वनाथस्तवनानन्तर वद्धमानस्वामिन. स्तवनकर्तुमुत्थितः, तत्र क्रमोल्लङ्घनेन
स्तवनकरणं किं कारणम् ? ग्रन्थकारस्य वद्धमानस्वामितीर्थे रत्नत्रयलाभः । उक्तं च—

जस्मन्तियं धम्मपह् नित्यच्छे तस्सतिय वेणुइय पउंजे ।

काएण वाचा मणसा वि णिच्चं सक्कारए त सिरपंचमेण ॥

१.१.२ पार्श्विजिह्व कृह—(ख ग पं) यथा कथा आगमे प्रसिद्धा तथैव प्रारब्धा ।

१.१.३ वद्धमाणु—(ग पं) वद्धमाननामा, तिष्ठु—(ग पं) संसारसागरोत्तरणहेतुभूतत्वात् तीर्थमा-
गम, उत्तमक्षमादिवर्मचारित्र्य च, जगे वद्धमाणु—(ग प) जगति सर्वोत्कृष्टं ।

१.१.४ जन्माहिसेउ—(ग प) जन्माभिपेक्षः; सेउ—(ग पं) सेतुवन्व ।

१.१.५ घाह—(ग पं) निष्कम्पः, निश्चासिथ "वीर—(ग पं) निर्नागिता "आशङ्का वाङ्का" येन,
हस्ते हि "अष्टयोजनायामदैर्घ्यं, योजनैकमुखाऽष्टोत्तरसहस्रकलशान् गृहीत्वाऽऽन्तर भगवच्छरीरमवलीकृततः
इन्द्रस्य शङ्कोरगन्ना एतावता जलप्रवाहेन भगवान् "बाहयित्वा नीयते लभन् इति शङ्का चरणान्नेन मेरुचलना-
त्प्रहिता ["हस्ता] निर्नागिता ततो भगवत. शङ्कोर वीर इति नाम ["मं ?] कृतवान् [कृतम् ?]

१.१.६ धामु—(ग पं) तेज, लोथा "धामु—(ग पं) लोकालोकस्थिति ।

१.१.७ जयसासणु—(ख ग पं) जगत शासनं सम्मार्गे प्रवर्त्तनात्, साणु—(ग पं) दाता रक्षक^१
इत्यर्थः ।

१.१.८ भुइ—(ख पं) राख वा भस्म, भुइकथ—(ग पं) भस्मीकृत, कङ्कोद्वधु—(ग पं) "धन-
बन्धुरादित्य इत्यर्थः; बंधु—(ख पं) चन्द्र वा रविः ।

१.१.९ चरकमला "मुक्ति—(ग प) वरा चासी कमला च लक्ष्मोरित्यर्थस्तथा आलिङ्गिता, चासी गोमा-
वतीमूर्तिः विगुह्यामस्वरूपं शुद्धसक्तिकगङ्गाया^१ ["सकागं ?] शरीरस्वरूपं च यस्य, साहिय परममुक्ति—
(ख पं) साधितं मुक्ति मोक्षं वा, परममुक्ति—(ग पं) परममुक्ति सम्पत्कवाद्यष्टगुणापेता सिद्धावस्था ।

१.१.१० वयणामंय "सत्तु—(ग पं) वचनामृताश्वासितसकलप्राणिनय ।

१.१.११ तित्वंकरु (ग पं) तीर्थभागम उत्तमक्षमादिलक्षणो धर्म चारित्रं च, करोति परंपामग्रे प्रति-
पादयति स्वयमनुतिष्ठतीति "चेत्तीर्थकर, सासधपयपहु—(ग पं) शाश्वतपदं मोक्ष तस्य प्रभु स्वामी,
पन्था वा मार्ग, सम्मइ—सन्मति नामा ।

१.१.१२ सम्मइ—(ग पं) गोमनामति^{१७} केवलज्ञानम् ।

... ..

१.२ १ भंद्मइ—(ख) स्वहामति, (ग पं) स्वल्पमति. "घनमतिश्च निपुणमतिरित्यर्थः; सविणयगिरु—
(ग पं) सविनयवचनः ।

१.२ २ जिघइ—(ग पं) जौगति उद्यत्तरित्त इत्यर्थः; न जिघइ—(ख पं) न पश्यति ।

१.२ ३ नारुइ—(ख ग पं) न योग्यो भवति ।

१.२.४ पयइ दोसल्लु—(ख पं) असद्भूतदोषोद्भावन्^१, लल्लु (ख पं) दुर्जनः ।

८ प विद्युत् । ९ प वा तत् । १० पं आसंकिना । ११. पं द्वादशगोजनत्रयाणकलणं । १२ पं बाहि-
यित्वा । १३ पं रक्षक । १४ पं "रादित्येत्तरर्थः । १५ पं "शकाश । १६. ग च तीर्थ" । ७. ग मति ।
[१.२] १. पं मतिश्चैन्नरैर्तदं निपुणं । २. पं जाग्रति । ३. पं "ज्ञानम्" ।

- १.२.५ परगुण—परंपरए—(ग पं) परेषां गुणास्तेषां परिह्यारस्य परंपरया सातत्यं तथा; कथंभूतया ? परए—(ख ग पं) परया परमप्रकर्षं प्राप्तया; ओसरड—(ग पं) मम काव्याग्ने मा भूत्, हयासु—(ग पं) हतवाञ्छः मदीयं काव्ये दोषाणामभावात् तदीया दोषोद्भवनाञ्छा हता ।
- १.२.६ विडसहो—(ग पं) पण्डितस्य, मञ्जस्यहो—(ग पं) गुणान् गुणरूपतया, दोपान् दोषरूपतया च परिभावयतो मध्यस्थस्य ।
- १.२.७ परिडंछिदि—(ग प) विनाश्य ।
- १.२.८ एकग्रथु—(ग पं) काव्यकर्तृत्वमेव एकः कस्यचित् गुणः, पउजेभ्वइ निडणु—(ग प) व्याख्यान-यितु निपुणः । अत्रार्थे दृष्टान्तमाह ।
- १.२.९ एङ्कु जे—जणइ—(ग पं) एकः सुवर्णपाषाण हेमं स्वर्णं जनयति, न तस्य परीक्षा कर्तुं समर्थः; अण्णेककु—कुणइ—(ग पं) अग्नेककु—कसवट्ट. रोयपाषाणस्तस्य सुवर्णस्य गुणदोषपरीक्षा करोति ।
- १.२.१० डहयमइ—(ग पं) करण—व्याख्यानोभयमतिः ।
- १.२.११ सुइ सुहयरु—(ख ग पं) श्रुतिसुखकरः, फुरंतु मणे—(ग पं) चेतसि परिस्फुरन् प्रतिभासमानः, कञ्चस्थु निवेसइ—(ख ग पं) काव्यार्थमारोपयति ।
- १.२.१२ रस—(ख) शृङ्गार-हास्यादि, रसमावहि—(ग) रसा नत्र शृङ्गारादय, भावादिचतोद्भवा चल्हा[ल्हा]सास्तैः, रसमावहि—(पं) रसा नवः

शृङ्गार-नीर-श्रीभस्-हास्य-रौद्र-भयानकाः ।

करुणाद्भुत-शान्ताश्च नव नाट्ये रसाः स्मृताः ।

इति वचनात् । चित्तोद्भवैरुल्लासविशेषैः—

हावो मुखविकार. स्याद् भावः स्याच्चित्तसम्भव ।

विलासो नेत्रजो ज्ञेयो विभ्रमो भ्रमूगान्तयो—रित्यभिधानात् ।

- १.२.१३ सो चेत्र—करइ—(ग प) स्वयंभूसमानः पुरुषः, गव्वं—अहङ्कारम्, यदि न करोति, तहो कज्जे—धरइ—(ग पं) तस्य निमित्तं पवनो वातबलयरूपः, एवदिव पुरुषरत्न त्रिभुवने तिष्ठतीति मत्वेति त्रिभुवनं धरति ।
- १.२.१४-१५ अकहिउज—जाणहि—(ग पं) अकथ्यमानोऽपि कविकचौरश्च लक्ष्यते, कै लक्षते ? बहुजाणहि—प्रचुरज्ञानवद्भिः, किं विशिष्टोऽपि ? कथं अण्णवण्णेत्यादि—कृताग्र्यवर्णपरिवर्तमानोऽपि । कविः कृताग्र्यवर्णपरिवर्तनं. अकारादिवर्णगञ्जितवर्णरचनाविशेष, चौरस्तु कृतब्राह्मणादिपरिवर्तनरूपविशेषः; कैः कृत्वा लक्ष्यते ? पयद्वचसंषाणहि—(ग पं) सुकवि प्रकटैः प्रसन्नोदार-गम्भीर-सुखिल-रसादय काव्यवच-सधानैः, (पं) सधिविधानैश्च, चौरस्तु प्रकटैर्बहुवचसंधानैः लक्ष्यते ।
- १.२.१ वावडेण—(ख) व्याप्त्येन, सामग्गि—जडेण—(र) एव गुणविशिष्टमहाकवीश्वरान् काव्यवच-कृतम्, मया जडेण—मूर्खेण कै [किम् ?] ।
- १.२.२ परिककित्—सवसथु—(ख पं) सहदशालक्षणेनार्थेन वर्तत इति सदर्थार्थः यः प्रदीप एव मया परिककित्, परिज्ञात, न तु शब्दशास्त्राणि अष्टौ व्याकरणानि, सुत्तु—सूत्रार्थम्, सुत्तु वि—वत्तु—(ख पं) सूत्रमपि येन वस्त्रं निष्पाद्यते तत्परिज्ञातम्, न तु शब्दमिद्विवन्धनव्याकरणसूत्रम्, चतुष्काहगतकृत-सूत्राणि ।

४. पं प्रकर्म । ५ ग एवकः । ६. ग व्याख्यातुर्भवः । ७. ग श्रोत्रं । ८ पं अकारादि ।

- १३.३ वगगड सुणिड—(ख) वने गज एवं श्रुतम्; वगगड 'सुणिड—(ग पं) स्वच्छन्दो घण्टारहितश्च वनगज एव मया श्रुतः, न तु सहस्रन्दो^१ समात्रा प्रस्तारेण निघण्टो^२ नाममालाऽमरकोशादिर्न^३ श्रुतः^४, गोरस 'सुणिड—(ग पं) तत्र गोरसविकारो दधिविकार एव श्रुतम्, विज्ञातम्, न तु तर्को युक्तिशास्त्रं कन्दली किरणावली अष्टसहस्रो^५ प्रमेयकमलमार्त्तण्डादिकं न श्रुतम्, न ज्ञातम् ।
- १३.४ महकृद् 'सेड—(ग पं) समुद्रबन्ध रामायणे एव श्रुतः. न तु सेतुबन्धो नाम महाकविना प्रबन्धेन [प्रवरत्नेन ?] राज्ञा विनिबद्धः काव्यभेद काव्यविशेषः, सेड—(ख) समुद्रबन्धः ।
- १३.५ गुण्य 'सुयनामकरण—(ग पं) गुणः स्वजने एव वृद्धिश्च सुतनामकरणे एव श्रुतः; न तु 'नाम्यन्तयोर्दो^६ 'तु विकरणयोगुणः' इति 'वृद्धिरादौ सणे इति (?) च एते गुणवृद्धौ व्याकरणे प्रसिद्धे^७ ज्ञाते; चारित्तवित्तु—(ग पं) वित्तं चारित्र्यमेव ज्ञातम्, न तु वृत्त एकाक्षरादि वृत्तजातिविशेषः; पयवंपुचरणे—(ग पं) पयसः पानीयस्य बन्धः वरण एव ज्ञातः, न तु गद्य-पद्यबन्धरूपाः काव्यविशेषाः ।
- १३.६ दुव्वयणु—(ख) दुर्वनवत् दुर्वचन, दुव्वयणु 'जाणिड—(ग पं) दुर्वचनः पिशुन एव ज्ञातः, न तु द्विर्वचन द्विर्वचनमनभ्यासस्यैकस्वरस्याद्यस्य, उव्वक्खिड'समासु—(ग पं) सहमासेन वर्तत इति स-मासः सवत्सर एवोपलक्षितो ज्ञातः, न तु व्याकरणे प्रसिद्ध^८ समाप्तोऽप्ययोभावादि^९ ।
- १३.७ मुहिचए—(ग पं) एवमेव ।
- १३.८ निरखु—(ग पं) विकलयास ।
- १३.९ अह'पवंपु—(ग) अय महाकविरचितप्रबन्धः ।
- १३.१०. विड्ड'पहसिज्जइ—(ग पं) यथा अतिकठिने महारत्ने हीरकेण विद्धे कृतछिद्रेण मृदुना सुत्रेणापि प्रविश्यते, तथा महाकविरचिते 'गाथाप्रबन्धरूपे जम्बूस्वामिचरित्रप्रबन्धः पच्छडिका [पञ्च-टिका ?] प्रबन्धद्वारेण सुखेन क्रियते इत्यत्र न किञ्चिदाश्चयम् ।
- १४.१ गुडखेड—(ख ग) गुडखेडदेशात्, सुहचरणु—(ग पं) शोभनानुष्ठानः ।
- १४.२ सिरिळाडवग—(ख) गोत्र; निव्वूडकसु—(ग पं) काव्यकरणे सुकविकशोत्तीर्णः ।
- १४.४ कविगुण—(ग पं) कवितागुणः ।
- १४.७ तहो—(ख ग) देवदत्तस्य कवेः ।
- १४.८ संतुवगम्भुभड वीरु—(ख ग) संतुवा माता, वीरु कवि ।
- १४.९ अखलिय 'कलिवि—(ग पं) संस्कृतकविरस्वलितस्वर इति ज्ञात्वा, सुड—(ग) वीरु कविः ।
- १४.१० कि इयरे—(ग पं) संस्कृतप्रबन्धेन किम् ।
- १५.३ रसइ—(ग पं) वाद्यति ।
- १५.४ सुहो—(ख ग पं) मित्र; वीरु'द्विहि—(ख पं) हे स्वजनवृत्ते वीरः; (ग) कृत-सुजनवृत्ते वीरः ।
- १५.५ उदरिड—(ख ग पं) विरचितम्, संकिरलहि—(ग) संक्षेपं कृत्वा कथय ।
- १५.६ पडिमणइ—(ग पं) प्रतिबचन ददाति ।

[१.३] १ पं 'छंदः । २. पं निघंटो । ३. पं कोशादि न । ४ ग श्रुता । ५. ग 'विक न श्रुत न ज्ञातः । ६. पं प्रसिद्धा । ७ ग रूपः काव्यविशेषः । ८. पं 'द्विः । ९ पं 'भावादि । १० पं 'हपो ।

- १.५.७ किय तुच्छकहा—(ग) मखिता स्वल्पा कया कृता सती, (र) संक्षिप्त-स्वल्पा कृत कया ।
- १.५.८ सरहु—(ग पं) अष्टापद ।
- १.५.१० निवाणु—(ग पं) जलस्थानम् ।
- १.५.११ थोवड करयथु—(ख ग पं) स्तोत्र करकस्वितं संस्कृतम् ।
- १.६.१ अवि य—(ख ग पं) अपि च; सम्यग्माणय—(ख ग पं) भरतवचन समर्थमानेन :
- १.६.३ जाणं—(ख पं) वेपाम् ।
- १.६.४ उगिरंता—(ख ग पं) प्रकाशयन्ती ।
- १.६.५ मंति वाई वि—(ग पं) कवयः, वाई वि हु—वानुर्वादितोऽपि बहव सन्ति, हु—(ख) इह लोके ।
- १.६.६ रममिद्धिमंचियत्थो—(ख) रससिद्धि सचियर्थो ['तायो ?] निपातितार्था वा सुवर्णशृङ्गारादि नवन[वा]दि, (ग पं) रसमिद्धया संचितार्थे. निष्पादित^३ सुवर्णं, पक्षे शृङ्गारादिरसाना सिद्ध्यात्पन्था संचितो^३ रचितः शोभनवर्णेषु अर्थो येन स, विरली—(पं) प्रविरलः, मूक्यो—(ग पं) अन्य ।
- १.६.७-८ जाणं चाणी साहयवट्टि च्च अट्टपुक्कत्थे निव्वडह—(ग पं) यथा सावकवतिरुत्पृष्टपूर्वेऽपि निधानलक्षणार्थे उपयोगविशेषोऽपि पतति, (ख ग पं) तथा वेपा कवीनां वाणी केनापि कविना अदृष्टपूर्वेऽपि निपतति प्रवर्तते, अत्रा निव्वडह—विचार्यमाणा कशोत्तोर्णा भवति । कचं पुन केनाप्यदृष्टेऽपि केपाचिन्मति. प्रवर्तत इत्याशाङ्क्याह ।
- १.६.९ जाणं रमह—(ग पं) वेपा कवीना समग्रगन्दीव. संस्कृतगन्ध-प्राकृतगन्धसंवात्. स एव सिद्ध्युक्त रमति स्फुरति उच्छलति नानार्थेषु प्रवर्तते, कस्मिन् सति ? मङ्गलमि—(ग) मत्वेन स्फुरतिस्मिन् कन्तुकोच्छलन् भूमिप्रदेशे, (पं) मत्वा फडक्क. उच्छन्नमनेकार्थेषु प्रवर्तनम् ।
- १.६.१० ताणं परिस्फुरह—(ग प) तेभ्योऽप्युपरितना अधिका कस्यापि बुद्धिः परिस्फुरति अपूर्वविषु प्रवर्तते ।
- १.६.१६ जिणवहनाह—(ख ग पं) जिनमते^४ [:] भाषया. नाथ, जिनपतिर्वा^५ नाथो यस्य^६ ।
- १.६.१८ धम्मभारं मारहभूसणु—(ख ग पं) पाण्डवाना नाथो युधिष्ठिर - धर्माचारयुक्त (५) निर्दूषणश्च, तथा ['था] मगह^७ ['व] देशोऽपि, मारहभूसणु—पाण्डवानाथो भारतपुराणस्य भूपणो मण्डनमूर्त, मगवदेशस्तु भरतस्येवा (?) भारता (?) भरतक्षेत्रं तस्य भूषणः ।
- १.६.१९ विलयसारं हंसु व—(ख ग पं) वंतां पक्षिणा शतानि तेषु मध्ये यो हंस. सार उच्छृणो वष्यते, तथा विपयाणां देशविशेषाणा मध्ये मगवदेश. सारो वष्यते; किं तु " हंसु व —(ख) हविष- मध्ये यथा तक्ष्णी तेन पयोवरासार. तस्य स्पर्शो तथा मगवदेश विषयसार., (ग पं) किन्तु यथा तक्ष्णीस्तनमण्डलस्पर्श इव, तस्या स्तनमण्डलस्पर्शो यथा विषयेषु मध्ये सारस्तथा मगवदेशो विषयेषु सार ।
- १.६.२० कुहहं वीसर—(ख ग पं) कुकविकृतकथाप्रबन्धो हि विगतस्वरवन्ध विगिष्टसन्निविधान- विकलः देशस्तु विगिष्टोद्यानादिषु^८ वंतां पक्षिणा स्वरै शब्दै युक्त; कुकहककहवन्तु नीरसस्त सुमनोहर मावह—(ख ग प) कुकविकृतकथाप्रबन्ध. नीरसस्य ग्राम्यस्य पृथस्य, मावह—प्रतिभासने, सुमनोहरं, न तु पण्डितानाम् देशस्तु विगिष्टैर्नीरै. सस्वैश्च सुमनोहरः ।

[१.६] १ ग^१ मती । २ पं^२ दित । ३. ग^३ वि^३ । ४ पं^४ मतो । ५. ख^५ पतेर्वा । ६. पं^६ यस्या । ७ प तथा । ८. पं^८ ष्टोपवनादिषु ।

- १८.५ सर्व्वगुणकरसिय—(ख ग पं) सर्वाङ्गोत्कर्षिता सर्वाङ्गे हर्षिता इत्यर्थः ।
- १८.६ अंतचिककारर्हि—(ग पं) यन्त्रचीत्कारशब्दै, गायह्व—(ग प) गीतं गायन्तीव; मुक्क सिक्कारर्हि—(ख ग पं) यन्त्रबाह्कास्वाद्यमानरससीत्कारे ।
- १८.७ जंपिर्हि—(ग पं) जल्पकै ।
- १८.८ देवउळ ...गाम—(ग पं) देवकुलैर्देवगृहैर्विभूषिता[:] ग्रामा शोभन्ते, अवहण—(ग पं) अवतीर्ण [], गामसत्या च विचिन्तधाम—(ग पं) ग्रामा [:] नानाप्रकारस्थानाः, स्वर्गस्तु विचित्रस्थानाः, नानाप्रकारतेजसश्च ।
- १८.९ परिहा—(ग पं) खातिका; सुरपुर...वट्टणु—(ग पं) इन्द्रपुरीलक्ष्मीनिर्दलन^१ ।
- १९.१ गोडर—(ख ग पं) प्रतोलो; दुहमं—(ख ग पं) शत्रूणा दुष्प्रवेशम्^२; कुंभविलया—(ख ग पं) पानीहारिण्य ।
- १९.२ संघट्टियगो—(ख) अङ्गो शरीरसङ्घट्ट [नम्] ।
- १९.३ सेययुयकुकमे—(ग पं) प्रसवेरगलितकुङ्कुमे, कुसुमदामेहि—(ग पं) पुष्पमालामिः; गुष्पए—(ग) सखलति ।
- १९.४ गडमंतरे—(ख ग पं) गर्भगृहे; कामपंडुर...गवक्खतरे—(ख ग पं) कामोद्रेकेन सजात-पाण्डुरकपोला, गदाक्षान्तरे गवाक्षिद्रे ।
- १९.५ सासमरु ... दावए—(ख ग पं) सुगन्ध^३ देवासवायुस्तेन सम्मिलिताः^२ भ्रमरा. यत्र तत् तथाविधं मुलं लोकाना दर्शयति, राहुससि ...समुप्पायए—(ग पं) राहुशशियोगे ग्रहणं तद्भ्रान्ति समुत्पादयति । ।
- १९.६ फळिहसिल—(ग पं) स्फटिकमणि^३; पोमराएहि ...दीसिया—(ख ग पं) पद्मरागं रक्तवर्णं प्राङ्गणै^४ रङ्गावली विरच्य प्रकाशिता, सा च स्फटिकमणि बुध्नाकान्त्या तन्मिश्रिता सवलिता ।
- १९.७ रविकंतकिरणेहि—(ग पं) सूर्यकान्तमणिकिरणै. खिजए—(ग पं) नक्षयति, जामिणी—(ग पं) रात्रिः ।
- १९.८ कसणमणिखंड—(ख ग पं) इन्द्रनीलमणिसंघातः, चिच्चइय—(ख ग पं) सञ्चितं मण्डित-मित्यर्थ, चळवळियकिरणुडजळ—(ग प) स्फुरितकिरणोज्ज्वलम् ।
- १९.९ आहणइ...थिरं—(ग पं) आहन्ति [?] स्थिरं यथा भवति तथैव केवलम्; कुंभइयचंचू—(ग पं) भग्नचञ्चू ।
- १९-१०-११ घरि घरि ईसरु जणु । नियरिद्धिए...दथावणु—(ख ग पं) एवविध विभूतिमुक्त राज-गृहनगरं दृष्ट्वा स्वर्गोऽप्यात्मनो हीन मन्यते, दुस्थ दीन च, स्वर्गे हि एका गौरी सोमन्तिनी स्त्री, इह गृहे गृहे गौर्यः, सीमन्तिन्यः^५; स्वर्गे, शक्र^६ एक एव धनदः, इह तु गृहे गृहे धनदायकाः, धनेश्वरा, स्वर्गे एक एव ईश्वर, इह तु गृहे गृहे ईश्वरा धनकनकसमृद्धा इत्यर्थः ।
- ११०.२ गधञ्जाणुलगा आडावणि—(ख ग पं) गीतानुमारिणो वीणा ।
- ११०.३ जहि नेडर ...हंसहो गई—(ग पं) हंसशब्दसमानेन नूपुरशब्देन^७ पृष्ठिलगनान् हंसान् प्राङ्गणै^८ आमयति, नूपुराणि अस्मान्स्वजातीयानीति भ्रान्ति वा तेषामुत्पादयति, गौ—(ख पं) वाणी द्रव्यः ।

६ ग^१ लन । [१.९] १ प^१ शः । २. पं वायु. तस्मिन् मिलिता । ३ ग^१ मणि । ४. ग^१ प्राण्ये. । ५. पं शक्र स्वर्गे । [१.१०] १ पं हसानुलगा प्रा^१ ।

- १.१०.४ दृग्ण ...आसत्तिष्—(ग पं)—रूपावलोकने आश[स]क्तया ।
- १ १०.५ सुद्धियाए—(ग पं) अव्युत्पन्नया, इहंतिष् सियगुणु—(ख ग पं) दन्तानां श्वेतगुणममिन्नपत्या इत्यर्थः ।
- १.१०.६ कामिणोड...सनाहड—(ग पं) चन्दनशाखा. विरचितभोगैः कृतफटाटोपैः भुजगैः सर्पैः सनाथाः समन्विताः, कामिन्यस्तु विरचितवस्त्राभरणाद्युपभोगैः कामुकैः सनाथाः, भोथ—(ख पं) भोग, फटाटोप, वस्त्राभरणाद्युपभोगश्च ।
- १.१०.७ जाहं रूड पिच्छिन्नि—(ग प) यासा कामिनीनां रूपं प्रेक्ष्य; कलङ्कतड—(ख ग पं) सकल-कलायुक्तम्, हेलेष्...विच्छड—(ग पं) हेलेया-अप्रयासेन जित-वशीकृतं महेश्वराणां चित्तं येन रूपेण ।
- १ १० ८ जय ...भययष्टड—(ग पं) त्रिनयनजयाभिलाषी, त्रिनयनो महेश्वरस्तद्भयात् व्रतो विभीत ; सरणड ...वद्वृष्टड—(ग पं) तासामङ्गैः नङ्गैः काम. शरणं प्रविष्ट. ।
- १.१० ९ घगधग ...ठवेरिणु (ग पं) तेन तत्र शरणं प्रविशता कामेन निजसर्वस्व शृङ्गारभाण्डागारं धनस्तन-कलशेषु मुद्रा रचयित्वा कृत्वा स्थापयित्वा ।
- १.१० १० अहरणु ...छुहेनि—(ख ग प) ओष्ठे मधु आत्मीयं माधुर्यगुणं प्रक्षिप्य काममदम्, धणु सञ्जीड—(ख ग पं) धनु प्रत्यञ्चवायुक्तं कृतम्, मयसंगहिं भूंसंगहिं सुक्कु—(ग पं) काममदस्य यौवनमदस्य च संगः मन्वो येषु भ्रूमङ्गेषु [तेषु] मुक्तं कृतम् ।
- १.१० ११ वाण ...कडखहिं—(ग प) आत्मीयवाणाः नयनकटाक्षेषु समपिताः; कथंभूतेषु ? कामुभ... दखहिं—(ग पं) कामुकजनमन. कदर्थनदक्षेपु ।
- १.१०.१२ रमणुल्लए—(ग प) शोणितले, ऊरुखंभ...भुवणुल्लए—(ख ग पं) जङ्घास्तम्भशोभित-धवलगुहे, रड ...क्रियड—(ग पं) रति-श्रीतिलज्जान्तःपुरस्य आवास. कृतः ।
- १.१०.१३ रड्वरु—(ग पं) काम ।
- १.१०.१४ लवणणवकूकावहि—(ग पं) लवणार्णवतटपर्यन्त [.], (ख) आसमुद्रपर्यन्त [:] 'सधर'... पालियकह—(ग) पर्वतसमन्वितपृथ्वीमण्डलगृहीतकरः ।
- १.११.२ बलिमंडए—(ग प) बलात्कारेण ।
- १.११.३ मरगय ...गुवणणड जमु जमु—(ख) मरकतवर्णः कृष्ण. स चासौ कृपाण. खङ्ग तस्मादुत्पन्नं यस्य यश, मरगय ...गयवणणड—(ग पं) यद्यपि कृष्णकृपाणादुत्पन्नम्, तो वि—तथापि, जमु जमु—यस्य यश, अमरगयवणणड—अमरकतवर्णं ज्वेतम्, अथवा अमरगजः एरापतिः तद्द्वयं शुभ्रो यस्य, अमरेषु वा गत [] वर्णं व्यावर्णनं यस्य ।
- १.११.४ पयाच ...अविच्छड—(ख ग पं) प्रतापानिः अतृप्तः, खीणा...निश्चतड—(ख ग पं) क्षीणं च तद्विरिरेवेधनं च शत्रुकपटं तस्य, खोज्जु निश्चतड—तद्गत्वा प्रविष्टमिति मार्गं पश्यन् अन्वेषयन् सन् १ ११.५-६ रिड ...पञ्जक्रियड—(ग प) शत्रुभार्याणां हृदये प्रज्वलितः, अथस...पानिचजड—(ख ग पं) अवश्यमेव विपक्षः शत्रु अत्र रिपु ['पु] गृहिणी हृदये प्राप्यते, कुत ? विह्वी...सुमरिजजड—(ख ग प) यस्मात् कारणात् विध्वीभूताभिः रण्डिताभिः अनवरतं हृदये मदीयशत्रु. स्मर्यते, अत्र शत्रुनिवासस्थानत्वात् प्रतापानिना हृदयं तासां बह्यते ।

२. पं महा ईश्वर । ३ गं मन् । ४. पं सधर...पानीयकह—पर्वतसमन्वितपृथ्वीमण्डलं, पानीयक गृहीतसिद्धाद्य । [१.११] १. पं तद्विन । २ पं मार्गमन्वेषयते ।

- १.१२.३ कलयति ...सह—(ग पं) कलो मनोज्ञः कण्ठो यस्याः सा कलकण्ठि-कोकिला तस्याः इव कण्ठो कलो मनोज्ञो मधुर श्रोत्र-मन प्रीतिकरः स्वरो यस्याः; चंद्रयक्षुसुम—(ग पं) माध्याह्निकपुष्पवत्^२ ।
- १.१२.४ कलहोयकलस—(ग पं) सुवर्णकलसः; निर्बिन्द—(ख ग पं) विण्टनिकारहितः; चक्रकरमणु—(ख ग पं) चक्राकारस्थूलनितम्बः ।
- १.१२.५ सुहमस—(ग पं) मुखस्वा[^०श्वा^०]सवातः ।
- १.१२.६ सडु (अत्याणे ?)—(ग पं) समाम्, ससंगरज्जु—(ख) स्वाम्यमात्यश्च राष्ट्रं च दुर्गं कोशो बल सुहृदिति सप्ताङ्गं राज्यम्; (ग पं) स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशो देश-दुर्गं बलं तथेति सप्ताङ्गं राज्यम् ।
- १.१२.९ अह—(ग पं) अय, एतस्मिन् प्रस्तावे, कणय...पडु—(ग पं) कनकदण्डे विशेषेण निबद्धः पट गुडिकारूपो येन ।
- १.१२.१० दडवारिय—(ग प) प्रतीहारः ।
- १.१२.११ जयसिरिस—(ख ग पं) जयलक्ष्म्याशक्त[^०सक्त]चित्तः; चडरयणायरंत—(ख ग पं) चतुःसमुद्रपर्यन्त ।
- १.१३.३ अर्चंभड—(ग पं) आश्चर्यम् ।
- १.१३.४ धणु—(ख ग पं) निरन्तर [.], काणयु—(ग पं) उद्यानादिवनम् ।
- १.१३.५ ^०क्खाकिय—(ग पं) क्षालित, प्रक्षालित ।
- १.१३.६ अकिट्टपच्च—(पं) अवाहितपक्वा; पसविय—(ग पं) प्रसूत, निष्पन्न; बहुवण्णि—(ख ग पं) बहुवर्णं धान्यं ।
- १.१३.७ गाविड—(ग) गावः; खिरंति—(ग पं) श्रवन्ति[^०ख^० ?]; अमोहड—(ग पं) परिपूर्णं बहुतरमित्यर्थः ।
- १.१४.४ कंटह्यगकु—(ग पं) रोमान्जितगात्रः ।
- १.१४.५ कण्णंत—(ग पं) कर्णात्तमण्य, दियंत—(ग पं) दिग्मन्त्रं दिवसपर्यन्तं वा ।
- १.१४.६ सुरय—(ग पं) मार्हल[^०म^० ?]
- १.१४.९ पूरंतसासु—(ग पं) पूरणसमर्थः, महाप्राणमुक्त. श्वासो यत्र ।
- १.१४.१० परिष्टुट्टुनाड—(ख ग पं) उच्चारितशब्दः ।
- १.१५.२ दसियारोहि—(ग) हस्तिपकैः; वीरोहि—(ख ग पं) पडिकारै (?) ।
- १.१५.३ कप^१—(ग पं) चर्मयष्टि ।
- १.१५.४ विय.लिया...वेसरो—(ख ग पं) विगलितः पतितः, आसगनरो—अश्ववारो यत्र तत् विगलितासननर यथा भवत्येव नश्यति^३ ।
- १.१५.५ सकडं—(ग पं) समर्थम्, घंत—(ग पं) धावन्त^३; ^४पाहकघडसंकडं—(ख ग पं) भड-भट-सुमटसंघातः ।

२. प^०हित्त. पुष्टः । ३ ग^०दंड । [१.१५] १. पं कसा । २. पं यथा न भवति एवं नश्यति । ३. पं धावन्तः । ४. पं पायक^० ।

- १.१५.६ भूसीकम छड्डी—(ख ग पं) निज-निज भूमिक्रमरित्यागिनो, वारिया—वारिभिर्वारिता[], निवारिताः, *निरवीरमोसारिया—(ख ग प) निजभृत्यसमूहः निज-निज भूम्या घृतः ।
- १.१५.७ डंवरं—(ग पं) आटोपम्; छह्यंवरं—(ग पं) प्रच्छादिताकाश ।
- १.१५.१० नियथ ...हिट्टओ—(ख ग पं) निजशोभास्वीकृतः, कणयसेछो—(ग पं) मेहः ।
- १.१५.११ तुंगिम—(ख ग पं) महत्त्वम्, परए करु—(ख ग पं) दूरत^१ उत्सारय, देवनिकायहो—(पं) भवनवास्याविदेवसघातस्य; किम समसीसी—(ख ग पं) समगणना का ।
- १.१५.१२ आयहो—(ग) एतस्य मेरो, (पं) कनकगिरे ।
- १.१६.१ दूरुज्जिय—(ख ग प) *दूरत [त] एव परित्यक्त, पचो—(ख) पात्राणि, (ग) पत्राणि, वाहनानि; परिथण ...लुपण—(ख ग पं) परिजन, पुरनिवासीलोकयुक्तेन ।
- १.१६.२ केवलवाहें (ख ग पं)—केवलज्ञानधारधेन ।
- १.१६.१० सुहभावण—(ग पं) शुभपरिणामाः^२ ।
- १.१६.११ दळ—(ख ग पं) पत्र ।
- १.१७.१ हरिचिट्टरे—(ग पं) सिंहासने, किरणाहय* करे—(ग पं) किरणैर्निजित. सुरेन्द्रमुकुटकिरणो ।
- १.१७.२ पत्तपहुत्त^१—(ख ग पं) प्राप्तत्रिभुवनधिपत्यः, कुसुमकिण्—(ख पं) पुष्पाञ्चिते ।
- १.१७.३ महप—(ख ग) मनोज्ञे ।
- १.१७.४ सयलमाससत्रलियए—(ख ग पं) अष्टादशदेशोद्भवभाषासमन्वितया ।
- १.१७.५ छजिउ (ग पं)—शोभितः, पडिबिंब—(ग पं) प्रतिच्छाया ।
- १.१७.७ *तदुल्लोकपियामहु—(ग पं) त्रैलोक्यपितामहः ।
- १.१७.८ पयाहिण देंतें—(ग) प्रदक्षिणा ददता सता ।
- १.१७.९ रहतमगहिउ—(ख ग पं) विपयासकिततम प्रच्छादितः^३ ।
- १.१७.१० सुत्तउ—(ख ग प)—विवेकरहितम् ।
- १.१८.१ वणिऊणं—(ग) वणितुम्, धाळो—(ख ग पं) अन्न ।
- १.१८.२ समुज्जोह्या* पईवेण स्रो—(ख ग पं) समुद्योतितविद्यौषो वा किं न पूज्यते प्रदोषेन सूर्यं ? किं विशिष्ट. ? वेयस्रो—(ख ग प) तेज संघातः, तेजोनिविरित्यर्थः ।
- १.१८.३ संगवहरस्स—(ग प) शीणकपायस्य ।
- १.१८.४ परं—(ख ग पं) पवित्री करोतु, *सुक्खयाम—(ख ग पं) सोल्लोत्पादनपराक्रम समर्थमित्यर्थः ।
- १.१८.५ सावळलेसो—(ख ग पं) सावद्यलव ।
- १.१८.६ कणो * रत्तपसत्थो—(ख ग प) कणो-कणिका, हालाहलः कालकूटस्य संवन्धी, जीवा^२ यथा तथा सत्तपसत्थो-सर्पसारथं, सुहासायरं—(ख ग पं) अमृतसमुद्रम् ।
- १.१८.७ अविग्घो—(ख ग पं) अविघ्न. प्रतिवन्धरहित, तए—(ख) त्वया, तिलोयगगामीण—(ख ग पं) मोक्षगामिनाम् ।

५ पं निरवीरमोसारिया । ६ ग दूरत । [१.१६] १ पं दूरतर । २ पं णामा । [१.१७] १. पं पहुत्तु । २. पं तयलोय^१ । ३ ग दित । [१.१८] १ पं सोवखधाम । २. ग जीवो ।

- १.१८.८ मोहकालाहि—(ख ग पं) मोहकृष्णसर्पं, वायासुहाए—(ग प) वाचामूनेन; विसुद्धो—(ग पं) विशुद्ध, स्वच्छः ।
- १.१८.९ क्वार—(ग प) समुद्र, संपुणविज्जा—(ग प) केवलज्ञानम् ।
- १.१८.१० सप—(ग पं) त्वया, नाण ...उद्विस्तमेयं—(ग पं) ज्ञानदीप्या उद्गततेजः कृतमिदं हत-
प्रतापीकृतमित्यर्थः; समुष्मासए—(ग) समुद्भासति, शोभते ।
- १.१८.११ सुहामासय—(ग प) मुखप्रतिवन्वम् [°छन्दम् ?] ।
- १.१८.१२ वस्थुक्वं—(ग पं) वस्तु-पदार्थम्, नित्यं निश्चे [°स्वे] दत्त्वमित्यादिशरीरस्वरूपम्; अहंबुद्धि-
लुद्धा ते मुद्धा सक्व निरुवति—(पं) तव स्वरूपमिति निरूपयन्ति—(ग पं) वयं भगवत्स्वरूपं यथावत्
ज्ञात्वा प्रतिपादयामः इत्यहङ्कारेण विपर्यासिताः, शरीरस्वरूपाद्भगवत्स्वरूपस्यानन्तज्ञानाद्यात्मकस्यान्य-
त्वात्^३ ।
- १.१८.१८ भूयो—(ख ग पं) पुनरपि ।

टिप्पण सन्धि-२

- २.१.१ समवापुं—(ख पं) सर्वेषा अभिप्रादेण ।
- २.१.३ पयंपद्—(ग पं) प्रजल्पति ।
- २.१.४ निरंजणु—(ख ग पं) कर्ममुक्त ।
- २.१.५ निरवहि—(ख ग पं) अनाद्यनन्त, सपणाण " मेत्तु (ख ग पं) स्वज्ञानप्रमाणमात्र ; 'आदाणा-
णपमाण' इत्यभिधानात् ।
- २.१.६ परेण मिलित—(ख ग पं) परेण स्पृष्टः परामृष्टो वा; आयास" द्बर्हि—(ग पं) आकाञ्-
प्रमुखैराकाशाद्यैर्द्रव्यैः ।
- २.१.७ नीसेस—वाहि—(ग पं) 'नि शेषं शरीरी-मनुष्यो-देवो-बाल-कुमारः सुखी-दुःखीत्यादिरु पो निरर्थो-
ज्जात्मस्वरूप कर्मजनिमित्यर्थः उपाधिविशेषणम्; सहइ—(ग पं) सहते, भजते, तथा भजते चात्मनि
सति अचेतनशरीरादिकं ससारे प्रवर्त्तते, केन सता क इव ? जंगमेण—(ग पं) जङ्गमेन बलीबर्हादिना
अजङ्गमं शकटादिवम्, जेम—यथा, तथा कर्मणा सता शरीरादिकं ससारे प्रवर्त्तयिष्यति ।
- २.१.८ भवममथु—(ख) संसारकर्मकरणे समर्थः, संते गथणे" संमथु—(ग पं) अतः किमात्मनेत्या-
द्यङ्ग्याह—संते—सता आत्मना भव. प्राट्टुमि. कर्मपरमाणुस्कन्ध समर्थो भवति, आत्मनि वा अत्रकार्ण
लभते, केन, क इव ? गथणेण व—(ग पं) आकाशेन सता यथा (ख ग पं) पृथिव्यादिपदार्थ आकाशे
अवकाशमवगाहं प्राप्नोति स्वकार्यकरणे समर्थश्च भवति, आत्मानं च सकृपायं प्राप्य कर्मणो योग्यपरमाणु-
स्कवोऽग्निं विधित्रफलदाने समर्थः कर्मरूपतया परिण [म] ते, 'सकृपायत्वात् जीवः कर्मणो योग्यान्
पुद्गलमादत्ते स वन्व' इत्यभिधानात्; (ख) अत्र दृष्टान्त [:] सूर्यकान्त [मण] य ।
- २.१.९ दिवसयर" अग्निगंधु—(ग पं) 'अमुमेवार्थं प्रति वृष्टान्तमाह, दिवसयरेत्यादि—दिवसकरिकरण-
कारण सहायम[सहाय]'रुभमान सूर्यकान्तो यथा अग्निना [अग्निान्] दृश्यते—

३ ग ज्ञानाद्यात्मकस्यान्यत्वात् ।

[२.१] १ पं प. । २. पं °प्रवतिपते । ३. पं °थो । ४. पं अत्रैवार्थे ।

२.१.१० तिहे जोगग ...बुद्धिबंधु—(ग पं) कथंभूत. ? स्वकर्मयोग्यपरि[परं]माणुस्कन्ध ; परिवर्द्धितो-
ऽहमिति बुद्धिबन्ध आत्मनि संबन्धो येन, ननु इन्द्रियाण्येवाहमिति बुद्धिभूत्पादयिष्यन्ति, तत्किमात्मना कर्मणा
वा ? अत्राह—

२.१.११ 'जीवेन...करणगामु' (ग पं) जीवेन निमित्तीभूतेन करणग्राम. इन्द्रियसंघातः, किं विशिष्ट ?
मोहयामु—(ग पं) महामोहनोयकर्मणः सकाशात् (पं) मोही वा मोहजनने विषयासक्तिः प्रादुर्भावि
थासु—यामा. [यामः] सामर्थ्यं यस्य स, विषयपु भाव—(पं) द्रव्येन्द्रियभेदसहित, विषयमह—(पं)
स्वविषये यथेष्टया प्रवर्तते ।

२.१.१२ ह्यजाड ...जीड सो वि—(ग प) एवमुक्तप्रकारेण आत्मानं निमित्तोक्त्येन्द्रियद्वारेण जनितोपयोग-
लक्षणशक्तिं सन् निमित्तिकोऽपि जात, अत्रहारेण सोऽपि जीवः इत्युच्यते, निश्चयेन एकोऽपि नस्वर उप-
योगयुक्त इति, (ख) निश्चयेन ह्येकोऽपि नस्वरो स उपयोगयुक्त इति चिद्रूपलक्षणो जीवः, न तु क्षयोप-
शामिकादिनस्वरैरिन्द्रियोपयोगयुक्त इति ।

२.१.१३ ससार...जण्ड—(ग पं) संसारस्य भवान् भवान्तराप्रप्तोनिबन्धनं कारणभूतं कर्म तेन व्यवहार-
नयेन जीवेन, अनितं—आत्मनि प्रादुर्भावितं भवति, तं नासु मोक्षु मण्ड—(ग पं) तस्य तथाभूतस्य
कर्मणो नाशो मोक्षो भवति, निरामड—(ग पं) आमयो व्याधिवत्तस्मान्निष्क्रान्तः ।

२.१.१४ खिज्ज—(ग पं) क्रियते, उप्पज्जह—(ग प) स एव जीवो व्यवहारिक मोहसंघातं
क्षययति; किं विशिष्टः सन् ?

२.१.१५ 'कम्मासयचारणु' खज्ज—(ग पं) कर्मलक्षणवारणः कर्मणामासयस्य 'मिथ्यात्वारिवरितप्रमाद-
कषाययोगलक्षणस्य निवारकः, किं विशिष्टं सन् तस्यैवारको भवति ? सावियकारणु—(ग पं) भावित-
कारण. भावित कारणं मोक्षमार्गं रत्नत्रयस्वरूपं येन ।

२.२ ८ अणिट्ठ—(ग पं) अनिट्ठं दुःखम्, मइ—(ख ग पं) मया; कट्ठे—(ख ग पं) महातापकष्टेन ।

२.२ ११ संसारिणि-तिस - (ख ग पं) संसारिणीतृष्णा भोगाकाक्षा ।

२.३ १ नरामरे ...वहंतए—(ख ग पं) नरामरेषु विगुहभावना धारयमाणे ।

२.३.२ पंतय—(ग) आगच्छन्; निचच्छियं...तेयवारि—(ख) स्फुरन्तं तेयवारि(?)विज्जु(?)मालि-
विमानं नमेधार्म(?)सदृशं दृश्यते आगच्छन्तु शुद्धतोण्या (?) धारयन्ते, पूरिया दिवंतय—(ख ग प)
'पूरितदिगा[दिग]न्तम् ।

२.३.३ अतिव्वतावथ—(ग प) अतीवप्रतापः, (पं) अतीवतापं येन, सूर्यकिरणसंघातस्तु अतीवतापकः;
न सूर्योनिडंजय—(ख ग पं) सूरस्य आदित्यस्य, गोनिक्कुञ्जः—किरणसंघातो न भवति ।

२.३.४ साडुवाइणा—(ख ग पं) साहु-गणधरवचनेन, सुन्दरवाचा वा कृत्वा ।

२.३ ६ सत्तमे ...वविस्सए—(ख ग पं) सप्तमे दिने आद्युष्यक्षये आयुष क्षयात् च[च]विषयति; भवेण—
(ख ग पं) अप्रेतनमनुष्यभवेन, केवलीह...मविस्सए—(ख ग पं) इह—भरतक्षेत्रे, पद्विमोऽन्तिमः
केवली भविष्यति ।

२.३ ८ प्रियाचउकपंचमी—(पं) प्रियाचतुष्टेन[पंकेन] सह पञ्चमः; सहाए विट्ठो—(ख ग पं) सभा-
मण्डपिकानिवासीजनेन दृष्टः ।

२.३.९ सिन्वाणु—(ख ग पं) गोवर्षाणी विद्युन्मालीदेवः ।

५. प्रतिशोभे यष्यति । ६. पं जीवेनेत्यादि । ७. ख ग धामु । ८. ग मोक्षः । ९. पं कम्मासव । [२ ३]
१. पं पूरिता ।

- २.४३ अथहो—(ग) एतस्यागतस्य वा ।
 २.४.४ न मिच्छिड—(ग) न त्यक्तः; पच्वेच्छिड—(ख) अगृह्य (?), (ग) केवलम् ।
 २.४.५ एण—(ग) विद्युन्मालिना ।
 २.४.१० दिवि दिवि—(ग) दिने दिने ।
 २.४.११ सघणक्याहरे—(ग पं) निरन्तरलतागृहे, कडुय—(ख ग पं) कटुकः कर्कशवचनः ।
 २.४.१२ चलसिंह—(ग पं) चलचूलिका ।
 २.५.१ संसु—(ग पं) प्रशंस^१; गुणवंतु—(ख ग पं) गुणाः सुशीलत्वादयः, पक्षे (ख पं) प्रत्यञ्चा
 चापः; वंसु—(ख ग पं) संज्ञान. वंशश्च ।
 २.५.२ सुत्तकंठु—(ख ग) ब्राह्मण ।
 २.५.३ कमलायरो व्व—(ख ग) सरोवरवत्, गोविसनिहाणु—(ख ग पं) ब्राह्मणपक्षे गावो वेनव^२, वृषभाः
 वलीवद्वृत्तेषा निधानम्, कमलाकरपक्षे गो^३ पानीयम्, विपाः—पथिनीकन्दास्तेषा निधानम्; मंडलवद्वृत्त्व—
 (ख ग पं) मण्डलपतिरिव राजा इव स ब्राह्मण इति; महिस्त्रीपहाणु—(ग पं) ब्राह्मणपक्षे महिष्यः
 प्रधानाः बहुदुग्धघृतदायिन्यो यस्य, मण्डलपतिपक्षे महिषी-अग्रमहादेवी पट्टराज्ञी प्रधाना^४ यस्य ।
 २.५.४^५ पद्वयधारिणी—(ख ग पं) पतिव्रतधारिणी, (ग) अन्यभर्तृकत्वव्रतधारिणी ।
 २.५.५-६ (ग प) समयपेत्यादि पाणहियकंतेत्यनेन संबन्धः; प्राणाना हिता-कान्ता-मापा प्राणहिता वाहणा
 कान्ता-कमनीया; समयणतणु—(ग पं) कान्तापक्षे समदना कामोद्रेककारीतनुर्यस्या [स], पाणहियपक्षे
 तु समदनेन सिधता लिप्ता तनुर्यस्याः; रसी—(ख ग पं) कान्तापक्षे निजभर्तृरनुरवता, पाहणियपक्षे रक्त-
 वर्णा, ललियकण्ण—(ग पं) कान्तापक्षे ललित[ललितकम् ?] आभरणविशेषपुरिधानशोभायमानो कर्णौ
 यस्या, पाहणियपक्षे तु^६ ललितकर्णा; नेह—(ग प) स्नेहः तैलं च ।
 २.५.६ अविहत्संग—(ग पं) अविभक्तसङ्गी^७ अविनाभाविनावित्यर्थः ।
 २.५.१२ घथ्यु—(पं) गृहीतः ।
 २.५.१४ सरंतु—(ग) स्मरन्; विट्टु—(ग) विष्णुम् ।
 २.५.१५ तहिं पविट्ट—(ग) चित्तान्तौ प्रविष्टा ।
 २.५.१६ हुक्खग्वविय—(ग पं)^८ हु लपूर्णा ।
 २.५.१७ संठविय—(ग) सस्थापिता ।
 २.६.१ सयणिट्टु—(ग पं) लघुभ्रातृसंयुक्तः ।
 २.६.२ जीवणनिओथ—(ख ग पं) जीवनव्यापारा. असि-मसि-कुल्यादयो^९ यस्य तत्, सण्णालुथड—
 (ख ग पं) आहारमयमैथुननिद्रापरिश्रहलक्षणसंज्ञायुक्तम् ।
 २.६.१० खारियड—(ख ग) कदधितम् ।
 २.६.१२ सहियए—(ग) स्वहृदये ।
 २.७.१ किलेसि—(ग पं) बलेन प्रयासेन ।

[२.५] १ पं चलसिंह [२.५] १ पं^१सा । २. वृषाश्च । ३. ख ग गौः । ४. पं यत्र । ५. पं पयवय^१ । ६ पं पाणादिता । ७. पं ओ । ८. पं पाणहिता तु । ९ पं संग्ता । १०. पं^२पूर्णः ।
 [२.६] १. पं^३दया ।

२.१२.७ उद्देशः—(ख ग पं) कथयति; अण्णालावलीलु—(ख ग) अन्योक्तिलीलाम्, (ग) अन्यो-
क्त्यासक्तः ।

२.१२.८ पाठ—(ख ग पं) शाखा, प्ररोहम्, नग्गोह—(ग पं) वटवृक्षः ।

२.१२.११ परिसीलिय—(ग) दृष्टा, (पं) दृष्ट्वा (?) ।

२.१३.६ नववहुवाप—(ग पं) नूतनवध्वा ।

२.१३.७ अपरिगत्र—(ख ग पं) प्रागेव^१ इति लोकोक्तौ, "जेट्टे" "निच्छइयड—(ग पं) भवदत्तेन, विह =
पूर्वं सङ्घस्याग्रे, निच्छइयड—प्रतिज्ञातं भवदेवं तपोग्रहणार्थं अहमिह गृहीत्वा आगमिष्यामीति ।

२.१३.९ 'रडे—(ख ग पं) रङ्गि-पूत्कारः ।

२.१३ १२ समासः—(ख ग पं) पर्यालोचयति ।

२.१३.१३ भवयत्त—(पं) भवदत्तो यथा, पडंतड भववह्लरिणिहे उद्धरहि—(ख ग पं) भव एव वैत-
रणो-नरकनदी. (ख ग) तस्या (तस्याम् ?) पततः उद्धर इति भवदेव ।

२.१४.१० कवल्लिज्जपु—(ख ग पं) चित्रते ।

२.१४.१२ घण्णउ—(ख ग पं) कृतार्थः ।

२.१५ ५ (ख) 'इय ध्यायत'^२—ईदृक्कृजाकया (?), (ग) इय सेच्छय—स्वेच्छया ।

२.१५.९ वियदपु—(ख पं) शीघ्रया ।

२.१५.१० परिभोसइ—(ग) परितोपयति ।

२.१५.१२ दिस्ड—(ग) दिशः; निज्जापुवि—(ख ग पं) अत्रलोचय ।

२.१५.१७ परिसकइ—(ख ग पं) आक्रामति; चित्तु "चमकइ—(ख ग पं) चित्तेन समं ऊहापोहं
करोति ।

२.१५.१८ इड कारणु—(ख पं) विषयसेवानिमित्तं व्रतमङ्गादिकम्, धिद्विकारिउ—(ख पं) निन्दितम्;
आरिसहिं—(ख पं) आगमैः ।

२.१६ १ वीणोवमञ्जुणि—(ख) वीणावज्ज[वाद्य]इव धुनि [ध्वनिः] ।

२.१६ ५ उहइ—(ख) पञ्चात्तापं कारयति ।

२.१६ ६ विळासपिया—(ख ग पं) रतिक्रीडाभिलाषिणी, कवणकिया—(ख ग) का क्रिया, का गति-
स्तस्या वर्तत इत्यर्थः ।

२.१६ ११ चैहहरु—(ग) चैत्यालयः ।

२.१६ १४ सुल्लिनि—(ख ग पं) चण्डिका ।

२.१७ ४ अज्जसूदियहो—(ग प) आर्यवसूनाम्नो द्विजस्य ।

२.१७.५ विसिदइयंवरिया—(ख ग पं) दिगम्बराणामिय दैगम्बरी-निर्ग्रन्थप्रवृत्तिरित्यर्थः ।

२.१७ ७ किह—(ग पं) केन पतिव्रताप्रकारेण, विचरीयकिया—(ख ग पं) विपरीतक्रिया, कुलमार्गपरि-
त्यागक्रिया, (ख) कुलभ्रष्टक्रिया ।

२.१८ ४ परिसलियवयसि—(ख) गतवयसे वृद्धकाले, (ग) परिगलिते वयसि सति, वृद्धत्वे सतीत्यर्थः ।

२.१८ ७ लेइडिसि—(ख ग पं) व्रतानुष्ठानादिदिशाभ्रभ्रष्टो भवति ।

[२.१३] १. पं प्रणव । २ पं जेट्टइ । [२.१५] १ पं पयसिज्जइ ।

- २.१८.९ जा^१कायणरसु—(ख) हे मुने त्वया पृष्ठा तस्याः नागवस्वा^१ स्वल्पं कथयामि, त्वं शृणु ।
 २.१८.१२ चिचुय—(ग)^१ चिवुक (?) [हिंदी—चिचुड जाना, पिचक जाना] ।
 २.१९.६ संलब्ध 'पमाणी—(ख ग पं)^१संलब्धः शिक्षातोऽपमानो^१ येन ।
 २.१९.८ पुण्वसकैयचतो—(ख ग पं) पूर्वसङ्केत विषयसेवासङ्कल्पः स त्यक्तो येन ।
 २.१९.१० म वंकहि—(ख) मदीया प्रार्थनाया सज्यक्ता [संत्यक्ता ?] मा क्रुच, (न) मदीया प्रार्थना, तामवक्रा क्रुच, (पं) मदीयप्रार्थनायामवक्रा क्रुच, उन्वेह्यड—(ख) सकलेशकल्पनाभावत्यक्तः, (ग पं) उद्विग्नः ।
 २.२०.२ अवमसइ—(ग पं)^१ ध्यायते ।
 २.२०.५ अजिबु घ—(ख ग प) जिह्वारहित इव, जिह्वायास्वादनमगुल्लित्यर्थः ।
 २.२०.८ (ग पं) पुवत्रजिय^२—(ख ग पं) पूर्वोपाजित[म्] ।
 २.२०.१० मइए—(ख ग पं) परिमिते ।

सन्धि-३

- ३.१.३ लक्ष्णे पथाई—(ख) लक्षपदानि, (ग) लक्ष्ये पदानि ।
 ३.१.७ किविणमाणसा—(ग पं) अल्पमतयः ।
 ३.१.८ जे संपणनाणसा—(ग प) ये सम्प्राप्तज्ञानलक्ष्मीका^१, केवलज्ञानश्रीसमन्विता इत्यर्थः; सखु वि^१ दिणससु—(ग प) तेषा सर्वमपि कालद्रव्यं^१ सुषमसुषमादिभेदभिन्न पद्विषयमपि दिनसमानं, यथा दिन-मधिर पुनः पुनश्चदयास्तमनरूपतया परिणमति, तथा कालद्रव्यमप्यधिरतया^१ पुनः पुनः सुषम-सुषमादिरूप-तया परिणमते^३ [इ]ति ।
 ३.१.९ मं'राउ—(ख ग) मेरोः, पुव्वासए—(ख ग पं) पूर्वस्या दिशि ।
 ३.१.११ ज्या—(ख ग प) मेघेद्वर ।
 ३.१.१३ विवक्ख—(ग पं) क्षत्रु ।
 ३.१.१४ घरसिंग—(ख ग पं) गृहशिखराग^५, पञ्जरिय—(ख पं) क्षरितपानीयम्, घणु—(ग पं) मेघः ।
 ३.१.१५ द्विसमाणरिद्धि—(ख ग पं) दिक्मानश्रद्धि^६, या या दिक् अवलोक्यते तत्प्रमाणा^१ शस्य-रिद्धिरित्यर्थः ।
 ३.१.१६ कणकणिगदसण—(ख ग पं) दशन-दन्तकम्पजनक, विळु—(ख ग पं) कन्दरं विवरम् ।
 ३.१.१७ सरळु—(ख ग पं) वृक्षविशेषः; सरळु " तरळु—(ख प) सरलफलन्तहरिणी—प्राञ्जल-फालविशेष^७ कुवाणाभि हरिणीभि^१ तरळं—चंचलम् ।
 ३.१.२० मणिसारपाथार—(ख पं) रत्नमयप्राकार[] ।

[२.१८] १ पं चिवुकनं, अथवा चिवुक्तं । [२.१६] १ पं "व विज्ञाऽपमानो । [२.२०] १. ग "यतो ।
 २. पुव्वासिय । [३.१] १ पं सुषमसुषमां । २ पं "स्थिरतया । ३ ग "मनि । ४. पं "रायं ।
 ५ पं दिक्समानाश्रद्धि । ६. पं "माण । ७ ख ग प्राञ्जलफाल ।

- ३.१.२४ (ख ग) मड^१—(ख ग पं) मड. वृक्षविशेषः ध्वनमृद्विशेषश्च, (ख ग) लतामण्डपादि(?); निबन्धाणह^२—(ख ग पं) राजकुलानि ।
- ३.२.५ वाडीड—(ख ग) तालाव, वाटिकाः; सालड—(ख ग पं) वृक्षविशेष, ताल-मञ्जीर-समताला-दिवाद्यवादनविशेषश्च, स च महापुराणटिप्पणके नीलञ्जसा^३ नृत्यसमये विशेषेण व्याख्यात^४ इह द्रष्टव्यः^५ ।
- ३.२.६ सरपाळिड—(ख ग पं) सरोवरपाल्यः, (ख ग) वेदशास्त्रे कामयुक्ता, विडंगणह वणियड—(ख ग पं) विडङ्गाः वृक्षविशेषाः, ^६नखाः-अं वविशेषा. ^७तै. वणियड—उपलक्षिताः, ^८वा वणियड—वणिकाः—लघुनिरन्तरवृक्षविशेषसमूहाः, वणि इति लोके, वेश्यापक्षे विडंग ^९वणियड—विटैरङ्गेषु नखैः, वणिता ; गणियड—(ग पं) गणिका, वेश्याः ।
- ३.२.७ मुणिवर—(ख ग पं) अगस्त्यिकवृक्षविशेषः^६, मुनिप्रधानाश्च ।
- ३.२.८ सुपक्षोहरड—(ख ग प) शोभनपयोवारिण्यः, स्त्रीपक्षे शोभनपयोवरा, सुरमण्डि—(ख ग पं) सुरमण्य, शोभनरमण्यः सोपानपङ्क्तय, (पं) स्त्रियश्च, (ख ग) स्त्रीपक्षे शोभनरमणशीला, रमण्डि—(ग) स्त्रियः ।
- ३.२.९ सहळ^१थाणहं जगदाणहं—(ख ग पं) मण्डपस्थानेषु फलै सहितानि शोभनानि पत्राणि, जन-दानपक्षे तु सफलानि जनाना चिन्तितफलसम्पादकानि शोभनपात्राणि^२ उत्तम-मध्यम-जघन्यभेदभिन्नानि यति-श्रावक-श्रा[?]वका-अविरतसम्यग्दृष्टिलक्षणानि ।
- ३.२.११ गयडळाहं—(ग पं) हस्तिसङ्घातानि, रयणुह्यहं—(ग पं) रचना दन्तास्तेषां र्क् दीप्तियेषु, बालकपक्षे रत्नाभरणदोषियुक्तानि, डिमरुयहं—(ख) डिम्भाः बालका. तेषां रत्नाभरणदीप्त्या, (ग) लेककानि(?)बालकानीत्यर्थः ।
- ३.२.१२ वज्जयंतु—(ख ग) वज्रदन्तु ।
- ३.३.१ ऽञ्ज—(ग पं) अञ्ज स्वच्छं निर्मलमित्यर्थः ।
- ३.३.२ कमळा ह्व—(ख ग पं) लक्ष्मी इव ।
- ३.३.४ सायरचंदु—(ख) सागरचन्द्रनाम, वाहरइ—(ग) आकारयति ।
- ३.३.७ हवि—(ख ग पं) हवि. अग्निः, महाणसि—(ख ग पं) रसवत्याम्, (ख) रसोई लोके; पमणञ्चि—(ख ग पं) पचने छवि. तेजः प्रभावमित्यर्थः ।
- ३.३.६ मरगाय^१सामलिया—(ख ग पं) मरकतमणिमिती कृतव्यामवर्णाः; गोरंगी—(ख ग पं) उज्ज्वल-गौरशरीरायि, माहं ^२कलिया—(ग पं) भृतरिण न ज्ञाता^३ ।
- ३.३.११ अस्थिजण—(ख ग पं) थाचकजनाः; पडमालं करिड—(ग पं) लक्ष्म्यालङ्कृत, महापडसु—(ख ग) महावज्रनामा ।
- ३.३.१२ अरियकरु—(ग पं) गृहीतसिद्धादयः ।
- ३.३.१५ हरिणकसिया—(ख ग पं) चन्द्रकान्तिशोभा^४ ।
- ३.३.१८ वणमालह्वे—(ग पं) वनमालापाम् ।
- ३.४.७ संथविड—(ख ग पं) कृतयुवराजपट्टवन्धः ।
- ३.४.८ देहि आपसु जीवि—(ख पं) यस्यादेशदत्ते जीवितं मन्त्रि [मन्व्ये ?] ते कुमार मन्त्री सामन्त्रादि ।

[३.२] १. पं मडु^१ । २. पं निय^२ । ३. पं नीलंयसा । ४. पं ऽद्याता । ५. पं ऽव्या । ६. पं नख्खा । ७. पं तैः उपलक्षिताः । ८. पं अगस्त्यिक^३ । ९. पं पत्राणि । [३.३] १. ग ज्ञाता । २. चंद्रकान्ति^४ ।

- ३.५.२ सुबंभुतिलउ—सुबन्वुतिलको मुनिः ।
 ३.५.१३ राउत्तिह—(ग पं) राजपुत्रे ; उयहिचद्दु—(ख पं) सागरचन्द्रः ।
 ३.६.१ राय ...ताउणो—(ख ग पं) क्रोधादि-विकथादिनिर्नाशकः ।
 ३.६.७ परिगव—(ख ग पं) प्रागेव ।
 ३.६.८ इह निम्मलु—(ग पं) ईदृशो^२ निर्मलः ।
 ३.६.१० विहिणा—(पं) अगमोक्तविधिना ।
 ३.६.१२ मणि निणणउ—(ग प) कृताश्चर्यवितर्कः ।
 ३.७.१२ भवकाळसप्पु—(ग पं) भव एव कृष्णसर्प ।
 ३.७.१३ विस्सरिस—(ग पं) अद्वितीयः ।
 ३.७.१४ उद्धरिय—(ग) उद्धृतः ।
 ३.८.२ विहउप्फडु—(ग पं) विकलगात्र ।
 ३.८.१० नउ वंऊइ—(ख ग पं) शरीरं न मोटयति ।
 ३.८.१२ निलउ—(ग प) स्थानम् ।
 ३.८.१३ चयणिज्जहे—(ग पं) त्यजनीयाया, अविज्जहे—(ख ग पं) अविद्यारूपायाः मोहवृद्धिहेतुभूताया^१
 इत्यर्थे, तहे^२ (पं तहो)—राजलक्ष्म्याः, अविज्जवेण^३—(ख ग पं) शंभ्रमेव, विलउ^४—(ख ग प)
 परित्यागः ।
 ३.९.२ निग्गडु...तउ तं किर—(ख ग पं) तत्तप किल इन्द्रियाणा निग्रहः ।
 ३.९.७ घरकज्जुओ—(ग पं) त्यक्तगृहस्थव्यापारः ।
 ३.९.१० आहार...ग्घविउ^१—(ग पं) आरनालेन कञ्चिन्नेन सहितः आहारः ममाय योभयः इति
 संशितः^२ ।
 ३.९.१२ पारणकज्जु—(ग पं) पारणार्थम्, सुणि—(ख ग पं) जानीह ।
 ३.९.१६ दिणसंज्जहे—(ग पं) दिन-सन्वयार्थम् ।
 ३.९.१७ मरुभोयणहिं—(ख ग) वायुभोजनेषु सपेषु ।
 ३.९.२८ अज्जित्तवफलु—(ग पं) अजित्ततपःफलं अशुभमनिर्जर^३—शुभमर्वावित्तरक्षण येन ।
 ३.१०.१ वाउ—(ख ग पं) वातः ।
 ३.१०.४ अवाहिय^१—(ख ग पं) ज्याघिरहिते वाघारहिते च ।
 ३.१०.६ इय तवफलु महंत—एतस्य कञ्चिकाहारस्य तपसः फलं महत्, इय तणुपह—(ग पं) एषा
 शरीरप्रमा ।
 ३.१०.१० विहियतवंतसु—(ख ग पं) अनुष्ठिततपोविशेषः ।
 ३.१०.११ जणकिण्णी^३—(ख ग पं) जनसङ्कोर्णा^४, विट्ठिण्णी—(ग) विस्तीर्णा ।

[३.६] १. पं इउ । २. ग ईदृशो । [३.७] १. पं उद्धृत्य । [३.८] १. ख ग भूताया । २. प तहो ।
 ३. ख ग अत्र । ४. पं ओ । [३.९] १. पं ग्वविओ । २. पं प्रशसित । ३. ग निज्जरे । [३.१०]
 १. अवाहिय । २. पं तवहलु । ३. पं किन्ती । ४. पं संकीर्णा ।

- ३.१०.१२ सुचित्त (पं सख्मठ)—(ग पं) मुचित्तः सामिप्रायः^१ वृत्तं इत्यर्थः, नामै^१ सूरखेण—
(ख ग पं) सूरसेननाम्ना इम्पः श्रेष्ठिः ; धणहत्तठ—(ख ग पं) वनाढयः ।
- ३.१०.१४ सच्चित्रय—(ख ग पं) तीक्ष्णोक्त ।
- ३.११.१ तौहिं—(ग) तादवतलः, सक्रममचिणं(पं °मावेणं)—(ग पं) स्वकर्मणा स्वकीयमनोवगापार-
भव^१ प्रादुर्भावो^२ यस्य ।
- ३.११.२ वाहिं...घस्थु—(ख ग) व्याधिसतै. प्रस्त. पीडित (पं) गृहीतः; निष्पद्—(पं) अनाद्वैय-
मूर्ति[], अञ्जियपुवत्रपाचिणं—(ग पं) पूर्वोपाश्रितरापकर्मणस्तेन ।
- ३.११.४ °वाठ—(ख ग पं) वातो व्याधिः ।
- ३.११.५ कंतह—(ख ग) मार्यावलुक्कः ।
- ३.११.८ सहुद्ध—(ग) ढष्ट[षोष्ठ]सहितम् ।
- ३.११.९ सखुदु—(ग) स क्षुद्र, ससुदु—(ख ग) स्वमुद्राङ्कितम् मुद्रासहितम् ।
- ३.११.१५ रह्यावणु—(ग पं) सर्वेषां सर्वे.^३ प्रीतेर्वा^४ जनकः ।
- ३.१२.१-२ नववसंतओ हणुवंतु व—(१) विरहा "थंतओ—(ग पं) विरहातुरेण रामेण हनुमान्
आलोच्यमानः, नववसन्तस्तु विरहातुरामाभिरालोक्यमानः, (२) माह्यसुत्रियासु—(ग पं) हनुमान्
माहता वायुना पित्रा चुम्बितास्य. चुम्बितमुखः, नववसन्तस्तु भारता दक्षिणवायुना कामोद्रेकजननेन
चुम्बितदशदिशः ।
- ३.१२.५ मानहो मडखिज्ज—(ख ग पं) मानस्य मदः क्षीयते ।
- ३.१२.६ करंति...सुस्मह—(ग पं) गृहस्योपरि सुष्टुमति अतिशयेन अनुरागद्वि कुर्वन्ति ।
- ३.१२.८ पहावह—(ख ग पं) प्रधावति; पहावह—(ख ग पं) प्रभावती मति कान्तिमती नायिका ।
- ३.१२.९ विरह निद्राडह—(ख ग प) विरहं निद्राटयति, स्फोटयति^१; (पं) निद्राटह—(पं) स्निग्धा-
सजलअटवो ।
- ३.१२.१० माहह...वजह—(ग पं) भ्रमरो यथा वर्जयति मालतीकुसुमम्, पाटलादिकुसुमेषु तदा तस्य
शक्ते [आसक्ते.] ।
- ३.१२.१२ वेयल्लं—(ग पं) क्षीघ्रेण ।
- ३.१२.१३ संत...किं सुय^२—(ख ग पं) शुकपक्षसमानै. हरितपर्णै, मुखसमानै सुरवतपृष्णैः भ्रान्तचित्तो
जन. किशुका. एते इति जानाति ।
- ३.१२.१४ पुज्जसमारह—(ख) समारति 'पूजा, समारह—(ग) करोति, वट्टह—(ग) वसन्ते;
मिहुणहं—(ग) मिथुनस्य स्त्रीपुष्पयुगलस्य, हियह—(ग) हृदये, समारह—(ग) समा रतिः, ^३समाना
रतिः, समद्युतिः इत्यर्थः, (ख) हियह समारह वट्टह—हृदये रति प्रवसन्ते ।
- ३.१२.१५ तुरयहिं...न चिज्जह—(ग पं) आद्रस्वादिक्का.^४ चणका; न चिज्जह—^५न भक्षयते^६, तदा
चणकानां प्रक्षत्वात् तद्भक्षणत् तुरगानां चूलप्रकोपनात्; (ख) अल्लहज्जि न चिज्जह—^७नोलचणका[]
न भक्षयते [यन्ते] ।

१. पं प्रायो । ६. पं नामह । [३ ११] १. ग °भावा । २. ग °भावा । ३. पं रतिः । ४. पं प्रीतिर्वा ।
[३ १२] १ पं स्फोटं । २. पं भंतचित्तु जणु जाणइ किं सुय । ३. पं समरातः । ४. पं आद्रस्वादिक्का ।
५. ग नाम । ६. पं भक्षते । ७. ग तुरं । ८. पं मूलं

- ३.१२.१७ वल्लह— (ख ग पं) वीणा ।
 ३.१२.१८ वसंतहो—(ख ग पं) वसन्तमासे, (ख) वा उपवासे; वसंतहो—(ख ग पं) तिष्ठ[ठ]तः^१ ।
 ३.१२.१९ नायहो जलणहो—(ख ग पं) उत्रलननाम्नो^२ नागस्य ।
 ३.१२.२० निवह—(ग) नृपतिः; विहउ—(ग) विभव; पथडीकयविहउ—(ख)प्रकट[ीकृत]
 विभवम् ।
 ३.१३.१ रविसेणें—(स ग) सूरसेनेन ।
 ३.१३.२ जन्तुच्छवि—(ग) यात्रोत्सवे, रक्खणसहिउ—(ख ग) रक्षा[रक्षक]संयुक्तः ।
 ३.१३.३ अहिभवणु—(ख ग) नागभवतम् ।
 ३.१३.४ फणसच्छायहो—(ख पं) फणेषु^३ सती शोभना छाया रत्नदीप्ति^४, शोभा वा यस्य^५ ।
 ३.१३.५ एत्तडउ करेज्जहि—(ग) एतावत्मान्न कार्यं कुर्या, म दिज्जहि—(ग) मा दद्याः ।
 ३.१३.७ सुमह—(ग) सुमतिनामा ।
 ३.१३.८ तेहि—(ग) तामिश्चतस्रभिः स्त्रीभिः ।
 ३.१३.१२ वज्रगयसत्तउ—(ख ग पं) व्यपगतसत्त्वः ।
 ३.१३.१३ केवलवाहहो—(ख ग पं) केवलज्ञानधारकस्य ।
 ३.१३.१४ सुवज्य—(ख) व्रतिका [सुव्रता नाम जायिका], चयारि^६वि कंतउ—(ख) वतु.मार्गा,
 निखलंतउ—(ख ग पं) गृहीतदीक्षा ।
 ३.१३.१६ एउ चयारि " पियउ—(ग) एता चतस्रः प्रियाः जाताः ।
 ३.१४.४ विज्जुच्चरहिहाणु—(ग) विद्युच्चराभिधानम् ।
 ३.१४.६ वरु (पं °धरु)—(ख ग पं) प्रधानम् ।
 ३.१४.७ पलयमहामरु—(ग पं) प्रलयकालमहावातः ।
 ३.१४.१३ जगंतो वि—(ग पं) जाग्रदपि ।
 ३.१४.२१ °भाविणि—(ख ग प) प्रतिभासिनी^७ वल्लभेत्यर्थः ।
 ३.१४.२३ विणु नित्तिए—(ग) नीत्या विना ।

सन्धि-४

- ४.१.१ दट्टु न सहंति—(ख) दृष्टि नावलोकते, दट्टु—(ग) द्रष्टुमवलोकयितुम् ।
 ४.१.४ मगहाहिउ—(ख) श्रेणिकु [°कः] ।
 ४.१.६ धाराहरे—(ख ग पं) मेघे^१ ।
 ४.१.८ एयहो—(ग) अर्हद्दासस्य, पियहो—(ग) प्रियाया ।

१. पं तिष्ठततः । [३.१३] १. ग फणासु । २. पं यस्याः । [३.१४] १. ख^१पिणी, पं^२दिनी ।
 [४.१] १ पं मेघ ।

४.१.९ जक्खु—(ख) जस [यस] कथा ।

४.२.२ सहत्त—(ग) सचित्तः सावधानः, संतप्पिउ—(ख ग पं) नामेदं श्रेष्ठि[ठ]नः; घणहत्त—
(ग) घनाहयः ।

४.२.५ जिणयास—जिनदासः ।

४.२.७ उक्कहुक्क—(ख ग) डाक डिडिम, समाणइ—(ख ग पं) सहिते, आवाणप्—(ख पं)
मद्ययानगोष्ठ्या मिलित्वा मद्यपानस्वाने ।

४.२.१० छलय (ख) टोंटा नामम्, छलयनामजूयारें—(ग) छलकनामद्यूतकारेण ।

४.२.११ पमणइ—(ग) जिनदास [उत्तरं ददाति], तउ—(ग) तव ।

४.२.१३ विप्फारहिं—(ग पं) प्रयोगिभिः; हेंवाइउ—(ख ग पं) गर्व नीतः ।

४.२.१५ पग्गिअ "जायउ—(ख ग) प्रागेव प्रतिज्ञा कृत्वा ईर्ष्या गतः ।

४.२.१६ निरगलु—(ख ग पं) निवारकरहितम्, असिहुहिअप्—(ख ग पं) छुरिकया ।

४.३.१ वं वहयस्—(ग) तं व्यतिकरं वृत्तान्तम्, अरुइयासें—(ख ग) अर्हदसिन भ्रात्रा [भ्रात्रा] ।

४.३.२ अंतइं धोविवि—(ख) अन्तनिये ("प" या "वे") सिचि (?)

४.३.८ महमाइहि—(ख) वडउ भाइउ मदीयं मम भ्रातुः ।

४.३.१२ भवजलु—(ख पं) संसारजाहयम् ।

४.३.१४ कम्मा"दप्पिणिहि ओसप्पिणिहि—(ख) कर्माश्रव^२स एव^३ मरत् वात, तस्य दपः उत्कटता,
सा विद्यते यस्यां सा अवसप्पिणी; कम्मा "दप्पिणिहिं—(ग पं) कर्मभिरभिभूतं^३आशयं चित्तं तदेव^३
मरत् वातः, तस्य दपः^३ उत्कटता सोऽस्याः (सोऽस्या अस्तौति) सा कर्माश्रयमरुद्विणी, तस्यां
[अवसप्पिण्यां] ।

४.३.१५ तमनियह—(ग पं) अज्ञाननिकरः ।

४.४.१२ जयसासण—(ख ग पं) प्राणिनां आश्वासकः, अथवा इहलोक-परलोककाकाशानिराकारकः ।

४.४.१३ घर (पं घरा)—(ख ग पं) अम्बुद्वारकम् ।

४.५.३ सहामासिरीप्—(ख ग पं) सभाया भासनशीलया शोभायमानया ।

४.५.४ ससामंतविंदो—(ख ग पं) सामन्तवृन्दसहितः ।

४.५.५ सरंतो—(ग) स्मरन् सन् ।

४.५.६ मयालोयणीणं—(ख ग पं) मृगवदा[^३वत्^३]लोचनीनाम् ।

४.५.६ मणत्थोहयेणो—(ख ग पं) मन एव अर्थोव. तस्य स्तेनश्चोरः, परहृदयहारकः इत्यर्थः ।

४.५.७ ससुद्धंतरावो—(ख ग पं) उच्छ्रन्तु कोलाहलः ।

४.५.९ रमाळीढवच्छो—(ख ग पं) रक्ष्म्यलङ्कृतवधस्थलः ।

४.५.९ पयापालणिट्टो—(ख ग पं) प्रजापालनमिष्टं यस्य ।

४.५.१३ तवो सचिरत्ते—(ख ग) तद्दिनात् सप्तमदिने ।

[४.२] १. पं मद्ययानामिलित्वा गोष्ठ्या । [४.३] १. पं संसारं । २. ग तदेव । ३. पं भूत ।
४ पं स एव । ५ पं त्वर्प । [४.५] १. ख ग शालाया । २ पं लंड ।

४.५.१४ वासधामे—(ख ग पं) वित्रशालिकायाम् ।

४.५.१५ तमोसेसरामे—(ख ग पं) रात्रिगेपे रमणीये ।

४.५.१६ तूलियंके—(ख ग पं) तूलिचिह्ने तूलिमध्ये च ।

४.६.२ जोड्य सध्वासं—(ख ग पं) उद्योतितसमस्तदिशम्^१, सध्वासं—(ख ग पं) अग्निम् ।

४.६.४ कूड्य—(ख ग पं) गण्डित^२ ।

४.६.५ मयर "पायारं—(ग पं) मकरमत्स्यकच्छरानां प्रकारा भेदा. यत्र, पायावारं—(ख ग पं) समुद्रम् ।

४.६.६ सुयणालोयं—(ख ग) स्वप्नालोकम् ।

४.६.१० परमर्थं—(ग) सत्यस्वरूपम्, (ख) परमं अत्युत्कृष्टं अर्थं पुत्रलाभलक्षणम् ।

४.६.११ जंबुफलालोप—(ख ग पं) जम्बूवृक्षफलालोकनेन ।

४.६.१३ रचनाहारो—(ख ग) रत्नाना धारकः, (पं) रत्नधार ।

४.७.३ कालसङ्—(ख ग पं) दोहदलम्पटानि ललितमनि मुकौमलानीत्यर्थं, सालसङ्—(ख ग पं) बालस्ययुक्तानि ।

४.७.४ सिय—(ख ग पं) पाण्डुर ।

४.७.५ मरगय"खहरिया—(ख ग पं) मरकतकलशै शोद्धरिता, अग्रभागे मरकतकलशोपेता इत्यर्थः ।

४.७.९ नव "पश्रीहरिया—(ख ग पं) प्रावृष्टक्ष्मा नव पयसा अग्निनवपानीयेन पूर्णा पयोवरा^३ मेधा. भवन्ति गर्भवत्यां तु नवपयसा दुग्धेन पूर्णा. पयोवरा. स्तना. भवन्ति; आसन्न सिरिया—तथा प्रावृष्टक्ष्मां वासन्नं ज्येष्ठानक्षत्रं भवति, गर्भवत्यां तु आसन्ता. ज्येष्ठा प्रसवनकर्मकुशला. वृद्धा स्त्रिय. सुयिन्यो (?) भवन्ति ।

४.७.१० रोहिणितिप्"लंछणे—(ख ग) रोहिणो नक्षत्रे स्थिते चन्द्रे, मयलंछणे—(ख) सोमवासरे ।

४.७.११ पचूसे—(ग पं) प्रभाते, पस्य—(ग) प्रसूता ।

४.७.१३ कण्ण "पिगियङ्—(ग) कर्णयोः पतितमपि न श्रूयते ।

४.८.१ अलंक्रियमिसंनेण—(ख ग पं) अलङ्कृतं भूपितं निशान्तं राश्रवसानम्, राजगृह वा येन सूर्येण, (ख) प्रभातेन, (ग) कुमारेण च, बाङ्गेण—(ग पं) तेन जम्बूस्वामिनाम्ना, पसरणे—(ग पं) प्रसरेण वा प्रभातेन वा ।

४.८.२ स्याहरे—(ख ग पं) प्रसूतिगृहे, दिण्ण "निहिचा—(ग) कृतदीपोवदंति निक्षिप्ता, (पं) दिनदीपोवप्रभाकृता तद्वत्, कथंभूतेन तेन बालेन प्रभातेन वा ? (४.८.१) तथा तरुणा"तेपुण—तत्पुण-श्रवासा अरण्यचारवत् च वासावादित्यव च सत्यैव तेजो यस्य बालस्य प्रभातस्य वा तेन ।

४.८.३ विद्धि "लोपहिं—(ग पं) वृद्धिवर्द्धमाने[वर्द्धापने] आगच्छद्भिः लोके ।

४.८.४ दरमत्त—(प) यौवनमदेन (ख ग पं) ईषन्मत्त [] ।

४.८.५ महायदृसंघट्ट—(ग पं) महामैलापकसङ्घट्ट ।

४.८.६ पंडो "नेत्तेहिं—(ख ग) पण्डं देशोऽङ्गवानि प्रभावन्ति नेत्रदेशोऽङ्गवानि च तै. (प) पण्डो बालं चीर प्रभावन्त नेत्राणि च, अथवा पण्डो देशोऽङ्गवानि च प्रभावन्तनेत्राणि च ।

३. पं अके । [४.६] १. पं सर्वदिगं । २. पं ता । [४.७] १. ख ग बालसं । २. पं पूर्णा । ३. पं धरा । ४. पं स्तना । ५. पं ज्येष्ठा । ६. पं कुशला । ७. पं म्रियया । [४.८] १. ग च । २. लछन ।

- ४.८.६ त्रियाणेषु—(ख ग पं) विधानेषु चन्द्रोदकेषु ।
 ४.८.७ सक्काइहायार—(ख ग पं) ^३पञ्चवर्णैस्त्रयनुपसदृशाकाराः ।
 ४.८.१२ अकृत्तिष्—(ख ग) अकृत्तिकै, निरंतरंतरं—(ख ग पं) अतिशयेन निरन्तरम्; निरन्तमन्वरं—
 (ख ग) अन्नरहिताकाशम् ।
 ४.८.१३ असारयं—(ख ग पं) त्रिक्रमम्, खयं—(ख ग पं) नष्टम् ।
 ४.८.१४ हक्खसतई पकुल्लिया—(ग) सा वृक्षमन्तति प्रकुल्लिता; तई—(ख ग पं) तस्मिन् काले;
 वणासई सई—(ख ग पं) न केवलं वृक्षमन्तति, सई—पापि वनस्तरिरेषु प्रकर्षेण पुष्पिता ।
 ४.८.१५ सुवण्णं सासुरा सुरा—(ख ग पं) सुवर्ण इत्यादिः सुवर्णवृष्टिम्, किं लक्षणम्? (ग पं)
 भासुरां दीप्ता मुञ्चन्ति तथा सुराः शोभन रा इव्यं मुञ्चन्ति, के ते? सासुराः असुरकुमारैः समन्विताः
 सुराः देवाः ।
 ४.९.५ गृहं सत्यइ—(ख ग प) गुरुभाष्यायः^१ निमित्तमात्रम् शास्त्राणि पुनः पठितानीव स्वयमेव
 तेन ज्ञातानि, (ग पं) तथा मन्त्राश्च शास्त्राण्यायुधानि स्वयमेव तेन ज्ञातानि, मतत्यइ सत्यइ—(ख)
 तथा मन्त्राणि च शास्त्राणि च आयुधानि ।
 ४.९.६ नीसेसाडं अमसियडं—(ग पं) तथा नि शेषाः समस्ता कलाः अमस्ता; कथंभूता कलाः?
 संपाइयं रसियडं—(ग प) संपादितं च तत् त्रिवर्गफलं च धर्मार्थकामफलं तेन रसिकाश्चित्तानन्दजनकाः
 यास्ताः ।
 ४.९.९ तिहुयणममि सइत्तिष्—(ग पं) त्रैलोक्यभ्रमणे दत्तचित्तमा ।
 ४.१०.४ कवणुं सुरसरि—(ग पं) ^१को [हरित]? न कश्चिदस्ती^२ अस्ति यो यशसा धवलतः ^३सुरकरि-
 एरागनिद्वित्यपुणेन न जात; सा सरिं सुरसरिं—तथा सा का सरित् नदी या यशसा धवलिता सुरसरित्
 गङ्गातुल्या धावल्यपुणेन न जाता ।
 ४.१०.५ तुहिणायल्लु—(ग) हे(हि)माचलः ।
 ४.१०.७ लुइ (पं लोइ)—(ग पं) लोद्रान्म ।
 ४.१०.१० मइ मणु—(ग पं) मा दुःखभाजनं करोते; तत्किं द्वितीयमपि मनोऽस्ति ?
 ४.११.१, २ काहे विं कवोले खिच; पल्लइ मणु—(ग पं) विरहानलेन संप्रचालितः^१ स चासौ
 अश्रुजलोधरश्च तेन^२ तु हलितं प्लावितं^३ स चासौ कपोले क्षिप्तो; दत्तो हस्तश्च त हस्तं क्षूर्यं चूडकरहितं
 कुर्वन्, पल्लइ—प्रवर्त्तते (परिवर्त्तते?), कथं पुनः हस्तस्य चूडकरहितत्वं संपन्नं? (पं) अश्रुजलोधरेन
 विरहानलसंपन्नाग्निवर्षेण ओहलितस्य (?) दन्तमचूडस्य अवस्थेतिशयेन(?) चूर्णोद्धृतस्वनेपटस्त्वात् ।
 ४.११.५ कज्जुं तुं—(ग) वमलशय्याम् (पं) पञ्चशय्या ।
 ४.११.६ नीसा (जु) हुंतु—(ख ग पं) नि इवास एव^४ उल्लिख्युर्णं अररुष्टुष्टिका विरहानरस्य बहिर्निक्षेपकं
 यदि नाऽपविष्यत्, बदिर्दोह—(ग पं) बन्दीना नग्नाचार्याणां, सदीहं सघातः ।
 ४.११.८ कंठाळुं—(ग पं) कसणि (?) ।
 ४.११.६ उत्तालियाए—(ग पं) उत्पुकर्या ।

३. पं चनुप मन्वा आकाश । [४९] १ ख ग ंठ्याया । [४१०] १. पं कश्चिन्न हस्ति । २. ग करो । ३. मइ । [४.११] १. गं उल्लिखितं । २. पं तुलितं ओह प्लां । ३. पुंज । ४. पं उल्लिख्युर्णं अरगर्त्तघटिका । ५. ग बंदिना । ६. पं कंठाणलु । ७. पं कयाः ।

- ४.११.१० कवरी—(पं) वेणी ।
 ४.११.१२ मयर्जल—(ग) प्रेमसलिलम्, (पं) शुकः ।
 ४.११.१४ नहे—(ख ग) नमसि ।
 ४.११.१५ नसावडह—(ख) न संपद्यते ।
 ४.१२.३ मलतकणय—(ख ग पं) कनकमाला^१ ।
 ४.१२.५ वथसवणञ्जुत्ति—(ख) कुवेरसदृशम्, (ग) ऐश्वर्यादिना वैश्रवणयुक्तिरुपापत्तिर्यस्य ।
 ४.१२.६ रुवलच्छी—(ग पं) रूपश्री ।
 ४.१२.७ फेरियाड—(ग प)^२ हस्तेनोत्तिष्ठत्य भ्रामिता^३ ।
 ४.१२.११ नासा^४ लकलु—(ख ग पं)—संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंशस्वरूप भाषात्रय तत्त्वक्षण च; लकलु—
 (ख पं) तद्वाच्यम्, दसण^५—(ग प) दर्शनानि षड्, नशा—(ग पं) नया. नैगमादय. सप्त ।
 ४.१२.१३ सचित्तु—चित्रेण सह ।
 ४.१३.१ नवल्लु—(ग) अभिनव, (प) अभिनव अग्यजनासम्भवम् इति, उस्मीकह—(ख ग पं)
 प्रकटीभवति ।
 ४.१३.३ आडचिथ—(ग पं) कुश्यायमान, अंगुलिताणावलि—(ग पं) अङ्गुलयः (पं) घ्राण अङ्गुलिः)
 पोडशका. तासा आवलि^६ पडिक्तः ।
 ४.१३.७ नासावंसु—(ग पं) नासिका, अहरमुद्—(ख ग पं) अघरस्वरूपम्, करमुद्दव—(ख ग प)
 हस्तमुद्रिकेव ।
 ४.१३.८ अणुगुणु^७ टंकारह—(ग पं) तासा कोमलरुचिनिद्वारेण मकरचिन्म^८ काम^९ धनुषो गुणं दोर
 टङ्कारयति, वादयतीव ।
 ४.१३.९ अचछं—(ग पं) अचछं पत्तलं निर्मलं वा ।
 ४.१३.१० रेहाइद्धु—(ग पं) रेखायुक्त, कलु—(ग पं) मनोज्ञ, विजयसंखु—(ग पं) त्रिभुवनविजय-
 सूचकशङ्ख, नज्जह—(ग पं) ज्ञायते ।
 ४.१३.११ चिडंबह—(ग पं) कदर्ययते ।
 ४.१३.१२ उक्कुकिकरियसिहिण—(ग प)^३ प्रथमतो उद्गतवन्ती, सिहिण—स्तनी, रटयइरायहो—
 (ग पं) कामस्य ।
 ४.१३.१३ गुळिया—(ख ग) 'गुल्ही' इति लोके ।
 ४.१३.१४ रोमंचिणु^४—(ग प) रोमावल्या ।
 ४.१३.१६ रंसागढोह व^५—(ग प) रंसा-कदली, तस्याः गर्भो (?) हव, रटरामहो—(पं) रत्या
 रमणीयस्य, वम्महधामहो—(पं) म-मथवलगृहस्य-शोणिततलस्य ।
 ४.१३.१७ कुग्मायारु—(ग प) कूर्मोन्नताकारम् ।
 ४.१३.१९ ताड—(ग) ताश्चतस्र, अहिट्टिड—(ग पं) अघिच्छिता यत्र देवो स्थिता प्रत्यस्तीमृता न यत्र
 दृष्टा दृश्यते ।

[४.१२] १. ख ग^१माला । २. पं हस्ते उत्तिष्ठत्य । ३. ग^२ता । ४. पं त्रमुद्भवण । [४.११] १. प^५लि ।
 २. ग^६विद्यु । ३. ग. प्रथम । ४. पं^७वह । ५. पं^८य ।

- ४.१४.१ मयणस्यर्णं व—(ख ग पं) मयनस्य शयनं शयना इव ।
- ४.१४.२ धारंति ताड—(ख ग पं) ताः धरन्ति, विह्वम...भहरं—(ग पं) ओष्ठम्, कथंमृतम् ? विह्वम... वंतुर—(ख ग पं) विद्रुमं प्रवालक हीरकश्च प्रसिद्धः तयोः रुचिः क्षीयति. तथा दन्तुर कर्तुरं विद्रुमोपमाधरविभ्रं शयनास्थानीयम्, हीरकनुल्या दन्तश्चिः पुष्पप्रकरस्थानीयेति ।
- ४.१४.५ चरुणञ्जविसाम—(ख ग पं) चरणानां पादानां छविः कान्तिः. तथा, 'साम—तुल्यता'; अहि-
कासि—(ग) अभिलाषेन, वाञ्छया, कमलेहि—(ग) पद्मे ।
- ४.१४.६ निययं...पसाणस्मि—(ग) निजमात्मानं क्षिप्त्वा कण्ठप्रमाणे ।
- ४.१४.७ सख्यदृष्टिखाड्याले—(ख ग पं) नाभेरधोरेखा सैत्रं खातिका तथा युवने, तिवकि—(ग पं) नाभेहरि रेखानयम् ।
- ४.१४.१० आयड—(ग) एता, निम्नविड—(ग) निर्मिता; पयावड—(ग) ब्रह्मा ।
- ४.१४.११ निचवि—(ग) दृष्ट्वा; हसिय—(ख) उद्वसितम्, (ग) उपहसति ।
- ४.१४.१२ नासंभति—(ग प) अस्माकमभंष्टमप्यमुमर्थं भवद्भिः सहोपोद्धृतं बवतुं (न) शक्नोमि ।
- ४.१४.११ लग्नु—(ग पं) लग्नः, जोईयें—(ग) उद्योतिष्केन ।
- ४.१५.१ पंचप्यथारु—(ख ग पं) पञ्चपद्मेष्ठीभेदभिन्नं पञ्चप्रकारम् ।
- ४.१५.२ केरकि—(ख ग पं) केरलदेशोद्भूतानायािकाः ।
- ४.१५.६ (ख) सज्जहरि—(ख) सहाचलस्य; कगिर—(ग) कण कण इति शब्दतः; कण्णावतंसु—
(पं) ताडयन्म् ।
- ४.१५.१० कॉलकि—(ग प) कोस्तलदेशोद्भूतानायािकाः; कॉलकमर—(ग पं) केशसंघातः ।
- ४.१५.११ उहीविय—(ख) उत्कृष्टं कृतम्, उहीविय... विडंडु—(ग पं) उहीपितम् उत्कृष्टं कृतं काम-
क्रोडनं यासां ताश्च तां रण्प्रपश्च^३ मर्मदाः तत्तद्देवोद्भूतानायािकास्तासां विडम्बकः^५ कदर्थकः;
पं नर्मदातटदेशो... ।
- ४.१५.१२ पथडिय दुरोरुनाड—(ख ग पं) ईपत् प्रकटितं लक्ष्मेशसंरूपो^४ येन ।
- ४.१५.१५ कीवड—(ख ग पं) वरीवानि ।
- ४.१६.३ सरकदल—(ग पं) तिर्यक्प्रसूनपत्रावली, कवली—(ग पं) लवङ्गः, कयलीसुहं—(ग पं)
कदलीप्रभृतिः ।
- ४.१६.५ नगोह—(ग पं) वटवृक्षः ।
- ४.१६.८ रइवराणता—(ग पं) कामादिष्टा, अवयवण—(ग) व्यावृता, (प) व्यावृत्तः; माहवसिरे—
(ग पं) वसन्तलक्ष्मी ।
- ४.१६.१२ धण...विडविणि—(ख ग पं) स्तनरमणप्रारमारकदयिता, निहुअणोकेलिहि—(ख ग पं)
कामक्रोडाया ।
- ४.१७.१ अणुण्ड—(ख ग पं) अनुकूर्णं करोति, परिहासा...मण्ड—(ख ग पं) विशिष्टानां परि-
भाषणयोग्यानि पेशन्तानि मनोज्ञवनानि भणति एव वक्ष्यमणा कथा येन ।

[४.१४] १ ख ग समा, पं समतुल्यता । २ प 'पोद्धत्ये । [४.१५] १. पं 'का । २ पं 'विय ।
३. पं 'तरीधश्च । ४. प 'विट' । ५. पं 'रूप । [४.१६] १. पं 'निहुवण' वैलिहि ।

४.१७.२ कुरभो—(ख ग पं) वृक्षविशेष, साण्डुजं न^२ आर्किगिभो सि—(ख ग पं) यतः यस्मान्
३ सामन्दो भवसि^३ आलिङ्गितः सन् ।

४.१७.३ हेम्बरुवृक्ष—(ग पं) बहुलवृक्ष ।

४.१७.४ कलिभो रून्ध—(ग पं) आकलितोऽसि ज्ञातोऽसि त्व अशोकवृक्ष इति, लड—(ग पं)
-पूर्या, पाय सुन्ध—(ग पं) यतः पादप्रहारेण त्व मूर्धं हससि, विकसति ।

४.१७.५ विदगीयवयण—(ग प) विपरोतवदना, पराङ्मुखा, पणवडुद्ध—(ग) प्रणयकोपा, (पं)
सभया—भयारित्यवतप्रणयकोपा [कोपा] ।

४.१७.७ परिशक्तवि—(ग) व्याघ्रवृक्ष ।

४.१७.८ विराड्—(ग प) विराजते, धाड्—(ग पं) घावति ।

४.१७.९ नववहुवहे—(ग) नवीनकान्तायाः ।

४.१७.१२ भावाणपुं—(ग पं) आपानके हि मद्यन-मद्यमानमेलापकस्थाने ।

४.१७.१४ मिञ्जन मयणु वयणु वहड्—(पं) मद्यानरहितप्रदेशे प्रसर-मदनवशादचलमस्तिपसकोप-
प्रदेशे वा रथत मुख धरतीति ।

४.१७.१५ फलिद्धमय अवाणयचमड—(ग प) एकटिककौशकपीयमानमद्य ।

४.१७.१६ मयणाहि—(पं) कस्तूरिका ।

४.१७.१६-१७ मयणाहि म्दंमरिसु मुहु किड पुड कडमंतु—(ग पं) निष्कलङ्क मुख कस्तूरिकातिकर्ण
कृत्वा सकलङ्क कृतमिति कूटमन्त्रोऽयम् ।

४.१७.२० दहासु—(ग पं) लडहिमा ।

४.१७.१ सं सक्त पवचु—(ग पं) तव शिष्यत्व सकलमप्युद्यान प्राप्तम् ।

४.१७.२२ कलड्—(ग पं) आकलयति ।

४.१७.२३ अकाळावहि पडिक्खलड्—(ग पं) परिष्कलड् वक्रोऽस्या अथरिजरे योजयति ।

४.१८.१ नञ्चंता मोरा—(ग प) जम्बूस्वामिनोऽभिप्राये मयूरा, नायिकया च तद्वचन छलितम्, त्वदोया
नृत्यन्तमिति, 'मोरा' शब्दो हि मयूरे आत्मीये च वर्तते इति ।

४.१८.२ कारंदाण रिडवरिणिहुं—(ग प) का रण्डाना विषवाना पड्कित चेत्यृच्छसि^१ । या तव
रिपुयुहेणोनामिति छलोक्या उत्तर^२ वक्तम्

४.१८.३ सरु चाने वहड्—(ग पं) सरु—शब्द. कोविलायाः कोमल एव वहति प्रवर्तते इति स्वामिनो
वच, तच्छ्लोकस्या प्रश्नं करोति, वः शर. कोमल एव वधते इति चेत्? उत्तरमाह—(ग प) य शर
मेदनश्चटापिते चापे गृह्णाति स पुष्पमयबाणत्वात् कोमलोऽपि वधते ।

४.१८.४ एयं च जणाण—(ग प) इद चारवृक्षेन^३ जानोहीति स्वामिनो वच, तव छलोक्तिः प्रिया-
कानं प्रियतमस्य आलानं समापण दुर्लभ दुर्भगजनानाम् ।

४.१८.५ सारंगं पड्डु गच्छ—(ग पं) सारंगं—हरिणी, दद्या घूर्ता इति (पं)
स्वामिनो वच, तत्र छलोकितः यदि सारङ्गो जलमाङ्गोपेना सारङ्ग गता भूमि प्रविष्टा ततः सा नृत्यतु, पदह
वाद्य त्व ! गच्छ ।

[४-१०] १ प कुरवो । २ प जन्म । ३. पं सामदं मि । ४ पं णडं । ५. गं हिम । [४.१८] १. अं से ।
२. दत्त । ३ पं चारवन वृक्ष । ४. लक्षण ।

४.१८.६ पिय...कामधेयु—इन्द्रगोपकान् रक्तकीटकविशेषान् विगतरेणून् निर्मलान्^१ पश्य पश्येति^२ स्वामिनो वचः, तत्र छलोकितः। यदि इन्द्रगोः कामधेयुस्तस्याः पादान् पश्यसि, विरेणून्—परिस्फुटान् तदा लङ्-पूर्यताम्, कामधेयुरियमिति, मणिग दुदुधु—याचय दुग्धम् ।

४.१८.७ जले "जलमि मंडु—(ग प) जले कङ्को वक्रः, हंगो चैय, हसो यद्यपि स न भवति, तथापि मन्दमन्दगतिः, क्व ? जलमि—जले, इति स्वामिनो वच, तत्र छलोकितः तु हंसो चिचय त्वमेव स कङ्को कं परमात्मा मुखं (पं स्वरूप) कौति (प कोपति) प्रनिपादयतीति^३ कङ्को, जलमि मंडु—त्रहे^४ जलस्वरूपे मन्द निरन्तर [तर] जलस्वरूपमित्यर्थः ।

४.१८.८ सुउ...कञ्जु नाह—(ग पं) शुकः। कोरो विशेषेण जलरतिस्तत्र [अत्र] का वाधा का पीडा इति स्वामिनो वचः, तत्र छलोकितः—यदि सुनः पुनो विलपति, हे नाथ ! तदा संक्रवि—सस्थाप्य श्रद्धा कुरु, यतः इद परकीयकार्यं न भवति ।

४.१८.९ म हे सरु...गिचचणहाणु—(ग पं) माघमासे सरः कमरुसरोवरः। शिशिरेण हिमेन दग्धं जानीहि त्वमिति स्वामिनो वचः, तत्र छलोकितः—माहेश्वरो महेश्वरभक्तः^५ गडुकादिकं ददाति^६ यदि शीतेन त्रियति^७ तदा म रेहिद्—त्रिदण्डी अतिशयेन त्रियता^८ यतो यस्य नित्यमेव त्रिसन्ध्यास्तानम् ।

४.१८.१० सुद्धिहे...कत कंतावसाणु—(ग पं) तापसाणा शुद्धेः कारणं कं-गानीयमिति स्वामिनो वचः, तत्र छलोकित कंतावसाणु^९—कान्तावशावत्तना रागिणा तापसाणां जलनानमात्रेण का शुद्धिर्न कदाचिदपीत्यर्थ [काचि० ?] ।

४.१८.११ केरेस...हरिणंकरेह—(ग पं) हे नन्वङ्ग त्व अय च कीदृशा वक्रा ? अतिवक्रासीत्यर्थः^{१०} इति स्वामिनो वच, तत्र छलोकित—हे नाथ यासौ तन्वङ्गो अतिवक्रा च सा हरिण-ङ्गस्य चन्द्रस्य रेखा द्वितीयाचन्द्रस्य कलेत्यर्थः न चाहं तथाभूता इति ।

४.१८.१२-१३ (पं) दोहडा —गौरी...सुकति । तं वा "न भंति ॥—(ग पं) गौरी गौरवर्णताम्रावरेण आरभतीष्ठेन सुकान्ता सुष्पुटमणीया केवल न भवति, किन्तु सामळी—श्यामवर्णताम्रावरेण सुकान्ता भवतीति स्वामिनो वच, तत्र छलोकित—संवा गौः, वसहं—वृषभेण, रमिय—सेविता, न पुनः तम्बा हरेण महेश्वरेण सेविता, हरेण पुनर्गौरी रमिता अत्रार्थं न कदाचिदपि [काचि० ?] भ्रान्तिः, सर्वेषा सुप्रसिद्धमेतत् ।

४.१८.१४-१५ जह साहिवि...सिगारसु । दूरंतरे...विसयकसु—(ग० प०) तत्रोद्यानवने क्रूडता^{११} जम्बूस्वामिप्रभृतीना योऽसौ शृङ्गाररस, मदनोऽपि तं यदि साहवि सककह—वर्णयितुं शक्नोति, अथवा सोऽपि न शक्नोत्येव, दूरन्तरे तिष्ठतु^{१२}, आरिसु^{१३}—अव्युत्पन्नः^{१४} अस्मदृश कविः^{१५} कथं परिजानाति, विसयकसु—(ख ग पं) शृङ्गारविषयविभागनिश्चयम् ।

४.१९.१ कामधेयु—(ग पं) कामस्य वेगे^१ आवेशे^२ अथवा कामवेदे^३ गुणवताकादिकामक्रीडाप्रतिपादके^४ शास्त्रे^५ ।

४.१९.६ विसइ—(ग पं) प्रविशति, वरंगु—(ख ग पं) नितम्बप्रदेशः ।

४.१९.८ विवरीयसुउ—(ख ग पं) विपरीतरतं (प० रतं) ।

४.१९.१० तलत्राईहि...सररी—(ख ग पं) तलत्राईहि—नरन्तो शरीरलघुत्वं स्थापयन्ती ।

४.१९.११ उरसोल्लिण^१...तरंग(ख ग पं) हृदयेन पानीयपिल्लणम् ।

५ प पश्यामंति । ६. प यतीति । ७ प जलं । ८ निरंतरजलस्व । ९. प भवित । १०. पं मि । ११ पं मूयते । १२ पं० मूयते । १३. पं वसान । १४. पं अतीववक्रां । १५ पं ता । १६. पं तिष्ठतु । १७ पं सो । १८ प. पन्मो । १९ पं कवि । [४ १४] १. पं वेग । २. पं श । ३. पं बंदो । ४. पं पादकं । ५. पं शास्त्रं । ६. ख ग रत । ७ पं सेल्लिण ।

- ४.१९.१६ भावास तवंगु—(ख ग) आवासं धवलगृहम् (पं) आवासधवलगृहे ।
 ४.१९.१८ जलकोल "परिहणाहे—(ख ग पं) जलकलोलैरितस्तत कृतवस्त्रायाः ।
 ४.२०.२ सईंठपु—(ग) स्वेच्छया, पोचईं—(ख ग प) परिधानवस्त्राणि ।
 ४.२०.९ हुलण—(ग पं) वेव ।
 ४.२१.२ दालिसालि—(ग प) दालिमपडितः, मंडमार—(ग पं) घनहृन्दवृक्षाः ।
 ४.२१.४ वारिलोललोलमाग—(ग पं) जलकलोलैरितस्ततः क्षिप्यमाणाः ।
 ४.२१.५ भूमिभायसूडिगृहिं—(ग पं) श्रोतयित्वा भूमिमागे वास्फालितं, वकपुहि—(ग) अहूविपुडि,
 (पं) अडविवाडे (हिंदो-अडे-टेडे), कुल मत्तल—(ग पं) कृत्यासारिणी, (पं) तल्ल—क्षिलराणि
 (हिन्दी-छिलला)
 ४.२१.७ वाह ।ट्ट—(ख ग प) घोटकसघाताः ।
 ४.२१.११ दोमियंग—(ग प) दुःखिताङ्गाः ।
 ४.२१.११ गुंठि (गोठुं)—(ख ग पं) भारः ।
 ४.२१.१२ तरट्टिलोट्टिया—नवयौवना, तरङ्गट्टिका, विसट्टवत्थ—(ख ग पं) नग्ना ।
 ४.२१.१७ सदाणं—(ख ग पं) समदम् ।
 ४.२१.१८ वेसा सु रंगं—(ख ग पं) वेवयाया सुरङ्गमत्यासवत्तम् ।
 ४.२१.१९ पई पत्तिगा—(ख ग पं) प्रभुः भृत्येन ।
 ४.२१.२० त्रियाणं—(ख ग पं) मणिवितानम् । अयामं—(ख ग पं) सामर्थ्यरहितम्; वलिट्टेव—
 (ख ग प) बलवता ।
 ४.२२.१ नाणुण—(ख ग पं) नागेन हस्तिना ।
 ४.२२.३ कियदूरवीरेण पडिकारेण—(ख ग पं) दूरीकृतप्रतीकारेण सुमटेन वा ।
 ४.२२.४ लमरेण—(ख ग प) भयानकेन ।
 ४.२२.५ चूरियभुयंगेण—(ख ग प) निर्दलितघोषेण ।
 ४.२२.६ दुठवारवारसल—(ख ग पं) दुर्वाराणां दुष्टानां (पं) दुर्वाराणामयज्ञाना ?) वारकस्य विजेतुः ।
 ४.२२.१० रणरंगलुद्धेण—(ग पं) सङ्ग्रामभूमौ जयकाङ्क्षिणा ।
 ४.२२.१३ वंध जणतेण—(ख ग पं) करबन्ध कुर्वता ।
 ४.२२.१७ कंबुह्य—(ख ग पं) श्रापीडित, धुयकधु—(ख ग पं) कर्मिनस्कन्ध, विहदियसिरायधु
 —(ख ग प) गलितदपरंवात् विवटितसिरायन्ध, संजातक्षिणिलसर्वगात्र इत्यर्थः ।

टिप्पण सन्धि ५

- ५.१.३ भावणं—(ख ग) प्राप्नम् ।
 ५.१.४ नियत्त—(ख ग) प्रवर्तितम् ।
 ५.१.५ बालु—(ख ग) जम्बूवामी ।

[४ २३] १ पंमाण । २. ख ग संघातः । ३. पंतागाः । ४. पंवना । ५. पं प्रभु । [४ २३] १. पं
 काक्षिणाः । २. पं धुव ।

- ५.१.८ एककु पासि—(ख ग पं) एकस्मिन् पाश्वे ।
 ५.१.१४ पायस्थव्रणफलपुष्प—(ख ग प) पादपुष्पे[डे]न ।
 ५.१.१५ नखलक्षसामिणा—(ख ग पं) नखनस्वामिना, चन्द्रेण ।
 ५.१.१८ रायसासर्गं—(ख ग पं) आज्ञा शासनम् ।
 ५.१.१६ राय...समीहमाण—(ख ग पं) आज्ञा प्रतीच्छन् ।
 ५.१.२० असोसाराणा—(ख ग) दूरीकरण ।
 ५.१.२१ सत्याणमुवविसंत—(ख ग पं) स्वकीयस्थाने उपविशन्तः ।
 ५.१.३० सुहि—(ख ग) सवजन [.] ।
 ५.२.४ मारुथवेयवहुत्तु—(ख ग पं) समीरणवेगादधिकवेगम् ।
 ५.२.६ हृत् गयणगह्—(ख ग) गगनगतिरहम् ।
 ५.२.११ उक्तलु—(ख पं) उत्सुकः ।
 ५.२.१४ अर्णगु धवह्—(ख ग पं) कामदेवो रवयति ।
 ५.२.१९ सुण्डमाला—(ख ग पं) मुकुटः ।
 ५.२.२३ मियक्के—(ग पं) मृगाङ्गेन विद्यावरुण, देवड—(ग) दातव्यम् ।
 ५.३.१ अलमसाहस—(प अह-अथ, सुसाहसु)—(ग प) साध्वससहितः ।
 ५.३.८ जिण...संघट्टणाहं—(ग पं) जिनभवनरमणीयत्वम्, (पं जिनभवन रमणं रमणीयत्वं) तेन संघट्टणं संवन्धी येषाम्, रवण—(ख) रमणीयत्वम् ।
 ५.३.९ निव्वासियाहं—(ख ग पं) उद्वासितानि, नग्नीकृतानि वा ।
 ५.३.१० रामहं—(ख ग पं) रमणीयानि ।
 ५.३.११ मारियाहं—(ख ग पं) मरणिकया भूतानि ।
 ५.३.१२ कयनीडहं—(ग पं) कृता निनाहलादिभिः पक्षिभिर्वा नीडानि गृहाणि येषु ।
 ५.३.१३ तरुनीरहं—(ग पं) तरुवस्तीरेषु तटेषु येषाम् ।
 ५.३.१५ परिरक्खियछल्लु—(ख ग पं) परिरक्षितं छलं पीरुषं येन, वयणं यह्—(ख ग पं) लोकवाच्य-
 तथा ।
 ५.४.४ गोहत्तणु—(ग) पीरुपत्वम्; सव्वास्सु—सर्वा[र्व?]स्यापि ।
 ५.४.५ मणुसह्य—(ग) पीरुपत्वम् ।
 ५.४.८ पासंगिड—(ख ग पं) प्रसंगीयातम्, लहुं—(ख ग पं) संक्षेपेण ।
 ५.४.९ समड—(ग) समयोऽवसर, सत्तुवरे—(ख ग पं) वैरिपर्वते, पवी—(ग) दच्छाः ।
 ५.४.११ साहेज्जड—(ग) सहायी ।
 ५.४.१३ विज्जु—(ख ग) वैद्यः; सप्पु—(ख ग) सर्पः ।
 ५.४.१४ गहु—(ख पं) व्यूहं, सयदिडहु—(ख ग) १५० ।
 ५.४.१७ अणुवल्लु (ख ग पं) साहाय्यनिमित्तं सैन्यम् ।

- ५.४.१८ समिथंङ्कु— (ग प) मृगाङ्केन सह ।
 ५.४.२ सन्वासे— (ख ग) अग्नी ।
 ५.४.३ कर्पणुत्तु^१ जलु— (ग प) कलान्ते प्रलयकाले भ्रमितमूर्ध्वकलोलमालाकुलित जलं यत्र ।
 ५.४.६ समं भासिरेण— (ख ग प) भापणशीलेन विद्याधरेण, समं—सह ।
 ५.४.८ विडम्पस्स (ख ग पं) राहोः ।
 ५.४.९ वंरुस्स पक्खिरायस्स— (ख ग पं) दुष्टाशयस्य गरुडस्य ।
 ५.४.११ भूर्हेनिहाणो^२— (ख ग पं) भस्मविधान ।
 ५.४.१३ खेयरो— (ख) गगनगति नाम खवर, रायत्राणी— (ग) राजवाणीम्; (ग) देवि पाणो—(ग)
 वस्त्रा हस्तम् ।
 ५.४.१५ खणद्धेन दिट्ठ सहाए— (ग पं) श्रेणिहस्य सभया क्षणाद्धेन विमानं दृष्टम् ।
 ५.५.१६ चित्तुत्तल्ले (ग पं) उत्सुकचित्तेन ।
 ५.५.१७ निवेण— (ख ग) श्रेणिकेन ।
 ५.६.१ सरसं^३— (ख ग पं) सहस्रामरसैकचित्ताः^३ ।
 ५.६.२ तंतवालदुल्लनिविड— (ग) सैन्यनिविडा, मडयड— (ख पं) भटसंघात, (ग) महसंघातम्,
 (पं) मडसंघातम् ।
 ५.६.३ आइट्ट— (ख ग प) आदिष्टाः आङ्गुष्ठा^४ वा शीघ्रं प्रयाणके चलन्तु मन्त्रत इत्यर्थः; सामग्गिवावड^५
 — (ग प) प्रयाणकसामग्रीध्यापूताः^५ व्याकुला वा ।
 ५.६.५ सवाहियकरकट्ट— (ख ग पं) सवाहितं चालितम्, प्रयाणकयोम्य वस्तु (ख) ज्ञात येपा ते ।
 ५.६.७ पडय^६ दडिडंवर— (ग पं) प्रह्लासक पटुपटहासक सेम्यः प्रतिरडिनाः^७ प्रतिवादिताः अपि प्रति-
 शब्दिताः दडिडंवराः दगडास्या. वाद्यविशेषा ।
 ५.६.८ सालकंसाल— (ग पं) विस्तीर्णकंसाल ।
 ५.६.९ टंकार— (ग प) शब्दः ।
 ५.६.१० नाइर्थं— (ग प) निनादयुक्तम्^८, संदिणसमघाइर्थं— (ग पं) दत्तममहस्तम् ।
 ६.११.१४ (ग पं) थगगदुगे^९ विस्तारिथं— (ग पं) सज्जिथं—एतैः शब्दैः सज्जितं—प्रगुणीकृतं यत्
 एतं प्रागुक्तं^९ प्रगदितशब्दैः प्रहनसमहस्तेन सुप्रशस्तं यथा भवति एव विस्तारित ।
 ५.७.४ हरिखुर^{१०} ससुरगरण^{११}—हरिखुरैर्घोतकनलै^{१२} क्षुण्णनीचकिल्लेने^{१३} समुत्पन्नेन गगनतले गतेन ।
 ५.७.६ जइवल्लु— (ख ग पं) जयनशीलः जययुक्त, महवल्लु^३— (ख ग प) मलिनः ।
 ५.७.९ डरिवल्लु— (ख ग पं) भयानक, तंढविथ— (ख) ताणितम्, (ग) ताडित (पं) ताडितम् ।
 ५.७.१० पालिद्ध्यालि— (ख ग पं) वहालयनचौरं, गरिवल्लु— (ग पं) महाराजोपेत ।
 ५.७.११ कसहयहरिवल्लु— (ग) वर्जनहतायव ।

[५.५] १ पं घंत । २ पं निहाणे । [५.६] १ पं सा । २ पं चित्ता । ३ पं ष्टः । ४ पं ष्ट ।
 ५ पं वावडा । ६ पं सामय्य अवावृता । ७ पं रट्टिताः । ८ पं नायय । ९ पं युवनः । १० पं धाययं ।
 [५.६] १ पं ता । २ पं कृता । ३ पं पडयति । [५.७] १ पं खमुण्णएण । २ पं ष्छालिणेन ।
 ३ पं मयल्लु ।

- ५.७.१२ सिरिजूढ—(ग पं) सरो जूढे बढं थोरिकैरिल्ल उपरितनवस्त्रं यत्र ।
- ५.७.१३ पयवषण—(ग पं) १ पादयोश्चपःपेन कृतानि विकृतानि नद्योभयतटानि यानि तेरिल्ल युवतः ।
- ५.७.१४ तट्ट—(ग पं) वस्त, नट्ट—(ग पं) मग्नः ।
- ५.७.१६ विर्ववणीप—(ग पं) विगतवन्धनमित्तपुरुषपया असह्यया इत्यर्थः ।
- ५.७.२० सुकराड्ड—(ग पं) मूवताक्रन्दः ।
- ५.७.२१ मञ्जथट्ट—(ग) मञ्जवपक (पं ग व चटसः) मञ्जववा वा ।
- ५.७.२४ हस्थिरोहु—(ग) गजारोहक^५ ।
- ५.७.२६ कारणु—(ख ग पं) महदपि स्त्रीपरा मवादिलक्षणं कारणं, महद्वल्लड—अतिसयेन महत् ।
- ५.८.७ वंसिज्जंसी—(पं) वंसज्जालो समूहः ।
- ५.८.१४ करिकाणणा—(ग पं) हस्तिकदर्थिकाकाः^६ ।
- ५.८.१५ वस्वेहि गुंजारिया—(ग पं) व्याघ्रवासिता^७ ।
- ५.८.१६ कोळल्ल—(ग पं) सूकरसंघाताः ।
- ५.८.२५ विसरिस—(ग पं) परस्परानुगतः ।
- ५.८.२६ हलभूमिलीळ—(ग पं) कृष्टपुष्पत्रलोलाम्^८ । संपच्च—नीळ—(ग प) संपच्यम नगोधूमैर्नीला भवति, सत्पमानगवा^९ धूमैश्च नीला भवति ।
- ५.८.३१ विञ्जाडई मारहरणभूमि व :—
- (i) सरहमील—(ख ग पं) भारतरणभूमि. सरवा रथसमन्विता, मोसा-भयानका; विन्ध्याटवी तु शारभेष्टापदभयानका^१ ।
- (ii) हरि—दीस—(ख ग पं) मारसरणभूमौ हरिर्वाग्देव, अर्जुनी, नकुलः शिखण्डो च पाण्डवबले राजपुत्रविशेषाः एते दृश्या भवन्ति; विन्ध्याटव्यां तु हरिः-सिंह, अर्जुनी—वृक्ष-विशेष, नकुल—प्रसिद्ध, शिखण्डो—मयूरः एते दृश्या भवन्ति ।
- ५.८.३२ (iii) गुरु—चार—(ख ग पं) भारतरणभूमौ गुरुर्गोणाचार्यः तत्पुत्र. अश्वत्थामा, कलिङ्गः कलिङ्गदेशाधिपति राजा, एतेषा चारः—वेष्टा भवति, विन्ध्याटव्या तु युधमहान्, अश्वत्थः—पिपलः, धामः—त्राट्रं, कलिगा—वलय, चाराः वृक्षविशेषाः भवन्ति ।
- (iv) गयगजिर सार—(ख ग पं) भारतरणभूमौ गजगजिरा^२ सारा भवन्ति, सचाराः वाणस-मन्विता, महोष्ठाः राजान, ते. सारा भवन्ति यत्र, विन्ध्याटव्या तु गजगजिताः^३, ससरा—सरोवरसमन्विता, महोष्मसारा—महिषा. सारा भवन्ति यस्याम् ।
- ५.८.३३ विञ्जाडई लकानयरी व :—
- (i) सरावणीय—(ख ग पं) लङ्का रावणसहिता भवति; विन्ध्याटवी तु सरावणीया—रावण-वृक्षविशेषसहिता भवति ।

४ पं पादो चपः । ५ पं मेहिला (?) । ६ पं लक्षण । [५.८] १ पं कदर्थिक । २ पं वासिताः । ३ पं लोला । ४ पं गवं । ५ पं धूमैः । ६ पं वैर्मीसा । ७ पं साहू । ८ ख गज्विता । ९ पं गजिरा ।

(ii) चंदणहिं^{१०} वणीय—(ख ग पं) लङ्कानगरी चन्दनवाचारेण चेटाविशेषेण कलहकारिणो भवति, विन्ध्याटवी तु चन्दनं चन्दनवृक्षविशेषे^{१०} र्श्चारैः चारवृक्षैः वा मनोक्षैः कलभैः लघुद्रस्तीभिर्युक्तता^{१०} भवति ।

५.८.३४ (iii) सपलास^{११} चट्ट—(ख ग पं) लङ्कानगरी सपलाशा, पलाशै राक्षसैर्युक्ता, ^{११} सकाञ्चना, ^{१२} अक्षय कुमारी रावणयुवस्तेन^{१३} युक्ता, विन्ध्याटवी तु पलाशवृक्षसमन्विता, सकाञ्चना-मदनवृक्षविशेषसहिता, अशा -विभीतकवृक्षा. ते तच्छा [तस्सा ?] यत्र ।

(iv) सविहीसण^{१४} रसट्ट—(ख ग पं) लङ्कानगरी विभीषणसहिता भवति, विभीषणो रावण-भ्राता, कट्टवळ—कपीना वानराणा, कवीना काव्यकर्तृणा वा कुलानि—सघाता (पं कुलैः सघातै) तैः समन्विता, फलानि रसाढ्यानि, ^{१५} एतैः सहिता, ^{१६} विन्ध्याटवी तु सविहीसणा—नाना विभीषिकानि सहिता भवति, वानरसंघाता [सघातैः सहिता] फलरसाढ्या च ।

५.८.३५ विज्झाडई कंचायणिव्व —

- (i) द्वियकसणकाय—(ख ग पं) कार्यायनी-चामुण्डा घृतकृष्णकाया भवति, विन्ध्याटवी तु ^{१७} घृतकृष्णकाका ।
- (ii) सद्वूळविहारिणि—(ख ग पं) कात्यायनी तु शाद्वूलेन वाहनेन विहारिणी—विहरणशोला, विन्ध्याटवी तु शाद्वूला विहारिणी यस्याम् ।
- (iii) मुक्कनाय—(ख ग पं) कार्यायनी मुक्कनादा, मुक्कफेकारा; विन्ध्याटवी नानाजीवै-भुक्कनादा च ।

५.८.३६ विज्झाडई तिनयणतणुव्व :—

- (i) दारुवणळंद—(ग पं) त्रिनयनो महादेवस्तेऽ तनु, छन्देन-गौर्यभिप्रायेण नानाछ दैर्गनत्तित, दारा (पं दारु) भवती ^{१८} गौरी, तस्या दारुणिक. नृत्यो भवति, विन्ध्याटवी तु दारुभिः काष्ठै पवनैः पलाशैः छद्दा—प्रच्छाविता ।
- (ii) गिरिदुय^{१९} खंबचंद—(ख ग पं) त्रिनयनतनु गिरिसुताया ^{१९} गौर्यं, उटाभि. कन्दलै—कपालखण्डैः, खण्डचन्द्रेण च सहिता [^{२०} त. ?] भवति, विन्ध्याटवी तु गिरिभिः, शुक्लैः, जटाभिर्नानामूलैः कन्दलैरङ्कुरविशेषैः, खण्डकन्दैश्च सहिता भवति ।

५.८.३७ परिसङ्गई—(ख ग पं) अग्रेतनभूमिमाक्रामति, छड्लु—(र ग प) विदग्ध ।

५.९.२ गामार वि—(ग पं) कुटुम्बिका अपि ।

५.९.४-५ जहि गोवाल व गोवाल—(ग प) यत्र देशे गोपाला. गवा रक्षकाः, गोपाला इव-राजान इव ।

- (i) महिसी^{२१} जहि—(ग प) राजानो हि महिष्यां अग्रमहादेश्यां बद्धस्नेहा भवन्ति गोपालास्तु महिष्या धेन्वा च बद्धस्नेहा भवन्ति ।
- (ii) कमलायरगयसाल—(ग प) तथा राजान कमलाकराः कमलाद्वयाः लक्ष्म्या आकराः गजशालायावृक्षाश्च भवन्ति; गोपालास्तु कमलाकरा^{२२} पत्नीखण्डमण्डितसरोवरात् शालोन-विशालमुणान्^{२३} गताः महिषीणा तत्र रतिसङ्गावात् (?) ।

५.९.७ कट्टे-ट्टई—(ख ग पं) पद्यानि, कमलानि ।

१० प इवार्मी. कलभो लघु^{२४} । ११ प युक्ताः । १२ प अक्षय^{२५} । १३ प पुत्रस्त्वयो । १४ प यत्र । १५ प वृताः । १६ प गौर्या । १७ ख ग सुनया । [५ ६] १ ग णाः । २ प करः । ३ प गुण ।

- ५.२.८ कीरेहि—(ग पं) कीरे शुक्, द्विधा—आगता. [ता] ।
- ५.६.६ कणहल्ल—(ख ग) शुका., (पं)शुकः ।
- ५.६.१२ जनवेस—(ख ग पं) जनवेपो, जनाना वेव. गरीराकारः ।
- ५.९ १४ काळिया—(ख ग पं) सन्मानिता. ५ ।
- ५.६.१५-१६ सेविज्जह कंठारड—(ख ग पं) कात्तारतम्, गण्डकविशेषश्च सेव्यते, कथंमूर्त्तं तत् ? कोमल-
बहुरसु—(ग पं) तदुभयकोमलं बहुरसं च, किं कृत्वा ? मेखिलिवि (ख ग पं) परित्यज्य, परवसु—
(ख प) विगतस्वाहुरिति, किं तत् ? वेसायठ—(ख ग पं) वेद्यारतम्, किमिव ? उच्छ्रुव—(ख ग पं)
इक्षुरिव, कथमूनम् तत्—(पं) विगतस्वादं इक्षुस्वरूप वेद्यास्वरूपं च, कथथक्कड—(ख ग पं) रूपे
मूल्ये स्थितं च उभयं च; तथा निट्टुर—(ख ग प) निष्टुरं, निस्नेहं (पं निस्नेहलं) अकोमलं च,
बंक्कड—(ख ग प) बक्रम्, वैशिकप्रधानम्, (पं रजिकप्रधानम्) अत्राजलं च, गंठिहु मरिड—(ख ग पं)
ग्रन्थिभि हृदयकुटिलमात्रै प्रचुरपर्वविशेषश्च भूतम्, सखारड—(ख ग पं) पूर्वमार्गं पश्चाद्भागं उभय-
मपि सेव्यमान मधुररस न भवति ।
- ५.१० १ संदण—(ग) रथा., (पं) रथः ।
- ५.१० ४ मणिह—(ग पं) चित्ताह्लादजनका ।
- ५.१०.८ पुडिण कच्छो (ग पं) पुलिनस्थानेषु निवेशिता कच्छो यथा ।
- ५.१० ६ गंधंदि—(ग) गन्धे अत्याश[स]क्ताः ; (पं) गंधधिय—(पं) त्वं चिरं गन्धेनाऽतिशयेन
अत्याश[स]क्ताः ।
- ५.१० १० चहरी—(ख ग पं) दरमलिता ।
- ५.१० ११ कुहलगिरेडु—(ग पं) कुहलपर्वतः, निववाहिणि—नृपसेना ।
- ५.१० १८ सुहजह—(ग पं) सूच्यते ।
- ५.१० २२ बलि (पं वेलि)—(ग प) मन्दुरा ।
- ५.१०.२४ रेवाणष्ट कण्ण—(ग पं) रेवानदीसमीपे ।
- ५.११ ६ (पं) गुणेलिका—(पं) गुणतणिका ।
- ५.११ १० (पं) आर्या; वमालु—(ख ग पं) कोलाहल ।
- ५.११.१६ तमारि—(ख ग पं) आदित्य ।
- ५.११.१६ रयणचूल—(ख ग) रत्नशेखर ।
- ५.११ २२ पदण्णड—(ख ग) शीघ्रपति ।
- ५.१२ ८ समत्ता—(ख ग) समस्ताः सर्वा ।
- ५.१२ १४ करलुक्कळ “कमलरंजु—(ख ग पं) करकमण्डपे उद्भासितौ लक्ष्यतया शोभितौ, कमलकम्प-
पद्मशङ्खौ यस्य ।
- ५.१२.१८ पीणखधु—(ख ग पं) उन्ननस्कम्प ।
- ५.१२ २० रेहा न होह—(ग पं) हुरीकारः चिह्नः न भवति ।
- ५.१२.२३ सावलेड—(ख ग पं) सरपं ।

- ५.१२.२४ अग्रयाच—(ग) अन्यायाचारम्, (पं) अन्यायपर ।
 ५.१३.२ त्रिविधा शायहो—(ग पं) निराकृतमाहात्म्यस्य ।
 ५.१३.३ इय—(ग) आगत ।
 ५.१३.६ दंडकरंविड—(ख पं) दण्डगमित ।
 ५.१३.१० पल्लवड—(ख ग पं) कोरागिना प्रचलित ।
 ५.१३.१२ वज्रोहरु—(ख ग पं) दूतः ।
 ५.१३.१४ खयरविस रेस—(ख ग प) प्रत्यकालाट्टित्यवशः ।
 ५.१३.१७ अथसु ...समुच्चयवे^१—(ख ग पं) अथशोऽरकोतिरेव, सम्पुगुचवंशो—प्रहावश तस्मिन् तत्र वा ।
 ५.१३.१६ पदम...रंजद—(ख ग, पं) प्रथमतो विवेक पापमेव रसस्तेन रञ्जयते, मलिन क्रियते ।
 ५.१३.२० पहिकड...डकड—(ख ग पं) योऽपी एतदीय. काल एव^२ सपं प्रथमतो मनो प्रसति ।
 ५.१३.२२ दम्भ—(प) उपशाम्यते ।
 ५.१३.२३ जित्तु जि एण जि—(ग) कोपादिना अयं जित, (प) जित्तु ज एण जि—(पं) निजितेनापि, कोपादिना अयं जित ।
 ५.१३.२६ जड डचहि—(ग पं) जय स्थापयति ।
 ५.१३.२६ रहुनह—(ख पं) श्रीराम ।
 ५.१३.३० कायहो—(प) काकस्य, तो किं—(ख ग पं) ततः आकाशनामित्त्वम्^३, सो जिज्ज—(ख ग पं) स एव काक, थाणु गुणमायहो—(ख ग पं) स्थान गुणविभागस्य, गुणवत्तायाः^४ ।
 ५.१३.३३ अजखहि—(पं) कथय ।
 ५.१४.३ अवस^५ कयंतहो—(ग) तेन यमदिशि कृतमित्यर्थः (प) तेन यमवेसे [दिशे] ि त्वमित्यर्थ ।
 ५.१४.१३ असिदुहिय^६—(ग प) छुरिका, छुदुहिय—(ख ग पं) क्षुषादु छिता, (प) वरचमु-कारकः । (?)
 ५.१४.२१ अवहृत्थ—(ख ग प) शत्रोरभिघात, समहृत्थ—(ख ग प) वामपाश्वे शत्रोरभिघातः, दडकाळवट्टेहिं—(ख ग प) अभिमुखे शत्रोरभिघात^७, करिडाण—(ग प) हृस्तिरस्तवेधे^८ वग्ने गळ कत्ति [त्ति ?] कथा खड्गमुनासकथा च अघोमुखेन भूत्वा शत्रोरभिघात, रुठण—(ख ग पं) उपविश्य शत्रोरभिघात, कुम्मासणट्टेहिं^९—(ख ग प) सपक्ष रथ हृस्ति-घोटकाना पूर्वसनेन करचर-पाभिघात ।
 ५.१४.२२ पचाणणालोय—(ख ग पं) तिहात्रलोकनेन अग्नेतेनशश्रूणा क्रम दत्त्वा प्राद्वननशश्रूडनन, मिग^{१०} पापहिं—(ख ग प) गुणवत् अग्रकृतपादै क्रमेण अग्नेतेनशश्रूभूमिमाक्रम्य शश्रूद्वनन, मविनास—(ग प) वामपाश्वे फरक दत्त्वा खड्गं पूढप्रदेशे तिरहित कृत्वा आत्मान निरवधान शत्रोः प्रवर्ष्य निरवधानोऽपमिंत विववासेन हननायमापनस्य शत्रोरभिघातः मविदवास, संकोय—(ग प) उड्ढामून प्रायुगिरमिहृत्थमान. वारसि फरकं दत्त्वा शत्रोरभिघात. सकोच, अवसारवाणुहिं^{११}—(ग प) शश्रूमि अवशेषा [तन ?] मिहृत्थमान. इट्टाते ताम् हत्वा [हृत्त्वा ?] स्वानान्तरे अपसरण सक्रमण अपसरवात ।

[५.१३] १ प^० वसो । २ प^० समर्थः । ३ प^० गामित्वादि [°डि ?] । ४ प^० वनाया । [३.५४]
 १ प^० दुहिया । २ प^० अभिमुखशश्रूभिं । ३ प^० वत्तु अववा वन्तु, यो वरपुनेगळकत्ति । ४ प^० सण सणुद ।
 ५ प^० शिरसि । ६ प^० अवसरे ।

सन्धि-६

- ६.१.१ द्वैत—(ख) दम्ब, सन्वहसं—(ग प) सर्ववनम्, (पं) साटकच्छन्दः ।
- ६.१.३ हृत्वे चाओ इत्यादि—(ग) साटकच्छन्दः ।
- ६.१.४ वच्छे सच्छा पविच्छी—(ख ग प) हृदये निर्मला प्रवृत्तिः ।
- ६.१.५ कण्ठाण्येयं इत्यादि—(ग) ^१अभ्याये अभ्यासितः, सप्तम्यर्थे पठो, कण्ठाण्येयं—(ख पं) कर्णेण्विद, सुयसुयशक्षणं—(पं) आकण्ठितश्रुताववारणम्, दोक्याणं—(ख ग पं) दोलतामु, बाहुलतासु, बाहुदण्डेण्वित्यर्थः ।
- ६.१.६ सहज कञ्जमण्णं—(ग पं) समस्ता पुनः सहजपरिकरो भवात्, किन्तु [सांज्ञतम् ?] कार्यमन्यत् उत्तरकालीनम् ।
- ६.१.७ केरलनिवे धरिण्—(ख ग पं) विहावलोकरनभ्यायेन वचनम्, विजयंतरिण्—(ख) विजयेन अन्तरिते, (ग पं) विजयेन अन्तरितेन ह्रिषितीत्यर्थः (?)
- ६.१.१० उब्बेविरु—(ग पं) अस्तो व्यस्तम् ।
- ६.१.१६ सरायड—(ख ग पं) राजासहितम् ।
- ६.१.१८ कडण्—(ख ग पं) कटके ।
- ६.२.३ करवाळकरण्—(ख ग पं) खड्गसदृशिनो ।
- ६.२.४ लोळबोलिचं—(ख ग पं) अतिशयेन बोलितम् () भुवणं^३ तोलिचं—(ख ग प) भुवनभार-भाराम्या, भुवनभातवरणसमर्थान्यां भुजाभ्यां तोलितम् लीलायां आकलितम् ।
- ६.२.६ रत्तपोत्तं रंडियं—(ख ग पं) रत्तानि पीतानि वस्त्राणि धरन्ति या ता रामार्षिता रण्डिता यत्र ।
- ६.२.८ रणरसिय—(ख ग पं) समरसिका. संग्रामरसिका इत्यर्थः ।
- ६.२.९ तुट्टं 'मट्टुड—(ख ग पं) अतिपीरुषात् समुत्पन्नरोमाञ्चक्रञ्चुकेन तुट्टुत्ते (ग तुट्टो, पं तुट्टे) ये कवचा. ते भूमौ प्रविष्टाः ।
- ६.३.३ कय—(ख ग प) क्रमेण, मौल्येन ।
- ६.३.१० अगलिथखग्गफह—(ख) खङ्गहस्तात् अपतित, (ग) अगतितखङ्गखेडकः ।
- ६.६.१० कय-सिरड—(ग पं) ^१शिरावन्देन मस्तकं मस्तकदेशावच (पं) शशाहचारसरतरजवच ?), सरदववणु—(ग पं) सरसाः व्रणाः घाता यत्र रणे योवर्नं च सरसव्रणम् ।
- ६.६.११ नह—(ग प) नखानि, नभश्च, हियड (ग पं) चित्तं उरश्च ।
- ६.८.२ हा महु ^३वंससेसु—(ग पं) सर्वेऽपि शत्रवो मया निर्मूलिताः, ^१तदीयगृहस्थितापैत्यमात्रावहथानात् वंशशोपा. ^३(ग) 'कृताः वैरिण इति, इदानीं तेषां संग्रामे युद्धमानानामुपलम्भ्य विस्तरयति' (ख ग) 'हा वैरिणो न जाता वंशशोपा इति' ।
- ६.८.३ निशुत्तु—(ग पं) निस्तोर्णम्, सुयड्—(ख) सुपति [स्विति ?] ।
- ६.८.५ मबड सुहनिहाणु—(ख ग पं) मदीयप्रमोक्षकारित्वात् सुहनिघानमयं^५ पत्ता^६ ।

[६.१] १ पं 'दो' । २ पं 'हरिसतो' । [६.६] १ ग शर । [६.८] १ पं त्वदीय । २ वं 'स्थिता' । ३ पं 'शोपा' । ४ पं 'कारत्वात्' । ५ पं 'विघान' । ६ ख ग पत्ताः ।

- ६.८.७ सिंह...सककु (ख ग पं) यद्यपि शिरो वत्तम्, सो वि-तयापि, स्वामोप्रसादश्रृण^० स्फोटयितु न शक्त
इति, सामिय...यककु—(ख ग पं) स्वामोप्रसादश्रृणशेषस्य सञ्जावात् ।
- ६.८.८ अंतावलि...लद्धर्थु—(ख ग प) अन्नावलिनिगडैल्लववन्ध ।
- ६.८.९ पलासहं—(ख ग प) मासाशिना राक्षस-पक्षिप्रभृतीनां ।
- ६.८.१० महिहे वण्णु^१—(ख ग प) पृथिव्यामात्मीयगुणव्यावर्णना दत्ता ।
- ६.८.११ उर-सिर-सरीर—(ग प) उर. शिर. शरीरं च, सबचुरिड—(प) सर्ववपि चूरितम्,
स[क्ष]वस्य वा मृतकस्य चूरितम् ।
- ६.९.१ समसत्तहं (प्रंक्ष संतह)—(ख ग पं) होनाधिकसत्त्वरहितानि ।
- ६.९.२ अवलंविषसत्तहं—(ख ग पं) स्वीकृतयोह्याणि, अपरिव्यवतवोरवृत्तीनीत्यर्थः ।
- ६.९.३ तोरविय—(ख ग पं) चूर्णोक्ताः ।
- ६.९.४ रसववियपलासह^१—(ख ग पं) ख्विरप्रीणितानि राक्षसानि ।
- ६.१०.१ गरुयनाथ—(ख ग पं) महानाथ (पं) मद्गाहस्तिस्रश्च ।
- ६.१०.२ खंड...वेयथड—(ख ग पं) खण्डा सोण्डा येषां ते च ते वेदाण्डाश्च (ग प वेयदडाश्च) ते
चण्डास्ते, भिसले—(पं भेमला)—(ख ग प) विह्वला भयानकाश्च यत्र (प), भीमले—(पं)
भयानके ।
- ६.१०.४ कडविमद्दये—(ख ग प) महासग्रामे ।
- ६.१०.५ घडिय^३—(ख ग पं) घृष्टा, अन्धोन्मसलनाः; गद्यणगमण—(ख ग प) गमनगतिः ।
- ६.१०.६ लच्छिलवस्—(ख ग पं) लक्ष्म्या उपलक्षिता^३ लक्ष्म्या वा लक्ष्या^३ ।
- ६.१०.८ मणिसिहेण—(ख ग पं) रत्नचूनेन ।
- ६.१०.९ निरत्यु—(ख ग प) अस्त्र (प शस्त्र) रहित, आयुवहो न; जड मुण्डे आहणेइ—(ख ग पं)
वेगेन घातयामीत्यर्थः ।
- ६.११.१ वणियसत्तु—(ख ग पं) वणितसन्तुः ।
- ६.११.५ सलेव—(ख ग पं) सदप, आरोहु—(ख) रथवाहिमहावन्त [वत ?] -
- ६.११.८ निचिस—(ख ग पं) खड्ग ।
- ६.११.१० जंमुहलोयणेण—(ख) सम्मुखलोचनेन ।
- ६.१२.२ इय...वंडु—(ख ग प) गमनगतिना सदृश. समान. कथ वन्वुरभि भवति, अपि तु न भवति ।
- ६.१२.४ रञ्जु—(ख ग पं) राजग्राम्, रञ्जु—(ख ग पं) दोरः ।
- ६.१२.१० ओवडिय—(ख ग) उच्छरिता, प च्छरिता ।
- ६.१२.२ बलुद्धर—(ख ग पं) बलोरकट, रसडिड्य^१ वीररसेन आढयमूताः ।
- ६.१३.३ रणगण...वच्छ (ख ग प) रणागणेण सग्रामेन, सञ्ज-सवन्व, तेन विक्रियत वक्ष—दृढयं ययो
सग्र.मदतहृश्यो (०या) इत्यर्थः, वच्छ—(ख ग प) संग्रामकुशला [ली] ।

७ प ०रिण । ८ प ०सहि । ९ पं महिहं वन्तु । [६.९] १ प रसवदियं । [६.१०] १ प ०या । २ प
०लक्षिताः । ३ प ०लक्षाः । [६.१३] १ प रसदृष्टिय ।

- ६.१३.५ समारि—(ख ग पं) आदित्यः ।
 ६.१३.७ धसन्निष्ठय—(ख ग पं) परस्परं वीपा घातनं विलोक्य (पं घातनमवलोक्य) घसक्यते, कस्या-
 नयोर्मध्ये जयः इति सहायतुलाह्ला ।
 ६.१४.३ तिच्चात्तृण—(ख ग पं) तीव्रात्तपेन ।
 ६.१४.१३ कबंध***नच्चाविय—(ग पं) कबन्धा बन्धेन—^१प्रबन्धेन तृप्तेन^१ नृत्यं कारिताः ।
 ६.१४.१५-१६ षडि वसेण—(ग पं) प्रतिभटखङ्गाघोनेन^२; खडियाकसेण—(ग पं) खडिकेव कस्यः
 स्वामिरिणनिस्तरणपरीक्षाया कसवट्टः, रणमहि***विरिथण्णउ अंकनिरंतरड—(ग पं) कडित्तं रिणस्य-
 मूलकस्तरसूचकं एकत्वादिसहायित्रीरूप कतितरं भवति, रणमहिकडित्तं तु अङ्कैः परस्परं युद्धैर्निरन्तरं
 भवति । सकलंतरड—(ग पं) सकलन्तर, ^३प्रभुदत्तप्रसाददानमानादिकं तरां(?) प्रभुकार्यकरणात् सकलन्तरं
 रिणं [ऋणं] दत्तम्, सामिरिणु—(ग) स्वामिरिणं [ऋणम्] ।

संघ ७

- ७.१.१ (पं) महुणा—(ग) प्रतिभोत्येन ।
 ७.१.४ गिरइ—(ख ग पं) प्रतिपादयति; नेमि^१—(ख ग पं) परिमितिः ।
 ७.१.१७ वं—(ग पं) मनदन्तं; सेयइ डाइणि—(ग पं) स्वेदते ढाकिनि; कया (?) वथंभूतया ?
 भल्लुक्कि समरसाइ—(ग पं) भल्लुकीमुखाग्निद्रुतोष्ण्या^२; नरवस इ—(ग) ^३नरवसया [?]
 ७.१.१८ दिण्णसंक—(ग पं) भयजनकाः^४ ।
 ७.१.२० (पं) हेइलकख—(पं) प्रहरणलक्षाः ।
 ७.१.२१ चरमतणु—(ख ग पं) जम्बूद्वीपः; इड्डंडडविच्छडिडर—(ख ग पं) सर्वतो विशिष्ट-
 हृत्तण्डा^५ ।
 ७.१.२२ बहुसघणड—(ख ग पं) प्रचुररक्तनिरन्तरम् ।
 ७.२.२ बहुप्रहरण—(ग पं) बहूनि प्रहरणानि ।
 ७.२.९ मडलम—(ग) खङ्गा; (पं) खङ्गाशम् ।
 ७.३.१ पडहउमर (पं समर०)—(ग पं) महासंभ्रामाटोपः ।
 ७.४.१२ वियकखस्स—(ग पं) विलोचनस्य ।
 ७.४.१३ णिविसं (निमिसं)—(ग) निमेषमात्रमपि ।
 ७.४.१५ खरं स्सारियं—(ग पं) अतिशयेन परिभवितम् ।
 ७.५.३ परिचडियं—(ग पं) परिपतितं^३ (ता) ।
 ७.५.४ गयणवहपहय—(ग पं) वायुग्रहत्^३ ।
 ७.५.८ समर परिपरवि—(ग पं) सग्रामं स्वीकृत्य ।

[६.१४] १ पं सातत्येन । २ पं० धोतेन । ३ पं प्रभुवसे^० ।

[७.१] १ पं निमि । २ ग गिनतपोष्ण्या । ३ पं नरेवासाए । ४ ग कनिका । ५ पं रुडः ।
 [७.५] १ पं वडिया । २ पं पविता । ३ पं ग्रहत्^० ।

- ७.५.६ खयविसम... विहो—(ग पं) क्षयकालरोद्वयमसदृश ।
- ७.५.१२ समयतडिफिडवि^१—स्वमर्यादातटमुल्लङ्घ्य^१ ।
- ७.५.१५ कलि...मरट्टं—(ग पं) कलिकायेन कृतान्वेन व तुल्यो मरट्टो गर्वो येण ते ।
- ७.५.१६ पुणु,—(ग पं) पुनरपि ।
- ७.६.७ विरस—(प) भयानकाः ।
- ७.६.१२ सुरसुंदरी...कुमरं—(ग पं) सुरमुन्दरीदशितुमूर्द्धोऽप्यो मध्य येवा तानि^१ उद्वर्तानि नयनानि येवा ते व उल्लिताश्च—पतिता सामन्तकुमाराः^२ यत्र ।
- ७.६.१३ लंबंतचूल—(ग पं) लम्बंत-तुङ्गल^३; पविहृच्छकच्छ—(ग पं) किरिविलवृष्टक ।
- ७.६.१४ अलङ्क...निम्माणिय—(ग पं) प्रमो-सकाशाद्वयमन्वयसम्मानास्तित्ता^३ प्रभुकार्यं न कुर्म इत्य-मिमानरहिता; सच्चविय—(ग पं) प्रकाशिताः ।
- ७.६.१४^४ निसग्गचारहलिय—(ग पं) सहजपीरयम् ।
- ७.६.१८ कसरेसु...गहवङ्गणो—(ख ग पं) कसरेसु कर्तुरेषु बलीवर्द्धवर्गेषु यत्प्रतिपालनं तस्मात्पृष्ठतः^५ प्रति-लम्नास्ते वर्गा यस्य घनिकस्य ।
- ७.६.२५ गहयमर...पत्तो (ख ग पं) एकाकिनो मे भरोद्वहने समर्थस्य अकिचित्करोऽयं^६ प्रतिभारो द्वितीयमर एक केवल भविष्यति ।
- ७.६.२६ समसोसियायं^७—(ख ग पं) समसदृश्या ।
- ७.६.३० (पं) डोहडा सौहसिलिडु—(ख ग पं) सिद्धशावकम् ।
- ७.७.५ हेवाड्ड—(ख ग पं) गवितः ।
- ७.७.८ किं बलबलेण—(ख ग पं) किं सेन, बलेन ।
- ७.७.१२ (पं) अवसन्नद्वइ^१—(पं) परित्यक्तसप्तश्रास्वल्पाणि ।
- ७.८.१ सरवंत्तइं^२—(ग पं) वाणाः, तोणहि^३—(ग) भयामु, (पं) मन्थामु ।
- ७.८.१० ढकक्खिय^३—(ग पं) टलटलितानि ।
- ७.८.११ दवकीय—(ग पं) भीता ।
- ७.८.१३-१४ गाडवि...इत्यादि—खयरे—(पं) रत्नचूडविस्त्राघरेण, मग्गणवीमविसल्लिय—(ग पं) विशतिमार्गणा-वाणा. विसल्लिता, किंविणेण व—(ग पं) कृपणेन इव, किं कृत्वा ? गाडवि...धणु—(ग पं) ग.ढमक्रम्य करेण वनु (प) स्वानक-विरोपेण, वरुंवि सणु—(ग पं) तनुं वरुं कृत्वा—(पं) मार्गणा विषांता ।
- ७.११.६ सोमइ—(ख ग पं) कथयति ।

४ पं फिडिवि । ५ पं मर्यादातटी । ६ पं मड गर्वो । [७.६] १ पं लडो । २ पं कुमारा । ३ ग नाश्रिताः । ४ पं नोसगं । ५ पं पूड्वटतः । ६ पं अग्रमकिचित्करो । ७ पं याइ । [८.७] १ प्रतियो मे सण्णद्वइं । [७.८] १ प्रतियो मे वसहि । २ प्रतियो मे तोणइ । ३ पं टलं ।

सन्धि ङ

- ८.१.८ थावड—(ख) स्वीकारं करोतु ।
 ८.२.६ नामदेवोत्तर—(ख) भवदेवः ।
 ८.२.१३ जलकंत—(ख ग) नाग्नि [विमाने] ।
 ८.३.६ सावयं—(ग) श्वाकैः श्वापदेश्च ।
 ८.३.७ सकल्लणु रामधरु—(ख ग) लक्ष्मणेन सहितो राम, लक्षणप्रहिताः रामाश्च; नट्टपरु—(ख ग)
 नष्टः परमार्थः, नष्टशत्रुश्च ।
 ८.३.८ बहुवाणिजं—(ख ग) बहुवाणिजम्, बाहुपानीयं च ।
 ८.३.९ दोणु—(ख ग) द्रोणाचार्यः, मापविशेषश्च ।
 ८.३.१५ सुपहृद्विय—(ख ग) सुप्रतिष्ठो नाम राजा ।
 ८.४.११ सवहर्म—(ख) सौधर्मः ।
 ८.५.१४ सुहु—(ख) शुभमनस्तचतुष्टयम् ।
 ८.७.२ भावच्छेविणु—(ख ग) पृष्ट्वा ।
 ८.७.३ भस्मि (ख ग) मातः ।
 ८.७.७ जसहंसु—(ख) परब्रह्म, (ग) यशोहंसः ।
 ८.७.८. पथापरिपूरणेण—(ख ग) उद्‌रपूरणेण ।
 ८.९.२ वरवाहं—(ख ग) वरपित्राः ।
 ८.९.६ अघद्वियड—(ख) अघटमानवस्तु ।
 ८.१२.१ तो****न वज्जियं—(ख) वयणान् वचनं जम्बूस्वामिना [न] लङ्घितम् ।
 ८.१२.३ उष्णामड—ऊर्णामियम् ।
 ८.१२.७ कणगावति—(ख ग) कन्याप्रतिपक्षे ।
 ८.१२.८ बहुकरसंगहो—(ख ग) पाणिग्रहणं वचूनां वा करेण सङ्ग्रहो यस्य ।
 ८.१२.११ चेल्लिड कंचिवालु—(ख ग) काञ्चीदेशनिष्पन्नपटपरिवानम् ।
 ८.१३.३ कायसाण—(ख) कह्वारणं (?)
 ८.१३.४ पहांजण—(ग पं) पवनः ।
 ८.१३.५ कौचुणहविथ—(ख ग) ईपटुष्णीकृतम् ।
 ८.१३.१४ नियाणखणे—(ख ग) भोजनावसानसमये ।
 ८.१३.१५ पेम्मवचक्कड—(ग पं) प्रेमपुञ्जसदृशम्, विशेषणमिदम्; क्ह्य****परिहसिः—(ग पं)
 आहारमागतं भुक्त्वावसाने त्यक्तमित्यर्थः ।
 ८.१४.२ दरुणह्यं—(ग पं) ईपटुष्णम् ।
 ८.१४.५ सेविय बहुसत्तड (पं) मयसत्तड निवडह—(ग प) पट्पदैः संबन्धः; मद्यपाल इव आदित्यो-
 निपतितः* मद्यपालो हि भवुना निपतति, आदित्यस्तु सेवितकमलकोशमकरन्देन-मद्येन-(पं) मद्युना सत्तो

[८.७] १ ख पूरणेण । [८.१४] १ पं तितो ।

निपतति; गलियनिर्धुं वि—(ग पं) मद्यपालः गलितनिजाशुकः पतितनिजवस्त्रः, आदित्यस्तु गलिता निजाशुकाः किरणा यस्य स तद्योवतः, रत्तव—(ग पं) अनुरवतः ।

८.१४.६ लग्नेत्यादि—(पं) लग्नमादित्य प्रेक्ष [प्रेक्ष्य ?], क्व तन्ने ? अत्य...वणराइहे—(ग पं) अस्तशिखरि^२वनराजिकाया ; कथयूताया ? ^३सिलायड^३ विराइहे^३—(ग पं) शिलातलमेव रमणं गुह्यं तेन विगमित्ताया , तं तथाभूतम् आदित्यम्, पेक्खेवि—(ग पं) दृष्ट्वा ।

८.१४.७ ईसाह्वि—(ग पं) ईर्ष्या कृत्वा; पच्छिमदिसपत्तिष् असहतिष्—(गं पं) पश्चिमदिसिपत्न्या भार्यया असहमानया, किड^४ सुहु—(ग पं) कोपेन कृत आतात्र मुख सन्ध्यारागव्याजेन, तेन चास्तमनं^५ कुर्वता ।

८.१४.८ तेड हुयासे—(ग) तेजो अग्निना ।

८.१४.२०-२१ विरहगिगफुलिग—(ग पं) विरह एव अग्निस्तस्य स्फुलिङ्गा ; जोइंगण—(ग पं) ज्योति-
गणकव्याजेन, छड्डिय—प्रसृता ।

८.१५.१ अहिसारोहि—(ख ग पं) अभिसारिकाभिः, पंश्वलीभिः ।

८.१५.३ हेमेयड—(ग पं) सुवर्णनिमिताः ।

८.१५.४ गयवड^३ सहुं—(ग पं) गनमत्तुं काहृदयैः सह ।

८.१५.६ सुद्धड—(ग पं) धवलम् ।

८.१५.९ किहड—(ग प) आस्वादयति ।

८.१५.१० सुद्धडसुहिय—(ग पं) मुग्धमुखी; करवावड—(ग पं) करास्तद्गुणव्यावृत्त्या^१ यस्याः ।

८.१५.१२ नियाडाड निवासष्—(ग पं) गृहसमीपे, उच्चिणति^२ मालह कुसुमासह—(ग पं)
मालर्त्तं पुष्पाणि मालतीगण्डेनोच्यन्ते तानि चन्द्रकरैर्वलीकृतानि^३ पुष्पाणि [इत्या-] शया त्रीटयन्तीत्यर्थः ।

८.१५.१३ समरि—(ग) शर्वरी (हिंदो शवरी) ।

८.१५.१५ एरिसे^४ नदिणष्—(ग पं) कैरवाणि कुमुदानि नन्दयन्ति विक्राशयन्तीत्येवं शोला, संसिट्टड—
(ग) संशब्दित ।

८.१६.४^५ छिण्यु^५ किज्जड—(ग पं) प्रवीणो द्वितीये दीपे दत्ते छिन्नछायो^६ भवति ।

८.१६.७ पयासड—(ग प) उद्योतयति ।

८.१६.८ निर्वसगसारें—परिधानवस्त्रसारेण^३ ।

८.१६.९ कवणें^५—(ग पं) केन व्याजेन ।

८.१६.१२ विरायष्—(ग पं) विराजते ।

(पं) इति अष्टम सन्धि

२ पं अस्तनशिवरं । ३ पं मिलायल मगविगइयडि । ४ ग कुर्वति । [८.१५] १ पं^० तद्गुणाव्यावृत्ता ।

२ पं मालह । ३ पं^० द्रवली । [८.१६] १ प छिन्नं । २ पं छाया । ३ पं^० वस्त्रः । ४ प कवणं ।

५ पं विरायड ।

सन्धि ६

- ६.१.४ रसद्विचं—(ग पं) आबर्तितं सत् सुवर्णं दीप्तं भवति, काव्यं तु शृङ्गाराविरसैः दीप्तं भवति, पयस्त्रिण्यं—(ग पं) सुवर्णं पदेन भागेन खटिकाद्येकदेशेन छिन्नेन परीक्ष्य गृह्यते, काव्यं तु पदैः छिन्नैर्वि-
विधैः शुद्धं परीक्ष्य गृह्यते ।
- ९.१.५ मेष्ठियड^३—(ग प) आकलितान्तस्तिवताः ।
- ९.१.६ वाडल्लियड—(ग) पुत्तलिकाः ।
- ९.१.७ मयणकालसघ्न—(पं) मदनबाणः ।
- ९.१.८ अमिय-वासड—(ग पं) अमृतमधु-आवासः ; वयणासड—(ग प) वदनमेव आसवो मधं^४
वदनमद्यमिदर्थः ।
- ९.१.१५ बहि^५—(ग प) बहि^५ स्त्रीद्रव्येषु ।
- ९.१.१८ नुअयागड^६—(ग पं) कर्मादयवशात् उदयागत भाव विवेकी उदासीनः सन् भुङ्क्ते;
भुङ्क्ते विष्णु—(ग पं) कर्माश्रयेण विना कर्माभ्युपार्जयन् भुङ्क्ते इत्यर्थः ।
- ९.३.१ हले—(ख ग) कमलश्रीचवाच (ख) हाली कथा, (ग) कृषोबल कथा ।
- ९.३.४ दुल्लिड—(ख ग पं) दुक्चेष्टितः ।
- ९.३.५ पंचसु—(ग पं) रत्न्यम् ।
- ९.३.७ वाहियड—(ग पं) वञ्चित, विवाहियड—(ख ग पं) विवाहिता ।
- ९.४.८ उदमविस—(ग पं) दुर्दमवनीवर्दः ।
- ९.४.१२ सिद्धड^७—(ग पं) सिद्धं त्यक्त्वा असिद्धं वाञ्छसि ।
- ९.४.१६ किच्छे^८—(ग प) महता वष्टेन ।
- ९.५.४ जामि न लोहे—(ग पं) मवदीयवचनात् विषयाभिलाषेन^९ क्षय न व्रतामि ।
- ९.५.५ आडसति—(ख ग पं) आयुषः अन्ते ।
- ९.५.१० योनड^{१०}—(ग पं) स्तोत्रं भ्रान्त्वा ।
- ९.५.१२ सञ्छु (ग पं) साध्यं भवति, मयणे—(ग प) कामे [न] ।
- ९.६.२ सयदकिड—(ग पं) क्षतखण्डो भूत्वा ।
- ९.६.८ अमहियड—(ग पं) अमरधिकम्^{११} ।
- ९.७.६ जर—(ग) वृद्धः^{१२} ।
- ९.७.१३ निहिड (पं विहिड)—(ग पं) पङ्के कृतः ।
- ९.७.१६ भवडे—(ग पं) कूपे; महु लोहणे—(ग पं) मधुभिन्द्रासादने आसक्तः ।
- ९.८.१ सीसड—(ख ग पं) कथयति ।
- ९.८.४ रूपड पक्क—(ख ग पं) द्रममेकम् ।

[९.१] १ पं^१ छिन्नः । २ पं^२ मिलितः । ३ पं^३ मधुः । ४ पं^४ मदीयवचनार्थः । [९.३] १ पं^५ विषयामिष-
लोभेन । २ पं^६ साध्याः । [९.६] १ पं^७ विकः । [९.७] १ पं^८ वृद्धता ।

९.८.५ महिळसज्ञां—महिला सज्ञायो^१ यस्य तेन; रहस्यं चडिड—(ख ग पं) ह्ययो^२ ? सम्पत्तौ यः समु-
त्पन्नो रमसः तेन उन्नाम्ना वटितो^३ महति ।

६.८.१० निड—(ग पं) निजं । गरिहकड—(पं) अनर्थो-[^०घों?] यम् ।

६.८.१२ रुयड—विकसिज्जह—(ग पं) अस्योपयोगः कर्त्तव्य इति परिभाषितम् ।

९.८.१५ मई पाणें—(ग पं) मतिक्रमणेन ।

६.८.१८ पञ्चे—(ग पं) पर्वणि; हियप् न पद्दुड—(ग पं) हृदये न प्रविष्टं (पं) मद्ये [महं ?]
क्षटिति ।

९.८.२२ महइ—(ख ग पं) वाञ्छति; समरगळ—(ख ग पं) समधिका; समगदिहि—(ख ग पं)
स्वर्गधृति, स्वर्गलक्ष्मी पूरिपूर्णमित्यर्थः ।

६.६.३ चिवण्णु—(ख ग पं) मृतः ।

९.९.४ पडु मंतु—(ख ग पं) इति एतत् वा तात्पर्यम् ।

९.६.५ कन्नकियप्पु—(ख ग पं) विनाशितात्मस्वरूपम् परिसयोहें (ख पं) ईदृशेन स्तोत्रेण व्युद्ग्राहेण ।

६.६.६ महि—सत्तु—(ख ग पं) पृथिव्यामुत्पादितं द्वीन्द्रियादिप्राणिगणः ।

९.९.७-८ (पं) पाडससिरि इत्यादिपदचतुष्टयेन संबन्धः—पाडससिरि जरथेरि नाहं विहाइ (पं)
प्रावृत्कालक्षमी जरस्थविरो ह्व प्रतियाति, पाडससिरि जरथेरिनाइ (१) संतरथंबरीय—(ख ग पं)
प्रावृत्कालक्ष्मीः—लक्ष्मी^१ शान्तमुपशमं गतं रजो ब्रूलियंस्या सत्या अम्बरे सा, जरस्थविरो पक्षे तु प्रथान्त
रजोम्बर^३ रजस्वलावस्त्रं यस्याः (॥) पओहरीय—पयोधराः मेघाः, स्तनो च, (॥) घन—चिहाइ—(ख
ग पं) घनतिमिरेण निबिडान्धकारेण छन्नाः प्रच्छाविताः तारका. नक्षत्राणि (ख) 'आकाशे' यस्या प्रावृत्-
कालक्ष्म्या सा, जरस्थविरो पक्षे तु^४ घनेन प्रचुरेण च चक्षुदोषिण छन्ना तारका यस्या [ः] सा^५, (१४)
अल्लसियाकास—(ख ग पं) उल्लसिताः पुष्पताः काशाः तृणविशेषा. यस्या प्रावृत्कक्ष्म्या सा, जरस्थ-
विरो तु उल्लसितकाशाः—उत्कटकाश-श्वासा भवति ।

९.९.९ तारताह—(ख ग पं) अतिघनेन तार. ।

६.६.१० मंदमंतु—(ख ग पं) अतिघनेन मन्दः; संतु—(ख ग पं) सान्द्रो मनोज्ञश्च ।

९.९.१२ फलिह—अडिलेव (ख ग पं) स्फटिकमयलिङ्गैर्जटिता ह्व ।

९.१०.१ चह—(ख ग पं) प्रवाह ।

६.१०.२ छुणतण्ण—(ख ग पं) जीर्णतृणमय ।

६.१०.७ सरडे—(ख ग पं) करकण्ठकेन, (ख) कणधेन्यो लोके; महजरवे—(ख ग पं) अतिप्राज्ञेन ।

६.१०.१० सरतें—(ख ग पं) स्मरता ।

६.१०.१२ चुण्णड (पं) चुण्णड—(ख ग पं) दोनम्, (पं) वै स्फुटम् ।

९.१०.२० कयवे—(ख ग पं) समूहेन ।

९.१०.२१ अहि—(ख) सर्पः, वडिपहर—(पं) प्रतिप्रहार ।

६.१०.२४ सिव-माहव—(ख) शिवमूर्ति ब्राह्मणः, द्वितीय नाम सत्यधोपः ।

[९.८] १-ख गं १। २ पं क्वड। ३ पं चडितो। [९.९] १-पं सा हि। २ ख ग संत्या। ३ ख ग
रजः। ४ पं स्थविरस्त्री तु। ५ पं प्रतिभारि।

९.११.३ दंतवणे (पं दंतसुहं) काण्डिं—(ख ग पं) दन्तंमुखेन च काणितः, दन्तैर्वा मुखे मुखप्रदेशे काणितः कृतच्छिद्रः ।

९.११.४ सुविज्ञड—(ख ग पं) अत्याशक्तः ।

९.११.१२ तिणु—(पं) तृण ।

९.११.१३ जवपाणै—(ग पं) अतिशयेन वेगेन ।

९.११.१४ कयनापं—(ख ग पं) कृतनादेन; सुणह समवापं—(ग) सुनां [द्वानाना] समवाएन [येन] ।

९.१२.५ विहूसियरुवड—(ख ग पं) विमूर्षितं रूपं दृष्टम्; नरु—विहूवड—(ख ग पं) स एव नरः विरूपकः रूपरहितः तामिर्वेश्यामिमन्यते, विरुवड—(ख) यो रूपकेण द्रव्येण रहितः ।

९.१२.६ खणदिट्टो—सिद्धड—(ख ग पं) सहिरण्यः पुरुषः प्रथमतः क्षणमात्रेण दृष्टोऽपि प्रियो वैशिक-व्याजेन (ग) अतोच बल्लभः शिष्टः प्रतिपादितः; पणयां—न दिद्धड—(ख ग पं) यं पुनराजन्मनः प्रणयासुतो मितः स एव निश्चनो जातो यदा तदा स जन्मनि अपि मया न दृष्टोऽप्यम इति परित्यज्यते ।

९.१२.७ नखडु—वणियड—(ख ग पं) नकुलोद्भवा (ख ग द्भूताः) नकुलोत्तन्नाः गणिकास्तदा ताः कथं भुजङ्गैः सर्पैः दन्तनखैः ब्रणिताः^३, भुजङ्गानां नकुलामिर्वेष्यमानत्वात्? अत्राह—यतो न कुलोद्भवाः कुलहीनास्ततो भुजङ्गैर्विद्वैन्दन्तनखैर्ब्रणिता^४ ।

९.१२.८ वम्मह—परिचत्तड—(ख ग पं) मन्मथस्य कामस्य दोषिकाः^५ दहोषिकाः न तु दं पिका स्नेह-सङ्गवत्यो भविष्यन्ति; अत्राह—यद्यपि ताः दोषिकाः, तोवि—तथापि स्नेहसङ्गपरित्यक्ता, कार्यवशाद्देव वैशिष्येन ताः केनचित् सह स्नेहसङ्ग प्रदर्शयन्तीत्यर्थः ।

९.१२.९ लगिर—दृच्छड—(ख ग पं) शाकिन्यो हि रक्ताकर्षणे दक्षाः भवन्ति, गणिक्यस्तु रक्तानामुत्पा-दितानुरागानां कर्षणे दक्षाः ।

९.१२.१० मेरु—निर्यवड—(ख ग पं) मेरोः महीवराणां (ग पं) पटकुलपर्वतानां च मही-भूमिस्तत्-प्रतिबिम्बं तेन सदृशः तन्मही हि किंपुरुषादिभिर्वह्नुमिर्देवविशेषैः^६ सेवितनितम्बा इति, गणिकास्तु किंपुरुषै-र्वह्नुमिः^७ कृत्सितैः पुरुषैः सेवितनितम्बाः इति ।

९.१२.११ नरवह—संजोयड—(ख ग पं) नरपतिनीतिभिः समानविभोगाः, नरपतिनीतयो हि अर्थ-वन्त्ये^८ प्रवर्तन्ते, अनर्थसंयोग दूरतः परिवर्जयन्ति, गणिकानां विभोगा अपि अर्थवन्त्येव^९ प्रवर्तन्ते, अनर्थ-संयोगं दूरतः परित्यजन्तीत्यर्थः ।

९.१२.१२ अहरे राड—(ख ग पं) ओष्ठे नीचे च रागः, मदनोऽपि कामोऽपि नीचः^{१०} एवं यासा वर्तते ।

९.१२.१४ परवंचण—(ग पं) परवञ्चनादि सम्बन्धे स्त्रोजने (पं) परवंचनहृदियाए इति पाठे ।

९.१२.१५ न सरुवड—(ख ग पं) तत् स्वभावस्वरूपं न ।

९.१२.१६ जं मिहंत्तु—पीडप पुणु—(ग पं) मिष्टान्तं^{११} यत् तत्रैव^{१२} नायं अद्वया गुणः, तथा सुन्दरं यत् तत्रैव तरुणचित्तेषु रञ्जिता प्रीतिः रञ्जनार्थं पीडा वा इति पाठः, तदभिलाषः यस्य प्रयासस्य च^{१३} नायं गुणः, (पं) एतेन किं सूक्तम् [उक्तम्]? सेव्यासेव्यं वेद्या न पश्यति [इति] ।

[९.११] १ पं प्रदेशो । २ पं तणु । [९.१२] १ पं नरो विरूपको रूपकरहितस्तामिमन्यते । २ पं न दृष्ट इव । ३ पं ता । ४ ग भुजङ्ग । ५ पं विददन्तनखैर्ब्रणिता । ६ पं पिका । ७ पं दिभिर्देवविशेषैर्वह्नुमिः । ८ ख ग सं । ९ पं नितंवा । १० ख ग वंति । ११ ख अर्थवत् एव । १२ पं नीच । १३ पं मृ । १४ पं यस्त्रेव ।

- ९.१२.१७ मंडणे ...विडजणे (ग पं)—[मडने] श्वेतपीतादिवणपिक्षा^{१५} न ब्राह्मणाद्यपेक्षा^{१६}; गड-रवणे—(ग प) नितम्बे एव गुचता ।
- ९.१२.१८-१६ भायरेण ...महुसंजु जिह । रिच्चेवयू* सखुंवंति तिह—(ग पं) यथा मधुसञ्च^{१६}—मधुछत्र सरसं कत्तु^{१७}, निडणउ—निपुणाः^{१७} दक्षाः उड्डापिताः सन्ध्याः^{१८} खुडउ—मधुमक्षिकाः सञ्चुम्बन्ति मधुसञ्चं, तिह—तथा आदरेण सरस पुरुष सुचिरमालिङ्ग्य रवतं कत्तु^{१९} निपुणाः^{२०} गणिकाः सुद्राः पर-वञ्चकरत्वेन दुष्टाभिप्राया ।
- ९.१३.१ का वि... गणती—(ग पं) चतु पदै संबन्धः, नवद्विणु—अभिनयोपाजितार्थ^{२१} पुरुषम्, गणती—चित्ते धरन्ती, द्वियधनमणुम—(ग पं) गृहीतार्थपुरुषम्, अमुणती^{२२}—अनिच्छन्ती ।
- ६.१३.२ निरोहवि^{२३}—(ग प) गृहे प्रवेश निषिध्य ।
- ६.१३.३ जो अपिउ—(ग) दत्त यद्द्रव्यम् ।
- ६.१३.४ विमत्तिप—(ग) वृद्धिहीनया, (पं) वृद्धे दीनया ।
- ६.१३.५ कडच्छण—(ग प) कच्छायाम् ।
- ९.१३.७ धणु वि उ वलंभइ—(ग पं) कश्चिदवस्थाश्रितवशाद्दत्तवनापि^{२४}, डोउ न लहमि^{२५}—निर्द्वन्द्वोऽयमिति ज्ञात्वा न स्वीकरोति^{२६}, तत्र निरपेक्षा, अन्यत्र विजृम्भते, ततोऽपी उपलभइ—उपालम्भयति लोकानामग्रे तस्या कथा कथयति ।
- ६.१३.८ निडुवणु^{२७}—(ग पं) सुप्तव्यापारम् ।
- ९.१३.११ सेय—(ग प) प्रस्वेद, कल—(ग पं) मनोज्ञ^{२८} ।
- ६.१३.१२ वणु व ह्यवच्छउ—(ग प) वनो निवारितवृक्षम्^{२९}, [मिथुनः] हृतवक्षस्थल^{३०} च, करणपरि-पूर्णम्, यथा राजकुल करणैरधिकम्, किपुरुषे पूर्णं च ।
- ६.१३.१३ रूवियबंधउ^{३१}—(ग प) निरूपितकर्म-प्रकृत्यादिबन्ध^{३२} मिथुनन च रतिकृतकरणवन्ध विलास-शास्त्रे^{३३} विशेषतः ; रिद^{३४} खधउ—(ग पं) कृषीवलाः समपितसिद्धदायाः [सिद्धयादयः] (पं कृपाणा समर्पन्ति सिद्धादाय) मिथुनमपि अपितस्कन्धम् ।
- ६.१३.१४ अंधय... वणु—(ग प) अन्धव दानवस्य वधू इव मिथुननिडुवणं तद्वधार्थ^{३५} हि न जाता^{३६} हरस्य व्रणा^{३७}, निधुवनं तु जातनक्षत्रगम्^{३८}, सरु—(ग पं) शब्द बाणश्च ।
- ६.१३.१५ कड्डियकरवाकउ—(ग प) करवाक—खड्गः^{३९} आकृपिताः करेण बालाः^{४०} २^{४१}वेशा यप तत् व^{४२}, रेय—(ग पं) रेत शर्करा^{४३} सूक्ष्मवालुका च ।
- ६.१३.३६ समुग्गयसुक्कउ—(ग पं) समुद्गतशुकः गृहविद्योपो दानवबले^{४४}; पक्षे शुक—रेत मिथुन-निधुवने ।
- ६.१३.१८ नियइ—(ग पं) अवलोकयते ।
- ६.१४.१३ चित्तममणे—(पं) अन्धमनस्करतया गमने ।

१५ पं पेंक्षणं । १६ गं सिचं । १७ पं णा । १८ ग सत्य । १९ ग णा । [९.१३] १ पं तोर्थ । २ पं अगं । ३ पं हेवि । ४ पं छुहे । ५ पं कश्चिदवस्था । ६ पं वनोपि । ७ पं ण । ८ पं स्वीकारयति । ९ पं यणु । १० पं ङं । ११ पं वृक्ष । १२ पं स्थल । १३ पं वतउ । १४ पं थत्र । १५ पं वधयोरी[रतिं] विलासशास्त्रे । १६ पं थं । १७ पं जातं । १८ प व्रण । १९ पं मिथुन निडुवणे जात नक्षत्रण । २० पं खड्ग । २१ पं बाला । २२ पं केशाकर्पणं च । २३ पं शक्करं । २४ पं बली ।

- ६.१५.२ तकरुह—(ग पं) चौरः ।
 ६.१५.७ कुसुमाले—(ग पं) चौरिण ।
 ६.१५.१३ विवत्थपु—(ग पं) व्यवस्थया^१ ।
 ६.१६.४ न पवत्तइ पुत्तु तउ—(ग पं) तव पुत्रः^२ न व्रत्रति, न गच्छति ।
 ६.१६.६ जायरभंजनर्थ—(ग पं) जाग्रतो निद्राकरणम् ।
 ९.१७.१० वच्छरेसु—(ग पं) संवत्सरेषु ।
 ९.१७.११ सद्दु—(ग पं) श्रद्धावान् ।
 ९.१७.१३ ब्रूहि—(ख ग पं) ब्रूहि; आगुरु—(ख ग पं) आसमन्तात् महान्तः एते पितृन्धानीयाः^३;
 कहु व—(ग पं) बर्हं लघु. पुत्रस्थानीयः एतेवाम्; ऊहि—(ख ग पं) एतत् स्वचित्ते सप्रधारय ।
 ९.१७.१४ आबओ समाणि अम्मि—(ख ग पं)^३आगतः सन्^३, समाणि—समानय, अम्मि—हे मातः;
 (ग पं) अन्यत् आगुत्तलघुवतु^३कैगणैरागतं समानिका लन्दो नाम^४ ।
 ९.१७.१५ पुत्ताणुमहप—(ख ग पं) पुत्रानुमत्या ।
 ९.१८.२ वेसपडु—(पं) वेशदक्षः^५ ।
 ९.१८.३ केसकडि—(ग पं) केशा ।
 ९.१८.४ कयबंधमरु—(ख ग पं) वेशत्रन्वसङ्घातः; उरगडिय—(ख पं) श्रोत्रितग्रन्थी, (ग)
 छोडितग्रन्थि ।

सन्धि १०

- १०.१.६ कग्गाइ "पवत्रपग—कर्णातिशयात् त्याग. प्राज्ञ प्राप्नो येन ।
 १०.१.१० चण्णाखिल^१...सिग—रणेन यशसा घर्बलितानि^२अखिलानि शिखरिणा शृङ्गानि^३ शिखराणि
 येन ।
 १०.१.१२ सालंक्रिय—(ख ग पं) लक्ष्मीभूषिता ।
 १०.१.१४ विवास—(ख ग प) विकास^३; आसाइय—(ग पं) समासादित ।
 १०.२.७ तउ—(ख ग पं) तपः; कायहो कारणे—(ख ग पं) कायस्य निमित्ते; आयहो—(ख पं)
 एतस्मात् कृततपस वा शरीरास्थस्य फलं किम् ? न किमपि^४ ।
 १०.२.८ सुदुडु निदिदुडु—जीवो-जीवः शुद्धो निर्गुणो अकर्ता कायाविभिरसस्पृष्टः^५ इति विशेषोक्तिः;
 वेदु-अपिदुडु—(ख ग पं) एतामिश्चेष्टामिरस्पृष्टैः ।
 १०.३.५ भति—(ग पं) वञ्चयन्ति ।
 १०.३.७ न नियन्थु सोक्खु (ग पं) सभारसोध्यं मुक्त्वा अन्यो^१ निजायो^२ नास्ति (पं) अतः किम् ?
 १०.३.६ धम्महि...रुहेण—(ग पं) धर्म एवाद्रि. पर्वतस्तस्य शिखरं तत्र घग्णीरुहं^३ वृक्षः^४ यस्तेन ।

[९.१५] १ प व्यवस्थायाम् । [६.१६] १ पं पुत्रं । [९.१७] १ पं नीया । २ ग आगतं संतं । ३ पं
 वतुष्कं । ४ पं नामो । [६.१८] १ ख ग वंसपडु । २ ख ग वशदक्षः ।
 [१०.१] १ पं वसेत्यादि । २ पं अखिलशिखरिशृंगानि । ३ पं सो । [१०.२] १ पं कत्यापि । २ पं
 स्पृष्ट । [१०.३] १ पं अन्यं । २ पं थं । ३ ग रुहो । ४ ग वृक्षो ।

१०.३.१० मिच्छा...सुसमु—(ग प) मिथ्या असरयो य. प्रपञ्चः जीवो नास्ति, 'धर्मो, नास्ति, परलोको नास्ति इत्यादिरूपस्तेन वञ्चिताना सुसमः सुन्दरः ।

१०.३.११ तत्तत्थु...हसिड—(ग पं) तत्तत्थु-तत्त्वार्थः, तत्त्वभूते परमार्थभूते अर्थे जीवादी ये साधवो जनाः गणधरदेवादयस्तीरुपहसितः ।

१०.४.१ सविद्यपहो...कारणु—(ग पं) पञ्चेन्द्रियमनः प्रभवतया, सविकल्पस्य षट्प्रकारभेदभिन्नस्य ज्ञानस्य भूतानि पृथिव्यादीनि, साहारणु कारणु—सर्वेषां समानं यदि अन्तरङ्गकारणं स्यात् ।

१०.४.२ तो न...सुत्तहो—(ग प) तो—ततः मूर्त्तकारणजगत्वात् मूर्त्तस्य ज्ञानस्य तदा समाना परिणतिः । सर्वेषां समानो ज्ञानपरिणामः किं न स्यात् ? अत्रार्थे दृष्टान्तमाह—पटरंगेण...सुत्तहो—(ग पं) विशेषोक्ति-पदाग्रे दिनमूर्त्तेर्^२ साधारणकारणेन पटे रञ्जयमाने पटरङ्गे समानः सूयस्य रङ्गो यथा भवति ।

१०.४.३ अह...निरुविड—(ग पं) सहकारिकारणं ज्ञानोत्पत्तौ भूतानि निरूपितानि नोपादानकारणं तर्हि अणुणु जि...सुहूड—(ग पं) अन्यदेव जीवलक्षणं अन्तरङ्ग उपादानभूतं ज्ञानावर्णादिसायोपशम-लक्षणं च त्वया एव सूचितं प्रतिपादितम् ।

१०.४.४ कञ्जहो...सलक्षणु—(ग पं) यत् सहकारिकारणभूतं पृथिव्याद्यात्मकं शरीरादिकार्यं च ज्ञानादि तत् कारणं सहकारिभावेन जनकं नवर वपुर्लक्षणं येन शरीरस्थाचेतनत्वे ज्ञानादेरप्यचेतनत्वं स्यात्; अत्र दृष्टान्तमाह—मिड...सविलक्षणु—(ग पं) यथा मृत्पिण्डो घटस्य जनकोन पुनः तस्य लक्षणं स्वरूप, न हि मृत्पिण्डसदृशो घट मृत्पिण्डस्य जलघाराणाहरणे [५] समर्थत्वात्, घटस्य तु तत् समर्थत्वात्, पृथुवुष्णो-दराद्याकारत्वाच्च उपलक्षणदृष्टान्तमाह; अविलक्षणमिति पाठे भूद्रूपतया मृत्पिण्डो घटेन अविलक्षणः सदृशः पृथुवुष्णोदराद्याकारतया जलघाराणाहरणाधर्थक्रियाकारितया च विलक्षण इति ।

१०.४.५ सच्चड...आयण्णहि—(ग पं) यस्यान्तरङ्ग उपादानभूतं यत्कारणं तत् सत्यं कथयामि, आकर्णयः नाणहो...मण्णहि—(ग पं) ज्ञानस्योत्पाद्यमानस्योपादानकारणं ज्ञानमेव उपयोगलक्षणलक्षित-त्मेवेत्यर्थः ।

१०.४.६ अड्ड...निरुहूड—(ग पं) साङ्ख्यमनमाश्रित्य त्वया सूचितं सदैव जीवो मुक्तः, बद्धो जीव इति तन्मोहः, अज्ञानमेतत् प्रकृतेरेव बन्धसङ्क्रावात् यथा दर्पणे मुखमेव सम्बद्धं, मोहवशान्मुखदर्पणे सम्बन्ध [सम्बद्ध ?] मिति दर्पणे वदनाभासो न पुनः सत्यो वदनप्रतिभासस्तत्रैति ।

१०.४.७ अत्र दूषगमाह—अविचारिड...असारड—(ग पं) अयं सिद्धान्तस्त्वदीयोऽविचारितः—विचार-क्षमो न भवति यतो विघटितेन युक्त्या विचार्यमाणः, अतो असारोऽयमिति प्रेक्ष्य अवलोक्य त्वं सत्यस्यो भूत्वा, दर्पणे हि मूर्त्तं वदनं मूर्त्तं तावन्न प्रविशति अतः शरीरस्थवदनं भूत्वा दर्पणे वदनं कथं दृश्यते ? किन्तु शरीरस्थमेव वदनं तत्प्रतीयते तत् प्रतिपत्तो च प्रकृत्या प्रदश्यते ।

१०.४.८ दूषणतेय...विवरेड—(ग पं) दर्पणतेजसि मिलित नायनं—तेजः, (पं) नायना रश्मयः, होइ विवरेड—दर्पणेऽभिमुखं सत् व्याघुटय शरीराभिमुखं भवति तद्विदमावर्चयम्, नच्छेड—(पं) नेद-मावर्चयम् ।

१०.४.९-११ चकलु...अवलोक्यह नाणु चि...मिलियड—(ग पं) चक्षुषा निरुद्ध दर्पणतेजसा प्रतिहतम्, घुरड—अग्रे स्थित, शूद्धं दर्पणे स्थितं स्वरूपम्, न विलोक्यह—न पश्यति, वदनस्वरूपं तु चलेवि—व्याघुटय अवलोकते, तत् प्रभव च ज्ञानमपि कमंवावितसंचालितं^{११} मिथ्यात्वकर्मोदयसहितं मिथ्यादर्शनसहचरित-

५ पं हसितो । [१०.४] १ पं ञति । २ पं दिनामूर्त्तेन । ३ पं अणु जे । ४ ग अंतरंग । ५ पं कार्यश्च । ६ पं हो । ७ ग नः । ८ पं सिद्धार्तं त्वं । ९ पं तेजो । १० पं संव ।

मुत्पद्यते; मिलियमिति पाठे—मिथ्यादर्शनेन मिलितं ज्ञायते^{११} इत्यर्थः, तथा च मोहचक्षे[^{१२}शो]न—मोहनीयकर्म-
सामर्थ्येन अविबेकसामर्थ्येन वा ।

१०.४.१२ वक्षु—(ग पं) दर्पणस्वरूपं मुखविविक्तम्, मुख तु शरीरप्रदेशवर्ति^{१२} इति एवविधं वस्तु-
स्वरूपम् ।

१०.४.१३ वियाणहि^{१३}—(ग पं) विशेषेण जानोहि, सुद्धं...कुरु तिह—(ग पं) माम् ! तथा कुरु
त्वं सम्यग्दृष्टिभूत्वा यथा स्वरूपं पश्यतु^{१४} इत्यर्थः ।

१०.४.१४ सुहभावे^{१४}—(ग पं) दुर्लभं मनुष्यत्वं लब्ध्वा शुभभावेन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्यपरिणामेन
अशुभं मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्र्यं न परित्यजति, तथा शुद्धेन भावेन परमोदासीनतालक्षणेन न त्यजति, विणिण
विशुद्धाशुद्धमात्रौ^{१५} क्षायति ।

१०.४.१५ अमद्—बुद्धिहीनः^{१५} ।

१०.५.१-३ अह...अबद्धउ—(ग पं) अप साङ्ख्यमतमवलम्ब्य एकाग्रतयेन अबद्धो जीवो^१ इत्यते^२ तदा—
अच्छउ...सुविसुद्धउ—(ग पं) आसन्न परितः^३ सुविशुद्धो जीवो यतः—पुग्गल...वियारिज्जइ—पुद्गल-
कर्मणा तयाभूतो जीवो न विकार्यते^४ सुखदुःखादिस्वरूपा परिणतिं न नीयते, तेण वि...किज्जइ—
तेनापि शुद्धस्वभावेनात्मना, तणुह^५—शरीरस्य, न काइ मि^६—न किमपि विविचव्यापारादिलक्षणं फलं क्रियते;
यत् च चार्वाकमतःक्षयेन अप्पु पोगगल्ल भणितं^७ स मोह—(ग पं) आत्मा पुद्गलः शरीरपरिणामस्वरूपो-
भणितः, स मोहः, तन्मोहविजृम्भितं भवतीत्यर्थः^८, अतः करहि कम्मसु—(ग पं) धर्माधर्मसंज्ञकं कर्म कुरु ।

१०.५.७ किञ्चिसु^९—(ग पं) किंत्वर्थं पापं तदेव विष.^{११} ।

१०.५.८ दिसवि—(ग पं) पापोपदेशं दत्त्वा ।

१०.५.१० पावकम्म...अग्गेसरु—(ग पं) पापकर्मविषये ईदवरः उपधायाय^{१०} अग्रेसरश्च ।

१०.५.११ सोज्जे 'संसारिउ—(ग पं) स एव, यः^{१२} आत्मा समोह मोहनीयकर्मग्रस्त^{१३} स ससारी
अभिधीयते, 'खारिउ—(ग पं) कदाचित् इत्थंभूतस्य चारमन ।

१०.५.१२ अहमिय मद्—(ख ग पं) अहमिति मति, जा—यावत्, ता—तावत् कम्मरह...बंधगह—
कर्मोपाजने रतिः आसवितः सैव जीवस्य बन्धगतिः, बन्धवच कर्मभिः सखिल्लः, गइ—गतिवचतुर्गति-
परिभ्रमणम् ।

१०.५.१३ रूवाभावि—(ख ग पं) विकल्पपरित्यागेन परमोदासीनतायाम्, विसुद्धु डिउ—(ख ग पं)
शुभाशुभकर्मोपाजनेरहितं, सो मोक्खु...सिउ (ख ग पं) स मोक्षः सकलकर्मकलङ्करहितो विशुद्ध आत्मा
मोक्ष निरञ्जन शान्त शिवः^{१४} इत्यादिभिः शब्दैरभिधीयते ।

१०.६.४ हथवमालि—(ख ग पं) स्फोटित शक-समोतिकरः ।

१०.६.८ कम्मकीउ—(ख ग पं)^१ कर्मक्रीतमुपाजितं येनासौ कर्मक्रीतः ।

१०.७.२ वड्विसुद्धु—(ख ग पं) बल्लेन विशुद्ध^१ अतिपुष्टो^२ मन्द्गतिरित्यर्थः ।

१०.७.३ तं महुह...^३वहुतु वाह—(ख ग पं) त-त्त्वं, महुरु—मधुरं स्मरन् अन्यपदार्थब्रक्षणे वुमुक्षा^४
वाधा पीडा, वहंतु—वहन्, धरन् (ख) धरंतु ।

११ गंते । १२ पं वति । १३ पं णहि । १४ पं पश्येत् । १५ पं भावं । १६ पं ह्रीनाः ।
[१०.५] १ पं जीव । २ पं ईष्यते । ३ पं परतः । ४ ग विचार्यते । ५ ग तमुहे । ६ पं वि । ७ पं तं ।
८ ग रूपं । ९ पं भवे[दि]त्यर्थः । १० ग किं विसु । ११ ग विषं । १२ पं य । १३ ग गुणः । १४ पं
रूवाभावे । १५ पं शिव । [१०.६] १ पं कम्मकृतं । [१०.७] १ ख विशुद्धः । २ पं पुष्टा । ३ पं अहंतु ।
४ पं सुभसा ।

- १०.७.५ तिष्ठमारु—(ख ग प') असरालतृष्णाम् ।
 १०.७.६ एककलकड—(ख ग प') अतितृष्णावशात् एकाको भट्टपुत्रमेकमपि ससहायं न चरति, मणि-
 वाणिज्ये तृष्णा यस्य^५; पीय...दिट्टु—(ख ग पं)^६ पूर्व पीत सरसि सलिलं यत्र तत्तथाविध पीतसर-
 सलिल दृष्टं ।
 १०.७.७ चोरेहिं सुसिउ—(ख ग प') ततो अग्रे गच्छन् चोरैर्मुषितः ।
 १०.८.२ गुरुबंधसत्तु—(ग प) वृद्धमार्गश्चान्तः ।
 १०.९.२ जमाहृष्ट—(ग पं) यमेनादिष्ट^७ ।
 १०.९.८ वेलाणई तीरे पत्तो—(ख ग पं) समुद्रोपकण्ठनदी^८ तस्या वेला चटति ।
 १०.१०.६ निउ सेणै—(ख पं)^९ नीतं सञ्चाणकेन ।
 १०.१०.१० अडयाणए—(ख ग पं) पुष्वेत्या^{१०}, देवि कञ्चु—(ख ग पं) अभिमुखमवलोकयित्वा ।
 १०.१०.१४ कल्लाणकारि—(ख ग पं) इत्युपहासकारी वचनमेतत्, तउ बुद्धिकग्ग—(ख ग पं) तव
 बुद्धिफल सञ्जातमित्युपहासवचनम्^{११} ।
 १०.१०.१५ अवगमहि—(ख ग प) जानीहि ।
 १०.१२.३ विवण्णु—(ख प) मृगः ।
 १०.१४.६ चोडु—(ख) नटावः [नटव ?] ।
 १०.१४.८ उरि—(ख) पुरि ।
 १०.१५.५ तवगे—(ग पं) प्रासादे ।
 १०.१५.७ कज्जविमुक्कड—(ग पं) कृत्याकृत्यविवेकशून्यम् ।
 १०.१५.९ वेसिणि—(पं) विलासिणी ।
 १०.१६.१ चंगाहिहाणु—(ग पं) चंगड नाम ।
 १०.१६.२ डप्पुल्लिय—(ख) मुडित, (ग पं) पश्चाद्भागमृण्डित ।
 १०.१६.३ चूल्—(ख ग) कञ्चल, (पं) चूलम् ।
 १०.१६.४ वण्णत—(ग पं) कर्णमध्य ।
 १०.१६.५ नव पवरु—(ग पं) नवानि प्रत्यघ्राणि तानि कुसुमनि फलानि-पुष्पाणि तेषा सञ्च सङ्घातो
 माला वा, तेन गमिणः-उपचितः (पं) स चासौ करश्च वैशमारः ।
 १०.१६.६ डप्फोडिय—(ख प) समारितः ।
 १०.१६.११ सहायसहुँ—(ग पं) सहायशोभः ।
 १०.१६.१२ संवाहियउ—(प) सहित ।
 १०.१७.२ रुढ—(ख ग पं) रुढ उदयनः प्रौढो वा ।
 १०.१७.३ निरोहसमणु—(ख ग पं) निरोधभाजनम् ।
 १०.१७.७ विह्वळ—(ख ग पं) विरूपकः ।

५ पं अकिं । ६ ग सहाय । ७ ग यस्या । ८ पं पूर्वपीतसरसि । [१०.९] १ पं दट्टु । २ पं जमेनादृष्ट ।
 ३ पं तस्या । [१० १०] १ पं नीतो । २ पं चल्या । ३ पं तव । ४ पं हास्यवचनम् । [१० १६] १ पं
 उपकेयि । २ पं सहु ।

- १०.१७.१२ विचण्णु—(ख ग पं) विरूपकरूप ।
 १०.१७.१३ सुरहिण्णि^१—(ग पं) देवानामपिहितं ।
 १०.१७.१५ भूभो वि—(ख ग पं) भूयोऽपि, पुनरपीत्यर्थः, राड—(ख ग) राजा ।
 १०.१८.२ खंचियपर्वचैण—(ग पं) परित्यक्तमायाप्रपञ्चनेन ।
 १०.१८.३ जुचीपउत्तेण—(ग पं) युक्तेनैव ।
 १०.१८.४ पोमाइड—(ग पं) प्रशंसित ।
 १०.१८.५ कइरववणाणं—(ग पं) कुमुदसङ्घटानाम् ।
 १०.१८.६ तं तक्कायारु—(ग पं) तत् तस्कराचारः^१ ^२चौराचारः इत्यर्थः ।
 १०.१८.७ गयण...हरे—(ग पं) आकाशसयुद्धे, दिवसयरे—(पं) दिवसतरे; दोत्तडिहि—(पं)
 बुधशटै^३; अरहंति—(पं) अवस्थानं अरुममाना, संघट्ट—दिवसकरदुस्तटै अभिघातः ।
 १०.१८.८ सिचवडुव—(पं) श्वेतपट्ट इव; सडणगण—(पं) पक्षिगणः ।
 १०.१८.१० तयाहारु—(पं) तदाधारे, तारोडु माणिकस दोडु—निसिनीग [का ?] धारयस्य स्तौषस्य
 स अन्यत् माणिकसन्दोहः ।
 १०.१८.११ उयथावळे—(ग पं) उदयावळे; उड्ड रवि—(ग पं) उदित सूर्यः ।
 १०.१८.१२ भवधरहो—(ग) सप्तारधारकस्य, (पं) भवर्वा ।
 १०.१८.५ खय 'सुहं—(ग पं) नष्टरतिमुखम् ।
 १०.१८.७ सिरहियं—(ग पं) शिरसि धृतं स्थापितम् ।
 १०.१९.१२ सायरो—(ग पं) साधरः ।
 १०.१९.१३ पासजणनंठणी—(ग पं) पांश्वंजना प्रेक्षकजनास्तेषा नन्दिनी^१ वृद्धिकरी[^२रा] ।
 १०.१९.१४ बहरु...संठिया—(ग पं) प्रचुररस ढया; संठणी—(ग पं) सङ्घट्टः ।
 १०.१९.१६ सेवियरयहं—(पं) सेवितघ्नी ।
 १०.२०.५ विसुत्ताहल्लु—(ग पं) वृत्तानि मुक्ताफगानि यत्र, विसोपेण वा इत गत मुक्तानां कर्मबन्धरहि-
 ताना फलं येन रागवृद्धिहेतुतया हि तेन फल त्यक्तम् ।
 १०.२०.६ विहरंते^१ कंकणु—(ग पं) विचरता यत्र तत्र नरजन्मनः क-कणु—कं—पानीयम्, तस्य
 कर्णं—कर्णं, नरजन्मनः^२ पानीयं दत्तमित्यर्थः ।
 १०.२०.७ तड मुड्डिड—(ग पं) ततो (पं ततः) मुद्रिना ।
 १०.२०.८ सरयिर—(ग) परिकरसहिता, (पं) परियरेदलकपट्टिकथा सहिता; सर्थ्या—(ग पं)
 छुरिका; लोहिणि—(ग पं) लोहनिर्मिता, लोभिनी, लोहमयावस्तु; वंच-समर्थी—(ग पं) बन्धसमर्था
 यत् कारणात् ।
 १०.२०.११ आसड—(ग पं) आश्रयः ।
 १०.२०.१२ परिहारु—(ग पं) मोचनम् ।

[१०.१७] १ पं 'हिण्णि [१०.१८] १ पं 'चारो । २ पं 'चारमित्यर्थः । ३ पं 'वट्टै[^३वट्टै] । [१०.१८] १ पं
 नंदनी । [१०.२०] १ पं वियरते । २ पं 'जन्मनो ।

- १०.२२.११ वहेरनु वि आयहो मणिड—(ग प) बाह्यत्वमथास्य मणितम्, कड—(ग पं) कुत ।
 १०.२२.१२ वहिदन्वावेक्खहे—(ग पं) आहारादिबाह्यद्रव्यापेक्षया^२ कृतो गुणो बाह्यत्वम्, अण्यु^३...
 पुणु—(ग पं) अन्यदपि यद्बाह्येन्द्रियैः प्रत्यक्षत्वं तत् कृतमपि बाह्यत्वं तस्य^४ ।
 १०.२३.५ पं गाथा अल्पणत्तु—(ग प) आत्मान^१ शरीरम् ।
 १०.२३.९ गणहरसणिण्डुं—(ग पं) सोषमस्वामिगणवरसन्निभः सदृश समीपवर्त्ती वा ।
 १०.२३.१० पसरे तड—(ग पं) प्रभाते ततः ।

इति दशमसन्धिः

सन्धि ११

- ११.१.१ पं गाथा ।
 ११.१.२ सयासे—(ग पं) समीपे, सन्दृश्यगयवर्णना—(ग पं) सर्वस्मिन् [सर्वत्र ?] गतो वर्णो यश्च स्वकाव्यरचिता [त] अकारादिवर्णा वा येषाम् ।
 ११.१.३ छुरियड—(ग पं) छुरिका ।
 ११.१.१० विञ्जुल उवहासणु—(ग पं) अतिचपलत्वेन विशुचचपलविलास उपहसति, ततोऽपि क्षणदृष्टादृष्टतया अतिचपलान्येतानोत्थय^१ ।
 ११.२.२ धरिययुस्मानव—(ग प) सद्ग्रामबुराधारकाः सुभटा इत्यर्थः ।
 ११.२.३ सकंरुणु—(ग पं) इन्द्र, वहिभक्कंदण^३—(ग पं) वैरिणा प्रकर्षणारूढका [] ।
 ११.३.२ त्रिवजिनयसंकडे—(ग पं) विवञ्जिता मर्यादा येन, भ्रमणेन ववविदुत्पद्यते ववचिन्नोत्पद्यते इत्येवं मर्यादारहित^२ सर्वं उत्पद्यते इत्यर्थः ।
 ११.३.८ वंदारड—(ग पं) देवः ।
 ११.४.९ कलिजजइ—(ग पं) गण्यते ।
 ११.५.७ कामंतहं—(ग पं) कामसेवा कुर्वताम् ।
 ११.७.२ जीवासड—(ग पं) जीवाश्रितः ।
 ११.७.४ सिट्टड—(ग) श्लिष्ट, (पं) सुष्ट, निमित्तः नित्यसाम् ।
 ११.६.२ आसियकम्महो—(ग पं) उपाजितकर्मण ।
 ११.९.३ नियाणिय—(ग पं) निर्जिता ।
 ११.६.४ कोवह^१—(ग पं) क्लीवस्य ।
 ११.६.७ डवय^२—(ग पं) उदयः ।
 ११.१०.२ रञ्जू—(पं) अक्षड्दृष्टातयोजनकोटिभिः एका रञ्जू, तिहिमि^३ धरियड—(ग पं) पनोदपि-
 धनानिरु-तनवातवलयैः ।

[१०.२२] १ प कक्षो । २ पं वेला । ३ पं अन्नु । ४ पं तस्या । [१०.२३] १ पं आत्मान । २ पं सान्नि-
 [११.१] १ पं क्षणदृष्ट तया । [११.२] १ प वडरियवर्कंदण । [११.३] १ पं रहितं । २ प शर्वोत्तर ।

[११.९] १ पं हं । २ प उदड । [११.१०] १ ग पोनोदपि ।

- ११.१०.४ तीसं ...सायरु—(ग पं) त्रिशल्लञ्जादिनरकविलानामाकरः, एकसागरोपम आयुः एकादि-
सप्तभूमिषु बोधव्यम् ।
- ११.१०.१० पं घञा-अणुहङ् ...सवातिणि—(ग पं) सप्तधनुषि त्रयो हस्ताः^२ षडङ्कुला उत्सेधः,^३ धनुः
७, ह० ३, अं० ६ ।
- ११.११.१ परिखडिञ्—(ग पं) परिछिन्नः ।
- ११.११.८ हिमालय-उवर्हिहि—(ग पं) हिमवतःपर्वतसमुद्राम्भ्याम् ।
- ११.११.६ आथारं—(पं) आकारेण, रोत्रियथणु—(ग) आरोपितधनुः चटापितधनुः ।
- ११.११.१० तव—(ग पं) ततः ।
- ११.१२.२ नव-गेविञ्ज (पं^० गेव^०)—(ग पं) 'नव' शब्देन नवानुविद्या गृह्यन्ते, 'गेवञ्ज' शब्देन
नवग्रेवियकाः, उवर्हि—(पं) उपरि ।
- ११.१२.३ विणिण... सायर—(पं) सौवर्मेक्षानयो द्विसागरोपमायुः इत्यादि बोधव्यम् ।
- ११.१२.५ सुहायरु—(ग) शुभकर, (पं) शुभाकरः ।
- ११.१२.१० सुहावद्—(ग पं) सुखा अमृतम्, तस्याः पतिः ।
- ११.१३.६ द्युसिणं—(पं) कुङ्कुमम् ।
- ११.१४.२ कयदोसेसु—(ग पं) कृतदोषेषु प्राणिषु ।
- ११.१४.३ जाह्मयाद्—(ग पं) जातिमदादि ।
- ११.१४.५ पत्त...वि लहो—(ग पं) कस्यचित् सम्बन्धीयः स^१ परिग्रहः सुवर्णादिपदार्थः तत्र-लोभ त्वजता
निर्लोभाना शौच भवति ।
- ११.१४.१० परिविञ्जयकिञ्चतु—(ग पं) आकिञ्चन्यमित्यर्थः ।
- ११.१५.२ सुर्णतहो—(पं) अभिलपतः ।
- ११.१५.११ सौथार—(ग) श्रोतृणाम्, समदिष्टिहि—(ग पं) सम्मदृष्टेः मध्यस्थदृष्टेर्वा ।

पं इति श्री जम्बूस्वामिचरित्रे एकादशम सन्धिः समाप्त ॥ ११ ॥

प्रश्नस्ति

१. वरिसाणसयचउक्के—(ग) ४७० । २. छाहत्तरदससएणु—(ख ग) १०७६ ।

२ प^० हस्ता । ३ पं वत्सेवं । [११.१४] १ पं सप्त ।

शब्द-कोष

		'अ'		
अ-च	३.११ ६; ५ १३ १७	अंतःकमल-अन्तही हि० आर्ते	६ १०.३	
अह-अति	१.१२ ४, ८ १३ ९	अंतेडर-अन्तःपुर	६.८.८, १ १९.१४; ३.३ १४	
√ अहकर्मन्त-अति + क्रम् + शतृ०	८ ८ ८	अतोघण-अन्तर्घन	८ १४ १०	
अहकिण्ह-अतिकृष्ण	४.१३ १४	अंधवण-अस्तगमन	८ ८ १४	
अहट्ट-अवृष्ट	१ ५ १८	अध-अन्ध.	२.२०.६	
अइमुत्तभ-(1) अति + भुक्तकः-स्वच्छन्द		अंध-आन्ध्र. (देश)	९.१९.१	
(11) पु० अतिभुक्तक (पुष्पम्)		अंधय-अन्ध + क (स्वार्थे)	९.१३ १४	
	३ १२ १२	अंबल-अन्व	२ ६ ८	
अइमाइ-अतिशयो, मात करनेवाला	१० १.९	अंधयार-अन्धकार	८ १५ ५	
अउच्च-अपूर्व	९ २ ४	अंधारिय-अन्धकारित	६ ५ ४, १० २५.१०	
अंक-अङ्क, आसन	८ १२ १२	अंब-अम्बा, मातः	२ १७.२	
अंकिर्यंग-अङ्कित + अङ्ग	१० १ १२	अंब-प्राप्त	४ २१.२	
अकुरिभ-अङ्कुरित	४.१९ १३	अंबर-अम्बर, आकाश, १ १५.७, ४ ८.१२, ५ ६.७;	१० १९ ६	
अंकुसिय-अङ्कुचित	४ १९.१५	अंबादेवय-अम्बादेवता, अम्बादेवी	१.२.६	
अंकोल्क-वृक्ष एवं पुष्प विज्ञो	५ ८ ८, ५ १० ९	अंसु-अशु	४ ११ १, ९.२०, १२	
अंग-अङ्ग	६ ११ ८, ७.२, ८, ९ ११ ८	अकत्तिभ-प्र + कति.क.	४ ८ १२	
अंगरकल-अङ्गरक्षक	३ ४.९, ४ १२ १५	अकम्म-प्रकर्म	९ १५ ४	
अंगरुह-अङ्गरुहः, पुत्र	प्रश० १७, ३ ५ १०	अकयवगु-अविकृताङ्ग	७ १ १३	
अंगार-अङ्गार	६.६ २	अकलकिभ-अ + कलकित	२ १४ ३	
अंगारपुञ्ज-अङ्गारपुञ्ज	९ १५ १५	अकलय-अकपाय	११.७ ७, ११ ७ १०	
अंगुलि-अङ्गुलि	२ ५ १३, ४.१३.३	अकहिडजमाण-अकथ्यमान	१.१ १५.	
√ अंच-अचय, अंचवि	५ १.५	अकिष्ट-प्र + कृष्ट	१ १३.६	
अंजण-अञ्जन वृक्ष	३ ९.१७, ५.८ ७	अकित्ति-अकीर्ति	५ १३.२१.	
अंजलि-अञ्जलि	८.७ ५; ११.१.७	अकुलीण-(1) अ + कुलीन		
अंत-अन्त	२ ४ १	(11) अ + कु + लीन	६ ५.२	
अंत-अन्त, हि० मात	४.३ २	अकुलक-अकुशल	११ ९.३	
अंत-अन्त, आभ्यन्तर	९.१६ ६	अक्क-अर्क, सूर्य	४.५.१., ५ १३.६	
अंतद-अन्त, हि० आत	४ २ १७	अक्कल-(1) अक्ष, रावणका एक पुत्र		
अंतर-अन्तर	१.४ ९	(11) अक्ष-त्रेहृडा वृक्ष,	५ ८ ३४	
अंतरसुद्धि-अन्तरसुद्धि	१० २०.१२	√ अक्कल-त्रा + हया	४ १ ३, ५ ४ ८, ५ १३ ३३,	
अंतरंग-अन्तरङ्ग, आभ्यन्तर उपादन	१०.४.१	इ	९.१५ १०; १०.१६.११	
अंतराभ-अन्तराय (कर्म)		ए	९.१६.८	
अंतराभ-अन्तराय, विघ्न	२ १५ ८	अक्कलय-अक्षय	२.१२.४	
अंतराल-अन्तराल	५ ११ १०, ९.५.९	अक्कलय-प्रक्षत विना दृष्टे सफेद चावल	७ १२ ५	
अंतरिभ-अन्तरित	१०.१३.७	अक्कलयणिहि-अक्षय + निधि	३ १४ १९	

अब्द-कोष

अक्षय तद्वय-अक्षय + तृतीया	४.१४.२१	अच्छेरभ-आदर्वय (कारक)	
अक्षर-(१) वर्णमाला अक्षर		अच्छोद्विभ-अयमुक्तः अवछोटितः हिं	
(११) अक्षर-अंक संख्या	२.१४.५; ८ ३.१	छोड़ना	-
अक्षराण-आख्यान	९ ५.१.	अर्जगम-अजङ्गम-अचेतन	२ १.७; ११.६.१
अक्षराणभ-आख्या एक	१०.१२.९	अजिदम-अजिह्व	२.२०.५
अक्षिभ-आख्यात	१ १५ ८, ४.४ २, ६.१ १७	अज-आर्य	१.७.६
अक्षिय-आख्यात	३.१०.६, ५ २ १०	अज-अद्य, आज	२.१०.१०; ४.१४:१२, ७ ११.१०;
अक्षुहिय-अक्षुभित, अक्षुत्र	४.२१ १५		१०.२२.९
अक्षुण्ण-अक्षयनिधान	३ ८ ६	√अज-अर्जय ^० वि	९.८.१६
अखिल-अखिल	१० १.१०	अजवभाव-आर्जवभाव	११ १४.४
अखुहिय-अ + क्षु भज	४.२१ १९	अजवसू-आर्यवसू पु०	२ ५ २
√अगज-अ + गर्ज + इर (न.च्छोत्वै)	२ ३.३	अजिवा-आयिका	१०.२१.५
√अगण-अ + गणय, अगणय,		अजिय-अजित	३.९.१८, ३.११.२
अगणयित्वा	५ ७ २६	अजिया-आयिका	३.१३.१४; १०.२१.४
अगणत-अ + गणय + शतृ		अज्जेगभ-अद्यतन	५.२ १०
हिं	२.१० ९	अज्जुण-(१) अर्जुन पण्डव (११) अर्जुनवृक्ष	५.८.३१
अगलिय-अगलित	६ ३.१०	अज्ज्जाण-अज्ज्वान	२.८.९
अगाह-अगाध	१०.१७ ८	अट्ट-आतं	११.९.५
अगुण-(वि०) अ + गुण निर्गुण	४ १ १	अट्टभेय-अट्टभेद	११.१२.८
अग-अग्र	२.१२.१४	अट्टम-अष्टम हिं आठवाँ	१.१६.८; ८.१६.१८
अगभ-अग्रत.	१०.१९ १२	अट्टवरिस-अष्टवर्षीय.	३.४.६
अगर-अग्रत. हिं आगे. ४.४.१, ५.१०.९, ५.१३ १४		अट्टसहस-अष्ट + सहस्र	१.१२.१, ६.४.२०
अगाहार-अग्रहीर	२.४ ८	अट्टारह-अष्टादश हिं अठारह	२.५.१०; १०.२३.१०
अगिस-अग्रिम	८ ५ ७	अट्टिवाड-अस्थिवात	३.११ ४
अगिगवत-अग्नि + मतुप्	२.१.९	अडइ-अटवी	१०.७.१; १०.१३.१०
अग्नेय-आग्नेय	७ ९५	अटयणा-(वे) अग्निचारिणी स्त्री	१०.१०.१०
अग्नेसर-अग्रसर	१०.५ १०	अटवी-अटवी	१०.७
अघद्विय-अघटित	८ ९.६	?अघोद्विय-अ + दोहित, मथित, अवगाहित	५.१० २
अचण्डिज-अ (न्) + आक्रान्त, अनाक्रान्त	५.३.२	?अङ्गुविषङ्ग-अर्द्धवितर्द, भाडे, टेढ़े,	११.६.२
√अचयत-अ + त्यज् + शतृ	९.९.४	?अङ्गुवाङ्ग-अर्द्धविक, ढाई	११.११.११
अच्यंभ-आश्चर्य हिं अचमा	१.१३ २,	अणव-अ + नय अनीति	५ १३.८
अच्यग ङ-अति + अणल	८.१०.१६	अणंग-अनङ्ग	३.१२.१६, ४.१३.३; ५.२.१४
अच्छ-(दे) अच्छा, स्वच्छ	४.१३ ९	अणंत-अनन्त	२.२.१०; ३.१४.१९
√अच्छ-आस् ^० इ	५ १ ३१	अणत्थ-अनर्थ	५.१३.७, ९.१२.११
अच्छरहिं	३.१.६	अणथयार-अ + नय + चार अनीत्याचार	
अच्छर-अप्तरा	१०.१५.३		५.१२.२४
अच्छरिभ-आश्चर्य	३.६.११	अणवरय-अनवरत	५.१.२८; १०
अच्छि-अग्नी, नेत्र	४.१७.८	अणसण-अन + अयान् अनसन	२ २०.९, १०.२१ ८
√अच्छिउज-(१) आस् (कर्मणि) °ङ	९.१० ४	अणाह-अनादि	११ ५ ८
अच्छिभ-अच्छि	९ ९.९	अणिच्च-अनिरय	११.१.५

अणिट्ट-अनिष्ट	२.२.८	√अणुहुंज-अनु + भुञ्ज °हि	५.४.१८
अणिट्टसंब-अनिष्ट + संब	४.५.८	°हुंजि-(विधि०)	१०.१०.१६
अणिस-अनिमेव निनिमेव	८.९.८	अणुप-अनु + उप (म) अनुपम	४.१९.२२
अणियच्छिद्य-अ + दृष्टः	१.१.६	°अणोय-अनेक	१०.२६.३
°अणिक-अनिल	६.८.५	अण्ण-(१) अन्य	१.२.१२; २.१६.५; ४.१४.१०;
अणुम-अनुज	२.५.१०, २.८.७	६.८.१०, ९.८.७, (११) आत्ममिन्न	१.१५.१
अणुकारिभ-अनुकारी	५.१.२५	अण्णत्ताणुविकल्-अन्यत्वानुप्रेक्षा	११.५.१
अणुगह-अनुग्रह	१०.२०.१	अण्णस्थ-अन्यत्र	१०.१०.५
√अणुचिट्ट-अनु + चेष्ट (विधिलङ्गा)		अण्णवण्ण-अन्य + वर्ण	१.२.१४
°वत्	३.७.१६	? अण्णहि-अन्यत्	१०.२५.५
√अणुणभ-अनुनय्	४.१७.१	अण्णहो-अन्यस्य	३.६.८
√अणुणत-अनुनय् + शतृ	९.३.११	अण्णाण-अज्ञान	८.३.७; ११.८.७
अणुदिट्टय-अनुद्दिष्ट	१०.२१.९	अण्णाणित्तज-आ + नम् (कर्मणि) °ह	१.७.८
अणुदिण-अनुदिन	२.८.४३, ३.११.५	अण्णाण्ण-अन्यालाप, अन्योक्ति	२.१२.७
अणुपेहा-अनुपेक्षा	११.१५.१४	अण्णाण्णिरी-अन्या + शी	४.८.११.
√अणुमण्ण-अनुमोदय् °णिवि	७.७.८	अण्णेक-अन्य + एक	१.२.८
अणुमण्णभ-अनुमोदित	२.८.११, २.१२.३	अण्णे तहि-अन्ये तत्र	११.१२.८
अणुमाण-अनुमान	११.३.७	अण्णेसभ-अन्वेपय् °वि	१०.११.८
अणुमेभ-अनुमेय	१०.२१.९	अण्णे षण-अन्योन्य	७.६.२, ९.१८.८
°अणुराय-अनुराग	९.१७.११, ११.१.११	अत्तित्त-अतृप्त °त्	१.११.४
अणुरूव-अनुरूप	१०.९.४	अत्तिन्न-अतीत्र	-२.३.३
अणुरूग-अनुरूग	१.१०.२	अत्थ-अर्थ, घन	३.१४.२२, ८.६.१३, १०.३.७
अणुवच्च-अनु + व्रज् °वि	२.१२.४	अत्थ-अर्थ-पदार्थ	२.१.८
अणुवळ-अनुवळ, सहायक सैन्य	५.४.१७	अत्थ-शब्दार्थ, भावार्थ	७.१.४, ८.२.८
अणुविकखा-अनुप्रेक्षा	११.१५.१४	अत्थहरि-अस्त + गिरि-अस्तावळ	६.१०.१४
अणुवेक्स-अनुप्रेक्षा	११.३.१	अत्थंगय-अस्तगत	८.१४.१३
अणुवेकखा-अनुप्रेक्षा	११.१.४	√अत्थत्त-अस्त गम् + शतृ	५.७.३, ८.१३.९
√अणुसंचभ-अणु + सञ्चय् °ह अणु		अत्थत्तेभ-अर्थत्तेद	९.४.१०
कमपरमाणु सचय	११.७.८	अत्थवण-अस्तवनम्	८.९.१४; १०.२४.४
अणुमर-अनु + सू °मि	१.२.६	अत्थवणहो-अस्तवनस्य	८.१४.४
°रेवि	९.३.१३	अत्थसिहर-अस्तविाखर	८.१४.६
अणुवासिड-अनु + वास + तुमुन् सम्मागे		अत्थाण-आस्थान, समा	५.१.७, ५.१२.८, ७.६.३६
प्रवर्तयितुम् (टि०)	१.५०.१२.	अत्थाणुरूव-अर्थ + अनुक्षप	७.१.३
√अणुहर-अनु + ह	२.१६.१४, १०.१४.१६	अत्थास्थि-अर्थ + अर्थी	८.८.९
°हरत्त-अनु + ह + शतृ	९.९.११	अत्थि-अस्ति	१.४.१, ३.१०.१०
अणुहरिभ-अनुसुत	४.१९.२२, ९.३.२	अत्थिलण-अर्थोजन	३.३.११
√अणुहव-अनुभव °ह	२.१.१४	अत्थाम-अ + स्थाप	४.२१.१६
°हविवि	१०.१७.१९	अद्वकिकय-(दि) निर्भय	९.१४.१४
°हविभ-अनुभूत	१०.१७.१७	अदीण-अदीन	१०.२६.९
		अद्व-अर्द्ध	७.१०.६

अर्द्धविभ-अर्ध + अर्द्धजत	४ ११.९	अठमासु-अष्टमास	१.२.४
अर्द्धस्वर-अर्द्ध + अक्षर	९.१३.११	√अठमट्ट-(दि) सामने आकर मिडना	
अर्द्धरत्ति-अर्द्धरात्रि	९.३ १०; ९.११.१६, १०.९.१	इ	६.१.८, ६.१.४ १०, ७.३.४
अर्द्धात्मण-अर्द्ध + आत्मन	५.१.५	अठ्भुत्थाण-अभ्युत्थाण	८ ९.३
अर्द्धधुव-अर्द्धधुव	११.१.१३	√अथउ-अ + मू, अमृत.	३.५.११
अर्द्धेदु-अर्ध + इन्दु	४.१३.४	अमाउ-अमाव	१०.३.६
अधीर-अधीर	१०.२६.७	अमय-अमृत	१०.१.९
अन्न-अन्न	१०.१२.१०	अमययहु-अमृतमधु	९ १.९
अपाठस्त-अ + प्रावृष	४.८ १३	अमर-(तत्सम)	३.३ ३; ४.४.७
अपूर-अ + पूर	५.५ १२	अमरगय-अमर + गज-ऐरावत	१.११ ३
अपेय-अपेय	१ ६.१०	अमरालय-(तत्सम) स्वर्ग	३ १.५
√अपर-अपर्यु ^१ इ	१.११.२०	अमरिद्-अमरेन्द्र	४.१.५
अपर-आत्मा, आत्मनः	२.७.१, ६ ५.२,	अमक-अ + मक, निर्मक	११.१२.११
	९ ११.६, ११ ६.९, ११.८ ९	अमाण-अ + मान्	२.१३.१०; ११.८.७
अप्यत्-आत्मन.	८.१४.१५, ९.१.१३,	अमारिअ-अ + मारित	७ ६ ३६
	९.१४.१२	अमिय-अमृत	८ २ १६
√अपरअ-अपर्यु ^१ इ	२ १९.९, ५ ४.४,	असुक-अ + मुवत्, युवत्	३.१० ३
अप्यि	१०.२१.३	√अमुणत्-अ + ज्ञा + षत् ३ १.१३; ७ ११ १३	
√अप्यत्-अपर्यु ^१ + षत्	८.१४.९	अमुणत्	९ १३ १
अप्यण-अप्याण, आत्मनः	१० १३ ४, ११ ७ ७	अमुणिय-अजात	५ १४ ११, ७ ६ २३
		अमेह-अमेव	१० १७ ८
अप्यणअ-आत्मन	११ १५.२	अमोहउ-अमोव ^१ , प्रचुर	१ १३.७
अप्यणत्त-अपनस्व	१० १८ ९	अम्म-माता हिं अम्मा	९.२७ ६
अप्यसाण-अ + प्रमाण, असीम	५.३ ३, ५ ४.१	अम्ह-अस्माकम्, नः	५ ११.१५, ७ ३ १०; ७ ३ १४
अपरस्त्रिय-आत्मस्त्रिय	१०.२३.६	अम्हाण-अस्माकम्	७ ३ ८
अप्यणअ-आत्मनः	९.५ ११; ९.६९, ११.३.७	अम्हाणम्-हुमारा	९ १५ १२
अप्यिअ-अपित	९.१३ ३, १० १०.१	अम्हारिल-अस्माकम्	२.१५ १९; ७ १८ १५
अप्यिट्ट-प्रस्पृष्ट	१०.२.८.	अथरु-अथरु	९.१२ २
अप्यिय-अपित	९ १३ १३	अथप-अथवा, अपथवा	५ १३ १७
अप्यकलिअ-आस्का क्त	१ १४.५, ७ ८ ८	अथाण-अजाण, वज्जाणी	१ १८ ११, १०.२६.७
अथक-(तत्सम) वलहीम	११ ७ ५	अ-अक-अकाल	१ १३.३, ४ ८.२३
अथाहि-अथाध, निवाध	३.१० ४	अरहंत-अरहंत	४.४ ११
अथत्रुय-अर्धुद, आवु पर्वत	९ १९.६	√अरहत्ति-अ + रह (दि) + षत् ^१ (स्त्रियाम्)	
अठमतर-आठमतर	३ २.४, ७ ११.१२		१० १८ ७
	१०.२३ १०	अरिभित्त-अरि + भित्त	२ २० ४
अठमतरिअ-आठमतरिक	१० २३.८	अरिसकड-अरिसंकट	५ ४ ५
अठमस्थण-अठमस्थना	१.२.६, ३ ९ ५	अरुण-(तत्सम) अरुण	२ १४ ७
√अठमत्त-अठि + अम् ^१ इ	२.२०.२,	अरुणच्छाअ-अरुण + छाया	१ ११ १५
अठमसियअ-अठमस्त	४.९ ६; ४ १७.१९	अरुणत्त-अरुणत्त	६ ६ १
अठमहिअ-अठमधिक	९.६ ८		

अरुहणाह-अरहनाथ, अर्हन्तनाथ	३.१३.७	अवभाणिय-अपमानित	७.६.२१
अरुहभक्त-अर्हन् + भक्त	१.११.८	अवभोयर-अवभोदय	१०.२१.१०
अरुहयास-अरहदास (श्रेष्ठि)	४.१७, ४.३.१०, ९	√ अवचरन्त-अव + त् + शतृ	५.२.३
	१३.२; १०.२१.३	°अवचार-अवतार	१०.१.७
अलंकरिय-अलङ्कृत	२.५.२	अवयास-अवकाश	२.१.८
अलंकार-अलङ्कार	४.१२.१२	अवर-अपर, हि० ओर	२.१.८.१४, २.२०.३
°अलंकिअ-अलङ्कृत	१.१६.२; ३.८.३, °य ४.८.१;	अवर-अपरा (स्त्री०)	४.११.१५, ८.६.३, ९.८.२०
	५.२.८	अवरल्ल-अपराह	८.१४.२
अलंमिरी-अ + लभ् + °इरी (ताच्छील्ये, स्त्रियाम्)		अवरत्तअ-अनुताप	१०.१४.१४
	४.२१.९	अवरिचक-अपर + एक	९.६.३
√ अलज्ज अ + लस्च् °हर (ताच्छील्ये) हि०		अवरुण-°(दे) बालिङ्गन	२.१४.९
लज्जाहीन	१०.१५.५	√ अवरुण-अवरुण्ड, बालिङ्ग्य, °डेवि	
अलद्ध-अलब्ध	७.६.१८	बालिङ्ग्यिर्त्वा	९.४.१५
अलय-अलक हि० अलके	१.११.१६	अवरुपर-पररुपर	२.२.२.१-२.३
अलथावलि-अलक + अवली	४.१३.३; ५.२.१७	अवरोपर-पररुपर	१.१५.८; २.४.११
अलस-आलस्य	१०.२३.४	अवलंनिय-अवलम्बित	६.९.३, ७.११.७
अलि-(तत्सम) अमर	८.१४.१७, ९.९.२	अवलोड्भ-अवलोकित	९.८.७
अलिखल-अलिकुल	१.१७.६	√ अवलोक्य-अवलोक्य् °यद्	९.१.७; १०.४.१०;
अलिमाला-(तत्सम) अमर पङ्क्ति	१.११.१६		११.९.१
अलिय-अलीक	५.१३.७	°यत	९.१९.१७, ४.१२.१६
अल्लय-आर्द्रक हि० अदरक	७.१.२	°यहि (विधि०)	१०.१५.६
अल्लहज-आर्द्रचणका: गोले चने	(दि०) ३.१२.१५	°यहु, °यहो (विधि०)	८.९.१३; १०.११.८
अवहण्य-अवतीर्ण	१.८.८, ४.१६.८	अवस-अवश्य	१.११.२, ३.६.७
	°हण्णी ४.१४.२३	अवसद्-अपशब्द	१.२.७
अवती-अवती	९.१९.८	अवसपिणी-प्रवसपिणी, कालचक्र	३.१.१०, ४.३.
अवक्क-अवाक्	१०.२५.९		१५, ११.११.७
अवक्क-अवक्क	११.१४.४	अवसर-(तत्सम)	६.३.५, ७.३.११
√ अवगणअ-अप + गण्य् °हि	५.१३.२५	अवसाण-प्रवसाण	२.२०.९; ९.५.१
	°ह ११.१.१२	अवसार-अपसार, पीछे हटना	५.१४.२२
	°ण्णिवि ९.६.८	अवहृत्थ-देवैः . टिप्.ण .	५.१४.२१
अवगण-अप + गण्य् (विधि) °हि	२.११.११	अवहारण-अवधारण	१०.२२.३
अवणिय-अवगणित, अवमान	७.६.२६	अवहि-प्रवधि (ज्ञान)	२.२.७; ३.५.१
√ अवगम-अव + गम् (विधि) °हि	१०.१०.१५	√ अवहुज-उप + भुञ्ज् °जहि (विधि)	१०.५.५
अवजस-अपयक्ष	९.४.६	अवहेर-अपहार, अपहरण	९.५.२
अवज्ज-अञ्ज (देश)	९.१९.९	अवाणअ-आवाणक	४.१७.१५
अवड-कूप	९.७.१६	अवि-अपि	१.५.१२
√ अवतस-अप + तस् °इ	४.२२.११	अविषव-अविघ्न	१.१८.७
अवत्थ-अवस्था	७.२.१६, १०.५.१	अविज्ज-अविद्या	३.८.१३
अवद्ध-अवद्ध	१०.५.१	अविणट्ट अ + विणट्ट	८.४.१२
√ अवमाण-अप + मान्य् °ट्टि (विधि०)	५.१३.२४	अविणयवत्-अविनय + मगुप्	१.७.१

अवितत्तञ-अवितुप्त (वेद्याजन)	९.१२८	असुहंकर-अ + शुभंकर	११.५.७
अविचारिभ-अविचारित	१०.४.७, १०.७.११	असुहाविय-असुखापित, हि० स्वादरहित	१०.७.६
अविरुद्धञ-अविरुद्ध, निर्दोष	१०.२०.१०	असेस-अशेष	२.१२.११, ६.१.१६, १०.२४.३
अविरुद्ध- (तत्सम)	३.८.१३	असोय-अशोक (वृक्ष)	१.१६.१२; ४.१७.४
अविकल्पण-अविकल्पण	१०.४.४	अह-अघ	३.१२.१८, ९.८.६; ११.८.५
अविवेह-अविवेकी	७.८.१४	अहं-अहम्	११.८.१, २.१६.३
अविवेहो-अविवेकस्य	९.२.७	अहमिद्-अहमिन्द्र	१०.२४.१२
अविषाय-अविषाद	११.१५.३	अहमिय-अहम् + इहम्	१०.५.१२
अवहित्त-अ + विमवत्	२.५.९	अहम्म-अघर्म	१०.५.४; १०.१०.१३
अवेक्ष-अपेक्षा	९.१२.१७	अहर-अघर	१.११.१५; २.१६.४, ४.१७.११
असह-असती (वेद्या)	१०.१०.७; १०.१८.२	अहर-(i) अघर (ii) अघम	९.१२.१२
असंक्रिञ-अशङ्कित	८.२.२९	अहरत्त-अघरत्व	११.६.७
असंभव-असम्भव	१०.३.६	अहरसुह-अघरमुद्रा	४.१३.७, ८.१.५
अमङ्ग-प + शक्य	५.१३.३१, ६.१.१२	अहरनिव-अघरविम्ब	२.१५.१५, ५.१३.२०
असगाह-असद् + आग्रह	५.१३.४	अहरुल्ल-अघर + उल्ल (स्वार्ये)	२.१४.७
असज्ज-अमाद्य	९.१४.४, १०.१५.९	अहरोद्-अघर + ओष्ठ	४.२२.१०
असम-अ + सम, असमान	५.३.१	अहरोवाहि-अघर + उपाधि-सन्निधि, नैकट्य	१.१०.४
असमत्त-असमान्त	८.९.७	अहरोद्-अघर + ओष्ठ	९.१८.५
असमर्थ-असमर्थ	८.२.५	अहल-अफल	८.१४.४
असरण-अशरण	११.२.१	अहलीकञ-अवरी + कृत	१.११.१६
असराह-अह, अपर्यन्त		अहव-अथवा	४.१८.१४; ८.१.४, १०.२३.३
असरिस्-असदृश	४.२२.२६	अहि-(तत्सम) अहि, सर्प	४.१०.१३; ८.७.७
असवार-अव + वार, घुडसवार	६.५.७	अहिञ-अधिक	९.१०.२१; १०.१२.८
√ असहंत-अ + सह + शतृ	२.५.१५; ५.१.१६, ६.४.१०	अहिणंदिञ-अभिनिन्दित	२.१३.१
°रि (स्त्रियाम्)	८.१४.७	°दिठ	४.४.९
असहमाण-अग्रहमान	९.७.१०	√ अहिणैड-अभिनिन्द + तुमुन्	८.२.१०
असहिय-अ + सह	९.७.२	°अहिष्टिञ-अविष्टित	४.१३.१९; ५.१.३४
असार-(तत्सम) सारहीन	९.८.८, १०.४.७	अहिमवण-अहिमवन, नागमंदिर	३.१३.३
असारय-(i) अ + सार (ii) अ + सारदीय	४.८.१९	अहिमार-वृक्ष विशेष	५.८.६
°असि-अस्ति	६.१.२	अहिसुह-अभिमुख	७.१०.१८
असिवाय-असि + घ त	६.१.१६	अहिय-अधिक	८.२.१
असिद्ध-असिद्ध, अनुपलब्ध	९.४.१२, १०.१४.१५	अहिराम-अभिराम	१०.१.८
असिहञ-असिद्ध, अप्रप्त	९.१०.२२	√ अहिलस-अभि + लप् + ह	१०.१४.१५
°असिघार-(तत्सम) असिघार	६.७.३	°सिचि	९.७.१२
असिचरण-	६.१४.१५	°हि	५.१४.३
असुह-अशुचि	१०.१७.७, ११.६.१, ११.६.८	√ अहिलसंत-अभि + लप् + शतृ	९.१०.२१
असुत्त-अ + सुप्त	१०.९.४	अहिलास-अभिभाषा १५.११, २.७.५, १०.७.१०	५.१४.१०
असुद्ध-अगुद्ध	१०.२.८	°अहिलासी-अभिभाषो	४.१४.४
असुह-अगुण	१०.४.१४, ११.७.३	अहिसारिआ-अभिसारिका	८.१५.१
		√ अहिसिच-अभि + सिच + ह	४.१९.७

अहिहाण-अभिधान, नाम	३.५.११, ३.११.२१,	°आणंद्यर-आनन्दकर	८४.६
	१०.१६.१	°आणदयरी-आनन्दकरी (स्त्रीयाम्)	३.३.६
अहो-(तत्सम) आश्चर्याद्यै	१.१३.१	आणंदरूप-आनन्दरूप	९.२.१२
	[आ]	°आणद्वद्वावण-आनन्द + वद्वापिन-वर्षाई	३.४.३
आइअ-आगत	१.११ १०, ६.२.१	आणदिय-आनन्दित	४.६.७
आइचवर्दसणा-(स्त्री०) आदित्यदर्शना	३.१४.१	आणकर-आज्ञाकारी	३.३.१३
आइट्ट-आदिष्ट	५.६.३	आणत्त-आज्ञप्त	४.१६.८, ५.१४.८
आइण्ण-आकीर्ण, सङ्कीर्ण	१०.१९.१६	आण्ण-आज्ञ (दे) आकुल	९.९.१४
आइय-आगत	८.४.१३	आ + नमस्त्रिय-नमस्कृतम्	९.१७.५
आउ-आगतः	२.१३.२; ६.११.६, १०.८.१४	आपडुर-आ + पाण्डुर, समन्तात् पाण्डुर	४.७.४
	१० १७.२, ११.३.३	√आपीळ-आ + पीळ् इ	४.१७.११
आउचिय-आकुञ्चित	८ १३ ३	आनिह्-(ठ) निहना	६.१२ ९
√आउचळ-आ + पूळ् इ	३.५.५	आर्मंतिय-आमन्त्रिता (स्त्रियाम्)	१०.२५.४
°चळेपिण्ण	८.७.२	आमिस-आमिष	९.५.४, ९.११.४, १०.१०.९
आउण्ण-आ + पूर्ण	४.६.५	आमुळ-आ + मुळत	५ ११.१३
आउत्त-आयुक्त (अधिकारी)	५.१.१०	°आमोय-आमोद	५.१ २२, ७.१२ २; ८ ५.६.
आउत्तमंग-आ + उत्तमाङ्ग	९.१८.५	आय-आगता (स्त्री०)	८.५.५.
°आउळ-आकुल	५.१.२०, ५.६.१७	आय-आगत	६.१०.७
°आउस-आयुष्य	३.१.६, ३.५.८, ८.२.२६,	आयअ-आगत	१० १९.६,
	११.१.६	°उ	४.२.४, ७ १३.१०
आउसमअ-आयुष्यमय	२.२०.१०	आयउ-एष; यह	९.६.११
आकरिय-आपूरित	१० २४ १	आय्विर-आतात्र	८.१३.७
आपुस-आवेग	३ ४.८, ५.२.२२, ८.७.३	आयडिडय-आकुट	४.६.१
आपुसिअ-आवेधित	१.४.९, ५.१२.१०	√आयण्ण-आकर्णम्	२ ४ ५, ४ ३ १
आकरिसण-आकर्षण	९ १२.९	°इ	९.३.३
आगअ-आगत	१०.१८.६	आवण्णवि	९ ७ १,
आगअम-आ + गर्भ	१०.३.१	आवण्ण (विधि०)	१० ६ १
आगम्ण-आगमन	२.१०.१०, ११.७.२	आवण्णहि (विधि०)	९.१०.१५,
आगया-आगता	९.१७ ७, १० १८.११		१०.४.५
आगुह्-(तत्सम) पूज्य, गुरु-स्थानीय	९.१७.१३	°णिण्यई (आत्मने०)	४ ७ १३
आजाणु-आजानु	९.१८.२	आयत्त-(तत्सम) स्व + आधीन ९ १२ १, १०.१६ ४	
आडविल-आरब्ध	३.९ १०	आयस-आगम	३.९.१९
√आण-मान्य् इ	३ ९.१४	आयस्-आदर	१.७.११, ९.१२ १८, १० २३.२
°वि	१०.१४.२	√आयस्-आदृय् इ	१०.२०.५
°हि (विधि०)	३.९.१२	आयस्त्रिय-आचार्य	२ ८ ९, २ १७ ५
आणि (विधि०)	१० १५.८	आयस्त्रियपरंपरा-आचार्य-परम्परा	प्र० ५
आणिज्इ (विधि०)	१०.१६.८	आयहु-अस्व, एतस्य	५ १२.१९,
आण्ड-आनन्द	४.१.१४, ४ ८.४	°हो	२.१८ १, ५ १२.२१
आण्ण-आनन्द-आनन्दन-आनन्दवायक	४.६ १४	आथा-आगता (स्त्री)	१० ९ ४, १० २५ २
आण्णदत्त-आनन्दवृत्	१.१४.५	°आथार-आकार, समान	४.८.८

भाषार-भाचार	८८४	भावास-(तत्सम)	१०.१४.२
भाषास-भाकास	२.१६	भावासिज-भावासित	५.१०.२५
भारद्विय-भारदित	७८९	आविच-आगत	७.४१६
भारणाल-भारनाल, काजी, सावूदाना	३.९.१०	आम-आशा	८.७१६
भारण-भरण्य	१०.७.६	आसभ-आश्रय (स्थान)	१०.२०११
भारत्त-भारवंत	४२२.११	आसंक-आसक्त	२१६५
भाराम-उद्यान	५.३.१०	आसंकिभ-आसंङ्कित	५.१.२१
भाराहण-भाराधना	१०.२६.११	√आसव-अष्टवस्, या आ + धृप् आसंवि	
भारिस-ईदृश	९.१६.७		६.१२.८
भारिसकहा-आर्पकथा	८.२.१	आसकभ-आशाकृतः	९.७.१६
°आरुट-आरुष्ट	७.६.४	आसण-आसन्न, निकट	३.१३.६, १०.१८.५
आरुढ-(तत्सम) आरुढ	११.८.३	आसत्ति-आसवित	१.१०.४
आरोयसणु-आरोयतनु	१०.११६	आसस्थाम-(i) अक्वस्थामा	
'आरोह-(तत्सम) सवार, महावत	६११.५	(ii) पीपलका गच्छ	५.८.३२
°नर	६.११.९	आसन्न-(तत्सम)	९.१३.१२, १०.१८.२
आरुत्त-आरुप्त	९२३	आसम-आश्रय	१०.१९.१५
√आलावध-आ + लापम् °इ	४१७.१८	√आसर-आ + श्रो °रिचि	२.२०.९
आलावाणि-आलात्रिनी, वीणा	९.९.११	°रेचि	९.१४.३
°आकिण-आलिङ्गन	९१८८	आसव-आसव	११.८.१
आलिगिभ-आलिङ्कृत	४१७२	आसवार-अश्व + वार, हि० सवार	४.२१.७
√आलिगिचि-	९.१२१८	आसा-आशा	१०.१०.१०
आलीढ-आसक्त	४.५.१३	आसादृथ-आसादित, प्राप्त	१०.१.१४
आलोङ्गिदिज्ञा-अवलोकिनी विद्या	५.२.१०	आसापास-आशापास	१०.२२.३
√आलोङ्ग्यंत-आलोच्य् + धातु	३.१२.१	आसासियज-आशवासित	७.४.१८
आलोचन-आलोचन	११.९.७	√आसि-आसीत्	५.१३.१६; ११.१.११
√आव-आ + या (आना) °इ	२१४५	आसिय-आश्रित	११.९.२
°व (विचि०) °इ	९१७१४	आसीण-आसीन	१०.२४.२
आविच	१०१४.५	आहंढल-आसृण्डल, इन्द्र	२.४.७
√आवंत-आ + या + धातु	५.१२.११, ६.११२;	√आहण-आ + हन् आहणेइ	६.१०.९
	१०.११.३	°आहय-आहत	८.७.१२
आवइ-आपत्ति	८७१७	√आहर-आ + ह् °रिचि	१०.१२.१०
आवज्जण-आवर्जन, उपयोग	११.१४.१	आहरण-आभरण	४.८.५; ११.१४.३
°आवज्जिय-आपचित, वजित	२५.१२.४.९४,	आहार-(तत्सम)	२१२.३
	१०६.६	आहास-आ + भाप् °इ	२.१८८, १०.२५.३
आवद्विय-आवर्तित	६.९.२	आहीर-आभीर (दिग्)	९.१९.४
आवण-आपन्न	५.१.३		
°आवद्-आवद्ध	१०.२६३	[इ]	
√आवलभ-आ + वल्, आवन्चि	४.२२.१४	इव-(अ०) इवम्, अयम्, इति	२.२०.८, ५.११.१५;
√आवह-आ + वह् °इ	७६.२३		६.३.७
आवागभ-आपानक, मद्यगृह या चपक	४.२.७	इद्-इन्द्र	१०.२४.१०

इंद्रगोत्रय-इन्द्र गोपक	४.१८.६	√ ईह-ईह, °ह	८.११.१२;
इंद्रनील-इन्द्रनील	३.३.१०	°हि	९.१५.२
इंद्रसमान-इन्द्रसमान	३.१०.५	√ ईहतिथ-ईह + शतु °तिथ (स्त्रियाम्)	१.१०.५
इंद्राणस-इन्द्र + आदेश	१.१६.३		
इंद्रिंदिर-भ्रमर	८.१३.६	[उ]	
इंद्रिय-इन्द्रिय	३.९.२, ८.८.१३, १०.२०.१३	उभय-उदय	११.९.७
इंद्रियगिद्धि-इन्द्रियगृद्धि	११.१४.७	उभयागभ-उदय + आपत	९.१.१८
इंद्रियदप्य-इन्द्रियवर्ष	३.६.२	उद्भय-उदित	८.१५.४; १०.१८.१४, ११.९.२
इंद्रियदवण-इन्द्रियदमन	२.१८.३	उंट-उष्ट्र (कथा)	१०.७.१; १०.१८.२
इंद्रियफडाल-इन्द्रिय + फणा + ल (स्वाथे)	३.७.१३	उंबर-उडुम्बर, वृक्ष विशेष	४.२१.२, ५.८.१३
इंद्रियवित्ति-इन्द्रियवृत्ति	११.८.२	उंस-ओस	१०.७.९
इंद्रियविसय-इन्द्रियविषय	२.२०.३	√ उर्ककर्मत-(दे) उक्कक + शतु, घनुष पर	
इंदीवर-(तत्सम)	१.६.७	डोरी चढ़ाते हुए	६.७.१०
इंदु-(तत्सम)	४.९.१	उर्कंठिभ-उत्कण्ठित	७.१२.१८
इंधण-ईधन	१०.१३.११	°उर्कंति-उत्कान्ति	१.७.९
इक्क-एक	१.५.१७, ६.२.१	उर्कचिय-उत् + कर्तित	५.८.२६,
इक्कलभ-अकेला	१०.२६.११	√ उक्कम-उत् + क्रम °वि	६.७.८
√ इच्छ-इच्छ इच्छमि	१.३.७	उर्करिसिय-उत् + वषित	१.८.५
इच्छिय-इच्छित	३.९.११, १०.६.१०	उर्कोरिय-उत्कीर्ण	२.१५.१
इष्ट-इष्ट	२.५.१५, ९.१०.२१, ९.१७.११	√ उर्कीरभ-उत् + कीरय °मि, हिं० उर्कीरना	८.८.११
इष्टच्छर-इष्ट + अप्सरा	२.२.७		
इण-इदम्	८.१२.१	उक्कुकिरिय-उत्क + उत्क + कृत:	
इस्थ-अत्र	१.६.२	ऊपर उठे हुए	४.१३.१२
इस्थह-अत्रैव	९.१५.१३	√ उक्कलण-उत् + लम् °ह, हिं० उक्कलना	५.५.१
इत्थिरज-स्त्रीराज्य (देव)	९.१९.१२	उक्कलय-उत् + खात	५.११.१३
इभम-इभय, धनवान	३.१०.१२	उक्किलत्त-उत् + क्षिप्त, उक्कलडे हुए	५.१४.१
इभं-इदम्	२.३.१	°उक्कखेव-उत्कीप	८.१३.४
इय-इति, एव	७.१२.१०, ९.४.७, ११.१५.१०	उक्कखेविभ-उत् + क्षेपित	७.१०.१५
इयर-इतर	१.४.१०, ४.१४.१४	उरगाभ-उत् + गत	५.७.४; ८.१३.११
इयरा-इतरा (स्त्री०)	८.११.१	उरगांठिय-उत् + ग्रथित खुले हुए	९.१८.४
इयराउत्त-इतर + आयुक्त्व	५.१.१०	उरगाय-उद्गत	१.१७.७
इव-(तत्सम)	८.३.३	उरगामिभ-उद् + गमित	६.४.८
इडु-ईदुक्, (अप०) एतत्	३.१.२, ७.३.७	°उरगाार-उद्गाार	९.१२.२
		उरगाण-उत् + गोर्ण, उद्गोर्ण	५.१४.१०
		√ उरगारंती-उत् + गु + शतु °ी (स्त्रियाम्)	१.५.४
√ ईस-ईर्य, ईसाइवि	८.१४.७		
ईस-ईष्या	९.१३.२	√ उरगाह-उद्घाटय °ह	९.८.२०
ईसर-ईसव, समृद्ध	१.९.१०	उर्कंत-(दे) ऊंचे उठाये हुए	७.६.१५
ईसालुभ-ईष्यालु + क (स्वाथे)	३.११.५	उक्कतण-उक्कत्व, उक्कषे	११.१०.११
ईसि-ईषत्	१०.३.८	√ उक्कल-उत् + कल् °ह, हिं० उक्कलना	१.९.३

√ उच्चलंत-उत् + चल् + शतृ	४ २१ ११	√ उड्वाव-उद् + डापय् ई, हि० उड्वाना	२ ७.५
√ उच्चर-उच्चवारय्, उच्चरेवि	९.१७.४	उड्डिभ-उड्डित	१०.१८ २५
√ उच्चाङ्ग-उच्चवय् ईवि	६.१४.७;	√ उड्डिज-उत् + ङी °इ (कर्मणि)	९ ५ ८
यति	७.११.२	√ उड्डी-उद् + ङी, उड्ना °इर (ताच्छील्ये)	५.७.६
उच्चाह्व-उच्चायित, ऊपर सठाया हुआ	४.२०.८	उड्डेविणु	७ १०.२२
√ उच्चारय-उत् + चारय् (कर्मणि) °रिअइ	२.४.९	उण्णह्व-उण्णयित, उदितः	७.९.९
उच्चारिय-उच्चवारित	१.१७.८	उण्णामय-ऊणामय	२.१०.५, ८ ११.३
उच्चाक्षि-उत् + चालित	५.४.१०	उण्णाह-(दे) तीव्र प्रवाह, वाढ	९.१०.१
√ उच्चिण-उत् + चि, उच्चिणंति (बहु व०)	८.१५ १२	उण्ह-ऊण्ण	१०.१५.६
उच्चैदिय-उच्चदित	६.४ ६	उण्हचिय-ऊण्णापित, ऊण्णीकृत	८ १३.५
√ उच्छल-उत् + चल् °इ	६.५ १	उत्त-उत्त	१०.८ ४
√ उच्छलंत-उत् + चल् + शतृ	९.९ १२	उत्तमंग-उत्तमाङ्ग, शिर	५.१.१७
उच्छलिभ-उच्छलित	५.६.१७	उत्तमखम-उत्तम क्षमा	११.१४.२
उच्छव-उत्सव	४.८ १०	√ उत्तर-उत् + तृ, उत्तरेवि	७ १३.५;
°उच्छह्वि-उत्साहित	७.६.११	°रद्	१०.१०.२
उच्छाह-उत्साह	७ १२.१०	°रिवि	१०.२०.७
°उच्छाहमण-उत्साह + मनस्, उत्साहितमन	३ ५ ३	√ उत्तार-उत् + तारय् उत्तारमि	१०.९.१२;
उच्छाहिभ-उत्साहित	५.८ ३८	°रहि (विचि०)	९ १०.११
उच्छु-छुपु, वाण	३.१०.१४	उत्तरिभ-उत्तरित, उत्तीर्ण	१०.१० २
उच्छु-छुसु	५.९.१७	उत्तारिय-उत्तारित	७.८.१
उच्छेह-उत्सेष	३.१ १२	उत्ताल-उत्ताल, हि० उतावला	५.२.११
उच्चल-उच्चल	१.१४ ३	उत्तालिया-उतावली (स्त्री०)	४.११.९
उच्चान-उद्यान	३ १२.२१, ८.४.१३; १०.२२.६	°उत्ताविय-उत् + तापित	५ १०.४
√ उच्चाल-उत् + च्वालय् °इ	८.८.४	°उत्तिण-उत् + तीर्ण	५.११.२१
उच्चौविभ-उच्चौवित	७.४.१७	उत्तेद्विय-(दे) उत्तिदित, वृद-वृद कर फैली हुई	७.७.११, ५.७.२१
उच्चौद्विभ-उच्चौवित	१.१५.९	√ उत्थर-अव + तृ °इ	५.१४ १९
उच्चोत्तिय-उद् + योक्तिता., जोत उतार दिये गये	५ १०.२०	उत्थरिय-आक्रान्त	७ ८ ६,
√ उच्चोयंत-उच्चोतय् + शतृ	३.१ ३.३	उत्तिष्ठ-उत्तिष्ठ-कथित	९ ४.१३
उच्चोभ-उपाध्याय	१० ५.१०	उत्तिष्ठ-उत्तिष्ठ	४ २०.११
°उच्चिभ-उत्सिप्त	९ १२.११, १० २०.५	°उद्दाम-उद्दाम, ऊंचे स्वरसे	४.८.३
√ उद्धृत-उत् + ह्या + शतृ	५.१४ ८	°उद्दामप्र-उद्दाम + मतुप् (स्त्रिय म्)	४.५.१८
उद्धृत्त-उद्धृत्त	९.१.१०	उत्तिष्ठ-उत्तिष्ठ	१० २.५
उद्धृत्त-उत्पापित	१० १३ ६	उत्तिष्ठ-उत्तिष्ठ	१.१८ १०
उद्धृत्त-उत्तियत	३.७ ४, ६.४.१०	उद्दीविय-उद्दीपित	४ १५ २०
√ उद्धृत्त-उत् + ह्या + तुमुन्, उत्पातुम्	४.२१.१२	°उ स-उपदेश, कथन	°विश ७ ४.१७
उद्धृत्त-उत्तियत	५.६.१६; ५.१४ ९	उद्देस-उद्देस्य, प्रवेश	७.४.३
√ उद्धृत-उत् + ङी + शतृ	६ ७ २	√ उद्देस-उपदेशय् °हि (विचि०)	१० १४ ८
		उद्ध-उद्ध	५ १४.१२

उद्धत-उद् + भ्रातृ	२.१०.७	उद्धिय-उद्धिञ्जित	७.२.६
उद्धत्-उद्धत	९.४.५	√ उद्धिभ-उत् + घृ उद्धिभ	१.८.७
उद्धदिह्नी-उद्धद्विष्टि	१.१५.९	उद्धसूक्षिभ-उद्धूपित	४.१९.१३
उद्धरिभ-उद्धवृत्	७.३.१३; ९.१०.८	उद्धमगा-उद्धमार्ग	५.११.११
रिय	प्रच० ६	उद्धमाय-उद्धमाद	४.११.११
उद्धाङ्गय-उद्धाङ्गित	४.१३.६; ५.१०.८, ९.७.८	उद्धमाहिभ-उद्धे उद्धसाहित	२.१४.१, ८.८.१९
उद्धाङ्गिभ-उद्धाङ्गित	७.१०.१४	उद्धमाहियभ-उद्धसाहित	१०.१६.१२
उद्धसुसिय-उद्धसुपित, रोमाञ्जित	१०.१३.९	√ उद्धमोल्लभ-उत् + मोल्यु लह	४.१३.१
उद्धसूक्ष-रोमाञ्जित	१.८.३	उद्धमोल्लण-उद्धमोल्लन	५.२.१७
उद्धहृभ-उद्धनोत्	७.९.७	उद्धमोसिय-उद्धमेपित	१.९.६
उद्धयण-उद्धयन	११.१.९	√ उद्धमुच्छ-उत् + मूच्छ्यु माण (ताच्छील्ये)	६.८.५
√ उद्धपञ्ज-उत् + पद उद्धपञ्जिभ	४.३.११	उद्धमुच्छिभ-उद्धमुच्छित	३.७.७; ८.७.११
उद्धपञ्जति	३.१.१०	उद्धमुह-उद्धमुह	६.११.१०
उद्धपञ्जेसह	४.१.११	उद्धमूलय-उत् + मूल्यु यामि	९.४.११
√ उद्धपञ्ज-उत्पद् (कर्मणि) °ह	२.१.१४; ११.५.३४	उद्धयाचल-उद्धयाचल	१०.१८.१४
उद्धपञ्जिभ-उत्पन्न जात	४.३.३	उद्धय-उद्धर	११.५.४
उद्धपण-उत्पन्न	१.१८.३; ४.२२.२६; १०.२१.६	उद्ध-उद्धस्	७.६.२३; ७.४.४.
उद्धपत्ति-उत्पत्ति	प्रच० २; ४.२२.१८	उद्धसेखि-उद्धस् + उल्ल (स्याद्ये)	४.१९.११
उद्धपन्न-उत्पन्न	४.१९.१	उद्ध-ऊह	८.१६.८
उद्धपरि-उत्परि	११.४.१०	उद्धमाभ-ऊह + भाग	४.१५.१२
√ उद्धपाञ्ज-उत् + पादयु °इवि	४.३.१२; १.१३.८	उद्धप-ऊह + (क) स्वाद्ये	२.१४.१०
उद्धपायमि	१.१३.८	उद्धसिभ-उद्धसित	९.९.८
उद्धपायहि-उत्पादयिष्पति	९.४.१४	उद्धस्राक्षिभ-उद्धलालित, ताञ्जित	५.७.१६
उद्धपाङ्गय-उत्पाङ्गित	१०.१.१३	उद्धस्राक्षिय-उद्धाला हुना, लात खाय हुणा	५.७.२३
उद्धपाङ्गण-उत्पाङ्गन	१०.२०.४	उद्धसाव-उद्धसाप	७.४.५
उद्धपायभ-उत्पाङ्गित	६.१४.३	उद्धसावण-उत् + लापन	८.११.१४
√ उद्धपिङ्ग-उत् + पत् °इ उद्धपिना, लर्थ देवा	५.१०.१४	उद्धसिल्लिभण-(दे) घटीयन्त्र (हि०) गृहट, जल	४.११.६
उद्धपुञ्जिय-उद्धपुञ्जित, मसृण	१०.१६.२	उद्धल्लिभ-उद्धल्लित, आद्र	१.१५.११
उद्धफोडिय-(दे) समारित, ि० नैवारी हई	१०.१६.६	√ उद्धहाव-उद्धहापयु °हि (विशि)	१०.१७.८
उद्धिभ-उद्धिन	९.३.९	√ उद्धभ-उद्धयु, °इ	११.९.१०
उद्धिविर-उद्धिन + °इर (ताच्छील्ये)	६.७.८; ८.११.१५	√ उद्धपुम-उद्धपदेश	५.२.२२.८.३.७
उद्धनह-उद्धनह	३.७.१४	उद्धपुम-उद्धपदेश, °मि	१०.१४.७
उद्धमरिय उद् + भूत्	९.१२.७	उद्धपुसिय-उद्धपदेशित	११.२.१०
उद्धमसिभ-उद्धमसूत्	९.१६.३	√ उद्धमुञ्ज-उत् + मुञ्जु °इ	२.१३.६, ३.१४.२२
उद्धमसिय-उद्धमाङ्गित	४.१६.९	°हि	१०.५.५
उद्धमासियभ-उद्धमासित	८.१२.२	उद्धय-उद्धय	११.९.७
		उद्धयागभ-उद्धयागत	९.१.१८
		उद्धयाण-उत् + दान-उद्धय (नीति)	५.३.४

उचयार-उपकार	२.८.६	√ उच्चलंठ-उद् + वल् + शतृ पीछे खोटना,	
उवर-उपरि, हि० ऊपर	७.६.३६		४.२१.११
उवर-उदर	९.३.१२	उच्चैश्च-कामोदित	९.३.९
उवरि-उपरि, हि० ऊपर	१.९.४, ९.३.१, ४.५.२५	उच्चैश्च-उच्चैश्चित	२.१९.१०
उवरिम-उपरिम'	११.१२.१	उच्चैर्विर-उद्विन + इर (ताच्छील्ये)	६.१.१०
उवरिल्ल-उपरि + इल्ल (पठ्ठघ्ये), हि० ऊपरका	११.१२.६	उच्चय-उभय	७.५.११; ७.७.१२; १०.२.४
°उवलंभ-उपालम्भ, उपलब्धि	८.७.१३, १०.५.३	उच्चयमई-उभयमति	१.२.१०
उवलभ-उपालम्भ	२.१६.९	करिया-पूरिता (स्त्री०)	१०.१८.१४
√ उवलंमई-उप + लम् ई	९.१३.७	ऊर्य-ऊर + क (स्वार्ये)	२.१६.२
उवलक्खिअ-उपलक्षित	१.३.६	ऊसरिय-अपसारित	७.७.१२
√ उवलकल-उप + लक्ष्य् °हि (विधि)	७.१३.९		
°विस्त्रि	१०.८.८	[ए]	
उवलद्ध-उपलब्ध	९.१७.१५	एम-एतत्	२.१३.७; ४.१७.१७, ७.१३.९
उववण-उपवन	३.५.२; ७.१३.१५; ८.३.६		१०.११.४
उववण-उपपन्न,	प्रस० २	एउ-एतत्	४.२२.३५; ९.१.१६
उववसिअ-उपवासित	२.१५.७	°एए-एते, हि० ये	१.१८.१०
उवविट्ठ-उपविट	५.८.२८	एएण-एतेन	५.५.७
√ उवविसंते-उप + विश् + शतृ	५.१.२१	एक-एक, अकेला	४.१.९; ४.५.२; ५.१.१; ७.४.८
उवसग्ग-उपसर्ग	१०.२५.४, १०.२६.९	एकंग-एक + अङ्ग	५.१४.१९
उवसपिणि-उत्सपिणी (कालचक्र)	११.११.७	एकंतर-एकान्तर, एक दिनके अंतरसे	३.९.१२
√ उवसम-उप + सम्य् °इ	२.१८.४	एकत्त-एकत्र	११.१२.८
उवसममण-उपसाम + मनस्, उपशान्तमन	३.९.१५	एकथ-एकस्थ	१०.१०.३
उवसामण-उपसामन	८.१०.१४	एकमेक-एकमेक	१.९.२
उवसामिअ-उपसामित	६.५.११	एकल-दि० अकेला	५.८.१७; ७.१२.९
उवसाव-उपसाम्य् °मि	२.८.१०	एकलउ-अकेला	९.१०.१६; १०.७.६; ११.४.२
√ उवसावअ-उपसाम्य् °मि	८.६.१०	एकवयकण-एक + पव + कर्ण एक चरण व एक	
उवहसिअ-(१) उपहासित (१) उभयशिव	१०.३.११	कान वाली जाति	९.१९.९
उवहासण-उपहामन, उपहास करनेवाला	११.१.१०	एकसि-एकदा	२.१५.१४
उवहि-उदधि सागर	४.१६.१३, ११.१०.६, ११.११.८	एकमेक-एकएक	६.४.९
उवहिचंड-उदधि(सागर)चन्द्र	३.५.१३	एकौयर-एक + उदर, सहोदर भ्राता	११.५.५
उवहुंमिय-उपभुञ्जित, उपभुक्त	४.९.१२	एण-एतेन	२.४.५; ६.३.६
उवाअ-उपाय	९.८.१५	एत्तठ-एतावत्	७.७.५
उवाय-उपाय	९.१०.९, १०.१४.५	एत्तहि-इत्त्, यहाँ से	३.१०.४
°उवाहि-उपाधि	२.१.७	एत्तहि-इधर	४.३.१; ९.१४.६, १०.१०.९
उव्वडिय-उत् + पतित	६.६.९	एरुहे-अत्र, हि० इधर	२.१३.९; ३.४.११; ६.४.४
√ उव्वर-उद् + वृ °इ, हि० उवरना, वचना	३.११.९		१०.१२.२
		एत्थिअ-एतावन्मात्र, हि० इतना	८.६.४
		एत्थ-अथ	२.११.१; ३.७.३; ८.३.८; ९.६.६

पथ्यंतर-अत्रान्तर	२.५.११; १०.१८.१०	ओहामिय-अवधामित, तिरस्कृत, अभिभूत	२३
एम-एवम्	५.१२.१९; ६.१४.६; ९.६.४		९८५५
एमह-एवमेव	२.१८.१६	ओहालिय-अवलित	६.१०.१३
एमहि-इदानीम्	८.१०.७		
पयअ-एतत्	९.२.७		
पय-एतत्	४.१८.४		
पयंतनअ-एकान्त + नय	१०.५.१		
पयहो-एतस्य	४.१.८		
पयात्-एताः (कुमारिकाः)	४.१२.७		
पयारसंग-एकादश + अङ्ग	१०.२४.१३		
पयारसम-एकादशम्	११.१५.१५		
पयारहम-एकादशम्	१.१८.१५		
परावअ-पेरावत (क्षेत्र)	११.११.७		
परिस-ईदृश	६.१०.१; ८.१४.१५, ९.१.१३		
पवह-ईदृश	७.२.१६		
पवहि-(अप०) इदानीम्, एवधि, साम्प्रतम्	३.१०.७; ६.२.७; ७.३.११; ७.६.३७		
पवि-आगम्य	७.७.३		
एस-एषः	१.१८.५, ९.१७.१४		
पह-एषा(स्त्री०), (अप०) ईदृक्	२.११.३; ५.१३.१४		
पहल-ईदृक्	१.१३.७		
पही-ईदृशा (स्त्री०)	२.१३ ८, १० १०.१२		
पहु-एषः	३ १०.२, ५ ११ १५, ७ ११ १३		
[ओ]			
ओलपिणी-उत्सपिरी, कालचक्र	३-१ १०		
ओदिय-उद्यूत	१ ११ ८		
ओमुञ्चियअ-उन्मूर्च्छित	३.७.७		
ओमुञ्चिय-उन्मूर्च्छिता (स्त्री०)	८ ७ ११		
ओलम्बिय-अवलम्बित	५-८ २५		
ओवडिय-अव + पतित	६.१२ १०		
ओसहथ-ओषध + अर्थ	९ ११ ८		
√ओसर-अप + सृ (विधि०)	५.७ २४		
√ओसरंअ-अप + सृ + अतृ	६ १२ ११		
ओसरिय-अपसृत	७ ६.१०		
ओसही-ओषध	३ १४-१२		
ओसारिय-अपसारित	७ ८.३		
ओह-ओष	६ ४ १; ७ ४ २		
√ओहट-अव + घट्ट °ह	८ ७ ७		
क-का (स्त्री०)	१० १४ ४		
कअ-कृत	७.१ २; ८ १३ ७		
कहद-कवि + इन्द्र	१.५.१४		
कह-कवि	४ १८ १५; ८.१ ३; ९ ६ १		
कहकुल-(1) कवि कुल (11) कपिकुल	५.८.३४		
कहरव-कैरव, कुमुद	८ १४ १५		
कहरव-कैरव वन	१०.१८ ८		
कइत्त-कवित्व	१ ५ १३		
कइत्तधाम-कवित्वधाम	१ १ १ १		
कइवेवयत्त-कवि देवदत्त	प्रथा १		
कइदिण-कई दिन	१० २ १ ६		
कइयह-कदा	२ १४ १२		
कइलासगिरि-कैलासपर्वत	९.६ १		
कइवय-कतिपय १ १४ ४; ३ १३.१२; ७ १२ १७,	१० ८ ८		
कइवल्लह-कवि + वल्लभ	५.१.४		
कइवीर-कविवीर	प्रथा. १९		
कउ-कुत, कथम्	१०.१०.११, ११.१४.१३		
कउह-ककुभ (चम्पा ?) वृक्ष	५ ८.१२		
कओ-कुतः	१०.६ १०		
कं-जलम्	१०.२०.६		
कंक-कङ्क, वक पक्षी	४.१८.७		
कं क-काँव काँव (वन्या०)	९.५.१०		
ककह-(दे) रक्षा कवच	११-३-२		
ककण-कङ्कण, घक	१०.२०.६		
कंकर-(दे) हि० ककर, कौडी	४ २ ८		
ककालधारि-कंफालधारी	१०.२५-२		
√कंक्सर-काङ्क्षस् + हर (ताच्छीत्ये)	८.११.१४		
कचण-कञ्चन, सुवर्ण	४.२.११, १०.१४.६		
कंचाहणि-कात्यायनी, चामुण्डा	५.८.३५, ७.६.८		
कचाइणी	७.६.६		
कंचायणी	१०.२५ २		
कचिपुर-काञ्चीपुर (नगर)	९.१९.३		
कंचिवाल-काञ्चीदेशोत्पन्न	८.१२.११		
कलुय-कञ्चुक, हि० चोली	४.११.८		

कंज-कम् + जात, कमल	४.११.५	कक्षंतर-कक्ष + अन्तर	८.१६.९
कञ्जिय-कञ्जी	३.९.१३	कक्ष-कञ्चि, शीशा	२.१८.५
कंठद्वय-कण्ठकित	१.१.४.४	कच्छ-कच्छ (देषा)	७.६.१६; ९.१९.९
कंठय-कण्ठक	५.८.२४	कच्छडल-(य) कछोटक, कछोट	५.७.१३; १०.१६.३
कंठिवोरी-कंठीली वेरी	५.८.६	कच्छव-कच्छप	४.६.५; ९.७.५
कंठभ-कण्ठा, कण्ठाभरण	३.१४.१३	कच्छी-कक्षी, कक्षवती (स्त्री०)	५.१०.८
कंठकक-कण्ठञ्जन कण्ठरत	१.१२.३	कच्छेरक-कच्छ (देषा)	९.१९.४
कंठाळ-(दे) कडाह, भार, कांठी	४.११.८, ५.७.१४	कञ्ज-कार्य, हेतु	१०.२.११; ११.८.६
कठिय-कण्ठित, परिवृत	५.९.८	कञ्जंतर-कार्यंतर	८.९.११
कंठ-काण्ड, बाण	८.५.७	कञ्जगइ-कार्यगति	९.१६.५
√कंठुयंत-कण्ठय् + शतृ	१०.२६.७	कञ्जस्थिभ-कार्यार्थी + क (रावर्थे)	६.१२.३
कंठुवण-कण्ठूयन, छुजलाना	८.१६.९	कञ्जलुद-कार्यलुद्व	४.१७.५
कंठ-कान्ता, पत्नी	४.१२.३	कञ्जाकञ्ज-कार्य + लकार्य	५.१३.१६
कंठारल-कान्ता + रत	५.९.१७	√कंठंत-कृत् + शतृ	४.१५.५
कंठावसाण-(१) कान्ता + वधानाम्		कठ-कष्ट	२.२.८
(११) कं-जलम् + तापसानाम्	४.१८.१०	कठमार-कष्टमार	१०.१३.१
√कंद-कन्द्य् इ	८.१४.१६	कठमय-कष्टमय	९.१.६
हि (विधि०)	२.२.६; ८.७.५	कठ्ठाइ-काष्ठ + आदि	११.१५.६
कंदण-कन्दन	४.२१.११	कठ्ठियधर-काष्ठधर, वण्डधर	७.७.११
कंदप्य-कन्दर्प	१०.२०.३	कडल-कटक, छावनी	६.१.१८
कंदर-कन्दरा	११.२.५	कडल-कटक, हिं कड़ा	३.१४.१३
कंदूल-(अप०) कलह, भगड़ा	४.२.१६	कडकिय-कडकडकृत, कडकडायित (ध्वन्या०)	७.८.१२
कंद्राविय-कन्द्रापयिता, कन्दन करानेवाला	१०.१.१२	कडकल-कटास	१.१०.११; ८.१०.५
√कदिर-कन्द + इर (ताच्छीत्ये)	९.१०.२	√कडकल-कटास्य् इ	११.१४.११
कंदोइ-(दे) कन्दोइ, नीलकमल	५.९.७	कडकलण-कटास करना	११.६.६
कंध-स्कन्ध	४.२२.१७	कडकिलय-कटासित	२.२०.११; १०.१९.१८
कंधर-स्कन्ध	८.७.१६	कडच्छ-कटास	९.१३.५
√कंप-कम्प् इ	८.१६.१३	कडय-कटक हिं कड़ा	२.२०.२१
√कंपल-कम्प् + शतृ	७.८.११, १०.१५.६	√कडयडत-कडकडाय् + शतृ(ध्वन्या०)	११.१५.६
कंपावण-कंपावन, कंपानेवाला	५.१३.९	कडयडिय-कडकडायित (ध्वन्या०)	७.५.६
कंपिय-कम्पिता (स्त्रियाम्)	८.७.१२	कडविमरण-कृत + विमर्दन,	६.१०.४
√कंपिर-कम्प् + इर (ताच्छीत्ये)	२.४.१२; ९.११.५	कडह-कटभू, कटहल	५.८.१०
कंपिरंग-कम्प् + इर + अञ्ज	१०.१७.१६	कडहत-देवा (?)	६.१९.४
कम्पिय-कम्पित	२.७.६	कडाह-कटाह	६.१४.४
कंभ-कम्भ, यष्टि, चायुक	६.४.५	कडि-कटि	९.१८.३, १०.१६.४
कंभु-कम्भु, चालू	५.१२.१४	कडिपरिहाण-कटिपरिघान	९.१२.१३
कंसार-(दे) कंसैरा, ठेरा	५.७.१७	कडिबिब-कटि + बिम्ब	५.९.११
कंसार-बाद्य विशेष	१.१६.७; ४.८.७		

कडियल-कटितल	४.१३.१५	कणिय-कणिका, वाण विशेष	७.१०.५
कडिल- (वे) कटिवस्त्र	४.१९.१२	कत्य-कुत्र	७.१.२३; १०.२६.६
कडिसुत्त-कटिसुत्र	३.१९.१३; १०.१९.७	कथ्यद्-कुत्रचित्	७.१.१९; ८.३.११
कडिहार-कटिहार	३.३.१४	कथूरिय-कस्तूरिका	८.१५.१९
कडुङ्क-कटुक	७.६.१०; ७.६.१३	कडमिल-कदम + इल (स्वार्थे)	५.७.८.८.१३.६
कडुय-कटु + क (स्वार्थे)	२.४.११	कडमेवळ-कदम + इल-युक्त	४.२१.४
कडुडिय-कटु + रटित > कटुद्वन	४.२२.१८	कडविय-कदमित	४.२२.३
कडुवयण-कटु + वचन	६.१२.९	कप्प-कल्प; प्रमाण, तुल्य	४.९.४
√ कडुंत-कृष् + शत्रु	४.१५.१६; ५.१४.११	कप्पड-कर्मट हिं कपडा	११.७.४
कडुण-कर्षण	७.६.२९	कप्पस-कल्प + अन्त	५.५.५
कडुणिय-निकसनशील	५.७.२४	कप्पण-कर्मन	७.६.११
कडुडल-कषित	७.६.२५	कप्पदुम-कल्पद्रुम	३.३.११
कडुडिय-कृष्ट	६.१३.२; ९.१३.२५	कप्पयस-कल्पतरु	४.१६.८
√ कडुंत-वव्यु + शत्रु	२.२.२	कप्पवासि-कल्पवासी (देव)	१.१६.९
कणिट्ट-कनिष्ठ	२.५.१०; २.८.१०; ९.१७.९	कप्पिय-कर्मित	६.९.७.८.११.१
कणिय-कणी	११.१३.२	कप्पूर-कर्पूर	७.१२.२; ८.१५.७
कणियार-कर्णिकार, हिं कनेरका वृक्ष	५.८.११	कप्पूरायस-कर्पूर + अगस	८.१६.५
कणिर-वचणित	३.८.३; ४.१५.९	कर्बंध-कवन्ध, कवच	६.१५.१३
कणिस-कणिस, घस्य वा घान्यका तीक्ष्ण अन्नभाग	३.१.१५	√ कम-क्रम, उत्क्रम, कर्मंत	५.१४.२; ७.१०.२२; ११.१५.१०
कण-कर्ण, हिं कान	५.१.२५	कम-क्रम, चरण	४.१.५
कण-कन्या	८.९.१३	कमलदल-कमलदल + अक्षि	३.३.१
कण-कर्णराज.	१०.१.९	कमला-(तत्सम) लक्ष्मी	३.३.२
कण-किनारा	५.१०.२४	कमलायर-कमल + आकर, कमलाकर	२.५.३, ५.९.४
कणड-कन्यका:	४.१४.१४	कमलाङ्गिय-कमला + आलिङ्गित	१.१.७
कणडउज-कान्यकुब्ज, कन्नौज (नगर)	९.१९.१३	कमलुज्जल-कमल + उज्ज्वल	३.३.२
कणंत-कर्ण + अन्त, कर्णन्ति	५.२.१९; ९.१८.३; १०.१६.४	कर्णध-कर्मगत	२.४.८
कणचट्टक-कन्या + चतुष्क	४.१४.१७	कम्म-कर्म	२.२०.८; ४.४.८
कणपुड-कर्णपुट	३.१.२	कम्मकर-कर्मकर, शोधक	१०.१७.७
कणरथण-कन्या + रत्न	५.९.२३	कम्मकिल-कर्मक्रीत	१०.६.८
कणवडिल-कर्ण + पतित	४.७.१३	कम्मकिस-कर्म + कृया	२.३.९
कणहीण-कर्णहीन	९.२.६	कम्मकलय-कर्मलय	११.१४.८
कणा-कन्या	१०.१.९	कमट्ट-कर्म + अण्ट	१०.२४.९
कणाड-कर्मटि (देश)	६.६.११	कम्मडहण-कर्मदहन, कर्मदाहक	१०.२१.८
कणडि-कर्मटी, कर्मटिकवासिनी (स्त्री)	४.१५.९	कम्मपरिणाम-कर्मपरिणाम	११.५.२
कणारथण-कन्या रत्न	७.१३.९	कम्मफल-कर्मफल	११.४.९
कणावतंस-कर्ण + अवतंस	४.१५-९	कम्मवध-कर्मवध	१०.२०.१३
		कम्मवन्ति-कर्मवन्ति	

कम्ममल-कर्ममल	११.७.३	० ^१ (कर्मणि)	९.१२.१३
कम्मरह-कर्मरति, कर्मसक्ति	१०.५.१२	कर (आज्ञा०)	९.३.११
कम्मवस-कर्मवस	११.३.१	करहि (विधि०)	१०.५.३
कम्मविचार-कर्मविकार	९.१३.१३	करवि ८.१२.७; ९.८.१९; १०.१४.१४	
कम्मसत्ति-कर्मशक्ति	१०.४.११	करहु (विधि०)	८.९.१५
कम्मासअ (य)-कर्म + आसव	२.७.१२; ४.३.१४;	करिच्चव (विधि०)	३.९.३
	९.१.१९	करंत्-कृ + शतृ	४.११.२; ९.५.१०
कम्मोवहि-कर्म + उपाधि	११.१५.५	करं-अस्थि, घङ	६.९.१०
कय-क्रय	६.३.३	करंविद्य-करन्वित, व्याप्त	५-१.२३
कय-कृत	२.९.१५, ४.२०.११	करकट्ट- (दे) के जाने योग्य वस्तुएँ	५.६.५
कयंत-कृतान्त	३.७.५; ५.१४.३; ७.५.१५	करकत्तिया-करकतिका, कैंची	७.६.१४
कयंव-समुह	९.१०.२०	करकैटि-करकैटा	९.१०.१४
कयंवू-कदम्ब (वृक्ष)	४.१६.४, ५.१०.१३	करड-वाद्यविशेष	५.६.७; १०.१९.२
कयग्गह-कृत + आग्रह	९.४.३	√ करडंत-करड-करड ध्वनि करते हुए	१८.१२.७
कयग्गह-कृत + ग्रह-ग्रहण	५.१०.२३	√ करडंतव-देवैः करडंत	१०.१९.२
कयडिल्ल-कडिल्ल, कटिवस्त्रयुक्त	९.१८.३	करडयल-कुम्भस्थल	७.५.३
कयणाअ-कृतनाद	९.११.१४	करडि-करट्टिन, हस्ति	६.९.१०
कयणीड-कृतनीड	५.३.१२	करण-(१) करण, राजसाधन, पितरा	
कयचविडवि-समृद्धिविटपी, समृद्धि रूपी वृक्ष		(११) करण, मैथुनविधि	९.१३.१२
	प्रश्न० १७	करणगाम-इन्द्रियग्राम	२.१.११
कयत्थ-कृतार्थ	६.१.२	करणुज्जम-करण + उद्यम	१.१५.१३
कयत्थड-कृतार्थ	४.१.३	करतक्कड-(दे) ध्वन्या०	१.१५.५
कयदोस-कृतदोष, अपराधी	११.१४.२	करफंसण-कर + स्पञ्जन	२.१०.३; ५.४.१२
कयपयज्ज-कृत + प्रतिज्ञ	५.११.१८	करमर-(तत्सम) वृक्ष विशेष	४.१६.५
कयबंध-कचग्रन्थ, केशवन्ध	९.१८.४	करसुद्ध-कर + मुद्रा-मुद्रिका	४.१३.७
कयबंध-कृतवन्ध	८.११.२५	करधणु-धनुष	७.१०.२
कयमण-कृतमना	८.४.१	करयत्थ-करक + स्थ	१.५.११
कयरू-कृतरूप	३.९.९	करयल-करतल	४.१७.२०; १०.२४.६
कयली-कदली, केला	४.१६.३	करयह-(तत्सम) करयह, नख	२.१५.१५
कयचमाल-कृतवमाल	१०.९.५	करयंद-वृक्ष विशेष	४.१६.२
कयायर-कृत + आदर	१०.१.५; ११.५.५	करयदि-करयंदी, हिं करीवा वृक्ष	५.८.१२
कयावि-कदा + क्षिपि	३.६.५, ४.९.७	करयघ-करपत्र, करौत	८.९.१, ११.४.४
कर-कर, हस्त	३.१४.१९; ४.२२.७; ९.८.२३	करवाल-(१) करवाल (तत्सम) अग्नि	
कर-शुण्डा	४.२२.७	(११) करेण वाला: केषा:	९.१३.१५
कर-किरण	५.७.५	करवाल-कर + व्यापृत, व्याकुलहस्ता (स्त्री०)	८.१५.१०
√ कर-कृ इ	९.१०.५	करसंगह-करसंग्रह, पाणिग्रहण	८.१२.८
करेवि	९.८.१०	करह-करम	५.६.५
उ (विधि०)	८.७.१	करहाड-करहाटक (नगर)	९.१९.१०
करेविणु	८.१४.१४	कराल-(तत्सम) मयंकर	१०.२६.१
करेसइ-करिष्यति	१०.२५.९		

√ करि-कृ + (विधि०)	८.११.१७	कलाघ-कलाप	७.४.३
वि-कृत्वा ७.१३.१३; १०.१४.१४		कलि-(१) कलह, भगवा (११) शत्रु	४.१.११
करि-हस्ति	६.१४.५	कलिग-कलिङ्ग (देश)	९.१९.१५
करिद-करि + इन्द्र	५.१४.६	कलिगचार-(१) कलिङ्ग (राजा)	
करिखंवरोह-कर + स्कन्व + धारोह, महावत	६.११.४	(११) धाम्रवृक्ष धारक	५.८.२२
करिठाण-(दे) वैतरा, देखें . सं० टिप्पण	५.१४.२१	कलिय-कलित	६.२.१०; ६.८.११
करिणि-हस्तिनी	१.१४.१०	कलेवर-कलेवर, शरीर	११.५.८
करिषड-करिषटा, गजसमूह	५.७.१	कल-कल्य, हिं कल	२.१३.११; ३.८.११
करिमथर-करि + मकर	५.६.१४	कलाण-कल्याण	४.८.२२; १०.८.१३
करिसण-कर्षण, कृषि	१.८.५	कलाल-कलाल, मद्यविक्रेता	५.७.२१
करिसार-करि + सार, श्रेष्ठ हस्ति	५.१०.१	कलिह-कल्य, धामामी कल	४.१४.१९
करिसिरसुचाहक-करि + शिर + मुक्ताफल		कल्लोल-(तत्सम) कल्लोल	७.६.६
गजमुक्ता	८.१५.१३	कल्लोड-(दे०) वत्सतर, वज्रहा	५.७.२३
करीर-करील (भाडी)	१०.७.३	कवड-कपट	१०.८.४
करीरावण-करीर + रायण-राजन, सं० राजादनी		कवण-किम्	१.३.१; ५.७.१५
	४.१६.५	कवय-कवच	६.१३.९
करुण-कोमल	४.१६.५	कवरी-कवरी, केशपाश	४.११.१०
कल-(तत्सम) मधुर स्वर	४.१७.१२; १०.८.९	कवल-कवल हिं प्राप्त	२.२०.५; ७.४.१०
√ कलभ-कलय इ	४.१७.२२; १०.१३.४	√ कवलज-कवल्य (कर्मणि) इ	
√ कलत-कलय + धातृ	९.१४.१		२.१४.१०; ११.२.६
√ कलिज-ज + इ (कर्मणि)	११.४.१०	कवलिय-कवलित	८.१४.२१
कलइत्तञ्ज-कलयुक्त + क (स्वायें)	१.११.७	कवाड-कपाट	९.१७.४
कलकोइल-कलकोकिल	३.१२.६	कवादथ-कपाट + क	८.१६.२
कलत्त-कलत्र	२.१४.५, ११.५.६	कवाल-कपाल	१०.२६.१
कलमसालि-कलमशालि, चान्यविशेष	१.८.१	कवालकुट्ट-कपालकोष्ठ	७.६.८
कलयठ-कल + कण्ठ	४.१६.७	कवि-कापि	४.१०.९
कलयडि-कलकण्ठी, कोकिला	४.१७.१८	कविगुण-(तत्सम) काव्यगुण	१.४.४
कलयल-कलकल (ध्वनि) १.१५ १.६ ७.१.७.८.४		कवित्त-कवित्त, काव्यप्रवच	५.१.३
कलयलिय-कलकलित, कोलाहल	७.५.१४	कविल-कविल, पिङ्गलवर्ण	७.४.३
कलरोल-कलकलध्वनि	९.१३.११	कवेरीतड-कावेरीतट	९.१९.५
कलधेणु-(तत्सम) मधुरवंशी	४.८.६	कवोल-कपोल	१.९.४; ४.१३.९, ४.१७.११
कलस-कलश	१.१.२, १.१.२ ४.४.७ ५	कवोलतय-कपोल + त्वचा	२.१८.१२
कलहमूल-कलह + मूल	६.१२.६	कव-काव्य	१.२.८, ६.१.१
कलहावणीय-(१) कलहायनी, कलहयुक्ता (स्त्री०)		कव्वर-काव्य + ङग	८.१.३
(११) कलस + आपनीय, (स्त्री०)		कव्वगुण-काव्यगुण	१०.१.१
कलभयुक्ता	५.८.३३	कव्वय-काव्य + व्यर्थ	१.२.११
कलहोय-कलघोत	१.१२.४	कव्वपीस-काव्यपीसुप	३.१.१
कलाथाण-कलास्थान	३.४.६	कव्वभेस-काव्य + भेद	१.३.४

कव्वर-कर्तुर, हि० कवरा	७.६.२२	कहि-कुत्र, हि० कही	१.६.११; ३.१४.५, ९.७.६
कव्वाङ्ग-कवाङ्गीपन	९.८.१६	कहिंमि-कुत्रचित्, कही भी	१.१५.२; ९.१३.८
कव्वाडिभ-य-कवाङ्गी	९.८.२, १०.१८.२	कहिभ-कथित	३.५.११; ९.८.१४
कव्वाभय-काव्य + अमृत	७.१.१	य	७.११.१०, ८.८.१६
√कस-कष, कसेऊण	९.२.३.	कहि मि-कुत्रचित्, कही भी	३.४.५; ८.२.१०
कस-कषा, हि० कसीटी	१.४.२; ९.१.२	कहियंतर-कथित + अन्तर	७.४.९
कसण-कृष्ण (वर्ण)	२.१४.८, ८.१५.२	कहु-कस्य	७.१.१६
कसमस-(दे) हि० कसमसाना	४.२२.११	कहो-कस्य	३.६.८; ८.१०.७
कसमीर-कपमीर (देश)	९.१९.१०	का-(तत्सम) का (स्त्री०)	२.१४.६
कसर-(दे) अघम वैल	७.३.१३	काभ-काक	८.१५.१४, ९.५.११
कसरक-कुडमल, फूलकी कली	७.१.२	काहँ-किम्	२.१८.१४, ३.१४.१७, १०.२.९
कसवट्ठभ-कषपट्टक, कसीटी	९.१.३	काहँ मि-किमपि	८.११.११; १०.५.२
कसाभ-कषाय	८.६.६	√काउं-क + तुमुन्, कर्तुम्	८.२.९
√कसाहयंत-कषायमानः, कसीला		काउरिस-कापुरष	७.२.१६
वनाता हुवा	४.१५.१४	काडिय-कवित	६.४.९; १०.१४.१३
कसिण-कृष्ण (काला)	१०.२५.१०	काणण-कानन	२.१३.१२
कसु-कस्य	४.२२.२५, ११.४.१०	काणिभ-काणित	९.११.३
कह-कथा	५.११.८	काम-काम (देव)	४.१६.१०
√कह-कथय् °इ	८.३.९; ९.३.४	काम-कामना	११.१.१३
कहहे (विधि०)	४.१.१४	√कामंत-कामय् + शतृ	११.५.६
कहमि	२.१३.९	कामकरि-काम + करि, मदनहस्ति	४.१९.१५
कहवि	१०.८.१४	कामकरेणु-कामहस्तिनी	४.११.५
कहिवि	१०.२५.६	कामकौळ-कामकौडा	१०.१३.३
कहेइ	८.१७.९	कामट्टाण-कामस्थान	९.१३.९
कहेमि	९.४.३	कामत्थ-काम + अर्थ	५.९.१५
कहहि-(विधि०)	९.१०.१८	कामघेणु-कामवेनु	४.१८.६
कहि-कथय् (विधि०)	९.१८.९	कामपंडुर-काम + पाण्डुर	१.९.४
कहिज्ज-कथय् (कर्मणि) °इ	२.११.९	कामरूव-कामरूप (असम देश)	९.१९.१५
√कहंत-कथय् + शतृ	५.४.९	कामलय-कामलता (स्त्री)	३.१४.२१;
कहतंर-कथान्तर	२.३.१	(वैश्या)	९.१२.४
कहण-कथन	७.१.६	कामवेभ-काम + वेग	४.१९.१
कहवंच-कथा + वन्च	१.७.५	कामाउर-कामातुर	९.७.२
कह व-कथम् वा	२.१६.७; ३.११.४; १०.६.९	कामाउळ-कामातुर	२.६.९
कहव कहव-कथम् कथम् + अपि	३.७.७	कामिणी-कामिनी	१.९.३; ३.१४.२१
कहा-कथा	१.५.७; ७.१.६	कामिणीजणाउळ-कामिनीजन + आकुल	५.१.८
कहाणभ-कथानक	९.५.३, १०.६.१०	कामिणीयण-कामिनीजन	३.१२.११
कहार-काछी (जाति विशेष)	५.६.५	कामुल-कामुक	४.२१.९
कहावसेस-कथा + अवशेष	९.१४.५	कामुय-कामुक	३.१२.४
कहाविराम-कथा + विराम	४.४.९	कामुच्छाह-काम + उत्साह	१०.२.२

°काय-(i) काय, देह	२,२०.३;	किट्ट-कृष्ट	१.१.१०
(ii) काक, कौवा	११.७.१०	किणक-किणाद्धित, चिह्नयुक्त	७.४.७
कायाकिलेस-कायवलेष	१०.२२.८	√किण-क्री°वि	१०.११.५
कायमाण-(दे) आसन	८.१३.३	ह (विधि०)	१.१.२
कायरी-कातरा (स्त्री०)	१.१७.१	किणिय-क्रीत	१०.११.२
√कार-कारय्	६.३.७	कित्ति-कीति	४.१.१,४.१५.१६
कारिवि	३.१३.१३	किच्छय-कीत्तलता	१०.१.१२
कारेवि	६.३.७	कित्थ-कुञ्ज	१०.१०.३
कारंड-कारण्ड (पक्षी विशेष)	४.१८.२	किपिण-कृपण	७.८.१४
कारण-हेतु, कारण	४.१२.१२	किम्-कयम्	५.४.३
कारिअ-कारित	२.१९.५,१०.२०.४	किमि-कुमि	११.६.४
कारियं-कारापितं, लिखाया	प्रथ० १९;२२	किमेयमेरि-किम् + एतम् + एरि-किल	२.३.४
काळ-(तत्सम) भृत्पुत्राज	२.१९.१;६.१.१५	कियउ-कृतः + क (स्वार्थे)	१.१०.१८,१.१५.१४
काळकूड-कालकूट	१०.५.६	कियंत-कृतान्त	८.८.१५
काळदब्ब-कालद्रव्य	३.१.८;८.८.१४	कियंतर-कियत् + अन्तर	२.१५.१२
काळमुयंग-कालभुजङ्ग	३.८.१०	किया-किया	२.१६.६
काळरत्ति-कालरात्रि	१०.१३.७	किर-किल	७.७.१०;१.११.११
काळवट्ट-कालपृष्ठ, घनुष	५.१४.२१	किरण-(तत्सम)	१.१.७
काळसप-कालसर्प	१.१.९;१.१०.७	किरणाहय-किरण + आहत	१.१७.१
काळाहि-काल + अहि, कृष्णसर्प	१.१८.८	किरमुल्लक्ष-किल + विस्फुतः	१.४.१०
कावाळिय-कापालिक	७.६.३	किराड-किरात, भीळ	५.७.२;१.१८.२
कास-कास, खासी	२.१३.९.३.११.३.९.९.८	किरिमाळ-बृक्षविशेष	५.८.११
कासु-कस्य	६.१.१५	किरिरी-बाद्यविशेष	५.६.११
काहळ-कोल, भीळ	५.८.२१	किरिरीकिरितट्ट-ध्वन्या०	५.६.११
काहळ-बाद्यविशेष	१.१४.९	किसेस-क्लेश	१.८.३
काहि-कस्या	४.११.१	किवाण-कृपाण	१.१.११
किउ-कृतः	२.११.१०,४.९.१०	किविण-कृपण, वीन	३.१.७
कि-किम्	२.१४.११,५.१२.५	किच्चिस-किच्चिष, पाप	१०.५.७
किकर-किङ्कर, सेवक	६.८.४,७.१३.१३	किसाण-कृषक, हि० किसान	१.१३.१३
किंकिणी-किङ्किणी, क्षुद्रघण्टिका	२.३.७,५.२.१	किस्ति-कृषि	११.६.१०
किंपि-किम् + अपि	८.७.१	किंसोर-विशोर	५.१२.१४
किंपुरिस-(i) किंपुरुष, देव		कीड-कीट	७.२.१२,११.६.४
(ii) किंपुरुष, हीनपुरुष	१.१२.१०	√कीर-कृ (कर्मणि) कीरति	७.४.५
किंसुय-किंसुक (पुष्प)	३.१२.१३	कीर-(तत्सम) बुक	५.९.८
किंकिंध-किंकिंधा नगरी	१.१९.४	कीर-कीरदेश	१.१९.१०
किच्छ-कृच्छ	१.४.१६	√कीळ-क्रीडय् ए (आत्मने०)	४.१६.१०
√किज्ज-कृ (कर्मणि) °इ	१.२.९,२.१४.१०, ५.४.३;१.१२.१३	कीलिय-क्रीडित	४.२०.२,७.४१
उ (विधि)	२.१२.२;१.१०.१७	कीळण-क्रीडन	५.१६.१
		कीळणभ-क्रीडनक, खिलोना	५.२.१६

कीलामहिहर-क्रीड़ा + महीवर	३.२.७	कुठार-कुठार	९.१५ १४
कीलाक-रघिर	६.१०.१३	√ कुण-कृ ^० ह	२ २०.६.५.४.१२
कीलाकलीला-रघिरप्रवाह	१०.२६.१	कुणिवि	१० १७.१२
कीच-कलीच	४.१५.१५	कुपक-कु + तर्क	१०.२४ ८
कु-को, कोई	१०.७.५	कुस्थिय-कुत्सित, अथम	२ २५
कुंकुम-(तत्सम) कुंडकुम	१.९.३	कुद्ध-कुद्ध	५.८ १४
कुंच-कुच	१०.१६.६	कुद्धमण-कुद्धमन	९.७ ८
कुंचइय-कुञ्चित	१.९.९	कुमह-कु + मति	५, १३.२३
कुचिय-कुचित	४.१५.११	कुमार-कुमार	३.४.८
कुंजर-कुञ्जर	१.१४.२	कुमाणसत्त-कु + मनुष्यत्व	११.७.७
कुंडक-(कर्म) कुण्डल	१.१४.३	कुमारभाव-(तत्सम) कुमार अवस्था	४.१४.१३
कुंडलियंग-कुण्डलित + अङ्ग	६.१०.८	कुमारिया-कुमारिका	४.१२.७
कुंत-(तत्सम) कुन्त, भाला	१.१५.५	कुम्भ-कुम्भ	४.२०.११
कुतल-कुन्तल (देष)	९.१९.३	कुम्भाधार-कुम्भ + आकार	४.१३.१७
कुंतलमर-कुन्तल + मार, केशकलाप	४.१५.१०	कुम्भासणद-कुम्भासन + स्थ	५.१४.२१
कुंताडह-कुन्तापुत्र	७.१०.१३	कुरंगसिसु-कुरङ्ग + शिशु	५-१० १५
कुंद-कुन्द (पुष्प, वृक्ष)	४.११.१४, ४.२१.२	कुरवभ-(१) कुरवक (वृक्ष विशेष)	
कुंदुजल-कुन्द + सञ्जवल	८.२.१६	(११) कु + रत	४.१७ २
कुंम-कुम्भ, गण्डस्थल	६.३.४	कुरु-कुरुदेश (हस्तिनापुर प्रदेश)	९ १९.१३
कुंभंड-कुम्भाण्ड	५.७.१७	√ कुरु-कृ (विधि०)	१०.१४ १३
कुंमथक-कुम्भस्थल	७.१.१८	कुरु-पर्वत	५.१०.११, ७ १३.३
कुमथक-कुम्भतल, कुम्भस्थल	४.२०.८	कुरुमंग-कुरल + भङ्ग, केशमङ्गिमा	४.१५.८
कुंमविलया-घटवारिणी	१.९.१	कुरुविसय-कुरुविषय	१०.१८.६
कुंमि-कुम्भी, हस्ति	८ १५ ३	कुलउत्तिय-कुल + पुत्री, कुलवधु	४ ५ २६
कुकह-कु + कवि	१ ६ ५	कुलकम-कुलकम, कुलपरम्परा	५ ३.३.१५
कुककत्त-कु + कलय	१.७ १	√ कुकडक-कुरकुराय, कुर-कुर ध्वनि करना	
कुककुड-कुक्कुट (पक्षी)	१० २६ ४	कुलछक-(तत्सम) कुलचातुरी	७.५ १५
कुगइ-कु + गति	११ ७.७	कुलमहकण-कुल + मलिन., कुलको मलिन	
कुगइपह-कुगतिपथ	२.१६ २	करनेवाला	४.३.४
कुटणि-कुट्टिनी	५ ७ २४	कुलमंगल-कुल + मङ्गल	४.७ ११
कुट्टिणी-कुट्टिनी	४ १९ २०	कुलमग-कुलमार्ग	२.१७ ७
कुट्ट-कोष्ठ, हिं कोठा	७ ६ ७	कुलपर-कुल + पर-परम, श्रेष्ठकुल	४ १.१२
कुड्य-कुटुम्बी	४ ६.१	कुलपट्ट-कुलप्रभु	९ १०.१४
कुड्य-कुटज वृक्ष	५ ८ ११	कुलयालिया-कुलवालिका	२ ९ १४
कुडि-कुटी	९ १० २	कुलभूसण-कुलभूपण	
कुडिल-कुटिल	८ १६ १०	कुलयर-कुलकर	११ २ ४
कुडिलभाभ-कुटिलभाव	११ ७ ९	कुलाधार-कुल + आचार	२ १९ ३
कुडुयी-कुटुम्बी, रूपक	१ ८ ७	कुलिस-कुलिश, वज्र	७.४ १
कुडु-कुडय, भित्ति	१.१६.४; ९ १४ १४		

कुक्कल्ल-कुल्या + तल	४ २१.७	केलि-कवली, हिं केली	८७.१२
कुक्कल्लच्छि-कुक्कलय + अक्षि	४.१२.६	केवल-केवल (ज्ञान)	४.४.२
कुक्कलय-(तत्सम) (१) कुक्कलय, नीलकमल		केवलदीवध-केवल (ज्ञान) + दीपक	४.३.१४
(११) कु + वलय, पृथ्वीमण्डल	८ ३.१६	केवलनाथ-केवलज्ञान, सम्पूर्ण ज्ञान,	१०.२१.६
कुवि-कोऽपि	६ ५.७	केवलवाह-केवल(ज्ञान)वाहक	१.१६.२
कुविभ-कुपित	७.७.१०	केस-केश	१.१७.६
कुस-कुण, अंकुश	५ ७.११	केसबंध-केसवन्ध	५ १२.१८
कुसम-कुसुम	८.१०.८	केसभर-केशभार	१०.१६.५
कुसल-कुशल	९.१८.९	केसर-(१) केशर-तिलक (वृक्ष)	४.१७.३;
कुसामि-कु + स्वामी, पृथ्वीपति	७ ६.२५	(११) सिंहके कन्धेपर-के वाल	७.४.३
कुसुंभ-कुसुंभ, रंग विशेष	६ १४ १३	केसरि-केशरी, सिंह	५.१२.१४
कुसुमंकिभ-कुसुम + अद्भुत	१ १७ २	केसलढी-केसलटी, केशोकी लटे	९.१८.३
कुसुमदाम-(तत्सम) कुसुममाला	१.९ ३	केसव-केशव, नारायण	४.४.४
कुसुमाल-स्तेन, चोर	९.१५ ७	को-कः, कौन	२.१८.५
कुसुमिय-कुसुमित	१.८.५	कोइ-कः अपि-कोऽपि, हिं कोई	४.१८.१
कुभ-कूप	१० १७ ७	कोइल-कोकिला	५.१०.१६
कुदय-कृत	४ ६ ३	कोकिलहृत्थ-कोकिलहृत्थ + अर्थ	९.१२.१३
कुदध-कूट + क, प्रतिरूप	९.१३.४	कोकिल-कोकिलहृत्थ	१.१३.८
कुदमंत-कूटमन्त्र	४ १७ १७	कोकण-कोकण (देश)	९.१९.४
कूर-कूर	५ ५ ८	कोण-कुर्ग देश	९.१९.१४
कूरगह-कूर + ग्रह	१०.२५ १०	कोत-कुन्त	५.१४.१०, ७.१०.१३
कूरगह-कूर + ग्रह	५ ५ ३	कोतकोडि-कुन्त + कोटि, भालेकी नोक	४.२१.११
कूलावहि-कूल + अवधि	१.१०.१४	कोतग्य-कुन्ताग्र (अर्थ विशेष)	७.६.१
कूव-कूप	१० १७ ४	कोताउह-कोन्त + आशुष	६.६.९
कूवार-सागर	१ १८ ९	कोकिञ्ज-व्या + ह (कर्मण) इ	११.५.२
के-कः, कौन	७ ३ १०	कोकिञ्ज-व्या + ह + इर ताच्छीत्ये	२.४.११
केऊर-केयूर	१.१४.३, २.२०.११	कोट्ट-कोट, दुर्ग	५.३.१३
केणय-क्ययोग्य वस्तु	५.११.३	कोट्टवाल-(दे०) कच्चे फलोका समूह	६.४ १
केणिय-क्रोत	६.३.३	कोट्टवाल-कोट्टपाल, हिं कोतवाल	५.११.३
केत्तिय-कियत्, हिं कितना	११-३.७	कोट्टध-कोष्ठक, हिं कोठा	१.१८.१५
केम-कथम्	५.४.२१	कोट्टा-कोष्ठ, हिं कोठा	१.१६.४
केयार-केदार, छेत	५-९.६	कोड-(दे) कौतुक	२.१२.६
केरभ-(अप०) षष्ठि प्रत्यय	६.२.३	कोड-कोटि, हिं करोड	६.३.२
केरल-देश	९.१९.१	कोडि-कोटि, किनारा, अग्रभाग	६.७.४
केरलनयदी-केरलनगरी	५.५.१७	कोडी-कोटि, हिं करोड	३.४.९
केरलपुरि-केरलपुरी	५.३.६	कोड्ड-(दे) कौतुक	३.११.८
केरलबल-केरलदीप	१०.१.१४	कोड्डावण-कौतुक उत्पन्न करनेवाला	१०.७.११
केरलि-केरलवासिनी स्त्री	४.१५.८	कोड-कूष्ठ, हिं कोड	२.५ १२
केरिस-कीदृश	४.१८.११	कोणंत-कोण + अन्त	५.१४.१६

कोणंतर-कोण + अन्तर, एक कोना	२.१६.१३	खंभ-स्तम्भ, हि० खंभा	१.१० १२
कोवड-कोवण्ड, धनुष	१०.१२.१	खग-खडग	६.३.४, ७ ६.१
कोखड-कोल + कुल, जंगली सूअरोंका झण्ड	५.८.१६	खगंक-खडग + अङ्क	१.११ १०
कोच-ईषत्	८.१४.५	खगफल-खडगफलक	६ १४.९
कोविथ-कुपित	६.४.६	✓ खज-खा (कर्मणि) ° इ	२ २ २
कोस-कोष	८.१४.५	✓ खजत-खा + शतृ	९.१ १०, ९ ५ ६
कोसंब-कोशात्र (वृक्ष विशेष)	५.८.१३	खडकिय-खटकृत (ध्वन्या०)	७ ६.५
कोह-क्रोष	११.८.७	खडखडिय-खडकृत, हि० खडखडाना (ध्वन्या०)	६ ७.३
कखजोयय-खद्योतक	७.२.१३	खडतड-(ध्वन्या०)	१ १४.७
कखयकर-क्षयकर	३.७.१५	✓ खडहडत-(दे) खट्टकृ + शतृ	६ १०.११
✓ कखव-क्ष ° इय् ° इ	२.७.१०	खडिया-खटिका, हि० खडिया	६.१४.१५
कलाणय-आख्यातक	९.१९.१९	✓ खण-खन् ° इ	९.८ १३
कखारिय-क्षरित ° उ	२.६.१०	✓ खणंत-खन् + शतृ	५ १०.७
कखाकिय-क्षालित	१.१३.५	खण-क्षण (मात्र)	४.१९.५, ८ १३.१०
✓ खिखलत-क्रीड् + शतृ	६.३.९	✓ खणखणंत-खनखनाय् + शतृ	६ ६ ६
कक्षोणारिचण-क्षीण + वरि + ईधन	१.११.४	खणण-खनन, खनक	९.७ ६
कखोह-सोभ	६.४.१	खणंतर-क्षणान्तर	२.१६ १३
[ख]		खणदिह-क्षण + हृष्ट	९ १२ ६
ख-(तत्सम) आकाश	२.३.७, ५.५.८	खणद्ध-क्षण + षट्	५ ५.१५
खभ-क्षय, विनाश	९.७.१५, ११.८.५	खत्तिय-क्षत्रिय	५ ३ १५
खडभ-सयित	३.५.८	खद्ध-(दे) भुक्त	१.१८ ८; १०.७.२
खड्य-खचिन्	७.१०.२३	खद्धज-(दे) भुक्त	९.१.८
खडर-खदिर, हि० खैर	५.८.६	खप्पर-कपाल, हि० ठीकरा	५ २ २२
खं-खम्, आकाश	५.७.४	खम-क्षमा	३ ६.२
✓ खंच-कृप् ° वि	५.१.५	✓ खम-क्षम्, खमंतु (विधि०)	८ १.२
° हि (विधि०)	५.११.२९	✓ खमावभ-क्षमापय् ° मि	८ ७.१०
✓ खंड-खण्डय् ° मि	२.१५.१५	खमिय-क्षमित	८.७ १०
खडिऊण	७.६ ३१	खय-क्षय	७ ९ ११, ८.८ १५; १०.१९, ५
खंड-खण्ड	२ १७.११	✓ खय-क्षि ° ई	१०.४ १४
खंडयद्-(१) खण्ड + चन्द्र		खयकरि-क्षयकारी	८ ७.१६
(१) खण्ड + कन्द (मूल)	५ ८ ३६	खयकाल-क्षयकाल	१० २५ ११
खडिय-खण्डित	१ ११ ९, ७ १०.२	खयचियड-क्षत + चित्, क्षतयुक्त	६ ६.११
खंतवद्र-क्षन्तव्य	७ १२ १२	खयर-ख + चर, खचर, खेचर-विद्यावर (जाति)	५ ४.१२, ५.११.१५
खति-क्षान्ति	१ १ ८ ७	खयरखंभ-खेचर + अन्तक-मारक	७ ११ १४
खघ-स्कन्ध, समूह	७.४ ७ १० २४ ५	खयरवळ-खेचर + वळ	७.१ ७
खंधंत-स्कन्ध + अन्त	१० १६ ५	खयरवड्-खेचरपति	७ ५ १०
खयार-स्कन्धावार	५ ८ १, ७ १३ ४	खयरवि-क्षय + रवि, प्रलययुग्	५ १३ १४

खग्रोभ-क्षय रोग	३ ११.३	खुप्पाविय-मज्जित, निमग्न	६.१४.९२
खयाण-खदान, खड्डा	५.१०.७	खुर-तत्सम	१ १५.३
खयाल-कन्दरा	५.१३.३२	खुभिभ 'य-धुभित	४.१०.८, १० १९ १८
खर-क्षर, कठोर, प्रखर	५ ८.६	खेभ-खेद	१०.१६.८
खलखलिय-खलखलायित	५ ८ २१	खेढ-खेल	४.१९.१९
खलण-खलन	४.१५ १०	खेत्त-क्षेत्र	११ ११.५
✓ खलंत-खल + धातृ	३.८.३, ९ १३.११	खेत्तकम-क्षेत्रकम, क्षेत्रसंख्या	११.११.१०
खलहल-खलखल (ध्वनि)	१ ७ ९	खोट्टिया-(दे) खोट्टिका, दासी	४ २१.१२
✓ खव-क्षपय् 'इ	२ १ १५;	खोडी-गर्दभी	५.१० २२
'वि	२.७.१५	खोणी-क्षोणी, पुष्पी	१.१५.३
खस-खया खुजली (व्याधि)	९.१९.७, १० ७ १	खोणीरुह-क्षोणीरुह, वृक्ष	४ १६.३
✓ खा-खाद्, °मि	१०.१२ ६	खोयण-खोदना, खनन	९.८ १६
खाइया-(दे) खातिका, गहरी खाई	४.१८.७	खोर-(दे) खोर	९.१३.६
✓ खार्त्-भोक्कुम्, खादित्तुम्	१०.२६.५	खोह-क्षीय	६ ११ ४
खाणि-खानि, खान, निधान	१०.१८.८		
खामियभ-क्षमित + क(स्वार्थे)	२.५.५, २.१६.१३	[ग]	
खारसमुद्ध-क्षारसमुद्र	६.१.१३	गह-गति	१०.१४.१५
खारिभ-क्षारित	१०.५.११	गाईव-गजेन्द्र	३.९.१६; ४.२१ १३
खारिय-क्षारिय, कट्टु	७.४.१६	गाढ-गत	३.१२.२१, ९.४.८
✓ खिज्ज-क्षि, (कर्मणि) °इ	२.१.१४; ३.१२.३	गाढ-गीढ (देश)	९ १९.१३
खित्त-क्षित	१०.१६.४	गाढरभ-गौरव	९ १२.१७
खित्त-क्षेत्र	१०.२०.८	गांग-गङ्गा	९.१९.१५
खित्तकम-क्षेत्रकम	११.११.१०	गांगराडी-गांगराजाओकी राजधानी	
खिन्न-खिन्न, क्षान्त,	५.९.११; ९.१३.१८	(जान्त्रमें)	९.१९ २
✓ खिर-क्षर् °इ	१.१३.७	गांगोवहि-गङ्गोदधि	९.१९ १५.
खीण-क्षीण (रहित)	१.१८.१३	गाट्टि-(१) ग्रन्थी, हिं गाढ	
खीर-क्षीर	१.१३.७	(१) ग्रन्थी, छल	५.९.१८
खीरमङ्गणव-क्षीर + महाएणव,	८.१५.६	गांड-गण्ड(स्थल) कपोल प्रदेश	५.१३.१०
खीरोवहि-क्षीर + उदधि (क्षीरसागर)	४.१०.६	गाढपदमालग-दे० गण्टमाला (रोग)	८.७ ८
खील-कील	२.१५.२	गांडयल-गण्टतल-गण्टस्थल	४ २२ १९
खुंद-खुदा, बाद्यविधेय	५.६.१२	✓ गांत्ण-गम् + तुमुन्, गम् + क्तया	८ २ ८
खुण्ण-खुण्ण मंदित	४.२१.८	गांथुद्धरिभ-गन्ध + उद्भुत्त, विरचितम्	१.५ ५
✓ खुद्ध-युद् °इ	३.८.९	गांध-(तत्सम) गन्ध	८ ६.१
✓ खुद्धंत-युद्ध + धातृ	११ १५.५	गांधयुद्ध-गन्धमुत्प	९.९.२
खुत्त-(दे०) निमग्न	२.७.९; ६ १०.४, ९ ७.१४	गांधय्याणुत्तरम-गन्धयं + अनुत्तर, गन्धयौं	
खुदाभ-(१) धुद्र + क (स्वार्थे), धुद्रा: जना.	११ १५.५	गमान	१.१०.३
(१) धुद्रा (विदयाजनाः)	९.१२.१९	गांधिभिर-गन्ध + उत्तेजित	५ १० ९
खुदजंतु-धुद्रजंतु	९ १० ११	✓ गांध्यंत-गन्ध + उदात्त + धृत्	८.१६.४
खुद्ध-धुद्र	३.११.९		

गंभीर—(तत्सम) गम्भीर	१ ६ ६	गयद—गजेन्द्र	४.२१.१३
√गगिर—गद्गद् ईर (ताच्छील्ये)	२ १० ७	गयखेव—गतलैष, गतकाल	६ ३.५
√गच्छ—गमय् ई	२.८.१८; १० ८ ७	गयगंड—गज + गण्ड (स्थल)	५.७ ८
हृ (विधि०)	९ ४ १२	गयघळ—गजघटा	८.१३.१९
गच्छि (विधि०)	१० ८ ११	गयण—गगन	१.१.१०
√गज्ज—गर्ज् ई	५.१३ २३	गयणार्ह—गगनगति (विद्याधर)	५.११.९; ६.१०.१३
√गज्जल—गर्ज् + श्रातृ	५ ८.१४	गयणगमण—गगनगमन, गगनगति विद्याधर	६.१०.५
गज्जमाण—गर्ज् + शानच्	७.४.१५	गयणनाथ—गगन + आङ्गन	५.४ ७
√गज्जिर—गर्ज् + इर (ताच्छील्ये)	५ ८ ३२	गयणपव—गगनप्रवह—गगने प्रवहमान इत्यर्थः	
गज्जिरव—गर्जि + ख, गर्जन	४ २० १२		७.२.१२
√गज्जयडह—(दे) गिड्गिडाना (ज्वनि)	६.१४ ४	गयणवह—गगनपथ	७.५.४
√गज्जिवि—(दे) गाङ्कर	९.८.१७	गयणहरण—(१) गत + प्रहरण	
√गण—गणय् ई	६ ७ १४	(२) गदा + प्रहरण	१.११.१४
√गणंत—गणय + श्रातृ	६ १३ ६	गयणार—गत + पार	४.६.१३
√गणंती—गणय् + श्रातृ ० (स्त्रियाम्)	९ १३ १	गयवद्ध्य—गतपतिका (स्त्री०)	८.१५.४
गणण—गणना	८.८.४	गयवर—गजवर	७.१०.१३
गणहर—गणवर	१.१६.५	गयसारि—गजशारि, युद्धके लिए हाथीका पर्याय	
गणियड—गणिकाजनाः	९ १२ ७		७.११.२
गणियार—गणिकार वृक्ष	५ ८.११	गरल—(तत्सम) हालाहल	३.७.१४
गण—गात्र	६ ७ ६	गरिड्ड—गरिष्ठ	१०.२६.६
गहृह—गर्दभ	५.११.५	गरिष्ठल—गरिष्ठ	७.११.१; ११.१०.३
गढम—गर्भ	४ १ ८	गरुध—गुरु + क (स्वार्थे)	३.७.४
गढमढंतर—गर्भ + धाम्यन्तर	४ ७.२	गरुड—(तत्सम) गरुड (पक्षिराज)	३.७.१५; ११.२.२
गढमंतर—गर्भ + अन्तर	१.९ ४		
गढमवई—गर्भवती	४.७ ८	गरुय—गुरु + क (स्वार्थे)	१.५.१४; ६.१.५
गढिमण—गर्भित	१० १६.५	गरुयड—गुरुक	८.११.३; ७.४.६
गढमुढमन—गर्भ + उद्भूत	१ ५ ८	गरुयमाण—गुरुक + मान	१०.६.५
गढभोरुय—गर्भ + उरु + ञ	४.१३.१६	गरुयारड—गुरुकार + क (स्वार्थे)	१.५.९
गस—गमन	८ ५.१३	गरुयारंभ—गुरुक + आरम्भ-उद्योग	५.८.३०
गसण—गमन	२ ८.१०	गरुव—गुरुक	४.२०.१२; ९.५.७; १०.१.४
गसणविलंब—गमन + विलम्ब	१.७ १०	√गल—गल् ई	११.१७
गसणि—गमनी, जानेवाली	१०.८ १	√गलंत—गल् + श्रातृ	५.१.२६; ५.१३.१८
गसतूर—गमनतूर, प्रधानतूर्य	४.२.४	गल—गल, कण्ठ, हि० गला	१०.२६.३
गसागम—गम + आगम—गमनागमन	५ १३ २७	गल—दंडिश, मछली पकड़नेका काँटा	५.८.२५
गसिभ—गमित	६ १८.१०	गलमज्जि—गल + गजित	६.५.६
√गम्म—गम् ई (धात्मने)	३ १२.१३	गलरिय—नीपक, फँकनेवाला	४.२०.७
गय—गज	५.३ १४	गलपमाण—गलप्रमाण	६.२.४
गय—गंताः (स्त्री०)	४.१८.५	गलिभ—गलित	१०.१८.१२
गयडल—गजकुल	३.२.११	गलिय—गलित, लस्त	५.९.६.८.७.५

गवकल-गवाक्ष	८.१५.९	°हि(विधि०)	९.१५.६
गवकलतर-गवाक्ष + अन्तर	१.९.४	√गिण्हाचिञ्ज-ग्रह् + गिच् + °हृ	
गवय-नीलगाय	५.८.१५	(विधि०)	९.८.९
√गवेस-गवेपय् °सेह(विधि०)	१०.९.६	गिद्ध-गृद्ध	६.७.७, ६.८.६
गव्व-गर्व	७.७.६; ७.१२.१२	°गिर-गिरा	५.१३.१३, ९.१७.१६
√गस-ग्रस् °इ	१०.१२.१०	गिरा-(तत्सम)गिरा	२.१९.७
गसिञ्ज-प्रसित-प्रस्त	१०.१३.१३	गिरिद्-गिरि + इन्द्र	४.१०.५, ५.१०.११
गहण-गहन वन	११.८.१०	गिरिकडणि-गिरिकटनी, गिरिमेखला,	
गहण-ग्रहण, लेना	१०.१०.८		५-८.१४, ९९.१०
गहण-प्रवेश, सामर्थ्य	५.१३.२८	गिरितणय-गिरितनया, पार्वती	५.९.१४
गह्निञ्ज-ग्रहीत	१.१७.९	गिरितुल्ल-गिरितुल्य	९.४.१०
गह्निष्ण-ग्रहीत + अन्य	१.१.१२	गिरिदि-गिरिदिवर	९.१०.१९
गह्निष्ण-ग्रहीत + अक्षर	४.१७.१४	गिरिन्द्-गिरिनदी	८.७.७, ११.१.६
गहिर-गमीर, गम्भीर	५.१०.२, ८.११.२	गिरिसिञ्ज-गिरिशृङ्ग	७.५.७
गहिरकलर-गम्भीर + अक्षर	१.१४.२	गिह-गिरा	२-१५.१०
गहिरसर-गम्भीर + स्वर	३.४.४	√गिह-गि, नियलना °इ	७.५-१४
√गाइञ्ज-गा (कर्मणि) °इ	४.१५.१	गिहिन-गिलित	९.३.८
√गायन्त-गा + शतृ	५.१.१९	गिह्वाण-गीवर्ण, सुर	७.११.३, ८.४.१५
गाएञ्ज-गाना	४.१२.१३	गिहासम-गृह + आशय	२.६.३
गाढ-गाढ, दृढ	६.४.९, ७.८.१३	गुंजं कियं-गुञ्जङ्कृत (व्वनि)	१०.१९.४
गाढगति-गाढ ग्रन्थि	९.१२.१	√गुंजन्त-गुञ्ज् + शतृ	४.२२.४; ५.६.१०
गाढक्षण-गाढत्व, दृढता	८.११.६	गुंजा-गुञ्जा वृक्ष विशेष	५.८.१०
गाढिञ्ज-गाढ, हि० गाढी, दृढ	१०.१४.१३	गुंजरिय-गुञ्जारिता (स्त्री०)	५.८.१५
गाम-ग्राम	५.९.१; ८.२.२०	गुंजिय-गुञ्जित	१.१२.५
गामकरग-ग्राम + लन	२.१६.१०	गुंजुञ्जक-गुञ्जा + उञ्जक	५.१३.११
गामार-(दे) ग्रामीण	५.९.१	गुड-(दे) कपटी, मायावी	५.२१.११
गामि-(तत्सम) गामी, जानेवाला	३.५.२	√गुड-गुद्, होवा ऋदि लगाकर सजाना	
गामी-(तत्सम) गामी, जानेवाली	१.१८.७	गुडति (वहुव०)	५.६.४
गामीणञ्ज-ग्रामीण जन	३.१.१९	गुडाई-गुड + आदि	१०.१.३
गाविड-घेतव.	१.१३.७	गुडिञ्ज °य-गुडित, कवचयुक्त	६.११.३, ७.५.७
√गाविञ्ज-गा (कर्मणि) °ए	५.९.११	गुडुर-(दे) लंबू, डेरा	५.१०.२३
√गास-ग्रासय्, °इ	६.९.९	गुण-(तत्सम) ज्या, प्रत्यञ्चा	५.१४.११
√गाह-ग्रह, गाहु-ग्रह, + क्त्वा	१०.१४.९	गुणञ्ज-गुणयुक्त	४.६.११
गाह-ग्रह (कृग्रह)	९.२.७	गुणभाण-गुणस्थान	४.४.५
गाहा-गाथा	१.११.१५	गुणधाम-गुणस्थान	४.२.३
√गिञ्ज-गी (कर्मणि) °इ	४.१०.२	गुणनिलञ्ज-गुणनिलय	१.५.२
√गिञ्जन्त-गी + शतृ	२.१२.१, ५.१.२३	गुणपरिमिञ्ज-गुणपरिमित	३.६.१
√गिण्ह-ग्रह, °इ	८.१५.१३	गुणवंञ्ज-रसना, मेखलावन्ध	१०.१८.११
°ह(विधि०)	९.१.४	गुणमाय-गुण + माग, गुणभाजन	५.१३.३०

गुणमंदिर—(तत्सम) गुणनिधान	३ २.१२	गोक्षवद्—(स्त्री०) गोश्वती	४ २ ३
गुणसीला—गुणशीला (बहु व०)	२ ११ ७	गोधन—(तत्सम) गो + धन	१ ९.२
गुणहार—(तत्सम) हि० हारकी लङ्	८ १६ ६	गोधूम—(तत्सम) गोधूम, हि० गेहूँ	५.८.२९
गुञ्जरत्ता—गुर्जरत्रा, गुजरानवाला (सिन्ध)	९.१९ ९	गोमंडल—(तत्सम) गो (पृथ्वी) + मण्डल	१.११.१३
गुञ्ज—गुह्य (स्थान)	४.१९.१६	गोमय—(तत्सम) हि० गोवर	२ ९ २
गुत्त—गोत्र	८.१० १२	गोरंगी—गौर + अङ्गी (स्त्री०)	३.३ ९
गुत्त—गुप्त	८ १६ ६	गोरसविचार—(१) गोरस + विचार	
गुसायार—गोत्राचार	८.१२.६	(ii) गो-वाणी + रस + विचार १ ३ ३	
गुत्तितल—गुप्तितय	१० २० ७	गोरी—(१) गौरी, पार्वती	
√ गुप्—गोप्य् °ए (आत्मने०)	१० १०.३	(ii) गौरवर्णा स्त्री	४.१८ १२
गुफाविय—गुल्फामित	६.१४ १२	√ गोब—गोप्य् °इ	११ ८ ९
गुमगुमित्य—गुमगुमित (ध्वन्या०)	५ १.२५	गोब्यण—गोबदन, गोमुख	९.१९.१२
गुरु—(१) गुरु द्रोणाचार्य		गोवाल—(१) गो + पाल; पृथ्वीपालक, राजा	
(ii) गुरु—बड़े-बड़े	५.८ ३२	(ii) गो + पाल, गायोका पालक;	
गुरुपंथ—गुरुपथ, दीर्घयात्रा	१०.८ १२	गवाला	५.९.५
गुरुपय—गुरुपद, गुरुचरण	१०.१९ १७	गोत्री—गोपी, गोपिका	५.९ ११
गुरुव—गुरुक	९ ५ ७	गोसामि—गो + स्वामी	५ ७ १५
गुरुव्यण—गुरुवचन	२.७.१२	गोसामिणि—गो + स्वामिनी	१ १० ३
°गुरुसरिं—गुरुसरित्, महानदी	२.८.७	गोहण—(१) गो + धन, पशुधन	
गुह्यार—गुह्यार	४ ७.३	(ii) पृथ्वीधन	५.९.५
गुलखेड—ग्राम (मालवा)	१ ४.१	गोहृत्तण—(दे) पुरुषत्व, पौरुष	५ ४ ४
गुलियाठाण—गुलिका—गुटिका + स्थान	४.१३.१३	गवबिभ °य—शोकसूचक ध्वनि	२.५.१६; ३ ९ १०
गोभ—गेय, गीत	१०.८ ९		
√ गोषह—ग्रह °इ	८.१६.१३,	[घ]	
°मि	९.११.१०	घंट—घण्टा (वाद्य विशेष)	५.६.९
गेण्हेवि	२.१२ १	घग्वरियगिर—घर्षरित + गिरा, खोखलीवाणी	
गेय—गेय, गीत	८.९.१०		२.१८ १०
गेयारव—गेयरव, गीतरव	९ २ ६	घट्ट—घृष्ट	५.१०.१०
गेत्य—गेरु + क (स्वार्थ)	२ ९ ३	घट्टण—घट्टन	४.२१.११
गेवज्ज—प्रैवेयक	११ १३ ५	°घड—घटा, समूह	५.१०.४, ६.६.५
गेविज्ज—प्रैवेयक	११.१२.२	√ घड—घट्ट्य °इ	४.१.४, ८.१०.१५
गेह—गृह	३.११ ११, १०.१७.२	घडिवि	४.१२.१५
गेहिणि—गृहिणी	२.५ ४; २.१९ ३	√ घडावळ—घटाप्य् °इ	८.९.६
गो—(१) वेनु (ii) जल	२ ५ ३	घडिळ °य—घटित	६.३.२, ६.१०.५
गोडर—गोपुर	१ ९ १; १ १६.३	घण—घना, सघन	४.१६.२, ५.८.६; ७.६.२२
गोट्ट—गोष्ठ, हि० गोथान, भोजपुरी : वथान	८.१५.११	घणड—घना, निविड, सान्द्र	७ १.२२
गोट्टगण—गोष्ठ + आङ्गन	१ ७ ९	घणणीळ—घननील	१०.१.११
गोट्टि—गोष्ठी	९ १७ ११	घणणोह—घनस्नेह	११.५.५
गोत्त—गोत्र	८.७ १६	घणथण—घन + स्तन	१.७.९
		घणथणतड—घनस्तनतट	८.११.११

घणपटल-घनपटल, अघपटल	९.९.८	✓घोकिर-घूर्ण + इर (ताच्छील्ये)	४.२.१७
घणुच्चत्यणी-घन + उच्च + स्तनी (स्त्री० विशे०)	४.५.९	✓घोस-घोष्य ^० इ	४.१.४
घणोह-घन + ओघ	९.९.९	घोसिभ-घोषित	७.११.४
घत्थ-प्रस्त	२.५.१२;३.११.२	[च]	
घम्म-घर्म, हि० धाम	८.१३.१	✓चभ-त्यञ्, चएसह (भवि०) चएवि	४.६.१५ ९.१.१४
घम्मण-वृक्ष विशेष	५.८.६	✓चभ-च्यु, चएपिणु	३.१०.७
घरकञ्ज-गृह + कार्य	३.९.७	चहृभ-त्यवत	८.४.११
घरपंगणु-घर + प्राङ्गण	१.९.६	चड-चतुः	८.११.१७
घरलंठिभ-गृह + मंस्थित	३.९.७	चडक-चतुष्क, हि० चौक	३.१०.१०;७.१२.३
घरहरिभ-घरघराहट (ध्वन्या०)	१.१५.४	चडकञ्ज-चतुष्क	३.१०.१५
घरिय-घारित, विह्वल	७.४.१४	चडगह-चतुर्गति	१.१३.९;१.१३.२
✓घल्ल-क्षिप्, घल्लवि	९.६.९	चडगहचयण-चतुर्गति + वदन (मुख)	३.७.३३
✓घल्लंत-क्षिप् + शतु ^० °f (स्त्रियाम्)	४.२२.२० १०.२०.७	चडग्युण-चतुर्गुण, हि० चौगुना	९.१३.६
घल्लज-क्षिप्त	६.१४.७,१०.१७.४	चडस्थ-चतुर्थ	१०.२२.५
घवकठ-उर्हाप्ट	८.१३.१५	चडस्थज-चतुर्थ, हि० चौया	४.१२.६
घविय-तृप्त	६.९.९	चडदह-चतुर्दश	११.१०.२
घाभ-घात	६.१०.८,७.३.५;१०.९.७	चडदिस-चतुर्दिस	११.११.३
घाडभ-घातित	५.६.१०;६.१४.५	चडपास-चतुः + पार्श्व	५.३.७
घाय-घात	६.१३.७	चडप्पह-चतुष्पथ	४.८.३
✓घाय-घातय ^० हि (विधि०)	९.४.१४	चडरंग-चतु + अङ्ग, चतुरङ्गः	६.२.१०
घार-(दे) चील	७.१.१२	चडवणसंघ-चतुर्वर्ण संघ	११.१५.११
घिणावण-धृणा + श्रानयन, हि० विनीमा	१०.७.११	चडबीस-चतुर्विंशति, हि० चौबीस	४.४.३
✓घित्त-(अप०) क्षिप्, घित्चूण	४.१४.६	चडन्विह-चतुर्विच	१०.२६.१०
घित्तन्व-ग्रहीतव्य	९.१०.१	चडसट्टि-चतु षष्ठी, हि० चौसठ	३.९.१२
घुग्घुइय-घूघूयित, घूघू ध्वनि	५.८.१९	चंगा-(१) चङ्ग (सुनार पुत्र)	१०.१६.१
घुमघुम-(ध्वन्या०)	१.१४.६	(II) चङ्ग-स्वस्थ	१०.१७.१४
✓घुम्म-घूर्ण ^० इ	१.८.२	चंगत्तण-(दे) चङ्गत्व, सौन्दर्य	१.१५.१
✓घुम्ममाण-घूर्ण + शानच्	४.११.७	चगम-सुन्दर, अच्छा, हि० चगा	११.६.१
घुम्मात्रिय-घूर्णयित	१.१४.६	चचरीय-चञ्चरीक, भ्रमर	४.२.५
घुम्भिय-घूर्णित	८.९.२	चंचक-(तरसम) चञ्चल ँ (स्वायिक)	२.६.८
घुहुरिय-घुरघुरायित (ध्वन्या०)	५.८.१६	चञ्चु-चञ्चु, हि० चौच	४.१६.६
✓घुल्ल-घुल्ल ^० इ	७.१०.१२	चञ्चुक्खथ-चञ्चु + क्षत	४.७.७
✓घुल्लंत-घूर्ण + शतु	९.१३.१८	चञ्चु-चञ्चु	१.९.९
घुसिण-कुड्डुम्म, केशर	२.९.९,११.१३.९	चंड-चण्ड	१.११.९७.६ ७ २
घूषड-घूषड, उल्लू	५.८.१९,८.१५.१४	चंद-चन्द्र	३.११.७
घोटि-घोटी वृक्षविशेष	५.८.९	चंदण-चन्दन	१.११.१७
✓घोल्लंत-घूर्ण + शतु	४.१३.१;७.४.१३	चंदणह-चन्दन + आरं	४.२.१.२
		चंदणलित्त-चन्दनलिप्त	८.१२.५

चंद्रसाह-चन्दनशाखा	१.१०.६	✓ चढफडंत-(दे) तडफडाते हुए	१०.१४.१३
चंद्रगह-(१) चन्द्रनखा, रावणकी बहन,		चढाचिभ ^य -आरोहित	४.१८.३;६.१३.१;
(११) चन्दनवृक्ष	५.८.३३.		१०.१३.१
चंद्रफलक-चन्द्रफलक	८.८.११	चडिड-आरुड	७.५.७
चंद्रमंडक-चन्द्रमंडक	१.१२.२	चडिण-आरुड	५.५.१४
चंद्रसुहिय-चन्द्रमुखी	७.१२.७	चडिण्ड-आरुड	३.६.१२
चंद्रवयण-चन्द्रवदन	३.३.४.	चडिय-आरुड	१०.१२.४
चंद्रसरिस-चन्द्रसदुवा	४.१७.१६	चडिय-आरुड	९.८.५
चंद्रसूर-चन्द्रसूर्य	१.१८.१०	चत्त-त्यवत	२.१९.८,१०.२६.५.
चंद्रायण-चान्द्रायण (ज्रत)	४.१४.१२	✓ चप्प-आ + क्रम्, चप्पेवि	७.११.१
चंद्रिण-चंद्रिणी	८.१५.१५	चप्पण-आक्रमण	७.६.१०
चंदोक्थ-चंदोवा	१.१५.७	चप्पिय-आक्रान्त	९.१३.९
चप-(दे) भोजपुरी : चाँपना, दवाना	१.९.९	✓ चमक-चमत् + कृं इ	२.१५.१७
चंपाणयसि-चम्पानगरी	३.१०.११	चमकज-चमत्कार	५.१२.११
चपापुर-चम्पापुर नगर	१०.२४.११	चमकिय-चमत्कृत	९.१४.१३
चंपिभ-(दे) चंपित; देखें : 'चंप'	१.१.१	चसर-चामर, हिं चंवर	१.१२.५;८.१३.४
चक्र-चक्र, हिं चक्रा	६.१०.४,७.६.१६	चसराणिक-चमर + क्षनिल	३.७.७
चक्र-चक्र (१) समूह (११) सुदर्शन चक्र	५.५.९	चम्म-चर्म	११.६.२
चक्रधर-चक्रधर	३.३.१२	चम्मजडि-चर्म + यष्टि	४.२१.७
चक्रक-(दे) चक्राकार, विद्याल	१.१२.४	✓ चय-त्यज्.°मि ८५ १३,°वि ३.५.९;६.१०.१०;	
चक्रवह-चक्रवर्ती	३.३.११	९.८.६,१०.६.३	
चक्रवहविह्वह-चक्रवर्तीविभूति	३.३.१६	✓ चयंत-त्यज् + शतु	२.७.११,११.१४.५
चक्रवट्टी-चक्रवर्ती	३.८.७	चयण-त्यजन, त्याग	१०.२१.८
चक्रव्याय-चक्रवाक, हिं चक्रवा ५.७.३,८.१४.१६		चयणिज्ज-त्यजनीय	३.८.५
चक्रो-चक्रो, चक्रवर्ती	३.४.७.	चयारि-चत्वारि	३.१३.१४;११.११.५
चक्रेसर-चक्र + ईश्वर-चक्रेश्वर	३.७.१०	✓ चर-चर्.°ई ३.३ १०;चरिचि ८.३.१२;चरेपिणु	
✓ चक्र-आ + स्वादय, चक्रखमि	२.१५.११	८.२.१०; १०.२१.७; °उ(विधि०)१०.७.३	
✓ चक्रल-आ + स्वादय + शतु	९.५.१२	✓ चरंत-चर् + शतु	९.१०.७
✓ चक्रिज्ज-आ + स्वादय (कर्मणि) °इ	१.८.६	चरण-(तरसम) चारित्र	८.२.१२
चक्रु-चक्रु	१.१.५;११.१३.८	चरणग-चरण + अण	१.१.१
चक्र-चक्र	४.१०.१,८.७.६	चरणजुयक-चरणयुगल	३.३.५
चक्ररियबंध-चर्चरी + वन्ध	१.४.५	चरमणु-चरमशरीरो, जम्बूस्वामी	७.१.२१
चक्रिय-चक्रित	६.२.५	चरमसरीर-चरमशरीर, अन्तमशरीर ४.३.८;८.७.१	
चक्र-चक्र, विषय	८.३.११,१०.८.२	चरिभ-चरित्र	१.१८.२२; ११.१५.१०
✓ चड-आ + रह्.°मि ५ १४.१६, °वि ८.११.११;		✓ चरिज्ज-चर् (कर्मणि) °इ	२.२.११
१० १४.१०; °इ (बहुव०) ८.१०.१६;		चरिय-चरित्र	प्रश० ६
°हि (विधि०) ५.१४.१६, चडेवि		चरियकरण-चरित्ररचना	प्रश० १०
९.३.१०,११.१४.११		चरियसय-चरित्र + शत	४.४.६
✓ चढाय-आ + रह्. + णिच् विवि	८.७.५	चरिया-चर्या	३.६.६

चरियासग-चर्यामार्ग	२.१५.८	वाक्यि-वाकित	१.१२.१
✓ चक-चल इ ५.१.२.१; उ (विधि०)	५.१२.२	✓ चाव-चव्-हि	१०.५.६
✓ चलंतु-चल् + शतृ (विधि०)	९.१४.१	चाव-चाप	४.१८.३; ६.१३.१
चकण-चरण	२.१९.९; ३.५.३; ७.५.३	✓ चाह-चाह्ल इ	२.१४.२; ७.१३.८
चकणग-चरण + अग्र	१.१.३	चाहिभ-चाह्लित	६.११.१०
चकणच्छवि-चरण + छवि	४.१४.५	चिचह्य-(दे) मण्डित	१.९.८
चकणयुगाह-चरण + युगल	४.४.१३	✓ चित-चिन्तय् इ ९.५.१; ११.८.१; वह २.१४.६;	
चकरमण-चञ्चलरमणा (स्त्री० विशेष०)	४.१९.८	७.१.२१; वि २.८.९; ९.११.१३;	
चलवक्य-चलवलित, चञ्चल	१.९.८	चितिवि ९.५.१; ९.८.१०; ११.८.१	
चलसिह-चञ्चल + शिखा	२.४.१२	✓ चितंत-चिन्तय् + शतृ	८.२.३
चलिभ-चलित	१.११.६; ७.१३.२; १०.१०.३	चितासल-चिन्ता + शल्य	९.१५.८
चलिउ-चलित	१.१४.१०; ४.१६.१	चिंतिभ-चिन्तित	९.६.७
चलियभ-चलित	७.१३.२	✓ चितिवज-चिन्तय् (कर्मणि) इ	५.१३.१९
✓ चव-चव् ई	२.१८.१; ८.८.३; १०.८.१	चिंतिव्वउ-चिन्तयितभ्यम्	११.१३.१०
चवण-च्यवन	२.२.६	चिध-चिह्ल, पताका	७.२.६
चवल-चपल	२.९.६	✓ चिकमंत-चक्रम् + शतृ	२.१५.१०
चवक्य-चपल + क (स्वार्थे)	१.८.३	चिकराह-चीत्कार, चिवाह	४.२१.११
चविभ-कथित	५.१३.१३; १०.२५.७	चिक्कार-चीत्कार	५.७.१४
✓ चव्वति-चव्व् + शतृ ि (स्त्रियाम्)	७.१.१६	चिकिकण-चिक्कण, चिकना	७.६.२०
✓ चविभ-चवित, चवाया ह्रस्वा	५.११.५	चिनिखल-(दे) कर्मभ	७.६.२०
चवेह-चपेट	४.१९.२१	चिच्चुय-(दे) चिपटा	२.१८.१२
चसभ-चसक	४.१७.१५	चिण-चीर्ण	२.४.५
चहरी-(दे) मदित	५.१०.१०	✓ चिजंतु-चि + शतृ (कर्मणि)	११.१४.८
चहुह-(दे) निभन होना, चपेटा जाना, फौटा ह्रस्वा		चित्त-मन	१.१८.४; २.१५.१०
इ ७.६.२०; ८.११.१०		चित्तउ-चित्त + वत्, चित्त	३.१३.११
चहुह-(दे) चिपक गया, फंस गया	९.७.१२	चित्तउह-चित्तौह	९.१९.७
चाभ-त्याग	८.१४.९, ११.१४.९	चित्तभमण-चित्त + भ्रमण	९.१४.१३
चाभ-चाप	४.१३.५; ६.१.३	चित्तथ-चित्त + क (स्वार्थे)	५.८.२६
चाउरंग-चतुरङ्ग	५.६.१५	चित्तलय-चित्रलित, चित्रित	४.८.८
चामीथर-चामीकर, सुवर्ण	१.१२.७	चिच्चुसाल-चित्त + उत्साल, उत्तावला	५.५.१६
चाय-त्याग	१०.१.९	चिय-चिता	२.५.१४
चार-(१) आचरण (११) प्रियाल वृक्ष	५.८.३३	चिय-च + एव	७.१.६
चारणरिद्धि-चारणऋद्धि	३.५.२	चिरकव्व-चिरकाव्य, प्राचीनकाव्य	९.१.३
चारणाह-चारण + आदि	३.६.४	चिरजम्म-पूर्वजम्म	२.५.१२
चारहद्धि-चारभटी	७.७.५	चिरभव-पूर्वभव	८.२.१४
चारहद्धिय-चारभटी	७.६.१९	चिरहिल्ल-वृक्षविशेष	५.८.८
चारित्त-चारित्र	१.३.५, ११.१.१४	चिराउस-चिर + आयुष्य	२.१७.२
चारिय-चारित्त,	५.३.११	चिलिचिक-(दे) आर्द्र, गोला	५.७.८
चारु-(तत्सम) सुन्दर	१.१.७, १०.८.५	चिलिसावण-(दे) जुगुप्सनीय	२.५.१३
		चिच्चिळ-(दे) परित्याज्य	९.१.१०

चीण-चीन (कोचीनपत्तन) १.१९.२
 चीया-विता १०.२६.८
 चीर-चीर, वस्त्र ८.१२.१२
 चीरंचल-चीराञ्चल ७.४.१४
 चुभ-च्युत ३.९.७; ४.७.२; ७.६.३३
 चुंभल-चुम्भल, बोधर ६.१०.३
 √ चुंभ-चुम्भ 'इ ४ १७.१८, चुर्ववि ७.१३.७
 चुंभण-चुम्भन ४.१६.११; ९.१३.९
 चुंभिल-चुम्भित ४.२१.४
 चुंभियास-चुम्भित + भास्य ३ १२.२
 चुक्क-भ्रष्ट २.९.३
 √ चुक्क-(दे) भ्रष्ट 'मि ९.१०.९
 चुक्का-भ्रष्टा (स्त्री० विद्ये०) २ १९.३
 चुय-च्युत ३.७.३; ७.९.३
 चुडुचक-चूडा, बाहुवलय + षल (स्वायें) ४.११.२; ६.३.१
 चुय-चूत, भास ३.१२.५
 √ चूर-चूरय्, 'इ ४.२१.३, ७.६.१३, ९.११.११
 चूरिभ 'य-चूरित ४.२२.५; ७.३.४
 √ चूरिभ्राण-चूरय् (कर्मण) + घानच् ९ ११.११
 चूल-(तत्सम) केश १०.१६.३
 चेइगेह-चैत्यगृह २.१९.५
 चेइहर-चैत्यगृह २.१६.११; ३.२.७
 चेउछ-चेतल्ल (देवा) ९ १९.४
 चेट्ट-चेष्टा ५.७.१७
 चेडभ-चेट + क (स्वायें) १०.१४.१
 चेष-च + एव १.१८.११; १०.९.६.
 √ चेषभ-चेतय् 'इ २.२०.७, ९ ११.१६
 चेल-(तत्सम) वस्त्र ८ १२.११
 चेष-च + एव ७.४.८
 चोइच् 'य-चोदित ६.४.६; ६.१२.५; ६.१२.९
 चोञ्ज-(दे) भास्य १.३.९
 चोह-(दे) चूडा, चोटी ९.१३.५
 चोहदेश-चोलदेश ९.१९.१
 चोर-(तत्सम) चोर ३.१०.८
 √ चोर-चोरय् 'मि ९.१५.५
 चोरत्तण-चौर्यत्व ९ १४.४
 चोरिय-चौर्यं हिं०, चोरी ३.१४.१७
 चोरियभ-चोरित १०.८.१०
 √ चोरैवइ-चोरय् + तुमुन् ९.११.१७

°चण-अर्चना ८.४.१
 °चिचय-च + एव, चैत्र ४.१८.७.
 °च्छ-अच्छतु, अस्तु १०.१२.६
 °च्छरा-अप्सरा ९.२.९
 °च्छि-अक्षि ३.१.२

[छ]

छइय-छादित ५.१२.१६; ८.१४.१७
 छइल्ल-(दे) विदग्ध, चतुर ५.८.३७
 छंकार-जलकण १.१.२
 √ छंट-(दे) छंटय्, छंटिना, छंटइ ५.७.२१
 छंद-छन्द ४.१२.१२
 छंद-(i) क्षमिप्राय, (ii) भाञ्छादित ५.८.३६
 छकण्डवसुंधर-पद्लण्डवसुंधरा ३.३.१२
 छकण्डिभ-पद्लण्डित ११.११.९
 √ छज्ज-छाज् 'इ-शोभित ४.१३.१०; १०.१८.१४
 छट्ट-पष्ट ६.१४.१८
 छट्टभ-पष्ट १०.२२.८
 छट्टम-पष्ट + अष्टम, ३.९.१२.
 छडव-छटा ७.१२.२
 √ छड्ड-छदि, मुच्, छड्डिवि ६.५.२; ९.७.४; छड्डिविणु ७.१०.२३
 छड्डाविभ-छदित, मोचयित ९.७.१०
 छड्डिय-त्यक्त (त्यक्त्वा) ९.१.१९
 छड्डिय-छदित, मुक्त ८.१४.२०
 छण-क्षण, उत्सव ४.१९.२; ९.८.१२
 छणईद-क्षण + ईन्दु, पूर्णचन्द्र १०.१.८
 छणदिण-क्षणदिन, उत्सव दिवस ९.८.१२
 छणससि-क्षण + शशि, पूर्णचन्द्र ४.१०.३; ८.३.१६
 छणिट्ट-क्षण + इन्दु ६.६.३.
 छण्ण-छन्न, छादित २.१२.९; ९.९.८
 छण्णवइ-पद्लनवति ६.३.१४
 छत्त-छत्र ६.७.६; ७.१.१०
 छत्तपत्त-छत्रपट ५.७.९
 छत्तायार-छत्र + वाकार ११ १२ १०
 छड्डव-पद् इव्य १०.१८.७
 °छड्डिय-छदित १.१.१४
 छण्णयार-पद् प्रकार, छ. प्रकार १०.२२.११
 छण्णयालि-पद्लय + अलि ४.२०.१०
 √ छमछम-छमच्छनाय् (अन्या०) °छमेइ ४.११.३

√ छमछमंति-छमच्छमाय् + शतृ ° (स्त्रियाम्)	छोडिभ-छोटित, त्यक्त	१० २०.३
छम्मास-षण्मास	७.१.१२	
छम्मासावहि-षण्मासावधि	२४.१, १०.१२.५	√ छोलिञ्ज-तल् (कर्मणि) ° ह हि० छोलना १.०.५
छल-(तरसम) छल, कौशल	८.५ ३	√ छोल्ल-तल्, छोलना, °ई
छल-छल, बहाना	६.९ ११, १० २४	छोहार-छोहार (द्वीप)
छलय-छलक (जुआडी)	६.५ ३	
छलिभ-छलित	४.२.१०	
छवि-(तरसम) कान्ति, घोभा	११.३ १०	
छविह-षड्बिध	१०.१८ १४	
छाभ-छाया, कान्ति	१० २३.८	
छाह्य-छादित	५.५.११	
छाय-छाया, कान्ति	१.७.२	
छाया-छाया	२.१३.२	
छार-क्षार, भस्म	९ १४.१	
छाहरदससभ-१०७६	११.१३.९	
√ छिज्ज-छिद् (कर्मणि) ° ह	प्रथ० ३	
√ छिज्जंत-छिद् + शतृ	२.२.११	
छिण-छिन्न	४.१७.१४; ५.७.५	
छिप-स्पृष्ट	२५ १४; ६.१० ८	
छिद्-छिद्र	९ १७ ३	
छिन्न-छिन्न	११.८.५	
छिन्नूच्छाह-छिन्न + छाया, कान्तिहीन	८ २.४	
√ छिच-स्पृश्, छिवेह	८.१६.४	
छुह-(दे) मुक्त	६ १३.८	
√ छुह-छुद् ° मि	१० १७.१८	
छुहछुह-(दे) (१)श्रीघ्न-श्रीघ्न, (२)पुन-पुनः	९.११ ९	
छुह-सिप्त, निमान	४ २० २	
छुरिय-छुरिका	१०.६.७	
छुह-क्षुधा	५.१३ १५, ८.१४ ६	
√ छुह-सिप्, छुहेवि(विधि०) ३ ११ ९, छुवहि-	९.१२ १	
(विधि०) ५.१३ ५; छुहेवि ९ ८ १८	१ ७.७	
छेभ-छेद	१० ७ १०	
छेच-क्षेप	५ ९.९	
छेचामाला-क्षेपमाला	९.९ १०	
छेभ-छेद	६.३ ५	
छेभ-प्राश्चर्य	१०.४.९	
छोकार-(दे) छोवकार शब्द	५.९.९	
	[ज]	
	जभ-जय-जेयः	९ १६.४
	जभ-जग	७.४ ८
	जह-यदि	२ १८.४; ४.११ ६
	जहच्छ-यथा + इच्छा, स्वेच्छाचारी	१० २२.९
	जह्यहुँ-यदा	२ २.१
	√ जह्ल्ल-जि + झल्ल (ताच्छ्रोत्ये)	५.७.६
	जह्वर-प्रतिवर	१० २५ ६
	जह्वि-यद्यपि	५.४.१; ८.११.३
	जउ-जव, वेग, शीघ्रता	६ १०.९
	जउण-यमुना	९ १९.१५
	जं-यत्	२.३ ७
	जंगम-जङ्गम	२.१.७; ११.१३ ३
	जघ-जङ्घा, हि० जाघ	१०.१५.७; १०.१६ २
	जंघतराल-जङ्घा + भन्तराल	४.११.१२
	जंघयाम-जङ्घा + स्थाम वल	५.८ २८
	√ जंत-गम् + शतृ ३.६ १३, ३.११.१३; १०.१० २	
	√ जंतभ-गम् + शतृ	११ ८.३
	√ जति-गम् + शतृ ° (स्त्रियाम्)	९ २५
	√ जंतीण-गम् + शतृ ° (स्त्री० बहुव० विदी०)	१.१० १
	जंतु-जन्तु, जीव	८ १४.४; १० २२ ७
	√ जंप-जल्प ° ह	५.१३ १३
	√ जंपंत-जल्प + शतृ	९ ४ ३
	जंपाणअ-जम्पानक, पालको	११ १ ९
	जंपाणय-जम्पानक, पालको	४ २० ४
	जंपाणाहिरुद-जम्पानक + अहिरुद	३ १३.२
	जंपिय-जस्मित	५.५ ६, ८ ७.१२
	जयीर-जम्बीर, जंबोरी नौदका वृक्ष	४ १६.४
	जंघु-जम्बू (वृक्ष), हि० जामुन	४.२१.२
	जंघुअ य-जम्बूक	९.११.८ ५ ८ १०;
	जंघुअ-जम्बूक, शृगाल	१०.१०.८
	जघुह-पेतम् (वैत का वृक्ष)	५.८ १३
	जंतुसामि-जम्बूकामो	४.१०.२, ११ १५.१०
	जंघुहल्ल-जम्बूक	४.८.२०

संवृद्धी-संवृद्धीप	६.१.१३	जणेर-(अप०) जनक	२.१०.८
संवृद्धीव-संवृद्धीप	३ २ ३	जरा-यात्रा	३.१२.१२; १०.२५.३
जकस-यक्ष	४.१.९, ४.३.७	जराकञ्ज-यात्रा + कार्य	३.१२.११
जकखामर-यक्ष + अमर, यक्षदेव		जराच्छत्र-यात्रा + उत्सव	३.१३.२
जकखेसर-यक्ष + ईश्वर	१ १७.३	जराथ-यत्र	१.९.१, १.९.७
जग-जगत्	२.१४.१०	जग-यम	७.४.११
जगदण-(दे) कदर्थन, पीडन	१.१० ११	जगदरी-यमपुरी	१०.१४.८
√ जग्ग-जागु ^० इ	१०.२२.१	जगगिह-यमनिभः, यमसदृश	६ १०
√ जग्गंत-जागु + शतृ	३.१४.१३, १० ८.१६	जगदूय-यमदूत	११.२.१
जउजरिभ-जर्जरित	४.१९ २१, ६ ९ ६	जगमहिंस-यममहिय	५ ५.१
जड-(१) जटाए ^० (११) जड, मूल	५ ८ ३६	जगल-युगल	१०.१६.२
जडमह-जडमति	१ ६.११, ६ ५ ५	जगद्वृद्ध-यम + आदिष्ट	१०.९.२
जडिभ-(दे) जटित इहल (स्वार्ये)	५ ७ ७; १० ८ ७	जग्म-जग्म	९.१२ ६
जडिक-जटिल	९ ९ १२	√ जग्म-जनी ^० इ	११.३.७
जडिकल-जटित्, जटाधारी	५.७ ७, १० ८ ७	जग्मण-जग्मन्, जग्म	११.९.१
जण-जन्, लोक	९ १० १३	जग्मंतर-जग्मान्तर	२.८.२; ३.५.५
√ जण-जन्तु ^० इ ९.७ ३; ^० हि (विधि०) ८.१०.१७;		जग्मदिवस-जग्मदिवस	३ ४.३
जणवि २.१७ १		जग्मावहि-जग्मावधि, आजग्म	८.१०
√ जणंत-जन्तु + शतृ	४.२२ १३	जग्माहिसेभ-जग्मासिपेक	१, १.२
जणभ-जनक	२.१८ १४	जय-मेघेश्वर	३.१.११
जणकम्मण-जनकर्मण, वशीकरण	९ १६.८	√ जय-जि ^० उ (विधि०) १.१.३; ३.१.४, हि०	
जणकिण्ण-जन + आकोर्ण	३.१० ११	(विधि०) ४.४.१२	
जणखेल्कण-जन + क्रीडनक; लोगोका खिलौना	९ ३.९	√ जयकंसिर-जय + कांक्ष + इर (ताच्छीत्ये)	१.१०.८
जणजाणिय-जन + ज्ञात, लोकप्रसिद्ध	८ ४.४	√ जयकार-जय + कारयु ^० रिचि	५.२.७
जणण-जनन, जनक प्रश्न० ११; ८ ९, १०.२४ १०		जयकारिअ-जयकारित	३.४.८, ७.१३.५
जणणंदिणी-जननमिदनी	१०.१९.१३	जयघंट-(तरसम) विचयघण्टा	५.६.९
जणणयण-जननयन	३.१.९	जयधोत्ता-जय + स्तोत्र	१०.१.१३
जणणायर-जननायर, नागरिकजन	१० १९ १२	जयमह-जयमद्रा (श्रेष्ठिपत्नी)	३.१०.१३
जणणि-जननी	४ २२.२६; ^० णी ८.७.१	जयमंदिर-जयमन्दिर	१.१७.६
जणदाण-जनदान	३.२.९	जयवल्कह-जगवल्कभ	४.७ ११
जणधण-जनधन, जनसकुल	५.४.७	जयसासण-जयसासन	१.१.५
जणंभोसह-जन + अम्भोरुह	४.५.२	जयसिरि-जयश्री	१०.१.१४
जणमण-जनमन	४.१५.५	जयादेवी-श्रीर कविकी चौथी पत्नी	प्रश्न० १६
जणवय-जनपद, पौरजन	२.९.१३	जयास-जय + आशा	४.१४.२२
जणविद्-जनवृन्द	४.२२.२४	जयासय-जय + आशय	६.१३.६
जणसंकिण्ण-जनसकीर्ण	४.१४.२३	जर-जरा	३.८.१०
जणणंद्-जन + ज्ञानन्द	४ ८ ११	जर-(तरसम) वृद्ध	९.७.९
जणिभ ^० य-जनित	२.१.१३, ९.९ ६	जरजुण्ण-जराजीर्ण	१०.१४.३
√ जणिरज-जन्तु (कर्मणि) ^० इ	११.५.४	जरमरण-जरा + मरण	१.१.१०

जरमरणुभव-जरा+मरण+उदभव	३.७.९	२.१५.९,७.१२.१५; जाहू (विधि०)	
जल-जल, पानी, विन्दु	४.१८.७		१०.२५.७
जलजकी-जल+अञ्जलि	१०.१.२	जाअ-जात	५.१.४
√जलंत-ज्वल+घतृ	४.६.२;५.५.३	जाहू-जात्य इल्ल (स्वायें)	८.१२.१०
जलकंत-जलकान्त (स्वर्गविमान)	८.२.२५	जाहूभि-यानि + अवि	४.४.६
जलकीक-जलकीडा	४.१९.३	जाहूँ जाहूँ-यानि यानि	४.१२.१४
जलगथ-जलगत	१.६.८	जाउ-जात	६.११.३
जलगण-ज्वलन (नाम)	३.१२.१९	जाएञ्ज-गन्तव्यम्	५.४.१५,
जलनिहि-गलनिधि	९.५.८	जागरंलक-जागर + इल्ल, पहरेदार	५.७.२३
जलपयर-जलप्रकर, जलप्रचुर	३.१.२०	√जाण-√ज्ञ जाणिमो	६.२.२;
जलपाण-जलपान	५.९.१०	°ए ३.४.१०; °मि ४.१४.९;९.३.२;	
जलवृद्धय-जल + वृद्धुद्	२.१८.११	°सि १०.१५.१, °हि (विधि०) १०.१.१५	
जलयर-जलवर	११.४.५	°वि १०.१७.३; °हूँ ८.९.१६; जाणिकण	
जलयरबक-जलचर + बल	७.५.११	९.१७.१०; जाणिवि ९.११.११; जाणवि	
जलकोक-(तत्सम) जलकी लहरें	६.२.४	४.११.७, ११.३.६	
जलवाहिणी-(१) जलवाहिनी नदी		√जाणंत-ज्ञ + शतृ	४.१२.१३
(॥) जलवाहिनी, हि० पनिहारिन	१.६.२०	जाण-यान	११.१.९
जलसेय-जलसेच(न)	१०.१७.१३	जाणवच-यानपात्र	१०.११.७
जलहर-जलधर	४.२०.१२	जाणिय-जात	४.१७.२; २.११.११, १२.९
जलहि-जलधि	६.१४.२	√जाणिञ्ज-ज्ञ (कर्मणि) इ	३.१.१०; ७.३.११
जलिय-ज्वलित	५.८.२३	जाणु-जानु, घुटना	९.७.१३
जलोथर-जलोदर	३.११.३	जाम-याम, प्रहर	४.४.१५
जलोत्थिय-जल + उल्ल, आर्द्र-जसार्द्र	३.८.४	जाम-यावत्	१०.२६.११
°जलोह-जल + ओष	४.११.१	जामहि-यावत् + हि	९.५.९
जव-(तत्सम) जव, वेग	५.५.१५; ९.११.१३	जामिणि-यामिनो, रात्रि	३.४.१०
जसइ-जसई, वीरकविका तीसरा अनुज	प्रश० १४	√जाय-जनी, °इ ११.१.१३, ११.८.१, °हि	
जसणाउ-यसानाम	प्रश० २१	(विधि०) ४.१४.१४, ७.४.३; जायठ-जात	
जसणिवास-यशनिवास	प्रश० २१	८.५.१; ११.१५.८	
जसपबह-यथा + पटह	१.५.३	जायण-याचना	९.१३.१४
जसमइ-(स्त्री) यशमती (श्रेष्ठिपत्नी)	३.१०.१३	जाथर-जागर, जागृत	९.१६.९
जसलंपड-यशालम्पट	६.७.१०	जाथा-(तत्सम) जाथा, पत्तो	१०.९.४
जसु-यथा:	१.११.३	जार-(तत्सम) व्यभिचारी	१०.१०.५
जसुञ्जल-यथा + उञ्जबल	७.१२.१६	जारिस-यादृश	९.१६.७
जसोहणा-यथोपना (रानो)	३.३.२	जारक-जारक, समूह	७.९.१०
जहा-यथा	१०.१.३	°जारक-ज्वाला	५.१३.१०
जहि-यत्र, हि० जहाँ	९.१०.१८	√जारक-ज्वाल्यु इ	११.१३.९
जहिच्छा-यथा + इच्छा	९.१.१४	जारलघर-जालन्घर (नगर)	९.१९.१५
√जा-गम्, जाप्रवि १०.१७.१३, जाइ १०.१७.१८		जालामुख-ज्वालामुख, अग्निमुख बैताल	७.६.८
जाएसमि (सवि०) १०.११.५, जामि ९.		जाकिय-ज्वालित	८.१५.४
५.४, जायवि १.१५.४; जाहि (विधि०)			

जाव-यावत्	२११२	जियअ-जीवित	७.४.८
जि-एव, चैव, खलु	११४५, ८६.४	√जियतु-जीव् + शतृ	७.१.१५
जिअ-जित.	७८.१४	जिह-यथा	४.६.६, ९.३.३
जिउ-जीव	९.१.१७	जीउ-जीव	१०.२.१०; ११.७.६, ११.१४.१२
जिट्ट-ज्येष्ठ (मास)	४.३.२; ४.७९	जीउगुण-जीवगुण	११.५.१०
जिण-जिन (मगवान्)	३.३.५	√जीव-जीव् इ ३.१.१२; जीवेसमि (मवि०)	९.११.९; जीवेसहि ९.३१३
√जिण-जि, इ ५.९१४; जिणिवि ६.१४.१;			
जिणवण ३.१०.१५			
जिणंद-जिन + इन्द्र	१.१७.८; ४.४९; ४.५.११	√जीवंत-जीव + शतृ	७.६.३५
जिणकिरण-जिनकीर्त्तन	८८६	जीवण-जीवत	२.६.९
जिणहवण-जिनस्नपन	३.३१७	जीवतस-जीवतस्व	२.१.२
जिणणाह-जिननाथ	३.१३.१३	जीवमाउ-जीवभाव, जीवस्वरूप	१०.२४.४
जिणदंसण-जिनदर्शन, जिनधर्म	२.१८.२	जीवसरण-जीवशरण	१.१.५
जिणदिट्ट-जिन + उपदिष्ट	३९.१९	जीवाह-जीवादि (द्रव्य)	२.६.७
जिणपय-जिनपद	१४६	जीवासउ-जीव + आश्रय	११.७.२
जिणपडिम-जिनप्रतिमा	५.१०१५	जीवासा-जीव (जीवन) + आशा	२.५.१४
जिणपुंगस-जिनपुञ्जव	४.१.५	जीविअ-जीवित	८.७.७
जिणभवण-जिनभवन	५.३८	जीविउ-जीवाउ; जिलानेवाला	७.११.९
जिणमह-जिनमती	४७२	√जीविज्ज-जीव् (कर्मणि) इ	११.२.७
जिणयास-जिनदास	४.२५	जीवियमरण-जीवित (जीवन) + मरण	२.२०.४
जिणवइ-जिनवती	४२२८, ९१७.१६	जीविआस-जीवित + आशा	९.११.१२
जिणवइणाह-जिनमतीनाथ, वीरकवि	१.६.१	जीह-बिह्वा	५.१४.१३
जिणवइणा -जिनवन्दना	११४.११	जीहा-बिह्वा	८.७.७
जिणवयधर-जिनस्रतधर : (विशे०)	४३१३	जुअ-युत	१.१६.१
जिणवर-जिनवर	३७.१५	जुअऊ-युगल	१.११.१५; ८.१४१४
जिणवरिंद-जिनवरेन्द्र	४१.१३	√जुअ-युष् इ ६.४.३; हि (विचि) ५.१२.२५	
जिणसमय-जिनसमय, जिनधर्म	५९३	√जुअंत-युष् + शतृ ँ ७.११.१४; इ (बहुव०)	६.९१
जिणसेन-जिनसेन	१०.२१३	√जुअंतियि-युष् + शतृ	७.३.९
जिणहर-जिनगृह	८.३.२४	√जुअमाण-युष् + शानच्	७.१४.११
जिणुदिट्ट-जिन + उपदिष्ट	४५५	जुअभाव-युद्धभाव	७.४.१६
√जिणवइ-जि + तुमुन् १०१५.२, वए ३१५.१५		जुअमह-युद्धमति	६१.७
जिणोसर-जिनेश्वर	१.११	जुअिअ-युद्ध	६.५.५, ७.१२.१२; ८१६.१५
जिणोसुर-जिनेश्वर	४.४.३	जुण-जीर्ण	९.१०.२
जिस-विजित	२३१५; ५१.१४	जुस-युक्त	८२.४, ११.१२.२
जिससिदि-जितश्री (श्रेष्ठिक्रिया)	८.१०.११	√जुपर-युष्, जुप्पति (बहुव०)	५.६.४
जित्थु-यय	२११.९, ३.११६	जुथळ-युगल	१११२
जिम-यथा	१०.४.२, १०.४.१५	जुथळुळ-युगल + उळ (स्वायें)	४.१३.१७
√जिम-भुज्, इ	३.९१४	जुवइ-युवती	४१९.२२
जिय-जित, विजित	८.५.६	जुवइयण-युवतीजन	१.१६.६
जिय-जीव	२.७.४		

खुवल्ल-युगल + उल्ल (स्वायें)	४.४.१३; १०.१५.७	√ जोर्यंत-दृश् + शतृ	७.१३.७; १०.११.११
खुवाण-युवान, हि० जवान	१०.१५.८	जोयण-योजन	७.८.५; ११.१.१२
खुवार-द्वृतकार	४.२.८	जोयणसय-योजनशत	५.४.३
खुव्वण-यौवन	२.१६.७	जोयलीण-योगलीन	१०.२६.९
जूअ-द्वृत	४.२.९	√ जोव-दृश् + इ	९.१४.८
जूड-जूट, जूडा	९.१२.२	जोवण-यौवन	२.१५.३
जूपार-द्वृतकार	४.२.१०	जोव्वण-यौवन	२.१४.६
√ जूरंत-जूर + शतृ ७.६ १०; जूरंतिय (स्त्रियाय्)	९.१३ ३	जोह-योद्धा	६.१०.४
जूवफल-द्वृतफल	४.३.८	जोहणथ-यौवनकः, लडानेवाला	९ १६ ८
जूवार-द्वृतकर	८ ३.१३	जोहणार-यौवनद्वीप	९.१९.१६
जूह-यूथ	८.१०.४		
जूहवह-यूथपति	९ ७ १	[झ]	
जे-ये	२.२ ६	झंकार-झङ्कार (ध्वनि)	५-१ २२
जेट्ट-ज्येष्ठ (भ्राता)	२.११.१०	√ झंकार-झङ्क इ	४.१३.८; ८ १९ ११
जेत्तह-यत्र	३.४ ११	झंकोलिर-झान्दोल + इर (ताच्छील्ये)	४ १५.१३
जेत्थ-यत्र	१.३ २; ४.१०.२, ५.४.१४; ८.३ १४	झंल-झलना इर (ताच्छील्ये), परेशान होना	८.११.१४
जेम-यथा	३.४ ९	झंझं-ध्वनि	५.६ १०
जेह-सदृश	१०.५ ८	√ झंपंत-(दे) श्रुट + शतृ	६ ७.३
जेहल-(अप०) यादृश	६.१०.१४	झंषाण-झाच्छादन, हि० झंषाणा	४ १७.९
जोअ-जोग (ध्यान)	११ ४ ८	झमिर-(दे) झम्प + इर (ताच्छील्ये) हि० कृदना	
जोहंगण-ज्योतिर्गण, खद्योतक	८.१४ २१		
जोहय-दृष्ट	४.६ २, ७ १०.२	झंसी-वृक्ष विशेष	५ ६.७
जोहस-ज्योतिष् (देव)	१ १६.८, २ ५.८	झडा-झडप	६ ६ ५
जोहसगण-ज्योतिष् + गण	१ १ ७	झडत्ति-झटिति	७.८.७
जोहसिम-ज्योतिष्क	४ १४.२१	√ झणपंत-झा + छिद + शतृ	६ ७.३
जोकार-जयकार	५.१.२१	झटप्पसाल-झटनेवाला	७ २ १४
जोग-गौरव	११.१४.९	झटप्पिअ य-आच्छिन्न	४.२०.१०; ८ १० ४
जोरग-योग	२.१.१०., ८.९ ४	√ झणझणंत-झणु झणाय् + शतृ (ध्वन्या०)	१.१४ ७
√ जोड-योजय, ०वि	१.२.६	झत्ति-झटिति	५.४ ६.८.१३.२; १०.१० ९
जोडणय-योजनकः, जोडनेवाला	९.१६.१०	√ झर-झर्, झरन्ति (बहुव०)	७ १.१०
जोडिअ य-योजित	४.२.१७, २.९.१७	झरिह-झरणशील	६.९.१०
जोणि-योनि	२.२.३; ११ ३-२	झरि-(दे) झाडो	५ ८.२४
जोण्हा-ज्योत्स्ना	४.१०.३	√ झलक-जाज्जवल् ० हि	४ ११.७
जोणहारस-ज्योत्स्नारस	८ १५.६	झलविकथ-झलझलयित	७ ८.११
जोरार-योक्ताः (कर्तार)	५.१०, २०	झलज्झल-झलझनाय् (ध्वन्या०), हि० झलझलाना	७.५ १२
जोय-योग (काय, वाक्, मन)	११.३.२	झल्लरी-वाद्यविशेष	१०.१९ ३
√ जोय-दृश् ० इ ९.५, ९; ० ह (विधि०)	८.१२.१४; ० हिं (बहुवचन) ७.८.५, जोह(विधि०) ४ १८ १	झसिय-(दे) पर्यस्त, उरिस्त, गलित	२.५ १८
		झाण-ध्यान	१०.२३ ७
		झाणिरिग-ध्यान + धरिण	१.६ ६

ज्ञानश्रुत्यक-ध्यानयुगल	१०.२२.७	डिभ-स्थित	१ ११ १९; १०.१४.३; ११.१२.२०
ज्ञानागम-ध्यान + आगम	१०.२१ ९	डिय-स्थित	२.१७ ४; ३.३.१५
ज्ञानाणक-ध्यान + अणक	१ १.९		
ज्ञाय-√ घ्या °इ	२ १४.५	[ड]	
ज्ञायमाण-व्यायमान	१ १८.१३	√ डंक-दंक् °इ	३ ८ १०; डकेइ ८ १७ १२
ज्ञीण-क्षीण	१.१२ ४	√ डंम वञ्च् °हि	१०.५.८
ञ्जुक-(दे) भूमका	४ ८.८	डक्क-(दे) डक्का (वाद्य विशेष)	४.२.७, ५ ६.९
√ झुण-ध्वन् °इ १०.८.९; भुणन्ति (बहुव०)	४ १५ ३	डक्कार-डक्कार (ध्वन्या०)	७ ६.१३
°झुणि-ध्वनि	१.५ ९; ४ १३.८; ८ ११.४	√ डज्झ-दह्, °इ न.१६ ५; °ए (आत्मने०) ३.९.१	
√ झुकलंत-आन्दोल् + शतृ	४ ८ ७	डज्झमाण-दह्, + शामच्	४.१४.८; ९ १४.६
झुल्लिकभ-दग्ध	२ १५.१६	√ डज्झं-दह्, + शतृ °तिय (स्त्रियाम्)	६ ५.१
झुल्लिक्रिय-आन्दोलित	८ १४ ४	डमडंक-डमरु ध्वनि	५ ६.९
झुल्लिक्रियंग-(दे) झुणसते हुए अङ्गोवाला	१०.१३.११	डमडकिक्रिय-ध्वनि	१०.१९.३
°झुल्लिक्री-(दे) झुलस गयी (स्त्री०)	१०.१५ ४	डमडमिय-डमडमायित ध्वनि	५.६ ९
√ झूर-क्षि, हि० झूरना		डमर-भयङ्कर	४.२२.४
झूरिय-स्थूल, चिन्तित	७.६.३०	डमरु-डमरु वाद्य	५ ६ ९; ७ ३.१
झटुभ-कन्दुक	१.६.९	डर-डर, भय	३.२ १३; ९ ४.२
		डराविय-भीषित, डराये हुए	६.१३ ५
[ट]		√ डस-दंश °इ ४.१९.१७; डसन्ति (बहु व०)	४.११.१२, ६ १३.५
टंक-जङ्गा	६ १०.२	डसिय-वष्ट	४ २२.१०
टंकार-टङ्कार (ध्वनि)	५ ६.९	√ डह-दह्, °इ	२ १६ ५; ३.३ १६
√ टंकारभ-टङ्कारय °इ (बहुव०)	४.१.३८	√ डहंत-दह्, + शतृ, दहत्	७.९ ६
टंकारिभ-टङ्कारित	७ ८ ७	डहण-दहन, अग्नि	७.९.११
टंट-ध्वनि विशेष	१०.१९.२	डहाका-जबलपुर प्रवेश	९.१९.१५
टक्क-ठक्क, पञ्जाब	९.१९ १०	डाह्णि-डाकिनो, हि० डायन	७.१.११
टणकिकय-टङ्कारित	६ १३.४	डाढ-दष्ट्रा	३.८ १०
टिंवर-टिम्बर वृक्ष	५ ८.९	डाळ-(दे) शाखा	५ १०.१५
टिविक-वाद्य विशेष	१० १९.२	डाढुत्तार-दाह + उत्तार, अग्निमे तपाया हुआ	८.१२.९
टेंट-(दे) टेंटा, घृतगृह	४.२.१०	डिडिम-डिण्डिम वाद्य	१०.९ १
ट्टिभ-स्थित, स्थूल, कठोर	२ १४.९, ४.७.१०; ६ १०.१२	डिम-डिम्भ, बालक	५ ७ १७
		डिमस्थ-डिम्मरत्	३.२ ११
[ठ]		डेत्रिभ-डिप्त, उल्लङ्घित	७.१०.११
ठक्कुर-ठाक्कुर, योद्धा	७ ६ १९	डोकहर-दोला	४.१६ ११
√ ठव-स्थापय (विवि०) °हि ५ १३.२६; °वि २ ७ ९; ठवेप्पिणु १ १० ९		√ डोल्ल-दोल् °इ	८.७ ६; ९ १८.६
ठविभ-स्थापित	४ १४.२१, ९.१.९	डोल्लन्त-दोल् + शतृ, दोलायमान	९ १८.६
ठाण-स्थान	५.१० २३	डोहिय-दोलित	१०.१५ ५
√ ठा-स्था °इ (विवि०)	३.६ ९	डोव-डोम (एक जाति)	५ ११ ४
४२		√ डोह-दोह, डोहिकण-ध्वनगाहा	४.२१.३
		√ डोहिय-दोहित, ध्वनगाहित	५ ७ १२

[ढ]

ढरह-ढोह वृक्ष	५०६१२
ढक-ढवका, वाद्य विशेष	४५.१२; ५६१०
√ढक-छादय् °इ	११.८.२
ढकसार-वाद्यविशेष	१.१४८
ढककिकथ-(दे) दुलक गये	७.८.१०
ढकिकभ-(दे) ढलित, दुलक गये	१० १४ १५
√ढाकिजजह-(दे) ढाला जाता है	१०.१४.११
ढिक्क-शिक्षित	९.१७३
ढक्क-ढोकित	६११.३
√ढक्क-प्र + विश् °इ	१० २५ १
√ढक्कत-प्र + विश् + शतृ	६.९७
ढक्कड-ढोकित	८.१३.१४
√ढोहजमाण-ढोक्य् + शानच् ५	१.२२; ९.१३.७
√ढोय-ढोक्य् (विधि०) °ह	१०.११८
√ढोयंतु-ढोक्य् + शतृ	१३.८
ढोर-(दे) पशु	८ ११ १०

[ण]

णं-ननु	१ १०.१, २.३.३, ४.७४, १० २० ७
णहविद्य-स्नापित	५ १० १६
√णहा-स्ना, ण्हाएवि	९ ८.१५
√णहाव-स्नपय् °इ	५ १० १५
णहाण-स्नान	४.१८ ८

[त]

तहभ °य-तृतीय	२ २० १०, ३ ५ ८, १०.९ ६
तह्यभ-तृतीय + क (स्वार्थे)	८ २ २२; १० २२ २
तह्यहुँ-तदा	२.२१
तह्या-तदा, तृतीया	१ १ ४; प्रथ० १६
तह्य्लोक-त्रैलोक्य	१ १ ८, १ १७ ७, ८ ११ ६
तह्यै-तदा, तस्मिन् काले	४ ८ १४
तउ-तत, हिं० तो	७ १३ १८
तउ-तव, तुम्हारा	८ ६.६
तउ-तप	२ २० ८
तउधम्म-तपधर्म	८ १० १४
तय्-तव, तुम्हारा	१ १८ १०
तओ-ततः	४ ५ १६, १० ९ ७, १० २६ ७
तं-तत्	२ १२ ३, ४ १७ १३

तं-तम्	६.४.२
तंजिया-तंजिका (देश)	९.१९ १
तंढविय-तत, विस्तीर्ण	५ ७ ९
तं तं-तत् तत्	३ १४ १०
तंतवाळ-तन्त्रपाल	५ ६.२
तंति-तन्त्री (वाद्य)	४ १५.३
तंवा-गौ	४ १८ १३
तयाहर-ताम्र + अघर	४.१८ १२
तयिर-ताम्र	१.१२.३, ५.१८.१२
तंयोल-ताम्रूल	८ ९ ४
तंयोलवच-ताम्रूलपत्र	९.१२ ३
तक्क-तर्क	४ १२ ११
तक्कर-तस्कर	९.१५.२
तक्करकम्म-तस्करकर्म	३.१४ १६
तक्करवित्ति-तस्करवृत्ति	३ १४.२३
तक्करायार-तस्कर + आचार	१० १८ ९
तक्खड-(श्रेष्ठि)	१ ५ ३; १ ५ ८
तक्खण-तत् + क्षण	५ १० २०; ६.१२ १०
तखिखितखितखिल-वाद्य ध्वनि	५ ६.१२
√तज्ज-तर्जय्, तर्जिऊण	७.३ ६
तट्टव-त्रस्त + क (स्वार्थे)	१ १० ८
√तड-तन् °इ	१६.५.२.
तड-तट	४.१९ ५
तडतडण-तडतडण (ध्वन्या०)	१ १४ ९, ५.६.७
तडतडिअ °य-तडतडिअ	५ ६ १३, ७ ८ ७
तडरि-तड इति, हिं० तडसे	५ ७ १९
√तडरीह-तद् + इति + इह, तडसे	२ १९ १
√तडफिड-(दे) तडफडाना, तडफिडवि	७ ५ १२
√तडयडंत-तडतडाय् + शतृ	१ १५ ५
तडि-तडित्	७ ८ ७
तडिखरतडि-ध्वन्या०	१ १४ ७
तडिमाळि-तडित् + माली, विद्युन्माली देव	४ ७ २
तडिय-तत, विस्तीर्ण	९ १० ८
तडियतडि-ध्वन्या	१०.१९ ४
तडिवडण-तडित् + पतन	५ ६ ७
तण-तृण	६ १३.६
तणउ-प्रति, सम्बन्धी (सम्बन्धवाचक अव्यय)	१.११ १९, २ १८ १४
तणअ-तनय, पुत्र	४.७ ११, ९ ३ १२
तणभूमि-तृणभूमि	१ ९ ४

तणिया—(अप०) षष्ठि (सम्बन्धसूचक) अन्वय्य	तरलच्छि—तरल + अक्षि	४८.४
(स्त्री०) २.१६.३	तरलदृक—(तत्सम) चञ्चलपत्र	४.१६.३
तणु—तणु, शरीर ३.१० १,८.१२.१३.११.१२.११	तरवार—तलवार	७-६ ७
तणु—तृण ४.२.११	√ तरिय—तृ + क्त्वा	१०.१०.२
तणुअ—तनुक-क्षीण ४ १८ ११	तरिया—हि० तैराक	१०.११.७
तणुकंति—तनुकारित, ३.१३ ३	√ तरिल्ल—तृ + इल्ल (ताच्छील्ये)	५.७.१२
तणुचेद्वा—तनुचेष्टा, शारीरिक सेवा १०.२३ ३	तरु—तरु	२.४८
तणुवाण—तणु + वाण, रक्षाकवच ६ ७ ४,६.९.७	तरुणअ—तरुण + क (स्वार्ये)	९.३.८
तणुवङ्—तणु + प्रभा, वैदुष्यम् ३.१०.६.	तरुणत्तण—तरुणत्त्व, तारुण्य	२.१८.३
तणुवमव—तनुवमव ८.६.३.	तरुणमाव—तरुणमाव, तरुणावस्था	४.९.७
तणुरुह—तणुरुह, पुत्र १०.३.९.	तरुणाहण—तरुण + अहण	४.८.१
तणू—तणु ८.४.१०	तरुणि—तरुणी	३.१२.१५
तणुहाल्यल—तृणालु + क (स्वार्ये) २.६.९	तरुणियण—तरुणीजम	४.१९.६
तघा—तघ्त १०.१३.२	तरुणी—तरुणी, युवती	३.९.९
तघ्—तघ्व २.१.५; २.६ ७	तरु—तरु १०.१३.२; ११.९.९	
तघ्स्थ—(१) तत्त्वार्थे (२) तत्रत्य १० ३.११	√ तलप्यंत—(दे) उल्लङ्घन भावे हुए	५.१४.६
तघ्—तघ्न ३ ७ ३; ११.११.४	तलवायह—(दे) तलप्यर्थागतिसे तैरना	४.१९.१०
तघ्स्थि—तघ्न + अस्ति ३.१.१३	तलाथ—उडाग	४.६.४
तदिदिसुदिसुद—अन्वया० ५ ६.१२	तलार—(तत्सम) कोतवाल, नगररक्षक	९.१४.१; १०.८.११
तद्दद—तत् + द्रव्य १०.९.८	√ तल्लिज्ज—तल् (कर्मणि) °इ	२.२.२
तद्विस—(तत्सम) तत् + दिवस ३ ९.६	तल्लुविल्लि—(दे) तद्विज्ञाहट	९ १०.५
√ तप्य—तप् °इ १.११.१९; २.६.१२	तव—तप २ ६.५	
तप्यणदेवथ—तर्पण देवता ४.१७ १३	तव—तव, तेरा ४.६.१४; ४.११.१३	
तम—(तत्सम) अन्वकार १.९ ७; १०.२५.११	√ तव—तप्, °इ ३ ६ ७	
तमणास—तमनास, तमःप्रभा नरकभूमि ११.१०.८	तवंग—प्रासाद ४.१९ १६; १०.१५.५	
तमणासण—तमनासन १०.२३.३	तवंतर—तप + अन्तर, तप प्रकार ३.१०.१०	
तमणियर—तमनिकर ४.३.१५	तवगहण—तपग्रहण ३.८.१	
तमारि—(तत्सम) तम + अरि, सूर्य ५.११.१६	तवचरण—तपचरण ३.५.८, ३ ९ ४, ८.१२.१८; ९.१६.१२	
तमाकि—(तत्सम) तमसमूह १० ६.४	तवण—तपन, सूर्य ८.१४.४; ९.१०.३;	
तमी—रात्रि ४ ५ २२	तवतविय—उपतपित ८.४.१०	
√ तर—तृ, तरेद ५.५.५; तरंति (बहु व०) ७.१ १०;	तवफल—तपफल १०.२६.६	
तरवि १०.१०.२	तवसंतक्कर—तप + मन्त्र + अक्षर ३ ७ १५	
√ तरंत—तृ + शतृ °इ (बहु व०) ६.९.८	तवसाहिअ—तप + साहित ३.१३.१५	
तरद—नाथ १.१४ ८	तवमिरि—तप. श्री ३ ६.१	
तरंग—तरङ्ग २.१२.९; ४.१९.६	तववित्र—तपित ५.१२.१२	
तरमिणि—तरमिङ्गनी, सरित् ८.११.१२	तवोवण—तपोवन ३.११ २	
तरद—(दे) प्रगल्भ ९ ३ ८	√ तस—त्रास्य, °इ ३.१६.१४	
तरद—(दे) प्रगल्भ स्त्री ४.२१ १२	तह—तया २.६ १२, ३.१२ ३; ९.५ १२	
तरणि—तरणि, सूर्य ४.१९ ३		
तरक—चंचल ३.१.१७		

वहवि-तथापि	२६१२	विकसंकुड-तीक्ष्ण + अङ्कुड-फाली	९.४८
वहा-तथा	१.१८.१२	विकसकुस-तीक्ष्ण + अङ्कुष	८.८.३
वहि-त्र	७६३७, ११.१४४	विकसकडकखड-तीक्ष्ण + कटाक्ष + वत्, तीक्ष्ण कटाक्ष-	
वा-तत, हि० तो	८.६.२	वाली	३.१०.१४
वा-वावत्	१०.५.१२		
वाभ-जात	८.५.८	विकसकर-तीक्ष्ण + अक्षर	२.१३.४
वाङ्वाङ्-तानि तानि	४.१२.१४	विखंड-त्रिखण्ड	४.४.४
वाङ्मि-तानि + अपि	४.४.६	विछत्र-त्रिखत्र	१.१७.२
वाङ्म-ताजिक (दिवा)	९.१९.१०	विजय-त्रि + जगत्	१.१.१२
वाउ-ताः	४.१४.२; ८.१०.७; ९.१२.७	विज्ज-त्रियञ्च (पशुमति)	१०.१७.१९
वाउ-ताप	८.१४.८	विट्ट-तृपा, कृष्णा	१०.५.७
वाए-तया	२.१७.९	विडिहिय-(दे) छोटोसे युक्त	७.२.९
√ वाढ-वाड्य् ° ह	९.८.२०	विण-तृण	३.१.८, ४.२२.१३; ९.११.१२
वाढण-ताढण	२.२.३	विणमय-तृणमय	८.१३.३
√ वाढिञ्जद्-ताड्य् (कर्मणि) ° ह	११.४.४	विणसम-तृणसम	३.१.८
वाडिय-ताडित	१.१४.८, ६.१४.११	विणिण-त्रीणि हि० वीनो	१०.८.१४
वाणावलि-तान + (स्वरताल) आवलि	४.१३.३	विणिणवीस-त्रीणि + त्रिधाति, तैतीस	११.१०.९
वाम-वावत्	१.१५.१; १.१५.८, ५.२.१	विचहि-त्र	३.८.२
वामहि-वावत् + हि, हि० तमी	२.२.११; ८.१४.३	वित्थ-त्रीथं	१.१.१
वाय-वात	३.१४.१२	वित्थंकर-तीर्थंकर	१.१३.१०
वार-वार, विशाल, उच्च	७.१.५; १०.१८.१३	वित्थथर-तीर्थंकर	४.१.९
√ वार-वार्य् ° ह	१.१.२.१०	वित्थथर-तीर्थंकर	१.१.७.८
वारजसु-वार + यथः	१.४.५	तिड्ड-त्रिदण्ड	४.१.८.९
वारय-वारक	९.९.८	विनयण-त्रि + नयन, महादेव	१.१०.८
वारिय-वारित, वारक	८.६.७	विनयणतेशु-त्रिनयनतनु, महादेव	५.८.३६
वारुण-वारुण्य ° च (स्वार्थे)	२.१४.११	विमिर-विमिर	२.६.८
वारुणकंद्-वारुण्यकन्द	४.१९.१३	विद-स्त्री	१०.१४.१४
वारोह-वारा + ओष	१०.१८.१०	वियकए-त्रि + अक्ष, व्यक्ष, महादेव	७.४.१३
वाळ-ताल (वृक्ष)	४.१६.३	वियत्तण-स्त्रीत्व	९.१.१५
वालभ-हि० ताला	३.११.९	वियद्व-स्त्रीद्वय	९.१.१५
वालु-तालु	२.१८.११	वियमय-त्रिकमयः	९.१.१३
वाव-वावत्	८.१४.३	वियस-त्रिदश, देव	२.४.१
√ वाव-वाव्य् ° हि (विधि०)	१०.२.६	विरिअ-य-त्रियञ्च	२.२.३, १.१, ३.८
वावलिशि-वाव्रलिशि	९.१९.७, १०.२४.१४	विरिगिच्छ-वृक्ष विशेष	५.८.७
वाविय-जापित, तप्त	४.१९.३	विरिच्छ-त्रियञ्च हि० तिरछा	२.१८.१५
वावियडि-वाप्ती + तटी-ताप्ती तटवासिनी स्त्री	४.१५.११	विलअ-य-तिलक	१.१२.१७, ४.१७.१६
वावीयड-वाप्ती (नवी) तट	९.१९.४	विलगि-तैलङ्गी, धाःघ्रवासिनी स्त्री	४.१५.८
विकख-तीक्ष्ण, हि० वीषा	४.१६.६	विलजव-तिल + यवत्	२.६.१
		विलमेच-तिलमात्र	४.२२.१६
		विकयभूय-तिलकभूत	३.२.३

सिंघोयग-त्रिलोक + अथ	११८.७	तूरसह-तूरशब्द	५.६.१५
सिद्ध-तैल	२.२.२	तूक-तूल, रुई	८.१६.३
सिद्धिय-तैलक, हि० तेली	१०.४.१५	तूलिक-तूलि + अङ्क, गद्दा	४.५.२३
सिक्क-त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम)	४.९.६	तेभ-तेज	३.१२.१९; ४.८.१
सिक्किल-त्रिवली	४.१९.१६	तेवीसोबहि-त्रयस्त्रिशत + उदधि (आयु प्रमाण)	
सिक्क-तीत्र	५.१.१६		११.१२.६
सिक्कतभ-तीत्र ताप	६.१४.३	तेचह-(अप०) तावत्	६.१.१८
सिस-तृषा	२.२.११	तेथ-उस्मात्, तत्र	५.४.६; ६.११.३
सिसट्टि-त्रिपट्टि	४.४.५	तेय-तेज	१.१८.१९; ५.१२.१२
सिसायभ-तृषित	९.७.१५	तेयपूर-तेजपूर, तेजपूर्ण	१.१८.२
सिसिअ-य-तृषित	८.११.१०; ९.७.११	तेयमाल-तेजमाला	१०.१.११.
सिह-सथा	१०.४.१३	तेयवारि-तेज + वारि, तेजवारि	२.३.२
सिहिवार-तिथि + वार (रविवारदि)	३.४.१	तेरड-(अप०) तेरा	५.१३.२७; ६.२.३
सिहुअण-त्रिभुवन	४.९.९	तेलोक-त्रैलोक्य	४.३.१४
सिहुयण-त्रिभुवन	४.१४.१६	तेल-तैल	५.७.२३
सिहुयणतिलअ-त्रिभुवनतिलक	२.१८.२	तेलिय-तैलिक, हि० तेली	५.७.१९
सिहुवण-त्रिभुवन	२.४.६; ७.५.१४, ११.२.८	तेदअ-सर्वव	८.१३.८
सौर-वीर, तट	१०.९.८; १०.१०.७	तो-तत, तावत्	२.१७.१; ६.७.१२; ९.२.१२
सौरुत्तार-वीर + उत्तरण	११.८.४	तोअ-तोय	१.१.२
सुंगिम-सुङ्गिभा	१.१५.११	√ तोड-वृट्, ँभि	४.२.१२
सुच्छ-सुच्छ	१.९.११	√ तोडंत-वृट् + शतृ	४.७.१३
√ सुट्ट-वृट्, इ	१०.४.१३	तोडणय-त्रोटनक, तोडनेवाला	९.१६.१०
√ सुट्टंत-वृट् + शतृ	४.८.४; ११.१५.५	तोडिअ-त्रोटित	४.२१.५
सुट्ट-सुच्छ	९.१०.२०	तोण-तुणीर	७.८.१
सुट्टमण-सुच्छ + मन	१.१४.१२	तोमर-तोमर, वास्तु विशेष	७.९.१३
सुडिअ-वृट्टित	१०.१२.७	तोयावलीदीव-तोयावलीद्वीप	९.१९.६
सुण्डिअ-तूष्णीक	८.२.६	तोराविय-(दे) उत्तेजित	५.१०.५
सुरग-सुरङ्ग	४.२१.१४	तोरा-(दे) तुम्हारा	४.१८.१
√ सुरंगम-सुरङ्गम	५.११.१२	√ तोल-तोलय् ँए (आत्मने०) ७.४.१०; ०हि	
√ सुरंत-स्वरप् + शतृ	९.१०.१०	(विवि०) ११.६.५	
सुरप-सुरप	४.१३.१५; १०.१९.७	तोलय-तोलित	८.३.१०
सुरपविद-सुरगवृन्द	७.८.३	√ तोस-तोसप्, इ	११.८.७
सुरिअ सुरिअ-स्वरया स्वरया	२.१३.५	तोसल-तोसल (देश)	९.१९.१
सुरूक-सुरूक, सुकी (देश)	९.१९.१०	ताडिअ-ताडित	५.५.१०
सुलिय-सुलित	७.४.९	तार-तार, विशाल,	८.१२.९
सुल-सुल्य	४.१३.१७	तास-तास	१.१५.४
सुसार-सुपार	७.२.८	ति-इति	५.१४.८
सुदिणायल-सुहिनाचल, हिमालय	४.१०.५	°त्यवण-अस्तवन	९.९.२
सूर-सूर (वाद्य)	५.१०.१४, ६.२.८	°त्याणु-आस्यान	६.१.१६

[थ]

थंभ-स्तम्भ	५.१२.१३
√ थंभ-स्तम्भय्, थंभेवि	३.१४.१२
थंभण-स्तम्भनः, रोकनेवाला	९.१६.८; ११.८.१
थक्क-स्तव्य,	६.१३.८, ७.९.११; ८.१५.१४
√ थक्क-वलम् थकना, श्रान्त होना °ह ५.८.३७, ११.२.८; °उ (विधि०) ११.१४.४	
√ थक्किज्ज-वलम् (कर्मणि) °ए	५.९.११
थगदुग-वाद्य	५.९.११
थगधुगि-(ध्वन्या०)	१.१४.६
थङ्-समूह	४.८.४, १०.१६.१२
थङ्-यूय, समूह	५.१.११
थलङ्-स्तव्य	५.८.३४, ५.१०.१०
थण-स्तन	४.१९.११, ५.९.१०
थणपठभार-स्तनप्राग्भार	४.१९.२१
थणमंडळ-स्तनमण्डळ	२.१४.८, २.१५.१५
थणयङ्-स्तनतट, वृषक	९.१३.९
थणवट्ट-स्तनवृत्त	४.१५.११, ४.१९.१५
थणसिद्धर-स्तनसिखर	४.१९.६
थणहर-स्तनधर, वक्षस्थल	८.१६.६
थणहारड-स्तनधरा, स्तनवारिणी (स्त्री० विधि०)	१.६.८
थन्ति-स्थिति, स्थान	१०.२५.७
√ थरहरंतु-थरहराय् + शतृ	६.५.८
थरहरिञ्-कर्मिपत	१.१.१.
थळकमलिणि-स्थळकमलिनी	१.७.४
थळीमडळ-स्थलीमण्डळ, राजस्थान	९.१९.७
√ थव-स्थापय् °ह	२.७.१
थवई-स्वपति, निर्माता	५.२.१४
थविचठ-स्थापित, रखा हुआ	११.६.४
थाण-स्थान, आसन	५.१.३, ७.१०.३
थाणंतर-स्थान + अन्तर	१०.१७.१
थाणधर-स्थानकरः, पहरेदार	३.१४.१२
थाणु-स्थान	२.५.१३
थाम-स्थाम, वल	१.१.११, ३.१०.८
थाम-स्थान	११.१०.८
√ थाव-स्थापय् °ह ११.१०.१, °उ (विधि०) ८.२.८; थावन्ति (बहु व०) ४.१९.११	
√ थावंत-स्थापय् + शतृ	११.१५.१

थावण-स्थापन	११.७.१
थावर-स्थावर (जीव)	११.१३.३
थाविञ्-स्थापित	३.७.१; ७.११.१६
थाहर-स्थान, हि० डोर	७.१०.११
थिड-स्थित ३.९.१८; ८.४.११, ९.६.९; १०.८.१६	
√ थिप्पिर-वि + गलृ + इर (वाचोत्से) ९.१०.२	
थिय-स्थिता (स्त्री०)	१०.१०.७
थिय-स्थिता °उ (स्वाधिक)	२.८.५, ७.४.१७
थिया-स्थिता (स्त्री०)	९.६.६
थिर-स्थिर	४.९.९; ५.२.७
थिरगमण-स्थिर + गमन °उ (वत्)	१.६.६
थिरदिट्ठि-स्थिरदृष्टि	५.१२.१३
थिरिंरि-वाद्य	५.६.१३
थिरिरिकटवट्टकट-(ध्वन्या०)	५.६.१३
थुइ-स्तुति	४.११.७
थुगिधग-(ध्वन्या०)	१.१४.६
√ थुच्चंत-स्तु + शतृ	१०.१९.१६
√ थुण-स्तु थुणिवि	१०.८.६
थुथुक्कारिञ्-चिक्चिक्कृत	८.७.१३
√ थुव्वंत-√ स्तु + णिच् + श	१०.१९.१५
थेर-स्थविर	१०.८.१
थेरि-स्थविरा (स्त्री०)	९.९.८
थोळ-स्तोक	१०.८.३
थोत्त-स्तोत्र	१.१८.१४
थोर-(दि) स्थूल, गोल	८.११.६
थोरियगरिळ-(दि) गोलाईसि मोटा ऊँचा रुपेटा हुआ थिरोवस्त्र ५.७.१२	
थोव-स्तोक	५.१०.१७
थोव-स्तोक + °उ (स्वाधिक)	१.५.११
थोवंत-स्तोक + अन्तर	१.१५.८
थोइ-(दि) वल, पराक्रम	९.९.५

[द]

दद्वज-द्वैव	२.१५.२
दद्वज-द्वैव, द्वैत्य	९.१९.१८
दद्वज्ज-द्वैत्य	५.१४.८; १०.९.३
दद्वय-द्वयिता, पति, प्रेमी	३.११.१४; ४.१७.७
दद्वयंधरिय-द्विगम्भरी + क (स्वायें)	२.१७.५;
	८.५.१४

दृढ्यायत्त-द्वैव + ऋयत्त, दैवाधीन	७, १२. १४	द प-दर्पण	१०. २० ३, १०. २२. ५
दृढ-द्वैव	४. १२. १६	दृष्ण-दर्पण	१०. ३. ५; १०. ४. ८
दृढसंज्ञोभ-द्वैवसंयोग	१०. १४. १२	दृष्णकरा-दर्पणकरा, दर्पणहस्ता (स्त्री० विशेष०)	
दृढवारिय-दौवारिक	१. १२. ९	१. १० ४	
दृढ-दण्ड (नीति)	४. २१ ८; ५. ३. ५	दृष्णतेय-दर्पणतेज	१०. ४. ९
दृढकर-दण्डकर, दण्डकारी,	२. ७. ५	दृष्णहरण-दर्पणहरण	६. ४. ८
दृढकरंविभ-दण्डगवित	५ १३. ९	दृष्य-दर्पित	५. ३. ३
दृढगद्विमभ-दण्ड + गमित-शक्तिगमित, मानगमित	५. १३. १३	दृष्विष्ट-दर्पिष्ठ	५. १४. ९
		दृष्यिणि-दर्पिणी, दर्पित करनेवाली	४. ३ १४
दृढधार-दण्डधारक	१ १५. ६	दृष्य-दर्पित	१. १२. १; ५. १३. ७
दृढियाचक्र-दण्डिका चतुष्क	५. १. १२	दृष्टुमभ-दर्प + उद्गम	५. १२. २५
दृढ-दन्त	५. २. १८	√ दृम-दृमय्-दृमय् °हि	१०. १०. १५
दृढत्या-दन्त + अग्र	६. ७. ६	दृम-दम, इन्द्रियनिग्रह	३. ६. २
दृढपति-दन्तपङ्क्ति	१. १०. ५	दृमण-दमनः, दमन करनेवाला	४. १५. ७
दृढवण-दन्तवन, दातून	९. ११. ३	दृमदमिय-दमदमित (ध्रन्त्या०)	७. ५ ५
दृढि-दन्ती, हस्ति	६. ७. ६	√ दृम्म-दृमय् °इ	५. १३. २२
दृढिम-दन्तमय	४. ११. २	दृय-दया	९. १०. १७; ११. १३. १०
दृढुर-दन्तुर	४. १४. २; ९. १८. ५	दृयवत्त-दयावत्त	३. ४. १२
दृढण-दर्शन	२ ८. २, ४. १०. ८	दृयावण-(वे) दयोत्पादक, दीन	१. ९. ११
दृढणावरण-दर्शनावरण (कर्म)	१०. २४. ३	दृर-दर, ईपत्	४. १३. १७, ४. १५. १२
दृढिभ-दर्शित	२. १०. १०; ६. १२. ७	दृरसाविय-दर्शित	७. १२ १
दृढ-द्राक्षा, अंगूरका वृक्ष,	१. १०. ११, ४. १६. ३	दृरसिय-दर्शित	८. २. १६, ८. ११. ७
दृढसवण-दर्शविन, दिखलाना	५. १४. ५	दृरहसिय-दरहसित	११. ६. ६
दृढसविय-दर्शित	४. २. १०	दृरि-गिरिकन्दरा	२. ८ ७, ४. २०. १२
दृढसारस-द्राक्षारस	१. ७. ४	दृरिह-दारिद्र्य	६. १. १, ९. ८. २
√ दृढसालंत-दर्शय् + शतृ	१०. १४. १२	√ दृरिस-दर्शय् दृरिसावइ	४. ११. ५, दृरिसावमि
दृढित्वण-दृक्षिण (विद्या)	९. १९. १	९. ११. ६	
दृढ-दक्ष	१०. १०. ८	दृरिसि-दर्शी, दिखलानेवाली, दर्शनीय	१. ५. १
दृढि-दक्षा (स्त्री० विशेष०)	४. १८. ५	दृरिसिभ-दर्शित	३. १२. १२
दृढ-दण्ट	६. ६. १०	दृरुणह-दर + उष्ण, ईपदुष्ण	८ १४. २
दृढाहर-दण्ट + अघर	५. १३ ११	दृलवदृण-दलमर्दन	१. ८. ९
दृढोह-दण्ट + ओष्ठ	५. १४. १२	दृलिभ-दलित	६. ८. १, ७. ४ १; ९. ६. २
दृढु-दृष्टुम्	४. १. १	√ दृलिज्ज-दृलय् (कर्मणि) °इ	११. २. ६
दृढिभ-दृढद्वामित (ध्रन्त्या०)	५. १४. १६	दृवक्रिय-(वे) द्रुतकृत, द्रुवकना, छिपना	७. ८. ११
दृढिहंवर-वाद्य	५. ६. ७	दृवण-दमनः, दमन करनेवाला	१०. २६. ११
दृढ-दण्य	४. १८ ९, ११. ६. ४	°दृवण-दमन	५ १२. १६; ६. १०. ५
दृढ-दृढ	५. १४. २१	दृवत्ति-द्रुति, द्रुग्त	१०. १०. ९
दृढ-दण	२ ६. १	दृविह-द्रुविह	९ १९. २
दृढपद्वज-दृढप्रतिज्ञ	९. १४. ९	दृविण-द्रुविण	९. १५. ६, १०. २. ३
दृढुर-दृढुर	७. ९. १०; ८. १३. ६	दृव-दृवय	१०. २. १०; १०. १०. १

द्वयस्वरूप-द्वयस्वरूप	९.१.१७	दासत्तण-दासत्व	५.१.११
द्वयविकल्प-द्वय + अपेक्षा	१०.२२.१२	दासि-दासी	४ १९.२०; ८.१२.१२
दस-दश	२.३.९	दाहिण-दक्षिण, दाहिवा	७.१०.१७, ९.१२.३
दसण-दशन	९.१३ १०	दाहिणपह-दक्षिणापय	५.२.१२
दसदिस-दशदिक्	१०.२५.१०	दिश-द्विज	२.११.१; २.१३.१
दसदिसि-दशविधि	४७.१२	√ दितु-दा + घतु	३.११.६; वेंतु ३.११.१४; ४.१७.११; दिति (स्त्रियाम्) ८.११.९
दसपयार-दशप्रकार	११.१२.८	√ दिक्ख-दीक्ष्, दिक्खंकाहि (विधि०)	२.१९.१०
दसम-दशम	१.१६.९, ४.८.१	दिकखकिअ-दीक्षाङ्कित	२.७.१०, ३.५.१३
दसम्मि-दशमी तिथि,	प्रश० ४	दिकखा-दीक्षा	२.१४.२, १०.२०.१
दसलक्खण-दशलक्षण	११.१४.१२	दिक्खिअ-दीक्षित	२.४.१०
दससायर-दससागर	३.१०.२	√ दिप्प-दा (कर्मणि) °इ	४.२.१४; १०.१०.४; ११.८ ६. °उ (विधि०) २.८.११; ८.५.१४; °हि (विधि०) ३.१३.५
दह-द्वह	९.९.११	दिट्ठ-दृष्ट	२.३.८, ४ १३.१३, १०.९.७
दह-दश	११.१०.६	दिट्ठअ-दृष्ट	९.१.६
दहम-दशम, दसर्वा,	१.१६.९	दिट्ठु-दृष्टम्	५.५.१५
दहमुह-दशमुख, राचण	३.१२.१	दिट्ठफळ-दृष्टफळ	१० २१.९
दहलक्खण-दशलक्षण (धर्म)	११.१३.७	दिट्ठि-दृष्टि	२.८.४; ८.११.१६
दहविह-दशविध (धर्म)	११.२.१०	दिट्ठिअ-दृष्टिअ	१०.१५.११
दहि-दधि, दही	७.१२.५; ८.१५.११	√ दिव-दृढ्य् °वि	१०.२५.९
√ दाव-दा,	°इ ५.७.३; दाऊण ६.७.९	दिव-दृढ	७.४.६, ११.८.२
√ दित्त-दा + घतु	४.१९.७	दिवचित्त-दृढचित्त	९.२.१
दाहजअ-दायाद, दहेज	८.१२.८	दिवधम्म-दृढधर्म (मन्निपुत्र)	३.७.८, ३.९.१०
दाढावलि-दंष्ट्रा + आवलि	९.७.५	दिवप्पहारी-दृढप्रहारी (भोल)	१०.१२.१
दाढिय-दाढी	१०.१६.६	दिवमइ-दृढमति	२.७ १२
दाढियळ- (दे) दाढीयुक्त	५.८.२७	दिवअग्ग-दृढवलगन, खूव कूदनेवाले	७.८.३
दाहुक्खय-दंष्ट्रा + वत्खात	५.८.१६	दिण-दिन	३ ९.१२
दाण-दान	२.१२.४, ४ ७.८	दिणमणि-दिनमणि, सूर्य	५.१०.४, ७.२ १२
दाणंठु-दाव + अम्बु	४.२२.५	दिणथर-दिनकर	२.११.६
दाणपवत्ति-दानप्रवृत्ति	१०.२.३	दिणसंक्क-दिनसङ्का	१.१.७
दाणवसण-दानव्यसन	१०.२.३	दिण-दत्त	५.७.१३, ६.१०.७
दामिअ-दामित, दमित	५.७.१५	दिणअ-दत्त	६.८ ७
दार-द्वार	९.१७.३, १०.१३.५; १० १७.८	दिणदिहि-दत्तवृत्ति, दुःसाहसी	८.९.६
दारकवाड-द्वारकपाट	९.१५.१०	दिणथ-दत्त	२ १९ ४
दारिय-दारित, विदारित	६.८.८, ८ १०.३	दित्त-दीप्त	४.८.१
दारुवण-(१) दारुण, ताण्डवनृत्य (१) दारु (वृक्ष)वन	५.८.३६	दित्ति-दीप्ति	२.१४.१०, ४.८.२
दाळिमाळि-दाहिम + माला	४.२१.२	√ दिप्पर-दिप् + हर (ताच्छीर्ये)	२.९ ३
√ दाव-दर्शय् °इ १.१०.३; °ए (आत्मने०) १.९.५	४.१७.२२	दिग्मुह-दिङ्मुख	८ १४.१९
√ दावंत्त-दर्शय् + घतु	८.१७.८	दिग्-द्विज	२.१७.४
√ दाव-दापय् °इ	८.६.९		
दाविय-दशित			

दिय- (वे) दिवस	३.१०.७	दीहणयणि-दीर्घनयना (स्त्री० विभो०)	४.१७.१६
दियंत-दिग् + अन्त	२.३.२	दीहत्त-दीर्घत्व	३.२.१
दियंवर-दिगम्बर	२.१३.४	दीहर-दीर्घ	१.६.७;१.२.२
दियणंदण-द्विजनन्दन	३.५.६	दीहरसर-दीर्घस्वर	१.४.१५
दियसणय-द्विजतनय	२.१७.३	दीहिदीहिआ-दीर्घदीर्घिका	४.२१.४
दियवर-द्विजवर	२.४.८,२.८.१३	दुहुहि-दुन्दुभि	१.१७.३,५.१०.१४
दियह-दिवस	४.१४.३	दुक्कर-दुष्कर	२.१४.९,९.२.८
दिव-दिवस	२.४.१०	दुक्किष-दुष्कृत	४.६.८
दिवि-दिवि-घी-घी	२.१४.६	दुक्ख-दुःख	२.२.१०;६.१२.५
दिवसपहर-दिवसप्रहर	३.१२.४	दुक्खम-दुःखित	३.१३.१०;८.९.१६
दिवसयर-दिवसकर, सूर्य	१०.१८.७	दुक्खियाउ-दुखिता. (बहुव० स्त्री० विभो०)	३.११.१२
दिवायर-दिवाकर	५.५.१,८.१४.१२	दुग्ग-दुर्ग	४.१४.७
दिव्व-दिव्य	१.१७.४	दुग्गंघ-दुर्गन्ध	१०.१७.१०
दिव्वच्छर-दिव्य + अप्सरा	२.२०.११	दुग्गामिक्क-दुर्गम + इल्ल (स्वाधे)	५.७.८,९.१९.९
दिव्वज्जुणि-दिव्यज्वनि	८.४.९	दुज्जण-दुर्जन	६.५.११
दिव्वज्जत्थ-दिव्यज्वत्त	५.१२.१५	दुज्जोहण-दुर्जोवन	५.१३.७
दिव्वाउह-दिव्य आयुष	७.९.७	दुह-दुष्ट	५.१४.९,१०.१२.६
√ दिस-दृश् + वि	१०.५.८	दुहमाउ-दुष्टभाव	३.११.१२
दिसउ-दिस'	२.१५.१२	दुण्णय-दुर्नय, दुर्नीति	५.१४.५
दिसकरेणु-दिशागज	४.२०.९	दुण्णिक्ख-दुर्निरोध	५.१२.१२
दिसमाण-दृश्यमान-	३.१.१५	दुत्तर-दुस्तर	३.८.९;४.४.१३;१०.९.९
दिसाविज्जम-दिशाविजय	५.१४.२	दुत्थ-दुःस्थ (विभो०)	१.१.६,१.९.११
दिसि-दिशा	६.१४.११	दुहस-दुर्वन	९.४.८;११.१४.७
दिहि-मृति	१.५.४;२.८.१	दुह-दुग्ध	४.१८.६
दीउ-द्वीप	८.१४.११	दुहर-दुहरे	४.२०.१२;६.१०.१
दीउ-द्वीपक	११.७.५	दुहय-दुर्नय, दुर्नीति	५.१३.२
दीण-दीनता	१०.१५.९	दुप्पिच्छ-दुष्प्रक्षय	१०.२६.३
दीव-द्वीप	११.११.२	दुवळ-दुर्वल	८.११.१०
दीवअ-द्वीपक	८.१५.५	दुम-द्रुम	५.१०.१३,५.१४.५
दीवणि-उत् + दीपनः (स्त्री० विभो०)	८.११.४	दुम्मण-दुर्मन, दुःखी	६.१.१
दीवसमुह द्वीप + समुद्र	११.११.१	दुम्मरिसण-दुर्मरण (ब्राह्मण)	२.११.१
दीविय-उद्वीपक	८.१६.११	दुम्भ-दुर्लभ	४.५.१०
दीविया-उद्वीपिका (स्त्री० विभो०)	९.१२.८	दुहक-दुर्लभ	१०.१०.१६
दीविय-दीप, ज्वालित ' (स्त्रियाम्)	८.१५.१३	दुक्कलिअ-दुर्ललित, दुर्विदग्ध	९.३.४
दीवोह-दीप + ओष	२.४.८	दुक्कह-दुर्लभ	२.८.१,९.१७.११,१०.१.५
√ दील-दर्शय + ह (आत्मने०)	४.१५.१५,६.११.८;	दुवाअ-दुवति, भाँची	९.३.८
१०.५.९, दीसति (बहुव०)	५.८.२४;	दुज्जर-द्वार	१.१६.२,९.१७.१२
८.३.२४, दीमेह (आत्मने०)	१०.१८.१०,	दुवाळ-द्वार	४.२०.१०
दिसिहिह (मवि०)	२.१४.११	दुवव-दुर्वा	७.१२.५
दीह-दीर्घ	४.१३.१४,४.२१.४,१०.१५.६	दुज्जयण-दुर्जवन (१) अपशब्द, (११) दुर्जन	१.३.६

दुग्धसण-दुग्धसण	४.२.५;८.८.९	देवाउस-देवामुष्य	३.१.७
दुग्धाय-दुग्धाति, आधी	१.११.१८	देवागम-देवागम	१०.२४.७
दुग्धवार-दुग्धवार	४.२२.६	देवाविभ-दापित, विलाया	५.१२.२२
दुग्ध-दुग्ध	३.१३.१०, ११.१५.३	देवाहिदेव-देवाधिदेव	११५.१२;४.४.१०
दुग्धमहाणक-दुग्धमहानक	३.८.२	देवि-देवी	३१०.१०
दुग्धयर-दुग्धपर; दुग्धी	६.८.६	देविउ-देवता (स्त्री० बहुव०)	१.१६.५
दुग्धिय-दुग्धिता उ (बहुव०)	४.१४.१५	देवोत्तर-जिस नामके अन्तमें 'देव' पद है, अर्थात्	
दुग्ध-य-दुग्ध	५.१२.७;५.१३.२४;१०.९.२	मववेव ८.२.९	
दुग्ध-दुग्धी	१०.१६.८	देवोत्तरकुरु-देवकुरु + उत्तरकुरु, जैन पौराणिक	
दुग्धडिया-दुग्धिका	८.१५.१	भूमिया ११.११.५	
दुग्धक्षण-दुग्धत्व + न (स्वाधे) दुग्धपना	५.१२.१९	देस-देश	५.३.९;६.१२.७
दुग्धतर-दुग्ध + अन्तर	४.१८.१५;४.१९.१९	देसतर-देशान्तर	१०.१५.२
दुग्धतराक-दुग्ध + अन्तराक	२.१५.१३	देसंतराक-देशान्तराक	१०.८.२
दुग्धद्विय-दुग्धद्विषत	७.८.५	देसमासा-देशभाषा	५.१.९
दुग्धपिय-दुग्ध + प्रिय (पति)	३.१२.३	देसवहसिससंधियउ-तद्देशसम्बन्धी	५.१२.४
दुग्धपयंत-दुग्ध + प्र + यण् + शतृ, प्रयान्तम् ७.६.४		देवदिसि-देवदीप्ति	३.६.८
दुग्धयर-दुग्धतर	६.६.३;७.१.५	देवदिसि-देव + ऋद्धि	४.९.१
दुग्धजिषय-दुग्ध + उजिषत, त्यक्त	१.१६.१	दो-द्वि, दो (सख्या)	७.४.७;१०.१२.६
दुग्धमड-दुग्ध + उद्भट	७.६.१३	दोण-(१) द्रोणाचार्य (१) द्रोण, माप विशेष ८.३.९	
दुग्ध-दुग्धी	३.३.१०	दोणी-द्रोणी	९.१९.७
दुग्ध-दुग्ध	५.१२.२०	दोक्तडि-दुष्टतटी, दुष्टनद.१.३.९, ५.७.१९, १०.१८.७	
दुग्धाकाव-दुग्ध + आलाप	७.३.१	दोमियण-दुग्धित + अञ्	४.२.११
दुग्धह-दुग्धसह	१०.२२.९, ११.१.४	दोर-(हे) प्रत्यञ्चा	६.१३.४
दुग्धावास-दुग्ध + आवास, तम्बू	५.१०.२३	दोर-(हे) डोर, कटिपुत्र	३.३.१४, ६.१३.४
दुग्धसिभ-दुग्धित	९.१५.४	दोक्तिय-दोक्तित	१.१.३
√दुग्धिसिउ-दुग्धय + तुमुन्	१.१५.६	दोस-दोष	१.१.२;४.१८.१
दुग्धव-दुग्धय	४.१८.४	दोस-दोष	५.१३.१७
√दे-दा, इ ६.७.९; देउ (विधि०) १.१.१२;			
देवि ७.१३.१४, १०.१०.१०; देविणु			
२.६.१;१०.२३.३, देहि (विधि०) ८.६.१०;			
देह (विधि०) ८.९.१५			
√द्वैत-दा + शतृ	६.१.१		
देउ-देव	१.१.१२, १.१५.१२, ११.३.८		
देउक-देव + कुल	४.१०.१;१०.८.१५		
देउउ-दातध्या (स्त्री० बहुव०)	४.१४.१५		
देवस-देवदत्त (कवि)	१.५.४		
देवदाह-वृद्ध	४.२१.३		
देवय-देवता	६.९.४		
देवयस-देवदत्त (कवि)	५.१.१		
देवल-देवालय, देवल	१०.८.१२		
		[घ]	
		घम-घ्वज	४.२१.१७, ६.४.१०
		√घंत-घाण् + शतृ	१.१५.५
		घकडवग्ग-घाकडवर्ग (कुल)	१.५.२
		√घगघगंत-घगघगय् + शतृ	४.६.२
		घडि-(दे)कुण्डल	१०.१६.४
		घण-घण्या, घार्ग	२.१५.२
		घण-घन	१०.२.३, १०.२३.३
		घणअ-य-घनद, कुवेर	१.९.१०, १.१६.३
		घणहस-घन + वत्, घनवान्	३.१०.१२, ४.२.२
		घणकण-घन + कण, घनघान्य	१.५.१
		घणकणय-घनकण + क (स्वाधे), घनघान्य	१.६.२

धनयत्तड-धनदत्त (श्रेष्ठि)	४.१२.६	धरेसह (भवि०)	२.१६.४; धरि (त्रिवि०)
धनराशि-धनराशि (ज्योतिषीय नक्षत्र)	४.१४.२१	८.११.१७; धरेकग ७.४ १४, ९.१९.१;	
धनलोह-धनलोभ	११.५.७	धरेवि ७.११.१; ८.१० ९; ११.११.११	
धनहृद-धनदत्त (कृपक)	९.३.२	✓ धरत-धृ + शतृ	७ १०.९
धणिय-धनिक, कृषक, स्वामी	७.६.१६	✓ धरंतु-धृ + शतृ	९.१८ १
धणिय-धन्या	२.१६.१	✓ धरंती-धृ + शतृ ी (स्त्रियाम्)	६.१.२
धणु-धनुष	२.५.१, ७.९.१४, १०.१२.३	धरण-धारणः, धारक	३.९.८
धणुतड-धनु + वत्, धनुषवान्	६.७.१४	धरणि-धरणी	१.८.२
धणुदर-धनुधर, कामदेव	३.१०.१४; ८.५.७	धरणिपीठ-धरणिपीठ	१०.२०.११
धणुसय-धनुषशत	३.१.१२	धरणियल-धरणीतल	१.५.१९
धणुदर-धनुधर	६.४.९	धरणौयल-धरणीतल	१.९.८
धण-धन्य	२.१८.२	धरणोरुह-पर्वत	१०.३.९
धणण-धन्य	२.१५.६, ४.१४.१४	धरवीठ-धरा + पीठ	५.१२.३
धणवड-धन्य + वत्, धन्य	२.१४.१३	धराह-धरा + व्वादि	२.१.८
धणिय-धन्या (स्त्री० विशेष०)	७ १२.७	धरायल-धरातल	९.८.५
धम्म-धर्म	२.११.५; ५.९.१५	धरिभ य-धृत	३.६.१४, ८.१४.११; ११.२.२
धम्मकज-धर्मकार्य	२ १९.४	✓ धरिज-धृ (कर्मणो) ङ्	११.५ ४
धम्मचक्र-धर्मचक्र	१.१७.७	धरिस्ति-धरित्री	६.४.११
धम्मण-धम्मन (वृक्ष)	५.८.६	धरियड-धृतः	११.१०.२
धम्मतरु-धर्मतरु	१०.१८.८	धरियकर-धृतकर., 'कर' लेनेवाला	३ ३.१२
धम्मत्य-धर्म + अर्थ(दो पुरुषार्थ)	४.१२.१२; प्रश० ९	धव-धव (वृक्ष)	५.८.६
धम्मदि-धर्म + अदि	१० ३.९	धवल-(तत्सम) श्रेष्ठ वृषभ	७.३.१३, ७.६.१७
धम्मरथण-धर्मरत्न	८.६.६.	धवलचिध-धवलचिह्न, श्वेतपताका	५.११ ११
धम्मलाह-धर्मलाभ	१०.२५.८	धवलहर-धवलगृह, प्रासाद	१ ९.४, १०.१५.१०
धम्मनुद्धि-धर्मवृद्धि	२.१७.१	धवल्लिय-धवल्लित	१ १७.६; १०.१.१०
धम्माणुगल य-धर्मानुगत	५.९.३; ११.१४.११	धवलीकिञ-धवलीकृत	४.१०.३
धम्मायार-धर्माचार	१.६.३	धसक्षिय-धसकृत, भौत	६.१३.७
धम्माहम्म-धर्म + अघर्म	४.४.८	✓ धा-धाव्, ङ् ४.१७.८; धाव्वि	९.१३.५
धनुह-धनुष (उत्सेध प्रमाण)	११.१०.१०	धाड-धावित	९.११.३३
धय-ध्वज	१.१५.७, ६.१०.११; १०.१६.११	धाहभ-धावित	७.११.१२, १०.१०.८
धयग-ध्वज + अग्र	४.२१.१७	धाहयखंड-धातकीलण्ड (द्वीप)	११.११ १०
धयचिध-ध्वज + चिह्न छोटी पताका	६.२.१०	धाड-धावु (वात, पित्त, कफ)	३.११.४
धयमाला-ध्वजमाला	५.२.४.	धाडिय-(३) निस्सारित	१०.१३.९
धयवड-ध्वजपट	७.५.४, ७.५.१६	धणुक्-धानुष्क	६.५.८; ६.७.२
धयाडंवर-ध्वज + आडम्बर	१०.१९ १३	धाणुक्षिय-धानुष्क	९.१३.१३
धवलरोह-धवलग्रह, प्रासाद	४.७.६	✓ धाम-धाव् + हर (ताच्छील्ये)	४.२१.९
धवलहर-धवलगृह	३.६.१२	✓ धाय-धाव्, धायवि	९.१३.५
धर-धरा', धारण करनेवाली स्त्रियाँ	६.२.६	धाय-प्रातकी, धतूरा १०.३ ३, ङ् ५.८.८	
धर-धरा, पृथ्वी	५.१०.२	✓ धार-धारर् धारति (बहुव०)	४.१४.२; धारि-
✓ धर-धृ, ङ् ४.१९ १९, ५.८.३, ङ् हि (त्रिवि०),		ऊण ४.२१.९; ५.७.२५; धारवि ६.३.७	

धाराखंडण-धारा (असिधारा) + खण्डन	१.११.१०	धूय-धूप	११.६.८
धाराहर-धाराहर, मेघ	४.१.६; ९.९.१३	धूलोरभ-धूलिरज	१.७.४
धारि-धारी, धारण करनेवाली	५.१.१५	धूव-धूता, पुत्री	९.७.३, ९.१२.२
धारि-धारी, धारक	१०.१.२.१	धूसर-मुद्ग, मूँग	१८३
धारिणी-धारिणी (रानी)	३.१०.१३	✓ धीव-धोव, धोमा, धोविवि	४.३.२
धारिय-धृत 'उ (स्वार्य)	२.६.१०	[न]	
धारिय-धृत, वारित	८.९.११	वथ-नय	१०.४.७; १०.४.१४
✓ धाव-धाव् 'इ ६.१.१०, ९.८.२; धावहो		नह-नदी	९.१०.१, ११.१.६; ११.११.४
(आज्ञा०) ६.२.७, धावेवि ५.१४.१७		नहमिसिध-नैमित्तिक	२.१.१२
✓ धावत-धाव् + शतृ	६.६.५	नठ-न	२.६.११, ३.४.५; ३.४.९; ७.९.११
✓ धावमाण-धाव् + शानच्	७.६.८	नठरहियं-नठरहय	४.६.९
धाविभ-धावित १.१६.२; ७.९.६; १०.१९.१२		नठळ-(i) नकुल, पाण्डव (ii) नकुल-नेवला (iii)	
✓ धाह-(दे) धाह, पुकार, चिल्लाहट, घाहावह		न + कुल-हीनकुल ५.८.२१; ९.१२.७	
४.१९.२०; १०.११.७		नठळदरि-नकुलदरि	९.१०.१०
घाहाविभ-(दे) घाह, पुकार, चिल्लाहट	३.७.५	✓ नद्वज-नद्वय, नदंति (बहुव०)	८.७.५
घिक्कारिभ-घिक्कृत	३.१४.१६	नदण-नन्दन, पुत्र	४.६.१४, ९.७.३
घिह-घृष्ट	५.७.१७	नदणवण-नन्दनवन (उद्यान)	१०.१९.१५
घिय-घृत	१०.९.२	नदंति-नन्दिनी पुत्री	४.२.१४
धीय-धूता, पुत्री, हि० धी	११.३.५	नदंणी-नन्दिनी (स्त्री० विभे०)	१०.१८.१३
धीरक्षण-धीर्यत्व; धीरता	५.४.३	नदिणभ-नन्दनका; धानन्ददायक	८.१५.१४
✓ धुण-धुन् 'इ	१.९.९	नदिबोस-नन्दीषोष	५.६.१४
धुत्त-धूर्त्त	४.१७.५; ९.१०.२३	नदल-नल	४.२१.२६; ६.१०.६
धुत्ति-धूर्त्ता (स्त्री०)	८.१३.१५	नदलत्त-नदन्न	१.१.१०
धुमधुमिय-धुमधुमित-(ध्वन्या०)	५.६.८	नदलत्तसामि-नदन्नस्वामी, चन्द्रया	५.१.१५
धुमधुमुक-धुमधुमुक् (ध्वन्या०)	५.६.८	नग-नगना (स्त्री० विभे०)	१०.१०.१४
धुय-धुत, कम्पित	४.२२.१७	नगगोह-न्यग्रोष	२.१२.८; ४.१६.५
धुयकंध-धुतस्कन्ध	७.६.२०	नचच-नुत्थ	९.१.४
धुयधय-धुतकनका	२.१६.१०	✓ नचच-धृत् 'इ	३.१.४, ४.३.९; ८.४.१८; १८
धुर-धुरा	७.१.२०, ११.२.३	✓ नचचली-धृत् + शतृ ' (स्त्रियाम्)	३.१.४
धुरधर-धुरधर	१.१.१.८; १०.१५.२	नचचणसाल-नर्त्तनशाला	३.२.६
धुरधर-धुरा + धर, धुरधर	१.४.६	नचचाविय-नर्त्तित	६.१४.१३, ९.१३.१०
धुरि-धुरी	११.११.१२	✓ नचिचज-धृत् (कर्मणि) 'इ	१.५.६; ३.९.९
धुव-धुव	७.६.२९	नचिचय-नर्त्तित	७.९.९
✓ धुव्वत-धृत् + शतृ	५.७.९	✓ नचिचर-धृत् + इर (ताच्छील्ये)	८.१४.१८
✓ धुक्किर-धृत् + 'इर (ताच्छील्ये)	५.२.४, ५.११.	नच्छुच्छय-नृत्योत्सव	९.२.६
११; ७.५.१६		नच्छेन्वभ-नर्त्तन	४.२२.१३
धूस-धूस (अमा, नरकभूमि)	११.१०.७	नच्छेरभ-न आश्चर्यकम्	१०.४.९
धूमावळ-धूमाकुल	७.९.६	✓ नज-न 'इ (आत्मने०)	४.१३.१०; ११.११.९
धूमिर-धूम + इर (ताच्छील्ये)	४.१४.८	नट्ट-नष्ट	७.७.१; ८.३.७
धुमगार-धूम + उर्गा	६.५.१		

नद्विष-नद्या (स्त्री०)	१०.१४.१४	नरव्यायर-नरकाकर	११.१०.४
नह-नट	१०.१४.३	नरव्यथ-नररत्न	४.१.४
√ नहंत-नृत् + षात्	४७.१३	नररुच-नररूप	६.३.७
√ नहंति-नृत् + षात् ि° (स्त्रियाम्)	९.१.५	नरवद्-नरपति	१.१२.६; १.१७.१८
नहवेदह-नटवेडा, नटीका वेड़ा	१०.१४.१	नरवेस-नरवेसा	४.२.४
√ नहाव-नृत् + णिच् ई	५.१३.१७	नरसंकमण-नरसक्रमण	४.९.१०
नह्विज-नटित, ह्वलित	२.१५.४; १०.८.७	नरामर-नर + अमर	२.३.१
नरिय-नास्ति	३.३.१६; ९.४.६	नरालय-नरालय, मनुष्यलोक	११.११.११
नह-नाद	१°१५°६	नराहिड-नराधिप	३.१४.७
नह-नह, गाँठ	१०.१२.७	नराहिवद्-नराधिपति	१.१०.१३; ३.१.३
नह-नह, आच्छादित	२.१८.१६	नरिद-नर + इन्द्र	५.१२.७; ११.७.५
√ नम-नम्, नमसेवि	४५.१	नरिदसंदिणी-नरेन्द्र + स्यन्दनी, राजमार्ग	४.२१.१२
नमसिय-नमस्कृत	१.१२.१०; ३.१०.५	नरेंद-नरेन्द्र	४.१.५
नम्मय-नर्मदा	७.१३.३; ९.५.५	नरेशर-नरेश्वर	१.१६.१४
नम्माडर-नर्मपुर (नगर)	५.९.१२	नळ-नल, सरकडे	१.८.४
नम्मायाड-नर्मदा + तट	९.१९.४	नळ-चरण	७.५.६
नय-नय, ग्याय, नीति	३.५.१३	√ नव-नम् ई	५.१२.२१; वविवि-५.१०.१६;
नय-नय	१०.२२.७	नवेविणु ७ ११.८	
नयञ्जत-नययुक्त	४.१४.१२	नवज-नवक, नवीन	११.८.२
नयण-नयन उल्ल (स्वार्थे)	७.६.१२	नवंग-नव + अङ्ग, अभिनव अङ्ग	१०.१७.१४
नयणजण-नयन + अञ्जन	९.१६.९	नवगवज्ज-नव + ग्रैवेयक (स्वर्ग)	११.१२.२
नयणद्वल-नयनदल	९.१३.१७	नवनिहि- नवनिधि	३.३.१२
नयपवर-नयप्रवर	२.६.३	नवनेह-नवस्नेह	५.९.१४
नयपसल्य-नयप्रशस्त, नीतिकुशल	५.१२.६	नवम-नवम	१.१६.८
नयमग-नयमार्ग	१०.१८.१	नवर-(अप०) केवल,	७.४.६; १०.२६.९
नयर-नगर	१.१०.१३; १.१४.१२	नवल्ल-नव + ल्ल (स्वार्थे) नवीन	१०.१७.२
नयरजण-नागरजन	४.२१.१८	नववस्थ-नववस्त्र	८.१२.५
नयरि-नगरी	४.२.२; ४.७.१२	नववह-नववहू	४.१७.९
नयरी-नगरी	१.५.१; ३.३.६	नवविह-नवविध,	३.९.८; ११.१४.११
नयरीरक्ल-नगरीरक्षक	३.१२.२१	नवसिय-नवीन वस्त्र, उपयाचितक	२.१०.५
नर-नर	९.१९.१७; ११.७.१	नविण-नवीन	९.१.१८
नरध-नरक	११.४.२	नस-मज्जा	६.१४.१२
नरजम्म-नरजन्म	१०.२०.६	नह-नभ	६.६.१
नरजाण-नरयान	१०.१९.९	नह-नल	७.४.१
नरजोभ-नरयोग, मनुष्यसंयोग	१०.१५.४	नहकंति-नल + कान्ति	१.१.४
नरणाह-नरनाथ	४.४.६; ७.१३.५	नहगण-नभ + आङ्गन	६.१३.७; ८.१५.४
नरत्तण-नरत्व	११.१३.५	नहमह-नभगति, गगनगति (विद्याधर)	७.७.४
नरपरमेशर-नरपरमेश्वर, राजा	५.२.२३	नहगिडखंभ-नल + निक्करम्ब, नल्लसमुह	५.१.१७
नरथ-नरक (गति)	४.४.७; ११.९.४	नहमग्गा-नभमार्ग	१.१७.१९
नरथगह-नरकगति	२.२.१	नहमणि-नल्लमणि	५.१२.१२, १०.१६.२

नहयक-नभस्तल	२.१४.१०; ५.६.१६	नाराय-नाराच, वाण	७९४
नहर-नखर, नख	४.१९.१५	नाराहिअ-न + आराधित	११.३९
नहरुक्ख-नमद्युक्ष	८.१४.१२	नाळियर-नाळिकेर	२१८.१०
नहळच्छि-नभलक्ष्मी	८.१५.५	नाळी-कमलनाल	९.२.१०
नाअ-नाग, हस्ति	४.२२.१; ५.१४.७	√ नाव-नसु, नाविनि	८.७.५
नाई-(अप०) इव, हिं नाई	२.१५.२, ४.१९.१३	नावह- (अप०) इव, हि नाई	७.४.१९
नाइय-नावित	५.६.१०	नास-नासा, नाक	३.११.८
नाउ-नाद	२.१३.७	√ नास-नामाय, °ह, २.२०.३; नासति (बहुव०)	-
नाउ-नाम	९.१.११	३.९.१५	-
नाग-नाग (वृक्ष)	४.१६.५	नासडड-नासापुट	५.१३.११
नागर-नागर (देश)	९.१९.५	√ नासंक-न + आ + शङ्क, °इ	५.१३.२०
नाडय-नाटक	५.१.२६; ८.१३.९	नासावंस-नासावधा, नासिका	४.१३.७
नाडिय-नाटित	५.६.१३	नासाहर-नासा + अघर	२.५.१३
नाणचउक्क-ज्ञानचतुष्क	, ३.५.१	नासिय-नाथित	८.४.१२
नाणजोई-ज्ञानज्योति	१.१८.१०	नाह-नाथ	३.३.९; ९.१२.७
नाणट्टिट्ट-ज्ञानदृष्टि	९.१.७	नाहक-फ्लेच्छ	५.८.२१
नाणव्मास-ज्ञान + अभ्यास	१०.२३.४	नाहि-नाभि	७.४.१२
नाणवंत-ज्ञान + मनुप, ज्ञानवन्त	१२.१.४; ९.१.१३, १०.४.५	ना हि-न + हि; न ल्लु, नही°	१०.८.१०
नाणावरण-ज्ञानावरण (कर्म)	१०.२४.३	नाहिसडक-नाभिमण्डल	४.१३.१३, नाही° ८.१६.७;
नामंक्रिय-नाम + अङ्कित	५.२.८	°विच-°विम्ब ८.११.९	
√ नामंत-नामयु + शतृ	५.१४.१०	नाहेय-नाभेय, ष्टपमजिन	३.१.११
नामपथाव-नाम-प्रस्ताव, परिचय	५.१.२०	√ निअ-इश्, निप्वि ६.११.२, ९.१३.४; निएह	
नामिय-नामित	५.१०.१४; ६.५.१०	(विचि०) ३.११.८; नियच्छई (बहुव०)	४.२०.३
नाय-नाग, हस्ति	३.१०.१	निड-निज	४.५.१२
नायप्वि-नागदेवी (ब्राह्मणी)	२.११.२	निड-नीत, ले जाया गया	३.१.१; ९.१०.१०
नायक्क-नायक, नेता	७.३.८	निड-नृप	५.१३.२५, १०.१०.९
नायण-नयन + पण्डि, नेत्रीका	१०.४.९	निडह-निवृत्ति, मोक्ष	११.४.२
नायर-नायर, नागरिक	८.३.५	निडंज-निकुञ्च	२.३.३
नायरजण-नायरजन, नागरिक	३.१२.२०	निडण-निपुण	१.२.८
नायरमिहुण-नागरमियुन	३.१.१९	निटणह-निपुणा: (वेद्यया)	९.१२.१९
नायरपय-नागरप्रजा, नागरिक	३.२.१०	निउरावल-नृप + राजकुल, प्रासाद	५.१.६
नायरिय-नागरिक	५.९.१	निउरंय-निकुरम्ब, समूह	४.६.१
नायवसू-नागवसू (ब्राह्मण कन्या)	२.११.२	निट्टेमिअ-इट्ट	२.१५.७
नायवेळि-नागवेल	१.७.८, ४.२१.२	निप्विमिअ-निदंशित, निर्दिष्ट	७.११.१०
नायाहिट्टिय-नागाविण्डित °उ (स्वार्थे)	८.३.६	√ निट-निम्, निर्दियि	२.१९.९
नारअ °अ-नारकी	११.३.८; ११.१०.११	निट्टा-निन्द्या	१.१.८.३
नारहय-नारकीय	२.२.२	निट्टापसम-निन्द्या + प्रमया	२.२०.५
नारड-नारद	७.११.४	निच-निम्ब वृक्ष	४.२१.२, ५.८.१३
नारग-नारङ्ग, नारङ्गी	४.१६.५		

निधोय-नियोग	२ ६.९	निडुरिय-(वे) तिः + डरित्, व्रस्त	४.२२.१८
निक्कट-निष्कटक	९.३.१५	निडुल-(वे) ललाट	२.१८.१२
√निक्कत-नि + कर्त् ० इ	११.१३ १	निणाभ-निनाद	७.८८
√निक्कद-नि + कर्त् ० इ	११.१४.१२	√निण्णास-निर्नाशय ० मि	२.१८.११;
निक्कप-निष्कम्प + इर (ताच्छौल्ये)	१०.२५.९	निस्त्रासिय-निर्नाशित	४.३.१२; ५.१३.२
निक्कारण-निष्कारण	२.२.३	नित्ति-नीति	६.१४.२३
√निक्कत-नि + क्त् + शतृ ० उ (स्वार्थे)		नित्तिस-निस्त्रास, निर्दय	६.११.८
	३.१३.१४	निह-निद्रा	१०.१३ २
√निक्क-निः + क्षिप् ० इ	९.१३.६	निहा-निद्रा	६.८.३; १०.११.१०
निक्कच-नि + क्षात्र, निक्षत्रिय	७.७.३	निहिट्ट-निदिष्ट	१०.२३.७; प्रश्न० ५
निक्कय-निः + क्षय, अक्षेप	४.८.१३	निहिट्टअ-निदिष्ट	१०.२८
निक्किल-निः + क्रीड्, निष्क्रिय	४ ११.१२	निद्दूषण-निर्दूषण	१.६.३
निग्गअ-निर्गत	१.१४.१२	निद्ध-स्निग्ध	१०.१६.२
निग्गंथ-निर्ग्रन्थ	१० २१.३	निद्धण-निर्घन	९.१२.१७
निग्गम-निर्गम (न)	२.१९.८	√निद्धाड-नि + घाटय् ० इ	३.१२.९
निग्गय-निर्गत	९ १०.१	निद्धाडण-निघाटन, निष्कासन	१०.२०.४
√निग्गह-नि + ग्रह् ० इ	३.९ २; ५ ५.३	निद्दूष-निर्दूष	४ ६.२
निर्घट्ट-निघण्टु	१.३.३	निनह-निनाद	७.२.३; १०.९.१
निघण-निघन वृक्ष	५.८.९	निनाभ-निनाद	४.२१.१; ५.१४.७
निघ-नित्य	३.१४ २०; १०.१७.५	निप्पह-निष्प्रभ	३.११.२
निच्चक-निश्चल	५.४.१८	निप्पहा-निष्प्रभ	४.८ २
निच्चअ-निश्चय	८ ६.११	√निप्पीक-निष्पीडय् ० इ	४.२०.२; ७.४.१२
निच्चइ-न + इच्छति	९.६.११	निष्फंद-निष्पन्द	८.११.१०
निच्चइयउ-निश्चित	२ १३.७	√निर्वंघ-नि + वण् ० इ	११.५ ३
निच्चए-न + इच्छति	९ १७.१२	निर्वंघण-निवन्धन	२.१.१३; २.२.३; ११.८.६
√निक्क-नी ० इ (आत्मने०) ११.२.१; ए (आत्मने०)		निवद्धिअ-निवद्ध + क (स्वार्थे)	११.२.७
३.४.९		निवुद्धिय-निर्वुद्धि + क (स्वार्थे)	१० १० ११
√निजांतु-नी (कर्मणि) + शतृ	६ ७.११, ७.६.६	निवर्मच्छिय-निर्भंतिवत	१० १४.४
√निजर-निः + जृ ० इ	२.२० ८; ११.९.६	निवमर-तिशर	६.९.१०
निजर-निर्जरा	११.९.२	निर्विंसद-निर्वेद्य	१ १२.४
निज्जरिय-निर्जरीण	११.९.८	निदिमण-निदिमन्	६.९.४
√निज्जिण-निः + जि ० इ	४.७ ४	निमिस-निमेष	७.४.१३
निज्जिय-निर्जित	८.८.६	निमुत्त-निमुक्त	६.८.३
निज्जीणअ-निर्जित	७.१ ९	निम्मस-निर्गम	१०.२४.२
निज्जर-निर्जर	५.८.४, ११ २ ५	निम्मयलरि-नर्मदा सरित्	९.५.५
√निज्जा-नि + ध्याय् ० प्रवि	२.१५.१२	निम्मल-निर्मल	५.३ १५; ११.१५.१
निज्जाहउ-निष्यति, वृष्ट	४ ५ १७	निम्मविउ-निर्मिता (स्त्री० बहुव०)	४.१४ १०
निट्ट-निट्टविय, मार डालना	७ ६.२	निर्ममं-निर्माद्य	२.१८.३
√निट्टव-नि + स्थापय् ० इ, वन्त करणा ४.२०.१०		निर्माअ-निर्माया, मायारहित	३ १०.९
निट्टुर-निट्टुर	२ १३.४; ६.६ ११	निर्माणिय-निर्मानित	७.६.१४

निश्चिन्त-निमित्त	११.११.५	नियोगिय-निदानित, निदानभूत	११.९.३
√ निष्कूलभ-निर्मूलय °हि (विधि०)	१०.२०.१३	नियामि-नियामक	८.८.२
√ निय-दृष्ट, °इ २.१२.६; २११६.१२; ९.१२.५;		नियार-(१) कारोक्षित कृत, टेढी नजरसे देखना,	
नियवि २.१६.१२; १०.९.९		(११) निष्कार, अणमाव	४.२.१०
√ नियंतु-दृष्ट + शतृ	३.११.५, ७ ७ ६	नियाहर-निज + अघर	६.१३.५
निय-निज	६ १४ ७; ८.७.५, ९.८.१०	निरंजण-निरञ्जन, निर्मल	२.२०.२; १०.५.१३
नियड-निकट	९ ४.७	निरंतरंतरं-अतिशयेन निरन्तरम्	४.८.१८
नियडदेश-निकटदेश	२ ८.५	निरगल-निरगल, निर्वाध	४.२.१६
नियंत-निज + अन्त्र °इ (बहुव०)	६.८.६	निरस्थ-(१) निरस्त, अपकृत	१.४.८
√ नियंत-दृष्ट + शतृ °ि याष्ट (स्त्रियाम्)	९.२.१	(११) निरर्थं (क)	११.९.१
नियंथ-नितम्ब	९.१२ १०	निरभ-निरभ	४.८ १२
नियंविणि-नितम्बिनी	४.१६.१२.५.१०.१०; १०.	निरवसेल-निरवशेष	९.१४.५
	८.९	निरवहि-निरवधि	२.१.५, ११.५.१०
नियंस-निवसन, वस्त्र	८.१४.५; °ण ८ १५ २	निरवीरमोसारिया-देखें. सं० टिप्पण	११.१५.६
नियगोच-निजगोच, कुल	४.३.९	निरवेकल-निरपेक्ष	४.१७.३, ९.१३.७
नियठाण-निजस्थान	५.१० २३	निरवेकलभ-निरपेक्ष + क (स्वार्थे)	११.१४.८
नियडीहुय-निकटीभूत	८ २ १९	निरामभ-निरामय, नि शेष	२.१.१३
नियणंद्ण-निजनन्दन	३.१४ १६	निरास-निरास १०.२०.११; °वित्ति-वृत्ति १०.२२.४	
√ नियचल-दृष्ट °इ ९.१३.८; °वि ३.५.३, °च्छवि		निरीक्खण-निरीक्षण	८ ११.५
५.४ ७, १०.९.३		निरुत्त-(३) निश्चित	४.१४.२०
नियचिउथ-वृष्ट	२ ३ २	निरुत्त-निरुत्त	५.२.२१
नियत्त-निवृत्त	१ १४.४	√ निरुत्त-निरुत्त °वंति (बहुव०)	१.१८ १२
√ नियत्त-नि + वृत् °हि (विधि०)	५.१२.२५	निरुविभ-निरुपित	१०.४.३
नियत्तण-निवर्तन	२.१२.५	निरोह-निरोध	१०.१७ ३
नियत्तिय-निवृत्त	९.१९.४	निरोहण-निरोधन, निरोधक	११.१४.७
नियथाण-निजस्थान, निजगृह	९.८ ६	√ निरोह-नि + रुष् °वि	९.१३.२
नियदंभव-निजद्रव्य	३.१३.१३	निलभ °व-निलय	३ ९.६, ५.१.३, १०.१५.४;
नियनिय-निज-निज	३ १२.१३		८.७.१५
नियपर-निजपर २ ८.६; °पुर ५.१३.३१, °बुद्धि		निलाड-ललाट	४.१३.४
१०.१४ १६. °भाल, ४ १७.१०, °राउल-		निल्लक-निल्लुप्त, छिप गये	८.१३.६
राजकुल ५.१.६, °हल ९ ४ ४		निलोहिभ-निलोहित	२.१८.१३
नियम-नियम	३.९.५	निल्लउज-निल्लंज	१०.१०.१४
नियमवय-नियम + व्रत	२.१६ १३	निल्लोम-निलोम	५.८ २७
नियमिय-नियमित	१०.२१.८; ११.२२ २	निध-नुप	६.१२.५, १०.१४.२
नियथ-निज + क (स्वार्थे)	५ १२८	निवह-नुपति ५.२ १२, ५.८.१, °वस-संन्य	
नियल-निगड	६.८ ८		१० १९.१४
नियसिय-निवसित, पहने हुए	१.६.२३	निवकुमार-नुपकुमार	१.१६.३, ३ ५.९
नियहिय-निजहित	२.११.१०	निवघर-नुपगृह	८.१४.१९
नियथाणल्लण-निदानक्षण, अवसानसमय	८.१३.१४	√ निवञ्ज-नि + वष् °इ (आत्मने०)	८.१६.५
		निवट्टण-निवत्तित, उलटा	५.२.२१

√ निवड-नि + पत् ^० इ ६.८.८; ८.१४.५, ११.४.२; ^० हि (बहुव०) ८.१५.७; निवडवि ९.५.१३; ^० डि-९.५.१०	निवृत्ति-निवृत्त ९ १३.१८
निवडण-निपतन ५.७.१८	निवृत्त-निवृत्त ९.१०.३
निवडिभ-निपतित १०.१४.१३	निवृत्त-निवृत्त १०.२३.११
निवधान-नृपस्थान, राजकुल ३.२.४	निवृत्त-निवृत्त ५.३.९
निवदंदन-नृपमन्दन ३.९.१४	√ निवृत्त-निवृत्त ^० इ २.१४.२
निवमण-नृपमन ५.६.१७	निवृत्त-निवृत्त ९.३.६
निववाहिणी-नृपवाहिनी, सैन्य ५.१०.११	निवृत्त-निवृत्त ६.४.११; ८.५.१३
निवस-निवास, गृह ३.११.६	निवृत्त-निवृत्त १०.१८.९
√ निवस-निवस ^० इ ३.१४.१९; ५.१३.३२	निवृत्त-निवृत्त १.४.२
निवसंपथ-नृपसम्पदा १० ११.५	निवृत्त-निवृत्त (1) निशा + अन्त ४.८.१
निवसित-निवसित १ १५ ११	निवृत्त-निवृत्त (ii) निशात, राजगृह ७.६.१५
निवसि-नृपश्री ८.४.११	निशा-निशा ९.१६ १२
निवाडिय-निपातित ७ ९.१३	निशागम-निशा + आगम ८.१५.१; ९ ११.६
निवाण-निपाण ३.१२.७.९.९.११	निशाभिभ-नि: + श्रुत ९.४.७
निवायार-नृपाचार, राजनीति ४ ५ ९	निशि-निशि, निशा ३.१४.१२; १०.१४.२; नाव १० १८ ७
निवार-निवारक ७.१०.८	निशि-निशि ५ १४.७, ६ ५ ७
√ निवार-निवारय ^० इ २.१६.२	√ निशुण-नि: + श्रु ^० हि (विधि०) ९.५ ३; निशुणति (बहुव०) ९.३.३; निशुणति ६ १.९; १०.१०.१; निशुणेष्यिण्यु ९.१६.१
निवारिय-निवारित ५.७ १६, ७ ७ १२	√ निशुणि-नि: + श्रुणु (विधि०) सुनो ९ १८ १०
निवासण-निवासण, रहना १०.२२.६	√ निशुणंत-नि + श्रु + शतृ ^० इ (स्वाय०) ४ १.९
निविट्ट-निविट्ट ८ १३.७, ८.१५.११	निशुणिय-नि:श्रुत ७ १.८
निविड-निविड, घना ९ ६.२.६.७ १	निशुणिय-निशुणित ७.२.६
निविडभ-निविड + क (स्वाय०) ८.१६ २	निह-निभ, समान ७ ५ ९
निविस-निमेष ५.११.९	√ निहम्म-नि + हन् ^० इ ५ १३.२२; ७.६ १७
निवेह्य-निवेदित ५.१२ ८, ^० उ (स्वाय०) २ १९ ९	निहय-निहय १.१७.३
√ निवेस-निवेशय ^० इ १.२.११	निहस-निकष, कसौटी ७.४.६
√ निवेसंत-निवेशय + शतृ ७.१४ ११	निहसण-निघर्षण ७.६.३
निवेशिय-निवेशित ४.११ ८, ८.४.१०; ८ ९.१८	निहाण-निधान ५.५.११; १०.८.२
√ निवट्ट-नि + वृत् ^० इ ६ १४.४	√ निहाळ-निहाळय, ^० हि (विधि०) २ १८.१४; ४ १७ ६; ११.६.५
निवट्टिय-निवट्टित ७ १.२०	निहि-निधि ९ ८ १; ९ ८.२३
√ निवड-नि + पत् ^० इ १.१५.१९	निधि-निहित ९.७.१३
√ निवड-नि + पादय ^० इ १० १ ४	निहित-निहित, निक्षिप्त ९.१८.४
निवडिभ-निपतित १ १७ १८	निहित-निहित, पिहित ८.९.१२
निवडिय-निवृत्त, निष्पन्न, सिद्ध ५.१.१२	निहृत्त-निभृत्त + क (स्वाय०) शान्त, मन्द ९ १४ २
√ निववण-नि. + वर्यय ^० मि (विधि०) ५ १३.१५	निहुअणकेलि-निधुवनश्रीड़ा ४ १६ १२
√ निववत्त-नि: + वर्यय ^० मि २ १३ ५	
निववत्तिभ-निवृत्ता (स्त्री० विधी०) ९ १३ ४	

निहुवण-निधुवन, सुरतकीड़ा	९.१३.८
निहेलण-निहेलन, निवासगृह	८.६.२
√ नो-नी, निएवि	६.११.२१
नीह-नीति	९.१२.११
नीइतरंगिणि-नीतितरङ्गिणी	१.१७.७
नीडनिवासि-नीडनिवासी	९.१०.४
नीय-नीत	५.४.२१; ७.७.३
नीर-नीर	२.१९.७, ४.१९.१०
नीरसस्य-(१) नीरसस्य, (११) नीर + सस्य	१.६.५
नील-नील (मणि)	१.७.९
नीलंबर-नील + अम्बर	४.१६.५
नीलिमा-नीलिमा	१.१.१३
नीलीरस-नीलरस, नीलवर्ण	८.१४.२१
नीलुपल-नील + उत्पल	४.१७.८; ५.२.१७
नीसंग-नि सङ्ग १०.२०.१३; °वित्ति-°वृत्ति २.७.२	
नीयंचर-निःसंचार	९.१५.३
नीमड-नि णवड	८.९.१०
√ नीमर-नि + गृ, नीसरियडें(वहुव०)	४.२०.१,
नीमरिचि	९.९.३
√ नीमरंत-नि + गृ + थवृ	६.१०.३
नीमरिअ-निःमृत	६.४.१
नीमरिय-नि.मृता (स्त्री०)	१०.८.२, ११.९.८
नीमरुळ-नि णव्य	२.१९.२
√ नीमस्य-नि णवस्	४.२२.२२
नीगार-नि.गार	१०.१८.१
नीमाम्-नि ण्वाम	४.११.६; ९.२.२
नीमेस्य-नि ण्ये	२.१.७, ५.३.९
√ ने-नी, नेह (विधि०)	५.४.१६
नेडर-नूपुर	५.१.२७; ८.९.११
नेडरग-नूपुरग्व	१.१०.३
नेडरग-नूपुरगप्र	८.११.१५
नेच-नेच	४.८.६
नेभिचंड-नेनिकण्ड (मीर वविषा पुत्र)	प्र० १८
नेमिअ-परिचित, परिमित, निर्मित	७.१.४
नेम-नेय	६.१.५
नेवथ-नेवथ, वथ	५.०.१३
नेमणर-(रे) वथ	५.०.११
नेमिय-नि + मिय, पण्णे हण	५.१०.१५
नेमेय-नि + वग्, नेमेयिणु-निमय	८.१५.१६

नेह-स्नेह, घृतादि द्रव्य	९.१.२
नेह-स्नेह, प्रेम ८.१३.१०; °डिअ-स्नेहसिपत ६.१२.१	
°वड-स्नेहयड १२.५, मड स्नेहमयि १०.९.९	

[प]

पअ-पद (शब्द)	१.२.७
पअ-पद, चरण	५.५.१४
पइ-पति	४.१२.९; १०.१०.१३
√ पइअ-प्रति + अ, प्रतिगा करना °जिवि ४.२.१५	
पइअ-प्रतिज्ञा, हिं पेत्र	२.१३.८, ४.१४.१३
पइट्ट-प्रविष्ट	२.१५.८, ४.५.९
पइट्टउ-प्रविष्ट	८.१५.१६
पइट्टाण-प्रतिष्ठाण, पैठण	९.१९.४
पइण-प्रकीर्ण, विहतीर्ण	५.१०.१९; ७.९.४
√ पइस-प्रविष् °रड + ११.२.५; °रिमि २.६.९;	
पइसड (विधि०)	५.१२.१०; ५.११.४
°सिवि ५.१३.२६, ९.१०.१९, °रिवि ११.८.२; °रिवि ८.१०.९	
√ पइसंत-प्र + विष् + थवृ	११.८.४
√ पइमार-प्र + वेणप् इ	७.११.६५, ६.१३.२;
पइसारिअ-प्रवेणित	५.१.६
√ पइसिअ-प्र + विष् (कर्मणि) °इ	१.३.१०
पइवय-गनियत	२.५.४
पइ-पति, स्वामी	२.१६.७; ४.२१.१५
पइअ-प्रदीप, पतञ्जलिप्रम व्याकरण मगभाष्यपर केयट कृता टीका १.३.२	
पइव-प्रदीप	३.२.३, ४.२.१६
पइवथ-प्रदीपत	८.१६.८
√ पइव-प्र + विष् °इ ६.६.७, १२.१५; १०.४.८, °इ २.१६.६, °रि २.७.११; °रि (गर्भ० डि० पु० मडर०)	
पड-पद, पाद	१.८.७, ५.१६
√ पड-प्र + मग् °रिणड	१.२.८, ५.१३.६
पड-प्र + उअ-प्रोसा	८.१.३, १०.१०.१३
पडमरण-पथरा (गुण)	४.१६.३
पडमरण-पथराण	४.१६.५
पडमविधि-पथराण (विधि० मडर०) ५.१६.२, १०.३.११	
पडमालरविअ-पथराण (विधि०) + मडर० १.२.१३	
पड-मीर (गुण) ६.१६.१, १.२.१, १.३, १.४, १.५, १.६, १.७, १.८, १.९, १.१०, १.११, १.१२, १.१३, १.१४, १.१५, १.१६, १.१७, १.१८, १.१९, १.२०, १.२१, १.२२, १.२३, १.२४, १.२५, १.२६, १.२७, १.२८, १.२९, १.३०, १.३१, १.३२, १.३३, १.३४, १.३५, १.३६, १.३७, १.३८, १.३९, १.४०, १.४१, १.४२, १.४३, १.४४, १.४५, १.४६, १.४७, १.४८, १.४९, १.५०, १.५१, १.५२, १.५३, १.५४, १.५५, १.५६, १.५७, १.५८, १.५९, १.६०, १.६१, १.६२, १.६३, १.६४, १.६५, १.६६, १.६७, १.६८, १.६९, १.७०, १.७१, १.७२, १.७३, १.७४, १.७५, १.७६, १.७७, १.७८, १.७९, १.८०, १.८१, १.८२, १.८३, १.८४, १.८५, १.८६, १.८७, १.८८, १.८९, १.९०, १.९१, १.९२, १.९३, १.९४, १.९५, १.९६, १.९७, १.९८, १.९९, २.००, २.०१, २.०२, २.०३, २.०४, २.०५, २.०६, २.०७, २.०८, २.०९, २.१०, २.११, २.१२, २.१३, २.१४, २.१५, २.१६, २.१७, २.१८, २.१९, २.२०, २.२१, २.२२, २.२३, २.२४, २.२५, २.२६, २.२७, २.२८, २.२९, २.३०, २.३१, २.३२, २.३३, २.३४, २.३५, २.३६, २.३७, २.३८, २.३९, २.४०, २.४१, २.४२, २.४३, २.४४, २.४५, २.४६, २.४७, २.४८, २.४९, २.५०, २.५१, २.५२, २.५३, २.५४, २.५५, २.५६, २.५७, २.५८, २.५९, २.६०, २.६१, २.६२, २.६३, २.६४, २.६५, २.६६, २.६७, २.६८, २.६९, २.७०, २.७१, २.७२, २.७३, २.७४, २.७५, २.७६, २.७७, २.७८, २.७९, २.८०, २.८१, २.८२, २.८३, २.८४, २.८५, २.८६, २.८७, २.८८, २.८९, २.९०, २.९१, २.९२, २.९३, २.९४, २.९५, २.९६, २.९७, २.९८, २.९९, ३.००, ३.०१, ३.०२, ३.०३, ३.०४, ३.०५, ३.०६, ३.०७, ३.०८, ३.०९, ३.१०, ३.११, ३.१२, ३.१३, ३.१४, ३.१५, ३.१६, ३.१७, ३.१८, ३.१९, ३.२०, ३.२१, ३.२२, ३.२३, ३.२४, ३.२५, ३.२६, ३.२७, ३.२८, ३.२९, ३.३०, ३.३१, ३.३२, ३.३३, ३.३४, ३.३५, ३.३६, ३.३७, ३.३८, ३.३९, ३.४०, ३.४१, ३.४२, ३.४३, ३.४४, ३.४५, ३.४६, ३.४७, ३.४८, ३.४९, ३.५०, ३.५१, ३.५२, ३.५३, ३.५४, ३.५५, ३.५६, ३.५७, ३.५८, ३.५९, ३.६०, ३.६१, ३.६२, ३.६३, ३.६४, ३.६५, ३.६६, ३.६७, ३.६८, ३.६९, ३.७०, ३.७१, ३.७२, ३.७३, ३.७४, ३.७५, ३.७६, ३.७७, ३.७८, ३.७९, ३.८०, ३.८१, ३.८२, ३.८३, ३.८४, ३.८५, ३.८६, ३.८७, ३.८८, ३.८९, ३.९०, ३.९१, ३.९२, ३.९३, ३.९४, ३.९५, ३.९६, ३.९७, ३.९८, ३.९९, ४.००, ४.०१, ४.०२, ४.०३, ४.०४, ४.०५, ४.०६, ४.०७, ४.०८, ४.०९, ४.१०, ४.११, ४.१२, ४.१३, ४.१४, ४.१५, ४.१६, ४.१७, ४.१८, ४.१९, ४.२०, ४.२१, ४.२२, ४.२३, ४.२४, ४.२५, ४.२६, ४.२७, ४.२८, ४.२९, ४.३०, ४.३१, ४.३२, ४.३३, ४.३४, ४.३५, ४.३६, ४.३७, ४.३८, ४.३९, ४.४०, ४.४१, ४.४२, ४.४३, ४.४४, ४.४५, ४.४६, ४.४७, ४.४८, ४.४९, ४.५०, ४.५१, ४.५२, ४.५३, ४.५४, ४.५५, ४.५६, ४.५७, ४.५८, ४.५९, ४.६०, ४.६१, ४.६२, ४.६३, ४.६४, ४.६५, ४.६६, ४.६७, ४.६८, ४.६९, ४.७०, ४.७१, ४.७२, ४.७३, ४.७४, ४.७५, ४.७६, ४.७७, ४.७८, ४.७९, ४.८०, ४.८१, ४.८२, ४.८३, ४.८४, ४.८५, ४.८६, ४.८७, ४.८८, ४.८९, ४.९०, ४.९१, ४.९२, ४.९३, ४.९४, ४.९५, ४.९६, ४.९७, ४.९८, ४.९९, ५.००, ५.०१, ५.०२, ५.०३, ५.०४, ५.०५, ५.०६, ५.०७, ५.०८, ५.०९, ५.१०, ५.११, ५.१२, ५.१३, ५.१४, ५.१५, ५.१६, ५.१७, ५.१८, ५.१९, ५.२०, ५.२१, ५.२२, ५.२३, ५.२४, ५.२५, ५.२६, ५.२७, ५.२८, ५.२९, ५.३०, ५.३१, ५.३२, ५.३३, ५.३४, ५.३५, ५.३६, ५.३७, ५.३८, ५.३९, ५.४०, ५.४१, ५.४२, ५.४३, ५.४४, ५.४५, ५.४६, ५.४७, ५.४८, ५.४९, ५.५०, ५.५१, ५.५२, ५.५३, ५.५४, ५.५५, ५.५६, ५.५७, ५.५८, ५.५९, ५.६०, ५.६१, ५.६२, ५.६३, ५.६४, ५.६५, ५.६६, ५.६७, ५.६८, ५.६९, ५.७०, ५.७१, ५.७२, ५.७३, ५.७४, ५.७५, ५.७६, ५.७७, ५.७८, ५.७९, ५.८०, ५.८१, ५.८२, ५.८३, ५.८४, ५.८५, ५.८६, ५.८७, ५.८८, ५.८९, ५.९०, ५.९१, ५.९२, ५.९३, ५.९४, ५.९५, ५.९६, ५.९७, ५.९८, ५.९९, ६.००, ६.०१, ६.०२, ६.०३, ६.०४, ६.०५, ६.०६, ६.०७, ६.०८, ६.०९, ६.१०, ६.११, ६.१२, ६.१३, ६.१४, ६.१५, ६.१६, ६.१७, ६.१८, ६.१९, ६.२०, ६.२१, ६.२२, ६.२३, ६.२४, ६.२५, ६.२६, ६.२७, ६.२८, ६.२९, ६.३०, ६.३१, ६.३२, ६.३३, ६.३४, ६.३५, ६.३६, ६.३७, ६.३८, ६.३९, ६.४०, ६.४१, ६.४२, ६.४३, ६.४४, ६.४५, ६.४६, ६.४७, ६.४८, ६.४९, ६.५०, ६.५१, ६.५२, ६.५३, ६.५४, ६.५५, ६.५६, ६.५७, ६.५८, ६.५९, ६.६०, ६.६१, ६.६२, ६.६३, ६.६४, ६.६५, ६.६६, ६.६७, ६.६८, ६.६९, ६.७०, ६.७१, ६.७२, ६.७३, ६.७४, ६.७५, ६.७६, ६.७७, ६.७८, ६.७९, ६.८०, ६.८१, ६.८२, ६.८३, ६.८४, ६.८५, ६.८६, ६.८७, ६.८८, ६.८९, ६.९०, ६.९१, ६.९२, ६.९३, ६.९४, ६.९५, ६.९६, ६.९७, ६.९८, ६.९९, ७.००, ७.०१, ७.०२, ७.०३, ७.०४, ७.०५, ७.०६, ७.०७, ७.०८, ७.०९, ७.१०, ७.११, ७.१२, ७.१३, ७.१४, ७.१५, ७.१६, ७.१७, ७.१८, ७.१९, ७.२०, ७.२१, ७.२२, ७.२३, ७.२४, ७.२५, ७.२६, ७.२७, ७.२८, ७.२९, ७.३०, ७.३१, ७.३२, ७.३३, ७.३४, ७.३५, ७.३६, ७.३७, ७.३८, ७.३९, ७.४०, ७.४१, ७.४२, ७.४३, ७.४४, ७.४५, ७.४६, ७.४७, ७.४८, ७.४९, ७.५०, ७.५१, ७.५२, ७.५३, ७.५४, ७.५५, ७.५६, ७.५७, ७.५८, ७.५९, ७.६०, ७.६१, ७.६२, ७.६३, ७.६४, ७.६५, ७.६६, ७.६७, ७.६८, ७.६९, ७.७०, ७.७१, ७.७२, ७.७३, ७.७४, ७.७५, ७.७६, ७.७७, ७.७८, ७.७९, ७.८०, ७.८१, ७.८२, ७.८३, ७.८४, ७.८५, ७.८६, ७.८७, ७.८८, ७.८९, ७.९०, ७.९१, ७.९२, ७.९३, ७.९४, ७.९५, ७.९६, ७.९७, ७.९८, ७.९९, ८.००, ८.०१, ८.०२, ८.०३, ८.०४, ८.०५, ८.०६, ८.०७, ८.०८, ८.०९, ८.१०, ८.११, ८.१२, ८.१३, ८.१४, ८.१५, ८.१६, ८.१७, ८.१८, ८.१९, ८.२०, ८.२१, ८.२२, ८.२३, ८.२४, ८.२५, ८.२६, ८.२७, ८.२८, ८.२९, ८.३०, ८.३१, ८.३२, ८.३३, ८.३४, ८.३५, ८.३६, ८.३७, ८.३८, ८.३९, ८.४०, ८.४१, ८.४२, ८.४३, ८.४४, ८.४५, ८.४६, ८.४७, ८.४८, ८.४९, ८.५०, ८.५१, ८.५२, ८.५३, ८.५४, ८.५५, ८.५६, ८.५७, ८.५८, ८.५९, ८.६०, ८.६१, ८.६२, ८.६३, ८.६४, ८.६५, ८.६६, ८.६७, ८.६८, ८.६९, ८.७०, ८.७१, ८.७२, ८.७३, ८.७४, ८.७५, ८.७६, ८.७७, ८.७८, ८.७९, ८.८०, ८.८१, ८.८२, ८.८३, ८.८४, ८.८५, ८.८६, ८.८७, ८.८८, ८.८९, ८.९०, ८.९१, ८.९२, ८.९३, ८.९४, ८.९५, ८.९६, ८.९७, ८.९८, ८.९९, ९.००, ९.०१, ९.०२, ९.०३, ९.०४, ९.०५, ९.०६, ९.०७, ९.०८, ९.०९, ९.१०, ९.११, ९.१२, ९.१३, ९.१४, ९.१५, ९.१६, ९.१७, ९.१८, ९.१९, ९.२०, ९.२१, ९.२२, ९.२३, ९.२४, ९.२५, ९.२६, ९.२७, ९.२८, ९.२९, ९.३०, ९.३१, ९.३२, ९.३३, ९.३४, ९.३५, ९.३६, ९.३७, ९.३८, ९.३९, ९.४०, ९.४१, ९.४२, ९.४३, ९.४४, ९.४५, ९.४६, ९.४७, ९.४८, ९.४९, ९.५०, ९.५१, ९.५२, ९.५३, ९.५४, ९.५५, ९.५६, ९.५७, ९.५८, ९.५९, ९.६०, ९.६१, ९.६२, ९.६३, ९.६४, ९.६५, ९.६६, ९.६७, ९.६८, ९.६९, ९.७०, ९.७१, ९.७२, ९.७३, ९.७४, ९.७५, ९.७६, ९.७७, ९.७८, ९.७९, ९.८०, ९.८१, ९.८२, ९.८३, ९.८४, ९.८५, ९.८६, ९.८७, ९.८८, ९.८९, ९.९०, ९.९१, ९.९२, ९.९३, ९.९४, ९.९५, ९.९६, ९.९७, ९.९८, ९.९९, १०.००, १०.०१, १०.०२, १०.०३, १०.०४, १०.०५, १०.०६, १०.०७, १०.०८, १०.०९, १०.१०, १०.११, १०.१२, १०.१३, १०.१४, १०.१५, १०.१६, १०.१७, १०.१८, १०.१९, १०.२०, १०.२१, १०.२२, १०.२३, १०.२४, १०.२५, १०.२६, १०.२७, १०.२८, १०.२९, १०.३०, १०.३१, १०.३२, १०.३३, १०.३४, १०.३५, १०.३६, १०.३७, १०.३८, १०.३९, १०.४०, १०.४१, १०.४२, १०.४३, १०.४४, १०.४५, १०.४६, १०.४७, १०.४८, १०.४९, १०.५०, १०.५१, १०.५२, १०.५३, १०.५४, १०.५५, १०.५६, १०.५७, १०.५८, १०.५९, १०.६०, १०.६१, १०.६२, १०.६३, १०.६४, १०.६५, १०.६६, १०.६७, १०.६८	

पठसिय-प्रवासित	३.११.१४	पक्क-पक्क	४.२१.३, ९.४.९; उ ११.१.९
पट्ट-प्रदेश	२.१२.११, ५.५.१७	पक्क-पक्क, हिं० पक्कवाडा	४.१०.७, ६.२.३
पञ्जोहर-पयोधर (१) स्तन (११) मेघ °हरिया (स्त्री०-विशे०) ४ ७.९; °हरीय (स्त्री० विशे०) ९ ९.७		पक्कालिय-प्रखालित	६.९.११
पंकभ °य-पङ्कज, कमल ४.२१.५; ५.१३ ४, °दल ४.१३.१७; °सर ८ १४.१७		पक्किल-पक्की	९.१०.४, ११.१३.५
पंकष्यह-पङ्कषमा (नरक भूमि)	११ १० ७	पक्किलराय-पक्किलराज	५.५.९
पंकयसिरि-पङ्कजश्री, पक्कश्री (श्रीच्छिकग्या)	९.२.३	पक्कि-पक्कि	४.२.१५
पंकिल-पङ्क + इल, पङ्कयुक्त	४.७.७	पक्किव-पक्कि + एव	२.१३.७
पंगण-प्राङ्गण	९.१५.९; १०.१९.१	पक्क-पक्क	१.१३.६
पंगुरिय-प्रावृत	९.१८.५	पक्कअ-प्रत्यय	२.१३.८
पंचंग-पञ्च + अङ्ग	४ १५ २	पक्ककल-प्रत्यय	२.११.५, ९ २.११
पंचस-पञ्चत्व, मृत्यु	९.३.५	√ पञ्चार्यत-उपा + लम् + शतृ	६ ६.४
पंचमगह-पञ्चमगति, मोक्ष	११ १५.९	पञ्चारिअ-उपाळव्य, आहूत	७.६ ३२.
पंचमुह-पञ्चमुख (सिंह)	५.१४.७	पञ्चुज्जांनियअ-प्रति + उत् + जीवित-पुनरुज्जीवित	७.४.१८
पंचवाण-पञ्चवाण, कामदेव	४.१५.४	पञ्चुत्तर-प्रति + उत्तर	१०.१०.४
पंचवीस-पञ्चविंशति, पञ्चवीस	११.१० ५	√ पञ्चुक्किअ-प्रति + उत् + सिफ्ट् °फिडेवि ९.२.५	
पंचसय-पञ्चशत	७.१३.१	पञ्चम-प्रत्ययः	४.७.२१
पंचाण-पञ्चानन, सिंह	५.८ १४	पञ्चेच्छिअ--(अप०) प्रत्युत	२.४.४, ३.१४.२०
पचाणणालोय-सिंहावलोकन, देखें. सं० टिप्पण	५.१४.२२	पञ्च-पुष्ट	१०.१५.१
पंचपयार-पञ्चप्रकार	११.१२.९	पञ्च-पञ्चात्	४.३.१३
पंचिदिय-पञ्चेन्द्रिय	११.१३.४	पञ्चअ-पञ्चात्	९.१३.६; १०.१५.३
पंचिदिय-पञ्चेन्द्रिय	१०.२२.५	पञ्चइ-पञ्चात्	५ १३.१८
पंजर-पंजर, पिण्डा	८ ८.७	पञ्चइय-पञ्चदित	१०.१६.११
पंजलअ-प्राञ्जल + क (स्वायें), शुद्ध	११.७.१०	पञ्चल-पुष्टमाग, नितम्ब	९.१.१२
पंडवणाह-पाण्डवनाथ, मुषिण्डिर	१.६.३	पञ्चा-पञ्चात्	९.१.१५
पडि-पाण्ड्य (देश)	९.१९.३	पञ्चाइय-पञ्चदित	८ १६.३
पंडिअ-पण्डित	प्रश० २१	पञ्चासुह-पञ्चात् + मुख	९.३.१०
पडियमरण-पण्डितमरण	२.२० ९	पञ्चाहर-पञ्चात् + गृह, पीछिका घर	१० १७.१
पंडीपहारंत-पाण्ड्यदेशोद्भव	४.८.६	पञ्चिम-पञ्चिम, अन्तिम	२.३.६; प्रश० १६
पंडुरंग-पाण्डुर + अङ्ग, पाण्डुर शरीर	१०.१७ ६	पञ्जंत-पर्यन्त	१०.३.१
पंडुरिअ-पाण्डुरित	१० १०.१०	पञ्जलिय-प्रण्वलित °उ (स्वायें)	१.११.६
√ पंडुरिज्जंत-प.ण्डुर + कृ (कर्मणि) + शतृ १.१.३		पञ्जरिय-पञ्जरित	३.३.८; ७.६.६
पंडुरिय-पाण्डुरित	१०.९.२	पडण-पत्तन	५ ३.८, ५.९.१
पंति-पण्डित	४ १८ २, ९.१४.१	पट्टहस्थि-पट्टहस्ति	४.२०.७
पंथ-पथ	५.२.११	पट्टिवाहर-प्रति + व्याहर, प्रत्युत्तर	४.२१.१२
पंथसमिय-पथश्रमिंत, पथश्रान्त	९.१८.९	पट्टोल-वस्त्रविशेष	४.८.६
पथिय-पथिक,	३.१२.६	√ पट्टव-प्र + स्यापय् °वेवि	८.१६.२
		पट्टविअ-प्रेषित, हिं० पठाया हृथा	५.१२.७
		पट्ट-पट्ट	९.१८.२

पडिय-पठित	४.९.५	पडिमकड-प्रतिमकट, शत्रुवानर	९.७.२
√ पड-पत् °इ १०.१७.२०; °उ (विधि०) २.८.७;		पडिमयगळ-प्रतिमदगळ, शत्रुहस्ति	४.२०.७
पडति (बहुव०) ७.८.१०; पडेऊण १०.२६.८;		पडिमा-प्रतिमा	प्रश्न० ७
पडेविणु ९.११.५		पडिमिलिउ-प्रतिमिलित	४ २२ २४
√ पडंत-पत् + शतृ	१.१८.८, ९.७.१६	पडिय-पतित	५.१० ९; ७.८.७
पडमावड-पद्यावती (श्रेष्ठिपत्नी)	४.१२.२	पडियार-प्रतिकार, खड्गकोप, म्यान	७.८.२
पडह-पटह वाद्य	७.३.१, १०.१९.२	पडिरक्खिय-प्रतिरक्षित	५ ३ १५
पडावेड-पट + आवेट्ट(न), वस्त्रवेष्टन, चादर	४.५.१६	पडिरडिय-प्रतिरटित (ध्वन्या०)	५ ६.७
पडिअ-पतित	७.१.१३, ९.६.२; ९.१४.११	पडिळग-प्रतिळग	१.१.५, ७.६.५
पडिंद-प्रति + इन्द्र	३.१०.५; १०.२४.१०	√ पडिळगंत-प्रति + लण् + शतृ	८.५.९
√ पडिकह-प्रति + कथय् °इ	१०.७.५	पडिवकख-प्रतिपक्ष	८४ ६
पडिकेसव-प्रतिकेशव (जैन पौरा० पुरुष)	४.४.४	√ पडिवज्ज-प्रतिपादय् °ज्जवि	९.४ ६
√ पडिखळ-प्रति + खल्व् °इ	५ ५.१	पडिवज्जिअ-प्रतिपादित	३ ९.६
पडिखुहिय-प्रतिशुभित, प्रतिशुभ	७ ५.११	पडिवणिणय-प्रतिपन्न	४.१२.८
पडिगय-प्रतिगज, शत्रुहस्ति	६.६.५	पडिसद-प्रतिशब्द	१.१७.३
पडिगाहिय °य-प्रतिगृहीत	४.१७.२०; ५.१० २१;	पडिहर-प्रतिभार	७.६.२५
	७ ७.३	√ पडिहर-प्रति + आ °इ	२.१५.१, १० १६ ७
√ पडिच्छ-प्रति + इच्छ् °इ	६.६ ५	पडिहार-प्रतिहार	५.१२.६
पडिच्छिय-प्रतीच्छित	१०.२१.१; °यउ ३.९.११	पडिहारय-प्रतिहार + क (स्वायें)	५.१.१८
पडिछंद-प्रतिच्छन्द, प्रतिरूप	२.१८.१४	पडिहासिय-प्रतिभाषित	३.१४.११
पडिछिच्च-प्रति + क्षिप्त, प्रतिबिम्बित	५.१.१५	पड-पट्ट	९.१३.९, १०.१९.२
√ पडिजंय-प्रति + जल्प् °इ	९.१६.१	पडुपडह-पट्टपटह वाद्य	४.८.३; ५.६.७
पडिणय-पतित	५.५.१४	पडुळ-पाटल पुष्प	८.१६.४
पडितुळ-प्रतितुल्य	११.१.१	√ पड-पट् °इ	८.१६ ११, १०.८.९
पडितुळअ-प्रतितुल्य + क (स्वायें)	४.१३.१७	√ पडत-पट् + शतृ	१०.१.१३
पडिपट्ट-प्रतिपट्ट, वस्त्र विशेष	४.८.६	पडम-प्रथम	५ १३.१९, ११.१०.४
पडिपुच्छिय-प्रतिपुच्छित	१०.१.५	पडमकळत-प्रथमकलत्र	प्रश्न० १७
√ पडिप्फुर-प्रति + स्फुर °इ	१.५.२१	√ पडमाण-पट् + शानच्	५.१ २७
√ पडिफुर-प्रति + स्फुर् °इ	७.१.३	पडयुद्धिय-प्रथम + उल्लियत	६ ६ २
पडिवघण-प्रतिवन्धन	११.८.४	√ पडिउं-पट् + तुमुन्	८ २ ९
पडिविंअ-प्रतिबिम्ब	२.१५.१, ९.१२.१०	√ पडिउज्ज-पट् (कर्मणि) °इ	४ १० २
पडिविंअिय-प्रतिबिम्बित	४.१७.१२	पण अंय-प्रणय	७.११.१६; ८.११.१३
पडिबुद्ध-प्रतिबुद्ध, जाग्रत	४.६.६	पणहणि-प्रणयिनी	८.११.१३
पडिवोह-प्रतिबोध	१०.१८.१	√ पणख-प्र + खत्त् °इ	४ १.१४
पडिमअ-प्रतिभय	९.४.६	पणखिय-प्रनतित	१. सं०८
पडिमउ-प्रतिमट, शत्रुयोद्धा	१०.१.१२	पणट्ट-प्रनट्ट	४.२१.१७; १० ९.८
पडिमग्ग-प्रतिमग्ग	४.२२.२	पणमण-प्रनमन, प्रणाम	५.१ १६; ६ १.३
√ पडिमण-प्रति + मण् °इ	१.५.६; ५.४.१६	पणमिथ-प्रणमित	९.१८.७
पडिमरिअ-प्रतिभृत	५.७.१५	पणयकुद्ध-प्रणयकुद्ध	४.१७.५

पणयारूढ-प्रणयारूढ	९.१२६	पमाभ-प्रमाद, कष्ट	११.१३५
√ पणव-प्र + नम् ई, पणविवि १२.१, पणवेवि ३ ५.५, पणवेविपु ८.१.११		पमाड-प्रमाद	२.८.१०
पणमिअंय-प्रणमित ३ ६.९, ७.१३ १७, १.१७ ८		पमाण-प्रमाण, संख्या	२.५.१०, ५ १४.११
√ पणविज्ज-प्र + नम् (कर्मणि) ई २.१०.१		पमाणिय-प्रमाणित, कथित	११.१२-९
पणाम-प्रणाम	५.१.१९	पमाय-प्रमाद-दोष	२.८.११
पण-पण, पत्ते	५ ८.२२; ११.१.८	पमुक्त-प्रमुक्त	४.२१.११
पणगतिय-पन्नगस्त्रिय; नागनियाँ	१०.१७.११	पमुह-प्रमुख	४.८.१०; ८.८.१९
पणसाळ-पर्णशाला	५.११.२	पमेय-प्रमेय	१०.३.१०
पणारह-पञ्चदश, पन्द्रह	११.१०.६	√ पमेळ-प्र + मुच् ल्लेवि	१०.९४
पणारहखेत्-पञ्चदशक्षेत्र	११.२.४	पमेळ्ळिअ-प्रमुक्त	७.११.२
पत्त-पात्र, वाहन	१.१६१	पम्मुळ-प्रमुक्त	१०.२६.२
पत्त-पदाति	४ २१.१६	पय-जल	१.१३
पत्त-प्राप्त	२.८.२, ६.११.१; ९ ८.११	पय-पद, चरण	१.२.१; ६.५.२
पत्त-पात्र, भाजन	१०.२०.१०, ११ १४.५	पय-(i) जल (ii) दुग्ध	४.७.९
पत्तड-प्राप्त + वत्, प्राप्त	८.१४.३, १० १९ १५	पयह-प्रकृति	५.१३.३३
पत्तळ-(डे) पत्तली	२.१५३	पयंग-पतङ्ग	५.१४.२५
पत्ति-पदाति	४ २१.१५, ७.६.१	पयड-प्रचण्ड	१०.९.२
पत्ति-पत्नी	१०.१३७	√ पयंप-प्र + जल्प ई २ १.३; ६ ७.११; पयपति (बहुवचं) १०.२६.६;	
पत्तित्राल-तलवार	९.१२.३	पयपिअ-प्रजल्पित	५ ४.२०
पत्थ-(i) पार्थ-अर्जुन (ii) प्रत्य एक माप	८.३.९	पयकमळ-पदकमळ	१०.१६२
पत्थाण-प्रस्थान	८.२.१	पयखलण-पद (पाठ) स्खलन; (ii) पद-व्यवसाय (या मार्ग) स्खलन	८.४.११
पत्थार-प्रस्तार, विस्तार,	४.९.२	पयग्ग-प्रयाग	९.१९.१५
पत्थाव-प्रस्ताव	५.१२०	पयचप्पण-पद + आक्रमण, पदाघात	५.७.१३
पत्थिव-पार्थिव, राजा	६.१२.१	पयछिअ-पदछिन्न, पदनिर्धारित	९.१.४
पत्थिण-प्रवत्त	१० २०-११	पयज्ज-प्रतिज्ञा, हिं पैज	४.२ १४
पद्दुधियावंध-पद्दुधियाच्छन्द	१.४.३	√ पयट्ट-प्र + वत् ई ५.३.५; ७.३.१, ११ ६ ४	
पद्दा-स्वर्दा	१.११.१३	पयट्टिया-प्रतिष्ठिता (स्त्री०)	प्रश्न० ८
पद्दाह्य-प्रधावित	७.१३.३	√ पयडअ-प्रकटय ई ८.२.१०; ८.१६६; ०मि १०.६.१; डेवि ७ १६	
पद्दय-पद्मय	५ ८.२२	√ पयडंत-प्रकटय + श्रुत	६.४१
पद्दुधिय-प्रफुल्लित	४.६.४	पयडवन्ध-प्राकृतवन्ध	१ २.१४
पदंध-प्रदन्ध	१.४.१०; १ ५.१४	पयडिस य-प्रकटित	२.९.८; ८ ७ १४
पदळ-प्रदल	६.५.११	पयडोकय-प्रकटीकृत	३ १२.२०
पदोद-प्रबोध	४.५.२	पयणंछवी-पचन + छवि	३.३ ७
पदमार-प्राग्भार	४.१३२	पयणंवर-पगनुपुर	३.८ ३
√ पभण-प्र + भण् ई २.१०.७; ४.१४ १९; ५.१३.२४		पयदलिय-पददलित	६.८ ११
पभास-प्रभास (तीर्थ)	९.१९.४	पयपूरण-पदपूरण	२.१५.१९

पयवध-पदवन्ध (i) (सप्त) पदवन्ध, सप्तपदी	परलोअ ^थ -परलोक	२.१८.१६, १० ३.६
(ii) पदवन्ध-पदरचना १ ३.५	परवचण-परवञ्चन; परवञ्चक	९ १२.१४
पयभर-पदभार ५.१२.३	परवस-परवश, पराधीन	५.९.१७
पयर-प्रकर, समूह ४.१६.६, ८.१३.१४	परवस-परवण	२.१४.२
पयरण-प्रकरण २.१०.४	परस-स्पर्श	२ २० ७
पयलग-पादलग्न २.५ ६; उ ^० (स्वार्थे) ८.११.१५	परसंकप-परसंकल्प	१० २३ ६
पया-प्रजा ४.५.९; ८.८ ८	परसु-परशु, कुल्हाडा	८.१०.५
पयाड-प्रताप ३.६.८, ५.११.१७	पराइय-परागत	८ ९.२
पयाण-प्रयाण ५.५.१७	√परिञ्जि-परा + जि ^० ऊण	७ ३ ६
पयाणभ-प्रयाण + क (स्वार्थे) ७.१३.१४	परायठ-परागत	२.१५ ६, ४.१८ ८
पयार-प्रकार २.६.५	पराइठ-पराभव	५.७ २७
पयाव-प्रताप ५.१.१६, ५.५ ८	√परिवंछ-परि + प्रोञ्छ ^० छिवि	१.२.८
पयावइ-प्रजापति ४.१४.१०	√परिधोस-परि + तोपयु ^० इ	२.१५.१०
पयावबोसणा-प्रतापबोसणा १.११.१२	√परिकमंत-परि + क्रम् + शतृ	१० २४.७
पयावहुयास-प्रतापहुताग (न), प्रतापानि १ ११.४	√परिकलन-परि + कल्यु ^० ल्लिवि	४.२२.१४
√पयासि-प्रकाशयु ^० इ ८.१६ ७, ^० मि ९.१६ ५	परिकलिअ ^थ -परिकलित	१.३.२; ६ ६ ३
पयाहिण-प्रदक्षिणा १.१६ ४; १ १७.८	√परिकल-परि + ईक् ^० हि (विधि०)	१ २ ३,
पर-परम ११.१४.५	६.७७, परिकिल्लकण ९ १.१	
परइ-परतः, परे, हूर ९ ३.११, प्र १०.५.१, ए ^० १.२.५, १.१५.११	√परिकलक-परि + स्तल् ^० इ	४ १७.२३
परंयर-परम्परा ४.९.१०	√परिगल-परि + गल् ^० उ (विधि०)	१०.२५.७
परकयत्थ-पर (म) + कृतार्थ २ ८.१, ४.१.१०	√परिगलिअ-परिगलित ^० प	२ १८ ४
परकुब्धि-पर (म) + कुब्धि १०.१०.१२	परिगह-परिग्रह	२.७.१, ५ १ २२
परकेवल-पर (म) + केवल, विलकुल अकेले-अकेले ३.१३.१०	परिगह-परिग्रह, सैन्य	६.१ १४
परवर-परगृह ३ ९.१४	परिशुद्ध-परिशुद्ध	१.१५ १०
परतठ-पर (म) + तप ८.१०.१५	√परिचअ ^थ -परि + त्यञ् ^० इ	१०.४.१४
परतक-पर (म) + तर्क १.३.३	^० चण्वि ५ ४.३	
परवण-पर (म) + घन्य ४.२२.२६	परिचइयठ-परित्यक्त	६ ८ १९
परपञ्चल-परप्रत्यक्ष १०.२२.१२	परिचत-परित्यक्त	९ १२ ८, ११.१३ ८
परमगुह-पञ्च परमेष्ठि १.१.१५	परिचअ-परिचय	८.२ १४
परमत्व-परमार्थ ४.६.१०; १० १२ ८	√परिचक-परि + चलयु ^० इ	४ १७ २३, ^० वि
परमपर-परमपर, परमात्मा २.२०.२	४ १७ ११	
परमप्यअ ^थ -परमात्मा ४.४.१०, ११.४.८	परिठिअ ^थ -परिस्थित १.१२ ८, ५.८.३, ६.१३ १	
परमरई-परमरति ८.९.१५	√परिठव-परि + स्थापयु ^० वि	२.७ १०
परमिठि-परमेष्ठि २.१.३	परिठविअ-परिस्थापित	५.११ १
परमेठि-परमेष्ठि ८ ४.३	√परिणभ-परि + णी ^० इ	५.४.१९, १०.४.२; ११ ६.५
परमेसर-परमेश्वर २ ४.१; ३.१३ ५	√परिणंत-परि + णी + शतृ	११ ५ ६
परयारकञ्ज-परदारकार्य, परस्त्रीगमन १०.८.८	परिणयण-परिणयन, परिणय ४ १४.२०, ८.११ १७.	
	परिणामड-परिणाम + मनुप, भावयुक्त	११ ४ ६

परिणाविभ-परिणायित	३.४७, °यउ	९१५१३	√परिवद्ध-परि + वृष् °इ	४.९.१
परिणिभ °य-परिणीत		१०.१०५ ५.२.१३	√परिवद्धन्त-परि + वृष् + शतृ	३.१४.९
परिणेवद्ध-परिणायितव्या (स्त्री०)		४.१४.१५;	परिवद्धिभ °य-परिवद्धित	२.११०; ९७.५
		५ २.२३	परिवाही-परिपाटी	९.२.३
परिणयव्य-परिणायितव्य		८ ५.८	परिवारिभ-परिवारित	३.४.८
परिप्त-परिप्राण		७.३.१०	परिसंठिभ-परिसंस्थित	११.११.१
परितुष्ट-परितुष्ट		७.६.१४	√परिसक्त-परि + प्वक् °इ	२.१५.१७, ५.८.३७
परितोसिभ-परितोपित, परितुष्ट		७ ११ ४	√परिसीकृत-परि + शील्य + शतृ	३.१४.११
परिस्थिभ-परिस्थित		२.५.१३	परिसौख्यि-परिसौख्यित	२ १२ ११
परियोद्धभ-परिस्तोक, बहुन योद्धा		५ ४ ४	√परिसुक्त-परि + शुप् °इ	२.४.२
परिपक्व-परिपक्व °उ (वत्)		१.७.५; ८ १३.१२	√परिसुप्त-परि + श्वप् °इ	९.१४.६
√परिपालभ-परिपालय °इ		८.३.१५	परिसेसिभ-परिसेपित; परित्यक्त	१०.२०.९
परिपीडिभ-परिपीडित		२ ५.११	°परिहृच्छ-उपरिहृस्त	७.६.१३
परिपूरभ-परिपूरित		८.१३ १०	परिहृच्छभ-(हे) दक्ष	९.१३ १२
परिपूरि-परिपूरित		२.५.९	परिहण-परिघान	४ २०.३
√परिफुर-परि + स्फुर °इ		१०.३.२	√परिहर-परि + ह्र °इ ९ ७.३, °हि (विवि०)	२.१६.४; °रि वि ६.१२.११, ९.४.१७
परिमह-परिभ्रष्ट		२.२.८	परिहरणभ-परिहरण, परिहारक	११.१४.३
√परिमम-परि + भ्रम् °इ ९.११.१.७, °वि ९.५ १०			परिहरिभ-परिहृत	८ १३.१५
√परिमसंत-परि + भ्रम् + शतृ		१०.२४.७	परिहव-परिमव, पराभंव	६.९.११; ७.४.१५
√परिमसिर-परि + भ्रम् + इर (ताच्छील्ये)		५.१२.३; ७.६ १०	√परिहव-परा + भ्रू °इ	३.७.१२
√परिमात्र-परिभाव्य °इ ११.७.१; °हि (विवि०)		१०.२.६	परिहा-परिहा	१.८.८
परिभाविभ-परिभावित		८ ११ १६	परिहाण-परिघान	९.१ २
परिभिभ °य-परिमित		१.१६ ३, ४ ९.११; ५.३.१४	परिहामंडल-परिखामंडल	३ १.२०
परिसुणिय-परिज्ञात		१०.१८.४	परिहासापेसल-परिहास + आपेसल-अतिशय मनोज	४.१७.१
परिमण-परिजन		८ १५.१६, १०.१६.११	√परिहिज्ज-परि + होय (कर्मणि) °इ	३ १२ ७
√परियत्त-परि + वर्त्तय °वि		४.१७.७; ९.१८.१	परिहिय-परिवृत	१०.१८ ८
परियत्तण-परिवर्त्तन		१.२.१४	परीसह-परीपह	२.२०.७; ११.९.६
परियर-परिकर		६ १ ६	परुह-प्ररुह	१० ८ १४
√परियर-परिचर् °रि वि		७ ५.८	परोषपर-परस्पर	३.११ १२, ९.७.८
परियरिभ °य-परिचरित		१ १४ ११; ११.१० २	परोहण-जलयान	१०.११ १
√परियाण-परि + ञ °इ ४.१८.१५, °वि ६.१२ १;		८.८.१८	पल-(तत्सम) मांस	६.८.९; १०.१० ८
परियाणिभ °य-परिजात		१.१७.४, २.५.८;	पलय-प्रलय ६.१४.२, ९ ९-४, °काल	४.२२.१२
		४.१८.१५ ३ १४.१०;	पलाण-पलायित	१०.२६ ७
परिस्थिय-परिस्थित		५ ९.५	√पलायंत-पलाय + शतृ	४ २१.१७
परिवर्जिय-परिवर्जित		११ १४.१०	पलाह-(तत्सम) पुत्राल, सृषा	९ १५.७
परिवर्द्धिय-परिपतित		७.५.३	पलास-(i) पदाश, मांसभोजी राक्षस (ii) पलाश	वृज ५.८.३४; ६.८ ६

√पलाह-परा + अय् (आज्ञा०)	१.११.११	पलुचाव-प्र + उक्तः	४.२.५
पकित्त-प्रदीप्त	५.१३.१०	√पवेस-प्र + वैशय् °हि (विधि०)	९.१६.६
√पकोय-प्रलोकय् °इ १०.४.१०, °मंति (बहुव०)		√पवोक्तुं-प्र + युज् + तुमुन्	८.११.१०
७.४.४; °ह (विधि०) १०.११.९		पव्त्र-पर्व	९.८.१८
पल्लंङ्-पर्यङ्क	८.१५.१६	पव्वह्व-प्रव्रजित	८.४.११
√पल्लट्ट-परि + वर्तय् °इ २.१५.९, ४.११.२;		√पव्वज्ज-प्र + व्रज् °ज्जेमि २.१३.११; °मि८.७.९	
११.६.४		पव्वज्ज-प्रवज्या	१०.१९.१८; १०.२१.१
पल्लाणिय-पर्याणित	५.६.४, ७.१.१९	पव्वज्जिज्ज-प्रव्रजिताः (स्त्री० बहुव०)	१०.२१.५
पल्लि-पल्लि, छोटा गाँव	५.८.२९	पव्वय्य-पर्वत	८.१४.१८; ११.११.४
पल्लोवण-(दे) चोरोंके निवास योग्य वन	५.८.२४	√पसंस-प्रशांस् °इ	४.३.९
पल्लहत्थ-पर्यस्त, परिवर्तित	७.१.१९	पसंसणु-प्रसथान (कर्तरि)	४.३.९
पवंच-प्रपञ्च	१०.१८.२	पसंसिअ-प्रशांसित	६.१२.१
√पवच-प्र + व्रज् °क्वेह ५.५.१२; °क्चमि ९.९.४		पसणवयण-प्रसन्नवदन °	प्रथ० १३
√पवज्जंत-प्र + वद् + शतृ	४.५.८; १०.०.१	पमत्थ-प्रशस्त	२.५.८, ५.१२.१५, ९.१५.१३
पवड्ढिअ °थ-प्रवद्धित ९.३.६, ९.११.७, ११.५.८		पसत्थपद्-प्रशस्त + पद (शब्द)	° प्रथ० ६
पवणाहअ-पवनाहृत	५.७.१	पसन्न-प्रसन्न	७.११.१५
√पवत्त-प्र + वर्तय् °इ ११.११.७, °हि (विधि०)		पसर-प्रसार	२.२०.३
५.१२.२४		पसर-पुरतः	९.४.८
पवत्त-प्रवृत्त	१०.२६.५	पसर-प्रातः, हि० पसर, सवेरा ९.४.४, १०.२३.१०	
पवत्ति-प्रवृत्ति	९.१०.६	√पसरंते-प्र + सु + शतृ	८.३.९, १०.२६.११
पवत्तिअ-प्रवत्तित	८.१२.१४, १०.२४.४	पसरण-प्रसरण	५.७.६
पवन्न-प्रपन्न	९.८.४	पसरिअ °थ-प्रसृत १.१४.१; ५.३.७, ७.८.८, ८.१४.९	
पवर-प्रवर	४.१२.२; ६.१०.६	पसविय-प्रसवित	१.१३.६
पवरमुअ-प्रवरभुजः (पु० विशेष०)	३.५.७	पसाअ-प्रसाद	२.१३.१२, १०.१९.१८
पवरु-प्रवरु	२.९.१२	पसारिअ °य-प्रसारित	६.१४.१, ७.१.१३
√पवहंत-प्र + वह् + शतृ °f (स्त्रियाम्) १०.१८.७		पराहण-प्रसाधन	५.२.१६
पवहाविय-प्रवाहिन	७.६.६	√पसिंचमाण-प्र + सिञ्च् + शानच्	८.१३.३
पवाळ-प्रवाल	५.९.८	पसित्त-प्रसित्त	८.१३.१
पवाह-प्रवाह	६.५.१०, १०.१७.८	पसु-पशु	२.६.१२, ११.१३.५
पवाही-प्रवाही (स्त्री० विशेष०)	५.१०.७	पसुत्त-प्रसुप्त	९.४.७, १०.९.४
पवि-(तत्सम) वज्र	५.४.९, ५.१२.२५	पसुया-प्रसूता	९.७.४
पविरा-पवित्र	४.५.१४, ८.१२.८	पसेथ-प्रस्वेद	६.१३.५, १०.१३.१०
√पविशअ-पवित्रय् °त्तेड (विधि०)	१.१८.४	पसोवण-प्र + स्वपन	१०.९.१
पविसि-प्रवृत्ति	६.१.४	पह-पथ	२.२६.५, १०.८.४
पविपंजर-पविपञ्जर, वज्रपञ्जर	११.२.५	पहअ °थ-प्रहृत	६.२.८, ६.१०.११, ७.५.४
पविरु-प्रविरल	९.१०.६, १०.५.९	पहंजण-प्रमञ्जन	८.१३.४
√पविसंत-प्र + विश् + शतृ	५.१.२७	पहर-प्रहार	९.१०.२१
√पयुच्च-प्र + वद् °इ (आत्मने०) ४.१.१४, ५.२२.२३; १०.२३.४		√पहरंत-प्र + ह् + शतृ	७.९.१४
		पहरण-प्रहरण. (कर्तरि)	६.४.८, ७.११.७

पहरणद्विभ-प्रहरण + स्थित	३.९.१६	पामरी-(तत्सम) कृपक ववू	५.९.९
पहरद-प्रहर + अर्द्ध	१०.२४.१	पामा-बुजली रोग	८.७.८
पहरिय-प्रहारित	८.११.१३	पाय-पाद, चरण	६.७.९; १०.८.६
√ पहासंत-प्र + हस् + शतृ	३.१.१९	पायठ-पादप	४.१०.७
पहाश्र-प्रभाव	४.६.६; ९.११.४	पायच्छित्त-प्रायचित्त	१०.२३.१; ११.८.८
°पहाड-प्रभाव	३.१३.९	पायस्थवण-पादस्थापन, पादपीठ	५.१.१४
√ पहाव-प्र + घाव् °इ	३.१२.८	पायपहार-पादप्रहार	४.१७.४
√ पहाव-प्र + भू °इ	११.१.५	पायय-प्राकृत	१.४.१०
पहावह-मति, कान्ति, देखें सं० टिप्पण	३.१२.८	पायार-प्राकार	३.१.२०; ४.६.५
पहि-पथिक	९.८.१८	पायाळ-पाताल	८.३.६
पहिअंथ-पथिक	१.७.६; ३.१.२.१२.५.९.९	पायाळसग्य-पातालस्वर्ग, पाताललोक	१०.१७.११
पहिकउ-(दे) प्रथम, हि० पहला	५.१३.१८	√ पारभ-पारय, °ए (आत्मने०)	४.१२.९
पहिलारभ-(दे) प्रथम, हि० पहला	१०.२१.८	पारकक-परकीय (विशे०)	६.१.१०
पहु-प्रभु	२.१९.९, ६.८.४; ८.५.१४	पारगह-(दे) युद्ध	६.१.१२
√ पहुच-(दे) प्र + आप् °ए (आत्मने०)	३.४.५	पारणकज्ज-पारणकार्य	३.९.१२
पहुच-(दे) प्राप्त	३.११.१५, ४.१५.७; ५.१२.५	पारणस्थ-पारण + अर्थ	२.१५.७
पहुल्लिय-प्रफुल्लित या (स्त्री०)	४.८.१४	पारद्धि-पारधी, भृगया	४.१३.१
पाभ-पाद, चरण	२.१२.८	पारंसिय-प्रारम्भित	१.६.१; १.१०.१२; ५.३.५
पाभ-पाद, प्ररोह	४.१९.१९	पारस-पारस (देश)	९.१९.६
पाइअ-पदाति	६.११.१	पाराविय-पारित	३.६.१०
पाइक-पदाति	१.१५.५; ६.८.१०	पारिय-पारित	४.११.८
पाठ-पाप	३.११.६	पारियत्त-पारियात्र (प्रदेश)	९.१९.८
पाठस-पावस	१०.१४.१	पारोह-प्ररोह	प्रश्न० १७
पाठसंत-प्रावृप् + अन्त	९.५.५	√ पाल-पाल् °इ	२.१६.७; ११.१३.९
पाठसपूर-पावसपूर	९.५.६	पालंअ-प्रालम्ब, शाखा	२.४.१२
पाठससिरि-पावसश्री	०.९.७	पालणिट्ट-पालन + इष्ट, पालननिष्ठ	४.५.९
√ पाठ-पठ् + णिच् °इ ५.१४.१४ °वि ५.७.१४;		पालद्धयालि-(दे) वांसमे लगी हुई छोटो-छोटी	
पाडेवि २.६.२, °हहि (भवि०) ५.७.१७		भुदियां	५.७.१०
पाठळ-पाठल	३.१२.८; ४.१५.१३	पालि-(तत्सम) पद्धि, मेढ	९.१०.१
पाडिअ-पातित	७.९.१४, ७.१०.१८	√ पालिज्ज-पाल् °उ (विबि०)	३.१४.१८
पाडअंथ-पाठक	५.१.२७, ११.१५.११	पालियकर-पालितकर, शुल्कग्राहक	१.१०.१४
√ पादंत-पठ् + णिच् + शतृ	२.१४.५	पालियघर-पालित + घरा, घरापालक	५.२.२३
पाठण-पठन	४.९.५	√ पाव-प्रापय् °इ ५.१३.२१; ९.२.१३; ११.४.२;	
पाण-प्राण	४.३.६	°मि ९.११.६; °हो (विबि०) ६.२.७;	
पाणहिय-प्राणाधिक, प्राणप्रिय	२.५.६	पाविळण ६.१०.१०; पाविवि ९.५.५;	
पाणिड-पानी	४.१९.२२; ९.७.११	पाविसमि (भवि० उ० पु०)	९.१०.१४
पाणिगहण-पाणिग्रहण	४.१४.१८	पाव-पाप	३.१३.१०
पाणियत्त-पाणिपात्र, करपात्र	३.९.१४	पावकम्म-पापकर्म	२.५.१२; १०.१०.१३
पामर-(तत्सम) कृपक	९.४.१	पावकअअ-पापक्षय	११.१४.८

पावज्ज-प्रज्ज्या	३.८.५	पिय-पति °खंघ-स्क्खं ४.१९.४; °मरण २.५.१५;
√ पावज्ज-प्र + ज्जु + णिच् °इ	१०.२.४	°यम-प्रियतम ४.१२ २; ८.१३.१
पावपिंड-पापपिण्ड	२.२.४	वियर-वितृ २.६.२; ८.१०.५
पावमई-पापमति	२.१८ १	पियलाख्या-प्रियलालिता (स्त्री°विशे०) पतिकी
पावरस-पापरस	५.१३.१९	लाइली ५.९.१४
पावाख्या-प्रपालिका (स्त्री०)	५.९.१०	पियलि-(दे) टीका, तिलक ८.१४.१४
पाविभ-प्रापित, प्राप्त	७.१०.१४	पियवयण-पितृवचन ३.९.६
√ पाविज्ज-प्र + आप् (कर्मणि) °इ १. ११. ५.		पियसंग-प्रियसङ्ग ३.१२.९
- ११ ३.१		पिया-प्रिया २.१०.८; ३; ३.३.२; °वज्जक-वत्तुष्क
पाविय-प्राप्त	१.७.८; ७.४.१६; ८.६.५	३ १३ १
पास-पासर्व, हि० पास २.१३.९; २.१९.८; ४.१२.२		पियामह-पितामह १.१७.७
पास-पाश	१०.२६.९	पियारी-प्रियतरा, हि० प्यारी २ ११ २
पासंगिड-प्रासङ्गिक	५ ४.८	पियाळकण-(i) प्रियाळ + वन; (ii) प्रिया +
पासगंठि-पाशग्रन्थि	१०.१४.१३	आळापन १.७ ३; ४ १८.४
पासट्टिअ-पासर्वस्थित	३.९.९	पियासिअ-पियासित, प्यासा ३.१३.१०
पासणाह-पासर्वनाथ	१.१.१३	पिल्कणअ-प्रेरणक. (कर्त्तरि) ९.३.९
पासेय-प्रस्वेद	५.१३.१०	पिस्सिय-प्रेरित ९.१७.४
पाहण-पाषाण, हि० पाहन	९ ११.११	पिसुण-पिशुण, दुर्जन २ १०.८; ११ ५ ७
पाहरिय-प्राहरिक, पहरेदार	९.१४.२	पिट्ठ-पृथु ९.१२ १
पाहाण-पाषाण १ २ ९; २.२०.७; °मय प्रशा० २०		√ पी-पा, पियइ ४.२ ७; ९. ७.११; ११. १५. ४;
पाहुड-प्राशुन	५ १.२३	पियवि १०.७ ८
पि-अपि	१.५ २१	पीअस-पीयूष ३.१.१
पिअ-प्रिय, पति ४.१७ १७; ४ ४ १९.१८; ६ ८.१२;		√ पीअ-पीइ °इ ९ १२.१६
९ ४.१६		पीआयर-पीआकर ७ ८.९
√ पिक्खमाण-इष् + धानच् १ १८.११		पीडिअ °अ-पीडित १.१.५; ८.११ ६; १०.७ ७
पिंग-पिङ्ग (वर्ण)	२.९.३, ४.२१ २	पीअ-पीअ, हि० पीआ ९ १८.८
पिंगळ-पिङ्गळ (ग्रन्थ)	४.९.२	पीणत्संघ-पीनत्कन्व ५.१२.१८
पिंगलिय-पिङ्गलित	७ ६ ३	पीणत्थणी-पीनत्तनी (स्त्री°विशे०) ७.१२.६
पिंगीक्य-पिङ्गीकृत	३.६.८	पीणिय-प्रीणित १०.१.९
पिंड-पिण्ड, पितर पिण्ड	२ ६.२	पीवर-पीवर, पीन, स्थूल ५ १२.१३; °तअ-तअ
पिण्वास-पिण्ड + आवास, छावनी	५ ११.२	४.१३ १२
√ पिउज्ज-पा °इ (आत्मने०) १.७ ४; ३ ३; १०.५.७		√ पुंअ-पुअ, °इ ३ १४.२२
√ पिज्जंत-पा + घाट्	९.१०.१०	पुंअय-पुअज + क (स्वायें) २ ३.३
√ पिअ-पीइ °ट्टिवि	१०.१३ ९	पुंअिअ-पुअिअत ३.९ ९
सिट्ठि-पृष्ठ	४.२०.११	पुंअअजत-पुणइ + इत्तु + यन्त्र १.८.६
पित्तळ-पित्तल (घातु), हि० पीतल	२.१८.५	पुंअरिंकिणी-पुणइरीकिनी (नगरी) ३.१.११
पिय-प्रिया, कान्ता	२ १५.११	पुंअरिंकिणी-पुणइरीकिनी (नगरी) ३ ४.१२
पिय-प्रिय (अन)	३.११.१३	√ पुक्कर-पूत् + कृ °इ ४.१.९.२०
		√ पुक्कार-पूत् + कृ + णिच् °इ ५ ७.२०

पुक्ल-लक्ष्य-पुष्कराक्षं, पुष्करवरद्वीप	११.११.१०	पुत्रवच्छक-पुत्रवत्सल	३८.१
पुक्ललावद्-पुष्कलावती (नगरी)	३.१.१३	पुत्राण-पुत्रानन	३.४.४
पुगल-पुद्गल	१०.३.४	पुत्ति-पुत्री	४.१२.५
पुच्छ-(तत्सम) पुच्छ, हि० पूंछ	४.२१.५	पुष्क-पुष्प	५.२.१९
√पुच्छ-प्रच्छ, °इ २.७.१; ९.१७.६, °सु(विधि०)		पुष्पपरिणाम-पुष्पपरिणाम	११२.१६
८.६२; °ह (विधि०) न.११.८		पुष्पयंत-पुष्पदन्त (अप० महाकवि)	५.१.२
√पुच्छंत-प्रच्छ + शतृ °ताहँ (बहुव०)	८.६.१२	पुरद °ओ-पुरत.	१.१.८; ४.१९.९; ५.११.१; १०.४.१०
पुच्छिभ-पुष्ट :	२.१.२	पुरंदर-पुरन्दर	२.२.९
√पुच्छिञ्ज-प्रच्छ (कर्मणि) °इ ४ १ १३, ६.११.४;		पुरद्विच-पुरस्थित	५.१.१९
८.१.१२, ९.१८.९		पुरलोभ-पुरलोक, नागरिक	९.११.७
पुच्छिच-पुष्ट:	२.१८.९, ९.७.६	पुरवासि-पुरवासी	५.९.१५
पुञ्ज-पूजा	३.१२.१४	पुराण-(तत्सम) प्राचीन	४.४.५; ४.४.१०
√पुञ्ज-पूज, °इ ३.१४.९; °वि ३.१३.४		पुरावासि-पुर + आवासी, नगरनिवासी	४.५.११
√पुञ्ज-पूर (कर्मणि) °इ	३.१४.१०	पुरि-पुरी, नगरी	७.११.११
√पुञ्जमाण-पूज + धानच्	१.१८.५	पुरिच-पुरी + क (स्वार्थे)	६.१.१७
पुञ्जवय-पूज्यव्रतः (पु० विशेष०)	८.३.१४	पुरिस-पुरष	९.१२.६
पुञ्जारह-पूजार्ह	१०.२३.२	पुरीस-पुरीष	१०.१७.४
पुञ्जिभ-√पूजित	१.१४.३	पुरुसोत्तम-पुरुषोत्तम	१.११.१३
√पुञ्जिञ्ज-पूज (कर्मणि) °ए	१.१८.२	पुलक-पुलक	२.९.२०
पुट्ट-पुष्ट, पीठ	९.४.८	पुलिण-पुलिन	९.१३.१५
पुट्टाहर-स्पृष्ट + अघर	९.१९.११	पुलिणट्टाण-पुलिनस्थान	५.१०.८
पुट्टि-पुष्ट	२.१०.३	पुलिद-पुलिनद, भील	३.१२.१६
पुट्टी-पुष्ट, पीठ	९.८.४	पुव्व-पूर्व	७.६.१२
पुठवि-पुथिवी	११.१०.३	पुव्वत्य-पूर्व + अर्थ	१.५.१८
पुण-पुनः	२.१९.२	पुव्वदिट्ट-पूर्वद्वृष्ट	९.१०.१०
पुणरवि-पुनरपि	२.१०.१	पुव्वमणिअ-पूर्वमणित, पूर्वकथित	४.१४.१८
पुण्णणअ-पुन + उन्नत	२.२०.१०	पुव्वमवतंतर-पूर्वभवान्तर	३.१०-१०
पुण्णुत्त-पुनरुक्त, पूर्ववत्	१०.१७.१६	पुव्वमाय-पूर्वभाग	९.१९.१३
पुण्ण-पुण्य	१.१८.५	पुव्वविदेह-पूर्वविदेह	८.२.२३
पुण्णपहाव-पुण्यप्रभाव	३.३.१७	पुव्ववसंकेथ-पूर्ववसङ्केत	२.१९.८
पुण्णपाव-पुण्यपाप	३.१३.८	पुव्ववावर-पूर्वपिर	२.११.९
पुण्णपुंज-पुण्यपुञ्ज	४.२.४	पुव्ववावरविदेह-पूर्व + अपर विदेह	११.११.६
पुण्णमिचित्त-पुण्यनिमित्त	११.७.१०	पुव्ववावरोवहि-पूर्व + अपर उदधि	५.८.३
पुण्णमहंद्-पूणिमा + चन्द्र	३.४.१	पुव्ववास-पूर्व + आशा, पूर्वदिशा	३.१.९
पुण्णमचंद्-पूणिमा + चन्द्र	१.१४.११	पुव्ववासिच-पूर्वाश्रित	२.२०.८
पुण्ण-पुनः	२.१४.११	पुहह-पुथिवी	१०.११.१
पुत्त-पुत्र	२.५.१७; ११.५.६	पुहईसर-पुथिवी + ईस्वर	५.१.२०
पुत्तव-पुत्र	४.१४.२०	पूह-पूति	९.१.११
पुत्तकर-पुत्र + अहकुर	९.७.६	पूय-पूति	११.६.३
पुत्तदुह-पुत्रदुह	१०.१९.९		

पूसा-पूजा	१.१८२	पोमराभ ँथ-पयाराग	१.९.६; १.१६.११
पूर-पूर(क)	१.१४.५	√पोमाभ-स्तु °इवि	६.१४.७
√पूर-पूर °इ ३ ६.१०; °हु (विधि०)	९.८.१८	पोमाइभ-प्रशंसित	१०.१८.४
√पूरंत-पूर + शतृ	१.१४९	पोमावइ-पचावती (वीर कविकी पत्नी) प्रश०	१५.
पूरिअ ँथ-पूरित ४. ६. ३; ४.२१. ६; ९. ८. ७;		पोस-पोष (क)	१०.१७.५
९.९.९.१३		°प्व-आत्म -	९.९.५
पुष्वाणकोडि-पूर्वकोटि, कालप्रमाण	३.१.१२	°प्यवह-प्रचण्ड	५.१.२१
√पेक्ख-दृश्, °इ-९.१०२१; ११.१५५; °मि-		°प्यवार-प्रकार	४.१५.१
३.११.१०; ९.१५.७; पेक्खु(विधि०)		°प्यवाच-प्रताप	४.५.७; ५.५.११
१.१३.२; २.१२.८, ४.१७.१३; ४.१८.६;		°प्यवण-प्रपन्न, उद्यत	१०.१.९
१०. ४. ७; °हि (विधि०) ९.८.१४;		°प्पसथ-(अ)प्रशस्त	१.१८.६
पेक्खवि ४.२.१५; ६.१२.१०; पेक्खवि-		°प्पहार-प्रहार	७.६.१०
४. १७. १२; ७. ११. ३, ८. १३ ६;		°प्पिअ-अपित	५.१४.१५
१०.१४.१४; पेक्खेवि १.१०.७; पेक्खवि		[फ]	
६.८.५; पेक्खेसहुँ(भवि०बहुव०) ८.११ ८		फंस-स्पर्श	१.६.४
√पेक्खंत-दृश् + शतृ	९.१३.८	फसण-स्पर्शन्	२.१६.२; ३.६.१५
√पेक्ख-दृश्, पेक्खु (लोट्)	१.१३.२	फडक-फलक	१.५.२०
पेक्खणथ-प्रेक्षणक	५.१.२५	फडाडोय-फटा + आटोप	५.१४.७
पेक्खेवड-द्रष्टव्य	८.१.१.३	फणकडप्प-फण + कटप्र, फणसमूह	१.१.१४
पेच्छ-√दृश् °इ	१०.१३.३	फणस-फनस (वृक्ष)	५.८.९
पेम्म-प्रेम	८.१३.१५	फणाल-फण + आल-मनुष्, फणवाला	७.२.१४
पेम्मपुंज-प्रेमपुञ्ज	२.१५.१६	फणिज्जक्ख-फणि + यज्, नागयज्	३.१२.२१
पेयखंड-प्रेतखण्ड	५.१४.१४	फणिट्-फणि + इण्	१.१.२.२
√पेक्ख-प्र + इट्, पेक्खिवि	७.१०.१३	फरथ-फलक (शस्त्र)	५.७.१७
पेक्खिअ-क्षिप्त	७.९.५	फरहरिय-फरफारायित	७.५.४
पेक्खिअ-प्रेरित ४.१९.११; ४.२१.१३, ७.८.६;		फलसर-फल + मार	१.७.८
१०.२०.२		फलबंध-फलबद्ध, फलयुक्त, फूले हुए	५.९.६
√पेस-प्र + इष्, °इ १०.१७.५; °हि (विधि०)		फलिह-स्फटिक	१.१७.५
१०.१४.८		फलिहफलअ-स्फटिक + फलक	५.१.१४
पेसणकार-प्रेषणाकार	७.७.१०	फलिहमअ-स्फटिकमय	४.१७.१५; ९.९.१२
पेसणथार-प्रेषणकार	४.८.११	फलिहुल्लय-स्फटिक + लल्लय (मनुषार्थे) स्फटिक-	
पेसिअ ँथ-प्रेषित १.१३. ९; २.१५.७; ८. ९. ५;		मय ४.१०.१७	
१०.२०.९		√फाड-स्फाट्, फाडिवि ९.१०.२०; फाडवि	
पोअ ँथ-पोत १०.११.३; १०.११.९		९.१५.४	
पोइय-प्रोत, पिरिया हुआ	७.८.२	√फाडिज्ज-स्फाट् (कर्मणि) °इ	२.२.१, ११.४.४
पोगक-पुद्गल	१०.५.३	फाडिय-स्फाटित	७.१.१८
पोगकखंड-पुद्गलस्कन्ध	९.१.३	फार-स्फार, बडा	४.५.१५, ७.२.११
पोट्टक-(दे) पोटली, पोत	११.६.३	फारक्क-फारक्क, फारक्क शस्त्रधारक	९.१३.१४
पोत्त-पोत, वस्त्र	४.२०.२	फाल-फाल, फालांग, हि० छालांग	५.१०.१४

√ फालिजत्रमाण-स्फाट् (कर्मणि) + शानच् ७.६.६	बंधन-बन्वन	५.१२.१५; ६.१२.४
फिक्कार-फेकार ध्वनि	बंधव-बान्धव	३.७.१; ७.३.१४; ९.१५.१२;
√ फिट्-स्फेट्, 'ई' (बहुवचं)		११.३.४
फुल्कार-फूल्कार	बंधसमस्थी-बन्धसमर्था (स्त्री० विचो०)	१०.२०.८
√ फुट्-स्फुट्, अञ् 'इ' ६.१.११, ७.६.२१; फुट्ति (बहुवचं) ७.८.१२; फुट्टिवि ३ ७.६; ७.८.४	बंधुक्क-बंधूक (पुण्य)	१०.१८.११
√ फुटंत-स्फुट् + शतृ	बंधुर-बन्धुर, श्रेष्ठ	६.१.७
फुड-स्फुट	बंधूय-बन्धूक (पुण्य)	१.१२.३
फुडिभ-स्फुटित	बंध-बंध-ब्रह्माण्ड	८.८.७
फुडिय-स्फुटित	बंधमण-ब्राह्मण	२.४.९; २.६.१
√ फुर-स्फुर् 'इ' ८.२ ७, ८.८.१३	बंधमचेर-ब्रह्मचर्य	३.९.८; ११.१४.११
√ फुरंत-स्फुर + शतृ	बंधोत्तर-ब्रह्मोत्तर (स्वर्ग)	३.१०.१; ८.२.२५
फुरण-स्फुरण	√ बज्ज-बन्ध् 'इ' ११.५.२, 'ति' ४.१५.६	
√ फुरहुरंत-स्फुर + शतृ	√ बज्जंत-बन्ध् + शतृ	७.१२.४
फुरिव-स्फुरित	बत्तीस-द्विंशति, बत्तीस	३.३.१३; १०.२१.११
फुरियरुह-स्फुरितरुचि, शोभायमान	बद्ध-बद्ध	७.११.१; १०.४.६; १०.१४.१०
फुरियाहरण-स्फुरिताभरण	बप्प-(दे) बाप, पिता	११.३.४
फुलिग-स्फुलिङ्ग	बलपुव-बलदेव	४.४.४
फुल्ल-पुण, फूल	बलह-बलीवर्द, हि० बलद	९.११.२; १०.४.१५
√ फुल्ल-√ स्पृश्, फुल्लति (बहुवचं)	बलत्रिसद-बलविश्रब्ध, अत्यन्त बलवान्	१०.७.२
फेक्कार-फेकार	बलहर-बलहरः, (कर्त्तरि)	४.२०.१२
√ फेड-स्फेट् 'मि' १०.१५.६, फेडिवि ११.६.८	बलाहिय-(i) बलाहक (ii) बलाधिक, बलवान्	१.६.३
फेडिय-स्फोटित	-बलाय-बलाका, बगुला	४.६.४
फेणावलि-फेन + आवलि	बलावल-बल + अवल	५.१३.१६
फेरिय-(दे) घुमाता हुआ	बलिभ-बली, बलवान	९.४.२
√ फोड-स्फुट्, हि० फोडना, फोडिवि	बलिङ्ग-बलिष्ठ	४.२१.१६
फोडिब 'य-स्फोटित' ५ ३.१३; ५.७.२१, ५.१०.१०; ९.४.५	बल्लहर-बल + उदर-उत् + घरः (कर्त्तरि), बल्लवारक	६.१२.२
फोफल-पूगफल, हि० सुपारी	बल्ल-बल्ल	६.१२.३; १०.१९.१४
	बल्लरंग-बल्लरङ्ग	११.७.४
	बहि-बहिष्, बाह्य	१०.२२.१२
	बहिणि-भगिनी	५.२.१३; १०.६.५
	बहिर-बविर, हि० बहुरा	२.२०.६
	बहिरत्त-बाह्यत्व	१०.२२.११
	√ बहिरंत-बविर + कृ + शतृ-बविरा कुर्वन् ७.८.८	
	बहिरत्थ-बाह्य + अर्थ, बाह्यमदार्थ	१०.२०.१२
	बहिरिय-बविरित	५.८.५
	बहुभ-बहुक	५.४.४, १०.१९.१०
	बहुकाम-बहुकाम, बहुवासनायुक्त	११.४.६
	बहुचेड-बहुचेट + 'उ-उत्' (विगे०)	१०.१४.१
	बहुजाण-बहु + ज्ञानी	१.२.१५

[व]

बह्लरु-(दे) बैल	५.७.१४; ९.४.४
√ बह्ल-उप + विष् 'इ'	५.१२.२१
बंदि-बन्दी	४.११.७
'बंध-बन्ध, कर्मबन्ध	२.९.१०; २.२०.२;
	९.१३.१३
बघ-(रति) बन्ध	९.१३.१३
√ बंध-बन्ध् 'इ'	९.१.१३; ११.५.३
बंधिलण	१०.९.७

बहुत्त-बहुत्व	५.२.४; ५.१२.४	√बृहि-बृ + (विधि०)	९१७.१३
बहुत्तण-बहुत्त	११.१३.५	बै-डौ	२१७.३, ८७.१०, ९.१७.४
बहुभोल्ल-बहुभूल्य उ-वत्	८.१२.११; १०.११.२	बेणिण-डौ	८.८.१९; ९.४.६, ९१८.८
वारस-द्वादश	१.१६.४	बोज्ज- (दि) हिं० बोस	५७.८, ५७१५
वारह-द्वादश, वारह	२.५.१०; २.१६.६; विह- विष ३.६.३, ३.७.१६	√बोळिज्ज-वद् (कर्मणि) इ	१०.३९
वारहस-द्वादशम्, वारहवां	१.१६.१०	बोल्ल-वद् इ ४.११.१३, ९.९.१; ए (मात्मने०)	९१७.१३; मि ९.१६.६
वाल-वाला	४.१७.१४	√बोल्लंत-वद् + वत्	८.९.८; ९.११.१६; १०१०.१४
वाल्ल-वाल + अर्क, वालसूर्य	१०.१.११	बोल्लण-बोल्लना	८.९.५
वाल्लकीका-वाल्लकीडा	३.१.१	बोल्लविम-आहूत्, पुकाराउ	९.१२, ९१५.१, १०.१.६
वाल्लद्विवायर-वाल्लद्विवाकर	३.६.७	बोहि-बोवि	१.२३.७, ११.१३१
वाल्लत्तण-वाल्लत्व, वाल्लपत्त	२.१२.११		
वाल्लत्तव-वाल्लत	२.२.५		
वाल्लंतउर-वाल + अन्त.पुर	३.७.५		
वाल्लिया-वाल्लिका	८.१०.८		
वाल्लुप्पह-वाल्लुकाप्रमा (नरकभूमि)	११.१०.६		
वाल्लुयासायर-वाल्लुकासागर(दिस)	९१९.११		
वाहिय-वाधित, बाध्य, प्रेरित	९.३.७		
वाहिरअ-वाहिरकः, वाह्य	२.७.५		
वाहिरउ-वाह्य	२.७.५		
वाहिरिअ-वाहर	१०.१७.१६		
वाह्यपास-वाह्यपाश	९.१४.११		
वाह्यलय-वाह्यत्ता	९.१२.१५; ९.१८.६		
वाह्यल्ल-वाह्यल्य	११.१३.४		
वाणि-डौ, हिं० दोनो	२.८.१८; १०.४.१४		
वाय-द्वितीय	१०.८.१६		
वायउ-द्वितीय + क (स्वायें)	४.१०.१०; ६.११.७; ११.४.९		
वाया-द्वितीया, हिं० वृज	४.९.१; प्रथ० १५		
√वुज्ज-वृप् इ ८.९.१६; मि ९.१६.७; वृज्जु (विधि०) ९.१७.८			
√वुज्जंत-वृप् + वत्	५.११८		
वुज्जविअ-वोवित	८.९.१५		
वुज्जिअ-वोवित	९११.४		
√वुज्जिउ-वृप् + वृप्	८.२.९		
√वुड्ड-वृद्, मस्सु. वुड्ढेविणु ४.१९.१९; वुड्ढेवि ११.८.५			
√वुड्ढव-वृद् + वत्	११.२.९		
वुदि-वुडि	१.६.१०.२.८.६, ५.१३.१८		
वुह-वुघ	३.५.१०		
		[भ]	
		मभ-मय	२.६.११, ३.११.१४, ८.१६१०
		मंग-मङ्ग, विनाअ	१०१.१३; १०.१७.४
		मंगी-मङ्गी, शैली	७.१.६
		√मंज-√मज्जु इ	११.४.१
		मंजणय-मज्जणक. (कर्तरि)	९.१६.९
		मंठ-माण्ड	१०.११.५
		मंतचित्त-भ्रान्तचित्त	३.१२.१३
		मंति-भ्रान्ति	४.१८१३; ९११.१५
		मंसण-भ्रंशानः (कर्तरि), भ्रंशक	३.६.१५
		मंसिय-भ्रंशित	२.२.९
		मक्ख-मदय	८.१२.१४
		√मक्ख-मक्ख इ (विधि०)	९१०.१९
		मक्खंत-मक् + वत्	९.११.३
		मक्खण-मक्खण	९१०.८, १०.१०.६
		√मक्खिज्ज-मक्ख उ (विधि०)	९.१०.१७
		मग्ग-मगत	४.१९.१४, ९.१३५
		मज्ज-मार्या	२.११.२, ४.११.६
		√मज्जंत-मज्जु + वत्	११.१.५६
		√मज्जंतव-वाद् + वत्	७.६७, ७.१२.१३
		मट्ट-मट्ट, वेदवित् विप्र (अथवा अण) ५७.२१; ५११.७	
		मट्ट-मट	६.२.५; ६.२.९
		मट्टयड-मट्टसमूह	६.४.७
		मट्टनीस-मट्टनीप (ण)	६.३.६
		मट्टयण-मट्टयण	७.४.४
		मट्टरक्खिलय-मट्टरक्खित	१.९.१

भट्टदुल्ल-भट्टशार्ङ्गल	६.१४.६	भयवर्त-भयवन्त	४.५.८
भडारा-भट्टारक, स्वामी	३ १०.१०; ९.१०.१९	भयवस्त-भयवत्	२ ५.७; २.६.३; ८ ४.३
भडारिभा-भट्टारिका, स्वामिनी	१०.१०.६	भयावण-भयावना	५.१३.११; ७.१.२२
√ भण-भण् °इ ४.२.२; १०.१२.३. °मि ५.१२.२४;		भर-भार	४.११.१०; ७.३.१३
°उ (विधि०) १०.३.४; °हि ३.७.१०;		√ भर-भृ, °इ	५.९.१०
भणिवि ५.४.१०; भणिवि ८.१०.९;		√ भरत-भृ + शतृ	९.९ ११
भणैवि ९.१०.१२ मणु (विधि०)		भरनिष्वाह-भारनिर्वाह	७ ६.१९
१०.१.१६; १०.८.१२		भरह-भरत	१.५.८; ३ १ ११
√ भणत-भण् + शतृ	३.६.९	भरहखेत्त-भारत + क्षेत्र	४ ३.१५; ११ ११.९
भणिभ-भणित	२.१२.२; ५.१२.६; १०.१०.१२	भरहाहय-भरत (चक्रवर्ती) + आदिक	४ ४.३
√ भाणिञ्ज-भण् (कर्मणि) °इ	११.१४.९	भरहालंकार-भरत (मुनि) + बलंकार	३.१.३
भणिव-भणित ४.१७.७, ५.१.१; १०.२५.६; °य		भरिथ-भरित	३ १.१६
१.५.१२		भरिय-भृता (स्त्रो० विशेष०)	१०.१६.१०
√ भण्ण-भण् °इ ३.१४ २; ८.१०.१४; १०.२३.६		भरिथल-भरित + क (स्वार्थे)	७.५.२; ९.८.१३
भत्त-भवत्	४.५.१२, ८.५.१२	भरथच्छ-भरकक्ष, भर्षो (बन्दरगाह)	९.१९.४
भत्तार-भत्तार, पति	६.३.३; ९.३.२	भल्ल-भाला (शस्त्र)	७.६.९
भत्तारधम्म-भत्तारधर्म, पतिधर्म	२ १९ ३	भल्ल-भद्र, भला	८.१२.११
भत्ति-भमित	१.१४.४	भल्लउ-भद्र + क (स्वार्थे)	८.१६.८; ११.९.८
भद्-भद्र	१.१७.३	भल्लायई-भल्लातकी (वृक्ष)	५.८.८
भद्रंग-भद्ररङ्ग (देवा)	९ १९ ४	भल्लि-वर्छी	४.११.४; ८.१५ ३
√ भम-भ्रम् °इ ६ ६.२; ९.२.१०, १०.४.१५, मासि-		भल्लुक्कि-(वे) शिवा, शृगाली	५.८.२०; ७.१.१७
भ्रम् + भ्त्वा ९ ९.१; भ्रमेवि १०.१७.१९;		भवपुड-भवदेव २.८.७, ३.५.७; ८ ४ १४; °एव	
भ्रमेसइ (भवि०) ४.३.१५		२.९.१५	
√ भमत-भ्रम + शतृ ९ १.१७; °ी (स्त्रियाम्)		भवयुवामर-भवदेव अमर	३.३ १८
८ ११.८		भवकहस-भवकर्दम	२.७.९
भमण-भ्रमण	१०.२०.१०; ११.३.२	भव-भव, ससार ९.११.१६, ११.१३.११, °गइ-गति	
भमर-भ्रमर	१ १२.५; ८.५ ६	(जन्म) ३.५.१२; °छेय-छेद ८ २.१९; °जल	
भमरउल्ल-भ्रमरकुल	४.१६.७	४.३.१२; °णिसि-°निवि ३ १३ ८; °तरण	
भमरपति-भ्रमरपट्टित्त	४.१७ ६	भवतरण (कर्त्तरि) भवतारक १९.२३ १; °तारख	
भमरी-भ्रमरवती (स्त्रो० विशेष०)	५ १०.८	°तारक ४.४.१३ °वर-°गृह १० १८ १२;	
भमरोली-भ्रमर + आवलि	५.९.८	°वहतरीणो °वेतरणो २.११.१३; °सवारण-	
√ भसाढ-भ्रामम् °डेइ	७.४.१४	°सवारण-°भवधारण ११.५.९, °समुद्-°समुद्र	
भसाढिभ-भ्रमित	६ १४.११	४ ६.१३; °सायर-°सागर ११ २.९	
भमिभ-भ्रमित	८ १५.५; ९.१८.९	भवयत्त-भवदत्त	३.३.३; ८.२ २१
भमिथ-भ्रमित	४.१४.१६; ४.१६.७	भव्व-भव्य	८ २ १९; १० १८ २
√ भमिर-भ्रम् + हर (ताच्छील्ये)	१.१.७; ५.८.५	भव्वर्षु-भव्यवन्तु	१.५ ७
भम्मह-भ्रमक (बुधबकड)	१०.७.१	भव्वयण-भव्यजन	१.१ ६, १० २४ ८
भम्मुट्टि-ब्रह्ममुष्टि (एक धूर्त्त चट)	१०.८.२	भसक-भ्रमर	३ ३.५; ९ ९.३
भयंदर-भगन्दर (व्याधि)	३.११.३	√ भा-भा, °इ ४ १९.१५; भाति	१० ३.५

भाभ-भाभ	२.८.८; ४.६.७; ९.१.१५	मिंगालि-भुङ्ग + बलि, भ्रमर पङ्क्ति	१०.१.११
भाइ-भ्रातृ, भाई	२ १०१; १०.८.६	मिभळ-विह्वळ	६.१०.३
भाइजाय-भ्रातृजाया, हिं मौजाई	१०.८.६	मिक्ख-मिळा	९.२.१०; १०.२१.९; १०.२२.२
भाडि-(दे) भाड़ा	९.१३.५	मिच्च-भृत्य	५.१४.८; १०.९.३
भाभासुर-भा + भास्वर	५ ६ १२	मिच्चत्तण-भृत्यत्व	९.३.१३
√ भाभ-भामय् + भामवि	७.१०.७; भामिकण	√ मिज्जत-भिद् + शतृ	६.७.६
६ १०.१०		√ मिड-(दे) मिड्ना, मिडिज्जहो (विधि०)	६.३.८
√ भाभंत-भ्रामय् + शतृ	४.१३.१५	√ मिडंत-(दे) मिड् + शतृ	७.६.१४
भाभंडळ-भा (प्रभा) + मण्डळ	१.१७.५	मिड्ढि य-मिडित, मिड गया	६.१०.५; ७ ५.१०
भाभिणि-भामिनी	१.१० ३; ३ १०.२१	मिन्म-मिन्न, विलक्षण	१.म.१३; ३.६.१२
भाभिय-भ्रामित	१ १७; ६.४.८	मिन्नदंत-(तरसम) मिन्नदन्त, छिन्नदन्त	६.७.१३
भाभ-भाभ	४ १३.९	मिक्क-मौल	५.८.२७; १०.१२.१
भाभ-भ्रातृ, हिं भाई	१०.१४.८	मिक्कमाळ-मिक्कमाल, (नगर), आधुनिक मिण्डमाल	९.१९.७
भाभण-भाजन	५.७.१८; ११.१.१४	मीमगय-मीमग्वा	५.१४.१४
भाभर-भ्रातृ	११.५.५	मीय-मीत	१.११.१०
भाभरई-भारती	१.६ ४	मीस-मीष(ण)	५.८.३१; ७.६.८
भाभरकंत-भार + आक्रान्त	३.१३.१०	मीसण-मीषण	६.१०.१
भाभरह-भारत (देश)	१ ६.१७	मीसद्विय-भेषित	६.९.२
भाभरह-(i) भारत, महाभारत युद्ध		मुळ-मुज	५.५.५; १०.१६.१
(ii) भारत देश	५.८.३१	मुळण-मुवन	१.१०.९; ३.२.३; ४.१०.३; ६.२.४
भाभिय-भरित	५.३.११	मुळणसार-मुवनसार, लोकश्रेष्ठ	४.१२.९
√ भाव-भास् इ	२.७ ३; १० ३.५; ११.५ १;	मुळथाम-मुजस्थाम, मुग्गळ	७.११.१
११.१३.२		मुळदंड-मुजदण्ड	१.११.९, ६.२.४
भावण-भावना	१.१६ १०	√ मुंज-मुज् इ	९.८.२२; मुंजइ २.२०.५; मि
भावण-भवनवासी देव, ११.१२.८; १.१६ ८ णारिल-		३.८.८. हि (विधि०)	३.८.६; १०.३.५;
नार्यः, भवनवासी देवियाँ	१.१६ ७,	मुंजिवि ८ १३.१४, मुंजिसहूँ (भवि० व० पु०	
√ भावंत-भावय् + शतृ	११ १५	वहव०)	९.३.१५
√ भाविज्ज-भाभय् (कर्मणि) इ	११ ३.१	√ मुंजंत-भुज् + शतृ	९.१.१७; हिँ (वहव०)
भाविष य-भावित	२.१.१५; ४.१३ ५; ७.२.५	३.१ ६	
√ भास-भाभय् इ	८.६ ११, ८ १६ १४; इर	√ मुंजिज्ज-भुज् (कर्मणि) इ	११.९.२
(ताच्छील्ये)	५.५.६	मुंजिय-भुवत्	२ ९.८; १०.६.६
भासण-भापमाणः	१.१४.२	भुक्ख-(दे) वुभुक्षा, हिं भूळ	९.१०.३; १०.१२ ६
भासातय-भापा + त्रय-सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश		भुक्खिअ-(दे) वुभुक्षित	३.१३.१०
४.११.१२		भुत्त-भुवत्, वचीकृत्	६.८.३
भासिअ य-भापित	२.११.१०; ७.७.३, ९.१७.२	भुत्तसेस-भुवत्तोप	९.८.४
भासिरि-भास्वरा (स्त्री० विधे०)	४.१६.८	भुत्ता-भुवता (स्त्री० विधे०)	३.८.८
भासुर-भास्वर	२.३.५; ४.८.१५	भुयंग-भुज्ज, शोपनाग	४.२२.५
मिडढी-मुकुटि	१०.२६.१		
मिंग-भुङ्ग	२.९.३; १०.१.१०		

भुयंग-भुजङ्ग (i) सर्प (ii) भुज + अङ्ग, देहलता
(iii) प्रेमी, पति (iv) कामीपुरुष १.१०.६;
९.१२.७

भुयंगम-भुजङ्गम, सर्प, ९.१०.९; १०.१२.२
भुयंगिणि-भुजङ्गिनी, नागिन ४.१९ १७
भुयञ्जुल-भुजयुगल ९.७.७
भुयतुल-भुजतुला (i) भुजाक्षुपी तुला (ii) भुजाखों-
में धारण की हुई तुला ८.३.१०

भुयदंड-भुजदण्ड १.११.२; ०बल ६.१४.९, वैय-
वैग १ म० ७

भुवहालिया-भू + डालिका (दे), भ्रूलतिका ५.९.१०
भुवण-भुवन १.६.४; ३.१०.१५
भुवणुल-भुवन + उल्ल (स्वार्ये) १.१०.१२
√ भू-भू, भविस्सए (भवि० तृ० पु० एकव०) २.३.४
भूष-भूय. १०.१७.१५
भूह-भूति, मरम १.१.६, ५ ५.११
भूगोचर-भूगोचर ५.१३ २८
भूज्यकण-भूयुगल ५.१३.५
भूसग-भूमङ्ग, कटाक्ष १.१० १०, ९.१३.१०
भूसंगवत्त-भू + मङ्ग + वत् (युक्त) ४.२२.११
भूमिकम-भूमिक्रम, देखें सं० टिप्पण; १.१५.५
भूमिमाथ-भूमिमाग ४ २१.७; ५.१.२३
भूय-भूत, प्राणी १०.३.२
भूय-भूत, पञ्चभूत १०.४ १
भूयावलि-भूत + आवलि १०.२५ ४, ११ १५.४
भूवक्रवत्त-भू + वक्रत्व ४ १७.२१
भूवल्लि-भ्रूवल्लि, भ्रूलता १.११ १५
भूवाल्लि-भूपाल ५.१ १६
भूसण-भूपण १०.१९ ७
भूसिल-भूपित ३ १३ १, ४.९.८
भूसिअंग-भूपित + अङ्ग ३.६.१
भेष-भेद ११.९.३
भेडसंघाय-(दे) भेड-कायर + संघात ७ ६.१३
भेष-भेद (नीति) ५.३ ४
भेष-भेद, फुट, विग्रह ६.१ १४
भेषथ-भेथक ८.१५.३
भेसिय-भेषित ५.११.१३
भोथ-भोग (i) भोगेच्छा (ii) केंचुली ३.९.१७
भोदथ-भोगिक, भोगयुक्त, सावनसम्पन्न ५.९.२

भोग-(तरसम) (i) फणाटोप (ii) वस्त्रामरणादि
भोगोपभोगसामग्री १.१०.६

भोज्ज-भोज्य १०.२.१; १०.२०.१०
भोज्जसत्ति-भोज्यशक्ति १०.२.१
भोय-भोग २.९.११; ४.९.१२
भोयण-भोजन २.१२.२, ८.१३ ८
भोयणसत्ति-भोजनशक्ति १०.२.१
भोयभूमि-भोगभूमि ११.११.५
भोयायर-भोग + आदर ५.२.१६

[म]

म-मा (निपेधार्ये) ३.७.१०; ३.१३.५
मअ-मद ६.५.१०
मइ-मति, मतिज्ञान ३.५.१; १०.५.१२
मइद-मृगेन्द्र ६.७.८; ७.८.६
मइध-मत्यन्व ११.८.५
मइजरद-मतिजरद, अतिशय प्राज्ञ ९.१०.७
मइण्ण-मतिज्ञान १०.१८.७
मइमोहण-मतिमोहन; (कर्त्तरि) ५.१३.७
मइर-मदिरा ४ १७.१५
√ मइलंत-(दे) मलिन + विवप् + शत् ६.४.१०
मइलण-(दे) मलिनीकरण ६ ५ ११
मइल्लिय-(दे) मलिनित ११.७.९
मइवल्ल-(दे) मलिनीक्रियमाण. (विशेष०) ५ ७.६
मइवर-मतिवर, श्रेष्ठ, सतिमान् ५.१२ २२
मइ-मति ८.९ १५; ९.१६ ५
मड-मय, युक्त १ १६ ११
मड-मृत ३.९ १६
मड-मद ३ १२ ५
मडड-मुकुट, हि० मीड २.२०.११; ८.१२.४;
१०.२०.३
मडपिंड-मृत्पिण्ड १० ४ ४
√ मडरिज्ज-√ मुकुट् (कर्मणि) इ ३.१२.५
मडरिय-मुकुरित ४.१५.१३
√ मडलंत-मुकुलय् + शत् ९.१३.१७
मडलाविय-मुकुलायित ७ २.५
मडळि-मौल, मुकुट ५.१.१६; ८.११.१५
मडळिय-मुकुलित ८ १६ ९
मडर-मयूर ४.७.६; ५ १० १४, ७.९.९
मं-मा (निपेधार्ये) ६ १२.३

मंक्रुण-मत्क्रुण	१० २६.४	मंदुजोअ-मन्द + चद्योत	११.७.५
मंगकराहभ-मङ्गलराजि	४.५.१७	मन्दुर-मन्दुरा	५.१०.२२
मंगकवंत-मङ्गलवन्त	९.४.९	मंसदक-मासखण्ड	१०.१० ७
मंच-मञ्च	८.१६.३	मगह-मगध	२.३.१०; ५.८ ३८
मंचअ-मञ्चक, मञ्च	८ १२.१२	मगहद्वैस-मगधद्वैस	१.६.२; ३ १४.६
मंजरि-मञ्जरी	१ ८ २	मगहा-मगध	२ ४.७
मंजिट्ट-मञ्जिष्ठ, हि० मंजीठ	११.७.४	मगहाहिअ-मगधाधिप, मगधेश	३ १४.३, ४.२२ २५
मंड-मण्ड, हठात्, बलपूर्वक	१.११ २; ५ ५ ४	मगहेस-मगधेश	७.१३ ६
मंड-मण्ड, बल	७.१० ९	मगहेसर-मगधेशवर	१ १४ १
मंडण-मण्डन, वस्त्र	४ ११.२	मग्ग-मार्ग	४ २१.२; १०.१७ १, १०.१९ ११
मंडण-मण्डन, बनाव-शुद्धार	९ १२.१७	√मग्ग-मार्ग्य् °इ	४ ९.७; ६.१२.८
मंडलंतर-मण्डल + अन्तर, प्रदेशान्तर	९.१७.९	√मग्गंत-मग् + शतृ	५ ३.४
मंडळग्ग-मण्डलाग्ग, अंसि	७.२.९	मग्गण-मार्गण, बाण	७ ८.१४
मंडळवद्द-मण्डलपति, राजा	२.५.३; ४ २०.६	मग्गरोह-मार्ग + रोध (अवरोध)	५.७.२४
मंडळि-मण्डली	५.८.२८	मचकुंद-मुचकुन्द वृक्ष	४ १६ २
मंडळिय-माण्डलीक	५ १.९, ५.७.१०	मच्छ-मत्स्य	४.२१ ४; १०.१० ८
मंडळी-मण्डली	१.११.९	मच्छिय-मसिका	७.१.१२
मंडव-मण्डप	२.९.४, २ १० ३	मच्छी-मत्स्यवती (स्त्री० विसी०)	५.१० ८
मंडवथाण-मण्डपस्थान	३.२ ९	मज्ज-मद्य	४ २.७, ४.१७.१३
मंदिअ °य-मण्डित ३.१.२१; ४.२.८; ४.१३.२;		√मज्ज-मज्ज् °इ	६.५ ३
११.११.१		√मज्जत-मज्ज् + शतृ	१०.१८.१८
√मदिज्ज-मण्डय् (कर्मणि) °इ	११.१४.२	मज्जणवट-मज्जनवट	४.१३.१२
√मदिर-मण्ड् + हर (ताच्छील्ये)	६ १० २	मज्जपट्ट-मद्यपात्र	५.७ २१
मंत-मन्त्र, मन्तव्य	९.४ ३, ९ ९ ४	√मज्जमाण-मज्ज् + शानच्	५ १०.६
√मंतड-मा + शतृ, हि० समाना	२.१० २०,	मज्जाय-मयादा	५.३ ७
मतु ८ ८.७		मज्ज-मध्य, कटि	२.५ ५; ९.१७ ७
मंतथ-मन्त्र + अर्थ	४.९ ५	मज्झंक्रिय-मध्यङ्कृत	११ ११.२
मंति-मन्त्री	१.१२ ८, ५.१३.१२	मज्झद्विय-मध्यस्थित	१.१७.५
√मंतिज्ज-मन्त्र्य् (कर्मणि) °इ	९ ८.८	मज्झण्ण-मज्जाह्ण	५ ७ २.८ १२.१४
मंतिणुठमव-मन्त्रितनूदमव, मन्त्रिपुत्र	३.७ ८	मज्झत्थ-मध्यस्थ	१.२.६
मंतिसुअ-मन्त्रिसुत	३.९.१०	मज्झिम-मज्जिम	११.११.१
√मंख-मथ् °इ	८.१५.११	मज्जफर-(वे) मान, गर्व	७ ११ ७
मंघाण-मन्धान, हि० मयानो, हाँडी	८.१५.११	मडिय-(वे) आवृत्, मडा हुआ	११ ६.२
मंदमई-मन्दपति	१.२.१	मण-मन	२.१५ १४; ४ २१ १९; १० ११ ३
मंदमार-मन्दमार वृक्ष	४ २१.३	मणअहिराम-मन + अहिराम	२.९.७
मंदर-मन्दर पर्वत	१.१.१	मणकसाय-मन + कपाय	२ ७.१०
मंदळ-मर्दल वाद्य	१०.१४ १२, १० १९ ३	मणत्थोहथेण-मन + अर्थ + ओध + स्तेन; मन (या मनोरथ) समूह रूपो घनको चुरानेवाला	
मंदार-मन्दार वृक्ष	४ १६ २		४.५ ६
मंदो-मन्द-मन्द (विसी०)	९.१०.६		

मणपञ्चय-मन पर्यय (ज्ञान)	३.५.१	मणिय-मानित, स्वीकृत	१.११.१२
मणसंक्रुण-मनमत्क्रुण	८.८.१२	√मणिञ्ज-मनु (कर्मणि) इ	१.५.११
मणरंजन-मनरञ्जनः, मनोरंजन करनेवाला	४.४.११	मत्त-मात्र, केवल	२.१५.१९
मणरोहण-मनरोधन, मनोनिरोध	११ १४ ७	मत्त-मत्त, मतवाला	४.१६.७; ५.१०.२०
मणवल्लह-मनोवल्लभ	२.१५.११	मत्थथ-मस्तक	२.४.२
मणसुद्धि-मनसुद्धि	५.९.१५	मत्थिथ-मथित	७.१.१०
मणहर-मनोहर	५.२.२१	मदल-मदल	५ ६.८; ४.८.३
मणहारिणी-मनोहारिणी	२.१५.४	मदव-मार्दव; मार्दवयुक्तचित्त	११.१४.३
मणाल-मनाक्	२.१५.१७	ममत्ति-मम + इति, ममत्व	११.५ १०
मणिकडय-मणिकटक	९.६.२	मम्मण-(दे) कन्दर्पालाप, कामवार्ता; कामुक फुस-	
मणिसुद्ध-मणिसुखित	१.१५.६	फुमाहट ८.११.१४	
मणिसुद्ध-चन्द्रकान्तमणि	३.३.८	मम्मण-अव्यक्तवचन	९.१९.४
मणिसुत्त-मणियुक्त	१०.१९.७	मय-(i) मद, हस्तिमद (ii) मद-सुरा	१.१०.११;
मणिट्ट-मन. + इष्ट, मनोज	५.१०.४	१.१५.२; ५.१०.६	
मणिमउडधर-मणिमुकुटधर	३.३.१३	मयंक-मृगाङ्क, चन्द्रमा	४.५.१५
मणिसुंघ-मणिमुक्, मणि छुडानेवाला	५.५.९	मयंक-मृगाङ्क राजा	५.२.१३; ६.१.१२
मणिरथण-मणिरत्न	९.८.७	मयंग-पातङ्ग, हस्ति	५.१०.२१, ६.७.१०
मणिवग्ण-मणिवर्ण (रग)	७.१२.३	मयंड-मृगोन्द्र	६.१०.६
मणिसार-मणिसुखित	३.१.१०	मयगल-मदगल, हस्ति	५.१०.६
मणिसिंह-मणिसिंह, मणिसोखर, रत्नचूक (विद्याधर)	६.१०.८; ७.३.४	मयच्छि-मृगाली (स्त्री० विशेष०)	१०.८.११; १०.१०.६
मणिसिंह-मणिसिंह, मणिसोखर, रत्नचूक (विद्याधर)	६.१०.८; ७.३.४	मयलक-प्रदलक	४.२०.९; ७.५.३
मणिसिंह-मणिसिंह, मणिसोखर, रत्नचूक (विद्याधर)	६.१०.८; ७.३.४	मयलोडिय-मदयोजित, गविष्ठ	९.३.८
मणिसिंह-मणिसिंह, मणिसोखर, रत्नचूक (विद्याधर)	६.१०.८; ७.३.४	मयण-मदन, कामदेव	४.१८.३, ४ १८.१४
मणिसिंह-मणिसिंह, मणिसोखर, रत्नचूक (विद्याधर)	६.१०.८; ७.३.४	मयणवाहु-प्रदलवाहु	४.१३.१
मणिसिंह-मणिसिंह, मणिसोखर, रत्नचूक (विद्याधर)	६.१०.८; ७.३.४	मयणमय-मदनमद	८.११.१२
मणिसिंह-मणिसिंह, मणिसोखर, रत्नचूक (विद्याधर)	६.१०.८; ७.३.४	मयणवाण-प्रदन बाण	९.२.५
मणिसिंह-मणिसिंह, मणिसोखर, रत्नचूक (विद्याधर)	६.१०.८; ७.३.४	मयणावास-मदनावास	४.१९.१६
मणिसिंह-मणिसिंह, मणिसोखर, रत्नचूक (विद्याधर)	६.१०.८; ७.३.४	मयनाहि-मृगनाभेय, कस्तूरी	४.१७.१६
मणिसिंह-मणिसिंह, मणिसोखर, रत्नचूक (विद्याधर)	६.१०.८; ७.३.४	मयमुक्क-मदमुक्त	४.२२.१९
मणिसिंह-मणिसिंह, मणिसोखर, रत्नचूक (विद्याधर)	६.१०.८; ७.३.४	मयरंद-मकन्द	५.९.७, १०.१.१०
मणिसिंह-मणिसिंह, मणिसोखर, रत्नचूक (विद्याधर)	६.१०.८; ७.३.४	मयरसिध-प्रकरचिह्न, प्रकरवज्र	कामदेव ४.१३.८;
मणिसिंह-मणिसिंह, मणिसोखर, रत्नचूक (विद्याधर)	६.१०.८; ७.३.४	१०.२०.४	
मणिसिंह-मणिसिंह, मणिसोखर, रत्नचूक (विद्याधर)	६.१०.८; ७.३.४	मयरद्वय-प्रकरवज्र	४.७.६; ९.१.५
मणिसिंह-मणिसिंह, मणिसोखर, रत्नचूक (विद्याधर)	६.१०.८; ७.३.४	मयरमच्छ-प्रकरमत्स्य, मगरमच्छ	४.६.५
मणिसिंह-मणिसिंह, मणिसोखर, रत्नचूक (विद्याधर)	६.१०.८; ७.३.४	मयरहर-प्रकरगृह समुद्र	८.३.८; १०.१८.७
मणिसिंह-मणिसिंह, मणिसोखर, रत्नचूक (विद्याधर)	६.१०.८; ७.३.४	मयरायर-प्रकराकर, समुद्र	९.५ ७
मणिसिंह-मणिसिंह, मणिसोखर, रत्नचूक (विद्याधर)	६.१०.८; ७.३.४	मयलंग-मृगालाञ्जल, चन्द्रमा	४.७.१०.८.१५.४
मणिसिंह-मणिसिंह, मणिसोखर, रत्नचूक (विद्याधर)	६.१०.८; ७.३.४	मयसंग-प्रदसङ्ग, मदसहित	१.१०.१०
मणिसिंह-मणिसिंह, मणिसोखर, रत्नचूक (विद्याधर)	६.१०.८; ७.३.४	मयाह-प्रद खादि कपाय	११.१४ ३
मणिसिंह-मणिसिंह, मणिसोखर, रत्नचूक (विद्याधर)	६.१०.८; ७.३.४	मयामि-मृगामिप	५ ८.२६
√मण-मनु, इ ३.९.९; ९.३.१; १०.४.१२;			
°मि ४.२.११; १०.६.८; मण्णि (बहुव०)			
३.१७, ९.१२.३; मण्णिविणु ८.१४.१३;			
°हि (विचि०) ३.५.१२			
√मण्णित्त-मनु + शतृ	२.१४.३; ५.१२.२२		

मयालोचनी-मृगलोचनी	४.५.६	महाकरि-महाकरि-महागज	९.५.५
√ सर-मृ, °इ ९.९.५; १० १४.१६, °मि ९.६.६;		महाकम्ब-महाकाव्य	१.१८ २२; ३.१४ २५
°उ (विधि०) ७.७.७, मरिचि २.२०.९;		महागन्ध-य-महागज	६.५.३; ७.१०.११
मरिचि ३.१३.१५; मरिचि ३.५.८;		महागद्द-महागति, परमगति	१.१.५
११.१५.७; मरिचि ८.२.२२		महाञ्जुष्ण-महाचूर्ण, (हि०) मुदाशख चूर्ण	१०.९.२
√ मरंत-मृ + शतृ	१०.१४.१४	महाडह-महा अटवी	५.८.५
मरगद्दवर्ण-मरकतवर्ण	१.११.३	महाणयर-महानगर	८.१३ १२
मरगय-मरकत (मणि)	५.९ ८, ८.१५.२	महाणस-महानस	३.३.७
मरगयमिचि-मरकतमिति	३.३.९	महाणुमाभ-महानुभाव	७ ३.७
मरद-दर्पयुक्त	७.५.१५	महातउ-महातप	१०.२२ ८; १०.२३.५
मरहद्दि-महाराष्ट्री स्त्री, हि० मराठिन	४.१५ १५	महातम-महातम (प्रभा, नरकभूमि)	११.१०.९
√ मरिज-मृ (कर्मणि) °इ	१०.१४.११	महादिहि-महावृत्ति	९.१६.१०
मरु-मरुत्, मासुत्	४ ६ ३, ९.१२.३	महाद्रुम-महाद्रुम	२.१२.८
मरुभोयण-मरुत् + भोजन, वायुभोजी सर्प	३.९.१७	महाध्व-महाध्वज	५.११.११
मरुण-मर्दनः (कर्त्तरि)	४ १५ १०	महापउम-महापप (राजा)	३.५.१०, ८.२.२३
मरुवाचक-पर्वत	५.२.१२, ९ १९.१	महापह-महापथ	८.५.१३
मरुिक-वृक्ष	४.२१.२, ५ ८ ८	महाफडाल-महाफण + बाल (मनुष्य) महाफणयुक्त	७.२.१४
मव-√ मापय् °इ	४.१९.१८	महामर-महामार	२.९.१९, ५.१३.२२
मसाण-समशान	११.६.४	महामन्व-महामन्व	१०.१८.४
मसिण-ससुण	२ १४.१०, ८.१६.८	महामरु-महामरुत्	३ १४.७
मसियाक-मसिकाल (विज्ञे०)	१०.२६.४	महामांस-(तत्सम) नरमास	१०.२६.२
मसी-मसि	४.७.४	महारभ-हमारा	११.१४.१०
मह-मम	२.१६.८; २ १९.७, ४ ३.८	महारह-महारति, महाप्रीति	८.११.१७
√ मह-मह, काङ्क्ष् °इ	९.२.७; ९.१४.१२	महारडि-महारदन	२ १३.९
महं-महत्, महान्	९.१९.७	महारह-महारथ	१.११ ८
महपुवि-महादेवी	१०.१६.१०; १० १७.२	महारा-हमारा	९.१०.१९
महकह-महाकवि	१.३.४, १.३.९	महारांयाहिराय-महाराजाचिराज	५.१ १४
महण-मन्थन	८.१४.१०	महारिसि-महा + ऋषि, महपि ३.१३ ८; ७.१३.१५	
महणह-महानदी	४.९.२	महावह-महा आपत्ति	५ १३.८
महणव-महार्णव	८.१४.१५; ९.५.१३	महावण-महावर्ण, रवतवर्ण	१०.९.२
महत्-महन्त, महात्मा	३.७.१; ५.१३ २३	महावथ-महाव्रत	३.९ १५; ८.२.२२
महपुरिस-महापुरुष	४.४.५	महासंत-(तत्सम) महासन्त, महाजन	८.२.८
√ महमहंत-महं + महं + शतृ	४.६.३	महासिहर-महागिखर	१.१३.१०
महाराथ-महाराजा	४.२०.७; ५ १३.३	महादउ-महा + वाहव, महायुद्ध	५.७ २७
महरिद्ध-महाराष्ट्र	९.१९.४	महि-मही, पृथ्वी	७.२.६; १०.२५.११
महरिसि-महर्षि	४.६.८; ५.२.२२	महिथ-महित, पूजित	२.६.४
महक्क-महत् + क (स्वाये)	१ ८.२; ११.४.२	महिणाठ-महीनाथ	१.१६.२
महाउडिय-महाउल्कलिक, उडीसा निवासो	९.१९.१९	महिपत्तउ-महीप्राप्त	४.२.१७
महाउहि-महायुधिः, महायोद्धा	६.१४.१०	महियक-महीतल	१.६.२; ७.५.५

महिला-पहिला	५.७.२; ९.१.१६	माणिक-माणिक्य	४.८.१२; १०.१.१४
महिलायण-महिलाजन	२.१२.६	माणिकजडिय-माणिकजडित	५.१.२०
महिवद्-महोपति, भूपति	१०.१३.४, ११.४.७	माणिणि-मानिनी	३.१२.५; ८.१.१४
महिवट्ट-महोपृष्ठ, घरणिपृष्ठ	४.२२.२२; ५.१.२.२,	माणिय-मानित, स्वीकृत	२.९.११
वोढ पीठ	२.१०.१; ८.३.१६	माणुणञ-मान + चञत्	७.१३.२
महिस-महिय	५.८.१७	माणुस-मनुष्य	९.१५.१; १०.१.७.५
महिमि-महियो, महारानी	१०.१५.३	माणुसगोत्त-मनुष्यगोत्र	४.२.१
महिषी-महिषो (i) महारानी (ii) भैस	२.५.३; ५.९.४	माणुसत्त-मनुष्यत्त्व	१०.१३.६
महिहर-महोघर	८.७.१४, ११.४.५	साम-मामा, मातुल	९.१.८.९; १०.१.२.९
महीथल-महीतल	३.१४.१०	साय-मातृ	९.१५.६; १०.१.९.९
महोस-महि + ईष, नृपति	५.८.३२, ७.१३.१७	सायंग-मातङ्ग	५.११.१२; ७.६.३
महीहर-महोघर	९.५.५; ९.१२.१०	सायि-मातृ, माता	४.१.३; ११.३.५
महु-मधु	१.१०.११	सायरी-मातृ	९.१७.१
महु-मधु (महुवा) वृक्ष	१०.७.२	साया-माता	८.६.२
महुभर-मधुकर	८.१२.४	सायामाम-सायामामा, लक्षवेदी मातुल	१०.१.५
महुकोला-मधुकोला, वसन्तक्रोडा	८.२.१	सार-वृक्ष	५.८.१२
महुवड-मधुवट, मदिराकुम्भ	४.१७.१२	सार-कामदेव	१०.१.७
महुमत्त-मधुमत्त	८.१४.५	√सार-मारयु ^० इ	८.८.९; मारिऊण
महुर-मधुर	४.१५.३, ४.१७.११; ८.११.१४	६.१२.८	५.७.२५;
महुगखर-मधुर + खर	५.१.२७	मारण-मारना	२.२.३
महुरत्त-मधुरत्त्व, माधुर्य	१०.१.३	मारविञ्ज ^० य-मारामित, मरवा ढाला	७.७.२;
महुरयर-मधुरकरः (कर्तारि)	८.१३.१४	१०.१०.१३	
महुसंच-(i) मधुसंचय, मधुलत्र	९.१२.१८	मारि-मारकाट	५.३.३
महुसह-मधुरशब्द	३.१२.१७	मारिञ्ज ^० य-मारित	६.७.१३; ९.११.१३; १०.१.२.२
महुसत्ति-मधुरशक्ति	१३.३.३	√मारिञ्ज-मृ (कर्मणि) इ	९.४.१
महुस्यण-मधुसूदन (श्रेष्ठ)	१.५.२	मारिणि-मारिणी (स्त्री० विबो०)	२.१५.४
महेसर-महेस्वर	१.१०.७	मारय-मरुत्	११.८.१०
मा-मा (निषेवायें)	१०.२.६	मारय-मरुत् (i) हनुमानके पिता, (ii) पवन	३.१२.२
माञ-माता	९.१५.१०	मारयवेथ-मारुत् + वेग	५.२.४
माह-मातृ, मां	९.१५.२, ९.१६.५	माल-माला	२.४.२
माहहर-मातृगृह	८.१०.९	माल-माला, लक्ष्मी	१०.१.१२
माण-मान, सम्मान	२.२०.१२; ३.१२.५	मालह-मालती लता	३.१२.१०; ४.१३.११
√माण-मनु ^० ए (आत्मने०)	३.४.१०; िहि०	मालहूलय-मालतीलता (मुगाङ्कली रानी)	५.२.१३
(वहव०) १०.५.४; हुं (च० पु० वहव०)	८.१०.१७	मालतकण्ठय-माला + कणक, स्वर्णमाला	४.१२.३
माणदंड-मानदण्ड	५.८.३	मालव-मालवा (देश)	१.५.१; ९.१९.८
माणव-मानव	११.२.२	मालविणि-मालविनी, मालवदेशवासिनी	४.१.५.१२
माणस-मानस	३.१.७	मास-मांस	७.१.१०, १०.१.२.५
		माह-माघ (महीना) प्रथ० ४	१०.२३.१०
		माहव-माघव, वसन्त	४.१६.८

माहव-भाव (वृत्तनाम)	१.१०.२३	मुकटहास-मुवत + अट्टहास	७.६.७
माहुल्लिग-मातुलिङ्ग वृक्ष	४.२१.३	मुकणाय-(१) मुवतनाद (११) मुवतफेरकार	५.८.३५
माह्वेसर-माह्वेवर	४.१८.९	मुकविरोह-मुवतविरोध	१.१६.१०
मि-अपि ३.४.५; ७.११.११, ८.९.१०; ९.२.८, ९.६.८		मुकसद-मुवतगवद, नि.शब्द	१०.९.१
मिग-मृग	३.३.१०, ५.९.९	मुक-मुवत	१०.१५.१
मिगकडगपाञ्ज-पैतरा, देखें सं० टिप्पण, ५.१४.२२		मुक्त्व-मूर्ख	४.१७.४
मिगणयण-मृगनयना	९.५.१३	मुखचण-मूर्खत्व	९.५.२
मिच्चु-मृत्यु	५.५.१२	√ मुचमाण-मुच् + शानच्	९.१४.७
मिच्छत्त-मिच्यात्व २.६.८; २.८.८; भ्रं भ्रंभार		मुच्छ-मूर्च्छा	३.७.४
२.१६.४; मोह ३.७.१३		√ मुच्छ-मूर्च्छ, इर (ताच्छोत्ये) ६.९.८; ९.१३.१६	
मिच्छा-मिथ्या ९.१.१४, १०.३.१०; दंसणं दर्शन		मुच्छावसग-मूर्च्छावश + अङ्ग	६.११.८
१०.४.११; ११.७.८		√ मुच्छिञ्ज-मूर्च्छ, (कर्मणि) इ	९.१०.४
मिट्ट-हि० मेट, महावत	७.६.२	मुच्छिञ्ज-मूर्च्छत, मोहित	९.११.४
मिट्टंत-मिष्टत्व	९.१२.१६	मुद्ध-मुषित	५.७.२०
मित्त-मित्र	६.१२.४	मुद्ध-मुषित	९.१०.२३
मियंक-मृगाङ्क (राजा) ७.३.२, ११.२.३, षट्-प्रभु		मुद्धिगाह-(१) मुष्टिग्राह्य (११) मूठ	४.१३.४
५.१२.९		√ मुद्ध-मुक्त, मुद्धि	७.३.१३
मिरियविल्लि-हि० मिर्चकी बेल	१.७.६	√ मुण-ञ, इ ५.१३.१६; मुण्ड ६.१०.९; उ	
√ मिल-मिल, इ० (बहुव०) १०.२५.११; मिलि		४.१२.११; (वर्त० द्वि० पु० एकव०)	
९.११.१४		९.५.३; इ (विधि०) ११.३.७; मुणि	
√ मिलंत-मिल + शत् १.१२.५, ४.१५.१४; ७.६.३		(विधि०) ३.९.१२; ११.९.६; मुणिवि	
मिलण-मिलन, मिलना	७.५.११	८.६.११; १०.१७.१२; मुणिवि ३.९.१	
मिलिअ ष-मिलित ४.१०.१२; ८.८.१४; १०.४.११		मुणिवि ९.१७.५	
१०.८.३		√ मुणंत-ञ + शत् ९.६.१०	
√ मिल्ल-मुच् मिलि ४.२१.१९; ७.७.१;		√ मुच-मुच्, मुचवइ १०.२०.८; १०.२३.४;	
१०.१०.८		मुचवए ३.४.५; मोत्तूए ८.२.१०	
मिल्लिय-मुवत	८.६.३	√ मुच्चत्त-मुच् + शत् ४.१९.४	
मिस-मिप्, वहाना	४.१७.९; ८.१६.६	मुणाल-मृणाल	४.१४.१७
मिट्टण-मिथुन उल्ल (स्वार्थे)	४.२०.१; ८.१४.१६	मुणि-मुनि २.१५.९; दंसण-दर्शन ३.६.५; पुंगव	
मोण-मोन	९.५.८; १०.१०.९	२.१.३; १०.२४.२; मग-मार्ग १०.२२.१;	
मुञ्ज-मूत	५.१३.६; १०.१२.८	वयण-वचन २.१२.१	
√ मुञ्ज-मुच्. मुञ्जवि २.१८.११; मुञ्जि १०.३.७,		मुणिद-मुनीन्द्र	२.११.४; २.१९.८
मुएवि ८.११.३		मुणिय-ज्ञात	६.११.७; ९.१४.२
√ मुञ्जंत-मुच् + शत् २.५.१६		मुणी-मुनि	२.६.६; २.६.७
मुद्दय-मूत	१०.१४.७	मुत्त-मूर्त्त	१०.४.२
मुड-मूत	३.१३.१२; ९.११.२	मुत्तदुवार-मूयद्वार	९.१.११
मुंड-मुण्ड	६.२.५; ६.१०.२	मुत्तनिहाण-मूयनिधान	११.६.३
मुण्डिय-मुण्डित उ० (स्वार्थे)	२.१८.१०	मुत्ताहल-मूयताफल	४.१०.५; ७.४.२
मुक्क-मुवत	१.१७.२; ५.७.१४; १०.१४.२	मुत्ति-मुवित, त्याग	१.१.७
मुक्कञ्ज-मुवत	९.८.१७; १०.२०.६	मुत्तियमय-मुवतमद	५.१.१९

√रभ-रब्, रएव्पिणु ७.१०.३; रएव्पिणु १.१०.९	√रंघ-रब्, राव्ना °इ	९.२.१०
रइ-रति ५.१३.१५; ९.५.४; ११.१५.९	रंघणी-राघनेवाली, रसोई बनानेवाली	५.७.१६
रइल-रचित १.४.९; ३.९.४	रधिणी-रविनी, पाकघाला	५.११.४
रइकाममिहण-रतिकाममियुन, रति-काम युगल	रंभा-रम्भा, कदली	४.१३.१६
४.१६.९	√रक्ख-रब्, °इ ११.१४.११; °हि (विधि०)	२.२.९, ७.९.१२; ११.२.८
रइल्लेय-रतिखेद, सुरतश्रम	४.१९.१४	
रइणाडय-रतिनाटक	८.११.५	रक्खण-रक्षाण; रक्षकः ३.११.१०; १०.१४.२
रइणाह-रतिनाथ, कामदेव	४.१३.५	रक्खस-राक्षस ६.७.१४, ८.३.१२
रइथावण-रतिस्थापकः (कर्त्तरि), रतिभाव उत्पन्न करनेवाला ३.११.१५		√रक्खिज्ज-रब् (कर्मणि) °इ ११.२.१ २.१४.४, ३.४.९
रइदाह-रतिदंष्ट्रा ३.७.१४	रक्खिय-रक्षित (°ए आत्मने०)	१.११.१३
रइमंग-रतिमङ्ग ७.१.१	रक्खा-रध्या ४.११.७; १०.१५.११	
रइय-रचित ५.१.२५	रक्खासुह-रध्यासुख ९.११.२	
रइरंघी-रति + रन्धी, रतिरन्ध्र, कामस्थान ४.१.११	रज्ज-राज्य १.११.१९; ३.८.११	
रइरस-रतिरस ३.१२.४; ४.१५.४	रज्जघर-राज्यघर, राजा ३.२.१२	
रइराम-रतिराम, कामदेव, रमण ४.१३.१६	रज्जु-राज्ज (प्रमाण) ११.११.१	
रइवह-रतिपति, कामदेव ४.९.७, ४.१२.१६	रज्जु-(i) राज्य (ii) रज्जु-रस्ता ६.१२.४	
रइवह्णय-रतिपतिराज कामदेव ४.१३.१२	रइ-राष्ट्र ९.१९.३	
रइवंत-रति-प्रोति + वान् ४.१४.१३	√रइंत-रट् + शतृ ७.६.२०; ७.१०.१०	
रइवर-रतिवर, कामदेव १.१०.१२, ४.६.११	रणाणिय-रणरणाणित ४.१५.९	
रइवसण-रतिव्यसन ९.७.२	रणंगण-रण + अङ्गना, रणदेवी; रण + बाङ्गन, रणभूमि ६.१३.३, ७.२.१	
रइविडव-रतिविडम्बना ९.१.७	√रणसणसणंत-रणसण्ण (व्वन्त्या०) १.१४.७	
रइविह्लंघळ-रतिविह्लळ ८.११.७	रणरण-रणरण (व्वन्त्या०) २.१८.१२	
रइसुह-रतिसुख १.१.९, १०.१९.५	रणरणस-(वे) उद्विग्न होना १०.१.६	
रइ-रति, आसक्ति ९.१६.६, २.७.७	रणरणिय-रणरणाणित ध्वनि ५.७.१८	
रव-रव ३.७.४, ७.२.३	रणसूर-रणसूर ३.२.१३	
रव-रज ६.४.१०, ६.६.१	रवा-रवत ९.१२.९	
रउह-रौह ५.६.७, ६.१.१३	रत्त-रवत + वत्, रवत, आसक्त ८.१४.५	
रउरव-रौरव (नरकभूमि) २.१८.६	रत्तंइण-रत्तचन्दन ४.११.४	
रंग-रङ्ग, आसक्न ४.२१.१४	रत्तंवर-रत्ताम्बर ८.१४.१४	
रंगावलि-रङ्गावली १.९.६	रत्तकण-रत्तकण ६.७.६	
रंगिय-रञ्जित, रंगीले ६.४.७	रत्तकिरण-रत्तकिरण ५.७.२	
√रंज-रञ्ज °इ ५.१३.१९; °मि २.१५.१४;	रत्तपोच-रत्तपोच, लालवस्त्र ६.२.६	
रंजेसइ (मवि० तु० पु० एक व०) १.५.७	रत्ताणण-रत्तानन ९.६.९	
रंजण-रञ्जनः (कर्त्तरि) ९.१२.१६	रत्तासोय-रत्तासोक ८.५.६	
रंजणय-रञ्जनकः (कर्त्तरि) ९.१६.९	रत्ताहर-रत्ताघर ५.२.१८	
रंजिय-रञ्जित १.२.१२, १.४.४; ९.१६.२	रत्ति-रति ४.५.९; ९.१७.७; १०.२५.७	
रडिय-रडित, विषवाकृत ६.२.६	रत्ती-रत्ता, आसक्ता (स्त्री० विशेष०) २.५.५	
रंघ-रन्ध्र १.८.१, ४.६.३		

√रस-रम्, °ह १.११.१६; रसति (बहुव०)	७.१.११; रसहिं (बहुव०) ५.१.५
रमण-नितम्ब	१.७.९
रमण-(तत्त्वम) कामस्थान	१.१.११
रमणस्थल-रमणस्थल,	८.११.८
रमणसति-रमणशक्ति	१०.२.२
रमणि-रमणी	२४.७; १.२.१२, १० १.१२
रमणुल्ल-रमण + उल्ल (स्वायें)	१.१०.१२
रमाडंल-रमा (लक्ष्मी) + आकुल	
शोभापूर्ण	५.१.६; ५.६.१७
रमिय-रमित	३.१ १९; ४.१८.१३
रम्भ-रम्भ	१.११.१७
रय-रज, पराग	४.१६.६
रय-रज, धूलि	६.६ ३
रय-रज (स्त्री रज)	१०.१५.७
√रय-रच् 'मि	८.५.१३, ९.८ १५;
'वि	७ १०.२२
रयजल-रजजल, धूलिरूपी जल	५.६.१६, १०.१५.७
रयण-रत्न	२.१८.५; ४.१२.१५; ११.१३.१
रयणचूल्-रत्नचूल् (विद्याघर) रत्नशेखर	५.११ १९;
६.१०.५	
रयणत्तय-रत्नत्रय	१.१.७
रयणपद्म-रत्नप्रभा (नरक भूमि)	११ १०.४
रयणमाळा-रत्नमाळा	७.१२.४
रयणरिद्धिल्ली-रत्न + ऋद्धि + इल्ली	
(मनुष्यार्थे), रत्नऋद्धि युक्त (स्त्री०	
विशे०) ३.८.६	
रयणचिद्धि-रत्नवृद्धि	३.६.१०
रयणसिद्ध-रत्न + शिल्प, रत्नशेखर विद्याघर	
५.३.१, ५.१२.११	
रयणायर-रत्नाकर, सागर (आयु प्रमाण)	
७.२.१३; ११.१२.३	
रयणायरत-रत्नाकर + अन्त, सागर पर्यन्त	१.१३.१
रयणाहार-रत्न + आघार, रत्नवारक	४.६.१३
रयणाहिभ-रत्नाधिप	३.३.१२
रयणि-रजनी १.१.७, ९ ४.१३; °माण-रात्रिप्रमाण	
३.१२ ३	
रयणुद्धरण-रत्न + सद्धरण	३.१.१४
रयणुद्धयभ-रदन + रुचि + क (स्वायें) दन्त रुचि, दन्त-	
दोषि ३ २.११	

रयसर-(i) रज + भार, हृलिसमुह	
(ii) रज + भार, (स्त्री) रजलाव	
(iii) रत + भार, सुरत आवेग	६.६.१०
रयसर-रतभार, सुरत आयास	१.१३.१८
रय-रव, वेग	१.६.९; ४.१९.८
रवण-(i) रमण, कामी (ii) रमण-नितम्ब	१.२.१७
रवण-रमण-रमणीक	५.३ ८
रवण-रमणीय, रमणीक	२.८.१३, ३.१३.६
रविकंठ-रविकान्त, सूर्यकान्तमणि	१.९ ७, २.१.९
रविग्रहण-रविग्रहण	८.१३.१०; ९.८.६
रविश्लेण-रविश्लेण (श्रेष्ठि)	३.१३.१
रस-रस, रुधिर	६.१४.१२
रस-रस, आस्वाद, आनन्द	८.१२.१५
रसक्रिय-रस + अङ्कित	५ १४.२४
रसंत-रस + अन्त, रसान्त, उत्कृष्ट रस	५ १.२६
रसगिद्धि-रसगुद्धि	११ ८.८
रसचाभ-रसत्याग	१०.२२ ५
रसद्द-रसादय	५.८ ३४
रसद्धिभ-रसादय	७.११.५
रसद्धिदय-रसादय, रसिक	६ १३.२
रसण-रसन (वानर ध्वनि)	७.७.२
रसण-रसना, मेखला	३.८.३
रसणा-रसना, जिह्वा	७.१.१
रसदित्त-रसदोष	९ १४
रसध-विय-रसप्रीणित	६.९.९
रसभरिय-रसभरित	९.१८.८
रसमठलिय-रसमुकुलित-आनन्दवश निमीलित नेत्र	
३.१.२	
रसा-चर्वा	७ १.१७
रसायण-रसायन	१० ५.७
रसिय-रसिक	६.२.८
रसियभ-रसदा, रस (फल) वेनेवाली	४.९.६
रसिकल-रस + इल्ल (मनुष्यार्थे) रसयुक्त, रसीला	
८.१३.९	
रह-रय	६.२.९; १०.१९.१४; ११.१.९
रहचक्र-रथचक्र	५.७.१३
रहस-रभस्, उत्कण्ठा	९.८.५; ९.१६.३
रहस-रहस्य, एकान्त	९.८.१५
रहस-रहस्य (गुप्तवाती)	१०.१५.१०
रहसिभ-रभसित, उत्कण्ठित	५.६.९; ५.१०.१६

रहि-रयी, रयवान्	६.७.८	रायगिह-राजगृह (नगर)	३.१४.२१, गेह ४५४
रहिम य-रहित	१.७.६;२.६.४	रायदोस-राग + द्वेष	२.२०.२, ११.१८
रहुकुल-रघुकुल	८.३.७	रायमार-रागमार	१०.१८.१२
रहुवह-रघुपति, राम	५.१३.२९	रायविरोह-राग + विरोध, रागद्वेष	८.७.१०
राज-राजा	३.१०.८	रायरायाहिन-राजराजाविष, राजाधिराज	१०.१९.६
राज-राग	१०.८.१४	रायागमण-राजा + आगमन	५.१०.१३
राजपरिग्रह-राजपरिग्रह, राजसैन्य	६.१.१४	रायाण-राजन्यक, योद्धासमूह	५.१.१७
राजवारिज-राजद्वारिक राजसेवक	५.१.२२	रायाणुमग-राज + अनुमार्ग, राजमार्ग	४.१६.१
राहज-राजित	१.१.४	रायाहिराय-राजाधिराज	१.१३.१
राहजायरण-राजिजागरण	४.८.१०	राव-रव, जल	६.७.१;७.४.१५
राहय-राजिन, राजित	६.१४.१३	रावण-विजेषशोषवृद्ध	५.८.७
राई-रागी	९.१.१२	रावल-राजकुल	७.१२.१०
राडत्त-राजपुत्र	३.५.१३	रिड-रिपु ६.८.४, ७.२.८; वरिणो-गृहिणी	१.११.६
राडल-राजकुल ६.१.९; ६.४.३; ७.१२.१०; वार-		४.१८.२; रमणी	१.११.१७, वल
द्वार ५.१२.५		७.३.७; सह-समा ७.३.१, ७.११.११;	सेपग-सैन्य ६.२.१
राड-रट, चिल्लाहट	५.७.२०	√ रिचवेज-रिच (कर्मणि) इ	९.१२.१९
राड-राइ (देश)	९.१९.१३	√ रिजज-री (कर्मणि) इ	३.१२.५
राणड-राणा, राजा	७.१३.५	रिण-शृण	६.८.३ ६.१४.१६
राणि-रानी, राजी १०.१५.११; यण-जन	१.१२.१	रित्त-रिवत	९.८.२०
राणी-रानी, राजी	८.४.४	रिद-शृद, समृद्ध	१.९.११; ९.१३.१३
राम-रामा, रमणी	८.१४.१३	रिदि-शृदि	३.१.५; ३.६.४
राम-रमणीय	४.५.१५	रिदह-शृदपम्	१ मं १२.४.४.३
राम-रामचन्द्र	३.१२.१	रिसि-शृपि २.८.११; २.१८.७, चरण	३.५.३;
रामथ-रञ्ज, मनोरंजन कराना	१०.१९.३	संव २.१२.१२; २.१६.२	
रामा-(नत्सम) रमणी	३.१२.१	रीण-शरित, उ (स्वार्थ)	२.६.१०
राम-राजा	५.१३.२८	√ रुजंत-रुद् + शतृ	२.५.१७
राय-राग, स्वर	८.१६.१२	रड-रञि	८.२.१५, १०.१८.१०
रायअंतेडर-राज + अन्त.पुर	५.१.१०.१९	रुहर-रुचिर	९.१२.१५
रायडत्त-राजपुत्र	१०.१८.३	रुई-रुचि	१.११.१७
रायडल-राजकुल ९.१३.१२; १०.१३.५;		रुंज-राद्य	५.६.१०
कञ्ज-कार्य प्रथं ९; कणगा-कन्या		√ रुंज-रुञ्ज, रुंचति (वह्व०)	७.४.३
३.४.७; कुमार ४.९.११; त्याण-राज		रुंजिय-रुञ्जित	१.१४.८
आम्वान, राजसमा ३.७.११; ५.२.५;		रुंड-रुण्ड, घड	६.२.५
कुहिय-कुहिता ७.१२.७, वरिगह-		रुंद-रुञ्ज	४.२१.२
परिग्रह ५.१०.२३; पुरोहिज-पुरोहित		रुं रुं रुं-रुग्ग्या०	१.१४.८
९.१०.२३; लच्छि-रुद्धी ३.८.६;		रुक्क-रुक्क, हिं रुक्क ४.१६.८, १०.५; संत-	
लीक-लीला ४.९.११; १०.१३.३;		सन्तति ४.८.१५	
वाणी ५.५.१३; सासन-शासन		√ रुञ्ज-रुञ्ज इ	२.११.४.३.१४.१८, ९.१५.६
५.१.१७; मुञ्-मुत्त ३.९.७			

ककखणक-लक्षणाङ्क	वीरकविका	दूसरा	अनुज	कलिय-कलिन	८.१४.१९; ९.१८.६, °कण्-°कण
			प्रस० १४		२५.५, °खर-°खर ७ १.४, वाहु
ककिलख-लक्षित	१.१५.८, ४.४.२; ६.१.१८				१०.२१ ३
√ककिलख-लक्ष् + णिच् (स्वार्थे)	(कर्मणि) °ह			कव-कव, कण, किचित्	९.१३.११; १०.१७ २०
	१ २.१५; २.१४.४			कवण-(1) लावण्य (11) लवण, धार	८.१३.११
ककिलय-लक्षित	५.२.१०, १०.८.५			रूपणणव-लवण + अर्णव	१.१०.१४
√ककिलय-लक्ष्, °ह ११.७ ३; लमिगवि	१० १० ४,			कवकिय-लपलपित	५.१४ १३
	लमोसह (मवि० तृ० पु० एकव०) ७.१२ ८			कवकि-कवली वृष	४ १६.३
लमग-लना (स्त्री०)	६ ७.८, १०.१०.१४			कविय-लपित, कथित	९.१६.३
लमगभ-लन	१०.१९.११			√कह-लम् °ह २ २.३; ७ १० २१; ११.१५ ९,	
√कमगं-लम् + शतृ	१ १.२, ३.९.७			°मि ९.१३.७; १० ११.११; लहिचि	
√कगिर-लम् + इर (ताच्छोत्ये)	९.१२.९			८.२ १; १० ४.१५; लहिचि ११ १३.७,	
लमगी-लना (स्त्री० विशेष०)	४.१६.११			लहेपिणु ८ ७.३	
कच्छि-लक्ष्मी	२.१०.६; १०.१.१६			कहु-लघु, शीघ्र	८.२.१३; ८.१५.४
कच्छिपउत्त-लक्ष्मी + प्रयुक्त	४.३.१०			कहुभ-लघु + क (स्वार्थे)	३.७.१; ८.४.१४
कच्छिफल-लक्ष्मी + फल	५ ४.१८			कहुण-लघुन, लघुकः	प्रस० १३
कच्छिलख-लक्ष्मी + लक्षित-कान्तितमान्	देहयुक्त			कहुवारभ-लघुक + वारभ (स्वार्थे), अनुज	३ ५.७
	६.१०.६			कहु-लघु-	९.१७.१३
कच्छी-लक्ष्मी	१.१५.९, १.१८.१			√का-ला °हवि	९.७ १३
√कज-लस्ज् °ह	५ १३.२३			काहय-लात	४.२०.३, ८.४.६
√कज-लस्ज (विधि०) °ह	१०.१० १४			काहवेस-लातरेषु	९.१९ ७
√कजमाण-लस्ज् + शानच्	२.१९.६			√काय-लाग्य् °ह	३.१२.१६
कजकिभ-लज्जा + अङ्कित	१.१४.१६			लायण-लावण्य	२ ४.३; २.१८.९; ४.१४.११,
√कजिज-लस्ज् + णिच् °ह	९.१.१२, ९ ४.१			°तरंग-°तरङ्ग २.१७.८, °रस २.१८ ४	
कङ्-क्षे) प्रधान	५.१४.९			काल-कार	८.१५ ९
कङ्कि-यष्टि, हि० लाठी	३.११ ६			कालस-कोमल	४ ७.३
कङ्क-लटभ, सुन्दर, लाडला	७ १.५			कालामक-कारमल	९.१.१०
कङ्कहा-लटभ (ललित) + अङ्क	२ १४.५			कालाविक-कार + आविल	२.१८.१०
कङ्क-लव्य ७.७.१, ८.६.६, °वव ६.८.८; °वर १.४.६				√काव-लग् + णिच् °ह ४.१७.१८; °हि (विधि०)	
°रस ८.१०.१७; °सस-लव्यवास, प्रसंसाप्राप्त				१०.१५.८	
२.५.१				कावण-लावण्य	४.११.१४, ११.१ ७
√कम्-लम् °ह (आत्मने०) ९ ९ १४, १०.१० १२				काविभ-लगाया	१० १४.५
°हि (बहुव०) १०.५.८				काह-लाम	८.१०, १४, १०.१४.६
कखड-लातर १२.३; ७.१०.२३; ९ १३.५; १०.२१.४				√कित-ला + शतृ	८.६.१२; ८.७.१५; °व
कखाहर-लातागृह	२.४ ११			८.९.१७; लिताहं ८.६ १२; लिमु	
कखण-ललना, जिह्वा	९ १०.८			८ ११ १८	
√कखं-लपलप् + शतृ	९ १०.८			कित्त-लिप्त, हि० लीपना	२.९.२; ४.१३.१४
कखिभ-ललित	२ १५.३, ५.२ ४			किपिभ-लिप्त	४.१०.३
कखणिज-ललनीय	२.१०.६			√किह-लिप् °ह ८.१५.९, १०.७.९, °मि	
				४.११.१३	

लिहिम °य-लिखित	७.८५;८.९.१२
लीण-लीन	१.१८.१३, २.१५.१
लीकट-लीला + वत्	४.२०.१३
लीकावद्-लीलावती, वीरकविकी तीसरी परती प्रश० १६	
लीह-लेखा, रेखा	५.१४.१३
लीभ-लून	९.११.८
लीधिय-लुञ्जित	२.१६.८
लीठ-लुठकः, लूटनेवाला	९.१९.६
लीवि-लुम्बि वृक्ष	४.२१.२, ५.१०.५
लीक-लुञ्जित	५.८.२७
√ लुक्-नि + ली °ह २.६.११; °मि	९.१०.९
√ लुण-लु °मि	३.११.८
लुणिय-लुणित	६.३.१०, ६.७.५
लुह-लोघ्न वृक्ष	४.१०.७
लुह-लुघ्न, हि० लोभी	५.१३.१५
लुद्धि-लुघ्नता	९.१४.१०
लुघ-लून	७.३.३
√ लुक्-लुट् + धत्	६.१४.१२
लुलाविय-लुलावित	९.१८.३; १०.१६.५
लुडिय-लुण्टित	५.३.१०
लुरण-लेदन, हरण	८.८.८
√ ले-ला, लेह २.१८.७; लेमि ९.८.१६; लेवि ८.४.९; १०.८.२; लेसह (भवि० तु० पु० एकव०) ९.१५.१३; लेसमि (भवि० उ० पु० एकव०) १०.१४.७	
√ लेंत-ला + शत्	३.७.१०; ११.३.३
लेव-लेप	९.७.१२
लेस-लेश, अल्प	१.२.२; १.१८.५
√ लेहु-लम् हु (लाजा०) लमताम्	५.१४.८
लेहण-लिहन, चाटना	९.७.१६
लोभ-लोक	७.१२.१४, ९.२.८
लोद्विय-लुण्टित, मुषित	५.३.८, ६.४.१
लौय-लोक, लोग	३.१.२१; ८.५.१०
लौयम-लोकाय, लोकान्त	११.१२.१०
लौयण-लौचन	१.१.६; ३.९.१७
लौयणिद्-लोकनिन्द	५.४.३
लौयपवर-लोकप्रवर, लोकोत्तम	८.१२.१३
लौयवाल-लोकपाल	२.११.६; १०.१५.२
लौयाणुरूप-लोक + धनुरूप, लोकेस्वरूप	११.१०.१

लौयायार-लोकाचार	८.८.३
लौयालय-लोकालोक	१०.२४.६
लौयाहाण-लोक + आख्याय	५.४.१३
लौयाहिव-लोकविप, लोकपति	३.१.१०
√ लोक्-लुट्	४.१९.१८
√ लोक्माण-लुट् + शानच्	४.२१.४
लोह-लोभ	३.९.१६; ९.५.४
लोहडर-लोहपुर	९.१९.११
लौहिणि-(i) लोमिनी (ii) लौहिनी मृङ्खला	१०.२०.८
लौहिय-लौहित	४.११.४

[व]

व-इव, वत्	१.१४.११, ११.१५.६
वअ-व्रत	२.८.८
वह-पति	६.११.३; ७.१३.१०
वहट्ट-उपविष्ट	७.१२.१०, १०.१४.६
वहतरणि-वैतरणी (नरक नदी)	११.४.३
वहवठम-वैदर्भ, विदर्भ (देश)	९.१९.३
वहथर-व्यतिकर, प्रसङ्ग, वृत्तान्त	७.११.९, ९.१५.११
वहर-वैर	१.१८.३; ९.१९.७
वहर-वज्र देश	९.१९.७
वहराय-वैराग्य	८.९.१७; १०.१८.१
वहरायर-वज्राकर, वज्रमणिकी खान	८.१२.१०; वज्राकर देश ९.१९.३
वहरि-वैरिन्, वैरी	६.१.१४; ७.१०.८; ८.८.५
वहवस-वैवस्वत, यम	४.२०.१३; ७.१२.२
वहवाह-विवाह	८.८.१९
√ वहस-उप + विश्, °सरिचि	२.१६.१२; ५.१२.२३, वहसरचि ३.७.११
वहसरिय-उपविष्ट	९.१८.८; १०.१६.१०
वहसवण-वैश्रवण (श्रेष्ठि)	४.१२.५
वहसाण-वैश्रवानर	६.६.२
वहसारिभ-उप् + विश् + ल्यप्, वैठाया	५.१.५; ७.१३.७
वओहर-वृत्तघर, दूत	५.१३.१२
वंक-वक्र, कुटिल, वंकी (स्त्री० विद्ये०)	४.१८.११; ५.९.१६
वंकअ-पङ्कज	४.२१.६

वंकाकाय-वक्रालाप, वक्रोचित आलाप	४.१७.२३	वच्छयल-वक्षतल, वक्षस्थल	२.५.१७
वंकुञ्जल-वक्र + उज्जवल	४.१३.४	वच्छर-वत्सर, सवत्सर	९.१७.१०
वंकुडड-वक्र, हिं वाँका	४.१५.४	वच्छायण-वात्स्यायन (कामसूत्र)	८.१६.११
वंकुडिय-वक्र, हिं वाँका	९.१८.३	वज्ज-वज्ज	४.१५.२५, ११.१८
वग-वज्ज (देश)	९.१९.१४	√ वज्ज-वृज् °ह	३.१२.१०
√ वंच-वञ्च्, वचिवि	२.१५.१२, १०.१०.३	√ वज्जंत-वृज् + शतृ	८.९.९
√ वचल-वञ्च् + शतृ	५.१४.२०	वज्जिभ °य-वजित	४.३.३; ४.२०.४
√ वचमाण-वञ्च् + शानच्	६.१०.८	वज्जथंत-पु० वज्जदन्त (राजा)	८.२.२३
वंचय-वञ्चक	९.१३.३	वज्जजासणि-वज्ज + अशानि	६.५.९; ८.१०.३
वचिभ °य-वज्जित	१०.३.१०; १०.१०.१०; १०.१८.२	वज्जिय-वादि	५.६.११; ८.१२.२
√ वंचिज्ज-वञ्च् (कर्मणि) °ह	११.१४.२	वट्ट-(1) वत्सं मार्ग, हिं वाट, (11) प्याळा	८.१३.१२
√ वंछ-वाञ्छ् °ह	२.६.११; ९.४.१६; ९.१५.१;	√ वट्ट-वृत् °ह	२.१४.६, ८; ६.१.१६ ५.११.८; ६.१४.८; ९.१५.८; १०.४.१३; °ए (आत्मवे०) १०.१९.१४
°हि (विधि०) ९.४.१२		वट्टिया-वतिता, प्रवतिता (स्त्री०)	१०.१९.१४
वंठ-(दे) घूर्त, ठग	४.२१.१०	वट्टुल्ल-वतुल्ल	२.१४.८
√ वंढ-वन्द् °ह	५.१.११.५, वदेवि १.१८.५; २.१९.९	वट्ट-पृष्ठ	५.१४.२१
वंदण-वन्दना	२.१६.१२, ३.५.३	वट्टी-पृष्ठ	५.१४.२०
वंदणहत्ति-वन्दना + भवित	८.४.८	वड-(दे) वडा	९.१०.२१
वंदणा-वन्दना	२.३.५	वडवानल-वडवानल	७.२.१३
वदारभ-वृन्दारक, देव	१.१.३.८	वड्ढ °य-वटुक, ब्राह्मणपुत्र	२.४.१२; १०.६.२
वंदि-वन्दी	८.७.४, १०.१९.१५	वड्ढफर-(दे) वडा फलक	४.२.८
वंदिभ °य-वन्दित	२.१२.१३; ३.१३.७; ४.१.५; ४.४.९; ७.१३.१७	वड्ढहर-वड्ढर, काशीके पास एक गाँव	९.१९.१६
वंदियसवण-वन्दितभ्रमण	३.३.१७	वड्ढभ-(दे) वडा	१.१३.८
वंदिर-वन्दित् + र (स्वार्थे), वृन्द, समूह	८.७.४	वड्ढुल्ल-(दे) वडा	१०.१६.६
वंस-वंश, कुल	१.५.२; ५.१३.१७	√ वड्ढ-वृच् °ह	९.१६.६
वंसपन्न-वंशपर्व, बाँसकी ग्रन्थियाँ	५.८.२	√ वड्ढंत-वृच् + शतृ	४.१७.१८
वंसि-वंशी	५.८.७	वड्ढमाण-वड्ढमान	१.१३.१०; २.८.१३
वगग-वर्ग	७.६.१८	वड्ढमाणंकिन्त-वड्ढमान + अङ्कित, वड्ढमान नामक ग्राम ८.२.२०	
√ वग्ग-वल्ग् °ष्ट	५.१३.१४	वड्ढमाणु-वड्ढमान (तीर्थकर) १.१.१; जिन प्रश० ७	
√ वग्गंत-वल्ग् + शतृ	१०.९.३	√ वड्ढार-वृच् + णिच् (स्वार्थे) °ह	७.११.१५
वगिगय-वगित	६.४.७	वड्ढारिभ-वर्धापयित	६.१२.६
√ वगिर-वल्ग् + हर (ताच्छील्ये)	७.६.१३	वड्ढभ °य-वड्ढित	१.१३.५; ३.८.२; ४.१४.२२, ५.१४.५; १०.८.५ ७
वगुर-वागुरा, पशुओंको फँसानका जाल	४.१३.२, ५.८.२५	वड-वठ, मूर्ख	९.४.१२
वगव-व्याघ्र, हिं वाघ	२.१३.९, ५.८.१५	वण-व(ह)न, मुच	९.११.३
√ वग्ग-वृज् °मि ९.५.१३; °सु (विधि०) ८.६.२		वण-वन ५.८.२४; १०.१३.१; °करि-वनहस्ति	
√ वग्गंत-वृज् + शतृ	४.२१.२; १०.८.३	५.१०.४; गड-वनगज १.३.३	
वग्ग-वक्ष (स्थल)	६.१.४, ६.१३.३, ७.३.५	वणघट्ट-बुनार (नगर)	९.१९.१५
वग्ग-वत्स	२.१२.१०		

वणफल-वनफल, कार्पासफल कपासका फूल	१.८.४	वयगिज्ज-व्रतनिमित्त	३.८.१३
वणमाल-वनमाला (राजी)	३.३.१५, ३.८.३	वयगिभम्मल-व्रतनिर्मल	३.९.१८
वणवर-वनवर	५.८.५; ११.४.५	वयणीय-वचनीय, निम्ब	५.३.१५
वणराई-वनराजि	८.१४.६	वयणुल्ल-वदन (मुख) + उल्ल (स्वार्थे)	५.२.२१
वणासह-वनस्पति	१.१३ ३; ४.८.१४	वयतरणी-वैतरणी	२.१३.१३
वणिञ्ज-वणिकूपत्र	४.१४.१२, १०.७.५	वयधार-व्रतधारक	२.४.५
वणिण्दण-वणिकन्दन	४.१.७	वयमर-व्रतभार	१०.२१.१
वणिय-व्रणित	९.१२.७	वयविद्धि-व्रतवृद्धि	१०.२२.७
वणिय-वणिक	९.१९.१६	वयविमल-व्रतविमल	२ २०.५; ८.११.१८
वणिवग-वणिकवर्ग	१०.१८.९	वयस-वयस, वय.	२.१८.४
वणीस-वणिक + ईश	३ ६.९, ४ २.२	वयसील-व्रत + शील	८.२.१५
√ वणण-वर्ण + णिच् (स्वार्थे) इ ४.१०.२, ४.२२.२५		वयोवासि थ-व्रत + उपवासित	२.१९.५
उ (त्रिधि०) ८.१.५; वणिण्ण १.१८.१		वयोहर-वृत्तवर	८.१०.१; ८.१०.९
√ वणिज्ज-वर्ण + णिच् (स्वार्थे) (कर्मणि) इ १.६.४		ववहृत्-वरयिता, वर, वृह्वा	२.१२ १४; ७.१२ ९;
वण्ण-वर्ण, शब्द	८.२.७; १०.१.१०		९ ८.१
वण्ण-वर्ण, वर्णन, कीर्ति	११.१.२	ववहृत्ती-वरदित्री (कर्त्तरि), वरण करनेवाली	३.८.८
वण्णण-वर्णन	७.२.९	वरंग-वर + ङङ्ग, वराङ्ग, नितम्ब	४.१९.६;
वण्णुकरिम-वर्ण + उत्कर्ष	१.५.१६		४.१९.११
वत्त-वृत्त, वृत्तान्त	५.१२.८, ६.११.७	वरंगचरिभ-वराङ्गचरित	१ ४.३
वत्थ-वस्त्र	२.९.१९, १० १९.८	वरच्छि-वर + लसि	६.१३ ३; ९.९ १
वत्थाह-वस्त्र + आदि	१०.९.१०	वरताज-वर + तात	८.९.५
वत्थु-वस्तु १०.४.१२, १०.९ १०; °रूव-°रूप		वरयत्त-वरयिता, वर, वृह्वा	८.१४.३
१ १८.१२; °सल्लव-स्वरूप ९.१.१४;		वरलच्छी-वर (श्रेष्ठ) + लक्ष्मी	४.६ १२
१०.२०.९		वरवण्ण-वर + वर्णक, द्युतविशेष	४.२.९
√ वद्धाव-वृद्ध + णिच् (स्वार्थे), हिं वघाई देना,		वरवहुय-वर-वधू	९.१४.५
मि १.१३.८		वराभ थ-वराकः, वेवारा ७.७ ७; १० ९ ७;	
वद्धावभ-वद्धापिक. (कर्त्तरि)	१.१४.३; ४.१५.२		१०.२६.७
वद्धावण-वद्धापिन, वघाई	४ ७.१२	वराढ-व्रार (शान्त)	९.१९ ४
वद्धावणा-वद्धापिना	४.८.४	वरि-वरम्, अच्छा	२.१५.११; ९.३.१; ९.५ २
वप्प-वाप, पितृ	८.६ ४	वरिष्ठ-वरिष्ठ	५ ८ ४; ८.१०.६
वप्पल-व्याप्त	२.९.९, ७ ९.१०	वरिस-वर्ष, शब्द	२.५ १०; १०.१७.२
वप्पमह-वग्मथ	८.१४.२०, १०.८.९	√ वरिस-वृप् °इ	९.९.९
वय-व्रत	२.१२.१, ३.६.२	वरिसण-वर्षण, हिं वरसना	७.९.१०
वयस्सग-व्रतलङ्घ	१०.२६.१०	वरिसा-वर्षा	६.६.८
वयण-वदन, मुख	३.४.१, ४.१९.९	वरेदीसिरी-वरेग्र (श्री), उत्तरी वगाल	९.१९ १३
वयण-वचन	२.१०.७, १०.२.८	वलज-वलय, मण्डल	६.३ २; ८.८.१७
वयणमहारा-वदनमदिरा	४.१७.३	√ वल-वल, वलु (लोट्), वलु-वलु, लोटो लोटो	
वयणरा-वदनरङ्ग मुखरूपी रङ्गमञ्च	३.१.४		६.१२ ६
वयणाभास-वदनाभास, मुखाभास	१०.४.६	√ वल्लं-वल्ल + गतृ	५ १ २३; १०.१०.४
वयणासव-वदनासव	९.१.९	वल्लग-अवल्लन	६ ७.१०

बलयार-बलयाकार	११.११३	वाङ्किय-पुतली	९.१.६
बलिय-बलित, मरित	१.११.१;	वाङ्कि-वातुल (बवंडर)	६.१४.२
बलिय-बलित, लौट गये	१२.१२.४	बाहो-बाटिका	३.२.५
बल्लर-(दे) बल्लर, खेत, अरण्य	१.८.३	बाण-बाण	४.१२.१५; ५.१४.११
बल्लरि-बल्लरी	८.७.१७	बाणपति-बाणपङ्क्ति	१०.२०.२
बल्लह-बल्लभ, पति	१.४.१०; ४.१६.११	बाणर-बाणर	२.४.१२; ९.६.९
बबगय-ब्यपगत	५.१४.२३; ८.१४.२०	बाणरसुह-बाणरसुह	९.१९.१३
बबगयसत्त-ब्यपगत सत्त्व	३.१३.१२	बाणरिय-बाणरी, हि० बन्दरी	९.७.३
√बबहर-ब्यवहृ °इ	८.३.१२	बाणसंब-बाणसंब, बाणावलि	७.९.१
बबहार-ब्यवहार	२.१.१२; ५.१२.४	बाणारखी-बाणारणी	९.१९.१५
√बस-बसु °इ	३.१०.१२; १०.१२.१०, बसिऊणं	बाणिज-(१) बाणिजः (कर्त्तरि), बाणिकू (ii) पातीय, पानी,	८.३.६; १०.११.१
बस-बृष, बृषभ	९.११.४	बाणिज्ज-बाणिज्य १०.७.६; °कज्ज-°कार्य ९.१८.११	
बस-बसा, चर्वी	६.७.७, ७.१.१०	बास-बास, सुन्दर	१०.१६.६
बस-बसा	२.१४.१०; ८.१०.१७	√बाय-बद्, °इ	३.१२.१७, °हु (विधि०) ४.१८.५
बसण-ब्यसन, निपत्ति, संकट	५.१३.१५; ६.१.१	बायरण-ब्याकरण	४.९.३; ८.१३.९
बसह-बृषभ	४.१८.१३	बाया-बाचा	१.१८.८
बसि-बसी, बसावती	४.२२.२३	बायाहय-बात + आहत	२.१८.१२
बसीकिय-बसीकृत	५.१.२२	√बाय-बाय °इ	८.११.१८; ९.१३.२; ११.८.४
बसुमह-बसुमति, पृथ्वी	३.८.८, ६.१४.१४	बाय-बाय	१.१७.२
बह-प्रवाह हि०, बहावः	९.१०.१	बायकण-बाय + बाकन (दे) कपाट	९.१७.३
√बह-बह °इ ४.१.८.३; ९.१२.१०.७.५; बहंवि;		बासाणसि-बासाणसी (नगरी)	१०.१५.१
(बहव०) ९.२.५; °मि ४.२.१५, १०.९.१०		बासिभंय-बासित १.१५.६; ३.१४.१६; ८.९.३;	
बहंवि १०.२६.१०		९.४.१०	
√बहंवि-बहं, + बातु	१०.७.३, १०.११.९	बासुभ-(दे) शीघ्रगानी	१.१४.१०
बहण-बहण, डोमा	७.९.११	बासुणथ-बासुण + प्रस्र	७.९.८
बहि-ब्याधि	३.९.९	बासुभ-बलुभी (गुजरात)	९.१९.७
√बहिज्ज-बह, (कर्मणि) °इ	१.७.७	√बाव-वि + भाप् °हि (विधि०)	१०.५.६
बहु-बधू	८.३.८; ९.१३.१४; ९.१६.४	बावह-ब्यापृत	१.३.५.६.३
बहुभंय-बधू	८.१६.६, १२; १०.२१.५	√बावर-वि + बा + वृ°इ (आत्मने०)	१.८.१.३.३.७
बहुबढक-बधूचतुष्क	८.१५.१५	√बावर-वि + अ + हृ °इ	८.३.९
बहुसुह-बधूसुह	९.१४.१०	बावलह-शस्त्र	७.६.१
बहुव-बधू	४.१७.९, ९.१४.५, ९.१६.३	बावार-ब्यापार	८.८.१३; १०.३.८
बहुवयण-बधूवदन (मुख)	९.१६.११	बावी-बापी	३.२.८
बहुवर-बधू + वर	८.१२.१४	बासरलच्छि-बासरलक्ष्मी, दिवमगोमा	८.१४.१३
बाभ-बाक्	४.१.१३	बासहर-बासगृह	८.१५.१६, ९.१८.६
√बा-बा °इ	१.१३.४, ३.४.४	बासारत्त-बपिन्दु	९.९.६
बाङ्गा-बाचना, वाणी	२.३.४	बासिय-बासित, सुवासित	५.८.१९; ८.३.३
बाङ्-बादी	१.५.१७	बासुपुञ्ज-बासुपुञ्ज, (बीजं) १०.२४.११; °जिन	१.१२.६
बाठ-बायु	१.११.१९, १.१३.४		

ह-प्रवाह	७.६.५; १०.१३.१०	विमिय-विस्मित	२.३.१०; ९.१९.१६; विच
√वाह-वह्+णिच् °इ	१०.११.१	३.६.६; मण-मन	९.३.३
√वाहत-वह्+घातृ	९.४.४; ९.४.९	√विक-वि+क्रो °इ	२.१८.५; मि १०.११.४
हाहन-वाहन	४.२०.५; ५.३.१४	विक्रम-विक्रम, पराक्रम	४.२२.८; ७.१०.१६
हाहयट्-घोटक संघात	४.२०.१०	विक्रमकाल-विक्रम संवत्	प्रथ० २
√वाहर-व्या+हृ °इ	३.३.४	विक्रार-विकार	१.८.६
हाहरिभ-व्याहृत	१०.१७.१६	विक्राम °य-विल्यात् °इय	३.१४.८; ४.१४.१६;
हाहल-(दे) क्षुद्र जलप्रवाह	५.८.२१	°यस ७.१३.१०	प्रथ० २१; प्रथ० १४;
वाहि-व्याधि	२.५.११; ३.११.२	विक्रियरिय-विकीर्ण	५.१.२४
वाहिणी-वाहिनी, नदी	७.६.६	विगय-विगत	२.१८.११
वाहितरिगिणि-व्याधितरिङ्गिणी	३.८.९	विगाह-विग्रह, युद्ध	६.१.१२; १०.१५.३
वाहियालि-(तदसम) अवक्रीडास्थल	३.२.१०;	विगाहग्रह-विग्रहगति, शरीरगति	८.८.१२
४.१३.१५		विग्रह-विघ्न	३.७.१०
√चाहुड-(दे) चल् °वि	१०.९.१०; °हि (विधि०)	विचित्त-विचित्र	४.१२.१३; वाम १.८.८; °मह-
२.१२.१०		°मति, घूर्त, चतुर	८.३.१३
वाहुडण-(दे) गमन	२.१२.७	√विचित्त-वि+चिन्त् °इ	११.१३.१
वि-इव, अपि	१.२.४, १.२.५; ५.८.३; १०.८.५	विच्चंतर-वृत्ति+अन्तर, वृत्त्यन्तर, वृत्तिपरिवर्तन	२.१४.४
√विउज्ज-वि+बुव् °इ	१०.७.८	विच्छङ्गिर-विच्छङ्गि °इ+हर, वैभवशील	७.१.२१
विदण-द्विगुण	११.११.३, ११.११.१०	√विच्छुरंत-व्याप्+घातृ	४.२१.५
विलणभ-द्विगुण+क (स्वायें)	११.१०.११	विजडसाड-विजय+उत्साह	७.३.७
विडल-विपुल (पर्वत)	१.१३.१०	विजय-विजय (नामक स्वर्ग विमान)	११.१२.२
विडलहरि-विपुलगिरि	१०.१३.११; गिरि १.१५.८	√विजय-वि+जि °यंतु (विधि०)	१.१.१; १.५.१८
विडस-विद्वस १.२.६; ४.९.३; °यण-°जल	१.२.१२;	विजयंतरिभ-विजय+अन्तरित	६.१.७
सह-समा १.४.४		विजयद-विजयाहं	११.११.८
विशेष-वियोग	९.१५.१४	विजयसंख-विजयसङ्ख	४.१३.१०
विहंत-विक्रान्त, झूर	६.७.४	विजयास-विजय+आशा	७.४.१८
विजण-(i) व्यञ्जन-भ्रमर		विजय-विद्या	३.१४.११; ४.१२.१०
(ii) व्यञ्जन-मोक्ष पदार्थ	८.१३.९	विजय-वैद्य	५.४.१३
विज्ज-विज्य	५.८.१; ९.१९.४, १०.१२.१	√विज्ज-विद् °इ	४.१४.६
विज्ज हरि-विज्यगिरि	४.१५.९	√विज्जमाण-वीज्+घानच्	१०.१३.४
विज्जणस-विज्यदेवा	५.८.३८	विज्जा-विद्या	३.१४.९; ८.५.५; कुचल-कुगल
विज्जाडह-विज्याटवी	५.८.३०	३.३.५; °पवर-°प्रवर	८.४.५; बल
विट-वृन्त	११.९.९	३.१०.८; ६.१४.३; °वंत-°वन्त	३.१४.२४;
विंतर-व्यन्तर (वेव)	१.१६.८, १.११.२.८	°वयण-°वचन	५.४.६; सरीर-शरीर
विट-वृन्द	४.५.४, १.१.१२	१.१८.९	
√विध-विन्व् °इ	३.१०.१५; ४.१२.१६	विजावच्च-वैयावृत्य	१०.२३.३
विधण-हिं० वीचना	७.९.३	विज्जाहर-विद्याघर	५.२.६; ७.२.९
विभल-विस्मय	३.६.१४, ४.०.१०		
विमह्य-विस्मित	९.६.३		

विडजाहरिदं-विद्याधर + इन्द्र	५.१४.६	विणयसिन्धि-विनयश्री (श्रेष्ठिकन्या)	४.१२.५; ९.८.१
विज्जु-विद्युत्	२.३.३; ७.९.९	विणास-विनाश	२.४.२; ३.८.११
विज्जुचर-विद्युच्चर (चोर)	९.१८.६	विणासण-विनाशन (कर्त्तरि), विनाशक	१०.२२.३;
विज्जुच्चर-विद्युच्चर (i) चोर ३.१४.४; (ii) मुनि	११.१५.३	११.१४.६	
विज्जुप्पह-(देवी) विद्युत्प्रमा	३.१४.१	विणासिय-विनाशित	३.१३ ८, ७.३ १४
विज्जुमालि-विद्युन्माली (देव)	२.३.५; १०.६.४	विणिग्गम-विनिर्गत	१.४.१; १०.१७.९
विज्जुल-विद्युत्	११.१.१०	विणिज्जिय-विनिमित्त	१.१०.१३
विज्जुल्लच्छ-विद्युत् + चल-चञ्चल, क्षणमञ्जुर	३.५.१२	विणिवद्ध-विनिवद्ध	१ ३.४, १ १२.९, ७.७.११
विज्जुवई-विद्युत्वती (देवी)	३.१४.१	√ विणिवद्ध-वि + नि + वच् ० इ	, ११.७.८
√ विज्जाअन्वि + ष्माप्, विज्जाएसइ (अवि० वृ० पु० एकव०)	४.३.१५	विणिम्मिय-विनिर्मित	१.१६.३; ५.८.२५
विटकटल-(दे) गठरी	११.६.३	विणियत्तण-विनिवर्तन	१०.२३.६
विट्टलिड-(दे) विगाड़ा हुआ	५ ११.४	विणिवाह्य-विनिपातित	७.११.१२
विट्ट-उपविष्ट	२.३.८; २.५.१४	√ विणिवाय-वि + नि + पत् + णिच्. ० ह (विवि०)	९.३.१४
विट्टतंरंधदार-विष्टा + अन्तर + अन्ध + द्वार	१०.१७.८	विणिवारण-विनिवारण (कर्त्तरि), विनिवारक	११.७.७
विट्टि-वृष्टि	४.८.१५; ४.२०.११; ७ ११.३	√ विणिहम्ममाण-वि + नि + हन् + शानच् ७.६.२	
विड-विट	५.११.४; ६.१२.३	विणोय-विनोद	४.९ १२, ५.१.३१
विडंग-विडङ्ग (i) वृक्ष (ii) विदग्धजन	३.२.६	विणोयकर-विनोदकरा: (पु० बहुव० विशेष०)	५.१.१
√ विडंग-वि + डम् ० इ	४ १३.११	विणोयपरा-विनोदपरा (स्त्री० विशेष०) पराजित करनेवाली	५ २.२०
विडंग-विडग्ध, प्रपञ्च	४.१५.११	विणणत्त-विज्ञप्त	२.७.८
विडजण-विटजन	८.१४ २०, ९ १२.१७	√ विणणप्प-वि + ज्ञा + णिच् ० इ	६.१३.४, ३.१४.३
विडपुरिस-विटपुर	१० ८.१	√ विणणव-वि + ज्ञा + णिच् ० इ	३.२ १२, ० मि ६.११.५
विटप्प-(दे) राहु	५.५.८	विणण्विन्न-विज्ञापित	१०.१९.१८
विडव-विटप, वृक्ष	८.१०.५	विणणाण-विज्ञान	३.१४.१०, ८.४.५
विडवि-विटपी, वृक्ष	प्रस० १७	वित्त-वृत्त, व्यतीत, घटित	८.१४
विडाल-माजार्, विलार	८.१५ ९	वित्त-(i) वृत्त + स्थूल, गोल (ii) वर्तन व्याकरण	१० २०.५
विण-विना	७.३.८; ८.६.६	वित्त-वृत्त + गत्	६.१.१८; ७.४.८
विणअ-विनय	२.१२.२, १० २३ २	वित्तिपरिसंख्य-वृत्तिपरिसङ्ख्यक, वृत्तिपरिसङ्ख्यान नामक उप	१०.२२.२
विणट्ट-विनट्ट	९.६.११, ९ ८ २१	वित्थर-विस्तार	१.५.६; १.५.९; ११.११.३
विणडिय-विनटित, विडम्बित	११ १४ १३	वित्थारिअ-विस्तारित	१.४ ४, ५.६.१४
विणमि-विनिमि	१.१.११	विस्थिणअ-विस्तीर्ण + क (स्वायें)	६.१४.१५,
विणय-विनय	२ ९.१६	१०.२० ११	
विणयगुण-विनयगुण	३ १०.३	विस्थिणणी-विस्तीर्ण (स्त्री० विशेष०)	६.१४.१५
विणयलुअ-विनय + युत्-युक्त	१.४.८	विवाविद्यन-विदारिताङ्ग	६ ११-८
विणयमइ-विनयमति (श्रेष्ठिपत्नी)	४.१२.६	विहविद्य-विद्वित	५.१३.२
विणयमाल-विनयमाला (श्रेष्ठिपत्नी)	४.१२.५		
विणयवत्त-विनयवत्त	९.४.२		

विद्वारिय-विदारित	५.८.१५	वियप्यण-विकल्पना	८.७.१
विद्वुम-विद्वुम	४.१४.२; ७.१२.३	वियप्यिअ-विकल्पित	९.१३.३
विद्वुमराय-विद्वुमराग	२.१४.७	√ वियंम-वि + जम्म् °इ	९.१३.७; ११.१३.४
विद्वुत-विद्वु	४.१३.६; ६.५.८; ६.१२.९	वियंमिचि	६.१४.६
विद्वुपुरिस-वृद्धपुरुष	३.११.१०	√ वियर-वि + किर् °उ	४.११.५
विद्वंस-विध्वंस	६.१२.७; ८.७.१७	वियल-विकल	४.२२.१९; ९.७.१२
विद्वंसथर-विद्वंसकर	१.१.१०	वियलंग-विकलाङ्ग	९.१३.१६
विद्वंसिय-विद्वंसस्त	५.१३.२३	√ वियलंत-वि + गल् + शतृ	१.७.४
विद्वि-वृद्धि, समृद्धि	१.३.५; ४.८.९	वियलपाण-विकलपाण	९.१४.७
विणोअ-विनोद	४.१३.१३	वियलमह-विकलमति	६.१०.१३
विप्य-विप्र	२.९.८	वियलिंदिय-विकल + इन्द्रिय	११.१३.४
विप्यिअ-विप्रयोग, विरह	४.१४.१	वियलिय-विगलित	१.१५.४
विष्कार-विस्फार	४.२.१३	√ वियस-विकस् °इ	४.१५.१४
विष्कारिय-विस्फारित (नेत्र)	८.९.९	√ वियसंत-विकस् + शतृ	५.९.७
विष्कुर-विष्कुर °इ	१.५.१५	वियसिय-विकसित	३.१२.११; ४.१२.४
विष्कुरिय-विष्कुरित	१.१.६, ७	वियाण-वितान	४.१८.४; ५.१.१३
विचंबणी-अष्टहाय स्त्री	५.७.१६	√ वियाण-वि + ज्ञा °इ	२.७.२; ८.१५.११
विठमम-विभ्रम	९.२.४; १०.१५.४	वियाणिय-विज्ञानित	११.१२.९
विठ्मुळुउ-विस्मृत	८.१४.१६; १०.१५.७	वियार-विकार	२.१७.११; १०.२.१०
विमाविअ-विभावित	३.१४.१४	वियार-विचार	८.६.१०
विभिय-विस्मित	५.२.३	वियारिअ-विदारित	६.११.८
विमण-विमन, विपण	२.१२.१२	√ वियारिअ-वि + क् (कर्मणि) °इ	१०.५.२
विमसिअ-विमदा, (काम) मदरहिता (स्त्री० विज्ञ०)	९.१३.४	वियास-विकास करनेवाला	१०.१.१४
विमल-विमल, शुद्ध ३.५.१. °कमलाण °कमलानन	३.३.१; °जस—°यश १.४.२	√ वियास-वि + काश् + णिच् °इ	८.१६.७
विमलगिरि-पर्वत	२.२०.९	√ विरभ-वि + रचच् ; विरहवि २.५.१४; विरएवि	४.१७.१६
विमलिय-विमलित	२.३.९	विरह-विरति	११.८.६
विमाण-विमान	२.२.७, २.२०.१२	विरहअ-विरचित	३.१४.२६; १०.२६.१३
विमाणय-विमान + क (स्वायें)	२.३.७	विरहउज-वि + रच् °उ	१.४.१०; ९.१२.१३
विमीस-विमिश्र	२.९.१६; २.१२.१३	विरहय-विरचित	८.२.७; ९.१२.१
विमुक्क-विमुक्त ९.४.१५; १०.१८.१२; ११.१५.३		विरहयंअलि-विरचित + अञ्जलि	१.१४.१
विमुक्कअ-विमुक्त + क (स्वायें)	४.१२.१५	√ विरहउज्जि-वि + रच् °मि	८.७.९
विमुद्द-विमुद्द, अमुद्दिय, मुद्दाभन	३.११.१०	√ विरम-वि + र्म् °इ	५.७.२६
वियक्कण-विचक्षण	८.२.२४; ११.६.६	√ विरय-वि + रचच् °इ	४.१५.४
वियड-विकट, विस्तीर्ण	२.१४.९, ५.९.११	√ विरयंत-वि + राज् + शतृ	४.५.१; ४.७.८
वियडयड-विकटटट, विस्तीर्ण	१०.१६.१	विरयण-विरचना, मजावट	८.१६.७; ९.१२.१५
वियप्य-विकल्प	१०.२.१०; ११.४.८	विरयत-विरक्त	१०.२०.६
		विरसक्कर-विरसाकर	४.२.८
		विरहगिअ-विरह + सनि	८.१४.२०

विरहावर-विरहातुर	३.१२.१	विसिद्धसहा-विशिष्टसभा	१.५७
विरहाणक-विरह + अनल	४.११.१	विसुद्ध-विशुद्ध	२.५१;४.२२.१
विरह्निभ-विरहित	१०.२२.७	विसुद्धअ-विशुद्ध + क (स्वायें)	१०.२०.१०
विरहीयण-विरहीजन	८.१४.७	विसुद्धगुणि-विशुद्धगुणी, विशुद्धगुणवान्	३.४११
√विराभ-वि + राज् °इ	४.१७८		१०.२३.११
विराह्य-विराजित	५.२.६;१०.२४.१४	विसुद्धमई-विशुद्धमति	२७७,४७८
विराय-विराग	८.१२.२	विसुद्धमण-विशुद्धमन	३.५.६
√विरायमाण-वि + राज् + शानच् + क (स्वायें)	२.३.७	√विसूर-वि + घुर °इ	९.११.११
विरायवंत-विराग + मनुप्, विरागवन्त	८.१०.१५	विसूरिभ-विसूरित, खिन्	६८.१२; °थ ६.८.१
√विरुद्ध-वि + रुध् °इ	४.२.१	विसेस-विशेष	६.८.२; १०.२.९
विरुद्ध-विरुद्ध	१०.४.१०	विसोहण-विशोधन	८.१४.१
विरुभ-विरुप, रूपहीन	९.१२.५	विह-विध	१.२.१०
विरुव-विरुप, कुरूप	२.१६ १४	विहउ-वैभव	३.१२.२०
विरुवभ-(१) वि + रूप्यक, रूप्यक-रहित (११) विरु- पकः, कुरूप ५.१३.३१; ९.१२.५		√विहल-वि + घट् °इ ९.१६.५, °हिं	८.१५.७
विरुह-विरुह, आरुह	७.२ १३	√विहलंत-वि + घट् + शतृ	७.६.१३; ९.१६ १०; १०.१८.१८
विरैणु-(तत्सम) (१) रेणु विना (११) विशिष्ट रेणु	४.१८ ६	विहण-विघटन	७.६.१४
विरोह-विरोध	५.१३.२३; ७.१३.१३	विहणफळ-(दे) व्याकुल	७.१०.२९, ८.११; ९
विसयजीहा-विषय (काममोग), जिह्वा	३.७.१४	√विहणढावभ-वि + घट् + णिच् °इ	८.९.६
विसयबंध-विषय + अन्ध	९ ११.१५	विहण्डिभ-विघटित	८.१४.१२
विसयसार-विषयसार (१) प्रदेशोर्मे श्रेष्ठ (११) भोगोर्मे श्रेष्ठ १ ६.४		विहण्डिभ-वि + लण्डित, आहृत	६.८.१
विसयसुक्ल-विषयसुक्ल	९.७.१५	विहण्त-विभक्त	६.८.४; प्रघ० ९
विसयसुद्ध-विषयसुद्ध	९.६.७	विहण्त्य-विघ्नस्त	७.१ १९
विसयासक्त-विषयासक्त	९.५ १२	√विहरत-विहर् + शतृ	२.१५ ५; ७.१३.१६; १०.१२.४
विसयाठिलास-विषयाभिलाष	२ १८ ४	विहव-विभव, वैभव	५.२.१५; १० १.१
विसर-विस्वर-डु.खद	२.२०.३	विहवीह्य-विषवाभूता (स्त्री० विशेष०)	१.११.५
विसरिस-वि + सदृश, विशेषसदृश	५.८.२५; ५.११ १७	√विहसंत-वि + हस् + शतृ	५.४ १२
विसक्विलि-विपवेल	५ १३.५	√विहा-वि + भा °इ ४.१७ १५, ५.७.४, °इ (वहव०) ९.९ ८	
√विसह-वि + शोभ् (राज्) सह °इ	७.१० २१	विहाइय-विभावित, दष्ट	८.२.२
विसहर-विषधर (कथा)	४.१० ७; १० १८.१	विहाइय-शोभित	९.८.६
विसहळ-विषफल	७.४.११	विहाण-विमान, विधान	२.१२.३; ९ १५ १३
√विसहेग्व-वि + सह् (कर्मणि, मवि०)	२.२ ८	विहि-विधि	३.६.१०
विसाय-विपाद	२.१६.५, ११ १.११	विहिय-वि + घ्रा	३.१०.१०
विसायर-विप + आकर, जलनिधि	१ ६.२०	विही-विधि, देव	८.९.६
विशाल-विशाल	१.१८.१; ९.१३.१५	विहीण-विहीन	९.१०.२; १० २.५
		√विहुण-वि + धुन् °वि	९.१९.१७
		विहुणिय-विधूमित	५.७.१०; ५.७.२२

विह्वर-विह्वर, विषमपरिस्थिति व्यापत्ति	६.१२.२;	वुत्त-वृत्त	५.१३.३१
७.८.१२		वेज-वेग	७.१०.१४; १०.१४.१२
विह्वलण-विभूषण	८.१५.२	वेहृत्क-विचकित्त (पुष्पलता)	४.१६.४
विह्वसिय-विभूषित	९.१२.५; ११.१४.९	वेतर-व्यन्तर	१.१६.७
विहोयल-वैभवयुक्त	९.१२.११	वेज-वेद्य	११.४.१
वी-अभि	२.८.२	वेडिभ ०य-वेष्टित	५.३.६; ६.१.१३; ११.११.३
वील-द्वितीय	४.१९.१२, ५.७.१५	√वेदिज्ज-वेष्ट् (कर्मणि) ०इ	११.७.६
वीण-वीणा	८.९.१७	वेमाणिय-वैमानिक	११.१२.७
वीणज्झकार-वीणाज्झकार	४.१३.८	√वेमेह-वि + मुच् ०इ	२.२०.२
वीणाह-वीणा आदि	४.१२.१३	वेय-वेद	२.५.८
वीणाचञ्ज-वीणावाद्य	८.१६.१२	वेय-वेग	७.६.६
वीणावाद्यण-वीणावादन	५.२.२९	वेयघोस-वेदघोष	२.४.९
वीणोवम-वीणोपम	२.१६.१	वेयण-वेदना	१०.२६.५, ११.५.८
वीयराड-वीतराग	१.१७ ८; १.१८.३; ८.९.१३	वेययंढ-(?) हस्ति	६.१०.३
वीयसोय-वीतसोका (नगरी)	३.६.५	वेयल्ल-वेग + ल्ल (मतुपार्थे), वेगयुक्त	३.१२.१२
वीयसोया-वीतसोका	३.३.६	वेयाल-वैताल	७.१.११, १०.२६.३
वीर-वीर कवि	१.५.४; ३.१.४	वेलाडल-वेलाफूल	१०.११.४
वीर-वीर, महावीर तीर्थंकर १ सं० १; १.२.१; ११.१.१		वेलाणई-वेकानदी, समुद्रोपकण्ठनदी, देखें : सं० टिप्पण १०.९.८	
वीरकहा-वीर + कथा	१.४.४	वेल्ल-वेलि, लता	४.१७.२१
वीरजिगिद-वीरजिनेन्द्र	४.४.२	वेल्लपास-वेलपाच, लताजाल	१०.२६.८
वीरव्यण-वीर (कवि) वचन	३.१.१	वेल्लि-वैलि, लता	५.१०.२२
वीस-विक्षति	७.८.१४	वेस-वेद्या	९.१२.५; ९.१३.१
√वीसर-वि + स्मृ (बहुव०)	३.२.२	वेस-वेवा	२.१३.१
वीसर-(१) विस्वर (११) वी-पक्षी + स्वर	१.६.५	वेसपड्ड-वैशपट्ट, पट्टवैशवारी	९.१८.२
वीसरिअ-विस्मृत	७.६.१९	वेसर-(तत्सम) वैसर, अक्षतर, खच्चर	१.१५.४
वीसभण-विश्राम	४.९.१०	वेसा-वेद्या	४.२१.१४
वीसोवहि-विशति + उदाधि, वीससागर (काल प्रमाण) ११.१२.५		वेसायड-वेद्यायत्त, वेद्याकी आघोन्ता, वेद्यागमन	५.९.१६
√वीह-मी ०इ	७.१.१५	वेसायण-वेद्याजन	४.२.६
√वीहंत-मी + शतृ	५.१३.३३, १०.२५.८	वेसावाड-वेद्यावाट	९.१२.४
वीहच्छ-वीमत्स	१०.१७.७; १०.२६.३	वेसिणि-वेषणी, परिचारिका	१०.१५.९
वुणार-गर्जना (ध्वन्या०)	५.८.१८	वोड-वोड (नट)	१०.१४.३
वुच्च-वच् ०इ	३.१४.१८; ५.७.२४; ९.१.१९	वोमहाअ-व्योम + भाग	५.५.१५
वुणणड-(दे) दोन, छद्दिन	९.१०.१२	वोरीहल-वैरीफल	८.१५.१३
वुण्णिणय-(दे) भयभीत	५.३.१२	√वोल-वि + उत्तम् ०वि १०.१०.२; वोलिणु	
वुत्तड-उन्नत	४.१४.२०	७ १२.१७	
वुत्त-उन्नत	२.५.७; १०.१०.२	√वोलिज्जमाण-वुट् + णिच् + शानच् ४ १९.२०; ५.८.३७	

चोक्लिय-(दे) व्यतिक्रान्त	८.१४.२१
चोक्लीण-(दे) व्यतिक्रान्त	४.१९.२
चोसगग-व्युत्सर्ग	१०.२३.५
चव-इव	१.८.३;२.२०.६
चवण-व्रण	९.१३.१४

[स]

स-स्व	८.७ २; स स-स्व-स्व ५.८.२६
सभ-शत	३.११.२;११.८.३
सभा-सदा	८.८.५
सइत्तिया-स्वपिता (स्त्री०)	४.९.९
सई-स्वयं	१.११.२०
सइच्छ-स्व + इच्छा	४ २०.२
सइत्त-सचित्त, साववान	४.५ ११
सइत्तड-(अप०) भुवित	४.२.२
सई-स्वयं	४ ८ १४
सउणयण-शकुनिजन	१०.१८.९
सउण-सम् + पूर्ण	४.११.१६;४ १३.१८
सउचार-सोच + आचार, सोचवर्म	११ १५.५
सउदिवद्ध-शत + द्वयद्धं, डेडसी	५ ४ १५
सउहम्म-सोवर्म (राजकुमार)	८.४ ११;८.५.५
सं-अतिवृहत्	७.२.१२
संक-शङ्का	१.१.४;७.६.२८
संकड-संकट, संकीर्ण	९.७.१६;११.३.२
संकड-संक्रान्त	५.१.१६;१०.८ ७;१०.८.१२
संकण-संकल्प	१.१८.१३;१०.२३.५
संकास-संकाश	१०.१८.११
संकिट्ट-सकिल्ल	२.२०.१
संकिण-संकीर्ण	४.१३.४;६.१२ १०
संक्रिय-शङ्कित	१.५.६
संक्रिल्ल-संकलन	१.५.५;५.७.५
संकुइअ-संकुचित	५.१.२१;९.९.३
संकुल-सङ्कुल	१.१५.१
सकेअ-सङ्केत	९ ४ ७;१० ८.१४
√ संकेय-सम् + केत् वि	१०.१६.९
√ संकेस-√ सम् + किल्ल् इ	२ १६.११
संकोय-संकोच	५.१४.२२
संख-शङ्ख	१.१४.९;१०.१९.५
संखिण-सङ्खिणी (कवाड़ी)	९.८.१;१०.१८.१

संखेअ-सखेप	२.९.१५; व १.५.९
संग-सङ्ग, प्रसङ्ग, सङ्गत	७.२.९;१०.२६.९
संगअ-सङ्गत	१०.१९.५
सगम-सङ्गम	९.९.३;११.१३.६;
संगर-सङ्ग्राम	१.११ ११
संगर-सङ्गम	३.१२.८
सगह-सप्रह	८.३.१३
√ संगह-सं + गह् हिंवि	१०.२६ १०
संगहिय-संगहोत	८.२.६; १०.१०.७
सगाम-सङ्ग्राम	५.१४.१६;१०.१.१३
संगिणि-सङ्गिणी	८.११.१२
संगह-संगवर्ष	६.७.१;१०.१८.८
√ संगह-सम् + षट् इ	६.९.५
संगहिय-संगदित	१.९.२
संगहिय-संगदित, निमित्त	११.६.२
√ संगर-सम् + ह् रेवि	७.१.८
संघाड-सघात, जोडो	२ ८.११;२.१५.७;५.७.२३
संघाय-संघात	७.१.१२
संच-सञ्चय, समूह	१०.१६.५;१०.१८ २
√ संच-सम् + आरुह् वि	६.२ ३
संचल्ल-आरुह	१.१४.१०
संचप्पिय-(दे) संवारा हुआ	१०.१६.६
√ संचर-सम् + चर् इ	११.६.१; ह् (विधि०)
	६.१.११
√ संचरंत-सम् + चर् + षट्	४.१५.७;४ २१.५
संचरिय-संचारित	६.७.७
संचल्लअ थ-संचलित	५.४.६;१०.१९.११
संचार-संचार, संचरण	९ १०.६
संचारिय-संचारित	५.१०.२२
संचियथ-संचितार्थ	१.५ १७
संचइय-सम् + छादित	३.१.१५;४.१६.७
संचन्नय-संचन्न + क (स्वाथे)	५ ८.२२
संचविय-संचादित	४.८.६
संचिण-संचिण	६.६.१
संचणिय-संचणित	२.८.१
संचम-संचम	११.१३.१०,११.१४.७
संचाअ थ-संचात	४ २ ४;७.६.१;१०.१७.१४;
	१०.२५ १०
संचाण-संचाण (देय)	९.१९.४

संजायरह-संजातरति	५.२.९	√संदेश-सम् + दिष् ० इ	९.३.१
संजीवणि-संजीवनी	८.१८.४	√संध-सन्ध् ० वि	७.९.५
संजुभ-सयुक्त	१०.२४.१३	संधी-सन्धि	१.१८.२३; ६.१४.१८
संजुक्त-सयुक्त	८.१४.३	संनिवेशिय-सन्निवेशित	५.१.१२२
संजोभ-संधोग	९.१२.११	√संपृच्छमाण-सं + पच् + घानच्	५.८.२९
संज्ञा-सन्ध्या	५.११.५; ६.१०.१४	√संपज्ज-सम् + पद् + णिच् ० इ (आत्मने०)	९.२.९; १०.२.४; ११.७.८
संठविथ-संस्थापित, वैयं वैघाया	२५.१७	संपण-सम्पन्न	५.३.११
संठिय-संस्थित	५.८.२२	संपणय-सम्पन्न + क (स्वार्थे)	१०.१९.१६
√संठवि-सम् + स्था + णिच् + विधि०	४.१८.८	संपत्त-सम्प्राप्त	३.६.५
संठाण-संस्थान, पैतरा, देखें, सं० टिप्पण	५.१४.२१	संपन्न-सम्पन्न	४.१२.९; ९.८.४
संठिभ ० य-संस्थित	८.१३.३; ९.१७.८; १०.१९.११; १०.२६.११	संपन्ननाणसा-सम्पन्न (संप्राप्त) ज्ञान, देखें. सं० टिप्पण	३.१.८
संठिया-संस्थिता (स्त्री०)	१.११.७; ६.१०.२	संपय-सम्पत्, सम्पदा	१.१३.९; ४.१४.११; ९.२.८
√संठज्जमाण-सम् + दह् + घानच्	५.५.११	संपया-साम्प्रतम्, सम्प्रति	६.१.६
संठ-षण्ड, ननु सक	९.२.५; ११.४.६	संपलिच-सम् + प्रदीप्त	४.११.१
संत-शान्त (स्थान, मोक्ष)	१०.५.१३	संपाह्व ० य-संपादित	४.९.६; ७.१३.३
संत-शान्त	१०.८.१२	संपुष्ण-सम्पूर्ण	३.६.४; ९.८.११
संतचित्त-शान्तचित्त	२.६.६	संपुष्णिदियत्त-सम्पूर्ण + इन्द्रियत्व	११.१३.६
संतदु-संत्रस्त	७.६.६	संपेसिभ ० य-सम्प्रेषित	२.८.१२; ५.४.१७; ५.१२.४; ७.११.१०; ८.८.१९
संतत्त-सत्पृत् ० इ	३.१३.१२; ६.१.११	√संबज्ज-सम् + वन्ध् ० इ	४.२.१
संतत्पिभ-सन्तप्रिय	४.२.२	संबोहणाळाव-संबोधन + आलाप	२.१९.१
संताविभ-संतापित	५.११.१७; ८.१२.५	संबोहिभ-संबोधित	१.१७.१०; ८.८.१०
संताण-सन्तान, सन्तति	२.७.१०; १०.१८.८;	संमड-संभव	८.१२.९
	१०.२१.२ प्रश्न० १७	संभारिभ ० य-संस्पृत्	३.६.५; ७.८.९
संताविभ-संतापित	६.१४.३	√संभाव-सम् + भू ० इ	२.८.१०; ११.४.१०
संति-शान्तिनाथ तीर्थकर	१.४.५	संभाविय-संभावित, सम्मानित	६.११.९
सतुभा-सत्तुवा (वीरकविकी माता)	१.४.८; प्रश्न १२	संभावियभ-संभावित + क (स्वार्थे)	२.१०.२
संतोस-सन्तोष	२.७.३; ७.१३.६	संभासण-संभाषण	७.१३.११; ११.१४.६
संथड-सार्थ, वणिक् दल	८.३.११	संभूभ ० य-संभूत	३.३.७; १०.३.४
संथर-सस्तरण, विछीना	१०.२०.११	√संमाणिज्ज-सम् + माप् (कर्मणि) ० इ	८.१.६.४
संथाण-संस्थान, शस्त्रकोष, म्यान	५.१४.१०	संरक्सिय-संरक्षित	७.६.१२
संथाविभ-संस्थापित	३.४.७; १०.१४.५	√संलग्ग-सम् + लग् ० इ	४.९.७
संथुभ-संस्तुत	७.१३.१८	संलद्ध-संलब्ध	२.१९.६
संदण-स्यन्दन	६.४.५; ७.१.२०	सलीण-संलीन, लया हुया	९.१४.१४
संदरसिय-संदर्शित	३.७.९	संबच्छर-संबत्सर	२.५.१०; १०.१५.३
संदिणी-स्यन्दिनी, राजमार्ग	१०.१९.१४	√संबड-सम् + पद् ० इ (आत्मने०)	४.११.१५
संदिण-संदत्त	५.६.१०; ९.१४.१६	संबरिय-संबृत्त	८.६.१४; ११.८.९
संदीवण-संदीपन	१०.८.९		
संदीविभ-संदीप्त, प्रज्वलित	१०.१५.८		

संक्लिभ ^० य-संवालि ^० ४.१४.१; ५.१.१८; १०.४.११	सत्ति-शक्ति	७.८.१२; ९.१९.१६
सच्चि-सचित्र, विविध	४.१२.१३	सत्तिरुच-शक्तिरूप, शक्ति अनुसार
सचेयण-सचेतन	११.५.८	८.२.६
सच्च-सत्य ११.१४.६; °स-सृत्य २.१३.८; ४.१७.४	सत्तु-शतु १.१.८; ६.१.१८; ६.४.२; °च-शत्रुलुपी	पर्वत ५.४.९
सच्चरिञ्च ^० य-सच्चरिञ्च	८.२.४; प्रश० ११	सत्थ-सार्थं समूह
सच्चविय-(दे) दृष्ट, विलोकित	७.६.१४	२.१३.१
सच्छ-स्वच्छ	६.१.४	सत्थ-शास्त्र ४.९.५; ४.१२.९; ६.१४.५; ९.१५.१३
सच्छंद-स्वच्छन्द	१०.७.२	सत्थस्थ-शास्त्र + अर्थ
सच्छमई-स्वच्छमति	१.२.३	५.१.१८
सच्छाय-सच्छाया, शोभायुक्त	३.१३.४	सत्थाण-स्वस्थान ५.१.२१; °अ-क(स्वार्थे) ७.१३ १४
सच्छंद-(i) स्वच्छंद, (II) स + छन्द	१ ३ ३	सत्थिय-स्वस्तिक
सज्ज-सर्जं वृक्ष	५.८.१०	२.९.१०
सज्ज-सज्जित, तैयार	७.३.१२; ७.१२.१५	सत्थी-स + स्त्री
सज्जण-सज्जन	१.८.२; ८.८.५	१०.२०.८
सज्जिअ-सज्जित ४.९.९; ७.१२ १८; °य ४.२०.४,	७.८.१३	सदप्पण-सदपण
सज्ज-साध्य	३.९.४; ९.५.१२	८.३.१४
सज्जहरि-सहागिरि, सहाद्रि ४.१५.९; °गिरि	९.१९.४	सद्वक-सद्व + अक्ष
९.१९.४		४.१७.७
सज्जअ °य-स्वाध्याय	२.८.३; १०.२३.४	सदाण-स + दान, दानयुक्त
सज्जदण्य-(दे) झटपट	५.१४.२०	४.५.१७
√ सडंत-सद + शतृ	६.१०.११	सदाण-स + दान, मदयुक्त हस्ति
√ सण-क्षण धान्य	१ ८.५	४.२१.१३
सणाह-सनाथ (स्त्री० विधे०)	१.१०.६	सदित्त-सदीप्त, वीप्तियुक्त
सणेह-स्नेह	९.१२.८	४.५.१४
√ सणणंत-समु + णप् + णिच् (स्वार्थे) + शतृ	१० १६.७	सद-शब्द १.१७.३; २.२०.६; °त्थ, °अर्थ २.५.९;
सणणाण-स्व + ज्ञान	२.१.५	°सत्थ-°शास्त्र, व्याकरण १.३.२
सणणाळुअ-संज्ञालु + क (स्वार्थे)	२ ६ ९	सद्वदूळ-शाहूळ
सणणास-संत्यास	३ ९.१९, १०.२४.१२	५.८.३५
सतक-(1) सतकं (II) सतक, मट्टे सहित	८.१३.१३	सदोहम्मिदु-शब्द + ओष + हन्तु
सताक ^० -सताल, सरोवरयुक्त	३.२.५	सद-अद्धा
सत्त-सत्त	३.१ ६, ४.५.१३	१.५.२९.९.१२.१६
सत्त-सत्त्व	६ ९.३	सद-अद्धः, अद्धावान्
सत्तंग-सत्त + अङ्ग	१.१२.६	९.१७.१२
सत्तगोयावरीभीम-सत्तगोदावरीभीम (सीर्थ)	९.१९ १४	सदालु-अद्धालु
सत्तम-सत्तम	१.१६.८; २.३ ६	१.३.८
सत्तरि-(हि) सत्तर (७०)	प्रश० १	सधर-स + धर, पर्वतसहित
सत्तारह-सत्तदण, सत्रह	११.१०.७	१.१०.१४
		सधर-स + धरा, धरासहित
		१ १०.१
		सधूमणिग-स + धूम्र + अग्नि
		१०.२६.२
		सनिर्णसण-सविवसन
		४.१९.३.
		सन्नज्ज-समु + नह् (कर्मणि क्तः) सन्नद्ध ^० ह्
		६ १ ९, सन्नहवि ७ ३.२, सन्नहिभि ६.२ ७
		सन्नाम-सन्नाम (धारक)
		५ १३.१२
		सन्निह-सन्निभ
		५.१४ ७, ९.७.११; १०.२३ ९
		सपत्त-सपत्र, वाणसहित
		७ ८ १३
		सपरिथण-सपरिजन
		३.१२ २०; ४.७.१, ७ १२.१५
		सपरिथर-सपरिकर
		१०.२०.८
		सपलास-(1) स + पलाश-राक्षस सहित (II) स +
		पलाश वृक्षसहित
		५.८.३४
		सपहरण-सप्रहरण
		६.११.३
		सपिअ-सपिया
		१०.८.१६
		सप्य-सर्प
		३.७.१२; ९.९.५, १०.१२.४
		सप्यपत्ति-सर्पपद्धि
		७.९ ४

सप्वच-सप्रपञ्च	१० २५.३	समसीसी-समशीर्षता, समानता	१.१५.१२
सप्वसंका-सर्पशङ्का	१-९.८	समहृद्य-पैतरा, देखो सं० टि०	५ १४.२१
सप्वुरिस-सत्पुरुष	७.९.२;११.१४.६	समहिद्विय-सम् + अर्धिष्ठित,	५.९.८
सचंच-सवाचच	८.१३.८	समहिद्वियश्च-समहृषित	९.१८७
सचर-शचर, भील	५.१०.९	समाण-समान, सार्द्धम्	४.२.७;४.१२.३;१०.८.२
सचल-स + चल, सैन्यसहित	५.६ १;६ ४.२	समाण-स + मान, मानसहित	९.१७ १४
सचभाव-स्वभाव	२.१.४	√समाणथ-सम् + आ + नी० णियद्	५.४.१७
सचञ्ज-समार्या	४.६.७;७.१३.२	समाणिञ्च-सामानिक छन्द	९.१७.१४
सचोञ्च-सचोच	४.५.१२	समाणिञ्च-समाप्त	११.१५.१०
√सच-शम् ० इ	२.८.१०;४.१७.४,१०.१७ १७	√समार-सम् + आ + रच् ० इ	३.१२.१४
सचञ्च-समय	२.२.६;१०.१७.३	समारद्ध-सम् + आरब्ध	५.१४.११
सचर्व-सचर्क, सह	२ १३ ६;८.१६.१३	√समारोव-सम् + आ + रोप् ० ए(आत्मने०)	५.५.१३
सचडसिय-समवासित, वस्त्र पहनाये	१० १९.८	समालत्त-समालत, कथित	१०.९.५
सचर्गच-सच + गन्च, गन्चसहित	५.९.६	समावासिय-समावासित, सुवासित	४.१६.९
सचग-सचग	४ १५ १६	समास-(i) समास रचना (ii) स + मास, मासयुक्त	१.३.६
सचग-स्वमार्ग	९.८ ४;९.८.९	√समास-सम् + आ + स्वम् ० इ	२.१३.१२
सचगल-सम् + अग्रल, समधिक	९.८.२२	समासाह्य-समासादित, प्राप्त	९.१९.१२
सचचाहञ्च-(दे) बलवान् (?)	६.१४.५	समासीसदान-समासीपदान	५.५.१४
सचच-सचस्त	५.१२.८	समाहञ्च-समाहृत	७.१० ११
सचच-समाप्त	५.१४.१६;६.१४.१८;८.१६.१८	समादि-समाधि	३.१३.१५,१०.१२,११.१५ ७
सचत्थ-सचर्थ	२.१.८,७.१२ ८	समिद्ध-समृद्ध	८ १६ ३
√सचत्थमाण-सम् + अर्थ + शानच्	१ ५.१२	समिद्ध-समृद्धि	३.१२.९
सचत्थिय-सचथित	८.११.१	समिद्धि-समृद्धि	१.१३ ३
√सचत्थ-सम् + अच्, सचत्थति (बहुव०)	७ ४ ५	समिय-शमित	१.११.१६
सचत्थिञ्च-सचत्थित	१.१०.११	सचिचञ्च-स + शृगाङ्क, शृगाङ्क (राजा) सहित	५.४.१८
√सचत्थ-सच + श्च, सचत्थ होना ० हि (बहुव०)	१० ५ ६	समी-शमी, छोकार वृक्ष	५.८ १०
सचथ-सचद मद्युक्त हृत्ति	५.७.१	समीरण-समीर + न (स्वाधिक)	१ ८.१
सचथण-सचदन, सकाम	२.५.५	समीरणवलय-समीरवलय, वातवलय, देखें : सं० टि० ११.१०.२	
सचरखेत-सचरक्षेत्र	६.४ २	समीच-समीप	५ २.२
सचरगण-सचराङ्गण	५.४.१७	√समीहमाण-सम् + ईह + शानच् ३.५.१.१८	
सचरि-शचरी	८ १६.१३	समुग्गञ्च-सम् + उद्गत ८ १३ ११, ९ १३.१६	
सचरीसी-सदृशता	१ १५.१२	समुग्गीरिञ्च-सम् + उद्गीरित समुद्गीर्ण १ १८ ४	
सचलक्रिय-सचलक्रुत	८ ९.१०	समुच्चय-समुच्चय, साथ	८ २.१४
सचवसरण-सचवशरण	१.१ ५, ८ ४.८	समुच्चय-सम् + उच्च + क (स्वाच्ये)	५.१३ १७
सचवाञ्च-सचवाच, अभिप्राय	२ १.१, ९.११ १४	समुच्चो-समुच्चोत	५ २ १
य १० ३ २		समुच्चोद्ध्य-समुच्चोत्तित	१.१८.३
सचसंत-सच + सत्त्व, सचान बलवाले	६.९.१		
सचसीसिया-सचसीपिका, स्पष्टा	७.६.२९		

√ समुहंत-सम् + उत् + स्या + शतृ	४.५.७	सयपंच-शतपञ्च	३.४.७
समुद्धिय-समुत्थियत	९.१८.७	सयक-सकल	३.४.६
समुद्धिय-समुद्धित	८.१४.११	सयवत्त-शतपत्र	१.७.१; ४.१२.४; ९.९.२
समुद्धिय-समुद्धृत	८.७.१६	सयसकर-शत + शर्कर, शतघाकृत शतघा: विदीर्ण	
समुद्ध-समुद्र	५.३.७; ८.१४.११; ९.१६.१		९.१५.१५
समुद्धत्- (श्रेष्ठि)	४.१२.१	सया-सदा	३.१.११
समुद्धिष-समुद्धीप्त	४.५.४	सयास-सकाश, पाद्वं	११.१.२
समुद्धरिष-समुद्धृत	३.७.१५	सर-स्वर	४.१६.७, ५.८.९; ६.४.९
समुद्धाहय-समुद्धावित	५.५.१५; १०.२६.१	सर-शर	४.१०.८
√ समुप्पाभ-सम् + उत् + पद् + णिच् °ए (आत्मने०)	१.९.५	सर-सरोवर	४.१९.३
समुप्फालिय-समुत्फालित	५.६.६	√ सर-सृ °इ	१०.७.१०
समुप्भव-समुद्भव	११.९.४	√ सरंत-सृ + शतृ	२.५.१४; ४.५.६; १०.७.३
√ समुभ्भासभ-सम् + उद् + मास् °ए (आत्मने०)	१.१८.१०		१०.७.३; °उ (स्वार्थे) १०.७.४
√ समुक्कालयंत-सम् + उत् + लल् + णिच् + शतृ	१०.२६.२	√ सर-सृ °इ	१०.२.१०; १०.२१.२१
समुहु-सन्मुख	५.११.२०	√ सरंत-सृ + शतृ	३.६.३
समोसारण-समुत्सारण, हृदाना	५.१.२०	सरड-सरड, करकैटा	९.१०.७
सम्मद्-सन्मति, तीर्थकर महावीर	१.१.१२	सरण-शरण	१.१०.८.३.९.१६
सम्मद्-सन्मति, सद्बुद्धि	१.१.१२, २.१.२	सरणाहय-शरणागत	५.१३.३
सम्मज्जण-सम् + मार्जन	५.१.२४	सरणागय-शरणागत	७.१२.८
सम्पत्त-सम्पत्त्व २.८.१; ३.७.२; सम्पत्तदिट्ठ-		सरघोरण-सरघोरण. (कर्तरि), शरघारक, घनुप	३.१२.१६
सम्पत्त्वदृष्टि २.१८.१; °घर ३.५.९;		सरपालिभ-(i) सरपालि-सरोवर पंक्ति, (ii) स्मर-	
°वित्ति-°वृत्ति ११.१३.१०		पालित, मदनपोषित (विषयार्) ३.२.६	
सम्पन्नान-सम्पत्कृजान	१०.२३.७	सरभेय-स्वरभेद	४.१५.३
सम्पन्नाणिभ-सम्पत्कृजानी	९.१.१६	सरभद-स्वरभन्द	४.८.३
सम्माण-सन्मान	७.६.१२	सरल-सरल वृक्ष	३.१.१७; ५.१०.२०
सम्माणिभ-सन्मानित ४.८.९; ७.१२.११; ११.१५.१०		सरलंगुलि-सरल + बहगुलि	१.८.७
सम्मुह-सन्मुल	११.८.१०	सरलक्षण-सरलत्व, सीघापन	९.१२.१४
सय-शत	६.१४.१४, ११.३.२	सरलाहय-सरलायित, सरलित	४.१३.६
सयंभू-स्वयम्भू (कवि)	१.२.१२	सरलाकिय-स्वरललित, ललितस्वर	५.६.६
सयंभूपत्र-स्वयम्भूदेव (कवि)	५.१.१	सरल-विश्र-सरलायित, सरलित	४.१५.८
सयसंद-शतस्रण्ड	१०.६.१६	सरवत्त-शरवत्त, बाणमुत्त, बाण	७.८.१
सयस-शाकट	५.७.१२	सरवर-सरोवर	१.७.१, ४.२०.१; ५.९.७
सयण-शयन	९.१३.१७, १०.८.१६	सरस-सरस, रमयुक्त	१.५.१०
सयण-स्रजान, स्रजान	४.६.७; ६.११.९	सरस-स + रस, स्रजामरग, वीररग	५.६.१
°विद्-स्रजानचृन्द	८.१०.३	सरस-(नत्सम) (i) म + रस, (ii) रसयुक्त (ii)	
सयणिज्ज-शयनीय, शोग्य	३.११.१३	मन्ने, सानुराग (iii) घनयुक्त	९.१२.१८
		सरसह-सरस्यती देवी	१.४.७
		सरसय-सपंप, मग्गी	७.२.९

सरस्ववण-(i) सरस + वण, नवीन व्रण(ii) शर +
स + वण, वाणके व्रणसे युक्त ६.६.१०
सरस्वई-सरस्वती ३.१.४
सरह-शरभ, शार्दूल १.१.८; ५.८.३१, ७.४.३
सरह-स + रथ ५.८.३१
सरह-स + रभस् सोत्कण्ठा, २.१५.१४; ७.११.८
सरहस-स + रभस् ९.८.१४
सराड-स + राड, राडदेश सहित ९.१९.१०
सराय-स + राजन्, राजासहित ६.१.१६
सरावणीय-(1) रावण सहित (ii) रावण वृक्ष
सहित ५.८.३३

सरासण-शर + आसन, घनुष ७.९.१२
सरि-सरित् १.५.१०; ४.१०.४; ६.९.१०
सरिभ-स्वरित १.६.१०
सरिभ-स्थित ६.१.१.३
सरिच्छ-सद्वा, २.१८.१५; ९.१२.९
सरिय-स्वरित ६.७.२
सरिस-सद्वा ५.९.१, ६.१.२, १०.१.११
सरीर-शरीर २.४.२; ४.१९.१०, १०.२६.५
सरुभ-स्व + रूप १.१८.१२, ४.१७.१२
सरुव-स + रूप, सुन्दर ९.१२.१५
सरुवभ-(1) स + रूप्यक ९.८.२१
सरुवायर-स्वरुपाकार ९.११.१५
सरोरुह-सरोरुह, कमल १.१८.७
सरोस-सरोप ५.१३.१२
सरुक्खण °उ-सलक्षण ५.४.१९, ८.२.१२; ४.७.११
सरुक्ख-लज्जा सहित ७.२.४; १०.८.२
सरुवट्टि-(वे) सलवट, सिक्कुडन ४.१.२.१२, ४.१४.७
√सरुसक-सलसल, °लति (बहुव०) ९.१०.३
सरुसलिय-सलसलित (ध्वन्या०) ५.६.८
√सरुह-इलाघ्, °हंति २.११.३
√सरुहंत-इलाघ् + शत् २.७.११
√सरुहिल्ल-इलाघ् (कर्मणि) °इ ४.९.८;
५.८.२८
सलीक-स + लीला, लीलायुक्त ४.११.५
सलेव-स + लेप, सदर्प ६.११.५
सलोण-(1) स + लण (ii) स + लावण्य. १.६.११
सल्ल-शल्प, काटा २.१८.१५, ५.११.१५
सल्ल-सल्लकी घुस ४.१६.४; ४.२१.१

सल्लतुल्ल-शल्पतुल्य ३.१३.१०
सल्लिय-शल्पित, शल्पयुक्त ५.४.६; १०.१९.१२
सल्लेहण-सल्लेखना १०.२४.१०
सव-शव १.११.१४
√सवंत-सव् + शत् ८.२.४
सवचूरिअ-सर्वचूरित ६.८.११
सवण-श्रवण, कर्ण, ४.८.१६
सवण-श्रमण २.८.५; २.१८.२; °संघ १०.२४.१३
सवत्ति-सपत्नी, हिं० सीत ९.२.३
सवर-शवर ५.१०.१०
सवहु-सवधू ८.१३.८
सवालिणिण-हिं० सवातीन (३३) ११.१०.१०
सवासण-(1) स + वासन (हिं० वासन), भाजन-
सहित, (ii) शव + आसन, राक्षस ८.३.१२
सवाह-स + वाव १०.१३.१०
सविद्ध-स + विद्धव(ना) ९.१०.३
सविणय-सविनय १.२.१; २.१.१; ४.१.१३;
१०.२५.३
सविथप्प-सविकल्प २.१.११; १०.४.१
सविथास-स + विकास ५.१४.२२
सविलक्ख-सवैलक्ष्य, लज्जित ९.२.२
सविवेय-सविवेक ८.२.७
सविसेस-सविशेष, विस्तारपूर्वक ५.४.९; ६.११.१०;
८.५.११
सविसेसदिक्ख-सविशेष वीक्षा २.२०.१
सविहीसण-(1) सविभीषण, विभीषण सहित (ii)
विभीषण. (कर्त्तरि), भयभीत करनेवाले
जंगली पशुओं सहित ५.८.३४
सव्य-सर्व २.१९.४; ३.९.६
सव्वग-सर्व + अङ्ग १.८.५
सव्वगुण-सर्वगुण ३.३.६
सव्वण-सन्न, व्रणयुक्त ७.२.२
सव्वणहु-सर्वज्ञ १.१८.१
सव्वत्थ-सर्व + अर्थ ८.९.९
सव्वत्थगय-(1) सर्वार्थगत. सर्वपदार्थजात (ii)
सर्वार्थ(सिद्धि)गत (iii) कैवल्यप्राप्त
११.१.२
सव्वत्थसिद्धि-सर्वार्थसिद्धि (स्वर्ग) ११.१.२.२;
११.१.७

सव्वक-शवल शस्त्र, हि० सव्वल	७.६.१	सहाव-स्वभाव	१.२.३; ९.६.७
सव्ववाणी-सर्ववाणी, सर्वभाषाएँ	१.१७.४	सहि-सखी	१०.१७.१६
सव्वस-सर्वस्व	१.१०.९	सदिअ-सहित	१.३.९; ८.१५.१६, °य ४.४.७
सव्वस्स-सर्वस्व	६.१.१	√सहिज्ज-सह् (कर्मणि) °हो (विधि०)	६.३.८
सव्वहि-स + व्याधि	११.५.८	सहुं-सह, साथ	१.१८.१४; ३.१०.३
सव्वावयव-सर्व + अवयव	१.१.६	सहुं-सभा	२.३.९
सव्वास-सर्व + अथा: (कर्त्तरि) अग्नि ५.४.४, ५.५.३	१.१.६	सहुट्ठव-स + ओष्ठ	३.११.८
सव्वास-सर्व + आशा	४.६.२	√सहेउ-सह् + तुमुन्	१०.२६.६
ससक-शाशाङ्क	४.१२.४	सहोयर-सहोदर	२.१३.१०; प्रथ० १३
√ससंत-स्वस् + शतु	९.२.२	सहोयसि-सहोदरा, भगिनी	११.३.५
ससद्ध-ससाध्वस्	२.१२.५	साहिणि-शाकिनी, वाकिनी	९.१२.९
ससर-(१) स + शर, शरयुक्त (११) स + सर, सरो- वरयुक्त ५.८.३२		साकद-स + आकन्द(त)	१०.१८.९
ससरीर-स्वशरीर	१०.२.११	साडण-शाटन, नष्ट करना	३.६.२; ११.८.८
ससहर-वाशघर	७.३.३४, ८.१२.४	साडिय-शाडित	११.९.१०
ससि-शाशि २.११.६; ४.१३.९; ११.६.५; °कंति- चन्द्रकान्ति ९.२.१		साण-शवान	९.११.१३
ससिल्लण-शाशिलाञ्जन, मृगाङ्क राजा, १०.१८.९		साणंद-स + आनन्द	४.१७.८
ससिहर-शाशघर:	५.२.२१	साणुत्तर-स + अनुत्तर (देव विमान)	११.१२.५
सखी-शाशि	४.७.४	साम-साम (नीति)	५.३.४
सखेण-स + खेन्य	४.५.८	साम-साम्य	४.१४.५
√सह-राज् °इ १.१२.७; ८.१३.१३; °हि (बहुव०, आत्मने०) ८.३.१३		सामग्गि-सामग्गी	४.१५.६, १०.१३.५
√सहंत-राज् + शतु	१०.२६.५	सामण्ण-सामान्य	४.१४.९; ८.८.११
सहण-सहन, हि० सहना	४.१४.५; १०.२५.८	सामंतचक्क-सामन्तचक्र, सामन्तद्वन्द	५.१.२३
सहयर-सहचर	५.२.१५	सासरिल-स + धर्म	६.६.७
सहयार-सहकार, भात्र	४.१५.१३	सामल-श्यामल, नीलवर्ण	२.१५.३, ५.८.२३; ७.९.६
सहयारि-सहकारी (कारण)	१०.४.३	सामली-श्यामल (स्त्री० विशेष०), हि० सावली	३.३.९; ४.१८.१२
सहक-(१) स + फल, फलयुक्त (११) सफल ३.२.९, ६.१२.३; ९.१५.२		सामाणिअ-सामानिक छंद	९.१७.१४
सहक-सरल, आसान	९.१५.२	सामि-स्वामी	६.८.३; °अ °क (स्वार्थे) ८.६.८; °य-°क (स्वार्थे) २.७.८; ६.८.७
सहस-सहज	३.९.१७; ४.२.९	सामिसाल-स्वामिसार, स्वामिश्रेष्ठ	९.१०.११; ११.३.६
सहसक्ख-सहसाक्ष, इन्द्र	१.१.५	सामी-स्वामी	१.११.११
सहसट्ठ-सहस्र + अष्ट, अष्ट सहस्र	५.१४.९	सायंमरी-शाकम्भरी (नगरी)	९.१९.९
सहसत्ति-सहसा + इति	१.१४.२	सायद्धण-स + आकर्षण, खीचनेवाली	९.१२.१५
सहससिंह-सहस्रशृङ्ग-पर्वत	५.२.८	सायस-स्वायत्त	१०.१०.१६
सहा-सभा	२.९.१८, ४.५.३	सायर-सागर (कालप्रमाण)	२.१०.१०, ८.२.१४
सहाअ-साहाय्य	९.८.५; १०.२४.७	सायर-सागर(दत्त) (श्रेष्ठि) ८.८.१९; १०.१९.१२	
सहायर-साहाय्यकरः, सहायक	८.१६.१	सायर-सागर, समुद्र	१.३.७; °चद-°चन्द्र (राज् कुमार) ३.६.४; ३.१०.४, °जल १०.११.३;

°दत्त (श्रेष्ठि) ४.१४ १२; °दत्ताइ सागर-	साङ्गण-साधन, सैन्य	४.२० ५, ७ २२
दत्त आदि ८.५.४; °ससि-°शशि, सागरचन्द्र	साहणिय-साधनिक, सेनापति	५.६ १
(राजकुमार)	साहयवद्धि-साधकवक्तिका	१.६.८
सार-(1) सार वृक्ष (ii) सार-सारभूत	साहरण-साभरण	७ १२.६
सार-सार, सारभूत	साहस-साहस, पराक्रम	५.३.१
सार-सारण, सरकाना, खिसकाना	साहसिभ-साहसीक, साहसी	१०.३ ११
सारंग-सारङ्ग, मृग	साहार-स + आवार	७.१२.१७
सारभूभ-सारभूत	√साहार-सम् + धारय् °इ	११.२.९
सारिच्छ-सदृश	साहारण-साधारण	१०.४.१
सारिड-सार + वत्, श्रेष्ठ (नारियाँ)	साहिभ°य-साधित, कथित ४.२२.२५; ६.११.९;	
सारिनर-(दे) महावत	७.८.३	
सार-शाल (वृक्ष)	साहिउजभ-साहाय्य, सहायक	११.४.१
सार-वाद्य	साहिमाण-साभिमान	५.१२.२१
सारक्तय-स + आलक्तक (हि० अलता) १०.१६ २	साही-(दे) रथ्या, मार्ग	५.१०.७
सारस-स + आलस्य	साहीण-स्वाधीन	९.११.१; १०.१०.११
सारि-शालि धान्य	साहु-साधु	२.३.४, ८.९ १४
सारिष्ठ-शालिक्षेत्र	साहुकारिष्ठ-साधुकारित	७.१३ ७
साकी-शाली, धान्य	साहुजण-साधुजन	१०.३.११
सावङ्ग-सावद्य	साहुसीक-साधुशील	६.१.३
सावण्ण-सामान्य	√सि-अस्ति	२.१८.२; ४.१७.२
सावय-श्वापद	सिभ-सित, श्वेत	४.५.१५
सावय-श्रावक २.१२.१; °कुल ४.३.३; °घर	सिड-शिव	१०.५.१३
३ ९ ११; °वय-व्रत ३.१३.११; ४.३ ६	सिंग-शृङ्ग, हि० सींग ३.१ १४; ४.१.६, १०.१.१०	
सावलेड-सावलेप, सदप	सिंगार-शृङ्गार	४.९ ८; ५.२.१४
सावहि-सव्याधि	सिंगाररस-शृङ्गाररस	४.१८.१४
सावहि-स अवधि	सिंगारवीर-शृङ्गारवीर(रसात्मक काव्य) १.१८.२२;	
सास-श्वास	३.१४.२५	
सासण-वासन, धर्ममुद्यासन	सिंगारासय-(i) शृङ्गार + आश्रय	
सासमरु-श्वासमरुत्	(ii) शृङ्गार + आश्रय	८.४.२
सासय-सास्वत् १.१.९; ३ ८.१२; °सोक्ख-°सील्य	सिगाहय-शृङ्ग + आहत	५.८.१७
११.१५ २	सिनि-शृङ्गी, शृङ्गयुक्त	११.१३.५
सासयसुह-स्व + आश्रय + सुख, आत्मसुख ३.६ ५	सिंघासण-सिंहासन	५.१.७; १०.१३ ४
सासवार-स + अस्ववार, सवारसहित	सिंचिय-सिंचित	३.७.७
सासिय-शासित	सिदि-सिद्धी, खजूरी, खजूरका वृक्ष	५.८.१२
सासुया-°वन्न + का (स्वार्थे), हि० सास १०.१४.४	सिद्रुवार-वृक्ष	४.२१.३
साह-शाखा	सिधु-सिधु (नदी) °तड-°तट ९. १९ ११; °तीर	
√साह-साप् + णिन् (स्वार्थे) °इ ४ ६ १०	९.१७.१७	
१०.११ १; °ह्वि ४.१८.१४ °ह्वि	सिधुर-सिन्धुर, हस्ति	८.७.१७
४.१८ ४	सिधुवरिसी-सिन्धुवर्षी (नगरी)	१.५.१
साहण-साधन		

सिसमी-जोशम (वृक्ष)	५.८.१०	३.१२.१८, °बड-भवेतपट १०.१८.९;
सिंहल-सिंहल (देश)	९.१९.१	°सत्तमि-शुक्लसप्तमी १०.२३.१०; हारल-
सिंहवार-सिंहवार	५.१०.१९	°स्वतहार धारिणी (स्त्री० चिन्ने०) १६.८
सिंहासन-सिंहासन	१.१२.७; १.१४.२	सियाळ-श्रृगाल, हिं० सियाळ, सियार ९.११.२
सिक्कार-सीत्कार	१.८.६	सिर-शिरा १०.१३.८; ११.६.२
√ सिक्कारंती-सीत्क + शतृ ^० (स्त्रियाम्) ८.१६.१३		सिर-शिर २.१६.८, ५.१३.१०; १०.१९.१७
सिक्किरी-(वे) पताका	१.१५.७	°कमल १.१३.१; २.१०.१, °भार ५.२.१९
सिक्ख-शिखा	८.८.१८	°हिय-शिरो वृत १०.१९.७
सिक्खापमाण-शिक्षाप्रमाण	२.१९.६	सिरस-सिरीष (पुष्प) ८.१०.८
सिक्खिअ °य-शिक्षित ४.१७.२१; ५.२.१५		सिरसिय-सरसिज, कमल ८.१२.४
°या-शिक्षिता (स्त्री०) ४.१२.१०		सिरावध-शिराबन्ध ४.२२.१७
सिग्घ-शीघ्र	३.५.११; १०.१०.४	सिरि-श्री २.१४.६; ४.१६.८; °खंड-श्रीखण्ड
सिग्घजाण-शीघ्रयान, विमान	६.१०.११	७.१२.२; ८.१५.८; °तकड-श्रीतकड(श्रेष्ठि)
सिग्घ-शीघ्र	२.१५.१२	१.६.१; °लाडवग श्रीलाटवर्ग (गोत्र) १४.२
सिज्ज-शैत्या	१०.१६.१०	सिरिस-सिरीष पुष्पवृक्ष ५.८.१०
√ सिज्ज-सिद्ध १०.२.६; °ए (आरमणे०) ३.९.२		सिरिसत्तथा-श्रीसत्तुवा (वीरकविकी माता) प्रभा० १२
सिद्ध-शिष्ट, कथित ९.१२.६; °अ ९.४.१३; °उ		सिरिसेण-श्रीसेना (श्रेष्ठिपत्नी) ३.१४.८
१०.२.५ °जण-शिष्टजन ९.१५.४		सिरिमज्झदेस-श्रीमज्झदेश ९.१९.१३
सिद्धि-श्रेष्ठि	३.११.१	सिरी-श्री ४.५.३; °वर ८.२.१३; °पव्वय-श्रीपर्वत
सिद्धि-शिथिल	९.१८.५	९.१९.२
सिष्ण-सैन्य	७.३.३	सिक्क-शिला १.९.६; ८.६.१४
सिणेह-स्नेह	५.९.४	सिकायड-शिलातट ६.९.१०; ९.९.१०
सिया-सिक्त	४.११.४; ४.१९.२	सिद्ध-शिव, श्रृगाल ७.१.१२
सिद्ध-(१) सिद्ध (११) शिक्षित ११.१.२; ११.१२.११		सिद्ध-शिव (धूर्तनाम) ९.१०.२३; १०.१८.१
सिद्ध-सिद्ध, तान्त्रिक, अघोर (पंथी)	६.७.७	सिद्धपुत्रि-शिवदेवी (नेमि तीर्थकरकी माता) १.१४.७
सिद्ध-प्राप्त ९.४.१२; °उ १०.३.६		सिद्धकुमार-शिवकुमार (राजपुत्र) ८.१३.४, °कुमारि
सिद्धंत-सिद्धान्त १०.४.७		३.५.११; °कुमाराहिहाण शिवकुमार +
सिद्धविणास-सिद्धविनाश, सपलब्धनाश ९.१०.२२		अभिधान (नाम) ३.४.४,
सिद्धालय-सिद्धालय, मोक्षस्थान १०.२४.९		सिद्धधाम-शिवधाम, मोक्ष ११.१.१४; °पह-शिवपथ
सिद्धिणअ-सिद्धिनय, दैवयोग ९.८.१५		९.१०.१४; °बहु, °बधू-मोक्षलक्ष्मी
सिद्धिवहु-सिद्धिवधू, मोक्षवधू ४.४.११; ८.४.१०		११.१४.११, °सुह-शिवसुख २.६.११;
सिष्प-शिल्प २.९.८		८.८.१८
सिष्पिणी-(१) सिष्पिनी (११) सूचित, हिं० सीपी ७.४.२		सिन्धाल-श्रृगाल १०.१२.४
सिमिर-गिविर, स्कन्धावार, सैन्य ५.१०.३, ६.१.१३		सिचिण-स्वप्न १.२.२; °उ ४.५.१७; °त्य-स्वप्नार्थ
११.७.५		४.६.१०
सिय-लक्ष्मी, श्री, शोभा ४.१६.८, ९.३.१५		सिसिर-शिखर (नक्षत्र) ४.१८.९
सिय-सित, श्वेत ४.११.१४; °गुणववलिमा १.१०.५;		सिसु-शिशु २.१०.४, ५.९.१३; °भाव-दीशव३.४.६
°छुह °सुधा, चूना, २१६.१०; °धण		सिहडि-(१) शिखण्डी-मयूर; (११) शिखण्डी अर्जुन-
गोरस्तन ४.७.४; °पचमी-शुक्लपञ्चमी		का सहयोदा ५.८.३१
		सिहर-शिखर ४.७.६; सिहरा (वटव०) १०.३.९

सिंहि-शिखरिन्, पर्वत १०.१.१०	५.१३.३२; ७.८.१२;	सुइसस्थ-श्रुति + शास्त्र सुउ-सुत	९.१६.७ ४.२५
सिहि-शिखिन्, अग्नि	२.१८.४	सुंड-शुण्ड, हि० सुंड	४.२०.११; ६.१०.३
सिहि-शिखिन्, भयूर	९.९.६	सुंदर-सुन्दर, शुद्ध	१.२७; २.११४
सिहिण-स्तन	४.१३.१२	सुंदरि-सुन्दरी	२.१४.६; १०.१४.११
सिहिसाहुल-शिखि + साहुल-(दे) वस्त्र शिखिवस्त्र, मयूरवज	५.७.७	सुकडूच-सुकवित्त्व	१.३.१
सिही-शिखिन्, अग्नि	५.५.११	सुकम्म-सुकर्म, पुण्य	२.५.४, ४.५.५
सीम-सीमा (क्षेत्र)	५.३.१०	सुकन्ति-सुकान्ति, सुकान्ते (स्त्री० सप्तमी) ४	१.८.१२
सीमंतिणि-सीमन्तिनी	३.९.१७; ६; १४.१४	सुकर-सुकर, सहल, आसात	२.७२; २.७.३
सीमंतिणी-सीमन्तिनी	१.९.१०	सुकमार-सुकुमार	१०.१६.१
सीय-सीत, सीतल	१०.७.६	सुकुलककम-सु + कुलक्रम	११.१३.६
सीय-सीता	३.१२.१; ५.१३.६	सुकक-शुक, रज-वीर्य	९.१३.१६
सीयर-सीकर	८.१५.८	सुकक-शुष्क	१०.२.६
सीयल-सीतल १.७.२; ३.१.१६; ७.१५.८; °घण- अतिशीतल १.१३.४		√सुककंत-शुप् + शतृ	५.८.२६
सील-सील	३.६.२	सुककंग-शुष्क + अङ्ग	१०.१३.८
*सील-सील (चाच्छील्ये)	२.१२.७	सुककग्राण-शुक्लध्यान	१० २४.१
सीवान-पिवु + णिच्, सीवाविअ-सिलवाया ४	३.२	सुककंश-शुष्क + वंश (बास)	४.१५.२९
सीस-सीर्य	२.१२.१३; ७.१३.१७	सुकक-शुष्क (चर्म)	१० १२.६
सीस-शिष्य	७ १३.१६; ११.१.२	सुकक-सुख	८.२.१४
√सीस-शास्	°ह ३.६.१३; ९.८.१	सुककथ-शुष्क	५.८.१६
सीसक-(-दे) शिरस्त्राण	६.१३.९	सुकखारह-सुखार्ह	११.१२७
सीसत्तमाड-शिष्यत्वभाव	४ १७.२१	सुखट्ट-(-i) सु + खट्वा, खाटोसे युक्त (ii) सुखट्टा, खट्टे पदावधि युक्त ८	१३.१२
सीह-सिह ५.१४.२; ११.२६; °दार-सिहदार ४.५.१०		सुखडिअ-सुखदित	८.९.६
सीहवार-सिहदार	५.१०.१८; ५ ११.१	सुचित्त-सु + चित्त + वत्, शुद्धचित्तवाला ३	१०.१२
सीहल-वीर कविका एक अनुज	प्रश० १४	सुट्ट-सुट्टु	३.११.५
सीहसिलिअ-सिहशिषु	७.६.३०	√सुण-श्रु °मि ५ १२.२१; °हि (विधि०) १०.१२.९; सुणी (विधि०) १५.९;	
√सु-श्रु, सुम्मई (वहुव०)	४ १५.२; ७.२.३	सुणु (विधि०) २.१८९; सुणिवि ६.२८५; ८.६.११; सुणिवि १०.८ १४	
सुअ-सुत	३.५.९; ३.१४.८; ७ ५.८	सुणेण ५.५.१३;	
सुअ-श्रुत	६.३.५	√सुणंत-श्रु + शतृ	२.१३.४; ३.६ १२
सुअकेवलि-श्रुतकेवली	४.३.१३	सुणह-सुणख, श्वान	९ ११.५
सुद-श्रुति-श्रवण	१.१.११	सुणिय-श्रुतम्	४.१२.११, ९.१६.३
सुइण-स्वप्न	१० १३ ३; १० १३.१२	सुण्ण-शून्य, रिक्त ४.१० ९; ४.११.२; °अ-शून्य ८.१६.१३; णिही-°निधि ९.८.२३; °हत्य- °हस्त ६.१०.९	
सुदणंवर-स्वप्नान्तर	१०.७.८	सुण्णारार-शून्य + आगार, शून्य घर आदि १० २२.६	
सुदणाण-श्रुतिसान, शास्त्रज्ञान	१० १८ १	सुण्णार-सुवर्णकार, हि० सुनार	१०.१६ १
सुदणाकीय-स्वप्न + आलोकन, स्वप्नदर्शन	४.६.९		
सुदर-सुचिर	९.१२.१८		

सुष्णासण-सूय + आसन	७.६.२	सुमह-सुमद्रा (श्रेष्ठि पत्नी)	३.१०.१३
सुणह-सुणु, वधू	९.१७.४	सुमह-सुमति, सुवृद्धि	प्रश० १३.
सुतरणि-सु + तरणि, सूर्य	- १.१.२	सुमह-सुमति मुनि	३.१३.७
सुत्त-सुत्त, घागा, हि० सूत	१.३.१०; १०.४.३	√ सुमरंत-स्मृ + शतृ	३.७.४; १०.१७.१२
सुत्तउ-सुत्त + वत्, सुत्त	३.१४.१३	सुसरण-स्मरण	५.४.८
सुत्तकण्ठ-सूत्रकण्ठ (ब्राह्मण)	२.५.२	√ सुमराव-स्मृ + णिच् 'इ	४.१९.८
सुत्ति-शुक्ति, हि० सीपी	८.११.९	√ सुमरावत-स्मृ + णिच् + शतृ	८.३.५
सुत्थिय-सु + स्थित	१.१६.१०; ८.२.१३	√ सुमारिज्ज-स्मृ (कर्मणि) 'इ	१.११.५
सुत्थिय-सुप्ता (स्त्री० विद्ये०)	४.५.१७	सुमारिय-स्मृत	७.५.१५; ८.५.११
सुदंसणा-सुदर्शना (देवी)	३.१४.२	सुमहस्थ-सुमहत्	५.६.१४
सुदिद्ध-सुदृष्ट	४.१९.५	सुमहुर-सुमधुर	८.१६.५
सुद्वय-कथानाम	१.४.४	सुमाणिकक-सुमाणिकय	४.५.१०
सुद्ध-शुद्ध (भाव)	१०.४.१४	√ सुम्म-श्रु 'इ (मात्मने०)	१.१०.२; ३.१२.६
सुद्ध-शुद्ध १०.२.८; 'गामि-शुद्धाचारी	१०.२१.७;	सुय-सुता	४.१२.६
'चरित्त-शुद्धचरित्र ११.१४.१३; 'पक्ख-		सुय-सुत	१.३.५
'पक्ष, सुक्कपक्ष प्रश० ४, 'मई-मति-		सुय-श्रुत, सुना	३.१२.१३
२ १८.८; ८.४.७, 'मण-मन १०.२६.११;		सुयंभ-सुगन्ध	१.१३.४; २.९.१०; ४.५.१६
'वंस-वंश प्रश० १२; 'सल्ल-शुद्धस्वरूप		सुयकेवळि-श्रुतकेवली	४.३.१३
१०.४.१३		सुयण-स्वजन	२.९.१८; १०.२१.२
सुद्धायास-शुद्धाकाश	११.१०.१	सुयण-सुजन, सज्जन	३.१४ १६, ७.१.२, ९ १.१
सुद्धि-शुद्धि	४.१८.१०; १०.२१.९	सुयणंतर-स्वप्नान्तर	१०.१३.३
सुधम्म-स्वधर्म	९.१७.१४	सुया-सुता	३.७.६
सुपइद्विय-सुप्रतिष्ठित (राजा)	८.३.१२	सुर-सुर, देव ४.३.१०; ५.११.१९; 'कारि-ऐरावत-	
सुपत्त-(१) सुपत्त, सुन्दर पत्ते (१) सुपात्र (व्यक्ति)		हस्ति ४ १०४; 'दंति-ऐरावतहस्ति ७ ४.१०;	
३.२.९		'नर-सुर + नर २.१.१; 'नारी-अप्परा	
सुपत्त-(१) सुपात्र सुन्दरभाजन (१) सुपात्र-योग्य-		९ ४.१७; 'रमणि- 'रमणी, अप्सरा ८.३.३;	
व्यक्ति ८.१३.१३		'वह-पति, इन्द्र १ मं० ८, 'वह-वधू, अप्सरा	
सुप्रमाण-सुप्रमाण	७.१३.४	६.४.५, ७.६.३; 'सरि-सरित्, सुरगङ्गा, गङ्गा	
सुप्रयोहर-(१) सुप्रयोधरा, स्वच्छ जलयुक्त		४.१० ४, १०.१७ ९	
(१) सुप्रयोधरा-सुस्तनी	३ २ ८	सुर-सुरा, मदिरा	६ ७.२१
सुपरिक्खिअ-सुपरीक्षित	२.११ ८	सुरअ 'य-सुरत	२ १३.६; ४ १९.८
सुपसत्थ-सुप्रशस्त	२.१३ १; ५.६.१४	सुरमणीअ-सुरमणीक	३ २.८
सुपसाअ-सुप्रसाद, कृपा	३.७.२	सुरहि-सुरमित	८ ३.४
सुपसिद्ध-सुप्रसिद्ध	१.६.२	सुरहिअ 'य-सुरमित १० १७ १३; ८.१३.४, ९.१२.२	
सुपइद्ध-सुप्रतिष्ठ (राजा)	८.४ ७	सुरहिवाअ-सुरमितवायु	३.१०.१
सुप्पमाण-सुप्रमाण	६ १०.७	सुरा-सुरा, मदिरा	४.८.१५
सुप्पह-सुप्रभा (जैन साध्वी)	१०.२१.४	सुरालअ 'य-सुर + आलय	२.३.६, ३ ७.३
सुफुरिय-सु + स्फुरित	१.६.५	सुरिंद-सुरेन्द्र	१ १७.१
सुबधुत्तिकअ-सुबधुत्तिक मुनि	३.५ २	सुलक्खण-सुलक्षण- (स्त्री० विद्ये०)	२.११ ३

सुललित-सुललित	३.१.१६; ५.१२.१५	सुहणकखड-शुभ + नख + वत्, सुन्दर नखौवाली	
√ सुच-स्वप् ई	६.८.३	३.१०.१४	
सुवर्ण-सुवर्ण	४.५.१६, ९.८.७	सुहणकखत्तजोभ-शुभनक्षत्रयोग	३.४.१
सुवित्तर-सुविस्तार	३.२.१	सुहसील-शुभशील, शुद्धाचरण	प्रश्न० १२
सुविसुद्ध-सुविशुद्ध	३.५.६	सुहम्म-सौधर्म या सुवर्म मुनि	१०.१९ १७;
सुविहोय-सुर्वैभवयुक्त	३.६.११	१०.२१.६; सामि-सुधर्मस्वामी	७ १३.१६
सुव्यय-सुवता (जेनसाध्वी)	३.१३.१४	सुहय-सुभय, सुन्दर	४.१९.२२; १० १६.८
√ सुल-स्वप् ई	४.११.४	सुहयत्त-सुभयत्त ^ण (स्वाधिक)	१० १७.१७
सुसंद-सुसान्द्र	९.९.१०	सुहा-सुधा, अमृता	१.१८.८.२.१२ १
सुसक्क-सुसक्कत, ससक्कत	५.४.२१	सुहापड्ड-सुधापाण्डु, चूनेसे पुता हुवा	४.५.१४
सुसत्त-सुसत्त, सुहृदय, शुद्धात्मा	८.५.१२, ११.१५.७	सुहामाविय-सुधा + भावित (प्रभावित)	२.१२.१
सुसम-सुसम, सरल, सुग्व	१०.३.१०	सुहायर-सुखाकर, सुखकर	८.१३.६; ११ १२ ५
सुसाठ-सुसाठु	३.३.८	√ सुहाव-शोभ ^इ (आत्मने०)	११.१२.१०
सुसिध-शुष्क	१० १५.६	सुहावण-सुखायन, हि० सुहावना	१.१६.४; ४ ८ १६;
सुसिर-सुपिर, छिद्र	११.८.३	४.१५.७	
सुसुत्ति-सुसुत्ति	९.१७ ७	सुहावणि-सुखायनी (स्त्री० विशेष०)	१.१०.२
सुह-शुभ, सुन्दर	४.७.७; ८.५.१४	सुहासायर-सुधासागर	१.१८.६
२.११.५; ८.५ ११; °गघ-°गन्ध	४ ६ ३;	सुहासुह-शुभ + अशुभ	३.७.१४; ४.४.८
°चरण	२.७.८, °चरण-चारित्र	सुहि-सुहृत्	५.१.३०; ८.१०.१४
°दंसण (१) °दर्शन-सुन्दराकृति (११) शुभदर्शन-	१.४.१;	सुहिय-सुखित, हि० सुखी	२.६.१२
सम्यकश्रद्धा	२.६ ६, °भाव-शुभभाव	सुहितक-सुखद ^इ ल्ल (स्वायं)	११.६.१०
१० ४.१४; °भावण-शुभ भावना (युक्त)	१.१६ १०; मण-शुभमन	सुही-सुहृत्	१.५.४
१.१६ १०; मण-शुभमन	४.३.७; °लस्खण-	सुहुम-सूक्ष्म	८.१२.५
सुमलक्षण	८ ४.१; १०.८ ५	सुहृत्-सूचित	१०.४.३
सुह-सुख	८.४.१२, ८.६.९; °निलभ-°निलय	√ सुहृञ्ज-सूच् (कर्मणि) °इ	५.१०.१८
२, °निहाण-°निधाण	६.८.५; °त्तित-°तृप्त	सुद्धिअ ^य -शाटित, मञ्जित	४.२१.६, ५.३.१०;
२ ३.१०, °हुह-सुखदुःख	२.२०.४, °धाम-	८.१०.३	
°धाम	५.३.१०, °पुण-°पूर्ण	सूयाहर-सूति + गृह, प्रसूतिगृह	४.८ ३
°मायण-°माज्ज	३.१३.९, °मिच्चु-°मृत्यु	सूर-सूर	६.२.९, ६.७.१
१०.१४.८, °यर-°कर	१ २.११; °रजिय-	सूर-सूर्य	८.१२.१४, °कंति-°कान्त (मणि)
रञ्जित	१०.८.१५; °सायर-°सागर	१०.२५ १	३.३.७, °कर-°किरण
१०.२.५; °साहिय-°साघत	६.४.७, °सुत्त-°सुत्त	°चक्क-°चक्रो, सूर्य चक्रवर्ती	१०.२५ १
१.१६.७		सूरखेण-सूरसेन (वणिक्)	३.१०.१२, ३ १३.५
सुहकर-शुभङ्कर, कल्याणकारी	११.२.४	सुल्लिणि-शूलिनी, शूलवारिणी, चण्डिका देवी	
सुहकरण-शुभकरण	२ ७ ७	२.१६.१४	
सुहड-सुमट	५ ३.३, ६.५ १०	सेज-(१) सेतु-पुल	१.१२, (११) सेतु-सेतुबंध काव्य
सुहडग-सुमट + अङ्ग	७.६.५	१ ३ ४	
सुहडत्त-सुमटत्त ^ण (स्वाधिक), हि० मुमटपता	७ ७.५	सेज्ज-सौध्या	६ १४.१४
सुहडसार-सुमट + सार, श्रेष्ठमुमट	५.१२ ९	सेट्टि-श्रेष्ठि	३.१०.१२; ४ ७

सेण-श्येन, बाज	१०.१०.९	सोलह-षोडश	४.६.१४; ११.१२.१
सेणावह-सेनापति	५.१.२२, ५.६.१	√ सोव-स्वप् ॥	२.६.१०; १०.८.१२
सेणिक ०य-श्रेणिक राजा	१.१८.२३, ५.१०.२५;	सोवण-सुवर्ण (द्वीप)	९.१९.७
५.१४.२६		सोवाविथ-स्वापित	६.१४.१४
सेणियराव ०य-श्रेणिक राजा	२.१.१; ७.१२.८	सोसिय-शोषित	२.१९.५
सेण-सैन्य	५.११.१९; ६.१२.११, ६.१३.७	सोसिया-शोषिता (स्त्री० विशे०)	१०.१३.६
सेण-श्रेणी, पङ्क्ति	७.३.८	सोह-शोभा ६.७.४; ०इल्ल शोभित	८.१३.९
सेय-श्वेत	८.१२.५	√ सोह-शोभ् ॥	४.७.७, ६.३.३
सेय-स्वेद ३.८.४, ५.१३.१८; ०सुय-स्वेदच्युत १.९.३		सोहमाण-शोभ् + शानच्	५.१.१३
सेल्ल-(दे) कुन्त, माला ७.८.२; ०हर-कुन्तगृह,		√ सोहिचज-शुष् (कर्मणि) ०इ	१०.१७.७
भालोके कोश ७.८.२		सोहग-शोभग्य	५.९.१४, ९.१३.६
सेव-सेवा	११.६.१०	सोहण-शोभन	१०.१६.३
√ सेव-सेव् ०इ	३.३.१३; ७.१.१७	सोहम्म-सोषर्म (मुनि)	२.६.४
सेवजि-बुध	५.८.१०	सोहाकिय-शोभावत्, शोभायुक्त	७.२.९
सेवय-सेवक	१.४.६	सोहाकिया-शेफालिका (फल वृक्ष)	५.८.१०
√ सेविचज-सेव् (कर्मणि) ०इ ५.९.१७; ०सु		सोहिय-शोषित	७.१३.१९
(विधि०) ८.७.२		सोहिय-शोभित	५.९.१३
सेविय-सेवित	८.१३.५; ९.१२.१०		
सेस-शेष	४.५.१५	[ह]	
सेस-शेष (नाग)	४.१०.७	हभ-हृत	४.२.१६
सेसमहाफणि-शेषमहाफणिन्, शेषनाग	५.५.४	हउं-अहम्	३.७.१; १०.१०.१२
सेसिय-शोषित, श्वशेषमात्र	७.४.१	हओ-हय, शवव	१.१५.३
सेहर-शेखर	१०.१९.७	√ हउं-हन् + तुमुन्	५.१४.११
सेहरिय-शेखरिक, शेखरयुक्त	४.७.५	हंसगई-हंसगति (स्त्री० विशे०)	५.४.१९
सेखल-सोख्य ३.१३.१६; ९.६.१०; ०षत्-सोख्य-		हंसदीव-हंसद्वीप (?)	५.३.१
त्यक्न १०.१४.१६; ०रासि-०सोख्यराशि		हक्क-(दे) आह्वान, हि० हाक ४.५.८, ४.२१.१८	
१०.६.२; ०वास-०सोख्यवास १०.१.१४		√ हक्कल-(दे) आ + ह्वे + शत्	६.५.९
√ सोच्च-√ शुच् ०इ	२.१५.५	√ हक्कार-आ + क् + णिच् ०रिचि	३.१४.१६
सोडव-सोडव्य, सहनीय	१०.२२.९	हक्कारिण ०य-आकारित, आहृत, ५.८.२०; ६.१२.६;	
सोत्त-स्रोत	७.१.१०	९.१७.१६; ७.४.१६	
सोवारथ-सोवारक (पत्तन) सूरत	९.१९.४	हक्किय-(दे) हुङ्कृत, हुकार	१०.९.५
सोम-सोमनाथ	९.१९.७	हह-(दे) हाट, आपण ४.१०.१; ७.१२.१; ०मग-	
सोमपाण-सोम (रस) पान	२.४.१०	हाटमार्ग १.९.२, ८.३.८	
सोमसम्म-सोमशर्मा (ब्राह्मणी)	२.५.४, २.५.१५	हड्ड-(दे) अस्थि, हि० हाड २.१८.१३, ७.१.२१	
सोमाकिया-सुकुमारिका, सुकुमार कन्या	८.१०.८	√ हण-हन् ०इ ९.७.३; ०इ ९.७.३, ६.७.१४;	
सोयाउर-शोकानुर	३.७.५	हणति ६.६.६; हणु-हणु (आज्ञा०)	
सोयाणल-शोकानल	२.६.१	५.१४.९; हणिवि ५.१४.३	
सोयार-श्रोतार., श्रोता	११.१५.११	√ हणत-हन् + शत्	२.५.१७, ७.११.१३
सोरट्ट-सोराट्ट	९.१९.७	हणुवंत-हनुमत्, हनुमान	३.१२.२
		०हत्ति-०भनित	१.१४.१२; ५.१०.१२

हियल्य-हित + अर्थ	२.१५.१३; ५.१३.१६	हुयवह-हुउवह, अग्नि	२.५.१९; ७.६.३
हियय-हृदय ४.१०.९; ९.१२.१४; °च्छित्त-°हच्छित्त ८.११.१; °दुख-°दुःख ३.१३४, °सल्ल °शाल्य ७.६.१५; °सूल-°सूक्ष्म-५.११.१९		हुशम-हुताश(न), अग्नि	८.१४.८, १०.२६.८
हियवळ-हृदय + क (स्वार्थे) १.११.६, ९ १५.२; १०.१५.७		√ हुसिज्जंत-हुल्ल (कर्मणि) + शतृ	६.७.६
°हिरोविय-अविरोपित	७.८२	हुळण-हुळना	४.२०.४
हिल्लिहिल्लिय-(अत्रन्या०) हिनहिनाता	५.११.१२	हुळय-शङ्ख ध्वनि	१.१४ ९
ही-चिक् दुःख, शोक, आश्चर्य	२.११.११	हेइ-हेति शस्त्र	- ७ १.१९
हीर-हीरा	१.३ १०	हेउ-हेतु	१०.२०.१२; १०.२१.९
हीरय-हीरक, हीरा	४.१४.२, ११.१३.२	हेंवाइअ-(अण०) गवित	४.२.१३; ७.७.५
हु-खलु	१.५.२१; २.६.१२	हेट्टासुह-अवोमूख	२ १८.८
हुअ-सूत	७.११.१२, ९.१४, ९.११.४	हेट्टिल्ल-अग्रस्तन, नीचेका	११.१० ३
√ हुत-भू + शतृ	१.११.१२; ३.७.१२; ४.११.६	हेमेयळ-हेममय, सुवर्णघटित	८.१६.३
हुय-भूतः ३.७.३; ४.७.४; ४.१०.४; हुया(बहुव०) ९.७.४		हेरिय-हेरिक्, गुप्तचर	६ १.१७, ७.३.२
हुयउ-भूतः	२.१५.१०	हेळअ-हेला, वेग	१.१०.७
√ हुंकरं व-दुड्, क्त + शतृ	५.७.२२	हेळि-(डे) अद्भुत (?)	९.२.४
हुंकरिय-हुंकारित	६.७.२	√ हो-भू °इ ३.१२.८; °सि १०.१७.१०; °मि ४ १४.३; ५.४.९; °उ (विधि०) ४.४.१३; °हु (विधि०) ७ ३.१२; °इवि ९.७.१५; °एत्पिणु ३.१०.७; °वि ५.२.८; °सइ (भवि० तु० पु० एकव०) २.१५ १०; °संति (भवि० तु० पु० बहुव०) ९.३.१४ °एसहिं (भवि० तु० पु० बहुव०) ४.३.१३	
हुंकारिय-हुंकारित	५.८.१७	√ होंत-भू + शतृ,	१.६.३
√ हुं वडयमाण-हुड्, कृ + बानच्	१०.२६.४	होंतड-भू + शतृ (भूतार्थे)	२ १६.११
हुड्ढकका-वाद्य	४ २.७; ५.६.१०	√ होमिज्ज-हु (कर्मणि) °इ	२.४.१०
हुणिय-घृणित	१.१.५		

खाद्य-पदार्थ

कूर-विशिष्ट चावल	८.१३.१०	बहि-बधि	७.१२.५
कारपाल-काजी, सावदाना	३.९.१०	दुद्ध-दुग्ध	४.१६.६, ९.१०.२१
गोघूम-गोधूम, गेहूँ	५.५ २९	नाली-कयलनाल	९ २.१०
तंबूअ-ताम्बूल	८ ८.४	खट्टुअ-खट्टे अचार, चटनी आदि	५ १३.१२
तंबोलवत्त-ताम्बूलपत्र	९.१२.३	नेह-स्नेह, घृत	८.१३.१०
तक्क-तक्क, छाछ	८.१३.१३	लवण-लवण	८.१३.११
तिलअव-तिल + यव	२.६.१	मुग-मूंग	८.१३.११
तेल्ल-तैल	५ ७.२३		

ध्वन्यात्मक-शब्द

आरड < वा + रट्-घोस्कार वरना	७.८.९
कणकणिर-कणकणवणु + इर(ताञ्छीत्ये) ववणनघील	
३.११.६; ५.१.२१; ५.२.१	
कडकन-कडकिकय, कडाकसे दूटना	७.८.१२
खडक खडकिकय, खडखड करके टकराना	७.६.५
करड-करड-करड	१०.१९.२
कलकल-कलकल, कौलाहल	१.१६.१, ६.७.१; ७.८.४
कलकल-कलकल मधुररव	९.१३.११
किरिकिरि-किरि-किरि वाद्यकी ध्वनि	५.६.१६
कुलकुल-कलकल	५.१०.१६
खडखड-खडखडाहट	१.१५.७
खडखड-खडखडाहट	६.१०.११
खणखणखण	६.६.६
खलखल	५.८.२१
खलखल	१.७.९
गगन-गगन	२.१०.७
गडगड-गडगडाहट	६.१४.४
गुमगुमिय-गुमगुम	५.१२.८
घघर-घघर, घघराहट	२.१८.१०
घघरिय-घघरायित	२.१८.१०
घघरिय-रघादिकी घघराहट	१.१६.४
धुधुधुधु-धुधु, उलूकध्वनि	५.८.१९
धुमधुम	१.१५.६
धुधुरिय-धघराहट	५.८.१६
छोकार-पशु-पक्षियोंसे खेतोंकी रक्षाके लिए कृपक	
धधुआँका शब्द	५.९.९
भलभल-जलका भलभलाना	७.५.१२
भणभणत-भनभनाहट	१.१५.७

टं-टिविलनाचका शब्द	१०.१९.३
डमडक-डमरु शब्द	५.६.९
डमडकिय-डकका शब्द	१०.१९.५
डमडमिय-डमरु शब्द	५.६.९
तखितखितखितखितखित-तखिता वाद्यका शब्द	५.६.१२
तडतडण-तडतड	१.१५.९
तडतड-तडतडिय, विद्युत् गर्जन	५.६.१३; ५.७.१९;
	७.८.७
तडितरतडि-तरड वाद्यका शब्द	१.१४.७
तडिफिड-हिं तडफडाना	७.१५.१२
त्रं त्रं-डकका शब्द	५.६.१०
धगगदुग-धगगयुग वाद्य शब्द	५.६.११
धगयुग-वाद्य शब्द	१.१५.६
धरहर-धरधर काँपना	५.७.११; ६.५.८
धिरिकटतट्टकट-धिरिक वाद्य ध्वनि	५.६.१३
धुगियग-वाद्य शब्द	१.१५.१६
दमदमिय-दमदमाना, वहलना	७.५.५
दनावग-जलनेका शब्द	४.६.२
घाह-घाड़ देकर रोना	३.७.५; ४.१९.२०; १०.११.७
रगभण-वाद्य शब्द	१.१५.७
रण रण-	२.१८.१२
हं हं हं रणिय-रञ्जा वाद्यका शब्द	१.१५.८
रणरेटिय-भ्रमर गुञ्जार	५.१०.९
रणरणिय-रणरणाहट	२.१२.९
वोकार-डुङ्कार, हिं डूम मारना, गर्जना	५.८.१८
सलसलय-कंसाल शब्द	५.६.८
सलसलय	९.१०.३
हिलहिलिय-हिं वोडोंका हिनहिनाना	५.११.१२
हूहूय-वाहू शब्द	१.१५.९

वाद्य-यन्त्र

बालावणि-शालापिनी, बीणा	९.९.११
कंसाल	१.१५.७; ५.८.७, ५.६.८
करड	५.६.७; १०.१९.३
कलवेणु-मधुरवधो	४.८.६
काहल	१.१५.९
किरि	५.६.११

खुं	५.६.१२
घंटा	५.६.९
भल्लरी	१०.१९.४
टिविल	१०.१९.३
डमरु	५.६.९; ७.२.१
डकका	४.५.१२; ५.६.१०

तंति-तन्त्री	४.१५.३	पडुपडह-पडुपटह	४.५.५.६.७
तरड	१.१५.७	रंज-रंजा	५.६.१०
थगदुग	५.६.११	संख-शाख	१.१५.९
थिरिचि	५.६.१३	साल	४.५.७
दडिडंबर	"	हुडुक्का	४.२.७.५.६.१०

वृक्ष-वनस्पति

अंकोल-मुष्प	५.१०.९	गणियार-गणिकार	५.८.११
अंकोल-वृक्ष	५.८.८	गुंजा-गुञ्जा, हिं चौटली	५.८.१०
अंजण-वृक्ष	५.८.७	गोधूम-गोधूम-गोहूँ	३.८.२९
अकख-चमुविभीतक या बहेड़ा	५.८.३४	घम्मण-	५.८.६
अज्जुण-अजुंन	५.८.३१	घव-	५.८.६
अंब-आम्र	४.२१.२	घुसिण-केसर	२.९.९;११.१३.९
अल्लय-आद्रक, अदरक	७.१.२	घोटि-	५.८.९
अल्लहज-आद्रक चणकाः, गीले घने	३.१२.१५	वंदण-चन्दन	५.८.३३
असोय-अशोक	१.१७.१२;४.१७.४	चार-चार, प्रियाल	५.८.३३;४.२१.३
अहिमार	५.८.६	चिरहिल्ल	५.८.८
आसत्थाम-अश्वत्थ, पीपल	५.८.३२	जंबुख-जम्बू	४.२१.२
इंदीवर-इन्दीवर, कमल	१.७.७	जंबुख-जम्बूफल, हिं आमून	४.८.२३
जंवर-उडुम्बर	५.८.१३	जंबीर-नीबू (वृक्ष)	४.१६.३
कटिवेरी-कंटीली वेरी	५.८.६	टिबर	५.८.९
कंदोट-नीलकमल समूह	५.९.७	ताल	४.१६.३
कणवीर-हिं कनेर	४.१६.५	तिरिगिच्छ	५.८.७
कणियार-कणिकार-कनेर	५.८.११	थलकमलिण-स्थलकमलिनी	१.८.४
कयंघ-कदम्ब	४.१६.४;४.२१.३;५.१०.१३	दक्ख-ब्राक्षा, अंगूरफल	१.७.४
करवंद } हिं करोंदा	४.१६.२;५.८.१२	दक्ख-ब्राक्षा (वृक्ष)	१.११.११;४.१६.३
करवंद }		दालिम-दाड़िम	४.२१.३
करीर-करील (झाड़ी)	१०.७.३	दुब्बा-दूर्वा, घास	७.१२.५
करीरायण-करीर + रायण-राजन, सं० राजादनी		देवदास-	४.२१.३
वृक्ष ४.१६.५		घामद-वातकी, घट्टा	१०.३.३
कलमसालि-कलमशालि, धान्य-विशेष	१९.१	घायई-घातकी	५.८.८
कुंद-मुष्प वृक्ष	४.११.१४;४.२१.३	नगोह-न्यग्रोध (वट)	२.१२.८
कुडय-कुटज	५.८.११	नालियर-नालिकेर, नारियल (वृक्ष)	२.१८.१०
कुरवव-कुरवक	४.१७.२	निघण-	५.८.९
कुवलय-नील कमल	८.२.१६	निव-निम्ब, नीम	५.८.१३;४.२१.२
केलि-कदली	८.६.१२	पंकज-पङ्कज, कमल	४.२१.८
खइर-खदिर, खैर	५.८.६	पडुल-पाटल, गुलाब पुष्प	८.१५.४

पाटल-पाटल, गुलाब	४.५.१३	वणफल-वनफल-या कपासफल, कपासका फूल	१.९.४
पलाश-पलाश	५.८.३४	वल्करी-लता	८.६.१७
फोफल-पूगफल, सुपारी	१.८.८	विडंग-	३.२.६
मत्लायई-मत्लातकी वृक्ष	५.८.८	वेइल्ल-विचकिल्ल, पुष्पलता	३.१२.१२, ४.१६.४
मंदार-	४.२१.३	वोरीहल-वेरीफल, वेर	८.१४.१३
मंदार-	४.१६.२	सज्ज-सर्ज	५.८.१०
मचकुंद-मुचकुन्द	४.१६.२	सण-घाम्य विशेषके पीधे	१.९.५
मल्लि-	४.२१.२; ५.८.८	समी-शमी छोकार	५.१८.१०
महु-मधु-मधूक, महुवा (वृक्ष)	१०.७.२	सरल	३.१.१७; ५.१०.२०
मार-	२.८.१२	सरसव-सर्षप, सरसो	७.२.९
मालइ-मालती लता	३.१२.१०, ४.१३.११	सलई-शल्यकी	४.१६.४, ४.२१.१
माहुलिंग-मातुलिंग	४.२१.३	सार	१.८.३
मिरियविल्लि-मिर्च बेल	१.८.६	साल-शाल	४.२१.१
मुणाल-मुणाल	४.१४.१७	सालि-शालि (धान्य)	५.९.६, ९.४.११, ११.६.३
रत्तंदण-रक्तचन्दन	४.११.४	शालिखेत्र	४.६.३, ९.४.९
रक्तासोय-रक्ताशांक	८.४.६	सिसमी-शीशम	५.८.१०
रावण-विशेषे क्षीपवि वृक्ष	५.८.७	सिरसिय-सरसिज-कमल	८.११.४
रुंद-	४.२१.३	सिरिस-शिरीष	५.८.१०
रुइवल-रुद्राक्ष	४.१६.३	सेवसि	५.८.१०
लवलि-लवली, लवंग (वृक्ष)	४.१६.३	सोहालिया-शेफालिका	५.८.१०
वधुवक-वधूक पुष्प	१०.१८.१४	हिणुणी	५.८.९
वधुय-	१.३.१३		

व्यक्तिगत-नाम

अवादेवय-अंबादेवी	१.५.६	आहुंडल-आखण्डल-इन्द्र	२.४.७
अकल-अकल, रावणपुत्र	५.८.३८	उवहिचंद-उदविचन्द्र, सागरचन्द्र	३.५.१३
अज्जुवसु-आर्यवसु (ब्राह्मण)	२.५.२	कंचाहणि-कात्यायनी-चामुण्डादेवी	५.८.३५, कंचा- यणी १०.२५.२
अज्जुण-अजुन (पाटव)	५.८.३१	कणयसिरि-कनकश्री-श्रेष्ठिकन्या (जंबूत्वामीकी एक पत्नी)	४.१२.४, ९.६.१
अमरई-अमरेंद्र, देवेन्द्र	४.१.५	कामधेणु-कामवेनु	४.१८.६
अरुहायस-अरुहास (श्रेष्ठी)	४.१.७, ४.३.१०, ८.५.२, ९.१४.२; १०.२१.३	कामलय-कामलता (विद्या)	३.१४.२१; ९.१२.१४
अरुणाह-अरुहनाथ (तीर्थंकर)	३.१३.७	केसवि-केशव, कृष्ण	४.४.४
अहमिन्द्र-अहमिन्द्र	१०.२४.१२	गयणगइ-गयणगति विद्याधर	५.११.९
आइचचदंसणा-आदित्यदर्शना (विद्युन्माली देवकी एक देवी)	३.१४.१	गयणगमण-गयणागमन, गयणगति विद्याधर	६.१०.५
अलोहणिविज्ज-अवलोकिकनी विद्या	५.२.१०	गिरितयण-गिरितनया, पार्वती	५.९.१४
आसरयाम-अश्वत्थामा (द्रोणाचार्यपुत्र)	५.८.३२	गुरु-द्रोणाचार्य	५.८.३२

गोगी-गौरी, पार्वती	४.१८.१२	घणय-घनद-कुवेर	१.१७ ३
चंद्रगह-चन्द्रनखा (रावणकी बहिन)	५.८.३३	घणयत्त-घनदत्तश्रेष्ठि जंबूस्वामीके पितामह	४.१२.६
छत्रय-छत्रक (नामक) जुबारी	४.२.१०	घणहृद-(सं०) घनदत्त नामक रूपक	९ ३.२
जंबूस्वामि-जम्बूस्वामी	४.३.११; ४.४.१;	(काम-)-वसुधृद-घनुर्धर, कामदेव	३.१०.१४, ८ ५.७
० ८ १६ ज्ञादि		वरिणि-धारिणी-शूरसेन श्रेष्ठिकी तीसरी पत्नी	३ १०.१३
जया-मेघेदवर, एक पौराणिक चक्रवर्ती	३.१.११;	नडल-नकुल (पाण्डव)	५.८.३१
५.११.१७		नमि-ऋषभ तीर्थकरके एक पौत्र	१.१ ११
जयादेवी-वीरकविकी चौथी पत्नी	प्रश्न० पं० १६	नहृगइ-नभोगति-गगनगति विद्याधर	७.७.४
जमइ-वीरकविका तीसरा अ्युव	प्रश्न० पं० १४	नायवसू-नागवसू-भवदेवकी ब्राह्मणी पत्नी	२ ११ २
जसनास-यशनाम-यश नामका पण्डित प० प्रश्न० २१		णाहेय-नाभेय-ऋषभ तीर्थकर	३.१.११
जसमइ-यशोमति, सूरसेन श्रेष्ठिकी पत्नी	३.१०.१३	नेमिचंद-नेमिचन्द्र, वीरकविकी प्रथम पत्नीमे उत्पन्न पुत्र	प्रश्न० पं० १८
जयमइ-जयमद्रा-सूरसेन श्रेष्ठिकी प्रथम पत्नी	३.१०.१३	पईव-प्रदीप, पतंजलिके व्याकरण महाभाष्य पर कैपट कृत टीका	१.४.२
जसोहणा-यशोधना रानी	३.३.२	पठमसिरि-पद्यथी श्रेष्ठिकन्या जम्बूस्वामीकी एक पत्नी	४.१२.२
जालामुह-ज्वाभ्यामुख (ब्रैताल)	७ ६.८	पठमावइ-पद्यावती पद्यथीकी माता	४.१२.२
जिणमई-जिनमती, जंबूस्वामीकी माता	४.७.२	पंकयसिरि-पङ्कजथी, पद्यथी, जम्बूस्वामीकी एक पत्नी	९.२.३
जिणयास-जिनदास श्रेष्ठि, जंबू स्वामीके स्वर्गीय चाचा	४.२.५	पंचवाण-पञ्चबाण, कामदेव	४.१५.४
जिणवई-जिनवती-वीरकविकी पहली पत्नी, प्रश्न० पं० १५		पडवनाह-पाण्डवनाथ. युधिष्ठिर	१ ७ ३
जिणवइनाह-जिनपती नाथ-वीर कवि	१.७.१	परय-पार्य, अर्जुन	८.२.९
जिणसेन-जिनसेन-अरहदास श्रेष्ठिका भतीजा	१०.२१.३	पुक्खरइ-पुष्करार्थे पुष्करद्वीप	११.११.१०
जित्तसिरि-जितथी-श्रेष्ठिकन्या जंबूस्वामीकी एक पत्नी	८.९.११	पुष्कयंत-पुष्पदन्त (अप०) महाकवि	५.१.२
तडिमाल-तटिन्माली = विद्युन्माली देव	४.७.२	पोमावइ-पद्यावती वीरकविकी दूसरी पत्नी	प्रश्न० सं० १४
तप्परादेवय-नर्पणदेवता	४.१७.१३	वलएव-वलदेव, वलराम, रामचन्द्र प्रभृति ती पोगा-जिक महापुराण	४.४.४
तिनयण-तिनयन-महादेव	१.११.८; ५ ८ ३६	भम्मुट्टि-बहामुट्टि एक घृतं पट	१० ८.२
तियवत्त-त्र्यल, महादेव	७.४.१३	भयवत्त-भवदत्त, भवदेवका अग्रज	२.५.७, ८.३.३
वहमुह-दगमुख, रावण	३.१२ १	भवएव, भवएव-भवदेव वही	२.७ ९; २.१५ ३ ३.४ ७.८ ३.११
दिह-पूरि-दंड प्रहारी नामक भोल	१०.१२ १	भवएवामर-भवदेव देवता	३ ३.१८
दुट्ठोहण-दुर्घोषन	५.१३.७	भवयत्त-भवदत्त (वही)	३.३ ३.८.१.२१
दुम्भरिअण-दुम्भंण नामक द्विज, नागवसुके पिता	२.११.१	नागह-(महा) नारन मुद	५.८.३१
देवत्त-देवदत्त-महाकविके पिता	१.६.४	नासातय-भापातय संस्कृत प्राकृत	११ रंग (१३०)
देवयत्त ,, ,,	१.६ ४		४.१२.११
देवोत्तरनाम-भवदेव	८ २.९	मयंन, मियंन-यूगाक, कैरल सुवति	५.० १३;
दोण-द्रीण (आचार्य)	८ ३.९	६.१.१२; ९.११.३	
घरहट घदग-घारहट वर्गवंग	१.५ २		

महापद्म-महापद्मराजा	३.५.१०; ८.१.२३	विणयमाल-विनयमाला, विनयश्रीकी माता	४.१२.५
माक्य-माकृति, पवनञ्जय, हनुमानके पिता		विणयमह-विनयमती, रूपश्रीकी माता	४.१२.६
	३.१२.२	विनयसिरि-विनयश्री जम्बूस्वामीकी एक वधू	४.१२.५
मालइलय-मालतीलता, कनकश्रीकी माता	४.१२.३		
माह्व-माधव नामक घूर्त	९.१०.२३	विसंवह-विसन्ध्र नामक राजा, विद्युच्चरके पिता	
रयणचूल-रत्नचूल विद्याघर	५.११.९; ६.१०.५		
रयणसिंह-रत्नशिख, रत्नखेखर (वही)	५.३.१;	विहीषण-विभीषण, रावणका अनुज	५.८.३४
	५.१२.११	वीर-कवि, जन्मसाभिचरिठके रचयिता	१.६.४
रविसेण-रविषेण श्रेष्ठि	३.१३.१	वीर-महावीर तीर्थकर	१.२.१
रहुङ्गल-रघुकुल	८.२.७	वीरजिएंद-वीरजिनेन्द्र (वही)	४.४.२
रहुवह-रघुपति, रामचन्द्र	५.१३.२९	सउहम्म-सौधर्म कुमार जो पीछे मुनि हो गये तथा	
रामायण	१.४.४	म० महावीरके अंतिम गणधर हुए।	
रावण	५.८.३३, ५.१३.३६	इन्होंने ही जम्बूस्वामीको वीक्षा दी तथा	
रिसह-ऋषभ तीर्थकर	४.४.३	जम्बूस्वामीके द्वारा पूछे जानेपर इन्होंने	
भद्रमारि-भद्रमारि, व्यस्तारदेवी	१०.२.५	भगवान् महावीरके मुखसे जैसा सुना था,	
रुप्यिण-रुक्मिणी	८.३.२	वैसा समस्त जैन आगमोको कहा	८.३.११
रुवलच्छि-रूपलक्ष्मी श्रेष्ठिकन्या, जम्बूस्वामीकी		सखिणी-शङ्खिनी नामक कवाडी	९.८.१; १०.१८.१
एक पत्नी	४.१२.६	संतुवा-सन्तुवा-वीर कविकी माता	१.५.८ प्रश्न०
रुवसिरि-रूपश्री, रूपलक्ष्मी (वही)	१.९.५		पं० १२
रुखणक-रुखणाङ्क वीरकविके द्वितीय अनुज		सवक-शक्र (इन्द्र)	५.५.९
	प्रश्न० पं० १४	समुदत्त-समुद्रदत्त श्रेष्ठि	४.१२.१
रुखण-रुखण, राम अनुज	८.२.७	सम्मह-सम्मति, महावीर तीर्थकर	१.२.९
सोलाबह-सोलावती, वीर कविकी तीसरी पत्नी		सर्म्य-स्वयम्भू, अण० महाकवि	१.२.१२
	प्रश्न० पं० १६	सर्म्यसुएव-स्वयम्भुदेव (वही)	५.१.१
वहवत-वैवस्वत, यमदेवता	४.२०.१३, ७.१.२२	सरसह-सरस्वती देवी १४.७, सरस्सई	३.१.४
वज्रयंत-वज्रवन्त राजा	८.१.२३	सहसवख-सहस्राक्ष, इन्द्र	१.१.५
वहुमाण-वर्द्धमान महावीर	१.२.१.१.३.१०,	सायरचद-सागरचन्द्र राजकुमार ३.६.४; सायर-	
	२.८.१३	ससि - सागरचन्द्र	८.१.२४
वणमाल-वनमाला, महापद्मकी रानी	३.३.१५;	सायरदत्त-सागरदत्त श्रेष्ठि	८.४.४
	३.८.३	सिरिदेण-श्रीसेना, विसन्ध्रराजाकी रानी	३.१४.८
वरंगचरिख-वराङ्गचरित	१.५.२	सिव-शिव, एक घूर्त	९.१०.२३; १०.१८.३
वासुपुत्र-वासुपुत्र तीर्थकर	३.१३.६; १०.२.४.११	सिवएवि-शिवदेवी, नेमितीर्थकरकी माता	९.१४.७
विक्रमकाल-विक्रमकाल	प्रश्न० पं० २	सिवकुमार-शिवकुमार, राजपुत्र	८.२.१४. कुमार
विज्जुचर-विद्युच्चोर ३.१४.४; ९.१८.६; ११.१५.३			३.४.४; ३.५.११
विज्जुपह-विद्युत्प्रभा-विद्युन्माली देवकी एक देवी	२.३.५, १०.६.४	सिंहंछि-शिखण्डी-अर्जुनका वीर सारथी	५.८.३१
विमि-ऋषभ तीर्थकरके एक पौत्र	१.१.११	सीय-सीता-रामपत्नी	३.१२.१५, ५.१३.६
विज्जुचर-विद्युच्चोर	३.१४.४, ९.११.१७,	सोहल्ल-वीर कविके एक अनुज	प्रश्न० पं० १४
	१०.१८.१२, ११.१५.३	सुद्वेय-श्रुति + वेद	२.५.१
		सुदसत्य-श्रुतिभास्त्र	९.१६.७

करिवयण-करिवदन, हस्तिमुख, एक हिमालय पर्व-
तीय जाति, १ १९.३
कॉलिंग-कॉलिंग नगर, उडोसाकी राजधानी, भुव-
नेश्वर १ १९ १४
कवेरीतट-कावेरी तट, माघाता (ओकारनाथ) के
निकट नर्वदाकी उत्तरी छाया, १.१९.५
कसमीर-काश्मीर १.१९.१०
कामरूप-कामरूप, आसाम १ १९.१५
किंकाण-केकय देश, पंजाबमें सतलज और व्यासके
बीचका प्रदेश । १.१९.११
किंकिण-किंकिण धारवाडमें तुगभद्रा नदीके
दक्षिणी तटपर अनगंडीके पास छोटी बस्ती,
इसे अनगंडी भी कहते हैं, १.१९.६
कीर-कीर नगर, पंजाबमें वैजनाथ नामक तीर्थ,
कोट कागडासे तीस मील पूर्व १.१९ ६
कुंतल-कुंतल देश, सीमाएँ उत्तरमें नर्वदा, दक्षिणमें
तुगभद्रा, पश्चिममें अरब सागर, पूर्वमें गोदावरी
और पूर्वीघाट १.१९ ३
कुष-कुषदेग, हस्तिनापुर, १.१९.१३
कुषविसय-कुषविसय, वही, १०.१८.६
कुरुल-कुरुल पर्वत ५.१०.११
केरल-केरलराज्य १.१९.१
केरलनयिरि-केरलनगरी ५ ५ १७
केरलपुरि-केरलपुरी वही ५.२.६
कोकण-कोकण देश, पश्चिमोघाट और अरबसागरके
बीचका संपूर्ण प्रदेश, प्राचीन परगुराम क्षेत्र
१.१९.५
कोग-कुर्ग, कोयंबटूर, सलेम और तिल्लेवल्लो तथा
ट्रावनकोर जिल्लोका कुछ भाग १ १९ १४
कोसल-(दक्षिण) कोसल, गोडवाना, आधुनिक महा-
कोसल १ १९.१
खस-खसदेग, काश्मीरके दक्षिणका प्रदेश, दक्षिणपूर्वमें
कास्तवार नदी, पश्चिममें वितस्ता (व्यास)
१.१९.१०
खोरमहणव-खोर महार्णव, खोर समुद्र, खीरोद
(पौराणिक) ६.१ १३ (द्रष्टव्य वृ० स० १४.६)
खीरोवहि-खीरोदवि-वही ४.१०.६
गजब-गोडदेश १.१९.१३ उत्तर कोसल, राजधानी
श्रावस्ती, आधुनिक गोडा (उ० प्र०) प्राचीन

कालमें भारतका एक विशाल भूभाग गौड़ कह-
लाता था । पंजाबको उत्तर गौड़, गोडवाना
(महाकोसल) को पश्चिम गौड़, कावेरीके तट-
पर एक दक्षिण गौड़, एवं सपूर्ण बंगालको पूर्व
गौड़ कहा जाता था । अगदेशके दक्षिणमें दक्षिण
वंगाल, जिसकी राजधानी ताम्रलिप्ति रही, उसे
भी गौड़ देश कहते थे । उ० प्र० में गोडा
स्थानका भी नाम (गोनर्द) गौड़ था और
उज्जयिनी तथा विदिशाके बीच एक कस्बा भी
गौड़ नामसे जाना जाता था । (विशेष द्रष्टव्य :
नं० ला० डे प्रा० म० भा० भी० कोश)
गग-गगानदी १ १९.१५
गंगवाडी-गंगवाडी नगरी (आंध्र) गंगराजाओकी
राजधानी १.१९.२
गंगोवहि-गंगोदवि, गंगासागर, सागर संगम,
१ १९.१६
गुलखेड-गुलखेड १.५ १; मालनामें प्राचीन सिधुवर्षी
नगरीके पास वीर कविका जन्म गाँव ।
गुज्जराता-गूर्जरना प्रदेश, गुजरात खानदेश और
मालवाका एक बडा भाग गूर्जरना कहलाता था ।
धीरे-धीरे वही गुजरात बन गया । १.१९.९
गोल्ल (?) सम्भवतः गौड़देश १.१९.१४, अंगदेशका
दक्षिण भाग, अथवा दक्षिण बंगालकी राजधानी
ताम्रलिप्ति (तमलुक) ।
गोवयण-गोवदन, हिमालयीन गोमुखजाति १ १९.१२;
देखिये : वृ० सं० १०.२३; ६८.१० ३
चंपानयिरि-चंपानगरी, दक्षिण विहारमें भागलपुरसे
चार मील पश्चिम ३.१०.११
चंपापुर-चंपापुर (वही, १० २४ ११)
चित्तउड-चित्तौड १ १९.२
चीण-कोचीन पत्तन (केरल राज्य) १ १९ ९
चेउल्ल-चेउल्ल (?)
चोड-चोल, द्रविड देश १ १९.२, उत्तरमें पैन्नार या
दक्षिण पिनाकिनी नदी, पश्चिममें तजोरको
लेकर कुर्ग अर्थात् वेल्लोरेसे पुदोकोट्टई तक
छोहारबीव-छोहारद्वीप (?) १.१६ ६
जडण-यमुना नदी १ १.१५
जंबूदीव-जम्बूद्वीप, एक विशाल जैन पौराणिक क्षेत्र,
हिंदू पुराणोके अनुसार भारतवर्ष ३.२.३;
६ १.१३

मिलाकर बंगालके पाँच विभाग थे। पुण्ड्र-उत्तारी बंगाल, समुद्रतट पूर्व बंगाल, कर्ण सुवर्ण-पश्चिम बंगाल, ताम्रलिप्त-दक्षिण बंगाल और कामरूप-जासाम। कामरूपको छोड़कर पश्चात् कालमें बंगालके निम्न चार विभाग हुए—बरेन्द्र और वंग गंगाके उत्तरमें; तथा राठ और वागडी गंगाके दक्षिणमें; बरेन्द्र और वंग ब्रह्मपुत्र नदीसे विभाजित थे, तथा राठ और वागडीके बीच गंगाकी एक शाखा जालिंगी नदी बहती थी। बरेन्द्र अर्थात् पुण्ड्र, महानंदा और करोतोया नदियोंके बीच। वंग-पूर्व बंगाल। राठ-भागीरथी (गंगा) के पश्चिममें कर्णसुवर्ण। और वागडी अर्थात् दक्षिण बंगाल ९.१९ १४; वंभोत्तर—ब्रह्मोत्तर स्वर्ण ३ १०.१; ८.२.१३ बव्वर—वर्बरजातिका देश, वर्बर देश, वार्बरिका द्वीप जो सिंधु नदीके डेल्टाके एक ओर फैला था; और सिंधु नदीके मुहानेपर वर्बर नामक एक बड़ा बंदरगाह तथा व्यापारी नगर भी था। बालुप्पह—बालु (का) भ्रमा, (एक नरक भूमि) १०.१० ६ बालुयासागर—बालुका सागर, संभवतः अरबसागर ९.१९ १२

भद्वरंग—भद्वरंग ९.१९.३, प्राचीन भद्रावती (भद्रा) नदीके आसपासका प्रदेश, चाँदा (जिला ८० प्र०) से अठारह मील उत्तर-पश्चिममें भंडक नामक गाँव ९ १९.३

भरहलेत्त—भरतक्षेत्र, भारत ४.३.१५, ११.११.९

भरयच्छ—भृगुकच्छ, भडौक ९.१९.५

भारह—भारत देश १.६.१७;

भारत—महाभारतकी युद्धभूमि ८.३.८, "रणभूमि-वही ८.८.३१

भिल्लमाल—आधुनिक भीनमाल, प्राचीन श्रीमाल, आबू पर्वतसे पचास मील पश्चिम ९.१९.७

भोयभूमि—भोगभूमि, देवकुह उत्तरकुहमें पौराणिक भोगभूमिया ११.११.५

भंदर—भंदारगिरि (जिला भागलपुर, द० बिहार)

मगह—मगध देश २.३.१०; ५.८.३८ "विसज-मगध विषय वही, २.४.७ सीमाएँ—गंगाके उत्तरमें बनारससे लगाकर मुँगेर तक, दक्षिणमें सिंहभूम जिला संपूर्ण; पश्चिममें सोननदी, और पूर्वमें बंगाल

मणुसोत्तरगिरि—मानुपोत्तर पर्वत (पौराणिक) ११.११.११

मज्जदेश—प्राचीन मध्यदेश ९ १९.१४; सीमाएँ—पश्चिममें कुशक्षेत्रमें सरस्वती, पूर्वमें इलाहाबाद, उत्तरमें हिमालय और दक्षिणमें विंध्य एवं पारियात्र [विशेष द्रष्टव्य : नंदलाल डे प्रा० और म० का० भार० भौगो० नामकोश तथा B. C. Law-Hist Geog of Ancient, India 'मध्यप्रदेश']

मलयाचल—मलयगिरि, पश्चिम घाटका दक्षिणपर्वत ५ २.१२; ९.१९.१

महरट्ट—महाराष्ट्रदेश, ऊपरी गोदावरी और कृष्णा नदीके बीचका प्रदेश, जो किसी समय 'दक्षिण' कहलाता था ९ १९.३

मालव—मालवदेश इसकी प्राचीन राजधानी अवन्ती या उज्जयिनी रही, और भोजके समय धारा। इसको अवन्ती देश भी कहते थे। १ ६ १; ९ १९ ८

मालविणी—मालव स्त्री ४ १५.१२

मेच्छदेश—मेच्छ देश सरस्वतीके उत्तर पश्चिममें कोई देश (?) ९ १९.११

मेरु—मुमेरु पर्वत (पौराणिक), ऐतिहासिक दृष्टिसे गढ़वालमें खरहिमालय १.१.५, ११.११.२

मेवाड़—मेवाड़ प्रदेश (राजपूताना) ९.१९ ८

मेहवणपत्तन—मेघवनपत्तन (?) प्रश० गाथा ७

रयणप्पह—रत्नप्रभा, एक नरक भूमि, ११.१०.४

राठ—राठदेश, गंगाके पश्चिममें बंगालके तमलुक, मिदनापुर, हुगली और बर्दवान जिले (दिल्ले 'बंग') ९ १९.१४

रायगिह—राजगृह, आधुनिक राजगिरि (दक्षिण-बिहार) ३.१४.२१; ४.५.५

रेवानई—रेवा, नर्मदा नदी ५.१.५; ५.१०.२४

लंकानगरि—लंकानगरी पालि साहित्यके प्रमाणानुसार आधुनिक सीलोनकी लंका कहा जाता है। परंतु कुछ कारण हैं जिनसे प्राचीन लंका सीलोनसे भिन्न प्रतीत होती है। आधुनिक विद्वानोंमें डॉ० राजवली पाण्डेय आदिका मत भी सीलोनको लंका माननेके विरुद्ध है। (विशेष द्रष्टव्य : नं० ल० डे : प्रा० म० भा० भौगो० नामकोश) ५.८ ३३, लंजिया—लंजिकादेश, संभवतः सागुलिनी नदीका

प्रदेश गोदावरी और महानदीके बीच लागुनिया, लागुलिनी (मा०पु०) लांगली (महाभा०) नागलंदी अथवा नागवती नदी बहती है जो कलहंडीसे निकलकर गजम जिलेमें होती हुई मद्रासमें चिकाकोलके बीच खाडीमें गिरती है चिकाकोल विजयानगरम् और कर्लिगपत्तम्के बीच स्थित है । ९.१९.१

साब्देश-साटदेश ९.१९.८, निम्न तासीके बीचमें खानदेश सहित दक्षिण गुजरात ।

लोहपुर-लौहपुर, लोहावर, लवपुर, आधुनिक लाहौर ९.१९.११

वइतरणी-वैतरणी नरक नदी ११.४.३; वयतरणी-वही, २.१३.१३

वइदवम-वैदर्भ, विदर्भ ९.१९.३; बरार, खानदेश, निजामके प्रदेशका कुछ भाग और म०प्र०का कुछ भाग । प्राचीन समयमें इसमें भोपाल और विदिगाके राज्य सम्मिलित थे, और इसकी प्राचीन राजधानी विदर्भनगर (वीदर) थी ।

वइर-वज्रदेश कलकुड या गोलकुण्डा, हैदराबादसे सात मील दक्षिणमें, जो अपने हीरोके लिए प्रसिद्ध रहा है । ९.१९.५

वइरायर-वजाकर वैदूर्य पर्वत या विध्यपाद अर्थात् सतपुड़ा पर्वत श्रेणी, जो अपने हीरे-पत्थीकी खानोके लिए प्रसिद्ध है । १.२.१०; ९.१९.३

वज्जर-वज्र, हैमवन, हैमकूट या कैलास पर्वत, जो कुबेरका निवास समझा जाता है ९.१९.११

वडुहर-वडहर, काशीके पास एक गांव ९.१९.१६

वडुमाण-वर्द्धमान प्राचीन भगधमे एक गांव २.४.१२, ८.२.८

वणधट्ट-आधुनिक चुनार (उ० प्र०) ९.१९.१६

वराड-बरार प्रान्त ९.१९.४; देखें 'वइदवम'

वरेंदीसिरी-वरेंद्रथी, वीरेंद्र, उत्तरी वगाल, (देखें : 'वंग') ९.१९.१४

वाणरमुह-वानरमुख, एक उत्तर पर्वतीय जाति ९.१९.१३ (देखिए वृ० सं० ६८.१०३)

वाणारसी-वाराणसी, बनारस ९.१९.१६

वाराणसि-वही, १०.१५.१

वालभ-वल्लभी ९.१९.६; खम्भातकी खाडीमें आधुनिक बल या बल्ले बन्दरगाह, भावनगर (गुजरात) से १८ मील उत्तर-पश्चिम ।

विठल-विपुल पर्वत १.१४.१०; °इरि-गिरि, वही १०.२३.१२, °गिरि १.१६.८

विज्ज-विध्यपर्वत ५.८.१, ९.१९.४; १०.१२.१; °इरि-गिरि ४.१५.९; °एस-वध्यदेश ५.८.३८, °डइ-विध्याटवी ५.८.३०

विजय-विजय नामक एक स्वर्ग

विजयद-विजयार्द्र पर्वत (पौराणिक) ११.११.८

विमल गिरि-विमलाचल, विपुलाचल २०.२०.९

वीथसोया-वीतशोका नगरी (पौराणिक) ३.३.६

सजाण-संजन ९.१९.४, बंबईके थाना जिलेमें सजय नामक एक पुराना गांव; बरवोका सिंदन, महाभारतके अनुसार संजयती नगरी । इसे शाहपुर भी कहा जाता था और एक नाम साहजन भी था ।

सवाहण-संवाहन नगर ९.१९.४, भगवमें गंगाके तटपर कोई प्राचीन नगर ।

सक्करपह-शर्कराप्रभा (एक नरक पृथ्वी), ११.१०.५

सज्जगिरि-सह्यागिरि, सह्याद्रि पश्चिमी घाट पर्वत श्रेणी, कावेरी नदीके उत्तरकी श्रेणियाँ ४.१५.२० ९.१९.३

सत्तगोयावरी-ससगोदावरी भीम, गोदावरीके सात मुहाने और गोदावरी जिलेमें सोलंगीपुर नामक तीर्थ ९.१९.१६

सरसइ-सरस्वती नदी, जो हिमालयकी शैवालिक नामक पहाड़ी नदीसे निकलकर कई स्थानोपर लुप्त और फिर प्रगट होती हुई घग्घर या घाघरा नदीमें मिल जाती है, जो सरस्वतीका ही निचला भाग है, ९.१९.११

सव्वत्थसिद्धि-सवर्धिसिद्धि, सर्वोच्च स्वर्ग ११.१२.२

सख्वायर-स्वत्पाकर (विशेषण), कामरूप ९.१९.११

सहससिग-सहस्रशृंग पर्वत, सभवतः सह्याद्रि (?) ५.२.८

सायंभरी-शाकंभरीतीर्थ, अजमेर (उ० प्र०) के पास सांभर ९.१९.९

सिच्छ-सिंहल, सोलोन ९.१९.१

सिधु-सिधु नदी, उत्तर भारतकी सबसे बड़ी व प्रधान नदी, ९.१९.११

सिधुतीर-सिधुवट, सिधुनदी, मालवमें कालीसिधु जिसे दक्षिण सिधु भी कहा जाता है, ९.१५.५

सिंधुवरिसी-सिंधुवर्षी नगरी मालवामें सिंधुनदीके तटपर कोई प्राचीन नगर १.६.१

सिरोपव्वत-श्रीपर्वत, कर्नूलके उत्तर-पश्चिममें कृष्णा-नदीके दक्षिणमें स्थित श्रीशैल, ९.१९.२

सुरसरि-सुरसरित् गंगा, ४.१० ४; १०.१७.९

सोपारय-सोपारक या सुपर्करक पत्तन, ९.१९.५। इसे पहले सुरत समझा जाता था, जो ठीक नहीं। धाना जिलेमें बंबईके सैतीस मील उत्तरमें सूपर या सोपर नामक स्थान है, जहाँ अशोक-का एक शिलालेख भी है। यह अपरात या उत्तर कोकणकी राजधानी थी।

सोरहु-सौराष्ट्र, काठियावाड (गुजरात) ९ १९.७

सोवण्णदोणी-सुवर्ण द्रोणी ९.१९.७, संभवतः सुवर्ण-

गिरि बंबईके धाना जिलेके उत्तरमें वाडके पश्चिममें, खानदेशमें वाघली नामक स्थानपर स्थित पर्वत।

हंसदीव-हंसद्वीप, लंकानगरीके समीप एक द्वीप ५.३.१; ९ १९.६; (द्रष्टव्य : विमलसूरि प० च० ५४.४५ आदि)

हथिणाउर-हस्तिनापुर, प्राचीन कुशक्षेत्रकी राजधानी (जिला मेरठ, उ० प्र०) ३.१४.६

हम्मीर-हम्मीर देश, राजपूतानेमें रणथंभीर ९.१९.१०
हयवयण-हरिवदन, व्याघ्रमुख जाति ९.१९ १३;
(द्रष्टव्य वृ० सं० १४.५)

हिमवत-हिमवान् पर्वत ११.११.४

हिमालय-हिमालय पर्वत ११.११.८



BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪṬHA

MŪRTIDEVĪ JAINA GRANTHAMĀLĀ

General Editors :

Dr. H. L. JAIN, Jabalpur : Dr. A. N UPADHYE, Kolhapur.

The Bhāratīya Jñānapīṭha, is an Academy of Letters for the advancement of Indological Learning. In pursuance of one of its objects to bring out the forgotten, rare unpublished works of knowledge, the following works are critically or authentically edited by learned scholars who have, in most of the cases, equipped them with learned Introductions etc. and published by the Jñānapīṭha.

Mahābandha or the Mahādhavalā :

This is the 6th Khaṇḍa of the great Siddhānta work *Satkhaṇḍāgama* of Bhūtabalī : The subject matter of this work is of a highly technical nature which could be interesting only to those adepts in Jain Philosophy who desire to probe into the minutest details of the Karma Siddhānta. The entire work is published in 7 volumes. The Prākṛit Text which is based on a single Ms. is edited along with the Hindī Translation. Vol I is edited by Pt. S. C. DIWAKAR and Vols. 2 to 7 by Pt. PHOOLACHANDRA. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jain Granthamālā, Prākṛit Grantha Nos. 1, 4 to 9. Super Royal Vol I : pp. 20 + 80 + 350 ; Vol. II : pp. 4 + 40 + 440 ; Vol. III : pp. 10 + 496 ; Vol. IV : pp. 16 + 428 ; Vol. V : pp. 4 + 460 ; Vol VI : pp. 22 + 370 ; Vol VII : pp. 8 + 320. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1947 to 1958. Price Rs. 11/- for each vol.

Karalakkhana :

This is a small Prākṛit Grantha dealing with palmistry just in 61 gāthās. The Text is edited along with a Sanskrit Chāyā and Hindī Translation by Prof. P. K. MODI. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jain Granthamālā, Prākṛit Grantha No. 2. Third edition, Crown pp. 48 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1964. Price 75 P.

Madanaparājaya :

An allegorical Sanskrit Campū by Nāgadeva (of the Śaivāt 14th century or so) depicting the subjugation of Cupid Edited critically by Pt. RAJKUMAR JAIN with a Hindī Introduction, Translation etc., Jñānapīṭha Mūrtidevī Jain Granthamālā, Sanskrit Grantha No 1. Second edition. Super Royal pp. 14 + 58 + 144. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1964. Price Rs 8/-.

Kannada Prāntīya Tādapatriya Grantha-sūci :

A descriptive catalogue of Palmleaf Mss. in the Jain Bhaṇḍāras of Moodbidri, Karkal, Alhyoor etc. Edited with a Hindī Introduction etc. by Pt. K. BHUJABALI

SHASTRI, Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 2
Super Royal pp. 32 + 324 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1948. Price Rs. 13/-.

Tattvārtha-vṛtti :

This is a critical edition of the exhaustive Sanskrit commentary of Śrutasāgara (c. 16th century Vikrama Saṁvat) on the Tattvārthasūtra of Umāsvāti which is a systematic exposition in Sūtras of the fundamentals of Jainism. The Sanskrit commentary is based on earlier commentaries and is quite elaborate and thorough. Edited by Pt. MAHENDRAKUMAR and UDAYACHANDRA JAIN. Prof. MAHENDRAKUMAR has added a learned Hindī Introduction on the exposition of the important topics of Jainism. The edition contains a Hindī Translation and important Appendices of referential value. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 4. Super Royal pp. 108 + 518 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1949, Price Rs. 16/-.

Ratna-Manjūsā with Bhāṣya :

An anonymous treatise on Sanskrit prosody. Edited with a critical Introduction and Notes by Prof. H D VELANKAR. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 5. Super Royal pp. 8 + 4 + 72. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1949. Price Rs. 2/-.

Nyāyavinīścaya-vivarana :

The Nyāyavinīścaya of Akalaṅka (about 8th century A. D.) with an elaborate Sanskrit commentary of Vādirāja (c. 11th century A. D.) is a repository of traditional knowledge of Indian Nyāya in general and of Jaina Nyāya in particular. Edited with Appendices etc. by Pt. MAHENDRAKUMAR JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos. 3 and 12. Super Royal Vol I : pp. 68 + 546 ; Vol II : pp. 66 + 168 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1949 and 1954. Price Rs. 15/- each.

Kevalajñāna-praśna-cūḍāmani

A treatise on astrology etc. Edited with Hindī Translation, Introduction, Appendices, Comparative Notes etc. by Pt. NEMICHANDRA JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 7 Super Royal pp. 16 + 128. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1950. Price Rs. 4/-.

Nāmamālā :

This is an authentic edition of the Nāmamālā, a concise Sanskrit Lexicon of Dhananujaya (c. 8th century A. D.) with an unpublished Sanskrit commentary of Amarkīrti (c. 15th century A. D.). The Editor has added almost a critical Sanskrit commentary in the form of his learned and intelligent foot-notes. Edited by Pt. SHANBHUNATH TRIPATHI, with a Foreword by Dr. P. L. VAIDYA

and a Hindī Prastāvanā by Pt. MAHENDRALAKSHMI. The Appendix gives Anekārtha nghanṭu and Elātṣarī-kośa. Jānapiṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 6. Super Royal pp. 16 + 140. Bhāratīya Jānapiṭha Kashi, 1950. Price Rs. 3.50 P.

Samayasāra :

An authoritative work of Kundakunda on Jaina spiritualism. Prākṛit Text, Sanskrit Chāyā. Edited with an Introduction, Translation and Commentary in English by Prof. A. CHAKRAVARTI. The Introduction is a masterly dissertation and brings out the essential features of the Indian and Western thought on the all-important topic of the Self. Jānapiṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, English Grantha No. 1 Super Royal pp. 10 + 162 + 344. Bhāratīya Jānapiṭha Kashi, 1950. Price Rs. 8/-

Jātakatthakathā :

This is the first Devanāgarī edition of the Pāli Jātakas. Tales which are a storehouse of information on the cultural and social aspects of ancient India. Edited by Bhīṣhu DEARMAPAKSHITA. Jānapiṭha Mūrtidevī Pāli Granthamālā No. 1, Vol. I. Super Royal pp. 16 + 384. Bhāratīya Jānapiṭha Kashi. 1951. Price Rs. 9/-

Kural or Thirukkural :

An ancient Tamil Poem of Thevar. It preaches the principles of Truth and Non-violence. The Tamil Text and the commentary of Kavīrājapāṇḍita. Edited by Prof. A. CHAKRAVARTI with a learned Introduction in English. Bhāratīya Jānapiṭha Tamil Series No. 1. Demy pp. 8 + 36 + 440. Bhāratīya Jānapiṭha Kashi, 1951. Price Rs. 5/-

Mahāpurāna :

It is an important Sanskrit work of Jinasena-Gugabhadra, full of encyclopaedic information about the 63 great personalities of Jainism and about Jain life in general and composed in a literary style. Jinasena (8th A. D.) is an outstanding scholar, poet and teacher ; and he occupies a unique place in Sanskrit Literature. This work was completed by his pupil Gugabhadra. Critically edited with Hindī Translation, Introduction, Verse Index etc. by Pt. PANNALAL JAIN. Jānapiṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos. 8, 9 and 14. Super Royal : Second edition, Vol. I : pp. 8 + 68 + 746, Vol. II : pp. 8 + 556 ; Vol. III : pp. 24 + 708 ; Bhāratīya Jānapiṭha Ka-shi. 1951 to 1954. Price Rs. 10/- each.

Vasunandī Śrāvakaçāra :

A Prākṛit Text of Vasunandī (c. Sarvāt first half of 13th century) in 544 gōthās dealing with the duties of a householder, critically edited along with a Hindī

Translation by Pt. HIRALAL JAIN. The Introduction deals with a number of important topics about the author and the pattern and the sources of the contents of this Śrāvakācāra. There is a table of contents. There are some Appendices giving important explanations, extracts about Pratisthāvidhāna, Sallekhanā and Vratas. There are 2 Indices giving the Prākṛit roots and words with their Sanskrit equivalents and an Index of the gāthās as well. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākṛit Grantha No. 3. Super Royal pp. 230. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1952. Price Rs 5/-

Tattvārthavārttikam or Rājāvārttikam

This is an important commentary composed by the great logician Akalaṅka on the Tattvārthasūtra of Umāsvāti. The text of the commentary is critically edited giving variant readings from different Mss by Prof. MAHENDRAKUMAR JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 10 and 20. Super Royal Vol. I : pp 16 + 430 ; Vol. II : pp. 18 + 436. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1953 and 1957. Price Rs 12/- for each Vol

Jinasahasranāma :

It has the Svopajñā commentary of Paṇḍita Āśādharma (V. S 13th century) In this edition brought out by Pt. HIRALAL a number of texts of the type of Jinasahasranāma composed by Āśādharma, Jinasena, Sakalakīrti and Hemacandra are given. Āśādharma's text is accompanied by Hindi Translation, Śrutasāgara's commentary of the same is also given here. There is a Hindi Introduction giving information about Āśādharma etc. There are some useful Indices. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 11. Super Royal pp. 288. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1954. Price Rs. 4/-.

Purāṇasara-Saṅgraha :

This is a Purāṇa in Sanskrit by Dāmanandi giving in a nutshell the lives of Tirthaṅkaras and other great persons. The Sanskrit text is edited with a Hindi Translation and a short Introduction by Dr G.C. JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 15 and 16. Crown Part I pp. 20 + 198; Part II : pp. 16 + 206. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1954, 1955. Price Rs. 2/- each.

Sarvārtha-Siddhī :

The Sarvārtha-Siddhī of Pūjyapāda is a lucid commentary on the Tattvārthasūtra of Umāsvāti called here by the name Grhīrapiccha. It is edited here by Pt. PHOOLCHANDRA with a Hindi Translation, Introduction, a table of contents and three Appendices giving the Sūtras, quotations in the commentary and a list of technical terms. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 13. Double Crown pp. 116 + 506, Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1955. Price Rs. 12/-.

Jainendra Mahāvṛtti

This is an exhaustive commentary of Abhayanandi on the *Jainendra Vyākaraṇa*, a Sanskrit Grammar of Devanandi alias Pūjyapāda of circa 5th-6th century A. D. Edited by Pts. S N. TRIPATHI and M CHATURVEDI. There are a Bhūmikā by Dr. V.S AGRAWALA, *Devanandīkā Jainendra Vyākaraṇa* by PREMI and *Khulapāṭha* by MIMĀNSAKA and some useful Indices at the end. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 17. Super Royal pp. 56 + 506. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1956. Price Rs. 15/-.

Vratatīthi Nirṇaya

The Sanskrit Text of Sinhanandi edited with a Hindi Translation and detailed exposition and also an exhaustive Introduction dealing with various Vratas and rituals by Pt NEMICHANDRA SHASTRI. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 19 Crown pp. 80 + 200. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1956. Price Rs. 3/-.

Pauma-cariū :

An Apabhrāṇśa work of the great poet Svayambhū (677 A. D). It deals with the story of Rāma. The Apabhrāṇśa text up to 56th Sandhi with Hindi Translation and Introduction of Dr. DEVENDRAKUMAR JAIN, is published in 3 Volumes Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Apabhrāṇśa Grantha Nos 1, 2 & 3. Crown size, Vol. I pp 28 + 333; Vol II : pp. 12 + 377; Vol. III : pp. 6 + 253. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1957, 1958. Price Rs. 3/- for each Vol.

Jīvamdhara-Campū :

This is an elaborate prose Romance by Haricandra written in Kāvya style dealing with the story of Jīvamdhara and his romantic adventures. It has both the features of a folk-tale and a religious romance and is intended to serve also as a medium of preaching the doctrines of Jainism. The Sanskrit Text is edited by Pt PANNALAL JAIN along with his Sanskrit Commentary, Hindi Translation and Prastāvanā. There is a Foreword by Prof. K. K. HANDEQUI and a detailed English Introduction covering important aspects of Jīvamdhara tale by Drs. A.N. UPADHYE and H. L. JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jain Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 18. Super Royal pp. 4 + 24 + 20 + 344. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1958. Price Rs. 8/-.

Padma-purāna :

This is an elaborate Purāṇa composed by Raviṣeṇa (V. S. 734) in stylistic Sanskrit dealing with the Rāma tale. It is edited by Pt. PANNALAL JAIN with Hindi Translation, Table of contents, Index of verses and Introduction in Hindi dealing with the author and some aspects of this Purāṇa. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 21, 24, 26. Super Royal

Vol. I : pp. 44 + 548 ; Vol. II : pp. 16 + 460 ; Vol. III : pp. 16 + 472.
Bhāratiya Jñānapīṭha Kashi, 1958-1959 Price Rs 10/- each

Siddhi-viniscaya :

This work of Akalankadeva with Svopajñavittī along with the commentary of Anantavīrya is edited by Dr. MAHENDRAKUMAR JAIN. This is a new find and has great importance in the history of Indian Nyāya literature. It is a feat of editorial ingenuity and scholarship. The edition is equipped with exhaustive, learned Introductions both in English and in Hindi, and they shed abundant light on doctrinal and chronological problems connected with this work and its author. There are some 12 useful Indices. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 22, 23. Super Royal Vol I. pp. 16 + 174 + 370, Vol II : pp. 8 + 808. Bhāratiya Jñānapīṭha Kashi, 1959. Price Rs 18/- and Rs 12/-.

Bhadrabāhu Sambhita :

A Sanskrit text by Bhadrabāhu dealing with astrology, omens, portents etc. Edited with a Hindi Translation and occasional Vivecana by Pt NEMICHANDRA SHASTRI. There is an exhaustive Introduction in Hindi dealing with Jain Jyotisa and the contents, authorship and age of the present work. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 25. Super Royal pp 72 + 416. Bhāratiya Jñānapīṭha Kashi, 1959. Price Rs. 3/-.

Pāncasamgraha :

This is a collective name of 5 Treatises in Prākṛit dealing with the Karma doctrine the topics of discussion being quite alike with those in the Gōmmatasāra etc. The Text is edited with a Sanskrit commentary, Prākṛit Vitti by Pt. HIRALAL who has added a Hindi Translation as well. A Sanskrit Text of the same name by one Śrīpāla is included in this volume. There are a Hindi Introduction discussing some aspects of this work, a Table of contents and some useful Indices. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākṛit Grantha No 10. Super Royal pp. 60 + 804. Bhāratiya Jñānapīṭha Kashi, 1960. Price Rs. 15/-.

Mayana-parajaya-carīi :

This Apabhraṃśa Text of Harideva is critically edited along with a Hindi Translation by Prof Dr. HIRALAL JAIN. It is an allegorical poem dealing with the defeat of the god of love by Jina. This edition is equipped with a learned Introduction both in English and Hindi. The Appendices give important passages from Vedic, Pāli and Sanskrit Texts. There are a few explanatory Notes, and there is an Index of difficult words. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Apabhraṃśa Grantha No 5. Super Royal pp. 88 + 90. Bhāratiya Jñānapīṭha Kashi, 1962. Price Rs. 8/-.

Harivamśa Purāna :

This is an elaborate Purāna by Jinasena (Śaka 705) in stylistic Sanskrit dealing with the Harivamśa in which are included the cycle of legends about Kṛṣṇa and Pāṇḍavas. The text is edited along with the Hindi Translation and Introduction giving information about the author and this work, a detailed Table of contents and Appendices giving the verse Index and an Index of significant words by Pt. PANNALAL JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 27. Super Royal pp. 12 + 16 + 812 + 160. Bhāratiya Jñānapīṭha Kashi, 1962. Price Rs. 16/-.

Karmaprakṛti :

A Prākṛit text by Nemicandra dealing with Karma doctrine, its contents being allied with those of Gommatasāra. Edited by Pt. HIRALAL JAIN with the Sanskrit commentary of Sumatīkṛiti and Hindi Tikā of Paṇḍita Hemarāja, as well as translation into Hindi with Viśeśārtha. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākṛit Grantha No. 11. Super Royal pp. 32 + 160. Bhāratiya Jñānapīṭha Kashi, 1964. Price Rs. 6/-.

Upaskādhyayana :

It is a portion of the Yaśāstīlaka-campū of Somadeva Sūri. It deals with the duties of a householder. Edited with Hindi Translation, Introduction and Appendices etc. by Pt. KAILASHCHANDRA SHASTRI Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Granth No. 28. Super Royal pp. 116 + 539, Bhāratiya Jñānapīṭha, Kashi 1964. Price Rs. 12/-.

Bhojcaritra :

A Sanskrit work presenting the traditional biography of the Paramāra Bhoja by Rājavallabha (15th century A. D.) Critically edited by Dr. B. Ch. CHABRA, Jt Director General of Archaeology in India and S. SANKARNARAYANA with a Historical Introduction and Explanatory Notes in English and Indices of Proper names. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 29. Super Royal pp. 24 + 192. Bhāratiya Jñānapīṭha Kashi, 1964. Price Rs. 8/-.

Satyasasana-parīkṣā :

A Sanskrit text on Juyogic by Ācārya Vidyānandi critically edited for the first time by Dr. GOKULCHANDRA JAIN. It is a critique of selected issues upheld by a number of philosophical schools of Indian Philosophy. There is an English compenham of the text, by Dr. NATHMAL TATIA. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Granth No. 30. Super Royal pp. 56 + 31 + 62, Bhāratiya Jñānapīṭha, Kashi, 1964. Price Rs. 5/-.

Karakanda-carīu :

An Apabhramśa text dealing with the life story of king Karakaṇḍa, famous as

'Pratyeka Buddha' in Jaina & Buddhist literature. Critically edited with Hindi & English Translations, Introductions, Explanatory Notes and Appendices etc. by Dr. HIRALAL Jain, Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Apabhraṁśa Grantha No. 4 Super Royal pp 64 + 278. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1961 Price Rs, 10/-

Sugandha-dāsamī-kathā :

This edition contains Sugandha-dāsamīkathā in five languages viz. Apabhraṁśa, Sanskrit, Gujarātī, Marāṭhī and Hindi, critically edited by Dr HIRALAL JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā Apabhraṁśa Grantha No. 6. Super Royal pp 20 + 26 + 100 + 16 and 48 Plates. Bhāratīya Jñānapīṭha Publication Varanasi, 1966 Price Rs. 11/-

Kalyānakalpadruma :

It is a Stotra in twenty five Sanskrit verses. Edited with Hindi Bhāṣya and Prastāvanā etc. by Pt. JUGALKISHORE MUKHTAR. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā Sanskrit Grantha No 32 Crown pp 76. Bhāratīya Jñānapīṭha Publication, Varanasi, 1967 Price Rs 1/50.

Jambū sāmī carīu :

This Apabhraṁśa text of Vīra Kavi deals with the life story of Jambū Swāmī, a historical Jain Ācārya who passed in 463 A. D. The text is critically edited by Dr Vimal Prakash Jain with Hindi translation, exhaustive introduction and indices etc Jñānapīṭha Murtidevī Jaina Granthamālā Apabhraṁśa Grantha No. 7. Super Royal pp. 16 + 152 + 402; Bhāratīya Jñānapīṭha Publication, Varanasi, 1968 Price Rs. 15/-.

Gadyacintāmani :

This is an elaborate prose romance by Vādībha Singh Sūri, written in Kāvya style dealing with the story of Jīandhara and his romantic adventures. The Sanskrit text is edited by Pt Pannalal Jain along with his Sanskrit Commentary, Hindi Translation, Prastāvanā and indices etc Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 31 Super Royal pp. 8 + 10 + 258. Bhāratīya Jñānapīṭha Publication, Varanasi, 1968 Price Rs 12/-.

Yogasāra Prābhṛta :

A Sanskrit text of Amitgati Ācārya dealing with Jun Yoga vidyā. Critically edited by Pt. Jugalkishore Mukhtār with Hindi Bhāṣya, Prastāvanā etc. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā Grantha No. 33 Super Royal pp. 14 + 236. Bhāratīya Jñānapīṭha Publication, Varanasi, 1968. Price Rs 8/-

For copies please write to :

Bharatiya Jnanpitha, 3620/21, Nct 1st Subhas Marg, Dwiyogany, Delhi (India)

